#### SHRI BRAHMAGUPTA VIRACITA

# BRĀHMA-SPHUŢA SIDDHĀNTA

WITH

Vāsanā, Vijītāna and Hindi Commentaries

Vol. IV

Edited by
A board of Editors headed by
ACHARYAVARA RAM SWARUP SHARMA
Chief Editor and Director of the Institute

Published by

Indian Institute of Astronomical and Sanskrit Research
Gurudwara Road, Karol, Bagh, New Delhi-5.

Published by

Indian Institute of Astronomical and Sanskrit Research 2239, Gurudwara Road, Karol Bagh, New Delhi-5. (India)

\*

Aided by

Ministry of Education, Government of India

\*

Editorial Board

Shri Ram Swamp Sharma

Chief Butor, Director of the Institute.

Myselva Mishra Jyotishachada hadaawanada Jha

Jyorishacharya

Shri Daya Shankar Dikshita

Jyotishacharya

Shri Om Datt Sharma, Shastri

M.A., M.O.L.

\*

Copy rights reserved by publishsers 1966

\*

Price Rs. 60.00

\*

Printed by Padam Shree Prakashan & Printers Chamelian Road, Delhi.

## श्रीब्रह्मगुप्ताचार्य-विरचित:

# ब्राह्मस्फुटसिद्धान्तः

्रित्तिक्तिन्दी भाषायां वासनाविज्ञानभाष्याभ्यां समलंकृतः सोपपित्तकः)

## चतुर्थो–भागः

प्रधानसम्पादक :

श्राचार्यवर पंडित रामस्वरूप शर्मा (स-बालक-इंडियन इंस्टीटघूट श्राफ सस्टानीमिकल एण्ड संस्कृत रिसर्च)

प्रकाशक:

इंडियन इंस्टीट्यूट भ्राफ़ ग्रस्ट्रानौमिकल एण्ड संस्कृत रिसर्च गुरुद्वारा रोड, क़रौल बाग्न, न्यू देहली-५।

```
प्रकाशक---
इंडियन इंस्टीटयूट ग्राफ़ ग्रस्ट्रानौमिकल
एण्ड संस्कृत रिसर्च
२२३६, गुरुद्वारा रोड, करौल बाग,
नई दिल्ली-५ (भारत)
*
भारत सरकार के शिक्षा मन्त्रालय द्वारा
प्रदत्त ग्रनुदान से प्रकाशित।
*
सम्पादक मण्डल-
श्री रामस्वरूप शर्मा
    प्रधान सम्पादक, सञ्चालक
श्री मुकुन्दमिश्र
    ज्योतिषाचार्य
श्री विश्वनाथ भा
    ज्योतिषाचार्यं
श्री दयाञंकर दीक्षित
    ज्योतिषाचार्य
श्री स्रोंदत्त शर्मा शास्त्री
    एम. ए., एम. भ्रो. एल.
*
प्रथम संस्करण
१९६६
मूल्य र० ६०.००
```

\*

मुद्रक :

दिल्ली।

पद्म श्री प्रकाशन एण्ड प्रिण्टर्स

१२, चमेलियन रोड.

# समपंगः

श्रीयुत एस० के० पाटिल यूनियन मिनिस्टर फ़ार रेल्वेज को सादर समर्पित

Dedicated to
Shri S. K. Patil
Union Minister for Railways

#### भूमिका

# ब्रह्मगुप्त श्रोर ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त

श्रीचापवंशिवलके श्रीव्याघ्रमुखे नृषे शकनृषाणाम् । पञ्चाशत्संयुक्तैं वर्षशतैः पञ्चभिरतीतैः ॥ ब्राह्मः स्फुटसिद्धान्तः सज्जनगणितज्ञगोलवित्प्रीत्यै । त्रिशद्वर्षेण कृते जिष्णुसुतब्रह्मगुप्तेन ॥

ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त के संज्ञाच्याय में श्राचार्य की इस उक्ति के श्रनुसार ५२० शाकवर्ष में भाचार्य ब्रह्मगुप्त का जन्म हुआ। तीस वर्ष की भायु में ही उन्होंने ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त नामक ज्योतिष के इस महान् सिद्धान्त ग्रन्थ का प्रएयन किया। इनके जन्म काल नाम के अन्त में लगा 'गुप्त' शब्द प्रकट करता है कि इनका जन्म कैरिय कुल के एक संपन्न परिवार में हुआ था। ज्योतिषशास्त्र के यह प्रकाण्ड पण्डित थे—इसी से रींवां नरेश ज्याध्रभटेश्वर ने इन्हें अपना प्रधान ज्योतिषी बनाकर सम्मानित किया।

इनके जन्म स्थान के सम्बन्ध में कोई मत विभिन्नता नहीं। पाश्चात्य विद्वानों की इस दिशा में खोज की जो उपलब्धि हुई है, उसके अनुसार इनका जन्म गुर्जर देशान्तर्भत भिनमाल नामक गाँव में हुआ। गुर्जर प्रदेश के ज्योतिषियों की जन्म स्थान मुखकथा से भी इस बात का समर्थन होता है। गुर्जर प्रदेश की उत्तर सीमा में मालव (मारवाड़) देश से दक्षिण दिशा की धोर आबू पर्वत और तूर्णी नदी के मध्यवर्ती पर्वत से वायुकीण में भिनमाल नाम का गाँव धव भी स्थित है।

ब्रह्मोक्तं ग्रहगिएतं महता कालेन यत् खिलीभूतम् । भ्रमिधीयते स्फुटं तज्जिष्गुसुतब्रह्मगुप्तेन । । रचना —

श्राचार्य की इस उक्ति से स्पष्ट ज्ञात होता है कि निलकादि से वेधद्वारा द्वगागितैषय (विधागत श्रीर गणितागत ग्रहादिकों की सुल्यता) कारक ग्रहादि साधन के कारण विष्णुधर्मोत्तर पुरागा के श्रन्तर्गत श्रति प्राचीन सिद्धान्त को ही श्रागम मानकर उसका संशोधन करके श्राचार्य ब्रह्मगुष्त ने नवीन ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त की रचना की।

इस (ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त) की चतुर्वेदाचार्य कृत 'तिलक' नाम की टीका प्रसिद्ध भी--वह इस समय संपूर्ण उपलब्ध नहीं है। 'कोलब्र्क' नामक पाश्चात्य विद्वान् की वह सम्पूर्णं टीका उपलब्ध थी । इसी कारण उसके ग्राधार पर इस ग्रन्थ के वारहवें (व्यक्त) ग्राध्याय ग्रीर ग्रठारहवें (अव्यक्तगणित) ग्रध्याय का कोलब्रूक महाशय कृत, ग्राङ्गल भाषा में ग्रनुवाद सन् १८१७ (१७३६ शाकवर्ष) ई० में ही उपलब्ध हो गया था।

इस ग्रन्थ (ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त ) में १००८ श्लोक (ब्रार्यावृत्त ) हैं ।
पूर्वार्ध ग्रीर उत्तरार्ध नामक दो भागों में बंटा हुग्रा है। पूर्वार्ध में (१) मध्यगित
(२) स्फुटगित (३) त्रिप्रश्नाध्याय (४) चन्द्रग्रहग्गाध्याय
ग्रन्थ का विषय (५) सूर्यग्रहगाध्याय, (६) उदयास्तमयाध्याय, (७) चन्द्रग्रंगोविभाजन न्तर्यध्याय, (६) चन्द्राच्छायाध्याय, (६) ग्रहगुत्यध्याय ग्रीर
(११) भग्रहगुत्यध्याय, ये दस ग्रध्याय हैं। उत्तरार्थ में (१) तन्थ
परीक्षाध्याय, (२) गिगताध्याय, (३) मध्यमत्युत्तराध्याय, (४) स्फुटगत्युत्तराध्याय,
(५) त्रिप्रश्नोत्तराध्याय, (६) ग्रहणोत्तराध्याय, (७) छेद्यकाध्याय, (६) ग्रंगोन्नत्युत्तराध्याय,
(६) कुट्टाकाराध्याय, (१०) छन्दिचत्युत्तराध्याय, (११) गोलाध्याय, (१२) यन्त्राध्याय, (१३) मानाध्याय ग्रीर (१४) संज्ञाध्याय। ये चौदह ग्रध्याय हैं। दोनों पूर्वार्ध ग्रीर
उत्तरार्ध को मिला कर १०+१४ इस ग्रन्थ में कुल चौबीस ग्रध्याय हैं।

इन भ्रष्यायों में तन्त्रपरीक्षाध्याय बहुत विचारगीय है क्योंकि इस भ्रष्याय में भ्राचार्य ने भौर भ्रनेक भ्राचार्यों के नामों भौर उनके मतों का उल्लेख किया है।

लाटात् सूर्यंशशाङ्कौ मध्याविन्द् च चन्द्रपातौ च।
कुजबुध शीघ्रबृहस्पतिसितशीघ्र शनैश्चरात् मध्यात्।।
युगपातवर्षभगणान् वासिष्ठाद्विजयनिदक्रतपादात्।
मन्दोच्चपरिधिपातस्पष्टीकरणाद्यमार्यभटात्।।
श्रीषेणोन गृहीत्वा रक्षांच्चयरोमकः कृतः कन्था।
एतानेव गृहीत्वा वासिष्ठो विष्णुचन्द्रेण ॥
यन्त्रोनं कदाचिदपि ग्रहणादिषु भवति हष्टिगणितैक्यम्।
यद्भवति तद्षुणाक्षरमतोऽस्फुटाभ्यां किमेताभ्याम्॥

इन श्लोंकों के द्वारा श्रीषेणाचार्यंकृत 'रोमकसिद्धान्त' है श्रीर विष्णुचनद्रकृत 'वासिष्ठसिद्धान्त।' दोनों के दोष कहते हैं, यह टीकाकार चतुर्वेदाचार्य का कथन है। 'पञ्चसिद्धान्तका' में श्रीषेण श्रीर विष्णुचन्द्र के नामों का उल्लेख नहीं है। इससे मालूम होता है कि वराहिमिहिराचार्य के काद श्रीर ब्रह्मगुष्त से पूर्व ४२६ श्रीर ४५० शाकवर्ष के मध्य इन दोनों श्राचार्यों (श्रीषेण श्रीर विष्णुचन्द्र) ने ज्यौतिषसिद्धान्त के विशाल ग्रन्थों की रचना की। इस बात को स्वयं वेष द्वारा स्थिर करके श्राचार्य ने 'यद् भवित तद्बुणाक्षरम्' इत्यादि प्रौढोक्ति से पुष्ट किया है।

भ्रार्यभट के सिद्धान्त सर्वथा दोषपूर्ण हैं, यह कहते हुए भ्राचार्य ने उनकी उक्तियों भ्रार्यभट के मत का नाना प्रकार से खण्डन करने के लिए इस ग्रन्थ की रचना का खण्डन की। भ्राचार्य भ्रभ्रमणखण्डन में कहते हैं—

यः प्रारोनैति कलां भूर्यदि तर्हि कुतो ब्रजेत् कमध्वानम् । भ्रावर्त्तनमुर्व्याश्चेन्न पतन्ति समुच्छ्रयाः कस्मात् ॥

आयंभट तो पृथिवी के चलत्व और भग्गों के स्थिरत्व को स्वीकार कर अहोरा-त्रासु में पृथिवी के श्रमण को अपने अक्ष के ऊपर मानते हैं, परन्तु ब्रह्मगुप्त ने आवर्त्तन्-मुर्व्याश्चेदित्यादि उक्ति के द्वारा, तथा अन्यत्र अनेक- अत्युक्तियों द्वारा भूश्रमण का जो खंडन किया है बहदुराग्रहपूर्ण और केवल वाग्वल है।

> स्वयमेव नाम यत्कृतमार्यभटेन स्फुटं स्वगिणितस्य । सिद्धं तदस्फुटत्वं प्रहणादीनां विसंवादात् ।। जानात्येकमिप यतो नार्यभटो गिणितकाल गोलानाम् । न मया प्रोक्तानि ततः पृथक् पृथक् दूषणान्येषाम् ।। ध्रायंभटदूषणानां संख्या वक्तुं न शक्यने यस्मात् । तस्मादयमुद्देशो बुद्धिमताऽन्यानि योज्यानि ॥

ज़िस रीति से, जिन शब्दों द्वारा ब्रह्मगुष्त ने श्रायंभट के मत का खण्डन किया है उसी रीति से उन्हीं शब्दों में वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सिद्धान्त में ब्रह्मगुष्त के मत का खण्डन किया है। इसके विस्तृत विवरण के लिए वटेश्वर सिद्धान्त का श्रवलोकन श्रपे- क्षित है।

ग्रहग्रह्णादि के वेधकर्ता ब्रह्मगुप्त स्वयं तो प्राचीनाचार्यों की अपेक्षा अनेक विशिष्ट ब्राह्मस्फुट- ग्रहादिसाधन विधियों का, तथा गरिएत के सत्य और असत्य की सिद्धान्त परीक्षा के लिए वेध विधियों का अपने ग्रन्थ में प्रौढोक्ति के साथ प्रतिपादन करते हैं।

ज्ञातं कृत्वा मध्यं भूयोऽन्यदिने तदन्तरं भुक्तिः ।
श्रेराशिकेन भुक्त्या कल्पग्रहमण्डलानयनम् ।।
यदि भिन्नाः सिद्धान्ता भास्करसंक्रान्तयोऽपि भेदसमाः ।
स स्पष्टः पूर्वस्यां विषुवत्यकोदयो यस्य ॥

इत्यादि वास्तव विचारों में प्रवृत्त विशिष्ट विवेचनायुक्त सिद्धान्त ग्रन्थ को रचना सबसे पहले ब्रह्मगुष्त ही ने की। यह बात इस समय उपलब्ध ज्यौतिष सिद्धान्तों के ग्रन्थों से विदित होती है। 'कृती जयित जिप्णुजो गग्।कचक्रचूडामग्गिः।' इस उक्ति द्वारा भास्कराचार्यं ने अपने सिद्धान्त शिरोमग्गि के गिंगताध्याय के आरम्भ में श्राचार्य ब्रह्मगुप्त, को श्रमिवादन किया। उसके पश्चात् श्रनेक स्थानों पर ब्रह्मगुप्त के मत का उल्लेख करते हुए भास्कराचार्य ने लिखा —

### यथाऽत्र ग्रन्थे ब्रह्मगुप्त स्वीकृतागमोऽङ्गीकृतः।

इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि भास्कराचार्य ने ग्रपने ग्रन्थ में ग्रह्मगृष्त का ही अनुकरण किया। ब्रह्मगृष्त को ग्रयन चलन की उपलब्धि नहीं हुई, यह बात 'ग्राह्मस्कृट सिद्धान्त' से समभी जाती है। ग्रत एव ब्रह्मगृष्तकृत ग्रयन चलोपलब्धि का खण्डन देखा जाती है। तन्त्रपरीक्षांच्याय में ब्रह्मगृष्त के कहा है—

वराह मिहिराचार्य अयनचलन के विषय में सिन्दिहान थे। इसीलिए उन्होंन 'नूनं कदाचिदासीद्येनोक्तं पूर्वशास्त्रेषु' कहा है। उस समय अश्विन्यादि में क्रान्तिपात था, इसिलए अश्विन्यादि से नक्षत्रों की गएाना प्रवृत्त हुई। ब्रह्मगुष्त के पश्चात् आज तक गएाना की यही प्रक्रिया प्रचलित है। क्रान्तिपात पश्चिम दिशा में प्राय: ६५ वर्ष में एक अशं चलता है। यतः उसका ज्ञान अल्पसमय में असम्भव प्राय है। इसीलिए तो ब्रह्मगुष्त मी अयनचलन की उपसब्धि नहीं कर सके। आयंभट का विरोधी होकर भी ब्रह्मगुष्त ने ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त की रचना की।

३७ वर्ष की भवस्था में ब्रह्मगुप्त ने 'खण्डखाद्यक' नाम के करण ग्रन्थ का , खण्डखाद्यक की रचना प्रण्यन किया। उसके प्रारंभ में ही ब्रह्मगुष्त ने निस्ता—

प्रिशापत्य महादेवं जगदुत्पत्ति स्थितिप्रलयहेतुम् । वक्ष्यामि खण्डखाद्यकमाचार्यार्यभटतुल्यफलम् ॥ प्रायेगार्यभटेन व्यवहारः प्रतिदिनं यतोऽशक्यः । उद्वाहजातकादिषु तत्समफल लघुतरोक्तिरतः ॥

यह उनके प्रन्थ की पर्यालोचन से समका जाता है कि सर्वत्र मनुष्यों के व्यवहारों में प्रचलित आयंभट मत का निराकरण करना अत्यन्त कठिन था। इसलिए आयंभट मतानु-सार व्यवहार करते हुए मनुष्यों के उपकारायं व्यावहारिक 'खण्डखाद्यक' नामक करण-प्रन्थ की रचना ब्रह्मगुष्त ने की। जिस प्रकार उपलब्ध प्राचीन ज्यौतिषसिद्धान्त प्रन्थों में ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त एक आदर्श प्रन्थ माना जाता है उसी प्रकार सब करणप्रन्थों में सर्वे प्रथम आदर्श आज से तेरह सौ वर्ष पूर्व लिखित यही 'खण्डखाद्यक' है।

भारतीय ज्योतिषियों में भ्रार्यभट ही सब से पहले दिन भौर रात्रि के कारएा-स्वरूप पृथिवी के श्रावर्तन को कहते हैं जैसे गीतिकापाद के प्रथम क्लोक में एक महायुग (४३२००००) में भूमि के १५८२२३७५०० भगएा होते हैं। पहले इसको कह कर इष्टान्त द्वारा भूभ्रमएा को—

> श्रनुलोमगतिर्नोस्थः पश्यत्यचलं विलोमगं यद्वत् । श्रचलानि भानि तद्वत् समपश्चिमगानि लङ्कायाम् ॥

उनित से दृढ़ करते हैं। परन्तु यहाँ विचित्रता देखने में आती है कि आर्थभटीय टीकाकार परमेश्वर ने इस श्लोक की व्याख्या के समय—भूमे: प्राग्गमनं नक्षत्राणां गत्य-भावश्चेच्छन्ति केचित्तन्मिथ्याज्ञानवशादुत्पन्तां प्रत्यग्गमनप्रतीतिमङ्गीकृत्य भूमे: प्राग्गतिर-भिषीयते। परमार्थतस्तु स्थिरैव भूमि:—कहा है। अर्थात् कोई-कोई पृथिवी के पूर्वाभिमुख चलन और नक्षत्रों के गत्यभाव (अर्थात् नक्षत्रों की गति नहीं है) कहते हैं वह मिथ्या अज्ञानवश पश्चिमाभिमुख चलन की प्रतीति स्वीकार कर पृथिवी की पूर्वाभिमुख गति को कहते हैं। वस्तुतः पृथिवी स्थिर ही है।

उदयास्तमयनिमित्तं नित्यं प्रवहेगा वायुना क्षिप्तः । लङ्कासमपश्चिमगो भपञ्जरः स ग्रहो भ्रमति ॥

इससे स्वयं भ्रार्यभटाचार्यं भी भू भ्रमण को अस्वीकार करते हैं। श्रार्यभटाचार्यं के मन में यह निश्चय नहीं था कि पृथिवी चलती है या नहीं! ऐसा उनके लेख से प्रतीत होता है। श्रस्तु।।

'ब्रह्माह्वय श्रीधरपद्मनाभवीजानि यस्मादित विस्तृतानि' श्रपने बीजगिएत में भास्क प्राचार्य की इस उक्ति से मालूम होता है, कि ब्रह्मगुप्त का बहुत बड़ा बीजगिएत का ग्रन्थ था, परन्तु यह ग्रन्थ श्राज प्राप्य नहीं है।

ब्रह्मगुप्त हीं श्रीरों की अपेक्षा श्रीपित का श्रेष्ठतर श्रादशं है। ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त श्रीर सिद्धान्तशेखर की पर्यालोचना से ज्ञात होता है। कि ब्रह्मगुप्त श्रीपित द्वारा द्वारा रचित सार्थक श्रायांश्रों (इस नाम का श्लोक) का ही ब्रह्मगुप्त का श्रीपित ने बड़े-बड़े छन्दों में श्रनुवाद किया है। वस्तुत: ब्रह्म-श्रनुकरण गुप्तोक्त ग्रहगणित को ही सत्य परन्तु दुरूह समक्त कर श्रीपित ने उसे श्रपनी सुन्दर रचना द्वारा सुगमतर ग्रन्थान्तर (सिद्धान्त-

शेखर) के रूप में हमारे सन्मुख रखा। इसमें किसी को कोई आपित नहीं है। ग्रन्थ रचना के विषय में लल्लाचार्य ही श्रीपित के विशेष रूप से श्रीष्ठ श्रादर्श है। जो विषय ब्रह्मगुप्त ने नहीं कहा है वह लल्लाचार्य ने कह दिया है। उन सभी विषयों को उसी प्रकार श्लोका- न्तरों से श्रीपित ने कह दिया है। सारांश यह है कि श्रीपित ने दोनों (ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त श्रीर शिष्यधीवृद्धिद) ग्रन्थों का परिशीलन करने के पश्चात् ही सिद्धान्तशेखर की रचना की।

ब्रह्मगुप्त ने एक बहुत विलक्षरा विषय को श्रपनी रचना में स्थान दिया है। यह है 'नतकर्म'। मन्दफल शीझफल भुजान्तरादि संस्कार करने से जो स्पष्टग्रह द्याते हैं वे स्वगोलीय (ग्रहगोलीय) स्पष्ट ग्रह होते हैं। उन स्वगोलीय स्पष्ट

ब्रह्मगुप्त का प्रहों को हम लोग जहां देखते हैं वे हम लोगों के लिए स्पष्ट प्रह 'नतकर्म' होते हैं। स्वगोलीय स्पष्टग्रह में जितना संस्कार करने से हम लोगों के स्पष्टग्रह होते हैं उसी संस्कार का नाम 'नतकर्म' है।

ब्रह्मगुप्त से पूर्व किसी भी श्रन्य प्राचीनचार्य ने कुछ भी नहीं लिखा। नतकर्म साधन की बात तो दूर रही, उसके नाम तक का भी किसी ने उल्लेख नहीं किया। भास्कराचार्य ने सिद्धान्तिशिरोमिण (गिणताध्याय) के स्पष्टाधिकार में इस नतकर्म के साधन का प्रकार लिखा है। 'मुहुः स्फुटाऽतो ग्रहणे रवीन्द्योस्तिथिस्तिव जिष्णुसुतो जगाद' भास्कर की इस उक्ति से स्पष्ट ज्ञात होता है—िक इस 'नतकर्म' के ग्राविष्कर्त्ता ब्रह्मगुप्त ही हैं। सिद्धान्तिशिरोमिण (गिणताध्याय) के स्पष्टाधिकार में भास्कराचार्य ने 'भोग्यखण्डस्पष्टीकरण' में जो लिखा है उसका मूल भी ब्रह्मगुप्तकृत ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त के ध्यान ग्रहोपदेशाध्याय में ही है। श्रीर ग्राचार्यों ने इस विषय में कुछ नहीं लिखा है। सिद्धान्त तत्व विवेक में कमलाकर ने भास्करोक्त भोग्यखण्ड स्पष्टीकरण प्रकार का खण्डन किया है। वस्तुतः यह खण्डन कमलाकर का द्राग्रह ही है। ग्रतः यह खण्डन ठीक नहीं है।

ब्राह्मस्फूट सिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार में दिक्साधन में—

पूर्वापरयोविन्दू तुल्यच्छायाग्रयोदिगपराद्यः । पूर्वान्यः क्रान्तिवशात् तन्मध्याच्छङ्कुतलमितरे ।।

यहाँ क्रान्तिवश से दिक्साधन में कैसे भेद उत्पन्न होता है इसके लिए चतुर्वेदाचार्य ने कर्णे वृत्ताग्रान्तर का जो साधन किया है उसी को 'छाया निर्गमन प्रवेश समयाकं क्रान्ति-जीवान्तरं' आदि द्वारा श्रीपित ने कहा है। उसके पश्चात् 'तत्कालापमजीवयोस्तु विवरात्' इत्यादि से सिद्धान्तिशरोमिण में भास्काचार्य ने कहा है। सूर्यसिद्धान्त आदि प्राचीन ग्रन्थों में इस विषय का उल्लेख नहीं है।

'मन्दफलानयन' के लिए मन्दकर्णानुपात ही आवश्यक साधन है। यद्यपि इस विषय में भास्कराचार्य ने अपना कुछ भी मत व्यक्त नहीं किया है, तथापि चन्द्रग्रहणाधिकार में स्फुट रिव चन्द्रकर्णसाधन में 'मन्दश्रु तिर्दाक् श्रु तिवत्त्रसाध्या' इत्यादि से ब्रह्मगुष्त ही के मत को स्वीकार किया है। यह भी ब्रह्मगुष्त की उक्ति की ही विलक्षणता है। लल्लाचार्यं ने वलन श्रौर दृक्कमं के श्रानयन को उत्क्रमज्या द्वारा किया है। श्रिह्मगुप्त की उक्ति में चतुर्वेदाचार्यं की 'श्रित्रज्याशब्देनोत्क्रमज्या ग्राह्मा' ध्याख्या को लक्ष्य कर भास्कराचार्यं ने 'ब्रह्मगुप्तकृतिरत्र सुन्दरी साउन्यथा तदनुर्गैविचार्यते' कहा है। त्राह्मस्फुट सिद्धान्त के बहुत से स्थलों में वर्णान की स्थूलता श्रवश्य है, तथापि इसमें नाना प्रकार के विषयों का श्रपूर्व समावेश है। श्रतएव 'ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त' सर्वश्रेष्ठ सिद्धान्त ग्रन्थ है, इस कथन में किसी प्रकार की विप्रतिपत्ति (विरोध) प्रतीत नहीं होती है। इस ग्रन्थ में 'छन्दिख्युत्तराध्याय' नाम का एक श्रध्याय है। इसके श्रन्तर्गंत श्लोकों की उपपत्ति तो दूर की बात है, श्राज तक किसी विद्वान् ने इनकी व्याख्या तक नहीं की।

प्रश्नाच्याय का जैसा क्रम इस ग्रन्थ में है वैसा अन्य ग्रन्थों में नहीं है। इसमें मध्यगति आदि (मध्यगत्युत्तराध्याय-स्पष्टगत्युत्तराध्याय-त्रिप्रश्नाध्याय-ग्रह्णाध्याय तथा श्रुङ्गोन्तत्युत्तराध्याय) पांच अध्यायों में पृथक्-पृथक् उत्तर सहित प्रश्नों
प्रश्नाध्याय का विवेचन किया गया है। इसके अभ्यास से छात्रवृन्द सिद्धान्त
विषय में निपुण्ता प्राप्त कर सकते हैं। सिद्धान्त शिरोमिण् की
भूमिका में 'जीवा साधनं विनेव यद भुजज्यानयनं कृतवान् श्रीपितस्तत्त्वपूर्वमेव स्यात् यथा
सत्प्रकारो विदां विनोदाय प्रदश्यंते—

दोः कोटि भागरिहताभिहृताः खनागचन्द्रास्तदीयचरगोन शरार्कदिग्भिः । ते व्यासखण्डगुणिता विहृताः फलं तु ज्याभिविनापि भवतो भुजकोटिजीवे ॥ इति केनापि लिखितमस्ति तन्नैव युक्तियुक्तम् ॥

कहने का भाव यह है कि शिद्धान्त शिरोमिए। की भूमिका में जीवासाधन विना ही श्रीपित ने जो भुजज्यानयन किया है वह अपूर्व ही है, उनके प्रकार को पंडितों के बिनोद के लिए दर्शात हैं 'दो: कोटि भागरहिताः' इत्यादि ही उनका सिद्धान्त शिरोमिए। प्रकार है। भूसिका लेखक का यह उक्त लेख ठीक नहीं है, तथा सिद्धान्तशेखर क्योंकि ज्याविना भुजज्या और भुजकोटिज्या का आनयन और में सादृश्य ज्या द्वारा चापानयन सर्वप्रथम ब्रह्मगुप्त ही ने किया है। ब्राह्मस्ट्रट सिद्धान्त में कथित प्रकार ग्रधोलिखित है—

भुजकोटच शोनगुणा भाषाँशास्तच्वतुर्थभागोनैः।
पञ्चद्वीन्दुखचन्द्रै विभाजिता व्यासदलगुणिता।।
तज्ज्ये परमफलज्या सङ्गुणिता तत्फले विना ज्याभिः।
इष्टोच्चनीचवृत्तव्यासार्धं परमफलजीवा।।

#### ह्ष्टज्या से चापानयन प्रकार-

इष्टज्या संगुणिताः पञ्चकयमलैक्श्न्यचन्द्रमसः । इष्टज्या पादयुतव्यासार्धविभाजिता लब्धम् ॥ नवतिकृतेः प्रोह्य पदं नवतेः संशोध्य शेषं भागकलाः । एवं घनुरिष्टाया भवति ज्याया विना ज्याभिः ॥

बहुत पहले से ज्याविना भुजज्या ग्रीर भुजकोटिज्या का ग्रानयन 'दोः कोटिभाग-रहिताभिहताः' इत्यादि प्रकार से श्रीपित द्वारा कथित है, यह बात ज्योतिषियों में प्रसिद्ध है। इसी का अवलम्बन करके 'ग्रहलाघव' नामक ग्रपने करणाग्रन्थ में विस्तार से लिखा है। परन्तु वस्तुतः यह प्रकार ब्रह्मगुप्त ही का है। उनके उपगुँक्त क्लोकों से यह बात सर्वया स्पष्ट हो गई है। ग्रब यह सन्देह का निषय नहीं रहा। वटेक्वर सिद्धान्त में वटेक्वराचार्य ने भी ब्रह्मगुप्तोक्त इसी प्रकार को क्लोकान्तरों में लिख दिया है। सिद्धान्तकोखर में सर्वत्र श्रीपित का श्रपना निजी प्रकार थोड़ा ही है, उन्होंने भी ब्रह्मगुप्तोक्त प्रकार को ही क्लोकान्तरों में विणित किया है। उदाहरण के लिए देखिये सिद्धान्तकोखर के सूर्यग्रहणा-धिकार में—

तिथ्यन्तात् स्थितिखण्डहीनसहितात् प्राग्वत्ततो लम्बनं ।
कुर्यात् प्रग्रहमोक्षयोः स्थितिदलं युक्तं विधायासकृत् ।।
तन्मध्यग्रहणोत्थलम्बनभुवा विक्लेषणानेहसा ।
मर्दाधौनयुतात्तिथेरपि तथा संमीलनोन्मीलने ।।
म्रिधकमृणयोराद्यं मध्यात्तथाऽन्त्यिमहाल्पकं ।
भवति धनयोक्चाद्यं हीनं यदाऽधिकमन्तिमम् ।।
नमनविवरेणैवं कुर्याद्विहीनमतोऽन्यथा ।
स्थितिदलमृणस्वस्थे भेदे तदैक्ययुतं पुनः ।।

यह श्रीपत्युक्त प्रकार ब्रह्मगुप्त के ग्रघोलिखित प्रकार के सर्वथा ग्रमुरूप ही है-

प्राग्वल्लम्बनमसकृत् तिथ्यन्तात् स्थितिदलेन हीनयुतात्।
ग्रिषिकोनं तन्मध्यादृणयोक्ष्नाधिकं धनयोः।।
यद्यधिकं स्थित्यधं तदाऽन्तरेणान्यथोनमृणमेकम्।
अन्यद्धनं तदैक्येनाधिकमेवं विमर्दार्धे।

इसी प्रकार प्रकारान्तर से कहा गया श्रीपत्युक्त स्फुटस्थिति दल साधन प्रकार-

स्थित्वर्धोनयुतात् परिस्फुटितथेः स्याल्लम्बनं पूर्ववत् । तन्मध्यग्रहवे च मध्यमितथो ततस्तु तिथौ ॥ स्थित्यर्धेन परिस्फुटेषु जम्नितेनोनाधिकाद्वाऽसकृत् । तित्तध्यन्तरनाडिकाः स्थितिदलेस्तः स्पर्शमुक्त्योः स्फुटे । इस श्लोक का द्वितीयचरण गुद्ध नहीं है। यह प्रकार ब्रह्मगुप्त के अधीलिखित प्रकार के अनुरूप ही है।

> स्फुटतिथ्यन्ताल्लम्बनमसकृत् स्थित्यर्घहीनयुक्ताद्वा । तत्स्फुटविक्षेपकृतस्थित्यर्घोनयुतिथ्यन्तात् । तत्स्पष्टितिथिछेदान्तरे स्फुटे दिनदले विहीनयुतात् । स्वविमर्दार्घेनासकृदेवं स्पष्टे विमर्दार्घे ।।

सिद्धान्तशिरोमिण में भी भास्कराचार्य ने श्रघीलिखित शब्दों में -

तिथ्यन्ताद् गिएतागतात् स्थितिदलेनोनाधिकाल्लम्बनं तत्कालोत्थनतीषु संस्कृतिभवस्थित्यर्थहीनाधिके । दर्शान्ते गिएतागते धनमृणं वा तद्विधायासक्चज्ज्ञेयौ प्रग्रहमोक्षसंज्ञसमयावेवं क्रमात् प्रस्फुटौ ॥

ब्रह्मगुप्तोक्त प्रकार का ही वर्णन किया है। इसी प्रकार सिद्धान्तशेखरे के सूर्यग्रहणा-ध्याय के उपसंहार में —

> स्फुटं भवति पञ्चजीवया लम्बनं न हि यतस्ततः कृतम्। युक्तियुक्तमिति जिष्णुसूनुना तन्मयाऽपि कथितं परिस्फुटम्।।

कथित ग्राशय ब्रह्मगुप्त की श्रधोलिखित उक्ति के सदृश ही है—
हग्गिएतिक्यं न भवित यस्मात् पञ्चज्यया रिवग्रहिंगो।
तस्माद्यथा तदैक्यं तथा प्रवक्ष्यामि तिथ्यन्ते।।

मध्यगत्यध्याय से ग्रन्थसमाप्ति पर्यन्त साहत्रय की यही स्थिति है। यह बात दोनों ग्रन्थों (ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त भौर सिद्धान्तशेखर) के भवलोकन से स्पष्ट हो जाती है।

केवल श्रीपित ने ही अपने पूर्वंवर्ती आचार्यों के ग्रन्थों से उनके कथित विषयों को इलोकान्तरों द्वारा अपने ग्रन्थ में अपनी उक्ति के रूप में लिखा है, सो नहीं है अपितु उनके पूर्वंवर्ती आचार्यों की भी यही रीति रही है। श्रीपित के परवर्ती भास्कराचार्य आदि विद्वानों ने भी उसी रीति को अपनाया है। उदाहरणार्थ भास्कराचार्य द्वारा-गिणताच्याय के मध्यमाधिकार में सिद्धान्त लक्षण — वेद के अंग ज्योति:शास्त्र का निरूपण — वेदांगों में ज्योति:शास्त्र की प्रधानता — वेद वेदांग पढ़ने का दिजों (ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य) का ही अधिकार — श्रूदादिकों का नहीं — भचक्रचलन — कालप्रवृत्ति — कालमानों की परिभाषाएं — ग्रहों का भगणापाठ — ग्रुगों तथा मन्वादि के नाम — तथा ब्रह्मा के गत वर्षादि के प्रयोजनाभाव इत्यादि मध्यमाधिकारोक्त सब विषयों का निरूपण श्रीपित कृत साधनाध्यायोक्त श्लोकों का श्लोकांतर मात्र है। ज्यौतिष शास्त्र के पाठकों को दोनों ग्रन्थों का अवलोकन करना

चाहिए जिससे उनके साहश्य की जानकारी हो सके। प्राचीनोक्त विषयों का आश्रय लेकर अनेक विशिष्ट विषयों को कहने के लिए श्रीपित ने प्रथम साधनाध्याय, तथा ग्रहभगए।। ध्याय की रचना की। उसके पश्चात् मध्यमाध्याय में-सात प्रकार से ग्रहगंए। नयन-वार प्रवृत्ति के विषय में विभिन्न भ्राचार्यों के मत का प्रतिपादन-तद्गत दोष निरूपए। करके अपने मतानुसार वार प्रवृत्ति का प्रतिपादन-मध्यम ग्रह साधन के लिए नाना प्रकार का नूतन प्रकारान्तर वर्णान-तथा रिव भ्रादि सब ग्रहों के राश्यादिमन्दोच्च का प्रतिपादन-भ्रादि नाना प्रकार के विषयों का दिग्दर्शन श्रीपित के सिद्धान्तशेखर में मिलता है। ब्राह्म-स्फुट सिद्धान्त में अहर्गणानयन बहुत प्रकार से किया गया है, उन प्रकारों का अनुकरण श्रीपित ने किया है। आचार्य ने लध्वहर्गणानयन भी किया है परन्तु श्रीपित ने उसकी चर्चा नहीं की। ग्रहर्गण से भ्रभोष्ट वार ज्ञान के लिए ग्रहर्गण में एक जोड़ना चाहिए—यह बात बह्मगुप्त ने लिखी हैं। उसके पश्चात् सिद्धान्तशेखर में भी श्रीपित ने उनका अनुकरण किया है।

सिद्धान्तशिरोमिए। में भास्कराचार्य ने श्रहगैए। से अभीष्टवार ज्ञानार्थ अहर्गेए। में सैक निरेक करना लिखा है यथा —

### श्रभीष्टवारार्थमहर्गेण् इचेत्सैको निरेकस्थितयोऽपि तद्वत्।

ब्रह्मगुप्त ने अहगंण में निरेक करण की चर्चा क्यों नहीं की, नहीं कहा जा सकता।
विदेश्वर सिद्धान्त में भी नाना प्रकार से अहगंणानयन और लघ्वहगंणानयन किया गया
है। ब्रह्मगुप्त द्वारा अनेक प्रकार से किये गये अहगंणानयन को देख कर विदेश्वराचार्य ने भी उन्हीं के मार्ग का अवलम्बन किया है। अर्वाचीन आचार्यों (मास्कराचार्य-कमलाकर आदि) के अन्यों में अनेक प्रकार से साधित अहगंणानयन देखने में नहीं आता है। यद्यपि लघ्वहगंणानयन में स्थूलता है, तथापि एक अपूर्व वस्तु का प्रतिगदन किया गया है। वटे-श्वराचार्यकृत लघ्वहगंणानयन भी स्थूलक्ष्म में कहा गया है। इन आचार्यों के अतिरिक्त और किसी आचार्य के अन्य में लघ्वहगंणानयन के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं लिखा गया है। सिद्धान्त तत्व विवेक में कमलाकर ने भास्करोक्त लघ्वहगंणानयन में वार गणाना का सण्डन किया है।

स्फुटगत्यघ्याय में आयंभट-ब्रह्मगुष्त-लल्ल आदि आचार्यों ने वृत्त परिधि के चतु-र्था श (नवत्यंश) में दो सौ पच्चीस कलावृद्धि से चौबीस क्रमज्या और उत्क्रमज्यों का साधन किया है। आयंभट और लल्ल की त्रिज्या = ३४३८, ब्रह्मगुष्त मत स्फुटगत्यघ्याय में त्रिज्या ३२७०, इन सबों से भिन्न श्रीपति की त्रिज्या = ३४१४, ब्रह्मगुष्तोक्त भूपरिधि = ४०००। 'पादोन गोऽक्षघृतिभूमितयोजनानि' इन भास्करोक्ति से प्रहों की योजनात्मक गति = ११८५८।४५, गतियोजनित्यंशः कुदलस्य यतो मितिः' से भूव्यास = १५६१, भू पिरिव = ४६६७। यही बात 'प्रोक्तो योजनसंख्यया कुपिरिधः सप्ताङ्गनन्दाब्धयस्तद्ब्यासः कुभुजङ्गसायकभुवः' से भास्कराचार्यं ने कही है। भास्कराचार्यं ने बहुत से स्थलों में ब्रह्मगुप्त के मत का ही अनुसरण किया है। परन्तु ब्रह्मगुप्तोक्त त्रिज्या से भिन्न त्रिज्या स्वीकार करने में उनका क्या अभिप्राय है सो नहीं कह सकते हैं। ब्रह्मगुप्तोक्त भुजान्तर कमें के अनुसार ही सिद्धान्तशेषार और सिद्धान्त शिरोमिण में भी कहा गया है। इसके अतिरिक्त ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त के स्फुटगत्यध्याय में और भी अनेक विषय वर्णित हैं जो दर्शनीय और पढ़ने के योग्य हैं।

त्रिप्रश्नाधिकार में रिव के मध्याह्न कालिक नतांश जान कर, उसके आधार पर रिव के आनयन के लिए पहले क्रान्तिज्या का ज्ञान होता है। तव त्रिप्रश्नाधिकार अनुपात से रिव के मुजांश का ज्ञान होता है। मुजांश से राश्यादि रिव का ज्ञान पदाधीन है। किसी भी प्राचीनाचार्य ने पदज्ञान के लिए विधि नहीं लिखी है। यहाँ आचार्य ने—

> कान्तिर्व्यासार्थगुणा जिनभागज्याहृता धनुरजादौ, कर्न्यादौ चक्रार्धात्प्रोह्य तुलादौ स चक्रार्थम् ॥ चक्रार्धात् प्रोह्य मृगादौ स्फुटो सकृत् व्यस्तमृणं धनं मध्यम् ।

स्राकें उस्मात्' इत्यादि से रिव का स्रानयन किया है। लेकिन यह साधित रिव किस पद का है इसके ज्ञान के लिए कोई युक्ति नहीं लिखी है। सिद्धान्तशेखर में श्रीपित ने— 'श्रजतुलादिगतस्य निवस्वतो दिनदल प्रभयोर्यु तिर्रोधता। भवति वैषुती निजदेशजेति से पलभा के मान का पता लगाकर—

भ्राद्धे पदेऽपचियनी पलभाऽिल्पका स्यात्, छायािल्पका भवित वृद्धिमती द्वितीये। छायादिका भवित वृद्धिमती तृतीये, तुर्ये पुनः क्षयवती तदनिल्पका च। वृद्धि प्रयान्ती बदि दक्षिणाग्रच्छाया तथािप प्रथमं पदं स्यात्। हासं ब्रजन्तीमथ तां विलोक्य रवेविजानीहि पदं द्वितीयम्॥

सें गोल युक्ति सिद्ध पद का ज्ञान किया है यहाँ भास्कराचार्य ने---

कान्तिज्या त्रिज्याष्ट्नी जिनभागज्योद्घृता दोज्या । तद्भनुराद्ये चरऐ। वर्षस्यार्कः प्रजायतेऽन्येषु ।।

भार्घाच्च्युतः सभार्घो भगगात्पतितोऽब्द चरगानाम् । ऋतुचिह्नं र्ज्ञानं स्यादतु चिह्नान्यग्रतो वक्ष्ये ॥ से आचार्योक्तवत् ही कहा है। केवल 'ऋतुवर्णनम्' नामक एक अधिकार सिद्धान्त शिरोमिण के गोलाध्याय में लिखा है। भास्काराचार्य के पञ्चवर्ती और कमलाकर के पूर्व-वर्ती सब आचार्यों ने ऋतुवर्णन को ज्यौतिष सिद्धान्त का एक अङ्ग समभकर अपने अपने सिद्धान्तग्रन्थ में निश्चित रूप से 'ऋतुवर्णनाध्याय' नाम देकर लिखा हैं। सिद्धान्त नत्त्व विवेक में—'आद्ये पदेऽपचियनी पलभात्पिका स्यात्' इत्यादि श्रीपत्युक्त पदज्ञानबोधक क्लोक दय को लिख कर कमलाकर ने—

> ऋतुचिह्नं रिदं पूर्वेरुक्तं सर्वत्र तन्नहि । केवलं कुकविप्रीत्ये पदज्ञप्त्ये न तद्रवेः ॥

से भास्तरोक्त ऋतुवर्णन की निन्दा की है। वस्तुतः कमलाकर का कथन ठीक है। भिन्न भिन्न देशों में ऋतु भिन्न भिन्न होती है; इसलिए ऋतुचिह्न से पदज्ञान ठीक नहीं हो सकता है। परन्तु— ग्राह्ये पदेऽपचियनी पलभात्पिका स्यात्' इत्यादि पदज्ञानबोधक पद्य ठीक सिद्धान्तशेखर में हैं। इसको कमला कर ने ग्रपने नाम से लिखा है। जब तक सिद्धान्त-शेखर उपलब्ध नहीं था, तब तक लोग यही समभते थे कि यह पदज्ञान प्रकार कमलाक-रोक्त ही है। परन्तु श्रव वह बात नहीं रही। वस्तुतः यह प्रकार श्रीपत्युक्त ही है। कमला-कर को ग्रपनी रचना में यह मानना चाहिए था कि यह प्रकार श्रीपति कथित है। वास्तिवक बात यह है कि प्राचीन ग्राचार्यों ने पदज्ञान के लिए कोई प्रकार नहीं लिखा है। इस स्थित में श्रीपति ही इस प्रकार को लिखने के कारण ज्योंतिषियों के प्रशंसापात्र हैं, यह बात श्रवश्य ही निःसन्दिग्ध है। ग्राश्चर्यं की बात तो यह है कि श्रीपतिकृत गोलयुक्ति-युक्त पद ज्ञान को छोड़कर मास्कराचार्यं ने जो काव्यमय ऋतुवर्णन किया है वह बिल्कुल ग्रसंगत है।

श्राचार्य ब्रह्मगुष्त ने चन्द्र ग्रह्णाध्याय में रिव, चन्द्र ग्रीरपृथिवी का योजनिवम्ब, रिव ग्रीर चन्द्र के योजनात्मक कर्ण का स्पष्टीकरण, भूभा बिम्बानयन, ग्रासमानाद्यानयन

तथा परिलेख प्रकार लिखा है। श्रीपति ग्रौर भास्कराचार्य

चन्द्रग्रह्णाध्याय ने भी कथनक्रम को लेकर विशेष रूप से वैसा ही श्रनुबाद किया है। ब्रह्मगुप्तकृत सम्पूर्ण सूर्यग्रह्णाध्याय को श्रीपति ने

प्राय: अपने क्लोकान्तरों द्वारा किया है, उदयास्तमयाध्याय में ग्राचार्य ने भ्रायन हक्कमनियन किया है, परन्तु वह ठीक नहीं है। श्रीपित ने भ्रायन हक्कमनियन करके---

खनभोधृतिभिः समाहतं प्रथमं हक्फलमायनाह्वयम् । द्युचराश्रितभोदयासुभिनिहृतं स्पष्टमिह प्रजायते ॥

से उनका स्पष्टीकरण किया हैं। इसको देख कर भास्कराचार्य ने "श्रायन वलनम-स्फुटेषुणा संगुणम्" इत्यादि से उसके श्रनुसार ही कहा है। चन्द्राध्याय में श्राचार्य ने श्रनेक विषयों का प्रतिपादन किया है। परन्तु श्रीपित ने केवल वराह ब्रह्मगुप्त तथा लल्लाचार्य के वहुत से ब्लोकों का श्रनुवादमात्र ही किया है। श्रपनी श्रोर से कोई विशेष बात नहीं लिखी। केवल चन्द्र के स्पष्ट चरानयन में तथा परिलेख सूत्र प्रमाणानयन में बहुत ही प्रकारान्तर से प्रतिपादन किया है। श्राचार्यं वराह ब्रह्मगुप्त ग्रीर लल्लाचार्यं ने ग्रहयुत्यघ्याय (ग्रहयुद्धाघ्याय ग्रहयोगाध्याय) में उदयान्तर कार्यं के विषय में कुछ भी नहीं कहा है। परन्तु—

अन्त्यभ्रमेगा गुिंगता रिवबाहुजीवाऽभीष्टभ्रमेगा विह्ता फलकार्मुकेगा। बाहोः कलासु रहिता रिहतास्ववशेषकं ते यातासवो युगयुजोः पदयोर्धनर्णम्।।

के द्वारा श्रीपत्युक्त हमाणितैक्यकारक कर्म ही को भास्कराचार्य ने 'उदयान्तर कर्म' नाम से कहा है। जब तक सिद्धान्तशेखर उपलब्ध नहीं था तब तक श्राधुनिक गणकों को यही विष्वास था कि यह उदयान्तरकर्म सर्वप्रथम भास्कराचार्य ने ही लिखा है। परन्तु इस उदयान्तर को हिष्ट में रख कर सर्व प्रथम श्रीपित ने ही अपने विचार व्यक्त किये थे। तथा—

त्रिभविरहितचन्द्रोच्चेन भास्वद् भुजज्या
गगननृपविनिघ्नी भत्रयज्याविभक्ता।
भवित चर फलाख्यं तत् पृथक्स्थं शरघ्नं
हृतमुडुपतिकर्गात्रिज्ययोरन्तरेगा।।१।।
परमफलमवाप्तं तद्धनर्गं पृथक्स्थे
तुहिनिकरग्रक्गों त्रिज्यकोनाधिकेऽथ।
स्फुटदिनकर हीनादिन्दुतो या भुजज्या
स्फुट परमफलघ्नी भाजिता त्रिज्ययाऽऽप्तम्।।२।।
शशिनि चरफलाख्यं सूर्यहीनेन्दुगोलात्
तहग्मुत धनं चेन्दूच्चहीनाकं गोलम्।
यदि भवित हि साम्यं व्यस्तमेतद्विधेयं
स्फुटगित्तद्दगैक्चं कत्तुं मिच्छद्भिरत्र।।३।।

इन तीनों श्लोकों के द्वारा श्रीपति ने हग्गिशितैक्य के लिए चन्द्र में संस्कार विशेष को कहा है। किसी भी प्राचीन ग्रन्थ में यह संस्कार नहीं लिखा है। यद्यपि —

इन्दूच्चोनार्ककोटिष्ना गत्यंशा विभवा विधोः।
गुगो व्यर्केन्दुदोः कोटघोरूप पञ्चाप्तयोः क्रमात्।।
फले शशाङ्कतद्गत्योलिप्ताद्ये स्वर्णयोर्वधे।
ऋगां चन्द्रे धनं भुक्तौ स्वर्णसाम्यवधेऽन्यथा।।

के द्वारा इसी प्रकार (श्रीपत्युक्त चन्द्रसंस्कार की भांति) के चन्द्रसंस्कार का उल्लेख 'लघुमानस' नामक करएा ग्रन्थ में मुञ्जालाचार्य ने किया है। परन्तु इन दोनों में साहश्या-भाव के कारएा, श्रीपति ने वेधद्वारा देख कर उस (लघुमानसोक्त) से भिन्न कहा है,

ऐसा ज्ञात होता है। भास्कराचार्य ने इस श्रीपत्युक्त संस्कार को बार-बार देख कर विचार करने से उपलब्ध ज्ञान के विस्तार पूर्वक प्रतिपादन के लिए सिद्धान्त शिरोमिए। ग्रन्थ की रचना की। इस रचना के एक वर्ष परचात् ५६ श्लोकों का 'बीजोपनय' नामक ग्रन्थ सिद्धान्त शिरोमिए। की भांति 'वासना भाष्य' सहित बनाया। जैसा कि निम्नोक्ति में सिद्ध है—

मयाथ बीजोपनये यदन्ते सूर्योक्तमाद्यं परमं रहस्यम् ।
प्रकाशये गोप्यमपीह देवं प्रराम्म बीजं जगतां हितार्थम् ॥१॥
यद्यपि पूर्वमपीदं संक्षेपादुक्तमागमोक्तिदिशा ।
नैतावतैव किश्चत् हक्करणेक्याय कल्पते गराकः ॥२॥
हक्करणेक्यिवहीनाः खेटाः स्थूला न कर्मगामहीः ।
श्रत इह तदर्हतायै तात्कालिकबीजविस्तरं वक्ष्ये ॥३॥
पाता रवेस्तामसकीलकाख्यास्तेषां समाकर्षगातः शशाङ्कः ।
तत्तुङ्गशक्तिश्च निजस्वभावं विहाय नित्यं विषमत्वमेति ॥४॥
चद्राच्च तद्योगवियोगतश्च साध्यं हि भाद्यं विषमं यतः स्यात् ।
तस्माद्विधोरत्र विशुद्धिशुद्धयौ विस्तायंते बीजफलिक्रयेयम् ॥५॥
एकेन पुंसा निखलग्रहागामन्तं प्रबोधो न हि शक्यतेऽतः ।
व्यासात्समासाच्च यथोपलब्धं प्रोक्तं मयेत्यादरग्रीय मेतत् ॥६॥

भग्रहयोगाध्याय ] भग्रहयोगाध्याय में—

कृत्वापि दृष्टिकमं श्रीषेणार्यंभटिवष्णुचन्द्रोक्तम् । प्रतिदिनमुदयेऽस्ते वा न भवति हग्गणितयोरैक्यम् ॥१॥ भमुनिमृगव्याधानां यतस्ततो दृष्टिकमं वक्ष्यामि । दृग्गणितसमं देयं शिष्याय चिरोषितायेदम् ॥२॥

ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त के उत्तरार्घ में —परिकर्म विशति (सङ्कलित, व्यवकालत, गुगान, भागहार, वर्ग, वर्गमूल, पञ्चजाति, त्रैराशिक, व्यस्तत्रैराशिक, सप्तराशिक, नवराशिक,

ब्राह्मस्फुटसिद्धांत का उत्तरार्घ एकादशराशिक, भाण्डप्रतिभाण्ड (ग्रदला बदली)—ग्रादि विषयों का उल्लेख हैं। प्रत्येक स्थान में चतुर्वेदचार्योक्त उदाहरए। हैं। सिद्धान्त शेखर में भी परिकर्म विशति (ग्रूभिन्नाक्ट्रों के छ: गुएान, भजन, वर्ग, वर्गमूल, घन,

तथा घनमूल; भिन्नाङ्कों के योग, अन्तर, गुण्न, भजन, वर्ग, वर्गमूल छः; भाग, प्रभाग, भागानुबंध, भागापवाह जातिचतुष्टय; विलोमकर्म, त्रैराशिक, व्यस्तत्रैराशिक और

पञ्चराशिक) । ब्रह्मगुप्त श्रीर श्रीपित के बीस कर्मों के विषय वर्णन में बहुत भेद है। उन बीस परिकर्मों के नामों में भी बहुधा भिन्नता है। भास्कर द्वारा प्रकीर्ण विषय (योगान्तर से लेकर भाण्ड प्रतिभाण्ड पर्यन्त) जिस स्पष्टता के साथ प्रतिपादित हैं। वैसी स्पष्टता ब्रह्मगुप्त श्रीर श्रीपित द्वारा प्रतिपादित परिकर्म विश्वित में नहीं पाई जाती। जहां तक विषयों का सम्बन्ध है वहां तक तीनों श्राचार्य — ब्रह्मगुप्त, श्रीपित तथा भास्कर समान हैं। केवल विषयों के प्रतिपादन की रीति में भिन्नता है।

इसके ग्रतिरिक्त मिश्रक व्यवहार, श्रेढी व्यवहार, क्षेत्र व्यवहार, खात व्यवहार, वितिव्यवहार, क्राकिचक व्यवहार राशिव्यवहार, श्रीर छाया व्यवहार ये भ्राठ व्यवहार बाह्मस्फुट सिद्धान्त, सिद्धान्त शेखर तथा भास्करीय लीलावती में विश्वित हैं। इन श्राठों व्यवहारों के प्रतिपादन में श्रसादृश्य पाया जाता है। इन व्यवहारों में से ब्रह्मगुष्त ग्रीर श्रीपति की ग्रपेक्षा भास्कर ने ग्रिषक विषयों का प्रतिपादन किया है, श्रीर श्रपेक्षा कृत प्रिषक स्पष्टता के साथ। यह बात उक्त तीनों को देखने से स्फुट हो जाती है।

इसके परचात् प्रश्नाध्याय में मध्यमगत्यूत्तराध्याय, स्पष्टगत्यूत्तराध्याय, त्रिप्रश्नो-त्तराच्याय, ग्रहणोत्तराच्याय, श्रुंगोन्नत्यूत्तराच्याय-इन पांचों उत्तराच्यायों में सोत्तर प्रश्न समृह का समावेश है। प्रश्न सभी विलक्षण हैं। इनके ग्रम्यास से पाठक लोग ज्यौतिष के सिद्धान्त ग्रन्थों में ग्रतिशय निपूण हो सकते हैं। ब्राह्मस्प्रट सिद्धान्त के प्रत्येक ग्रध्याय में प्रदर्शित इस प्रकार के सोत्तर प्रश्नक्रम का लेखें कुछ कुछ सिद्धान्त शेखर और बटेश्वर सिद्धान्त में भी दृष्टिगोचर होता है। सिद्धान्त शिरोमिए ब्रादि ग्रन्थों में यह क्रम नहीं है। ब्रह्मगुप्तोक्त कूट्टाकाराष्याय में बहुत से ऐसे प्रश्न हैं जिनके उत्तरों से चित्त प्रसन्न हो जाता हैं। श्रीपति ग्रौर भास्कर की ग्रपेक्षा ब्रह्मगुप्त ने कूट्टाच्याय में ग्रधिक विषयों का समावेश किया है। किन्तुं विषय के प्रतिपादन की स्फुटता भास्करोक्ति में ही है। धन ऋ्गा म्रादि के सङ्कलित व्यवकलितादि विषय भास्करोक्ति के सदृश ही ब्राह्मस्पूट सिद्धान्त श्रीर सिद्धान्त शेखर में भी विद्यमान हैं। उसके पश्चात एक समीकरण बीज है। यह भास्करोक्त एक वर्णं समीकरए। बीज की अपेक्षा छोटा है। तत्पश्चात् ब्रह्मगुप्तोक्त अनेक वर्ण समीकरण बीज है। यह बहुत ही विलक्षण है। इसमें विषय भी बहुत अधिक है। भास्करोक्त अनेकवर्ण समीकरण बीज में भी बहत विषय हैं। परन्त सिद्धान्तशेखर में बहत कम विषयों का उल्लेख है। ब्रह्मगृप्त की ग्रपेक्षा भास्कर ने भावितबीज का ग्रपने ग्रन्थ में ग्रधिक समावेश किया है परन्तु श्रीपति ने कुछ कम । तो भी इन सबके विषयों में कोई विशेष अन्तर नहीं है, केवल भास्करोक्ति में अधिक वैशद्ध है।

इसके परचात् वर्ग प्रकृति का वर्णन है, यहाँ ब्रह्मगुप्त ते किनष्ठ, ज्येष्ठ भीर क्षेप की योग भावना भीर ग्रन्तरभावना का प्रतिपादन किया है। सिद्धान्तशेखर में श्रीपित ने तथा भास्कराचार्य ने भपने बीजगिए।त में यहीं से लैकर केवल श्लोकान्तरों में रख दिया है। गिएत किया एक ही हैं। श्रीपित ने भावना का स्वरूप नहीं कहा है। वर्गात्मक प्रकृति में किनब्द श्रीर ज्येब्ट के ग्रानयन को ब्रह्मगुप्त ही से लेकर भास्कराचार्य ने ग्रपने बीज-गिएत में 'इष्टभक्तो द्विधाक्षेप इष्टोनाढचो दलीकृतः' ग्रादि क्लोकों द्वारा कहा है। परन्तु श्रीपित ने इसके विषय में कुछ भी नहीं लिखा है। ब्रह्मगुप्तोक्त 'शङ्कुच्छायादि ज्ञानाध्याय' श्रपूर्व है। इस ग्रध्याय में जो विषय प्रतिपादित है वह सिद्धान्त शेवर श्रीर भास्करीय सिद्धान्तशिरोमिए में नहीं है। वस्तुतः यह श्रध्याय दर्शनीय श्रीर पठनीय है। छन्दिश्चन्यु-त्तराध्याय ऐसा विचित्र है; कि इसमें लिखित क्लोकों की उपपित्त की बात तो श्रवण रही उनकी तो साधारण व्याख्या भी श्रभी तक किसी ने नहीं की। गोलाध्याय में भूगोल संस्थान, देवासुरसंथान, चक्रभ्रमणव्यवस्था, देवादिकों की रविभ्रमण् स्थिति, देशों श्रीर दैत्यों का राशि संस्थान, देवादिकों का रवि दर्शन काल, भूगोल में लङ्का श्रीर ग्रयन्ती का स्थान, श्रादि श्रादि विषय वर्णित हैं।

भूपरिधि तुर्यभागे लङ्का भूमस्तकात् क्षितितलाच्च । लङ्कोत्तरतोऽवन्ती भूपरिधेः पञ्चदश भागे ॥

के द्वारा लङ्का से भूपरिधि के पञ्चदशांश पर ग्रवन्ती की स्थिति को ग्राचार्य ने बतलाया हैं। परन्तु ग्राचार्य के ग्रनुयायी भास्कराचार्य ने सिद्धान्त शिरोमिश्य के गोलाध्याय में 'निरक्षदेशात् क्षितिषोडशांशे भवेदवंती गृश्यातेन यस्मात्' कहा है। चतुर्वेदाचार्य सम्मत् पाठ 'पञ्चदशभागे' ही है। सिद्धान्त शेखर में 'सन्यंशरामाग्निगुर्शोरवन्त्याः स्याद्योजनैर्द-क्षिरातो हि लङ्का' कहा गया है। श्रीपित के मत से उज्जयिनी (ग्रवन्ती) का ग्रक्षांश = २४° तथा भूपरिधिमान = ५००० है, ग्रतः भूपरिधि = ३३३ है एतत्तृत्य लङ्का ग्रौर ग्रवन्ती के मध्य में योजनात्मक दूरी हुई। यहां 'भूपरिधेरष्टच शेऽवन्ती स्यात् सौम्यदिग्भागे' लल्ल की इस उक्ति से तथा भास्कर की पूर्वोक्ति से उज्जयिनी का ग्रक्षांश = २२°।३०' है, वराहमिहिराचार्य के मत से ग्रक्षांश परमक्रान्त्यंश के बराबर = २४ है। पञ्च-सिद्धान्तिका में—

प्रोद्यद्रविरमराणां भ्रमत्यजादां कुवृत्तगः सव्यम् । उपरिष्टाल्लङ्कायां प्रतिलोमश्चामरारीणाम् ॥ मिथुनान्ते च कुवृत्तादंश चतुर्विशति विहायोच्चैः । भ्रमति हि रविरमराणां समोपरिष्टात्तदाऽवन्त्याम् ॥

श्रीपित के मत से अवन्ती का अक्षांश = २४, इसके आधार पर योजमान = ३३३ है योजना होता है। आचार्योक्त के अनुसार ही श्रीपित के मत से भी लङ्का, उज्जियनी के दक्षिण में परिधि के पञ्चदशांश पर स्थित है। लल्लाचार्य और भास्कराचार्य के मत से लङ्का, अवन्ती के दक्षिण में भूपरिधि के षोडशांश पर स्थित सिद्ध होती है। इस

भ्रष्याय के बहुत से विषय सूर्यासिद्धान्त के गोलाघ्याय में वर्गित विषयों के सहश ही हैं। बीच बीच में दोनों ब्राह्मस्फुटीय गोल भ्रष्याय तथा सूर्य सिद्धान्तीय भूगोलाघ्याय में कुछ विषायान्तर भी है। सिद्धान्त शेखर के गोलाघ्याम में श्रीपित ने भी कितने ही विषय भ्राचार्योक्त विषयों के सहश ही कहे हैं। 'यन्मूल तद्व्यासो मण्डलिप्ताकृतेर्दशहुतायाः, द्वारा श्रीपित ने भी 'व्यासः स्यात् परिधेर्वर्गाद् दिग्भक्ताच्च पदंत्वहं प्रकार के भ्रनुकूल ३४१५ त्रिज्या स्वीकार की है। भास्कराचार्य ने 'व्यासे भनन्दाग्निहते विभक्ते खवाग्य-सूर्येः" के द्वारा परिघ्यानयन का विस्तार से प्रतिपादन किया है। इसके विलोग द्वारा परिध्यानयन का विस्तार से प्रतिपादन किया है। इसके विलोग द्वारा परिधि से व्यासानयन होता है। परन्तु व्यास से परिघ्यानयन या परिधि से व्यासानयन किसी का भी ठीक नहीं है। क्योंकि व्यास भीर परिधि का सम्बन्ध स्थिर नहीं है। ज्या प्रकरण में जैसे चापार्थाशज्या भादि का भानयन भ्राचार्य ने किया है वैसे ही सिद्धान्त शेखर में भ्रीर सिद्धान्त शिरोमिण के गोलाघ्याय में किया गया है। ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त में चापार्थाशज्यानयनप्रकार—

तुल्यक्रमोत्क्रमज्यासमखण्डक वर्ग युति चतुर्भागम् । प्रोह्यानष्टं व्यासार्धवर्गतस्तत्पदे प्रथमम् ॥ तद्दलखण्डानि तदूनजिनसमानि द्वितीयमुत्पत्तौ । कृतयमलैक दिगीशेषु सप्तरसगुरानवादीनाम् ॥

#### सिद्धान्तशेखर में —

उत्क्रमक्रमसमानसमज्या खण्डवर्गयुतिवेदविभागम् । व्यासखण्डकृतितस्तमनष्टं शोधयेदथ पदे भवतो ये ॥ श्राद्यमूलमिह तद्दलसंख्यं तद्विहीन जिनसम्मितमन्यत् । ज्यार्धमेवमपराग्णि समेभ्यो ज्यादलानि न भवन्त्यसमेम्यः ॥

#### सिद्धान्तशिरोमिण में---

क्रमोत्क्रमज्या कृतियोगम्लाइलं तदर्घा शकशिञ्जिनी स्यात्।

इस प्रकार प्रकारान्तर से भी चापार्था ज्यानयन प्रकार तीनों ग्रन्थों (ब्राह्मस्फुट-त्सिद्धान्त-सिद्धान्तशेखर-सिद्धान्तशिरोमिणि) में समान ही है। भास्करीय ग्रन्त्यज्योत्पत्ति में भ्रनेक विषयों का विशिष्ट प्रतिपादन देखने में श्राता है।

मन्द फल साधन में भी कर्णानुपात से जी फल होता है वही स्फुटगतिवासना समीचीन होता है, तब कर्णानुपात न करने का कारण क्या है ? यह बात अधोलिखित उक्ति से प्रकट होती है— त्रिज्याभक्तः परिधिः कर्णगुणो बाहुकोटिगुणकारः । असकुन्मान्दे तत्फलमाद्यसमं नात्र कर्णोऽस्मात् ॥

सिद्धान्त शेखर में---

त्रिज्याहृतः श्रुतिगुगाः परिधियंतो दोः
कोटघोगुं गोमृदुफलानयनेऽसकृत्स्यात् ।
स्यान्मन्दमाद्यसममेव फलं ततश्च
कर्गाः कृतो न मृदुकर्मगि तन्त्रकारैः ॥

यह श्रीपत्युक्त श्लोक ग्राचार्योक्त श्लोक का ही ग्रनुवाद है। भास्कराचार्य ने भी-

स्वल्पान्तरत्वान्मृदुकर्मंगीह कर्गाः कृतो नेति वदन्ति केचित् । त्रिज्योद्धृतः कर्गंगुणः कृतेऽपि कर्गे स्फुटः स्यात्परिधियंतोऽत्र ॥ तेनाद्यतुल्यं फलमेति तस्मात् कर्णः कृतो नेति च केचिदूचुः । नाशङ्कनीयं न चले किमित्थं यतो विचित्रा फल वासनाऽत्र ॥

यहाँ कर्ण से जो फल आता है वही समीचीन है। मन्द कर्म में स्वल्पान्तर से कर्णानुपात नहीं किया गया है, यह कहते हैं मन्दकर्म में मन्दकर्ण तुल्य व्यासाधं से जो वृत्त होता वह कक्षावृत्त है। जो पाठ पठित मन्द परिधि है वह त्रिज्या परिएात है। अतः उसको कर्ण व्यासाधं में परिएगमन करते हैं, यदि त्रिज्यावृत्त में यह पाठ पठित परिधि पाते हैं, तो कर्णवृत्त में क्या इससे स्फुट परिधि होती है। 'तत्र स्वेनाहते परिधिना भुजकोटिजीवें' इत्यादि से जो फल होता है उसको त्रिज्या से गुर्णा कर कर्ण से भाग देने जो उपलब्ध होता है तो वह पूर्व फल के तुल्य ही होता है। यह आचार्य ब्रह्मगुप्त का मत है। यदि इस कर्णानुपात से परिधि की स्फुटता होती है तो शीझकर्म में क्यों नहीं किया जाता है? यहाँ चतुर्वेदाचार्य कहते हैं कि ब्रह्मगुप्त ने औरों को ठगने के लिग ऐसा कहा है, परन्तु यह ठीक नहीं है। शीझकर्म में क्यों नहीं किया जाता, यह आशंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि फल की उपपत्ति विचित्र है।

छादक का निर्णय करके राहुकृत ग्रह्ण नहीं होता है। यह ग्राचार्य ने प्रथम वराह-मिहिरादिकों के मत का प्रतिपादन किया फिर संहितामत ग्रह्णवासना का ग्रवलम्बन कर, उस (वराह मिहिरादिक) मत का निराकरण किया है।

राहुकृतं ग्रहण्द्वयमागोपालाङ्गनादिसिद्धमिदम् । बहुफलमिदमपि सिद्धं जपहोमस्नानफलमत्र ॥

इसे लोक प्रथा बताकर राहुकृत ग्रहण के समर्थन में प्राचार्य ने वेद श्रीर स्मृति के बाक्यों का उल्लेख किया है। युक्ति से राहुकृत ग्रहण सिद्ध नहीं होता है, परन्तु वेदों में, स्मृतियों में भीर युराणों में राहुकृत ग्रहण का प्रतिपादन विद्यमान है। भ्रतः दोनों मतों का समन्वय करते हुए भ्राचार्य ने कहा है—

राहुस्तच्छादयति प्रविशति यच्छुक्लपञ्चदश्यन्ते । भूछाया तमसीन्दोर्वरप्रदानात् कमलयोनेः ।। चन्द्रोऽम्बुमयोऽघःस्थो यदग्निमयभास्करस्य मासान्ते । छादयति शमिततापो राहुश्छादयति तत् सवितुः ।।

सिद्धान्तशिरोमिए। के गोलाध्याय में भी श्रघोलिखित भास्करोक्ति-

दिग्देशकालावरणादि भेदान्न छादको राहुरिति ब्रुवन्ति । यन्मानिनः केवलगोलविद्यास्तत्संहिता वेदपुराणबाह्यम् ॥

राहुः कुभामण्डलगः श्रशाङ्कः शशाङ्कगश्छादयतीव बिम्बम्। तमोमयः शम्भुवरप्रदानात् सर्वागमानामविरुद्धमेतत्॥

से समन्वय किया गया है। सिद्धान्तशेखर में राहुकृत ग्रहण के खण्डनार्थ 'राहुनिरा-करणाच्याय' नाम का एक ग्रध्याय रक्खा गया है। इसमें श्रीपित ने भी निम्नलिखित क्लोकों ने समन्वय किया है—

विष्णुलूनिश्चरसः किल पङ्गोर्दत्तवान् वरिममं परमेष्ठी । होमदानिविधिना तवतृष्तिस्तिग्मशौतमहसोरुपरागे ॥ भूमेश्छायां प्रविष्टः स्थगयित शशिनं शुक्लपक्षावसाने । राहुर्बं ह्यप्रसादात् समधिगतवरस्तत्तमो व्यासतुल्यः ॥ ऊर्घ्वंस्थं भानुविम्बं सिललमयतनोरप्यधोर्वित्तं विम्बम् । संसृत्यैवं च मासव्युपरितसमये स्वस्य साहित्यहेतोः ॥

गोलबन्धाधिकार में मह द्वृत्तों (पूर्वापरवृत्त, याम्योत्तरवृत्त, क्षितिजवृत्त ब्रादि) की रचना तथा लघुवृत्तों (मेषादिक द्वादश राशियों के ब्रह्मोरात्रवृत्त) की रचना करके परमलम्बन-नित का स्वरूप प्रतिपादन कर ब्राचार्य ने दक्कमें का ब्रानयन किया गोलाध्याय है। ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त में ब्राचार्य ने जैसे गोलबन्ध कहा है वैसे ही सिद्धान्त शेखर में श्रीपित ब्रौर सिद्धान्त शिरोमिए। के गोलाध्याय में भास्कराचार्य ने कहा है। ग्रहगोल ब्रौर नक्षत्रगोल में पांच स्थिरवृत्त (धूर्वोपरवृत्त, क्षितिजवृत्त, याम्योत्तरवृत्त, उन्मण्डल, विधुवद्वृत्त ) कहे हैं। ये सब कक्षामण्डल के बराबर हैं। तथा ग्रहों के चलवृत्त मन्दनीची खवृत्त ==७, भौमादि ग्रहों के शीझ-नीचोच्चवृत्त ==५। मन्दप्रतिवृत्त ==७, शीझप्रतिवृत्त ==५। सात ग्रहों के हग्मण्डल हकक्षेप

मण्डल, कक्षामण्डल = २१ चन्द्रादि ग्रहों के विमण्डल = ६, सबों का योग ५१ एकावन चलवृत्तों की संख्या है। सिद्धान्तशेखर में भी ऐसा ही है---

मन्दोच्चनीचवलयानि भवन्ति सप्तशैष्ट्रचािंगि, पञ्च च तथा प्रतिमण्डलानि । हक्क्षेप दृष्ट्रचपमजानि च खेचराणामकै विनैव खलु षट् च विमण्डलानि ॥ पञ्चाशदेकसिहतानि च मण्डलानि पूर्वापरं वलयमुत्तरदक्षिणां च। क्ष्माजं तथा विषुवदुद्वलयाभिधाने पञ्चस्थिरािंगि कथितान्युदुक्षेचराणाम् ॥ यन्त्राध्याय—

सप्तदश कालयन्त्राण्यतो धनुस्तुर्यगोलकं चक्रम् । यष्टिः शङ्कुर्घटिका कपालकं कर्त्तरी पीटम् ॥ सलिलं भ्रमोऽवलम्बः कर्णाश्छायादिनार्धमकोंऽक्षः । नतकालज्ञानार्थं तेषां संसाधनान्यण्टौ ॥

इससे धनुर्यःत्र, तुरीय्यःत्र, दक्षयन्त्र, यष्टियन्त्र, शङ्कुयन्त्र, घटी यन्त्र, कपालयन्त्र, कत्तंरीयन्त्र, पीटसंह्रक (पर्लक) यन्त्र, सिल्ल (जल), श्रम (शाएा), श्रवलम्बसूत्र, छाया-कर्एा, शङ्कुछाया, दिनार्धमान, सूर्यं, इक्षर (श्रक्षांश), ये नतकाल के लिए सत्रह काल यन्त्र हैं। इन यन्त्रों में सिलल श्रादि श्राठ यन्त्र रचना के उपकर्ण हैं! सिद्धान्त-शेखर में—

गोलश्चकं कार्मुकं कर्त्तरी च कालज्ञाने यन्त्रमन्यत्कपालम्। पीठं शङ्कुः स्याद्घटी यष्टिसंज्ञं गन्त्री यन्त्राण्यत्र दिक्संमितानि।।

इससे गोलयन्त्र, चक्रयन्त्र, धनुर्यन्त्र, कर्त्तरी नामक यन्त्र, कपालयन्त्र, पीठ (फलक) यन्त्र, शङ्कुनामक यन्त्र, घटी नामक-यन्त्र, यष्ट्रियन्त्र, गन्त्री (शकट) ये श्रीपित द्वारा विग्रित दस यन्त्र हैं। शिष्यधीवृद्धिदतन्त्र में श्रधी लिखित बारह यन्त्रों का उत्लेख है—

गोलो भगग्। श्वकं धनुर्घटी शङ्कुशकटकर्त्तर्यः। पीठकपालशलाका द्वादशयन्त्राग्गि सहयष्टिया।। कर्णश्राया द्युदलं रिवरक्षो लम्बको भ्रमः सलिलम्। स्युर्यन्त्रसाधनानि प्रज्ञा च समुद्यमाश्चैवम्।।

भास्कराचार्यं ने गोलाध्याय में केवल दस यन्त्र कहे हैं-

गोलो नाडीवलयं यष्टिः शङ्कुर्घटीचक्रम्। चापं तुर्यं फलकं घीरेकं पारमार्थिकं यन्त्रम्।।

### सूर्य सिद्धान्त में ग्रघो लिखित यन्त्र विवरण है-

तुङ्गबीजसमायुक्तं गोलयन्त्रं प्रसाधयेत्।
गोप्यमेतत्प्रकाशोक्तं सर्वगम्यं भवेदिह्।।
कालसंसाधनार्थाय तथा यन्त्राग्णि साधयेत्।
एकाकी योजयेद्बीजं यन्त्रे विस्मय कारिणि।।
शङ्कुयष्टि धनुश्चक्रैश्छायायन्त्रैरनेकधा।
गुरुपदेशादिश्चेयं कालश्चानमतिद्वतैः।।
तोययन्त्रकपालाद्यमयूरनरवानरैः ।
ससूत्ररेगुगमैश्च सम्यक्कालं प्रसाधयेत्।।
परदाराम्बुसूत्राग्णि शुल्वतैलजलानि च।
बीजानि पांसवस्तेषु प्रयोगास्तेऽपि दुर्लभाः।।
ताम्रपात्रमधश्छद्रं न्यस्तं कुण्डेऽमलाम्भसि।
षष्टिमंज्जत्यहोरात्रे स्फुटं यन्त्रं कपालकम्।।
नरयन्त्रं तथा साधु दिवा च विमले रवौ।
छाया संसाधनैः प्रोक्तं कालसाधनमुत्तमम्।।

#### मानाध्याय

मानानि सौरचान्द्रार्क्षसावनानि ग्रहानयनमेभिः। मानैः पृथक् चतुर्भिः संव्यवहारोऽत्र लोकस्य।।

इससे सौरमान, चान्द्रमान, नाक्षत्रमान ग्रौर सावनमान, ये चार प्रकार के मान कहे गये हैं। इन्हीं चारों मानों से लोगों के सब व्यवहार होते हैं। किस किस मान से कौन कौन पदार्थ ग्रह्ण किये जाते हैं यह सब प्रति पादित है। ब्राह्म, दिव्य, पित्र्य, प्राजापत्य, बार्ह्सपत्य, सौर, सावन, चान्द्र, नाक्षत्र ये नौ मान हैं। इन मानों में से मनुष्यलोक में केवल सौर, चान्द्र, सावन श्रौर नाक्षत्र इन चार मानों की ही प्रधानता है। क्योंकि इन्हीं मानों से मनुष्यों के सब व्यवहार सम्पन्न होते हैं। सूर्यसिद्धान्त, सिद्धान्तशेखर, सिद्धान्त-शिरोमिण श्रादि सब ग्रन्थों में मानों के विषय में समान रूप से कहा गया है। ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त के इस ग्रध्याय में भूभाद ध्यं के भी साधन है।

संज्ञाध्याय में संज्ञा कहने के कारण दर्शाये हैं। सिद्धान्त इसका एक ही है। किस अंश में सूर्यसिद्धान्तादि भिन्न हैं। इसका प्रतिपादन कर ग्राचार्य ने ग्रपने सिद्धान्त के उत्तरार्घ में ग्रनुक्रमिण्का कही है। सूर्यसिद्धान्त, सिद्धान्तशेखर ग्रादि संज्ञाध्याय श्रन्य सिद्धान्तग्रन्थों में संज्ञाध्याय नहीं है वस्तुतः इसकी ग्रावश्यकता भी नहीं है। ग्रध्याय के उपसंहार से पूर्व एक विशेष प्रश्न—

म्राग्नेये नैऋ त्ये वेष्टदिने संस्थितस्य योऽर्कस्य । शङ्कुच्छाये कथयति वर्षादिप वेत्ति सूर्यं सः ।।

रक्ला हुआ है। इसका उत्तर को एशङ्कु के आनयन से स्फुट है।

ध्यान ग्रहोपदेशाध्याय-मूल ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त का भ्रंग नहीं है। ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त तो चौबीसवें (संज्ञाध्याय) ग्रध्याय पर समाप्त हो जाता ध्यानग्रहोपदेशाध्यात्र है। ध्यान ग्रहोपदेशाध्याय भी ब्रह्मगुप्त की ही एक कृति हैं। श्रतः परिशिष्ट के रूप इसे यहाँ संलग्न कर दिया गया है।

इसके चैत्रादि में मासगणानयन, चैत्रादि में दिनादिक, तिथिध्रुवसाधन, इद्रमासादि में रिव के झानयन प्रकार, प्रतिमास में चन्द्रकेन्द्र, तिधि घ्रुवक्षेप के झानयन का प्रतिपादन है। प्रतिदिन चालन, चन्द्रसाधन, झौदियक रिवसाधन, ज्याखण्ड तथा केन्द्रज्या साधन का वर्णन है—

त्रिश्वत्सनवरसेन्दुर्जिनतिधिविषयागृहार्घंचापानाम् । 
स्रघंज्याखण्डानि ज्याभुक्तैक्यं स भोग्यफलम् ।।
गतभोग्यखण्डकान्तर दलविकलवधाच्छतैर्नविभराप्तैः ।
तद्युतिदलं युतोनं भोग्यादूनाधिकं भोग्यम् ।।

यह आचार्योक्त भोग्यखण्ड स्पष्टीकरण है। भास्कराचार्यं ने इसी को सिद्धान्तिशरो-मिण के स्पष्टाधिकार में "यातैष्ययो: खण्डकयोविषोष: शेषांशिनिष्नः" इत्यादि द्वारा लिखा है। भास्कराचार्यं ने १२० त्रिज्या ग्रहण की हैं। यहाँ आचार्यं ब्रह्मगुप्त ने १५० त्रिज्या ग्रहण को हैं। यहाँ यह बात बड़ी वित्रित्र लगती है कि आचार्योक्त विषयों को ही सिद्धान्त शेखर में श्रीपित ने सर्वत्र श्लोकान्तरों में लिखा है, परन्तु पता नहीं क्यों उन्होंने आचार्योक्त इस अपूर्व भोग्य खण्ड स्पष्टीकरण की चर्चा तक नहीं की। चन्द्र में भुजफल संस्कार, तिथि फलसंस्कार आदि सभी विषय विसक्षण है। आचार्यं ने इस अध्याय में जो विषय लिख दिये हैं, सूर्यसिद्धान्त-सिद्धान्तशेखर-तथा सिद्धान्त शिरोमिण में वे नहीं हैं।

श्राह्मस्कुट सिद्धान्त में जिन श्राचार्यों के नाम श्राये हैं। उनके सम्बन्ध में कुछ विचार करते हैं। सब सिद्धान्तों में श्रादिम या सबसे प्राचीन सिद्धान्त ब्रह्मसिद्धान्त ही है। इसी को लोग पितामह सिद्धान्त के नाम से भी कहते हैं। पञ्चसिद्धान्त का में बराहमिहिर ने बारहवें श्रध्याय को जिसमें केवल पांच श्रायिएँ हैं, पैतामह सिद्धान्त के नाम से पुकारते हैं, उदाहरए।त:—

रविशशिनोः पञ्चयुर्ग वर्षािग पितामहोपदिष्टानि । स्रिषमासस्त्रिशद्भिर्मासैरवमस्त्रिषष्टचाऽह्णम् ॥१॥ द्वयूनं शकेन्द्रकालं पञ्चभिरुद्धृत्य शेषवर्षागाम् । द्विगुग्गमाद्यसिताद्यं कुर्याद् द्युगग्गं तदह्लघुदयात् ॥२॥ सैकषष्टचंशे गग्गे तिथिर्भमाकं नवाहतंऽक्ष्यकेः। दिग्रसभागैः सप्तभिरूनं शशिभं धनिष्ठाद्यम् ॥३॥

द्वचग्निनगेषूत्तरतः स्वमितमेष्यदिनमपि याम्यायनस्य । द्विघ्नं शशिरसभक्तं द्वादशहीनं दिनसमानम् ॥५॥

इसके अनुसार एक युग में सौर वर्ष = 4, सौरमाह  $4 \times 8 = 6$ , अधिमास = 8, चान्द्रमास = 6, इसे तीस से गुणा करते से तिथि = 8 = 6, अवम = 8, तिथियों में से इसे घटाने पर अहर्गणा = 8 = 8।।

श्राचार्यं वराहिमिहिर विक्रमादित्य के प्रसिद्ध नव रत्नों में से एक थे। इनके द्वारा बने ग्रन्थ 'लघुजातक, बृहज्जातक, विवाहपटल, बृहद्योगयात्रा, बृहत्संहिसा, समास संहिता भौर पञ्चसिद्धान्तिका है।

पौलिश सिद्धान्त, रोमक सिद्धान्त, वासिष्ठ सिद्धान्त, सौर (सूर्य) सिद्धान्त, भौर पैतामह सिद्धान्त, इन पाञ्च सिद्धान्तों के सार का संकलन रूप 'पञ्चिसद्धान्तिका' है। इस ग्रन्थ को को वराह मिहिराचार्य 'ताराग्रह कारिका तन्त्र' के नाम से पुकारते हैं। इस ग्रन्थ (पञ्चिसद्धान्तका) में 'पौलिश सिद्धान्त' नाम का एक श्रघ्याय है। पौलिश सिद्धान्त के रचिता के सम्बन्ध में बहुत मतमतान्तर हैं। वराहोक्त पौलिशसिद्धान्त में यवनपुर से उज्जियनी का ग्रौर वाराएासी का देशान्तर उल्लिखित है, जैसे —

यवनाच्चरजा नाडचः सप्तावन्त्यां त्रिभागसंमिश्राः। वाराणस्यां त्रिकृतिः साधनमन्यत्र वक्ष्यामि।।

शाकल्य संहितोक्त ब्रह्मसिद्धान्त में पौलिश सिद्धान्त का उल्लेख तथा पुलिशाचार्य के ---

उज्जियनी रोहीतक कुरुयमुना हिमनिवासमेरूणाम् । देशान्तरं न कार्यं तल्लेखामध्यसंस्थदेशेषु ॥

म्रादि विचार से 'पौलिश सिद्धान्त' सर्वमान्य था। परन्तु यह सिद्धान्त भ्रभी उप-लब्ध नहीं है।

सूर्य सिद्धान्त ही प्राचीनतम सिद्धान्त ग्रन्थ है, यह बहुत विद्वानों का मत है।

\*प्रागर्धे पर्व यदा तदोत्तराऽतोऽन्याय तिथिः पूर्वा। भर्केष्ने व्यतिपातासुगर्यो पञ्चाम्बरहुताशैः॥४॥ केचित् प्रत्यक्षसूर्याच्च भिन्नोऽयमिति यद्दलात् । वदन्ति मूढवादस्याप्रामाण्यात्तदसद्ध्रुवम् ॥

कमलाकर की इस उक्ति से स्वयं भगवान् सूर्य ही इस के रचयिता सिद्ध होते हैं। श्राक्चर्य तो इस बात का है कि 'सूर्यसिद्धान्त में—

तिंशत्कृत्यो युगे भानां चक्रं प्राक् परिलम्बते ।
तद्गुगाद्भूदिनैर्भक्ताद् द्युगगाद्यदवाप्यते ।।
तद्दोस्त्रिष्टना दशाप्तांशा विज्ञेया श्रयनाभिधाः ।
तत्संस्कृताद् ग्रहात् क्रान्तिच्छायाचरदलादिकम् ।।

श्रादि से श्रयांशानया किया गया है, परन्तु सूर्य सिद्धान्त के पश्चात् ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के रचियता श्राचायं ब्रह्मगुप्त ने उसकी कोई चर्चा ही नहीं की । इस चर्चा न करने का कोई कारए। भी समक्ष में नहीं श्राता है । सूर्यसिद्धान्त के उदयास्ताधिकार में "श्रिभिजिद् ब्रह्म हृदयं स्वाती वैष्ण्य वासवाः" इत्यादि से भगवान् सूर्य को सदोदित नक्षत्र बतलाया गया हैं। इस श्लोक की सुधाविष्णी टीका में जो—

देशज्ञानं बिना सदोदितनक्षत्राणां ज्ञानं न भवति, निरक्षे च सौम्य झ्रुवोऽप्य-हश्योऽतः केनचिद् गोलानभिज्ञेनायं श्लोक प्रक्षिप्त इति लिखा गया है, सो ठीक नहीं है। पाताधिकार में—

श्राद्यन्तकालयोर्मध्यः कालोज्ञे योऽतिदारुगः। प्रज्वलज्ज्वलनाकारः सर्वकर्मसु गहितः।। एकायनगतं यावदर्केन्द्वोर्मण्डलान्तरम्। सम्भवस्तावदेवास्य सर्वकर्म विनाशकृत्।। स्नानदानजपश्राद्धव्रतहोमादिकर्मभिः। प्राप्यते सुमहच्छ्रे यस्तत्कालज्ञानतस्तथा।।

इत्यादि से पातस्थितिकाल सब कर्मों का विनाशकारक कहा गया है। प्रातकाल में स्नान, दान, जप,श्राद्ध, ब्रत, होम श्रादि कार्यों से लोग कल्याएा लाभ करते हैं। तथा—

रवीन्द्वोस्तुल्यता क्रान्त्योविषुवत्सन्निधौ यदा। दिभवदि तदा पातः स्यादभावो विपर्ययात्।।

. से अपूर्व विषयों का प्रति पादन हुआ है। अर्थात् रिवगोल-संधि समीप में जब रिव और चन्द्र का क्रान्तिसाम्य हो तब अल्प समय में ही दो बार पात होता है। जब रिव की अयनसन्धि समीप में क्रान्ति साम्याआव होता तब बहुत कालपर्यन्त क्रान्ति साम्याभाव होता है, ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त में भी पातस्थिति काल फल सूर्य सिद्धान्त में कथित के अनु- ही कहा गया है। श्रीषेरा, श्रार्यभट तथा विष्णुचन्द्र के विषय में संक्षेरूप से पहले लिख चुके हैं!

इलाहाबाद विश्वविद्यालय के रसायन विभाग के भ्रष्टयक्ष डाक्टर सत्य प्रकाश जी डी. एस. सी महोदय का मैं भ्रत्यन्त भ्रनुगृहीत हूं, जिन्होंने भ्रांगल भाषा में इस ग्रन्थ की प्रस्तावना लिख कर कृतार्थ किया।

सम्पादक मण्डल के अन्य सहयोगी ज्योतिषाचार्य श्री मुकुन्दिमिश्र, श्री विश्वनाथ भा, श्री दयाशंकर दीक्षित एवं श्री ग्रोंदत्तशर्मा शास्त्री एम. ए. एम. ग्रोल. भी वन्यवाद के पात्र हैं जिनके सहयोग के बिना इस महान् ग्रन्थ का सम्पादन ग्रति कठिन था।

नव प्रिटर्स पद्म श्री प्रकाशन के स्वामी श्री रमेशचन्द्र जी का परिश्रम भी सराहनीय है। इसके श्रतिरिक्त उन सभी लोगों के प्रति मैं ग्रपना हार्दिक श्राभार प्रदर्शन करता हूं जिन्होंने श्रल्पमात्र भी सहयोग देकर मुभे कृतार्थ किया।

भृगु-म्राश्रम ३०-३-१९६६ विदुषामनुचर रामस्वरूप शर्माः

# विषयानुक्रमणिका

# १७. श्रृंगोन्नत्युत्तराघ्य।यः

#### ११३६-४६

प्रश्नकथनम्	. ११३६
परिलेखकथनम्	३६११
प्रकारान्तरेगा परिलेखकथनम्	११४३
फलके परिलेखकथनम्	११४४
विशेषकथनम्	११४४
अध्यायोपसंहार:	११४६

## १८. कुट्टकाध्यायः

#### १३४६१-२६१

कुट्टकारंभप्रयोजनम्	११४६
कुट्टकादीनां प्रशंसाकथनम्	११४६
<b>क्टू</b> ककथनम्	११५०
कुट्टके विशेषकथनम्	११५५ -
भगरादिशेषतोऽहर्गसानयनम्	११५६
विशेषकथनम्	११५६
स्थिरकुट्टककथनम्	११६१
स्थिरकुट्टकादहर्गंग्राकथनम्	११६३
स्थिरकुट्टके विशेषकथनम्	११६६
विलोमगिरातकथनम्	११७१
प्रश्नकथनम्	११७२
अन्यप्रइनकथनम्	<b>११७४</b>
ग्रन्य प्रश्नकथनम्	११७५
<b>ग्रन्य प्र</b> श्नकथनम्	११७६
पूर्वप्रकात्तरकथनम्	११७६
ग्रपरप्रश्नकथनम्	११७७
पूर्वप्रश्नस्योत्तरकथनम्	११७७

विशेषकथनम्	३७१ १
भ्रन्यप्रश्नकथनम्	११८०
पूर्वप्रश्नस्योत्तरकथनम्	११८१
<b>ग्र</b> न्यप्रश्नकथनम्	११८२
<b>ग्रन्यप्रश्नकथनम्</b>	११८४
अन्यप्रश्नकथनम्	११८५
<b>ग्र</b> न्यप्रश्नकथनम्	११८६
<b>ग्रन्यप्र</b> श्नकथनम्	११८७
धनर्णशून्यानां सङ्कलनम्	११८६
व्यवकलनम्	9880
गुराने करणसूत्रकथनम्	११६२
भागहारे करर्णसूत्रद्वयकेथनम्	११६३
संक्रमंग्रविषमकर्मेकथनम्	8858
समद्विबाहुत्रिभुजे भुजयोर्वेर्णनम्	११६६
करणीयोगान्तरे गुँगानकथनम्	११६८
करणभागहारे करणसूत्रकथनम्	१२०१
कर <b>्</b> गिमूलानयनार्थकथनम्	१२०२
भ्रव्यक्तसंकलित यत्र कलि तयोः कर <b>णसूत्रकथनम्</b>	१२०४
ग्रन्यक्तगुराने सूत्रकथनम्	१२०५
श्रव्यक्तमानानयनार्थं कथनम्	१२०७
वर्गसमीकरएाकथनम्	१२०८
वर्गसमीकरऐोऽयक्तमानायनम्	१२०६
प्ररनकथनम्	१२११
अन्यप्रश्नकथनम्	१२१२
अन्यप्रश्नकथनम्	१२१३
श्रन्यप्रश्नकथनम्	१२१४
श्रन्यप्रश्नकथनम्	१२१५
अनेकवर्णसमीकरणम्	१२१७
प्रश्नकथनम्	१२१८
श्रन्यप्रश्नकथनम्	१२२१
<b>ग्र</b> न्यप्रश्निक्षपर्गाम्	१२२३
अन्यप्रश्नद्वयवर्णंनम्	१२२४
ंग्रन्यप्र <b>२</b> नकथनम्	६२२५
<b>अन्यप्र</b> श्नद्वयस्थापनम्	१२२७
श्रन्यप्र <b>श्नवर्णनम्</b>	१२२६
ग्रन्यप्रश्नकथनम्	१२३१

भावितविषये सूत्रम्	१२३२
प्रश्ननिरूपग्रम्	१२३५
भाविते प्रकारान्तरकथनम्	१२३६
वज्राभ्यासतोऽनेककनिष्ठज्येष्ठानयनम्	१२३८
भाविते विशेषकथनम्	१२४०
चतुःक्षेपकनिष्ठज्येष्ठाभ्यां रूपक्षेपे कनिष्ठज्येष्ठानयनम्	१२४१
ऋर्णात्मकचतुःक्षेपकनिष्ठज्येष्ठाभ्यां रूपक्षेपे कनिष्ठज्येष्ठानयनम्	१२४३
वर्गात्मकप्रकृतौ कनिष्ठज्येष्ठानयनम्	१२४५
प्रश्नविशेषस्योत्तरकथनम्	१२४८
प्रश्नान्तरविशेषस्योत्तरकथनम्	१२५२
प्र <b>इनान्तरविशेषस्योत्तरकथनम</b> ्	१२५३
प्र <b>श्नान्तरस्योत्तरकथनम्</b>	१२५५
वर्गप्रकृत्युदाहरराम्	१२५८
<b>भ्रन्यप्र</b> श्नद्वयकथनम्	१२६०
अन्यप्रइनकथनम्	१२६१
अन्यप्रश्नद्वयनिरूपणम्	१२६३
भ्रन्यप्र <b>श्नस्थापनम्</b>	१२६४
प्रदनद्वयनिरूपराम्	१२६५
भ्रन्यप्रदनद्वयकथनम्	१२६७
भ्रन्यप्रश्नद्वयस्थापनम्	१२६ंड
<b>श्र</b> न्यप्रश्नकथनम्	3358
भ्रन्यप्रश्नद्वयकथनम्	१२७१
भ्रन्यप्रश्नानां स्थापनम्	१२७३
पूर्वप्रश्नोत्तरकथनम्	१२७४
उदिष्टाहर्गरो ये ग्रहयोर्भगरा। दिशेषे ते पुनः कस्मिन्नहर्गरो	
इत्यस्योत्तरकथनम्	१२७४
भ्रन्यप्रश्नकथनम्	१२७७
प्रथम प्रश्नस्योत्तरकथनम्	१२७८
श्रवमशेषाद्रव्यानयनम्	१२८०
अवमशेषात् तिथ्यानयनम्	१२८२
सोत्तरं प्रक्तान्तरकथनम्	१२८४
सोत्तरं प्रश्नान्तरकथनम्	१२८५
द्येषयोर्वर्गयोगकथंनम <b>्</b>	१२८७
योगाम्यां च तयो रानयनम्	१२८७
प्र <b>र</b> ्गन्तरस्योत्तरकथनम्	१२८८
छात्रेभ्यः स्ववक्तव्यकथनम्	9360

	प्रश्नप्रशसा		१५६०
	<b>ग्र</b> ध्यायोपसंहारः		१३८१
ૄ ૄ.	शंकुच्छायादिज्ञानाध्यायः	१२६५-१३१५	
	प्रथमप्रश्नकथनम्		१२६५
	भ्रन्यप्र <b>श्नस्थापनम</b> ्		१२६५
	अन्यप्रश्ननिरूपगम्		१२१६
	भ्रन्यप्र <del>श्नस्थापनम्</del>		१२६७
	अन्यप्रइनकथनम्		3365
	प्रश्नान्तरस्थापनम		33,53
	प्रथमप्रश्नस्योत्तरकथनम्		३३६६
	उदयान्तर-ग्रस्तान्तरघटिकाभिरितिप्रश्नद्वयस्यं	न्तिरकथनम्	१३०१
	मध्यगतेरन्तरसाधनं तदुत्तरकथनंच		१३०२
	रविशशाङ्कमाननिरूपर्णम्		१३०२
	दीपशिखौच्च्याच्छंकुतलांतरभूमिज्ञाने छायान	यनस्योत्तरकथनम <b>्</b>	१३०४
	छाया द्वितीयभाग्रान्तरविज्ञानेनेत्यादिप्रश्नोत्तर		४०६९
	छायातो गृहादीनामौच्च्यानयनम्		१३०५
	इष्टगृहोच्च्यज्ञो यइतिप्रश्नस्योत्तरसम्पादनम्		3089
	गृहपुरुषान्तरसलिले यो दृष्ट्वेत्यादि प्रदनोत्तर	कथनम्	१३१०
	वीक्ष्य गृहाग्रं सलिले प्रसार्थेति प्रश्नोत्तरकथन	म्	१३११
	उच् <mark>छ्रितकथनम्</mark>		१३१४
२०	. छन्दिश्चित्युराराध्यायः	१३१६-२०	
२१	. गोलाध्यायः	१३२३-१४१६	<u> </u>
	आरम् <b>म</b> प्रयोजनकथनम्		१३२४
	भूगोलसंस्थानकथनम्		१३२३
	देवासुरसंस्थानवर्णनम्		१३२५
	देवदैत्ययोर्भचकश्चमगाव्यवस्थापनम्		१३२७
	चक्रभ्रमराव्यवस्थाकथनम्		१३२५
	देवादीनां रविभ्रमणस्थितिवर्णनम्		१३२८
	देवदैत्ययोः राशिसंस्थानम्		३५६१
	देवदेत्ययोः पितृमानवयोश्च दिनप्रमागानिरूप	<b>गम्</b>	१३३०
	भूगोले लङ्कावन्त्योः संस्थानम्		१३३४
	निरक्षस्वदेशान्तरयोजनाकथनम्		१३३६
	खग्रहर्योः कक्षानिरूपराम		93310

कियद्योजनभ्रम <b>गामितिकथनम्</b>	3888
ग्रहकक्षाक्रमकथनम् <u></u>	3380
शनैश्चराद्यानां शोघ्रत्वकारगाकथनम्	१३४४
<b>बु</b> त्तपरिघेर्व्यासानयनम्	१३४५
वृत्तपरिघेर्व्यासस्य प्रतिपादनम्	१३४८
ज्याखण्डानयनम्	३४६
गिएतिन ज्यार्धानयनम्	१३५२
अर्घांशज्यानयनम्	१३५३
विशेषकथनम्	१३५५
प्रकारान्तरेगाधांशज्यानयनम्	१३५६
स्पष्टीकररो छेद्यककथनम्	१३५६
नी चोच्चवृत्तभिङ्गिकथनम्	१३६०
नीचोच्चवृत्तभङ्गचा शीघ्रफलसाधनम्	<b>७३६६</b>
मन्दर्कमिण कर्णाभावस्य कारणम्	१३६९
विशेषकथनम्	<b>१३७१</b>
<del>स्फु</del> टयोजनात्मककर्णानयनम्	१३७२
भूरविचन्द्रागां योजनव्यासकथनम्	१३७३
भूभाबिम्बानयनम्	<b>१३७</b> ४
कलात्मकबिम्बकथनम्	१३८०
<b>छादकनिरूप</b> ग्गम्	१३८२
राहुकृतं रवीन्द्वोर्नग्रहणमिति वराहमिहिरादीनां मतप्रतिपादनम्	१३८५
संहितामतेन वराहादीनां निराकरराम्	१३८६
लोकप्रथाप्रतिपादनम्	१३८७
राहुकृतं ग्रहरामित्यत्र स्मृतिवाक्यम्	१३८७
राहुकृतग्रहगो वेदवाक्यम्	१३८८
स्वोक्तिप्रदर्शनम्	थु३८८
राहुबिम्बकथनम्	१३६१
ग्रहगो राहोरदर्शनकथनम्	<b>?</b> 38 <b>?</b>
भ्रत्र निर्गलितार्थकथनम्	१३हर
पूर्वापरयाम्योत्तरक्षितिजवृत्तकथनम्	१३६३
उन्मण्डलसंस्थाननिरूपग्म्	83E8
विषुवन्मण्डलसंस्थानकथनम्	\$3EX
क्रान्तिमण्डलसंस्थानदर्शेनम्	४३६४
विमण्डलानां कथनम्	थु३६७
हग्मण्डलाभिनिचेशकथनम्	१३₹⊏
<b>द</b> क्क्षेपवृत्तकथनम्	33€\$
•	

द्वादशराशीनामहोरात्रवृत्तवर्गानम्	१४००
राज्युदयानामसमानत्वकथनम्	१४०२
चराग्रयोः संस्थानकथनम्	१४०६
शंकु हग्ज्ययोः संस्थानकथ नम्	१४०६
प्रकारान्तरेण तयोः संस्थानं शंकुतलस्य च कथनम्	१४०७
हग्गोलस्य दृश्यादृश्यत्वं लम्बनावनत्युत्पत्तौ च कारणादर्शनम्	8,80€
परमलम्बनावनतीकथनम्	१४१०
दृक्कर्म <b>कथनम्</b>	१४१२
ग्रहर्क्षगोलयोः स्थिरवृत्तकथनम्	१४१५
ग्रहाराां चलवृत्तकथनम्	१४१५
ग्रध्यायोपसंहारः	શેજરેલ
२२. यन्त्राध्यायः	
गोलप्रशंसाकथनम्	१४१६
स्वगोलग्रथने कार्रणम्	१४१६
गिएतिगोलयोः प्रशंसाकथनम्	१४२०
यन्त्रारम्भप्रयोजनकथनम्	१४२०
तन्त्राणां प्रतिपादनम्	१४२१
सलिलादीनां प्रयोजनकथनम्	१४२२
धनुर्यन्त्रकथनम्	१४२३
सूर्याभिमुखे यन्त्रधारराम्	१४२६
इष्ट्रघटिकायाः धनुषश्चस्वरूपकथनम्	१४२७
परोक्तघटचानयनम्	१४२८
यन्त्रेण नतोन्नतकालज्ञानम्	१४३०
यन्त्रादेव नतोन्नकालज्ञानम्	१४३१
धनुर्यन्त्रे विशेषकथनम्	१४३२
तुर्यगोलप्रतिपादनम्	१.४३३
चक्रयन्त्रकथनम्	१४३५
यष्ट्या शंक्वादिकथनम्	१४३८
प्रकारान्तरेण घटिकानयनम्	१४४२
घटिकानयनकथनम्	१४४६
यष्टियन्त्रेगा वेधेन रवि चन्द्रान्तरोशकथनम्	१४४६
प्रकारान्तरेणांशानयनम्	3888
यष्टियन्त्रेगा दिक्साधनम्	१४५०
भुजकोटिसाधनकथनम्	१४५२
यष्टियन्त्रेण पलभाज्ञानम्	१४५३
मुजद्वयतः पलभाज्ञानम्	१४५४

रविज्ञानकथनम्	१४४४
यष्टचा गृहाद्यौच्च्यानयनम्	१४५७
प्रकारान्तरेगा गृहादौच्च्यानयनम्	१४५६
गृहादिमूलभेदेन भूमिज्ञानम्	१४६२
भूमिज्ञाने वंशीच्च्यज्ञानम्	१४६२
प्रकारान्तरेगा भूम्यौच्चानयनम्	१४६५
प्रकारान्तरेगा गृहौच्च्यानयनम्	१४६६
परमतस्य खण्डनम्	<b>१४</b> ६८
शंकुकथनम्	2800
शंकुयन्त्रेरा कालज्ञानम्	१४७१
घटीयन्त्रकथनम्	१४७२
कपालयन्त्रकथनम्	१४७४
विशेषकथनम्	३४७६
क त्तंरीयन्त्रकथनम्	१४७७
पीठयन्त्रकथनम्	.१४७६
यन्त्रान्तरकथनम्	१४८०
पुनर्यन्त्रान्तरकथनम्	.१४८२
विशेषकथनम्	<b>१</b> ४५४
पुनर्विशेषकथनम्	१४८४
- स्वयंवहयन्त्रवर्गानम्	<b>१४</b> ८७
पुनर्विशेषकथनम्	१४८६
ग्र <u>घ्यायोपसंहारः</u>	8888

## २३. मानाध्यायः

### *38.*8.7-8.7.8.5

पदार्थानां मानकथनम्	१४६म
मानानां नामकथनम्	१४६७
विशेषकथनम्	<i>'</i> १४ <i>६</i> ६
नक्षत्रसावनप्रशंसनम्	१५०१
नवमानवर्णनम्	१५०३
ऋतुवर्णनम्	\$ X 0 &
भूभादेध्ये भूभामानकथनम्	<b>ই</b> শ্ব <b>০</b> শ্
प्रकारान्तरेण तत्साधनम्	<b>\$</b>
प्रकारान्तरेण भूभा <b>मान</b> कथनम्	<b>ষ্</b> ধ৹দ
<b>भ</b> ध्यायोपसंहार	<i>ईत</i> ६०

## २४ संज्ञाध्यायः

### १५१५-१५२३

<b>ग्रारम्भप्रयोजनकथनम्</b>	१५१५
एकसिद्धान्तवर्गानम् ं	१५१६
सूर्यसिद्धान्तादीनां भिन्नत्वकथनम्	१५१८
सिद्धान्तस्योत्तरार्घेऽध्यायसंख्यावर्णंनम्	१५१८
ग्रन्थग्रथनकालवर्गानम्	१५१६
करराग्रन्थवत् गराितलाघवेन फलसाधनं नेति काररावरांनम्	१५२०
ग्रन्थे क्लोकसंख्याकथनम्	१५२१
सूर्यंग्रहरो चन्द्रशङ्कोरभावप्रतिपादनम्	१५२१
प्रदेनविशेषकथनम्	१५२१
<b>अध्यायोपसंहारः</b>	१५२३

## ध्यानग्रहोषदेशाध्यायः

#### १५२७-१५६८

चैत्रादौ मासगर्णानयनम्	१५२७
चैत्रादौ दिनादिकं तिथिध्युवसाधनकथनम्	१५२६
चन्द्रकेन्द्रसाघनम्	१५३०
इष्टमासादौ रव्यानयनम्	१५३१
प्रतिमासं शशिकेन्द्र तिथिध्रुवक्षेपयोः कथनम्	१५३२
प्रतिदिनचालनकथनम्	१५३३
देशान्तर संस्कारकथनम्	१५३५
चन्द्ररव्योः साधनम्	<b>१</b> ५३ <b>५</b>
चन्द्रस्य तत्केन्द्रस्य च चालनम्	१५३७
रविचन्द्रकेन्द्रागां राशिमानकथनम्	१५३६
ज्याखण्डकेन्द्रज्यासाधनयोः कथनम्	१५४०
रविचन्द्रयोः मन्दफलानयनम्	१५४३
रविचन्द्रयोगंतिफलसाधनम् े	१५४४
चन्द्रे मुजफलसंस्कारकथनम्	१५४६
तिथौ फलसंस्कारकथनम्	१५४६
केन्द्रत एव तिथिसंस्कारयोग्यमन्दफलकथनम्	१५४७
तिथिसाचनम्	१५४६
भयोगसाधनम्	१५४ <b>९</b>
करएाानयनम्	१५५०
भौमसाधनम्	<b>શ્</b> ષ્ણ •
बुधशीघ्रानयनम्	१५५२
	• • • •

गु	रोरानयम्	१५४३
<b>হ্</b> য	<b>,कशी घ्रानयनम्</b>	<b>१</b> ሂሂሂ
হা	न्यानयनम्	१५५६
र	ाहोरानयनम <b>्</b>	१५५८
ग्र	हानयने विशेषकथनम्	१५६०
স	कारान्तरेण भौमानयनम्	१५६०
बु	धानयनम्	१५६२
गु	रुशनिराह्वानयनम <b>्</b>	१४६४
	<b>,</b> कचलानयनम्	१५६६
भ	गैमादीनां मन्द <del>ोच्</del> यांशकथनम्	१५६=
<b>3</b> 7	गेमादीनां मन्दफलानयनम्	<b>१५६</b> ८
₹	फुटग्रहार्थं संस्कारकथनम्	१५७०
~	गघवेन शीघ्रफलानयनार्थं	
चि	गण्डकथन <b>म</b> ्	१५७१
श	ाषसंबन्धिपिण्डा <b>वयवकथनम</b> ्	१५७२
ि	वेशेषकथनम्	१२७३
वि	वंश्वमिते गतपिण्डे विशेषकथनम्	१५७३
वि	गण्डतः शीध्रफलकथनम्	१५७४
¥	ौमस्य चतुर्दशपिण्डकथनम्	१५७५
बु	ष्घपिण्डकथनम्	१५७८
गु	रोः पिण्डकथनम्	१५८०
2	<b>ुक्रस्य पिण्डकथनम्</b>	१५५५
হ	ानिपिण्डकथनम्	१५८५
3	गैमादीनां मध्यमृदुगतिवर्णनम्	१५८८
হ	ी <b>घ्रगतिवर्गांनम्</b> ·	१५८६
Ŧ	नरखण्डवर्गानम्	१५६१
q	लात्मकचरमानकथनम्	१५६२
वि	देनरात्रिमानकथनम् <u></u>	१४६३
<b>E</b> S	ष्टकालिकग्रहवर्गान <b>म्</b>	१५६४

इष्टकाले स्थूलछायाकर्रायोश्च वर्गानम्	१५६५
इष्टकतउन्नतकालणंवणंनम्	१५६६
ज्यातश्चापानयनम्	<b>१५</b> ६७
<del>ग्रध</del> ्यायोपसंहारः	१५६७
कस्मै न दातव्यमितिकथनम्	१५६५
परिशिष्ट	
घ्यानग्रहोपदेशाघ्याये क्षेपसाधनम्	<b>१५</b> ६५-१६० <b>५</b>
गोलाध्यायःवासनाभाष्यम्	१६०६-१६५१
श्रकारादिक्रमेण रलोकानुक्रमिणका	<b>१</b> ६५२-१६६७

## ब्राह्यस्फुटसिद्धान्तः

<sup>9</sup>रु गोन्नत्युत्तराध्यायः

## ब्राह्म**स्फुटसिद्धान्तः**

#### शृंगोन्नत्युत्तराध्यायः

म्रथ शृङ्गोन्नत्युत्तराघ्यायः प्रारभ्यते । म्रथ प्रश्नमाह ।

भुजकोटिकर्णंशशिमानशुक्लसितसूत्रपरिलेखात्। प्रतिदिवसं प्रतिघटिकं यो वेत्ति स तन्त्रहृदयज्ञः ॥१॥

सु. भा — श्रृङ्गोन्नतौ प्रतिदिवसं वा प्रतिघटिकं यो भुजं कोटिं कर्णं शिश-माने चन्द्रबिम्बे शुल्कं सितसूत्रं स्वभासूत्रं परिलेखं च वेत्ति स एव तन्त्रहृदयज्ञः सिद्धान्तग्रन्थमर्मज्ञ इति ॥ १ ॥

वि. भा.—प्रतिदिनं प्रतिघटिकं भुजं कोटिं कर्णं चन्द्रबिम्बे शुक्लं सितसूत्रं (स्वभासूत्रं) परिलेखं च त्र्यं ङ्गोन्नतौ यो जानाति स सिद्धान्तग्रन्थमर्मज्ञ इति । श्रः ङ्गोन्नत्यिषकारे पूर्वं भुजादयः साधिता एवातः परिलेखमत्र कथयृति ॥१॥ अब त्र्यं ङ्गोन्नत्युत्तराध्याय प्रारम्भ किया जाता है ।

#### ग्रब प्रश्न को कहते हैं।

हि. भा—प्रत्येक दिन में प्रत्येक घटी में भुज—कोटि-कर्णों को चन्द्रबिम्ब में शुक्ल को, स्वभा सूत्र को, परिलेख को, श्रृं ङ्गोन्नित में जो जानते हैं वे सिद्धान्तग्रन्थ के मर्मज हैं इति । श्रृङ्गोन्नत्यिधकार में पहले भुजादि साधित ही हैं। इसलिये यहां परिलेख ही को कहते हैं।।१।।

#### इदानीं परिलेखमाह।

प्राच्यपरा दिगभिमुखं शुक्लेतरपक्षयोर्लिखेद् भूमौ । अपवर्त्यकेनेष्टेन राशिना कोटिभुजकर्णान् ॥२॥ परिकल्प्याकं विन्दुं तस्माद्वाहुं यथाविशं वस्ता । बाह्वागृत् प्राच्यपरां कोटि तिर्यक् स्थितं कर्णम् ॥३॥ कर्णाग्रे चन्द्रमसं परिलिख्य सितं प्रवेश्य कर्णेन । शशिबम्बे शुक्लागृत् परिलेखसमेन सूत्रेण ॥४॥ कर्णमतिस्थे नैशे शुक्ले परिलिख्य पश्चिमाभिमुखम् । राशिषु मेषतुलादिषु संशोध्य दिवाकरं चन्द्रात् ॥४॥ पूर्वाभिमुखं कर्कटमकरादिषु भवति शुक्लसंस्थानम् । एवं वा संस्थानं परिलिख्येन्द्रं प्रसाध्य दिशिः ॥६॥

सु. मा.—एकेनेष्टेन राशिना प्रथमं कोटिभुजकर्णानपवर्त्यं भूमौ शुक्लकृष्ण-पक्षयोः प्राच्यपरादिगिभमुखं लिखेत्। कथं लिखेदित्याह—परिकल्प्याकं बिन्दु-मिति—इष्टं बिन्दुमकं परिकल्प्य तस्माद्यथादिशं बाहुं बाह्वग्राद्यथादिशं प्राच्यपरां कोटि तयोमंध्ये तियंक् कर्णं च दत्त्वा कर्णाग्रे चन्द्रमसं परिलिख्य तत्र कर्णं कर्णमार्गेण शशिबिम्बे सितं शुक्लं प्रवेश्य दत्त्वा ततः शुक्लाग्रात् परिलेखसमेन स्त्रेण स्वभासमेन मानेन कर्णेऽङ्कृनं कृत्वा तत् केन्द्रात् स्वभया वृत्तं परिलिख्य कर्णगतिस्थे नैशे रात्रिसम्बन्धिन शुक्ले शुक्लसंस्थानं भवति। शुक्लाग्रं कस्यां दिशि कर्णंसूत्रे दत्त्वा परिलेखं कुर्यादित्याशङ्कृत्याह राशिषु मेषतुलादिष्वित। चन्द्राद्दिशकरं विशोध्य शेषं कार्यम्। मेषादिराशित्रये तुलादिराशित्रये च शेषे परिचमाभिमुखं कर्कंटादिराशित्रये मकरादिराशित्रये च शेषे पूर्वीभिमुखं शुक्लं देयमिति। एवं वा संस्थानमित्यस्याग् संबंधः।

अत्रोपपत्तिः । 'यद्याम्योदक्तपनशिशनोरन्तरं सोऽत्र बाहुः'—इत्यादिना 'सूत्रेण बिम्बमुहुपस्य षडङ्गुलेन'—इत्यादिना च भास्करिवधानेन ज्ञेया । यदा-ऽन्तरं राशित्रयाल्पं तदा शुक्लमानं च चन्द्रबिम्बार्धादल्पमतः शुक्लाङ्गुलं पिरचमाभिमुखं कर्णसूत्रे दत्त्वा तस्मात् स्वभासूत्रेण पिरलेखवृत्ते कृते शुक्लेन्दु-खण्डाकृतिरुत्पद्यते । यदा तदन्तरं तुलादित्रये तदा कृष्णं बिम्बार्धादल्पं तद्वशेनापि पिरचमाभिमुखं युक्तम् । एवं कर्कटादित्रयेऽपि कृष्णेन्दुखण्डाकृतिर्मकरादिषु च मासस्य तुर्यचरणे शुक्लश्रङ्कोन्नतिरुत्पद्यते तत्र पूर्वाभिमुखं शुक्ल संस्थानं भवति । श्रत्र का का स्थूलता वास्तवपरिलेखसाधनं च कथिमत्येतदर्थं मत्कृता वास्तवचन्द्र-श्रङ्कोन्नतिर्द्र हिन्या ॥ २-६ ॥

वि. भा — एकेनेष्टेन राशिना कोटिभुजकर्णानपवर्त्य भूमौ शुक्लकृष्ण-पक्षयोः पूर्वापरदिगभिमुखं लिखेत्, कथं लिखेदिति कथयति । इष्टं बिन्दुरिव परि— कल्प्य तस्माद् भुजं दत्वा भुजाग्राद्यथा दिशं पूर्वोपरां कोटि तयोर्मध्ये तिर्यंक् कर्णं च दत्वा कर्णाग्रे चन्द्रबिम्बं विलिख्य तत्र कर्णमार्गेण चन्द्रबिम्बे शुक्लं दत्वा शुक्ला- ग्रात् परिलेखतुल्येन सूत्रेण (स्वभा) समेन मानेन कर्गोऽङ्कनं कृत्वा तत्केन्द्रात् स्वभया वृत्तं परिलिख्य कर्गागितस्थे रात्रिसम्बन्धिन शुक्ले शुक्ल संस्थानं भवित शुक्लाग्रं कस्यां दिशि कर्गासूत्रे दत्वा परिलेखं कुर्यादित्याह। चन्द्रात्सूर्यं विशोध्य शेषं ग्राह्मम्। मेष।दिराशित्रये तुलादिराशित्रये च शेषे पश्चिमाभिमुखं कर्कटादिराशित्रये मकरादिराशित्रये च शेषे पूर्वाभिमुखं शुक्लं देयमिति। एवं वा संस्थान मित्य-स्याग्रे सम्बन्धः।।

#### ग्रत्रोपपत्ति:

यदा रिवचन्द्रयोरन्तरं राशित्रयाल्पं तदा शुक्लमानं च चन्द्र बिम्बार्धादल्पमतः शुक्लाङ्गुलं कर्णांसूत्रे पश्मिाभिमुखं दत्वा तस्मात् स्वभासूत्रेगा परिलेखवृत्ते कृते शुक्लच द्रं खण्डाकृतिजयिते । यदा तदन्तरं तुलादिराशित्रये तदा कृष्णं बिम्बार्धादल्पं तद्वरोनापि पश्चिमाभिमुखं युक्तम् । एवं कर्कटादित्रयेऽपि कृष्णचन्द्रखण्डाकृतिः । मकरादिषु मासस्य चतुर्थचरणे शुक्लप्युङ्गोन्नतिरुत्पद्यते तत्र पूर्वाभिमुखं शुक्ल संस्थानं भवतीति । सिद्धान्तशेखरे ''ग्रादर्शोदरसोदरेऽवनितले बिन्दुं प्रकल्योष्णगुं स्वाशायां भुजमुत्तरेतरदिशं कोटिं तदग्रात्ततः। प्राक्चन्द्रेऽपरदिङ्मुखीमपरगे पूर्वायतां दापयेत् दोः कोट्यग्रगतां श्रुति शशिवपुः कोटिश्रवः संयुतौ ॥ शुक्लं च श्रुति सूत्रगाम्यपरतः शुक्लेऽसिते पूर्वतः कृष्णं व्यत्ययतोऽल्पकेन कृतयोः कार्ये परी-लेखनम् । शुक्लाग्रात् परिलेखसूत्रविहिते वृत्तम्रमे जायते संस्थानं नभसः स्थले प्रतिदिशं चण्डीशचूड़ामगोः ।।" अस्यार्थः — ग्रानीतं शुक्लमानं शुक्लपक्षे पश्चिम- बिन्दोः कर्णसूत्रमार्गेगा देयम् । कृष्णा प्रक्षे पूर्वबिन्दोर्देयम् । कृष्णमानं व्यत्ययात् शुक्लपक्षे पूर्वबिन्दोः कृष्णपक्षे पश्चिमबिन्दोरित्यर्थः । स्रानीतयोः शुक्लकृष्णयो-मुँध्ये न्यूनपरिमारोन परिलेखनं कार्यम् । शुक्लकृष्णयोर्मध्ये योऽल्पस्तेनैव श्रुङ्गोन्न-तिज्ञानार्थं परिलेखः कर्त्तन्य इति । शुक्लाग्रात् परिलेखसूत्रेण कृते वृत्ते चन्द्रस्य प्रतिदिशमाकाशस्य संस्थानं भूमौ ज्ञायते । शिष्यघीवृद्धिद तन्त्रे "यचिह्नं समभुवि भानुमान् स तस्मात् दातव्यः स्वदिशि भुजस्ततोऽपि कोटिः। प्रागिन्दावपर ककुप्मुखी प्रतीच्यां प्रागग्रा दिनकरचिह्नतश्च कर्णः ॥ श्रवगाकोटियुतौ शशिमण्डलं श्रवगसूत्र-मिहापरपूर्वकम् । झषवशेन च शेषदिशौ ततः खटिकया सुपरिस्फुटमालिखेत्।। अपरतः श्रवगोन सितं नयेदसितमप्यसिते सितदीधितौ। धनददिग्भवदक्षिगा-परिधिभिर्जनयेच्च झषद्वयम् ॥ तिमिभवमुखपुच्छसक्तरज्ज्वोर्भवति च यत्र समागमः प्रदेशे । तत उडुपतिशुक्लचिन्हलग्नं समभिलिखेत् सितसिद्धये सुवृत्तम् ।।'' लल्लोक्त प्रकार ईदृशोऽस्ति । सर्वेषां ब्रह्मगुप्त-लल्ल-श्रीपति-भास्करा-चार्याणां श्रङ्कोन्नति परिलेखः समान एव । सूर्यं सिद्धान्ते ''दत्वाऽर्क संज्ञितं बिन्दुं ततो बाहुं स्वदिङ्मुखम् । ततः पश्चान्मुखीं कोद्धिं कर्णा कोट्यग्रमध्यगम् ॥ कोटि-कर्ण युताद्विन्दोर्बिम्बं तात्कालिकं लिखेत्। कर्णसूत्रेरण दिक् सिद्धि प्रथमं परिकल्प-

धेत् ।। शुक्लं कर्गोन तद्भिम्बयोगादन्तम् बं नयेत् । शुक्लाग्रयाम्योत्तरयोर्मध्ये मत्स्यौ प्रसाधयेत् ।। तन्मध्यसूत्रसंयोगाद्धिन्दुत्रिस्पृग् लिखेद्धनुः । प्राग्बिम्बं याद्दगेव स्यात् ताद्दक् तत्र दिने शशी ।। कोट्यादिक् साधनात् तिर्यक् सूत्रान्ते श्रुङ्ग-मुन्नतम् । दर्शयेदुन्नतां कोटिं कृत्वा चन्द्रस्य साकृतिः ।। कृष्णे षड्भयुतं सूर्यं विशोध्येन्दोस्तथा सितम् । दद्याद्वामं भुजं तत्र पश्चिमं मण्डलं विधोः ।।" ईदृशः परिलेख-विधिरस्ति ।।

#### श्रत्रोपपत्तिः।

रिवकेन्द्राद्याम्योत्तरवृत्तधरातले लम्बं कृत्वा लम्बमूले रिवः किल्पतः। एवं चन्द्रकेन्द्राद्याम्योत्तरवृत्तधरातले यो लम्बस्तन्मूले चन्द्रः क्रिल्पतः। ततो याम्योत्तर-वृत्तधरातले किल्पतरिवचन्द्रयोर्याम्योत्तरमन्तरं तद् भुजयोः संस्कारात् स्पष्ट-भुजतुल्यम्। सूर्यस्यास्तकाले क्षितिजे स्थितत्वात् किल्पतरिवयाम्योत्तरवृत्तधरातले याम्योत्तररेखायामेव भविष्यत्यतस्तयोरूध्वधरमन्तरं कोटिरूप चन्द्रशङ्कुसमम्। तत्र परिलेखे लाघवार्थं शङ्कुद्वादशांशेन शङ्कुर्भुं जस्तद्वर्गयोगमूलसमः कर्णक्चा-पर्वत्तितः। स्रतो रिवबिन्दुतो भुजं दत्वा तदस्रादूष्वधरुष्ठपां कोटि दत्वा कोट्यग्र-रिविबिन्दुगतं कर्णस्त्रं दत्तम्। कोट्यग्रे किल्पतचन्द्रबिम्बं तत्र किल्पतरिवः कर्णमार्गेण शुक्लं दत्तात्। स्रतस्तत्सूत्रे शुक्लं दत्तम्। कर्णरेखोपिर या याम्योत्तरा तिर्यग्रेखा तया छिन्नमर्धं बिम्बं रिविणा शुक्लं वत्तम्। कर्णरेखोपिर या याम्योत्तरा तिर्यग्रेखा तया छिन्नमर्धं बिम्बं रिविणा शुक्लं भवति। अतो दृश्यवृत्ते तत्प्रान्तयोश्च शुक्लम् । स्रतस्तद्विन्दुत्रयोपिरगतेन वृत्तखण्डेन चन्द्रखण्डाकृतिरुत्यदेते। स्त्र कोट्यूर्ध्वधरदेखोपिर या तिर्यग्रेखा तद्वशतो भुजान्यदिशि श्रृङ्गमुन्नतं भवति। एवमेव परिलेखो भास्कराचार्यस्याप्यस्ति। परन्तु केषामिप प्राचीनाचार्याणां श्रृङ्गोन्नितपरिलेखः समीचीनो नास्तीिति ।।२–६॥

#### श्रब परिलेख को कहते हैं।

हि. भा.—एक किसी इष्ट राशि से भुज कोटि ग्रौर कर्णं को ग्रपवर्त्तन देकर भूमि में शुक्ल पक्ष ग्रौर कृष्णपक्ष में पूर्व पिरचम दिशा की तरफ लिखना चाहिये। कैसे लिखना चाहिये सो कहते हैं। इष्ट बिन्दु को रिव कल्पना कर उससे भुज देकर भुजाग्र से यथादिक् पूर्वापर कोटि देकर जन दोनों के मध्य में तियंक् कर्णं को देकर कर्णं में चन्द्र को लिखकर वहाँ कर्णामागं से चन्द्रबिम्ब में शुक्ल देकर शुक्लाग्र से परिलेख तुल्य सूत्र (स्वभातुल्य सूत्र) से कर्णं में श्रिक्कत कर उस बिन्दु को केन्द्रमान कर स्वभाव्यासार्ध से वृत्त लिखकर कर्णंगितस्थ रात्रि सम्बन्धी शुक्ल में शुक्ल संस्थान होता है। कर्णं सूत्र में शुक्लाग्र को किस दिशा में देकर परिलेख करना चाहिये सो कहते हैं। चन्द्र में सूर्य को घटा कर जो शेष रहे उसको ग्रहण करना चाहिये। मेषादि तीन राशियों में ग्रौर तुलादि तीन राशियों में शेष में पिरचमाभिमुख शुक्ल देना चाहिये। तथा कर्कटादि तीन राशियों में ग्रौर मकरादि तीन राशियों में शेष में प्रविचमाभिमुख शुक्ल देना चाहिये। इति।

#### उपपत्ति ।

जब रिव ग्रौर चन्द्र का ग्रन्तर तीन राशि से ग्रन्प होता है तब शुक्लमान भी चन्द्र बिम्बार्ध से ग्रन्प होता है ग्रतः कर्ण सूत्र में शुक्लाङ्गुल को पश्चिमाभिमुख देकर वहां से स्वभासूत्र व्यासार्ध से परिलेख वृत्त करने से शुक्ल चन्द्रखण्डाकृति बनती है। जब वह ग्रन्तर तुलादि तीन राशि में हो तब कृष्ण बिम्बर्धात्प होता है उसके वश से पश्चिमाभिमुख ग्रुक्त है। एवं कर्क्यादि तीन राशियों में भी कृष्णचन्द्र खण्डाकृति होती है। मकरादि तीन राशियों में मास के चतुर्थचरण में शुक्ल श्रुङ्गोन्नित बनती है। वहां पूर्वाभिमुख शुक्ल संस्थान होता है। सिद्धान्त शेखर में 'ग्रादर्शोदर सोदरेऽवितले बिन्दुं प्रकल्प्योष्णागुं स्वाशायां' इत्यादि संस्कृतोपपत्ति में लिखित श्लोक से श्रीपति ने परिलेख प्रकार लिखा है। शिष्यधीवृद्धिद तन्त्र में 'यच्चिह्न समभुवि भानुमान् स तस्मात् दातव्यः स्वदिशि भुजः' इत्यादि संस्कृतोपपत्ति में लिखित श्लोकों से लल्लाचार्योक्त प्रकार भी ग्राचार्यों (ब्रह्मगुप्त)क्त प्रकार ग्रीर श्रीपत्युक्त प्रकार तथा भास्करोक्त श्रुङ्गोन्नित प्रकार के समान ही है। सूर्य सिद्धान्त में 'दत्वाऽकं संज्ञितं बिन्दुं ततो बाहुं स्वदिङ् मुखम्' इत्यादि संस्कृतोपपत्ति में लिखित श्लोकों से सूर्य सिद्धान्तकार ने परिलेख प्रकार लिखा है इसी तरह के परिलेख भास्करोक्त भी हैं लेकिन कोई भी प्राचीनाचार्योक्त प्रकार समीचीन नहीं है इति ।।२—६।।

## इदानीं प्रकारान्तरेण परिलेखमाह । बाहुज्येन्द्रदलगुरा कर्णविभक्ता भुजान्यदिक् चन्द्रे । कर्णोभुजाग्रतञ्चन्द्रमध्यतः पूर्वबच्छेषम् ।।७।।

सु. भा.—वा एवं वक्ष्यमाएां संस्थानं शुक्लसंस्थानं ज्ञेयं। अभीष्टस्थाने केन्द्रं प्रकल्प्य चन्द्रबिम्बं परिलिख्य दिशक्च प्रसाध्य ततः पूर्वेश्युङ्गोन्नत्यध्यायविधिना बाहुज्या भुजा साध्या सा चन्द्रदेलेन चन्द्रबिम्बार्घेन गुएगा कर्रोन विभक्ता सा चन्द्रे चन्द्रबिम्बेऽन्यदिक् भुजा भवति। ततक्चन्द्रमध्यतक्चन्द्र केन्द्राद्भुजायतक्च कर्णांसंस्थानं ज्ञेयम्। ज्ञाते कर्णां संस्थाने शेषं पूर्ववत् ज्ञेयम्।

श्रत्रोपपत्तिः । श्रत्र रवेर्यद्दिक् चन्द्रः सं प्रथमं भुजः साधितो भुजाग्राच्चन्द्र-केन्द्रगता रेखा कोटिः । कोटिस्त्रमेव (चन्द्रबिम्बे पूर्वापररेखा । कर्णसूत्रं च चन्द्र-बिम्बपरिधौ कोटिस्त्राद् भुजविपरीतिदिशि लग्नं तत्स्थानज्ञानार्थं चन्द्रबिम्बार्धे भुजः परिग्रीतस्ततः कर्णसंस्थानज्ञानं सुगमम् ॥ ७ ॥

वि. भा.-पूर्वोक्तपरिलेखक्लोकानामन्ते 'एवं वा संस्थानम्' इत्यस्ति एतस्यार्थः वा एवमग्रे कथितं शुक्लसंस्थानं बोध्यम् । इष्टस्थाने कमि बिन्दुं केन्द्रं मत्वा चन्द्रबिम्बं विलिख्य दिक्साधनं कृत्वा शृङ्गीन्नत्यध्यायोक्तविधिना भुजज्या (भुजा) साध्या सा चन्द्रबिम्बार्धेन गुगा कर्णेन भक्ता तदा चन्द्र बिम्बेऽन्यदिक्

भुजा भवति । ततश्चन्द्रकेन्द्राद् भुजाग्रतश्च कर्णसंस्थानं ज्ञेयम् । श्रवशिष्टं पूर्ववदेव बोद्धव्यम् ॥

#### ग्रत्रोपपत्तिः।

रवेर्यस्यां दिशि चन्द्रस्तत्र प्रथमंभुजः साधितः । भुजाग्राच्चन्द्रविम्बकेन्द्रग्रता रेखाकोटिः । इयमेव कोटिरेखा चन्द्रविम्बे पूर्वापररेखा । कर्णसूत्रं च चन्द्रविम्ब-परिधौ कोटिसूत्राद् भुजविपरीतदिशि लग्नं तत्स्थानज्ञानार्थं चन्द्रविम्बार्धे भुजः परिएातः कृतस्ततः कर्णसंस्थानज्ञानं सुलभम् ॥७॥

#### ग्रब प्रकारान्तर से परिलेख को कहते हैं।

हि. भा.—ग्रभीष्ट स्थान में केन्द्र मान कर चद्र बिम्ब को लिखकर दिशाओं का ज्ञान करना चाहिये तब पूर्वप्रुङ्गोन्नत्यध्यायोक्त विधि से भुजज्या साधन करना उसको चन्द्र बिम्बार्च से गुर्गाकर कर्गा से भाग देने से फल चन्द्र बिम्ब में ग्रन्य दिशा की भुजज्या होती है। तब चन्द्र केन्द्र से ग्रौर भुजाग्र से कर्गा संस्थान समक्ता चाहिये। ग्रवशिष्ट विषय पूर्ववत् समक्ता चाहिये इति।।

#### उपपत्ति ।

रिव से जिस दिशा में चन्द्र है वहाँ पहले भुज साधित है। भुजाप्र से चन्द्रकेन्द्र गत रेखा कोटि है। कोटि रेखा ही चन्द्रबिम्ब में पूर्वापर रेखा है। कर्णसूत्र चन्द्रबिम्ब परिधि में कोटिसूत्र से भुज विपरीत दिशा में लगता है उस स्थान के ज्ञान के लिये चन्द्र बिम्बार्ध में भुज को परिएात किया गया, तब कर्ण संस्थानज्ञान सुलभ ही है इति।।७।।

#### इदानीं फलके परिलेखमाह।

## प्राच्यपरे विपरीते फलकेऽन्यत् सर्वमुक्तवच्छेषम् । श्रृङ्गोन्नतिपरिलेखाश्चत्वारः शीतकिरणस्य ॥ ॥ ॥ ॥

सु. भा- पलको गृहणपिरलेखवत् प्राच्यपरे दिशौ विपरीते कार्ये। भ्रन्य-स्सर्वं शेषमविशष्टं कर्मोक्तवत् कार्यम्। एवं शीतिकरणस्य चन्द्रस्य श्रृङ्गोन्नति-परिलेखाश्चत्वारो भवन्ति। भूमौ प्रकारद्वयं तद्वशतः फलके प्रकारद्वयमिति चत्वारः परिलेखप्रकारा भवन्तीति।

अत्रोपपत्तिः । ग्रह्ण परिलेखवत् फलकं परिवर्त्याकाशे संस्थाप्य सर्वा दिशो वास्तवा बोध्या इति ॥ ८॥

वि. भा--फलके पर्वापरे दिशौ विपरीते कार्ये। अन्यत् सर्वं शेषं कर्मोक्तवत्

कर्त्तंव्यम् । एवं चन्द्रस्य श्रृङ्गोन्नति परिलेखाश्चत्वारो भवन्ति । प्रकारद्वयं भूमौ तद्वशतः प्रकारद्वयं फलके इति परिलेखस्य चत्वारः प्रकारा भवन्तीति ॥

#### श्रत्रोपपत्तिः।

पूर्वं २-६ श्लोकोक्तपरिलेखोपपत्तौ सूर्यसिद्धान्तोक्तप्रकारो योऽस्ति स फलके परिलेखप्रकारोऽस्ति तेनैव फलके परिलेखचमत्कृतिर्ज्ञातव्येति ॥८॥

#### भ्रब फलक में परिलेख को कहते हैं।

हि. भा. — फलक में पूर्वदिशा और पश्चिम दिशा को विपरीत करना चाहिये। अन्य सब अवशिष्ट कर्म पूर्ववत् करना चाहिये। इस तरह चन्द्र का श्रृङ्गोन्नितपरिलेख चार प्रकार का होता है। दो प्रकार भूमि पर और उसके वश से दो प्रकार फलक पर ये चार प्रकार परिलेख के होते हैं इति।

#### इदानीं विशेषमाह।

## ग्रहयोगेन्दुच्छायाग्रहोदयामयभग्रहमुनीनाम् । तत्क्रान्तिज्याप्रश्नोत्तराणि भग्रहयुतौ न पृथक् ॥६॥

सु. भा- अत्र मध्यगित-स्पष्टगित-त्रिप्रश्न-ग्रहण्-श्रुङ्गोन्नत्यध्यायेषु पंचस्वे-वोत्तरिधिकारा स्नाचार्येणोक्ता स्रन्येषु िकमु नेत्याशङ्क्रचाह-ग्रहयोगेन्दुच्छायेति ग्रहयोगो ग्रहयुतिः । इन्दुच्छाया चन्द्रच्छायासाधनम् । ग्रहोदयास्तमयाधिकारः । भानां गृहस्य लुब्धकस्य मुनेरगस्त्यस्य चोदयास्तादिसाधनम् । एतेषां तथा भगृह-गुत्यधिकारे च मया पृथक्-पृथक् तत्क्रान्तिज्या प्रश्नोत्तराणि तेषां क्रान्तिज्या दिभिये प्रश्नास्तथोत्तराणि च नोक्तानि तत्प्रश्नोत्तराणां पूर्वप्रतिपादितपञ्चाध्याय प्रश्नोत्तरान्तर्गतस्वादित्याचार्याशय इति ॥ ९॥

वि. मा.—प्रहयुतिः । चन्द्रच्छायासाधनम् । प्रहाणामुदयास्ताधिकारः । नक्षत्राणां ग्रहस्य लुब्धकस्य मुनेरगस्त्र्यचोदयास्तादि साधनम् । एतेषां तथा भग्रह-युत्यधिकारे पृथक् पृथक् तत् क्रान्तिज्या प्रश्नोत्तराणि तेषां क्रान्तिज्यादिभियें प्रश्नास्तथोत्तराणि च न कथितानि, ग्रघोलिखितपश्चाध्यायप्रश्नोत्तरान्तगंतत्वात्-मध्यगति—स्पष्टगति—त्रिप्रश्न-प्रहण्—श्रृङ्गोन्नत्यध्यायेषु पञ्चस्वेवोत्तराधिकारा स्राचार्येण कथिताः ॥९॥

#### अब विशेष कहते हैं।

हि. भा. - प्रहयुति, चन्द्रच्छाया साधन, प्रहों के उदयास्ताधिकार, नक्षत्रों के प्रह के

लुब्धक मुनि, ग्रगस्त्य के उदयास्तादि साधन । इन सबों के तथा भग्रहयुत्यधिकार में पृथक् पृथक् क्रान्तिज्यादि से प्रश्न श्रौर उत्तर नहीं कहा गया है, क्योंकि वे अधो लिखित पांच अध्यायों के प्रश्नोत्तरान्तर्गत है। मध्यगति—स्पष्टगति—त्रिप्रश्न—ग्रहगा--श्रुङ्गोन्नित इन पांच श्रध्यायों में ही उत्तराधिकार को ग्रांचार्य ने कहा है इति ।।६।।

#### इदानीमध्यायोपसंहारमाह।

इति परिलेखाध्यायः शशाङ्कश्यङ्गोन्नतेर्भु जाद्येषु । शशिश्यङ्गोन्नत्युत्तरमार्यादशकेन सप्तदशः ॥१०॥

सु. भा.—इति भुजाद्येषु साधनेषु शशिश्यङ्गोन्नत्युत्तरं नाम शशिश्यङ्गोन्नतेः परिलेखाध्याय आर्यादशकेन सप्तदशो जात इति ॥ १० ॥

मधुसूदनसूनुनोदितो यस्तिलकः श्रीपृथुनेह जिष्गुजोक्ते । हृदितं विनिध्याय नूतनोऽयं, रचितः श्रङ्गविषौ सुधाकरेगा ॥

इति श्रीकृपालुदत्तसूनुसुधाकरद्विवेदिविरिचते त्राह्मस्फुटसिद्धान्तनूतनिलके श्रृङ्कोन्नत्युत्तराध्यायः सप्तदश ॥ १७ ॥

वि. भा.—इति भुजाद्येषु साधनेषु चन्द्रश्रङ्गोन्नत्युत्तरं नाम चन्श्रङ्गोन्नतेः परिलेखाध्याय श्रार्यादशकेन सप्तदशः समाप्तो जात इति ॥१०॥

इति ब्राह्मस्फुट सिद्धान्ते चन्द्रश्रङ्कोन्नत्युत्तराध्यायः सप्तदशः ॥१७॥

#### ग्रब ग्रध्याय के उपसंहार को कहते हैं।

हि. मा. — भुजादि साधनों में चन्द्रशृङ्गोन्नित का चन्द्रशृङ्गोन्नत्युत्तरनामक दश आर्याओं से युक्त सत्रहवां ग्रध्याय समाप्त हुग्रा इति ।।१७।।

> इति ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त में चन्द्रश्रुङ्गोन्नति का उत्तराध्याय (सत्रहवां ग्रध्याय) समाप्त हुग्रा ।

# ब्राह्यस्फुटसिद्धान्तः

कुट्टका ध्यायः

# ब्राह्यस्फुटसिद्धान्तः

#### म्रथ कुट्टकाध्यायः

कुट्टकाध्यायः प्रारभ्यते । तदारम्भप्रयोजनं कथ्यते ।

प्रायेगा यतः प्रश्नाः कुट्टाकाराहते न शक्यन्ते । ज्ञातुं वक्यामि ततः कुट्टाकारं सह प्रश्नैः ॥१॥

सु. भा-—क्रुट्टाकाराहते विना यः प्रायेगा बाहुल्येन गगाकैः प्रश्ना ज्ञातुं न शक्यन्ते ततः प्रश्नैः सह कुट्टाकारं वक्ष्यामीति ॥ १ ॥

वि. भा.—यतः प्रायेण (बाहुल्येन) कुट्टाकारं (कुट्टकं) बिना गाणितिकैः प्रश्ना ज्ञातुं न शक्यन्ते ततः (तस्मात्कारणात्) प्रश्नैः सह कुट्टाकारं कथया-मीति ॥१॥

अब कुट्टकाघ्याय प्रारम्भ किया जाता है। उसके आरम्भ करने के प्रयोजन को कहते हैं।

हि. भा. — क्योंकि प्रायः कुट्टाकार बिना गराक प्रश्नों को समभने में समर्थन नही होते हैं इसलिये प्रश्नों के साथ कुट्टाकार (कुट्टक) को कहता हूं इति ।।१।।

इदानीं कुट्टकादीनां प्रशंसामाह।

कुट्टकखर्णंघनाव्यक्तमध्यहररोकवर्णभावितकैः। भ्राचार्यस्तन्त्रविदां ज्ञातेर्वगंप्रकृत्या च ॥२॥

सु. मा.—कुट्टकेन । खेन शून्यसङ्कलनादिना । ऋणधनयोः सङ्कलनादिना । अव्यक्तसङ्कलनादिना । मध्यहरणेन मध्यमाहरणेन वर्गसमीकरणेन । एकवर्ण-समीकरणेन । भावितेन । एतैर्ज्ञातैर्वर्गप्रकृत्या व ज्ञातया तन्त्रविदां मध्ये गणक आचार्यो भवत्यतस्तेषां ज्ञानमावश्यकमिति ॥ २॥

वि. माः —कुट्टकेन गणितेन, खेन (शून्ययोगान्तरादिना) ऋण्धनयोर्यो – गान्तरादिना, म्रव्यक्तानां योगान्तरादिना, मध्यमाहरणेन, एकवर्णसमीकरणेन, भावितसंज्ञकगणितेन एतेज्ञितिवर्गं प्रकृत्या चज्ञातया ज्योतिर्विदां मध्ये गणक आचार्यो भवतीति ।। सिद्धान्तशेखरे "वस्वर्णं कुट्टककृतिप्रकृति प्रभेदानव्यक्तवर्णं सहशे च बीजे । ते मध्यमाहरणभावितके च बुद्ध्वा निःसंशयं भवति दैवविदां गुरुत्वम् ॥" श्रीपतिनाऽप्यव्यक्तगणितभेदास्तरप्रशंसा च कृतेति ॥२॥

#### ग्रब कुट्टक ग्रादियों की प्रशंसा को कहते हैं।

हि. भा. — कुट्टकगिएत, शून्य के सङ्कलनादि, ऋएा और धन के सङ्कलनादि, अव्यक्तों के सङ्कलनादि, मध्यमाहरण, एक वर्णंसमीकरण, भावितगिएत, वर्गं प्रकृति इन सबों के समभदार गणक ज्योतिःशास्त्रज्ञों के मध्य में आचार्य होते हैं। सिद्धान्तशेखर में 'वस्वर्णं कुट्टककृतिप्रकृतिप्रभेदान्' इत्यादि वि. भा. में लिखितश्लोक से श्रीपित ने अव्यक्त गिएत के भेद और उनकी प्रशंसा की हैं इति ।।२।।

#### इदानीं कुट्टकमाह।

श्रधिकाग्रभागहाराद्द्नाग्रच्छेदभाजिताच्छेषम् । यत्तत् परस्परहृतं लब्धमघोऽघः पृथक् स्थाप्यम् ॥३॥ शेषं तथेष्टगुणितं यथाग्रयोरन्तरेण संयुक्तम् । शुध्यति गृणकः स्थाप्यो लब्धं चान्त्यादुपान्त्यगुणः ॥४॥ स्वोध्वीऽन्त्ययुतोऽग्रान्तो होनाग्रच्छेदभाजितः शेषम् । श्रधिकाग्रच्छेदहृतमिषकाग्रयुतं भवत्यग्रम् ॥४॥

सु. भा.—यत्र कोऽपि राशिरेकेन हरेण हृतोऽयं शेषः स एव राशिरपरेण हरेण हृतोऽयं शेष इति छेदद्वयं शेषद्वयं चोह्इय तं राशि कोऽपि पृच्छित तत्राधि-काग्भागहारादिधकशेषसंबंधिहारात् कि विशिष्टादूनाग्च्छेदभाजितादल्पशेषसंबंधिहारहृताच्छेषं यत् यत् परस्परहृतं लब्धं च पृथगधोऽधः स्थाप्यम् । एतदुक्तं भवित । अधिकाग्भागहारेऽल्पाग्भागहारेण् हृते यच्छेषं तेनाल्पाग्भागहारो विभक्तो यदत्र शेषं तेन प्रथमशेषं भक्तं पुनरत्र यच्छेषं तेन द्वितीयशेषं भक्तमेवं यथेच्छं कर्म कर्तव्यम् । फलानि चाधोऽधः स्थाप्यानि । एवमभीष्टं शेषं तथा केना-पीष्टेन गुणितं यथाऽग्योरन्तरेण् संयुक्तं तद्भाजकेनोपान्तिमशेषेण हृतं शुध्यित । एवं सित स गुणकः पूर्वस्थापितफलानामधः स्थाप्यो लब्धं च गुणकस्याधः स्थाप्यम् । ततोऽन्त्यात् कर्मं कर्तव्यम् । कथमित्याहोपान्त्यगुणा इति स्वोध्वं उपान्त्यगुणोऽन्त्ययुतस्ततस्तदन्त्यं त्युजेदेवमग्नान्तोऽन्त्ये य ऊर्ध्वराशिः स हीनाग्च्छेद-भाजित ऊनशेषसम्बन्धिहरेण भक्तस्तत्र यच्छेषं तदिधकशेषहरेण गुणितमिषकशेष

युतं सराशिर्भवति । स एव छेदवधस्याग्ं भवति इति—अग्रिमसूत्रेण सम्बंधः । अत्रैतदुक्तं भवति । यदि स राशिश्छेदयोर्वधसमेन हरेण भक्तस्तदा तद्धराल्पत्वात् स राशिरेव शेषं भवतीति ।

#### यथा मदुक्तमुदाहरणम्-

चतुर्स्त्रिशद्धृतो द्वचगृः पंक्तचग्रो विश्वभाजितः । तं राशि शीघ्रमाचक्ष्व यदि जानासि कुट्टकम् ॥

श्रत्र ३४ छेदस्य शेषम् २।१३ छेदस्य शेषम् १०। श्रतोऽधिकागृभागहारः= १३। ऊनागृभागहारः=३४। अनेनाधिकागृभागहारे हृते शेषम्। ततः परस्परहृते न्यासः—

$$\frac{2\xi}{\zeta} \frac{2\xi}{\zeta} \frac{\xi}{\xi} \left\{ \xi \right\}$$

$$\frac{\xi}{\zeta} \left\{ \xi \right\}$$

$$\frac{\xi}$$

अत्रैतावत् कर्मकृत्वा प्राप्तं शेषं २ यदीष्टद्वयेन गुण्यते तदा गुग्गनफलम्=४। इदमग्गन्तरेगा ८ नेन युक्तम् =१२। इदं तद्धरेगा ३ नेन भक्तं लब्धं निरग्म्=४ प्रतः फलानामधो गुग्गकस्तदधो लब्धं च संस्थाप्योपान्तिमेन स्वोध्वं हतेन्त्येन युते तद्दस्यं त्यजेदित्यादिनाऽग्रान्तः=३६। श्रग्रं हीनाग्रच्छेदेना ३४ नेन भाजितो जातं शेषम्=२। इदमधिकाग्रभागहारहतमधिकाग्रयुतं जातो राशिः=३६। श्रयं यदि छदयोर्वधसमेन हारेगा—३४×१३=४४२ नेन विभज्यते तदा शेषं राशिसममेव भवति। यदि वल्ली समा स्यात् तदैवं कर्मं कर्तव्यं यदि विषमा तदा गुग्गकाधो यल्लब्धं स्थापितं तह्गां प्रकल्प्य बीजप्रक्रियया योगान्तरन्तादि कर्मं कर्तव्यम्। इदं वक्ष्यति चाचार्योऽग्रं १३ सूत्रेगोति। श्रभीष्टशेषं केन गुग्गमग्गन्तरयुतं तद्धरभक्तं शुध्यतीत्यत्र यदि शेषं रूपसमं भवेत् तदा तच्छेषमग्गन्तरसमेन गुग्गकेन गुग्गमग्गन्तरमेवातस्तत्राग्गन्तरशोधनेन तद्धरभक्तं न लब्धं निरग्रं शुन्यं लाघवेन विदितं भवेदतो भास्कराचार्येग् 'मिथो भजेत् तौ हद्दभाज्यहारौ यावद्विभाज्ये भवतीह रूपम्'—इत्युक्तमिति सर्वं मत्कृतकुट्टकोपपत्त्या स्फुटम् । (द्रष्टव्ये मच्छोधिते भास्करलीलावतीबीजे)।

भ्रत्रोपपत्तिः । कल्प्यतेऽधिकागृम्=शे, तद्धरश्च=ह,। ऊनागृम्=शे,।

तद्धरश्च = ह्, । श्रथ यथाऽधिकागृतद्धाराभ्यामालापो घटते तथा कित्पतं राशि-मानम् = हा, का + शे, । इदमूनागृहारेगा भक्तं लब्धं नीलकं तद्गुगितहरस्तच्छेष युतो जातः पूर्वराशिसमः।

ह, नी+शे,=ह, का+शे,।

समशोधनादिना नीलकमानमभिन्नम् = नी =  $\frac{\xi, \pi + (\bar{x}, -\bar{x}_3)}{2}$ 

₹.

ग्रत्र ह., ह. भाज्यहाराभ्यां यदि कुट्टकिया कियते तदा यद्राशियुग्मं स्यात् तत्रा-धरो राशिरेवाचार्यस्यागृन्तः स ह. अनेनोनागृहरेण तष्टः शेषं कालकमानं ते भाज्यभाजकमाने भवतः' इति भास्करबीजेन कालकमानमूनागृहराल्पं जातं तद-धिकागृहारेण हतं तच्छेषयुतं राशिमानं स्यादिति । ग्रथ परमं कालकमानम्=ह. -१ । इद-ह, मनेन गुणं शे, युतं जातम्=ह, ह.-ह,+शे,=ह, ह.-(ह.-शे,) ।

श्रत्र प्रश्नानुसारेगा ह, > शे, । श्रत ह, — शे, इदं धनात्मकं तेन पूर्वागतं राशिमानं सर्वदा—ह, ह, इस्मादल्पमतश्छेदवधहरेगा भक्तं राशिमानं शेषं राशि-मानसममेवेत्युपपन्नं छेदवधस्य भवत्यगृमिति ॥ ३-५॥

वि. मा.—किश्चत् भाज्यः केनचिद्धरेण भक्तोऽयं शेषः स एव भाज्योऽपरेण् हरेण भक्तश्चायं शेष इति हरद्वयं शेषद्वयं चोक्त्वा स भाज्यः क इति प्रश्ने जायमाने, स्रिधिकशेषसम्बन्धिहरमल्पशेषसम्बन्धिहरेण् विभज्यावशेषं परस्परं विभजेत् स्र्यमर्थः—श्रिधिकशेष हरेऽल्पशेषहरेण भक्ते यच्छेषं तेनाल्पशेषहरे भक्ते यच्छेषं तेन प्रथम शेषे भक्ते यच्छेषं तेन द्वितीयशेषं भजेदिति क्रिया वारंवारं कार्या, फलानि चाधोऽधः स्थाप्यानि । एवमभीष्टं शेषं तथा केनापीष्टेन गुणितं यथा शेषयोरन्तरेण युतं तद्धरेणोपान्तिमशेषेण भक्तं शुध्यति । एवं सित स गुणकः पूर्वस्थापितफलानामधः स्थाप्यः । लब्धं च गुणकस्याधः स्थाप्यम् । ततोऽन्त्यात्कमं कर्त्तव्यम् । स्वोध्वं उपान्त्यगुणोऽन्त्ययुतस्तदन्त्यं त्यजेत् । एवमन्त्ये य ऊर्ध्वराशिः स हीनशेषसम्बन्धिहरेण भक्तो यच्छेषं तदिधकशेषेण गुणितं—स्रिधकशेषयुतं तदा स राशिभंवति । स एव छेदवधस्याग्रं भवतीत्यस्याग्रिमसूत्रेण सम्बन्धः ।

## स्रत्रोदाहरएां म. म. सुघाकरद्विवेद्युक्तम्।

चतुस्त्रिशद्धृतोद्वयग्रः पङ्क्तयग्रो विश्वभाजितः । तं राशि शीघ्रमाचक्ष्व यदि जानासि कुट्टकम् । ग्रत्र ३४ हरस्य शेषम् = २ । तथा १३ हरस्य शेषम् = १० ग्रतोऽधिकशेषहरः = १३ । अल्पशेषहरः = ३४ । ग्रनेनाधिकशेषहरे भक्ते शेषम् = १३, ततः परस्परभजनेन जाता वल्ली उपान्तिमेन स्वोध्वे हतेऽन्त्येन युते तदन्त्यं २ | ३६ त्यजेदित्यादिनाऽग्रान्तः = ३६ ग्रयं हीनाग्रच्छेदेना (हीनशेषहरेगा) ऽनेन १ १४ भक्तो जातं शेषम् = २ । इदमधिकाग्रभागहार (ग्रधिक शेषहर) गुणित-१ ८ मधिकशेषयुतं जातो राशिः = ३६ अयं यदि हरयोर्घातसमेन हरेगा ६ ३४×१३ = ४४२ नेन विभज्यते तदा शेषं राशिसममेव भवित । एवं वल्ली यदि समा स्यात् तदैवं कर्म कर्त्तंच्यम् । यदि च विषमा तदा गुणकाधो यल्लब्धमस्ति तह्यां प्रकल्प्य बीजिक्ष्यया योगान्तरादि कर्म कर्त्तंच्यम् । ग्रभीष्ट-शेषं केन गुणमग्रान्तर (शेषान्तर) युतं तद्धरभक्तं शुध्यतीत्यत्र यदि शेषं रूपसमं भवेत् तदा तच्छेषं शेषान्तरसमेन गुणकेन गुणं शेषान्तरमेवातस्तत्र शेषान्तरशोधनेन तद्धरभक्तं न लब्धं निरग्रं शून्यं विदितं भवेदतो 'मिथो भजेतौ हृद्धभाज्य-हारौ यावद्धिभाज्ये भवतीह रूपम्' भास्कराचार्येण कथितम् । सिद्धान्तशेखरे 'ग्रल्पाग्रहृत्या बृहदग्रहारं छित्त्वाऽवशेषं विभजेन्मिथोऽतः । ग्रग्रान्तरं तत्र युतिं प्रकल्प्य प्राग्वदगुणः स्यादिधकाग्रहारः । तेनाहतः स्वाग्रयुतस्तदग्रं छेदाहृतिः । श्रीपत्युक्तप्रकारोऽयमाचार्योक्तप्रकारानुरूप एव । बीजगिणते लीलावत्यां च 'भाज्यो हारः क्षेपकश्चापत्यं' इत्यादिना आचार्योक्तापेक्षयाऽतीवस्पष्टरूपेण भास्कराचार्येण प्रदिपादितोऽस्तीति ॥

#### अत्रोपपत्तिः

कल्प्यतेऽधिक शेषम् = शे । तद्धरश्च = ह । श्रल्पशेषम् = शे । तद्धरश्च = हं, यदाऽधिकशेषतद्धराभ्यामालापो घटते तथा किल्पतं राशिमानम् = ह. क + शे इदमल्पशेषहरेण भक्तं लब्धं न तद्गुणितहरस्तच्छेषयुतो जातः पूर्वराशिसमः । हे. न + शे = ह. क + शे समशोधनादिना न मानमभिन्नम् = न = हि. क + शे समशोधनादिना न मानमभिन्नम् = न = हि. क + शे समशोधनादिना न मानमभिन्नम् = न = हि. क + शे समशोधनादिना न मानमभिन्नम् = न = हि. क + शे समशोधनादिना न मानमभिन्नम् = न = हि. क + शे समशोधनादिना न मानमभिन्नम् = न = हि. क + शे समशोधनादिना न मानमभिन्नम् = न = हि. क + शे समशोधनादिना न मानमभिन्नम् = हि. हि. क्षेत्रने श्रल्यशेषहरेण भक्तः शेषं गुणकरूपं क मानमल्पशेषहराल्पं जातं तदिष्ठिकः शेषहरेण गुणां तच्छेषयुतं राशिमानं भवति । श्रथ परमं क मानम् = है - १ इदं - ह श्रनेन गुणितं शे युतं जातम् = हे. हे - ह + शे = हे. ह - (ह - शे) । श्रथ प्रश्नानु - सारेण ह शे श्रतः ह - शे इदं धनात्मकं तेन पूर्वागतं राशिमानं सर्वदा - ह, ह श्रस्मादल्पमतो हरधातहरेण भक्तं राशिमानं शेषं राशिमानसममेव । श्रधिग्रकाभाग-हारं छिन्धादूनग्रभागहारेण । शेषपरस्परभक्तं मितगुणमग्रान्तरे क्षिप्तम् ॥ श्रध उपरिगुणितमन्त्ययुगूनाग्रच्छेदभाजिते शेषम् । श्रधिकाग्रच्छेदगुणां द्विच्छेदाग्र-मधिकाग्रयुतम् ॥ इत्यायंभटोक्तप्रकारस्यैव ब्रह्मगुप्तश्रीपत्योः प्रकारभ्र पुनरूपपा-दनमिति ॥ ३ - ५॥

#### ग्रब कुट्टक को कहते हैं।

हि. भा.—िकसी राशि को एक हर से भाग देने से जो शेष रहता हैं वही उसी राशि को दूसरे हर से भाग देने से रहता है। तब यह राशि क्या है। ग्रधिक शेष सम्बन्धी हर में ग्रल्पशेष सम्बन्धी हर से भाग देने से जो शेष रहता है उसको परस्पर भाग देने से लब्ध को पृथक् ग्रधोऽधः स्थापन करना। ग्रधिकशेष सम्बन्धी हर में ग्रल्पशेष सम्बन्धी हर से भाग देने से जो शेष रहता है उससे प्रथम शेष को भाग देना। फिर यहां जो शेष रहे उससे द्वितीय शेष को भाग देना। फिर यहां जो शेष रहे उससे द्वितीय शेष को भाग देना। इस तरह बराबर कर्म करना चाहिये। फलों को ग्रधोऽधः स्थापन करना। इस तरह ग्रभीच्ट शेष को किसी इच्ट से गुगा कर दोनों शेषों को जोड़ना जिससे वह भाजक (हर) उपान्तिम शेष से ग्रुद्ध हो। इस तरह वह गुगाक पूर्वस्थापित फलों के ग्रधः स्थापन करना। तब ग्रन्त से कर्म करना चाहिये। कैसे सो कहते हैं। उच्वांच्क्र को उपान्त्य से गुगाकर श्रन्त्य को जोड़ देना चाहिये, उस ग्रन्त्य को त्याग देना चाहिये। इस तरह ग्रन्त्य में जो उच्वं राशि होता है उसको ग्रल्प शेष सम्बन्धी हर से भाग देने से जो शेष रहे उसको ग्रधिक शेष सम्बन्धी हर से गुगाकर ग्रधिक शेष सम्बन्धी हर से गाग देने से जो शेष रहे उसको ग्रधिक शेष सम्बन्धी हर से गुगाकर ग्रधिक शेष को जोड़ने से राशि होता है।।

#### यहां म. म. सुधाकर द्विवेदी का उदाहरए। है।

हि. मा.— किसी राशि को चौतीस से भाग देने से दो शेष रहता है और तेरह से भाग देने से दश शेष रहता है उस राशि को कहो।।

यहाँ ३४ हर का शेष = २ है। १३ हर का शेष = १० है। इसलिये अधिक शेष सम्बन्धी हर = १३ अल्प शेष सम्बन्धी हर = ३४ है। इससे अधिक शेष सम्बन्धी हर को भाग भाग देने से शेष = १३ तब परस्पर माग देने से वल्ली

३६ 'उपान्तिमेन स्वोध्वें हतेऽन्त्येन युतं तदन्त्यं त्यजेत्' इत्यादि से ग्रग्नान्त = ३६ इसको १४ ग्रन्त श्रेष्ठ ग्रेष्ठ ग्रन्त श्रेष्ठ ग्रिष्ठ ग्रन्त श्रेष्ठ ग्रिष्ठ ग्रन्त ग्रेष्ठ ग्रेष्ठ ग्रन्त श्रेष्ठ ग्रन्त ग्रेष्ठ ग्रन्त श्रेष्ठ ग्रन्त ग्रेष्ठ ग्रे

#### उपपत्ति ।

कल्पना करते हैं ग्रधिक शेष = शे । उसका हर = ह । ग्रल्प शेष = शे, इसका हर = ह जिस तरह ग्रधिक शेष और उसके हर से ग्रालाप घटे वैसे कल्पित राशिमान = ह. क + शे इसको ग्रल्प शेष सम्बन्धी हर से भाग देनेसे लब्ध न तद्गुिएत हर में शेष जोड़ने से पूर्व राशि के समान हुन्ना ह. क + शे = ह. न + शे समशोधन ग्रादि करने से न मान ग्रिभिनात्मक = ह. क + (शे - शे) यहां ह, ह इन भाज्य ग्रौर हर से यदि कुट्टक किया की ह

#### इदानीं विशेषमाह

## छेदवधस्य द्वियुगं छेद्रवधो युगगतं द्वयोरप्रम् । कुट्टाकारेगौवं त्र्यादिग्रहयुगगतानयनम् ॥ ६ ॥

सु. भा.—छेदबघस्य पूर्वश्लोकेन सम्बन्धः पूर्वं प्रतिपादितः । द्वियुगं द्वयोग्ंह्योयोगश्छेदयोवंधो भवित तथा युगगतमन्तिमयोगाद्यदगतं तद्द्वयोश्छेदयोरण्
होषं भवित । एवं कुट्टाकारेण त्र्यादिगृहयुगगतानयनं कार्यम् । स्रत्रैतदुक्तं भवित ।
यथैको गृहो दिन चतुस्त्रिशता उन्यश्च त्रयोदशदिनैरेकं भगणं भुक्तं । तयोरिन्तिमयुतेदंशदिनानि व्यतीतानि तदा कल्पात् कियन्ति दिनानि व्यतीतानीति प्रश्ने को
राशिश्चतुस्त्रिशद्धृतो दशशेषस्त्रयोदशहृतश्च दशशेष इति प्रश्नोत्तरेणैवोत्तरसिद्धिः ।
स्रत्राग्योः समत्वादिधकागृहरश्चतुस्त्रिशदेव कल्पितस्ततः पूर्वप्रकारेणाग्योरन्तरं
शून्यं गृहीत्वा गुणकारं शून्यं प्रकल्प्यागृन्तः शून्यसमो वा द्वितीयहारसमस्तदा
राशिः = ह, ह, + भो, स्रयमगृश्छेदवधश्च छेद इत्येकस्य प्रकल्प्यान्यस्यैक भगणकालस्तद्धरस्तदगृश्च पूर्वशेषसमः = शे, इति प्रकल्प्य पुनः कुट्टाकारेणेव विधिना

'गृहत्रयान्तिमयुतेर्दशदिनानि व्यतीतानि तदा कल्पगतं कि' मिति प्रश्नोत्तरमा-नेयम् । एवं त्र्यादिगृहयुगगतानयनं कार्यम् ॥ ६ ॥

वि. मा.—छेदवधस्यैतस्य पूर्वश्लोकेन सम्बन्धः । द्वियुगं (द्वयोर्गं ह्योर्योगः) छेदवधो भवति । युगगतं (ग्रन्तिमयोगाद्यद्गतं) तत् द्वयोश्छेदयोरग्रं (शेषं) भवति, एवं कुद्दाकारेण त्र्यादिग्रह्युगगतानयनं कार्यम् । यथैको ग्रहो दिनचतुस्त्रिशंता ऽन्यच त्रयोदशदिनैरेकं भगणं भुङ्क्त तयोरन्तिमयुतेर्दशदिनानि व्यतीतानि तदा कल्पात् कियन्ति दिनानि व्यतीतानीति प्रश्ने को राशिश्चतुस्त्रिशद् भक्तो दशशेषस्त्रयोदशभक्तश्त्र दशशेष इति प्रश्नोत्तरेणैव तदुत्तरसिद्धिः । ग्रत्र शेषयोः समत्वादिधकशेषसम्बन्धिहरश्चतुस्त्रिशदेव कल्पितः । ततः पूर्वप्रकारेण शेषयोरन्तरं शून्यं गृहीत्वा गुणकारं शून्यं प्रकल्प्याग्रान्तः शून्यसमो वा द्वितीयहार-समस्तदा राशिः =हः हं +शे अयं शेषो हरधातश्च हर इत्येकस्य प्रकल्प्यान्यस्यैकभगणकालस्तद्धरस्तच्छेषश्च पूर्वशेषसमः =शे इति प्रकल्प्य पुनः कुट्टाकारेणैव ग्रहान्तिमयुतेर्दशदिनानि व्यतीतानि तदा कल्पगतं किमिति प्रश्नोत्तरमानेयम् । एवं त्र्यादिग्रह युगगतानयनं कर्त्तव्यमिति ॥ ६॥

#### ग्रब विशेष कहते हैं।

हि. भा.—दो ग्रहों का योग छेदवध (हर घात) होता है अन्तिम योग से को गत है वह दोनों हर का शेष होता है। एवं कुहाकार से ज्यादि ग्रहगुगगतानयन करना चाहिये। जैसे एक ग्रह चौतीस दिन में अन्य ग्रह तेरह दिन में एक भगए। को भोग करता है। दोनों का अन्तिम योग से दश दिन का समय व्यतीत हुआ तब कल्प से कितने दिन व्यतीत हुए इस प्रश्नमें कौन राशि है—जिस को चौतीस से भाग देने से दस शेष रहता है। तेरह से भाग देने से दस शेष रहता है इस प्रश्न के उत्तर ही से उसकी उत्तर सिद्धि होती है। यहां शेषद्ध्य के समत्व से अधिक शेष सम्बन्धी हर चौतीस ही कल्पना किया गया। तब पूर्व प्रकार से दोनों शेषों के अन्तर को शून्य मानकर गुए।कार को शून्य कल्पना कर एक भगए। काल—उसका हर और शेष पूर्वशेष शे के बराबर कल्पनाकर पुन: कुइक से ग्रह के ग्रन्तिम योग से दश दिन व्यतीत हुए तब कल्पगत क्या है इस प्रश्न का उत्तर लाना चाहिये। इस तरह तीन ग्रादि ग्रहों का युग गतानयन करना चाहिये। ६।।

इदानीं भगगादिशेषतो ऽहर्गगानयनमाह।

भगगादिशेषमग्रं छेदहृतं खं च दिनजशेषहृतम् । ग्रनयोरग्रं भगगादि दिनजशेषोद्धृतं द्युगराः ॥ ७ ॥

सु. मा. --भगगादिशेषं छेदहृतमग् भवति । खं शून्यं दिनजशेषहृतमेकदिन-

संबन्धि यद्भग्णादिशेषं तिह्नजशेषं तेन हृतं द्वितीयमग्ं कल्प्यम् । भग्णादिशेष-मेकमग्ं तच्छेदो दृढ्कुदिनादि । शून्यमपरमग्ं तच्छेदो दिनजशेषिति प्रकल्प्यान-योरछेदयोर्वधसमे छेदे पूर्वोक्तकुट्टाकारेणाग्ं साध्य तद्भग्णादि दिनजशेषोद्धृतं द्युगणोऽहर्गणः स्यादिति ।

श्रत्रोपपत्तिः । श्रहर्गणप्रमाणं या । इदं कल्पभगणगुणं कुदिनहृतं लब्धं गतभगणाः का । शेषं कल्प्यते भग्ने । ततो जातं समीकरणम् । कभः या = ककु. का + भग्ने ।

स्रत्र कक्, कभ भाज्यहाराभ्यां यौ राशी तत्राधरः कभ तष्टः शेषं कालकमा-नम्। परन्तु यद्यधिकागृम् भशे, तच्छेदः कक् । ऊनागृम् ० तच्छेदश्च दिन-जभगणशेषम् कभ। तदाऽऽचार्योक्त कृट्टाकारेण छेदवधच्छेदेऽगृमानम् का. कक् +भशे। स्रत इदमगृं दिनजशेषहृतं लब्धं यावत्तावन्मानमहर्गणः स्यादिति एवं राश्यादिशेषेऽपि तत्तच्छेदाभ्यां छेदवधच्छेदेऽगृमानीय तदगृं तिह्नजशेषहृतं लब्धमहर्गणो भवतीत्युपपन्नमिति।

> भ्रत्र कोलब्र्कानुवादानुसारेगा प्रश्नरूपार्यायास्त्रुटिः सा च (इष्टभगणशेषाद्वा राश्यंशकलाविलिप्तिकाशेषात् । भ्रानयति द्युगणं यः कुट्टाकारं स जानाति ॥ ९ ॥) एवं भवितुमहंति । इयमार्यो च स्पष्टार्थो ॥ ९ ॥

वि. भाः - भगगादिशेषं (भगगाशेषम् । राशिशेषम् । कलाशेषम् । विकला-शेषम् । तत् षष्ट्यं शादि शेषं छेदहृतं (छेदेन कुदिनात्मकेन भक्तं) ग्रग्नं (शेषं) भवति । दिनजशेषेगा (एकदिनसम्बन्धिभगगादिशेषेगा) खं (शून्यं) भक्तं द्वितीय शेषं कल्प्यम् । ग्रत्रायमर्थः ---भगगादिशेषमेकमग्नं (शेषं) तच्छेदो (हरः) हदः-कुदिनानि । शून्यं द्वितीयमग्नं तच्छेदो दिनजशेषमिति प्रकल्प्य ग्रन्योश्छेदाहृति-तुल्ये छेदे पूर्वोक्तकुहकरीत्याऽग्नं (शेषं) साध्यं तद्भगगाशेषेगा भक्तं लब्धमहर्गगो भवेदिति ॥

#### ध्रत्रोपपत्तिः ।

ग्रत्र कल्प्यते ऽहर्गणमानम् चय । तदा ऽनुपातो यदि कल्पकुदिनैः कल्प-भगणा लभ्यन्ते तदाऽहर्गणेन किमित्यनुपातेन समागच्छन्ति गतभगणाः, भगण-शेषं च, तदाऽनुपातस्वरूपम् = कल्पभ × य ककु चगभगणे + भशे छेदगमेन कल्पभ × य =ककु $\times$ गभगग्ग+भशे पक्षौ (कल्पभ) भक्तौ तदा य=  $\frac{ककु \times गभगग्ग + भशे}{$ कल्पभ

स्रत्र ककु, कल्पभ भाष्यहाराभ्यां यौ राशी तत्राधरः कल्पभभक्तः शेषं गतभग्ग्मानम् । परन्तु यद्यधिव शे = भशे, तद्धरः = ककु, स्रल्पशेषं = ०, तद्धरः = कभग्ग्ग् तदा कु हकविधिना छेदवध (हरघात) समे हरे शेष मानम् = गतभग्ग्ग्. ककु + भशे स्रत इदं शेषमानं कल्पभग्ग्भक्तं लब्धं य मानं भवेद्राश्यादिशेषेऽपि तत्तच्छेदाभ्यां छेदघातसमे छेदेऽस्र (शेष) मानीय तत्कल्पभगग्गभक्तमहगंग्गो भवतीति ॥ सिद्धान्त शेखरे "चक्रक्षंभागकिलका विकलादिशेषमग्रं स्वहारविहृतं भगग्गादिभक्तम् । न्यूनाग्रमत्र हि फलं भगग्गादिनाप्तं लब्धं भवेद्दिनगग्गस्त्वपर्वात्तते स्यात् ॥" श्रीपत्युक्तोऽयं प्रकार स्राचार्योक्तिप्रकार सम एवेति ॥७॥ स्रत्र कोलब्रू कानुवादानुसारेण प्रश्नरूपार्यायास्त्रुटिर्वर्त्तं ते सा च 'इष्ट भगग्गशेषाद्वा राश्यंशकलाविलिप्तिकाशेष।त् । स्रानयित द्युगणं यः कु हाकारं स जानाित एवं भविन्तुमहंतीित ॥९॥

#### श्रब भगगादि शेष से श्रहर्गगानयन कहते हैं।

हि. मा.—भगणादि शेष (भगण शेष,राशिशेष, कलाशेष, विकलाशेष, उसके षष्ट्यं (६०) शादि शेष) को छेद (हढ़कुदिन) से भाग देने से स्वय्र (शेष) होता है। एक दिन सम्बन्धी भगणादिशेष (दिनज शेष) से शून्य को भाग देने से द्धितीयशेष होता है। ग्रर्थात् भगणादि शेष एक स्वय्र (शेष) उसका छेद (हर) हढ़ कुदिन। श्रौर शून्य द्वितीय श्रय उसका छेद दिनज शेष कल्पना कर दोनों छेदों के घात तुल्य छेद में कुहक रीति से श्रय्र(शेष)साधन करना उसको भगणशेष से भाग देने से लब्ध श्रहगंण होता है। यहां कोलबूक साहब के अनुवादानुसार प्रश्नरूप श्रार्या की श्रुटि है वह संस्कृतोपपत्ति में लिखित श्लोक के सहस्र होना चाहिये।। ।।

#### उपपत्ति ।

कल्पना करते हैं ग्रहगंगा प्रमागा = य तब ग्रनुपात करते हैं यदि कल्प कृदिन में कल्प भगगा पाते हैं तो ग्रहगंगा में क्या इस ग्रनुपात से ग्राते हैं गतभगगा ग्रौर भगगाशेष। तब ग्रनुपात स्वरूप = कल्पभ. य = गतम + भशे ककु , छेदगम से कल्पभ. य = ककु. गतभ + भशे मशे, दोनों पक्षों को कल्पभ भाग देने से य = ककु. गतभ + भशे कभ यहां ककु, कल्पभ भाज्य ग्रौर हार से जी दो राशिप्रमागा होता है उसमें ग्रधर (नीचे की) राशि को 'कल्पभ' से भाग देन से शेष गतभगगा का मान होता है। परन्तु यदि ग्रधिकाग्र = भशे, उसका हर = ककु, ग्रल्पाग्र = ०, उसका हर = कभगगा। तब कृदक विधि से छेदवध सुल्य छेद में लेषमान = गत- भगणा. ककु + भशे इसलिये इस शेषमान को कल्पभगणा से भाग देने से लब्ध य मान होता है। राश्यादिशेष में भी तत् तत् शेष के छेदद्वय से छेदद्वय घात तुल्य छेद में भ्रग्न (शेष) को लाना चाहिये, उसको कल्पभगणा से भाग देने से भ्रहगंणा होता है।। सिद्धान्तशेखर में "चक्रक्षंभाग कलिका विकलादिशेषं" इत्यादि संस्कृतोपपत्ति में लिखित श्लोक से, श्रीपित ने भ्राचार्योक्त प्रकार के सहस ही कहा है इति ।। ६।।

#### इदानीं विशेषमाह।

## दिनजभगरणादि शेषं येन गुर्णं मण्डलादिशेषकयोः। सहशच्छेदोद्धृतयोस्तद्घातमहर्गरणाद्यमतः।।=।।

सु. भा.— उद्दिष्टं मण्डलादिभगणादिशेषं यदि येन केनापीष्टेन गुगां भवेत् तदा द्वे शेषे सहशच्छेदे च कृत्वा ततस्तयोः शेषकयोः सहशच्छेदोद्धृतयोश्च कृत्वा 'भगगादिशेषमग्' छेदहृत' मित्यादिविधिना तद्घातसम्बन्ध्यग् साध्यं तदा तदग् तज्जातीयं कल्पगतं भवेदतोऽहर्गणाद्यं भवति । यथा कस्मिन् घटिकात्मके कल्पगते चन्द्रस्य भगगाशेषं ४१०५ भवेत् । यदि १३७ दिनैश्चन्द्रभगगाः पन्च ५ भवन्ति । अत्र यदि दिनानि १३७ षष्टिगुणानि कृत्वा १३७—६०=८२२० ग्रयं हरः कल्प्यते तदा सच्छेदमुद्दिष्टभगगाशेषम्  $=\frac{४१०५}{C२२०}$ । दिनजभगगाशेषं पूर्ववत् ५ । ततः 'खं

च दिनजशेषहृत' मित्यादिनोनाग् सच्छेदम् = रू। ग्रथ सच्छेदे शेषे ४१०५ ।

है। ग्रत्र शेषयोः सच्छेदयोः पञ्चभिरपवर्त्यं जाते नूतने सच्छेदे शेषे ट्रिक्ट ।

६ । श्रिषिकाग्रभागहारा दूनागृछेदभाजिताच्छेषिमत्यादिना प्रथमशेषम् = ०। तच्छेदः=१। शून्येनेष्टेन गुणकारेण गुणितं प्रथमशेषं लब्धमगान्तरेण युतं ८२१ तच्छेदेन १ हृतं लब्धं निरगृम्=८२१। स्रत्र पूर्वंलब्ध्यभावाद्वल्ली हिन् } स्रगान्तः =०। ऊनागृच्छेदभाजितः शेषम्=०। स्रिषकागृच्छेदहतिमदमिषकागृयुतं जातो राशिः द२१। इदं घटघात्मकं कल्पगतं तत् षष्टिहृतं जातं कल्पगतं दिनादि १३।४१।।

स्रत्रोपपत्तिः । 'भगणादिशेष' मित्यादि पूर्वसूत्रान्तर्गतैव ॥ ८॥

वि. भा.—मण्डलादि (भगगादि) शेषं येन केनापीष्टेन यदि गुगां भवेत्तदा द्वेशेषे सहशच्छेदे च कृत्वा तयोः शेषयोः सहशच्छेदभक्तयोः कृत्वा 'भगगादिशेष-मग्रं छेदहृत' मित्यादिना तद्घातसम्बन्ध्यग्रं साध्यं बदा तदग्रं तज्जातीयं कल्पगतं भवेत्ततो ऽहर्गगाद्यं भवतीति।

यथा किस्मन् घटिकात्मके कल्पगते चद्रस्य भगगाशेषं ४१०५ भवेत्। यदि १३७ दिनैश्चन्द्रभगगाः पञ्च ५ भवित्। ग्रत्र यदि दिनानि  $\times$  ६०= १३७  $\times$  ६० == २२० कृत्वा हरः कल्प्यते तदा सच्छेदमुिहिष्टभगगाशिषम् =  $\frac{890}{500}$ , पूर्ववत् दिनज भगगाशेषम् = ५। ततः 'खेच दिनज शेषहृत' मित्यादिना उल्पाग्रं सच्छेदम् =  $\frac{9}{5}$ । ग्रथ सच्छेदे शेषे  $\frac{890}{500}$ ,  $\frac{9}{5}$  ग्रत्र शेषयोः सच्छेदयोः पञ्चिभरपवर्त्यं जाते नवीने सच्छेदेशेषे  $\frac{29}{500}$ ,  $\frac{9}{5}$ , ग्रिषकाग्रभागहारादूनाग्रच्छेद भाजितादित्या-दना प्रथमशेषम् = ०। तच्छेदः = १, शून्येनेष्टेन गुगाकारेगा गुगातं प्रथमशेषं लब्धं शेषान्तरेगायुतं ५२१ तच्छेदेन १ हृतं लब्धं निरग्रम् = ६२१ ग्रत्र पूर्वलब्ध्यभावात् वल्ली  $\frac{1}{500}$ 

इदं घटचात्मकंकल्पगतं तत् षष्टिभक्तं कल्पगतं दिनादि ॥१३।४१॥

#### अत्रोपपत्तिः।

'भगगादिशेषमग्रं छेदहृतं खं च दिनजशेषहृत' मित्यादेरुपपत्तिदर्शनस्फुटेति ।। ।।।।

#### ग्रब विशेष कहते हैं।

हि. मा.—भगणादि शेष को यदि जिस किसी इष्ट से गुणा करते हैं तो दो शेष भीर (सहशच्छेदों) को करके सहशच्छेद से भक्त उन दोनों शेषों को करके 'भगणादि शेष-मग्रं छेदहृतं' इत्यादि से उसका घात सम्बन्धी अग्र (शेष) साधन करना चाहिये तब वह अग्र तज्जातीय कल्पगत होता है उससे महर्गणादि होता है जैसे किसी घटिकात्मक कल्पगत में चन्द्र का भगण शेष ४१०५ होता है। यदि १३७ दिनों में चन्द्र भगणा ५ होता है। यहां यदि इनको दिन १३७ ×६० = ६२२० करके हरकल्पना की जाय तब सच्छेद (छेदसिहत) उद्दिष्ट भगणा शेष =  $\frac{820}{500}$ , पूर्ववत् दिनज भगण शेष = ५ तब 'सं च दिनजशेषहृतं' इत्यादि से सच्छेद अल्पाय =  $\frac{820}{500}$ , सच्छेद शेषद्वय  $\frac{820}{500}$ , यहां छेद सिहत शेषद्वय को पांच से अपवर्त्तन देने से नवीन छेद सिहत शेषद्वय  $\frac{520}{500}$ , प्रधिकाग्रभागहारा दूनाग्रच्छेद भाजितात्' इन्यादि से प्रथम शेष = १०। उसका छेद = १, शून्य इष्ट गुणकार से गुणित प्रथम शेष में शेषान्तर ६२१ को जोड़ देने से जो होता है उसको छेद से भाग देने से लब्ध निरम्र = ६२१, यहां पूर्वलिब्ध के स्रभाव के कारण वल्ली  $\frac{500}{500}$ , यह घटघात्मक कल्प गत है इसको साठ से भाग देने से कल्पगत दिनादि ॥ १३।४१ इति ॥

#### कुट्टकाध्यायः

#### उपपत्ति ।

'भगरणादि शेषमग्र छेदहृतं लंच दिनजशेषहृतम्' इत्यादि की उपपति देखने से स्फुट है ॥ ।।।

#### इदानीं स्थिरकुट्टकमाह।

हृतयोः परस्परं यच्छेषं गुराकारभागहारकयोः । तेन हृतौ निश्छेदौ तावेव परस्परं हृतयोः ॥६॥ लब्धमधोऽघः स्थाप्यं तथेष्टगुराकारसङ्गुरां शेषम् । शुध्यति यथेकहीनं गुराकः स्थाप्यः फलं चान्त्यात् ॥१०॥ श्रग्रान्तमुपान्त्येन स्वोध्वों गुरातोऽन्त्यसंयुतोभक्तम् । निःशेषभागहारेरांवं स्थिरकुट्टके शेषम् ॥११॥

सु. भा.— यो राशिः केनचिदुिह्ष्टेन गुर्णाकेन गुर्णित एकहीन उिहृष्टभागहारेण भक्तः शुध्यति स क इति प्रश्नोत्तरार्थं प्रथमं गुर्णभागहारयोमंहत्तमा
पवर्तनमानीयते । परस्परं हृतयोर्गुणकारभागहारकयोरन्ते यच्छेषं तेन हृतौ तौ
गुर्णभागहारौ निद्यञ्जेदौ हृदौ भवत इति । ततस्तयोर्द्धं ढयोर्गुणभागहारयोः परस्परं
हृतयोर्ल्ड्यमधोऽधः स्याप्यं पूर्वप्रतिपादितकुट्टाकारविधिना । एविमदं कर्म यथंच्छिशेषपर्यन्तं कर्तव्यम् । ततस्तच्छेषं तथा केनापीष्टगुर्णकारेण् गुर्णितं रूपेण हीनं
तच्छेषसम्बन्धिच्छेदेन हृतं यथा शुध्यति । एवं सतीष्टगुर्णकारः पूर्वाधोऽधः स्थापितफलानामधः स्थाप्यस्तदन्त्याच फलं स्थाप्यम् । एवं सम्पन्नायां वल्ल्यामुपान्त्येन
स्वोध्वों गुर्णितोऽन्त्येन संयुत एवं कुट्टाकारविधिनैवागान्तं कर्मं कर्त्तव्यम् । तत्
नि:शेषभागहारेण दृढभागहारेण भक्तं शेषमेवं स्थिरकुट्टको भवतीति । अत्र प्रथमं
गुर्णकारेण भागहारो विभाज्यः।

भत्रोपपत्तिः । 'परस्परं भाजितयोर्ययोर्यः शेषस्तयोः स्यादपवर्तनं सः' इत्यादि भास्करिविधना स्फुटा इहाचार्येण रूपविशुद्धौ गुण एव साधितोऽतो ऽत्राधरराशिरेवागान्तो हढभागहारेण तष्ट इति सर्वं भास्करकुट्टकप्रकरणेन स्फुटम् ॥ ९-११॥

श्रत्रकोलब्रू कानुवादानुसारेगा प्रश्नरूपार्यायास्त्रुटिः सा च ।
(भगगादिशेषतोऽकंस्यान्येषां वा दिवागगायःँ त्वम् ।
स्थिरकुट्टकं प्रचक्ष्व कुट्टार्गाव पारगोऽसि यदि ॥ १४॥)
एवं भवितुमहंति ।

वि. भा. -- यो राशिः केनचिदुद्धिते गुराकेन गुरातः, एकहीनः, उद्दिष्ट-

हरेण भक्तः शुध्यति स राशिः कः। प्रथमं गुणहरयोर्महत्तमापवर्त्तनमानीयते। परस्परं भक्तयोर्गु णहरयोरन्ते यच्छेषं तेन भक्तौ तौ (गुणहरौ भवतः) हदौ गुण्-हरौ भवतः। ततो हद्योर्गु णहरयोः परस्परं भक्तयोर्ज्ञ ब्धान्यधोऽधः स्थाप्यानि, पूर्वप्रदिशतकुट्टकनियमेन। इदं कर्म तावत्पर्यन्तं कर्त्तव्यं यावदन्ते रूपं शेषं तिष्ठेत्। तच्छेषं तथा केनापि गुणकेन गुणितं रूपेण हीनं तच्छेषसम्बन्धिहरेण भक्तं शुध्यति। सत्येवं गुणकः पूर्वाधोऽधः स्थापितकलानामधः स्थाप्यः, तदन्तात्कलं स्थाप्यम्। एवं जातायां वत्यां उपान्तिमेन स्वाध्वों गुणितोऽन्त्येन युत इति कुट्टकिनविधिना शेषान्तं यावत्कर्मं कर्त्तव्यम्। तत् दृद्धभागहारेण् (दृद्हरेण्) भक्तं शेषमेव स्थिरकुट्टको भवतीति।।

#### अत्रोपपत्तिः ।

श्रथ महत्तमापवर्त्तनार्थं कल्प्यते । भाज्यः = य । भाजकः = क, भाजकेन भक्ते भाज्ये लब्धं = न शेषम् = प । पुनः प श्रनेन स्वहारे क भक्ते लब्धं = ल, शेषम् = ह, पुनरनेन शेषेण स्वहारे प भक्ते लब्धं = र, शेषम् = ० तदाऽवश्यमेव य, क माने ह श्रनेन निः शेषौ भवेताम् । हरलब्ध्योर्घातः शेषयुतो भाज्यसमो भवतीति तेन. य = क. न + प । क = प. ल + ह । प = ह. र एतत् समीकरणत्रयाव लोकनेन स्फुटमवसीयते यत् प श्रयं ह अनेन निः शेषः स्यात् । ततः क श्रयमपि तेनैव निः शेषो भवेत् । एवं क, प श्रनयोनिः शेषत्वात् य श्रयमपि ह अनेन निःशेषो भवेदेवेति । एतावता 'हृतयोः परस्परं यच्छेषं गुर्णकार भागहारकयो' रित्याचार्योक्तमुपपन्नम् । सिद्धान्तशेखरे "परस्परं भाजितयोस्तु शेषकं तयोर्द्धयोरप्यपवर्त्तनं भवेत् । तदुद्धृतच्छेदविभाजकौ क्रमादभीष्टनिष्नौ तु गुर्णाप्तयोः क्षिपेत्' श्रीपत्युक्तमिदमाचार्योक्तानुरूपमेवास्ति, तथा लीलावत्यां "परस्परं भाजितयोर्ययोर्यः शेषस्तयोः स्यादपवर्त्तनं सः तेनापवर्त्तेन विभाजितौ यौ तौ भाज्यहारौ हद्धंज्ञकौ स्तः ॥' इति भास्करोक्तमिप-श्राचौंयोक्तानुरूपमेवास्ति । श्राचार्येणात्र रूपशुद्धौ गुर्णक एव साधितोऽतोऽत्राधरराशिरेवाग्रान्तो हद्दभागहारेण भक्त इति ॥९-११॥

कोलब्रू कानुवादानुसारेगा प्रश्नरूपार्यायास्त्रु टिरस्ति सा च 'भगगादिशेष-तोऽर्कस्यान्येषां वा दिवा गगार्थं त्वम् । स्थिरकुट्टकं प्रचक्ष्व कुट्टाणंवपारगोऽसि यदि' ॥१४॥ एवं भवितुमर्हेति ।

#### श्रथ स्थिर कुट्टक को कहते हैं।

हि. मा.—जिस राशि को किसी उद्दिष्ट गुएक से गुएगाकर एक घटा कर उद्दिष्ट हर से भाग देने से शुद्ध होता है वृह राशि क्या है। पहले गुएक और हर का महत्तमाप— वर्त्तन लाते हैं। परस्पर गुएगक और हर को भाग देने से अन्त में जो शेष रहता है उससे

गुराक श्रीर हर को भाग देने से दृढ़ संज्ञक गुराक श्रीर हर होता है तब दृढ़ गुराक श्रीर हर को परस्पर भाग देने से जो लिब्धयाँ हो उन्हें श्रधोऽधः स्थापन करना चाहिये। पूर्व प्रदिशत कुट्टक नियम से इस कर्म को तब तक करना चाहिये जब तक श्रन्त में रूप शेष रह जाय। उस को किसी गुराक से गुराकर रूप को घटा कर उस शेष सम्बन्धी हर से भाग देने से शुद्ध हो जाय। इस तरह पूर्वाधोऽधः स्थापित फलों के नीचे गुराक को स्थापन करना चाहिये। श्रन्त में फल स्थापन करना चाहिये। इस तरह वल्ली सम्पन्न होने पर उपान्त्य से ऊर्घ्वाङ्क को गुराकर श्रन्त्य को जोड़ना। इस कुट्टक विधि से श्रग्रान्तपर्यन्त कर्म करना चाहिये। उसको दृढ़ भाग हार से भाग देने से शेष ही स्थिर कुट्टक होता है।।

#### उपपत्ति ।

महत्तमापवर्त्तंन के लिये कल्पना करते हैं भाज्य — य। भाजक — क, भाज्य में भाजक से भाग देने से लब्ध — न, शेष — प। पुनः प इससे प्रपने हर क को भाग देने से लब्ध — ल, शेष — ह। पुनः इस शेष से अपने हर प में भाग देने से लब्ध — र, शेष — ० तब अवश्य ही य, क, का मान ह इससे निः शेष होगा, हर और लब्धि के धात में शेष को जोड़ देने से भाज्य के के बराबर होता है इसलिये य — क. न + प। क — प. ल + ह। प — ह. र इन तीनों समीकरएगों को देखने से स्फुट समभ में आता है कि प यह ह इससे निः शेष होगा, तब क यह भी उसी से निः शेष होगा इस तरह क, और प के निःशेषत्व से य यह भी ह इससे निः शेष होगा ही। इससे 'हृतयोः परस्परं यच्छेषं भाग-भागहारकयोः' इत्यादि आचार्योक्त उपपन्न हुआ। आचार्यं ने रूप शुद्धि में गुएाक ही साधन किया है इसलिये यहां अधर राशि ही को दृढ़ भाग हार से भाग दिया गया है। सिद्धान्तशेखर में 'परस्परं भाजितयोस्तु शेषकं तयोई योरप्यप्ति में मान वित्या गया है। सिद्धान्तशेखर में 'परस्परं भाजितयोस्तु शेषकं तयोई योरप्यप्ति में मान लिखत है। तथा लीलावती में 'परस्परं भाजितयोर्ययोर्यः शेषः' इत्यादि संस्कृतोपपत्ति में लिखित पद्य से भासकरावार्य ने भी आचार्योक्त के अनुरूप ही कहा है। तथा लीलावती में 'परस्परं भाजितयोर्ययोर्यः शेषः' इत्यादि संस्कृतोपपत्ति में लिखित पद्य से भासकरावार्य ने भी आचार्योक्त के अनुरूप ही कहा है।।१८-११।। कोलब्रू क साहिब के अनुसार प्रश्नरूप प्रश्नरूप आर्था की त्र हि वह संस्कृतोपपत्ति में लिखित पद्य के अनुसार होना चाहिये।।१४।।

#### .इदानीं स्थिरकुट्टकादहर्गगामाह।

## इष्टभगरणादिशेषात् स्वकुट्टकगुरणात् स्वभागहारहृतात् । शेषं द्युगरणो गतनिरपवर्त्तं गुरणभागहारयुतः ॥१२॥

सुः भाः—यदि भगग्।शेषिमिष्टं तदा कल्पभगग्गा गुग्गकारः । यदा राशि-शेषिमिष्टं तदा द्वादशगुगाः कल्पभगग्गा गुग्गकारः । भागहारस्तु सर्वदेव कल्प-कुदिनानि ज्ञेयानि । एक गुग्गकारभागहाराभ्यां स्थिरं स्वकुट्टकं विधाय तत इष्टभगग्गादिशेषात् कि विशिष्टात् स्वकुट्टकगुग्गात् पुनः कि विशिष्टात् स्वभागहार- हृताद्यच्छेषं स द्युगगोऽहर्गगो भवति स गत निरपवर्त्तगुगाभागहारयुतोऽनेकघा भवति । गतः प्राप्तो निरपवर्त्तेन येनापवर्त्तेन गुणसम्बन्धी यो भागहारस्तेनार्थाद् दृढभागहारेगा युतोऽनेकघा भवतीति ।

म्रत्रोपपत्तिः । 'क्षेपं विश्विद्धं परिकल्प्य रूपं पृथक् तयोर्ये गुणकारलब्धी'— इति भास्करविधिना स्फुटा ।। १२ ।।

वि. भा.--यदि भगएशिषिमिष्टं तदा कल्प भगएा। गुएकारः । यदि च राशि शेषिमिष्टं तदा द्वादशगुएाः कल्पभगएा। गुएकारः । भागहरस्तु सदैव कल्पकुदिनानि ज्ञातन्यानि । एवं गुएएकहाराभ्यां स्थिरं स्वकुट्टकं विधाय स्वकुट्टकगुएए।त्-स्वभागहारभक्तादिष्टभगए।विशेषाद्यच्छेषं सोऽहर्गएो। भवति । निरपवर्त्तनं गुए।सम्बन्धी गतः (प्राप्तः) यो भागहारस्तेनाथिद् दृढ्भागहारेए। युतोऽनेकधा भवतीति ।।

### अत्रोपपत्तिः ।

भाज्य. गु—१ — ल ग्रत्र कुट्टकयुक्तचा ये गुरालब्बी ते ऋरात्मकक्षेपे। ततः हा
ऋरात्मकरूपक्षेपे यदि समागतगुरालब्बी तदेष्ट ऋरात्मकक्षेपे कि ये गुरालब्बी ते स्वहारभक्ते तदा वास्तवगुरालब्बी भवेताम्। लीलावत्यां 'क्षेपं विशुद्धिं परिकल्प्य रूपं पृथक् तयोर्ये गुराकारलब्बी' इत्यादि भास्करोक्तमप्येतादृशमेव। सर्वत्रैव भास्करोक्ती यादृशी विषयप्रतिपादने स्पष्टता न तादृशी-ग्राचार्योक्ताविति।।१२।।

### धव स्थिर कुट्टक के लिये ग्रहगंगा को कहते हैं।

हि. मा.—यदि भगए। शेष इष्ट है तो कल्प भगए। गुए।कार होता है। यदि राशि शेष इष्ट है तो बारह गुए।त कल्प भगए। गुए।कार होता है। भाग हार सदा कल्प कृदिन होता है। इस तरह गुए।कार और भाग हार से स्थिर स्वकुट्टक करके स्वकुट्टक गुए।त और स्वभाग हार से भक्त इष्ट भगए।दि शेष से जो शेष हो वह ग्रहर्गए। होता है हढ़ भाग हार को जोड़ने से ग्रनेकषा होता है इति।।

#### उपपत्ति ।

भाज्य. गु-१ = ल। यहां कुट्टक नियम से जो गुराक और लब्बी आती है वे हा ऋरागत्मक रूपक्षेप में । तब अनुपात करते हैं यदि ऋरागत्मक रूपक्षेप में ये गुराक और लब्बी तो इब्ट ऋरागत्मक क्षेप में क्या इससे जो गुराक और लब्बी हो उन्हें अपने हर से भाग देने से वास्तव गुराक और लब्ब होती हैं। लीलावती में 'क्षेप विशुद्धि परिकल्प्य रूप' इत्यादि भास्करोक्त भी इसी तरह है इति ।।१२।।

स्थिरकुट्टकेन विकलादिशेषाद् गृहाहर्गग्योरानयनं ब्रह्मगुप्तेन भास्करा-चार्येग चोक्तं, प्राचीनेः प्राधान्येन विकलादिशेषादहर्गगानयनार्थमेव कुट्टकविधि-रुक्तः। भास्कराचार्येण च लीलावत्यां 'ग्रस्य गणितस्य ग्रहगणिते महानुपयोग-स्तदर्थं कि स्विदुच्यते' इत्युक्त्वा तद्विधिश्च "कल्प्याथ शुद्धिव कलावशेषं षष्टिश्च भाज्यः कुदिनानि हारः । तज्जं फलं स्युविकला गुरास्तु लिप्ताग्रमस्माच कलालवाग्रम् । एवं तदूर्ध्वं च तथाधिमासावमाग्रकाभ्यां दिवसा रवीन्द्वोः ॥" विधिरुक्तः । ग्रहस्य विकलाशेषाद्ग्रहाहर्गएायोरानयनम् । तद्यथा । तत्र षष्टिर्भाज्यः । कुदिनानि हारः । विकलावशेषं शुद्धिरिति प्रकल्प्य गुरालब्धी साध्ये तत्र लब्धिर्विकलाः स्युः। गुराः कलाशेषम् । एवं कलावशेषं शुद्धिः । षष्टिर्भाज्यः । कुदिनानि हारः । लब्धिः कलाः, गुर्गो भाग (श्रंश) शेषम् । भागशेषं शुद्धिः । त्रिशद्भाज्यः । कुदिनानि हारः फल्लं भागाः । गुर्गो राशिशेषम् । एवं राशिशेषं शुद्धिः । द्वादशभाज्यः । कुदिनानि हारः । फलं गतराशयः । गुराो भगराशेषम् । कल्पभगराा भाज्यः । कुदिनानि हारः । भगरा-धोषं शुद्धिः । फलं गतभगगााः । गुर्गोऽहर्गगः स्यात् । श्रहर्गगाज्ञानेन ग्रहज्ञानं सुगम-मेव । यद्यपि श्रीपतिना कुट्टकाध्यायेऽयं विषयो (विकलादि शेषाद्ग्रहाहर्गेणयोरान-यनं) नोक्तस्तथापि प्रश्नाध्याये-एतद्विषयक प्रश्नो विलिखितो यथा ''यो राशिशे-षादय भागशेषाल्लिप्ताविलिप्तोद्भवशेषतो वा । अहोगतं तत्परशेषतोऽपि जानाति खेटं च स कुट्टकज्ञः ॥" स्रर्थात् भगर्णादि ग्रहानयने यो राशिशेषस्तस्मात् । भागशेषात् भगगादि ग्रहानयन एव योंऽशशेषस्तस्मात्। भगगादिगृहानयने कलाशेषाद्वि-कलाशेषाद्वा । बेटं (गृहं) तत्परशेषतोऽपि कला विकलादीनां पष्टच शेषु मुहुर्वेधि-तेषु तत्वरतोऽपि यः शेषस्तस्मादपि च यो गराको गतमहर्गरां जानाति स कुटुकज्ञो स्तीति ॥

अस्योपपत्तिः। कल्पकृदिनैः कल्पभग्गा लभ्यन्ते तदाऽह्गंगेन किमिति त्रैराशिकेनाऽभीष्टिदिने भग्णादिगृहानयनं कियते। तत्र पूर्वोक्तानुपातेन लब्धा भगणाऽवशिष्टं भग्गाशेषम्। तच्च भग्गाशेषं द्वादशगुणां कल्पकृदिनैभंक्तं लब्धा प्राश्यः। शेषं
राशिशेषं भवति। पुना राशिशेषं त्रिंशदगुणातं कल्पकृदिनैभंक्तं लब्धा द्वांशाः शेषं
चांशशेषं भवति। तदंशशेषं षष्ट्या गुणातं कल्पकृदिनैभंक्तं लब्धा द्वांशाः शेषं च
कलाशेषम्। कलाशेषमिप षष्ट्या गुणातं कल्पकृदिनैभंक्तं लब्धा विकला
भवन्ति शेषं विकलाशेषमिति भग्गादिशेषागां परिभाषा। स्रतोऽत्रराश्यादिशेषात्
गृहानयने कुट्टकगिणातानुसारेण सम्भवे सित भाज्यहारक्षेपाः केनाप्यङ्कं नापवर्तः नीयाः। ततः पूर्वकथितरीत्या कलाशेषस्य गुणाकः षष्टिः हारो दृदकृदिनानि।
स्रथ येन गुणाकेन गुणातश्छेदो विकलाशेषयुतः स्वगुणकेन षष्ट्या भक्तो निः शेषो
भवति सं गुणाको गृहविकला भवन्ति फलं च कलाशेषम्। एवं कलाशेषात् कला
संशशेषं च भवति। एवमन्ते भग्गाशेषज्ञानं भवेत् तस्मादहर्गणाज्ञानं च भवति।

यथा कलाशेषं षष्टिगुंगां हढ़कुदिनभक्तं लब्धं गृहिविकलाः शेषं च विकलाशेषमिति । हरलब्ध्योर्घातः क्षेपयुतो भाज्यराशिसमः ६० $\times$ कशे=गृवि $\times$ हकु+िवशे  $\therefore कशे = \frac{गृवि \times हकु + िवशे}{६०} ग्रतो हढ़कुदिनमानं येन गुंगां विकलाशेषयुतं षष्टिभक्तं निरगं भवित । स गुंगाको गृहिविकलाः । फलं च कलाशेषिमिति । एवं स्वस्वशेषगुंगाच्छेदाभ्यां तत्तच्छेषमाने भवत इति । भगगादिशेषादहंगंगानयनविधिरायंभटीये महासिद्धान्ते—$ 

भगणाद्यगाणि स्युः क्षेपा ऋण संज्ञकाः क्वहारछेदः।
भगणादीनां भाज्याभगणायंखाः गना तना तेना ॥
विकलाशेषोत्पन्नं फलं विलिप्ता गुणः कलाशेषम्।
लिप्तागृोत्पन्न फलं लिप्तागुणकोंऽशशेषं स्यात्॥
लवशेषजफलमंशा गुणको राश्यगृकं भवति।
राश्यगृोत्पन्नफलं गृहाणि गुणको भवेद् भगणशेषम्॥
मण्डलशेषप्रभवं फलं च चकाण्यहगंगो गुणकः॥" इति॥

स्थिर कुहक से ग्रहानयन और विकलादिशेष से श्रहगंगानयन ब्रह्मगुप्त श्रीर भास्कराचार्यने किया है। विकलादिशेष से श्रहगंगानयन को ही प्राचीनाचार्य प्रधानरूप से कुहक विधि कहते हैं। भास्कराचार्य ने लीलावती में 'श्रस्य गिणतस्य ग्रहगिणते महानुपयोग-स्तदर्थं कि विद्वुच्यते' यह कहकर उसकी विधि ''कल्प्याथ शुद्धिविकलावशेषं षष्टिश्च भाज्यः कुदिनानि हारः'' तज्जं फल स्युविकला गुगारतु लिप्ताग्रमस्माच्च कलालवाग्रम्। एवं तद्व्वं च तथा इत्यादि से भास्कराचार्य ने विधि कही है। ग्रह के विकलाशेष से ग्रहानयन श्रहगंगानयन करते हैं। जैसे—साठ भाज्य। कुदिन हर, विकलावशेष शुद्धि ये कल्पना कर गुगाक श्रौर लिंब साधन करना चाहिये, यहां लिंब विकला होती है। श्रौर गुगाक कलाशेप। एवं कलाशेष शुद्धि। साठ भाज्य। कुदिन हर इससे लिंब कला होती है श्रौर गुगाक भाग (श्रंश) शेष होता है। भागशेष शुद्धि, तीस भाज्य, कुदिनहर इससे लिंब गतराशि प्रमाग होता है। गुगाक भगगशेष होता है। कल्पभगगा भाज्य। कुदिन हर, भगगशेष शुद्धि इससे लिंब गतभगगा होता है। गुगाक प्रहगंगा होता है। श्रहगंगा होता है। श्रहगंगा होता है। यहां श्रीर श्रहगंगा नयन) नहीं कहा है। तथापि प्रश्नाध्याय में एतद्विषयक प्रश्न लिखे हैं जैसे—

'यो राशिशेषादय भागशेषा'दित्यादि संस्कृतोपपत्ति में लिखित श्लोक से स्पष्ट किया है। मर्थात् भगगादि ग्रहानयन में जो राशि शेष है उससे, भगगादिग्रहानयन में ही जो ग्रंश शेष है उससे भगगादि ग्रहानयन में कलाशेष से या विकलाशेष से ग्रह को ग्रीर ग्रहगंगा को जो गगाक जानते हैं वे कुदकज़ हैं।

<sup>(</sup>१) यंखा = १२ । गना = ३० । तना = ६० । तेना = ६० द्वितीयार्यभटकृते महा-सिद्धान्ते एवमेव केरलमतानुसारी सवत्रैव संख्यापाठोऽस्तीति ।

#### इसकी उपपत्ति ।

यदि कल्प कुदिन में कल्पभगरा पाते हैं तो ग्रहर्गरा में क्या इस त्रैराशिक से श्रभीष्ट दिन में भगगादि ग्रहानयन करते हैं। उपर्यु क्तानुपात से लब्ध भगगा होता है भौर शेष भगए। शेष है। इस भगए। शेष को बारह से गूए। कर कल्प कूदिन से भाग देने से लब्ध राशिप्रमारा होता है। शेष राशि शेष है। राशि शेष को तीस से गूरा। कर कल्प कृदिन से भाग देने से लब्ध अंश होता है। शेष अंश शेष होता है। इस अंश शेष को साठ से गुणा कर कल्पक्रदिन से भाग देने से लब्धि कला होती है। श्रीर शेष कला शेष होता है। कला-शेष को साठ से गुर्गाकर कल्पकुदिन से भाग देने से लब्धि विकला होती है। शेष विकला शेष होता है। यही भगए।। दिशेषों की परिभाषा है। अतः यहां राश्यादि शेष से ग्रहानयन में कुट्टक गिएतानुसार सम्भव रहने पर किसी श्रङ्क से भाज्य हार-क्षेपों को श्रपवर्त्तन देना चाहिये। तब पूर्वकथित रीति से कलाशेष के गुराक साठ, हार दृढ्कुदिन, जिस गुराक से गुणित छेद में विकलाशेष जोड़कर अपने गुणिक साठ से भाग देने से निःशेष हो वह गुणिक ग्रहविकला होती है। लब्घिकला शेष होता है। कलाशेष से कला ग्रंश शेष होता है। इस तरह अन्त में भगएशोष ज्ञान होता है। उससे अहर्गएगानयन भी होता है। जैसे कलाशेष को साठ से गुगाकर दृढ़ कूदिन से भाग देने से लब्धि ग्रहविकला होती है और शेष विकला शेष होता है। हर श्रौर लब्बि के घात में क्षेप को जोड़ने से भाज्य के बराबर होता है  $\therefore$  ६० $\times$  कशे  $\leftarrow$  प्रवि. हकु + विशे  $\therefore \frac{\sqrt{16}}{60} = \pi$ शे प्रतः हढ़कुदिन मानं जिस गुराक से गुराकर विकला शेष को जोड़कर साठ से भाग देने से निरग्र (नि:शेष) हो

जिस गुराक से गुराकर विकला शेष को जोड़कर साठ से भाग देने से निरग्र (नि:शेष) हो वह गुराक ग्रहविकला होती है। श्रौर लब्धि कलाशेष होता है। भगराादि शेष से श्रहगेंगा-नयन की विधि श्रार्थभटीय महासिद्धान्त में है जैसे—

'भगगाद्यप्राणि स्युः क्षेपा ऋग संज्ञकाः कुद्दाश्छेदः । भगगादीनां भाज्या भगगा यंखा गना तना तेना ॥' इत्यादि संस्कृतोपपत्ति में लिखित श्लोकों से स्फुट है इति ॥

भास्तराचार्येण 'कल्प्याथ शुद्धिविकलावशेषित्यादौ' कथ्यते यदस्य ग-णितस्य ग्रहगिणते महानुपयोगस्तदुपयोगित्वसम्बन्धे विचार्यते। यथा भगणा-दिशेषतो ऽहर्गणानयनार्थं हृदभगणशेषं चक्रविकलाभिगं णितं हृदकुदिनैभंक्तं लब्धं विकलात्मकग्रहः शेषं विकलाशेषं तत्स्वरूपम् = हभशे × चिव हृकुदि

विशे छेदगमेन हभशे imes चित्र = हकुदि. विग्र+विशे ग्रतः हभशे = हकुदि

१. यंखा = १२। गना = ३०। तना = ६०। तेना = ६० द्वितीयार्यभटकृत महा-सिद्धान्त में इसी तरह केरलमतानुसारी सब जगह संख्याश्रों के पाठ हैं।

 $=\frac{\epsilon \pi_0^2 G}{\pi G}$ , विग्र = विकलात्मकगृह । विशे = विकलाशेष । चिन = चक्रविकला। अत्र यदि चक्रविकलातो विकलाशेषमल्पं तदा ऽस्मिन् <u>चित्र</u> स्वरूपेऽपि शेषेगावरयं भवितव्यम् यतो हढ्भगगएस्वरूपे हढ्कुहकावसरः । कुहकस्य सार्वदिक हढ्त्वमस्त्येवातो विव लाशेषस्य शेषस्य च योगश्चक्रविकलासमः । अन्यथा हढ्त्वाभावापत्तिः । भ्रथ यदि लब्धः =ल तदा भशे = ल. चिव + शे + विशे भ्रर्थात् ल + विशे +शे परन्त्वत्र शे < चित्र, विशे < चित्र परञ्च हृद्भगग्णशेषं निरवयवमतः शे+विशे =चिव स्रतः शे+विशे =१ । तेन ल+१= दृभशे त्रन्यथा हढ्त्वाभावात्कुहकस्याव्याप्तिः । ग्रतः चिव—शे —विशे, यदि शे —० तदा विशे = चिव । यदि चिव-शे > हकु स्यात्तदा 'येनच्छिन्नौ भाज्यहारावित्यादि' युक्तचा खिलोद्दिष्टत्वात् दृढभगगाशेषमिप खिलम् । अखिलोदाह्रगासत्वे 'कल्प्याथ शुद्धिविकलावशेष' मित्यादिना ऽहर्गएाः साध्यः । स्रथ पूर्वानीतभगराशेषस्वरूपे छेदगमादिना <u>दभशे. चित-विशे</u> = विग्र अत्र कुदृकयुक्तचा ऽह्र्गर्गज्ञानं सुलभम्। परश्वोक्तस्वरूप एव भरो. चिव-विग्. हकु = विशे., श्रस्मिन् इ. चिव योजनेन तुल्य-गुग्गक पृथक् करगोन च (हभशे. इ) चिव-विग् = विशे + इ. चिव श्रत्र यदि विशे + इ. चिव-हकु तदा हभगशे. + इ. = भगशे-विशे + इ. चिव = विशे अस्मादिप कल्प्याथ शुद्धिविकलावशेषिमत्यादिना ऽहर्गेगः साध्य इति ॥

भास्कराचार्य लीलावती में 'कल्प्याथ शुद्धि विकलावशेष' इत्यादि कहते हैं कि 'ग्रस्य गिरातस्य ग्रहगिराते महानुपयोगः' ग्रर्थात् इस गिरात के ग्रहगिरात में बहुत उपयोगिता है। उसकी उपयोगिता के सम्बन्ध में विचार करते हैं। यथा भगरागिदिशेष से ग्रहगैरागानयन के लिये दृढ़भगराशेष को चक्र विकला से गुरागांकर दृढ़कुदिन से भाग देने से लब्ध विकलात्मक ग्रह होता है शेषविकला शेष रहता है उसका स्वरूप = हमशे. चित्र = विग्र + विशे | विशे | दृकुदि = विग्र + विशे | दृकुदि = विग्र + विशे | दृकुदि = दृभशे। विग्र = विकलात्मकग्र, विशे = विकलाशेष, चित्र = चक्रविकला, यहां यदि चक्रविकला से विकलाशेष ग्ररप है तब | दृकुदि विग्र = दृकुदि

धीर शेष का योग चक्र विकला के समान है। अन्यथा दृढ़त्वाभाव रूप आपित्त होगी। यदि

लिख = ल तब भशे = ल. चित्र + शे + विशे चित्र परन्तु यहां शे चित्र परन्तु यहां शे चित्र < चित्र तिशे < चित्र लेकिन दृढ़ भग्गा शेष निरवयव है इसलिये शे + विशे = चित्र : शे + विशे = चित्र च

# इदानीं स्थिरकुट्टके विशेषमाह । एवं समेखु विषमेष्वृरां धनं धनमृरां यदुक्तं तत् ।

ऋगाधनयोर्व्यस्तत्वं गुण्यप्रक्षेपयोः कार्यम् ॥१३॥

सु. भा.—एवं पूर्वागतवल्लोस्थफलेषु समेषु कर्म भवति । विषमेषु फलेषु च यदिष्टगुराकारतो लब्धं भवेत् तत्तत्र यद्धनं वा ऋरणमुक्तं स्यात् तत् क्रमेगा ऋणं धनं कार्यम् । एवमृराधनयोगुण्यप्रक्षेपयोश्च व्यस्तत्वं कार्यम् । अत्रैतदुक्तं भवति । यदि गुराो धनः क्षेपश्च क्षयस्तत्र धनगुराक्षेपाभ्यां कर्मं कर्तव्यम् । यत्र च गुराो-उधनः क्षेपश्च धनस्तत्र धनेन गुराने ऋराक्षेपे कृहकः कर्त्तव्य इति ।

श्रत्रोपपत्तिः । 'एवं तदैवात्र यदा समास्ताः' इत्यादिभास्करविधिना स्फुटा । इहाचार्येण प्रथमं गुणकारेण भागहारो विभाजितोऽत्रोऽत्र द्वितीय लब्धितौ वल्ली सम्पन्ना तेन समायां वल्ल्यामृणक्षेपेऽन्यथा धनक्षेपे भवतीति । ऋणभाज्ये धनक्षेपे' इत्यादिविधिना शेषोपपत्तिः स्फुटेति ॥ १३ ॥

वि. भा.—विषमेषु फलेषु यदिष्टगुणकारतो लब्धं भवेत्तत्तत्र यद्धनं वा ऋग्। भुक्तं तत् क्रमेण ऋगं घनं कार्यम्। एवमृणघनयोगुंण्यप्रक्षेपयोश्च व्यस्तत्वं कार्यम्। यदि गुगो घनः क्षेपश्चणं तत्र घनगुणक्षेपाभ्यां कर्म कार्यम्। यत्र च गुग्गो ऋगात्मकः क्षेपश्च धनात्मकस्तत्र धनात्मकगुरोन ऋगाक्षेपे कुट्टकः कर्त्तव्य इति ॥

### ग्रत्रोपपत्तिः।

(ख) स्रत्र समीकरणे (क) समीकरणं विशोध्यते तदा इ. भा. हा— (भा. गु+क्षे)=इ. भा. हा—हा. ल =इ. भा. हा—भा. गु—क्षे=भा (इ. हा—गु)—क्षे=हा (इ. भा—ल)। स्रत्र यदि इ=१ तदा भा (हा—गु)—क्षे=हा (भा—ल) अतः  $\frac{\text{भा} (हा—गु)—क्षे}{\text{हा}}$ =भा—ल स्रत्र यदि हा—गु=गुं। भा—ल

्ल तदा भा. गुं-क्षे हा ल, लीलावत्यां 'यदा गतौ लिब्धगुराौ विशोध्यौ स्वतक्षराग्चिक्षिमतौ तु तौ स्त' इति भारकरोक्तमप्याचार्योक्त सहशमेव । अय भा गु+क्षे
हा. ल, उभयत्रापि इ. भा. हा योजनेन भा. गु+क्षे+ह. भा. हा हाः ल+इ.
भा. हा=भा (गु+इ. हा)+क्षे=हा (ल+इ. भा) अत्र यदि गु+इ. हा =गुं,
ल+इ. भा=ल तदा भा. गुं+क्षे=हाः ले एतावताऽऽचार्योक्तमुपपन्नम् । सिद्धान्त
शेखरे "तदुद्धृतच्छेदविभाज्यकौ क्रमादभीष्टनिष्टनौ तु गुरागप्तयोः क्षिपेत्" श्रीपत्युक्रमिदमाचार्योक्तानुरूपमेवेति ॥१३॥

### श्रब स्थिर कुट्टक में विशेष कहते हैं।

हि. भा.—इस तरह पूर्वागत वल्लीस्थ फल में कमें होता है। विषम फल में इष्ट गुराकार से जो लब्ध हो वह वहां जो धन वा ऋरा कथित है वह क्रम से ऋरा श्रीर धन करना चाहिये। एवं ऋरा गुण्य और धन क्षेप को विलोमत्व करना चाहिये। यदि गुराक धन हो और क्षेप ऋरा हो वहां धनात्मक गुराक श्रीर क्षेप से कमें करना चाहिये। जहां गुराक ऋरा हो और क्षेप धन हो वहां धनात्मक गुराक से ऋरा क्षेप में कुट्टक करना चाहिये। इति।।

#### .इपपत्ति ।

(ख) समीकरण में से (क) समीकरण को घटाने से इ. भा. हा—(भा. गु+के) == इ. भा. हा—हा. ल= इ. भा: हा—भा. गु—के=भा (इ. हा—गु)—के=हा (इ. भा—ल)। यहां यदि इ=१ तब भा (हा—गु)—क्षे=हा (भा—ल) ग्रतः भा (हा—गु)—क्षे = भा—ल, यहां यदि हा—गु=गु। भा—ल=ल तब  $\frac{1}{\text{हा}}$  हा

= ल, लीलावती में 'यदा गतौ लिब्धगुरगौ विशोध्यौ' इत्यादि भास्करोक्त इससे उपपन्न होता है जो कि आचार्योक्त के सहश ही है। भा गु+क्षे=हा. ल दोनों में इ. भा हा जोड़ने से भा गु+क्षे+इ. भा हा=हा. ल+इ. भा हा=भा (गु+इ. हा)+क्षे=हा (ल+इ. भा) यहां यदि गु+इ. हा=गु। ल+इ. भा=ल तब भा गु+क्षे=हा. ल इससे आचार्योक्त उपपन्न होता है। सिद्धान्तशेखर में 'तदुद्धृतच्छेदविभाजकौ क्रमादभीष्टिनिघ्नौ' इत्यादि श्रीपत्युक्त भी उपपन्न हुआ जो कि आचार्योक्त के अनुरूप है इति ॥१३॥

### इदानीं विलोमगिएतमाह।

## गुराकरछेदो छेदो गुराको धनमृरामृरां धनं कार्यम् । वर्गः पदं पदं कृतिरन्त्याद्विपरीतमाद्यं तत् ॥१४॥

सु. भा-—ग्रन्त्याद् दृश्याद्विपरीतं कार्यं तदाऽऽद्यमाद्यराशिमानं भवेत् । शेषं स्पष्टार्थम् । 'छेदं गुणं गुणं छेदं वर्गं मूलं पदं कृतिम्'—इत्यादि भास्करोक्त मेतद-नुरूपमेव ।। १४ ॥

वि. भा- अन्त्यात् (हश्यात्) गुणको हरः । छेदोहरः गुणकः । घनं ऋणं, ऋणं घनं, वर्गो मूलं, मूलं वर्गः, इति सर्व हश्ये कार्यं तदाऽऽद्यराशिमानं भवेत् । सिद्धान्तशेखरे "गुणो हरो हरो गुणः पदे कृतिः कृतिः पदम् । क्षयो घनं धनं क्षयः प्रतीपकेन हश्यके ॥" श्रीपत्युक्तमिदं "गुणकारा भागहरा भागहरा ये भवन्ति गुणकाराः । यः क्षेपः सोऽपचयोऽपचयः क्षेपश्च विपरीते ॥"इत्यार्यभटोक्तस्यानुरूप- मेव ग्राचार्यो (ब्रह्मगुप्त) क्तमप्यार्यभटोक्तानुरूपमेव । गुणकारा भागहरा इत्यादेर्गिणतार्थमार्यभटीयटीकाकारस्य परमेश्वरस्योदाहरणम् । किस्त्रचनः पञ्चिभभंक्तः षड्भिर्यु क्तः पदीकृतः । एकोनो वर्गितो वेदसंख्यः स गणक उच्यताम् ॥छेदं गुणं गुणं छेदं वर्गं मूलं पदं कृतिम् । ऋणं स्विमत्यादि भास्करोक्तमाचार्योक्तानुरूपमेवास्ति । गणेशदैवज्ञोक्तमुदाहरणम् । राशेर्यस्य कराहतस्य च पदं स्वाष्टांश युग्वर्गितं रामाप्तं च निजैस्त्रिभिर्नवलवैरूनं स तूनः पुनः । शिष्टं वेदिमतं विलोम विधिना तं ब्रूहि राशि सखे चेत्राटीगिणताटवीप्रकटितं शाद्भु लिविक्रीडितम् ॥"

### श्रब विलोम गिएत को कहते हैं।

हि. भा. - अन्त्य (इश्य) से गुराक को हर, हर को गुराक, वन को ऋगा, ऋगा

को धन, वर्ग को मूल, मूल को वर्ग यह सब कर्म दृश्य में करना चाहिये तब श्राद्यराशि मान होता है ।।१४।।

#### उपपत्ति ।

राशि में जिन कमों को करने से दृश्य के बराबर हो, दृश्य में उन्हीं कमों की विलोम किया से इब्ट राशि मान होता है।। सिद्धान्तशेखर में 'गुएगो हरो हरो गुएगः पदं कृतिः' इत्यादि संस्कृतोपपित्त में लिखित श्लोक से श्रीपित ने ग्राचार्य के श्रनुरूप ही कहा है। 'गुएगकारा भाग-हरा भागहरा ये भवन्ति गुएगकारा' इत्यादि संस्कृतोपपित्त में लिखित ग्रायंभटोक्त प्रकार के श्रनुरूप ही ग्राचार्यों (ब्रह्मगुप्त) क्तप्रकार भी है। लीलावती में 'छेदं गुएगं गुएगं छेदं वर्गं मूलं पदं कृतिम्' – इत्यादि भास्करोक्त भी ग्राचार्योक्त के ग्रनुरूप ही है इति।।१४।।

### इदानीं प्रश्नमाह।

# यो जानाति युगादिग्रहयुगयातैः पृथक् पृथक् कथितैः । द्वित्रिचतुःप्रभृतीनां कुट्टाकारं स जानाति ।।१५।।

सु. भा.—द्विचतुःप्रभृतीनां पृथक्-पृथक् कथितैर्गं हयुगयातैर्यो युगादि जानाति स कुट्टाकारं जानातीत्यहं मन्ये । अस्योत्तरं 'छेदवधस्य द्वियुग' मिति षष्टसूत्रेगा स्फुटम् । कोलब्रू कसाहबेन यत्पुस्तकादस्याङ्गलभाषायामनुवादः कृतस्त- स्मिन्नयं सप्तमः श्लोकः ॥ १५ ॥

श्रत्रोदाहरणं चतुर्वेदाचार्येण कल्पे रिवभगणाः ३०। चन्द्रभगणाः ४००। कुजमः १६। बुभः १३०। गुभः ३। शुभः ५०। शभः १। चः उः भः ४। चः पाः भः २। भिदनानि १०९९०। सौरमासाः ३६०। चान्द्रमासाः ३७०। श्रिषमासाः १०। सौरिवनानि १०८००। चान्द्रदिनानि १११००। क्षयाहाः १४०। सावनिदनानि १०९६०।

## एकस्मिन् दिने भगगातिमका गतिरच।

र. चं. भौ. बु. उ. गु. शु. उ. श. च. उ. च. पा. इन्हें हा दुईंड । इन्हें हा दन्हें हन । इन्हें हन

> कल्पिता । इति सर्वं कोलब्रूकानुवादतो ज्ञायते । चतुर्वेदटीकाऽस्याध्यायस्य नोपलब्धाऽस्माभिः ॥ १५ ॥

वि. मा.—द्वित्रचतुः प्रभृतीनां (द्वित्र्यादीनां) पृथक् पृथक् कथितेग्र हयुग-यातैयों युगादि जानाति स कुट्टाकारं (कुट्टकगणितं) जानातीति ।।

### भ्रत्रोपपत्ति:।

पूर्वोक्ते 'श्रिषिकागृभागहारादूनागृच्छेद भाजिताच्छेषम् । यत् तत् परस्परहतं लब्धमधोऽधः पृथक् स्थाप्यम्, इत्यादिश्लोकेषु श्रीमतां म. म. सुधाकरिद्ववेदिमहोदयानामुदाहरण्ण् । चतुस्त्रिश्चद्वृतोद्वचग्रः पंक्तचग्रोविश्वभाजितः । तं राशि
शीघ्रमाचक्ष्व यदि जानासि कुट्टकम् ॥ एतदनुसारेण् "यद्येको ग्रहो दिनचतुस्त्रिशःताऽन्यश्च त्रयोदशदिनैरेकं भगणं भुंक्ते तयोरन्तिमयुतेर्दश दिनानि व्यतीतानि तदा
कल्पात् कियन्ति दिनानि व्यतीतानीति" प्रश्ने को राशिश्चतुस्त्रिशद्वृतोदशशेषस्त्रयोदशहृतस्त्र दशशेष इति प्रश्नोत्तरेण्वोत्तरसिद्धः । एवं त्र्यादिग्रहाणामपि
युगगतानयनं भवति ॥ अत्रोदाहणार्थं चतुर्वेदाचार्येणं कल्पे रिवभगणाः=३०,
चन्द्रभगणाः=४००, कुजभगणाः=१६, बुधभगणाः=१३०, गृहभगणाः=३, शुक्रभगणाः=५० । शनि भगणाः=१, चन्द्रोच्च भगणाः=४, चन्द्रपातभगणौ=२,
भदिनानि=१०९०, सौरमासाः=३६०, चान्द्रमासाः=३७०, स्रिधमासाः=१०,
सौरदिनानि=१०८००, चान्द्रदिनानि=१११००, क्षयाहाः=१४०, सावन दिनानि
=१०९६०, एकस्मिन् दिने भगणात्मिका गतिश्च । राशौ येन कर्मणा द्वश्यतुल्यो
भवेत्तद्विलोमेनैव तेनैव कर्मणा दृश्ये क्रियाकरणेनेष्टराशिभवेत् ।

	,			(事)				
र	चं	मं	वुउ	गु	गुउ	হা	चंउ	चंपा
ą	ષ	8	१३	₹	ષ	१	१	१
१०९६	१३७	६८५	१०९६	१०९६०	१० <b>९</b> ६	१०९६०	२७४०	५४८०

कल्पिता, इतिसर्वं कोलब्रू कानुवादतो ज्ञायत इति ॥१५॥

### भव प्रश्न को कहते हैं।

हि. भा — दो तीन म्रादि ग्रहों के म्रालग-म्रालग कथित ग्रह गतयुग से जो युगादि को जानते हैं वे कुट्टक को जानते हैं।। इसके उत्तर के लिये—

### उपपत्ति ।

पूर्वोक्त 'श्रधिकाग्रभागहारादूनाग्रच्छेद भाजिताच्छेषम्' इत्यादि इलोकों में म.म. श्रीमान् सुधाकर द्विवेदी जी के उदाहरण हैं, जैसे किसी राशि को चौंतीस से भाग देने से दो शेष रहता है, तथा तेरह से भाग देने से दस शेष रहता है उस राशि को कहो। इसके अनुसार यदि एक ग्रह चौंतीस दिनों में ग्रौर श्रन्य ग्रह तेरह दिनों में एक भगण को भोग

करते हैं दोनों की ग्रन्तिम युति (योग) से दश दिन व्यतीत हुए तब कल्प से कितने दिन व्यतीत हुए ? इस प्रश्न में 'कौन राशि है जिसको चौंतीस से भाग देने से दस शेष रहता है, तथा उसी राशि को तेरह से भाग देने से भी दस शेष रहता है इस प्रश्न के उत्तर ही से उत्तर सिद्धि होती है। इस तरह तीन ग्रादि ग्रहों का भी युगगतानयन होता है। यहां उदाहरएए के लिये चतुर्वेदाचार्य ने, कल्प में रिव भगए। = ३०, चन्द्रभगए। = ४००, कुजभगए। = १६, बुधभगए। = १३०, गुरुभगए। = ३, गुरुभगए। = ५०, शिमगए। = १, चन्द्रभास ३७०, ग्रिधमास = १०, चन्द्रपातभगए। = २, भिदन = १०६६०, सौरमास = ३६०, चान्द्रमास ३७०, ग्रिधमास = १०, सौरदिन = १०६००, चान्द्रदिन = १११००, क्षयाह = १४०, सावनदिन = १०६६०, तथा एक दिन में भगए। तमक गित की संस्कृतोपपत्ति में लिखित (क) के ग्रनुसार कल्पना की। यह सब कोलब्रू क साहेब के ग्रनुवाद से विदित होता हैं इति।।१४।।

## इदानीमन्यं प्रश्नमाह।

## भगरणाद्यमिष्टशेषं कदेन्दुदिवसे रवेर्गु रुदिने वा। ज्ञदिने राशीन् कथयति कुट्टाकारं स<sup>्</sup>जानाति ॥१६॥

सुः भाः—रवेर्भगणाद्यमिष्टंशेषं भगणादिशेषमिष्टं कदा चन्द्रदिने वा गुरुदिने ज्ञदिने भवतीति विज्ञाय यश्च रवे राशीन् राश्यादिरविं कथयति स कुट्टाकारं जानातीत्यहं मन्ये। अर्थाद्भगणशेषादहर्गणमानयेति प्रश्नः।

श्रस्योत्तरं १२ सूत्रेण स्फुटस् । स्रत्रकुटुके तावद्धरएकादिगुणः क्षेप्यो यावद-भीष्टो वारो भवेदिति ॥ १६ ॥

वि. माः—रवेरिष्टं भगगादिशेषं कदा चन्द्रदिने वा गुरुदिने वा बुधिदने भवतीति ज्ञात्वा राश्यादिरिवं यः कथयित स कुट्टाकारं जानातीति, ग्रर्थाद् भगगा शेषादहर्गगामानयेति प्रश्नः।

#### ग्रत्रोपपत्तिः ।

उपपत्तिः पूर्वं प्रदिशताऽपि सौकर्यार्यं विलिख्यते । कल्प्यतेऽहर्गग्मानम् = य, तदा कल्पकुदिनैः कल्पभगगा लभ्यन्ते तदा ऽहर्गग्गेनिक लब्धं गतभगणाः शेषं कल्प्यते भगग्गशेषम् तदा तत्स्वरूपम् = कल्पभ य ककु = गभ + भशे छेदगमेन कल्पभ य = ककु गभ + भशे। ततः ककु गभ + भशे = य । ग्रत्र ककु, कल्पभ भाज्यहाराभ्यां यौ राशी तत्राधरः कभ भक्तः शेषं गभमानम् । परन्तु यद्यधिकाग्रम् = भशे । तच्छेदः ककु । ऊनाग्रम् = ०, तच्छेदः = कभ तदाऽऽचार्योक्तकुट्टकप्रकारेग्रां छेदवधच्छेदेऽ-

<sup>(</sup>१) ग्रधिकाग्रभागहारादूनाग्रच्छेदभाजिताच्छेषमित्यादिना.

ग्रमानम् = गभ. ककु + भशे, अत इदमग्रं कल्पभगगाभक्तः लब्धं य मानं स्यादर्थाद-हर्गणो भवेत् । ततो रविज्ञानं सुगममेव ॥१६॥

### श्रब ग्रन्य प्रश्न को कहते हैं।

हि. भा.—रिव के इष्ट भगगादिशेष कब चन्द्रदिन में वा गुरुदिन में वा बुधदिन में होता है इसको जानकर जो राक्यादिरिव को कहते हैं वे कुट्टक को जानते हैं। ग्रर्थात् भगगाशेष से ग्रहर्गणानयन के लिये प्रक्त है।

#### उपपत्ति ।

कल्पना करते हैं श्रह्मंग्रामान = य । तब श्रनुपात करते हैं कल्पकुदिन में कल्पभगग्रा पाते हैं तो श्रह्मंग्रा में क्या इससे लब्ध गतभगग्रा, शेष भगग्राशेष होता है इसका स्वरूप = किम.य किकु चिम में भशे किकु छेदगम से कम . य = किकु . गम + भशे : किकु गम + भशे किम = य । यहां किकु, कम भाज्य, हारों से जो राशिद्वय होता है उसमें श्रधरराशि को कल्पभगग्रा से भाग देने से शेष गत भगग्रामान होता है । लेकिन यदि श्रधिकाग्र = भशे उसका छेद = किकु । उनाग्र = ० । उसका छेद = किम तब श्राचार्योक्त कुहक प्रकार से छेद- घात तुल्य छेद में श्रग्र (शेष) मान = किकु . गम + भशे । इस श्रग्र को कल्पभगग्रा से भाग देने से लब्ध य मान होता है वही श्रह्मंग्रा है । श्रह्मंग्रा ज्ञान से रिव का ज्ञान सुलभ ही है इति ॥ १६ ॥

### इदानीमन्यं प्रश्नमाह।

## ज्ञदिने यदंशशेषं विकलाशेषं कदा तैदिन्दुदिने । भानोरथवा शशिनो यः कथयति कृटकज्ञः सः ॥ १७ ।।

सु भा-—भानोरथवा शशिनश्चन्द्रस्य यदंशशेषं वा विकलाशेषं बुधितने हिष्टं तदेव कदा चन्द्रदिने भवतीत्यस्योत्तरं यः कथयित स एव कुट्टकज्ञ इत्यहं मम्ये।

ग्रस्योत्तरं १२ सूत्रेण स्फुटम् ॥ १७ ॥

वि. भा-भानोः (सूर्यस्य) शशिनः (चन्द्रस्य) यदंशशेषं विकलाशेषं वा बुधितने हृष्टं तच्चन्द्र दिने कदा भवतीत्यस्योत्तरं यः कथयति सः कृहक पण्डित इति ॥

### भ्रत्रोपपत्तिः।

इष्टभगराादिशेषात् स्वकृहकगुराात् स्वभागहारह्ततादित्यादिना स्फुटै-वास्तीति ॥ १७ ॥

### ग्रब ग्रन्य प्रश्न को कहते हैं।

हि. भा. — सूर्य भीर चन्द्र का जो भ्रंशशोष वा विकलाशेष बुधदिन में देखा गया वहीं चन्द्रदिन में कब होता है इसका उत्तर जो जानते हें वे कुटक के पण्डित है। इति।।

### उपपत्ति ।

'इष्ट भगगादिशेषात् स्वकुहकगुगात्' इत्यादि १२ सूत्र से स्फुट है इति ॥१७॥

### इदानीमन्यं प्रश्नमाह ।

तिथिमान दिनेष्विष्टा ये ऽर्काद्यास्ते पुनः कदा तेषु । इष्टगृहवारेषु यः कथयति कुटुकज्ञः सः ।। १८ ॥

सु. मा.—तिथिमानदिनेषु चान्द्रसौरसावनदिनेष्वर्थादुिह्ष्टाहर्गेंगे येऽभीष्टा अर्काद्यास्त एव पुनः कदेष्ट्रग्रहवारेषु तेषु चान्द्रसौरसावनदिनेषु भवन्ति । इति यः कथयति स एव कुट्टकज्ञ इत्यहं मन्ये । यस्मिन्नहर्गेगे येऽभीष्टा गृहा ग्रागतास्तत्समा एव कदेष्टवारेऽन्यस्मिन्नहर्गगो ते भवन्तीति प्रश्नः ।

श्रस्योत्तरं च १२ सूत्रेण स्फुटम् ॥ १८ ॥

वि. भा.—तिथिमानदिनेषु (चान्द्रसौरसावनदिनेष्वर्थादुद्दिष्टाहर्गेगे) ये इष्टा रव्यादयस्त एव पुनःकदेष्टग्रहवारेषु चान्द्रसौरसावनदिनेषु भवन्तीत्य-थिद्यस्मिन्नहर्गेगे ये ऽभीष्टा गृहा समागतास्तत्तुल्या एव कदेष्टवारे उन्यस्मिन्नहर्गेगे ते भवन्तीति यः व थयति सः कुट्टकपण्डितोऽस्तीति । 'इष्टभगणादिशेषादि'-त्यादि १२ सुत्रेणाऽस्योपपत्तिः स्फुटैवास्तीति ॥ १८ ॥

### भ्रव भ्रन्य प्रश्नों को कहते हैं।

हि. भा.— चान्द्र सौर सावन दिनों में अर्थात् उद्दिष्टाहर्गण में जो इष्ट रिव श्रादि ग्रह हैं वही पुनः कब इष्टग्रह वारों में उन चान्द्र सौर सावन दिनों में होते हैं अर्थात् जिस श्रहर्गण में जो अभीष्टग्रह आये हैं उनके बराबर ही कब इष्टवार में श्रन्य श्रहर्गण में वे होते हैं यह प्रश्न है इसको जो कहते हैं वे कुटक के पण्डित है।। इसकीं उपपत्ति 'इष्ट भगणादि- श्रेषात्' इत्यादि १२ सूत्र से स्पष्ट ही है इति ।। १८।।

इदानीं बालावबोधार्थं पूर्वप्रश्नोत्तरं कथयति।

इष्टभगरणादिशेषाद् द्युगरणस्तत् कृहकेन संयुक्तः । तच्छेददिनैस्तावद्दिनवारो यावदिष्टः स्यात् ॥ १६ ॥

- सु. माः—इष्टभगणादिशेषात् तत्कुट्टकेन १२ सूत्रविधिना प्रथमं द्युगणोऽह-र्गणः साध्यः स तावत् तच्छेददिनैः संयुक्तो यावदिष्टो वारः स्यादिति स्पष्टम् ॥१९॥
- वि. भा-—इष्टभगणादिशेषात् पूर्ववत् (इष्टभगणादिशेषादित्यादि १२ सूत्रानुसारेण्) भ्रहर्गणः साध्यः स तावत्तच्छेददिनैः संयुक्तः कार्यो यावदिष्टो दिनवारः स्यादिति ॥ १९॥

भ्रब बालकों के बोध के लिये पूर्व प्रश्न के उत्तर को कहते हैं।

हि. भा.—इष्टभगणादिशेष से पूर्ववत् ('इष्टभगणादि शेषात्' इत्यादि १२ सूत्र के अनुसार) ग्रहगंण साधन करना चाहिये उसमें तब तक उन छेददिनों को बोड़ना चाहिये जब तक इष्ट दिनवार हो इति ।। १६ ॥

## इदानीमन्यान् प्रश्नानाह ।

## यो राज्याबीन् हष्ट्वा मध्यस्येष्टस्य कथयति द्युगराम् । द्वचाबिगृहसंयोगात् गृहान्तराद्वा स कुट्टनः ॥ २० ॥

- सु. भा- य इष्टगृहस्य मध्यस्य राश्यादीन् दृष्ट्वा द्युगणं कथयति । वा द्वयादिग्रहसंयोगाद् द्युगणं कथयति वा द्वयोग् हयोरन्तराद्द्युगणं कथयति स कुटुज्ञ कुटुक्ज इत्यहं मन्ये ॥ २०॥
- वि. भा-—इष्टगृहस्य मध्यस्य राश्यादीन् दृष्ट्वा योऽहर्गगां कथयति । वा द्वचादिगृहसंयोगादहर्गगां कथयति । वा ग्रहान्तरात् (द्वयोगू हयोरन्तरात् ) ग्रह-र्गगां कथयति स कुदृकपण्डितो ऽस्तीति ॥ २० ॥

### यब पन्य प्रश्नों को कहते हैं।

हि. भा.—मध्यम इष्ट ग्रह के राश्यादि को देखकर जो ग्रहर्गे ए को कहते हैं। वा दो ग्रहों के ग्रन्तर से ग्रहर्गे ए को कहते हैं। वा दो ग्रहों के ग्रन्तर से ग्रहर्गए को कहते हैं वे कुटक के पण्डित हैं इति।। २०।।

## इदानीं पूर्वप्रश्नस्योत्तरमाह।

## निश्छेदभागहाराद्राश्यादिकलादिना हताद् भक्तात्। भमरणकलाभिर्लब्धं मण्डलशेषं दिनगरगोऽस्मात्॥ २१ ॥

सुः भाः—निरुद्धेदभागहाराद् दृढकुदिनमानात् कि विशिष्टाद् राज्ञ्यादिकला-दिना गृहकलात्मकप्रमारोन हताचक्रकलाभिर्भक्ताचल्लब्धं तद्भगराशेषं स्यादस्मात् पूर्वोक्तविधिना दिनगणो भवतीति । श्रत्रोपपत्तिः । दृढभगगाशेषं चक्रकलागुगां दृढकुदिनभक्तं कलात्मकगृहो भवत्यतस्तद्विपरीतेन कलात्मकगृहो दृढकुदिनगुगाश्चक्रकलाभक्तो दृढभगगाशेषं स्यात् । ततो दृढभगगा भाज्यं दृढभगगाशेषं ऋगक्षेपं दृढकुदिनमानं हारं च प्रकल्प्य कुट्टाकारेगा गुगामानमहर्गगाः स्यात् । गृहयोगकलातो वाऽन्तरकलातो यद्दृढभगगाशेषं स्यात् तत्र दृढभगगायोगं वा दृढभगगान्तरं भाज्यं प्रकल्प्य पूर्ववत् कुट्टकेनाहर्गगाः साध्यः ॥

वि. भा.—निश्छेदभागहारात् ( दृढ्कुदिनात् ) राश्यादिकलादिना (गृहक-लात्मकमानेन) गुिंगतात्, भगगाकला (चक्रकला) भिर्भक्तात् लब्धं मण्डलशेषं (भगगाशेषं) भवति, ग्रस्मात्पूर्ववदहर्गगो भवतीति ॥

#### अत्रोपपत्ति :

 $\frac{\mathsf{E}$ ढ़भगराशे imes चक्रकला = कलात्मकगृह छेदगमेन दृढ़भगरा शे imes चक्रकला  $\mathsf{E}$ ढ़कुदिन

= हढ़कुदिन  $\times$  कलात्मकग्र, अतः  $\frac{$  हढ़कुदिन  $\times$  कलात्मकग्रह = हढ़भगग्ग-

शेष ततः भाज्य = हिंदमगरा - हिंदमगराशे = क्षेप स्त्रत्र कुहकेन यो गुराः हिंदकुदिन

स एवाहर्गेणो भवति । गृहयोगकलातोऽन्तरकलातो वा यद् दृढ्भगण्शेषं भवे-त्तत्र दृढभगण्योगं दृढ्भगण्गान्तरं वा भाज्यं प्रकल्प्य पूर्ववत् कुट्टकेनाहर्गणः साध्य इति ॥२१॥

## श्रव पूर्वप्रक्त के उत्तर को कहते हैं।

हि. मा.—निश्छेदभागहार (दृढ़कुदिन) को ग्रहकलात्मक मान से गुणाकर भगण-कला (चक्रकला) से भाग देने से लब्ध मण्डल (भगण) शेष होता है इससे पूर्वेवतु ग्रहगं-ण होता है इति।

#### उपपत्ति ।

हढ्भगगाशे × चक्रकला = कलात्मकग्रह । छेदगम से हढ्भगगाशे × चक्रकला =

कलात्मकग्र × दृद्कुदिन, ग्रतः कलात्मकग्रह × दृद्कुदिन = दृद्भगग्राशेष । ततः

भाज्य = दृढ्भगरा — दृढ्भगराको = क्षेप यहां कुट्टक से जी गुराक होता है वहीं

महर्गण होता है। ग्रह योगकला से वा अन्तर कला से जो इद्रभगण होष होता है वहां हद्र-

भगगा योग को वा दृढ़भगगान्तर को भाज्य कल्पनाकर पूर्ववत् कुट्टक से श्रहर्गण साधन करना चाहिये इति ।। २१ ।।

### इदानीं विशेषमाह।

## एवं राश्यंकला विकला शेषादहर्गगः प्राग्वत् । नष्टस्थेष्विष्टान् तान् कृत्वा भक्त्वोक्तवच्छेषम् ॥ २२ ॥

सु. भा.—एवं राशिशेषात् श्रंशशेषात् कलाशेषात् विकलाशेषाच्च प्राग्वदहगंणः स्यात्। किं कृत्वा नष्टस्थेषु विकलाकलादिमानेषु भक्त्वा विभज्येष्टान् तान्
विकलादीन् कृत्वा शेषं भग्गाशेषमहर्गगां चोक्तवत्कार्यम्। अत्रैतदुक्तं भवति।
षष्टिर्भाज्यो विकलाशेषमृणक्षेपो दृढकुदिनानि हार इति प्रकल्प्य यः कुट्टकः सकलाशेषस्तेन षष्टिर्हता विकलाशेषोना दृढकुदिनहृता फलं विकला अभीष्टा स्युस्ततः कलाशेषमृगाक्षेपं षष्टि भाज्यं दृढकुदिनानि हारं प्रकल्प्य यः कुट्टकः स चांशशेषस्तेन षष्टिर्गुणा कलाशेषोना दृढकुदिनभक्ता फलं कला अभीष्टाः स्युः। एवं राश्चि शेषानयने विश्वाद्धाज्यो भगगाशेषानयने च द्वादशभाज्यकल्प्यः। भगगाशेषतः पूर्वविषानेनाहर्गगो गतभगगाश्च साध्याः। 'कल्प्याथ शुद्धिविकलावशेषम्'—इत्यादि भास्करोक्तमेतदनुरूपमेव।। २२।।

वि. भाः—एवं राशिशेषात्-ग्रंशशेषात् क्लाशेषात् विकलाशेषात् पूर्ववदहगंगः स्यात् कथं तदुच्यते । नष्टस्थेषु विकला कलादिमानेषु भक्तवा (विभज्य)
इष्टान् तान् विकलादीन् कृत्वा शेषं (भगणशेषं) ग्रहगंगांच पूर्ववत्कार्यम् । यथा
षष्टिभाज्यः । दृढं कृदिनानि हारः । विकलाशेषं शुद्धिरिति प्रकल्प्य कृदृक्तविधिना गुगाप्ती साध्ये तत्र लिब्धिविकलाःस्युः । गुग्गस्तु कलावशेषम् । ततः कलावशेष
शुद्धः । षष्टिभाज्यः । दृढ्कृदिनानि हार इति प्रकल्प्य कृदृक्तेन गुगाप्ती साध्ये तत्र
लिब्धः कलाः । गुगोंऽशशेषम् । ग्रंशशेषं शुद्धः । त्रिशद् भाज्यः । दृढ्कृदिनानिहारः । ग्रत्र कृदृक्तेन लिब्धरंशाः । गुगो राशिशेषम् । एवं राशिशेषं शुद्धः । द्वादश
भाज्यः । कृदिनानि हारः । ग्रत्र कृदृक्तेन लिब्धगंतराशयः । गुगोभगगशिषम् ।
कल्पभगगा भाज्यः । कृदिनानि हारः । भगगाशेषं शुद्धः । ग्रत्र लिब्धगंतमगगाः । गुगोऽहगंगाः स्यादिति । लीलावत्यां 'कल्प्याथ शुद्धिविकलावशेषं षष्टिश्च
भाज्यः कृदिनानि हारः' इत्यादि भास्करोक्तमेतदनुरूपमेवेति ॥ २२ ॥

### श्रब विशेष कहते हैं।

हि. भा.—एवं राशिशेष से, श्रंश शेष से, कलाशेष से, विकलाशेष से श्रहगंगा होता है। कैसे होता है सो कहते हैं। विकला-कलाद्वि मानों में भाग देकर इष्टविकलादि करके भगगाशेष श्रौर श्रहगंगा पूर्ववित करना चाहिये। जैसे-साठ को भाज्य, हढ़कुदिन को- हार, विकलाशेष को ऋणक्षेप कल्पना कर कुटक विधि से गुएक और लिब्ध साधन कर-ना, उनमें लिब्ध विकला होती है, श्रौर गुएक कलाशेष होता है। इसके बाद साठ को भाज्य, टब्कुदिन को हार, कलावशेष को ऋणक्षेप कल्पना कर कुटक से गुएक श्रौर लिब्ध साधन करना चाहिए, उनमें लिब्धकला होती है। गुएक श्रंश शेष होता है। एवं तीस को भाज्य, टब्कुदिन को हार, श्रंशशेष को ऋएक्षेप कल्पना कर कुटक से जो गुएक और लिब्ध होती है उनमें लिब्ध श्रंश होता है। गुएक राशिशेष होता है। एवं द्वादश को भाज्य, टब्कुदिन को हार, राशिशेष को ऋए क्षेप मान कर कुटक से लिब्धगत्त राशिमान होता है, गुएक भगएशेष होता है। एवं कल्प भगए। को भाज्य, कुदिन को हार, भगएशेष को ऋए।।त्मक क्षेप क्षेपकल्पना कर कुटक से लिब्ध गतभगए। होता है, गुएक श्रहगंए। होता है, लीलावती में 'कल्प्याय शुद्धिविकलावशेष' इत्यादि भास्करोक्त इसके श्रनुरूप ही है इति।। २२

### इदानीमन्यं प्रश्नमाह।

## राध्यंशकला विकलाशेषात् कथितादभीष्टतो नष्टान् । यः साध्यत्युपरितनान् समध्यमान् कुट्टकज्ञः सः ॥ २३ ॥

मु. मा — अभी धतः कथितानिनिदिष्टात् राशिशेषत् वांऽशशेषात् वा कला-शेषादथवा विकलाशेषाच्च यो नष्टान् विकलादीन् तथोषरितनानुपरिशेषान् विक-लाशेषतः कलाशेषं कलाशेषादंशशेषितत्यादीन् समध्यमान् मध्यमग्रहसिहतान् साधयति स एव कुट्टकज्ञः । निर्दिष्टादेकशेषात् मध्यमग्रहं य म्रानयति स एव कुट्टकज्ञ इत्यर्थः । श्रस्योत्तरं पूर्वसूत्रेण स्फुटमिप बालावबोधार्थमग्रे वक्ष्यिति ।। २३।।

वि. भा. — ग्रभीष्टतः कथितान्निर्दिष्टात् राशिशेषादंश शेषाद्वा कलाशेषा-द्विकलाशेषाद्वा नष्टान् (विकलादीन्) उपरितनान् (उपर्यु क्तशेषान्) मध्यम-ग्रह्सहितान् यः साधयति सः कुट्टकः । निर्दिष्टादेकशेषान्मध्यग्रहानयनं यः करोति सः कुट्टकः इति । ग्रस्योत्तरं यद्यपि पूर्वसूत्रेण स्पष्टमप्यस्ति तथाप्याचा-येगाऽग्रे कथ्यते ॥ २३ ॥

### ग्रब ग्रन्य प्रश्न को कहते हैं।

हि. मा. - ग्रमीब्ट से कथित राशिशेष से ग्रथना ग्रंशरों प से, कलाशेष से ग्रथना विकलाशेष से निकलादि को तथा उपर्युक्त शेष मध्य ग्रह सहित को जो व्यक्ति साधन करता है ग्रथीत् निर्दिष्ट एकशेष से मध्यम ग्रहानयन करता है नह कुहकज्ञ है, यद्यपि इसका उत्तर २२ सूत्र से स्पष्ट है तथापि ग्राचार्य ग्रागे कहते हैं इति ।। २३ ।।

### कुट्टकाघ्याय:

## इदानीमुत्तरमाह।

# येन गुगः शेषयुतश्छेदः शुध्यति हृतः स्वगुग्गकेन । तद्भुक्तंशेषं फलमेवं शेषात् ग्रहद्युगग्गौ ।। २४ ॥

सु. भा- छेदो हढकुदिनमानं येन गुगाः शेषयुतः स्वगुगिकेन हृतः शुध्यति स गुगिश्च तद्भुक्तं तस्य ग्रहस्य भुक्तं भवित स्वगुगिकेन हृतं यत् फलं प्राप्तं तच्छिषमुपिशोषं भवित। एवं शेषात् ग्रहाहंगगा द्वावेव भवतः। ग्रत्नेतदुक्तं भवित। यथा कलाशेषस्य गुगाकः षष्टिश्छेदो हढकुदिनानि। तत्र येन गुगोन गुगितश्छेदो विकलाशेषयुतः स्वगुगिकेन षष्टिमितेन हृतः शुध्यित स गुगो ग्रहविकला भवित्त फलं च कलाशेषं ज्ञेयेमेवं कलाशेषात् कला ग्रंशशेषं च सिध्यित। एवमन्ते भगगा- शेषज्ञानं तस्मादहर्गगाज्ञानं च भवित।

भत्रोपपत्तिः । यथा कलाशेषं षष्टिगुर्णं दृढकुदिनहृतं लब्धं ग्रहविकलाः शेषं च विकलाशेषम् । स्रतो हरो लब्धिगुर्गाः शेषयुतो भाज्यराशिसमः ।

श्रतो हढकुदिनमानं येन गुणं विकलाशेषयुतं षष्टिभक्तं शुध्यति स गुणो ग्रहिकलाः फलं च कलाशेषम् । एवं स्व स्वशेषगुणकच्छेदाभ्यां तत्तच्छेषमाने भवत इत्युपपद्यते ॥ २४॥

वि. भा- खेदो (दृढ़कुदिनमानं) येन गुणः शेषयुतः स्वगुणकेन भक्तः शुध्यति स गुणस्तस्य गृहस्य भुक्तं भवति स्वगुणकेन भक्तं सद्यत्फलं लब्धं तदुपरि शेषं भवति । एवं शेषात् गृहाहर्गणौ भविष्यतः । यथा कलाशेषस्य गुणकः षष्टिद्दं क् कुदिनानि हरः । तत्र येन गुणकेन गुणितो हरो विकलाशेषयुतः स्वगुणकेन षष्टि- तुल्येन भक्तः शुध्यति स गुणो गृहविकलाः स्युः फलं कलाशेषमेवं कलाशेषात् कला ग्रंशशेषं सिध्यति । एवमन्ते भगण-शेषज्ञानं भवेत्तस्मादहर्गणो भवेदिति ॥

### अत्रोपपत्तिः।

कलाशेषं षिटगुणं दृढ्कुदिनभक्तं लब्धं गृहविकलाः शेषं विकलाशेषम् तत्स्वरूपम् =  $\frac{६० \times कलाशे}{ हुढ्कु} = गृहविकला + <math>\frac{1}{ } \frac{1}{ } \frac$ 

हढ़कु × गृहविकला + विकलाशे, पक्षो षष्टिभक्तौ तदा हिक्कु × गृहविकला + विकलाशे ६०

च्नक्लाशे, अतो दृढ़कुदिनं येन गुणं विकलाशेषयुतं षष्टिभक्तं शुध्यति स गुणो गृहिवक्ताः। फलं कलाशेषम् एवं स्वस्वशेषगुणकहराभ्यां तत्तच्छेषमाने भवत इत्युपपन्नं भवतीति ॥२४॥

### ग्रब उत्तर कहते हैं।

हि. भा.— दृदकुदिन (हर) को जिस से गुणा कर शेष जोड़कर अपने गुणक से भाग देने से शुद्ध हो तब वह गुणक उस ग्रहका भुक्त होता है। अपने गुणक से भाग देने से जो फल होता है वह उपरिशेष होता है इस तरह शेष से ग्रह और ग्रहगंण होता है, जैसे कलाशेष का गुणक साठ है, दृदकुदिन हर है वहां जिस गुणक से गुणित हर में विकला शेष को जोड़ कर साठतुल्य ग्रपने गुणक से भाग देने से शुद्ध होता है तब वह गुणकग्रह विकला होती है और फल कलाशेष होता है, एवं कलाशेष से कला और ग्रंशशेष सिद्ध होता है। इस तरह ग्रन्त में भगण शेष ज्ञान होता है उससे ग्रहगंणज्ञान होता है इति।।

#### उपपत्ति ।

## इदानीमन्यान् प्रश्नानाह । जानाति यो युगगतं कथितादधिमासशेषकादिष्टात् । श्रवमावशेषतो वा तद्योगाद्वा स कुट्टजः ॥२५॥

सु. मा.—इष्टादिधमासशे षाद्वा कथितादिधमासशे षाद्वो युगगतं जानाति । वा कथितादवमावशे षात् क्षयशे षाधो युगगतं जानाति । वा तयोरिधशे षक्षयशेष-योर्योगाद्यो युगगतं जानाति स एव कुट्टकज्ञ ईत्यहं मन्ये ।

श्चत्र 'तथाऽधिमासावमाग्रकाभ्यां दिवसा रवीन्द्वो'-इत्यादिभास्करविधिना-ऽऽद्य प्रदनद्वयोत्तरं स्फुटम् । तृतीये चान्द्रे भ्योयेऽधिमासा यच्च तच्छेषं सौरेभ्योऽपि त एवाधिमासास्तच्च शेषम् । अतो गतेन्दुदिनप्रमाणं या १ गताधिमासप्रमाणं च का १। तदाऽधिशेषप्रमाणं च=कग्नधिमा×या—कचादि×का=ग्रधिशे। एवं यदि गतक्षयाहमानं नी १ तदा कक्ष $\times$ या—कचादि $\times$ नी=क्षशे । द्वयोर्योगेन या (कग्रधिमा+कक्ष) — कचादि (का+नी) = ग्रधिशे+ क्षशे=यो  $\therefore$  का + नी=  $\frac{2II}{4II} + \frac{2II}{4II} + \frac{2II}{4II}$ 

त्रतः कल्पाधिमासक्षयाहयोगं भाज्यमधिमासक्षयशेषयोगमृराक्षेपं कल्प-चान्द्रदिनं हारं प्रकल्प्य यः कुट्टकः स एव गतेंदुदिनानि तेभ्यः सौरसावनदिनानि च स्फुटानि भवन्ति । इत्यनेन तृतीय प्रक्नोत्तरं स्फुटम् ॥ २५ ॥

वि. भा.—इष्टादिधमासशेषात् वा कथितादिधमासशेषाद्यो युगगतं जानाति । वा कथितादवमावशेषतो युगगतं जानाति । वा तद्योगात् (अधिशेषावमशेषयो-योगात्) युगगतं जानाति स कुट्टकज्ञ इति ।

### भ्रत्रोपपत्तिः।

कल्पाधिमासा भाज्यः । रिविदिनानि हारः । स्रिधिमासशेषं शुद्धः । स्रत्र कुट्-टकिविधिना गुणाप्ती साध्ये तत्र लिब्धिर्गताधिमासाः । गुणो गतरिविदिवसाः । एवं युगावमानि भाज्यः । चान्द्रदिवसा हारः । स्रवमशेषं शुद्धिः । स्रत्रापि कुट्टकिविधिना गुणालब्धी साध्ये तत्र लिब्धर्गतावमानि गुणो गतचान्द्रदिवसा इति, लीला-वत्यां 'तथाधिमासावमाग्रकाभ्यां दिवसा रवीन्द्वो' रिति भास्करेण स्पष्टमेवोक्तम् एतावता प्रथमप्रश्नद्वयोत्तरं जातम् ।

# ्ष्रथ तृतीयप्रश्नोत्तरम् ।

अत्रेष्टचान्द्रप्रमाणम् चय । अस्मादिधमासावमयोस्तच्छेषयोश्च माने

श्वात्वा स्वस्वशेषोने कृते तयोः स्वरूपे क अमा. य—अधिशे च्यातिधमासाः ।

कचां

कअवम. य — अवशे च्यात्रचम, अत्रैको हरश्चेद् गुराकौ विभिन्नौ'तदा गुराक्यकचां

मित्यादि संश्लिष्टकुद्दक युक्त्या कल्पाधिमासावमयोगतुल्ये भाज्ये तयोरेव शेषयोगतुल्ये ऋराक्षेपे यो गुराः स एवेष्टचान्द्रसमस्तस्मात्सौरसावनदिनानि स्फुटानि
भवन्तीति । एतेन तृतीयप्रश्नोत्तरं स्फुटं जातम् ॥ २५॥

## भव तृतीय प्रश्न के उत्तर को कहते हैं।

हि. भा. — यहां कल्पना करते हैं इष्ट चान्द्र प्रमाण = य । इस से अधिमास और अवम तथा उन दोनों का शेष जानकर अपना अपना शेष घटाने से उन दोनों के स्वरूप

क अमा. य—अधिशे = गताधिमा, क अवम. य-अवमशे = ग अवम, यहां 'एको हरश्चेद्गुरा-

कौ विभिन्नों इत्यादि भास्करोक्त संश्लिष्ट कुद्दक युक्ति से कल्पाधिमास कल्पादम योगतुल्य भाज्य में उन्हीं दोनों के शेष योगतुल्य ऋगा क्षेप में जो गुगाक होगा वही इष्ट चान्द्र (य) के बराबर होगा उस से सौर सावन दिन स्फुट होते हैं। इस से तृतीय प्रश्न का उत्तर स्फुट हो गया, इति ।। २५ ।।

## इदानीमन्यान् प्रश्नानाह ।

# इष्टेषु मानदिवसेष्वधिमासन्यूनरात्रशेषे वा । भूयस्ते यः कथयति पृथक् पृथग्वा स कुहज्ञः ॥ २६ ॥

सु. मा.—इष्टेषुमानदिवसेषु सौरचान्द्रसावनदिनेषु ये ग्रिधमासन्यूनरात्रशषे स्तस्ते एव भूयः कदा भिवष्यत इति यः पृथक्-पृथक् कथयित स एव कुट्टज्ञः
कुट्टकज्ञ इत्यहं मन्ये । इष्टदिने यदिधशोषं तदेव पुनः कदावेष्टदिने यदवमशोषं तदेव
पुनः कदा वेष्टदिने योऽधिमासक्षयशोषां स एव पुनः कदा भिवष्यतीति प्रश्नत्रयम् । पूर्वमिधशोषात् क्षयशोषाद्वा तयोयोगाद्यथा कुट्टकविधिना गतेन्दुदिनराशिरानीतः स 'इष्टाहतस्वस्वहरेण युक्तो'ऽनेकघा भवति यत्रापि तदेवाधिमासशोषादिकं भवतीत्युत्तरं स्फुटम् ॥ २६ ॥

## (इयमार्या कोलब्रू कानुवादे नास्ति)

नि. मा.— इष्टेषु मानदिवसेषु (सौरचान्द्रसावनदिनेषु) ये म्रधिमासावमशेषे भवतस्त एव भूयः कदा भविष्यत इति पृथक् पृथक् यः कथयति स कुदृकज्ञोऽस्तीति ॥ इष्टिदिने यदिधिशेषं तदेव पुनः कदा वेष्टिदिने यदवमशेषं तदेव पुनः
कदा वेष्टिदिने योऽधिमासावम शेषयोगः स एव पुनः कदा भविष्यतीति प्रइनत्रयमस्ति । पूर्वमिषशेषादवमशषात्तयोयींगाच्च कुदृकविधिनायथागत चान्द्रदिनप्रमागामानीतं तदेव 'इष्टाह्तस्वस्वहरेण युक्ते' इत्यादिनाऽनेकधा भवति, स्रत्रापि तदेवाधिमासशेषादिकं भवतीति ॥ २६ ॥

### मब रग्न्य प्रश्नों की कहते हैं।

हि. भा. सौर चान्द्र सावन दिनों में जो अधिश व और अवम शेष है वही बार बार कब होगें इसको पृथक पृथक जो कहते है वे कुटक के पण्डित है। इब्ट दिन में जो अधिशेष है वही फिर कब होगा वा इब्ट दिन में जो अवमशेष योग है वही फिर कब होगा वा इब्ट दिन में अधिमासावमशेषयोग है वही फिर कब होगा ये तीन प्रश्न हैं। पूर्व में अधिशेष से अवम शेष से और उन दोनों के योग से जैसे कुटक विधि से गत चान्द्र

### कुट्टकाध्याय:

दिन प्रमाण लाये गये । वही 'इष्टाहत स्वस्वहरेण युक्ते' इत्यादि से भ्रनेक प्रकार होते हैं यहां भी वहीं अधिमास शेषादिक होते हैं इति ।। २६ ॥

### इदानीमन्यं प्रश्नमाह।

# श्रंशकशेषात् त्र्यूनात् सप्तहृतान्मूलमूनमण्टाभिः । नवभिर्युगं सरूपं कदा शतं बुधदिने सवितुः ॥ २७ ॥

सु. भा. — सवितुः सूर्यस्यांशकशेषात् त्र्यूनात् सप्तहृद्यन्मूलं तदष्टाभिन्यूनं नविभिर्गुग्मेकेनाढचे बुधदिने कदा शतं भवति ।

	ऋ	भा	मू	72	गु	घ	ह
न्यासः । म्रंशे ।	₹ '	Ø	0	5	9	?	१००
	घ	गु	व	घ	भा	雅	ह
विलोमगणितेन ।	3	9	0	6	9	?	१००
लब्धमंशशेषम्=५७० । श्रस्मार	इहर्गण	ो बुध	दिने	पूर्वव	त् सि	ध्यति	।। २७ ॥

वि. मा.—सवितुः (सूर्यस्य) श्रंशक शेषात् त्रिभिर्हीनात् सप्तभक्तान्मूलं यत्त-दण्टाभिर्हीनं नवभिर्गु एांमेकेन युतं बुधदिने कदाशतं भवतीति ।

#### न्यासः

報:一年	ऋ—३ घ	छेदं गुरां गुरां छेदं वर्गे मूलमित्यादिना
ह—-७	ह <i>—</i> ७ गु	विलोमगर्गितेनांशशेषम् == ५७० ग्रस्मादह-
मू ०	मू—० व	मंगो बुघदिने सिध्यतीति ॥ २७ ॥
ऋ द	ऋ— घ	
गु९	यु—९ ह	
घ१	घ—? ऋ	
ह्रयम्=-१००	हृश्यम् = १००	

### भ्रब भ्रन्य प्रश्न को कहते हैं।

हि. भा.— सूर्वे के ग्रंश शेष में तीन घटाते हैं। सात से भाग देते हैं। उसकी मूल जो होता है उसमें से ग्राठ घटाते हैं, फिर उसको नौ से ग्रुएम करते हैं, एक जोड़ते हैं धुध-दिन में कब सौ होता है इति।

न्या	स	
ऋ──३	—- ३ – घ	छेदंगुणं गुणां छेदं वर्गं मूलं इत्यादि
₹9	ह—७ —गु	भास्करोक्त विधि से इस विलोम गरिएत से
मू ०	मू	श्रंश शेष=५७० इससे बुधदिन में ग्रहमंग्र
<b>彩一</b> 5	ऋ— ८— ध	सिद्ध होता है इति ॥ २७ ॥
गु — ६	गु—६—ह	
ध१	ध - १ऋ	
-	-	
हरय १,००	हरय१००	

### इदानीमन्य प्रश्नमाह।

## त्र्यूनाधिमासञ्जेषान्मूलं द्वचिषकं विभाजितं षड्भिः । द्वचूनं वर्गितमधिकं नवभिनेवतिः कदा नवतिः ॥ २८ ॥

सु. मा.—श्रिवमासशेषात् त्र्यूनाद्यन्मूलं तद्द्वाम्यां युतं षड्भिविभाजितं फर्ल चूनं वर्गितं नवभिरिधकं कदा नवितिभैवति ।

	老	मू	घ	भा	粔	व	घ	€
न्यासः । ग्रविशे ।	₹	0	₹	Ę	२	ø	9	९०
	घ	ब	程	गु	घ	मू	犯	ह
विलोमगिएतिन।	na.	0	२	Ę	7	0	5	80

ग्रधिमासशेषम् = ४०९६ कोलब्र्कानुवादे 'षड्भिः' स्थाने 'द्वाभ्यां' इति पाठः । अधिशेषात् पूर्वप्रकारेणाहर्गणानयनं सुगममिति ॥ २८ ॥

वि. भा- अधिमास शेषात् त्रिभिर्हीनात् मूलं यत्तद् द्वाभ्यां युतं षड्भिर्भक्तं लब्धं द्वाभ्यां हीनं विगतं नविभिर्युं तं कदा नवितिभवतीति ॥

=31737 -

74	14:	
ऋ: ३	<b>雅—===============</b>	'छेदंगुएां गुराां छेद मि'त्यादि भास्करो-
मू०	मू•व	क्त्या इति विलोमगिंगतेनाधिमास शेषम् =
घ२	<b>年</b> —>	४०९६ म्रिविशेषात् पूर्वीक्त प्रकारेणाहर्गण
ह—६	ह—६— <b>गु</b>	ज्ञानं सुखेन भवतीति ।
ऋ—-₹	雅	कोलब्रूकानुवादे षड्भिः स्थाने द्वाभ्याम्
व—०	व०-मू	पाठोऽस्तीति ॥ २८ ॥
8	ध—९—ऋ	
	-	
<b>ह</b> रय=९०	हश्य=९०	

### कुट्टकाध्याय:

### श्रब श्रन्य प्रश्न को कहते हैं।

हि. भा.—श्रिषमास शेष में तीन घटाकर मूल जो होता है उसमें दो जोड़ते हैं छ: से भाग देते हैं लब्ध जो होता है उसमें दो घटाते हैं उसके वर्ग में नौ जोड़ते हैं तो कब नव्वे होता है, इति ।

न्या	सं	
ऋ३	<b>涯—३—</b> घ	छेदं गुर्गां गुर्गां छेदं इत्यादि भास्करोक्ति से
मू—॰	मू—०—व	इस विलोम गिएत से ग्रिधमास शेष = ४०१६
घ—२	घ२ऋ	अधिजोष से पूर्वोक्त प्रकार से भ्रहर्गण ज्ञान सुगमता
ह—६	ह— <b>६</b> —गु	से होता है इति 11२८।
ऋ—₹	ऋ२	
ৰ—∘	व—०— <u>म</u> ू	
घ१	घ६ऋ	
द्द्श्य१०	हस्य—६०	

## इदानीमन्यं प्रश्नमाह ।

# श्रवमावशेषवर्गों व्येको विशतिविभाजितो द्वयधिकः ॥ श्रष्टगुर्गो दशभक्तो द्वियुतोऽष्टादश कदा भवति ॥ २९ ॥

सु. भाः—स्पष्टार्थम् ।	ষ	湘	भा	घ	गु	भा	ঘ	È
न्यासः । क्षश्रे						१०		
	मू	घ	गु	ऋ	भा	শু	ऋ	ह
विलोमगिततेन ।	b	\$	२०	२	Z	१०	२	१ट

क्षयशेषम् = १९ । घस्मात् पूर्वप्रकारेणाहर्पणानयनं सुगमम् ॥ २९ ॥

## इति कुट्टाकारः ।

निः माः - ग्रवमशेषवर्गं एकहीनो विशत्या भाज्यते, तल्लब्धिः ग्रङ्कद्वयेन संकलम्य अष्टाभिर्गुण्यते, तदा दशभिः पुनः विभज्य द्वचिकः क्रियते, एवं प्रकारेण धष्टादशसंख्या कदा भवतीति ।

### **ब्राह्मस्फुटसिद्धान्तै**

न्यासः (भ्रवशे)ः व—० ऋ—१ः ह—२० घ—२ गु—८ हे—१० घ—२	'छेदं गुणं व — ० — मू ऋ — १ — घ ह — २० — गु घ — २ — ऋ गु — ८ — ह ह — १ ० — गु घ — २ — ऋ	गुणं छेद' मित्यादिना इति विलोम गरिए- तेनावमशेषम्—१९ ग्रस्मात्पूर्वप्रकारेगा- हर्गगानयनं स्फुट- मेबेति ॥२९॥
<b>ट</b> रयं=१=	हर्यं=१८	
	इति कुट्टकाघ्यायः।	

# अब अन्य प्रश्न की कहते हैं।

हिं मा — अवम शेष वर्ग में एक घटाकर बीस से भाग देते हैं जो लब्धि होती हैं उसमें दो जोड़ते हैं ग्राठ से गुगा करते हैं दश से भाम देते हैं दो जोड़ते हैं तो कब अठारह होता है।। २६।। (३०)

न्यास		
(भ्रवशे)		
व — ° ऋ— १ ह — २ ° ष — २ गुं — = ह — १ °	वि— ७ — सू 'छेदं गुरां गुरां छेदं' इत्यादि है  ऋ — १ — ध इस विलोश गरिगत है  है — २ ० — गु झवम शेष = १६  ध — २ — ऋ इससे पूर्व प्रकारानुसार  गु — द — ह अहगैरागन्यन स्फट है  ह — १ ७ — गु इति ॥ २६ ॥	Àï ₹
थं—-२ <del>इंश्यं ==</del> १८	च	

इति कुटुकाच्याय।

## श्रथ धनर्णादीनां सङ्कलितव्यवकलितादि

इदानीं घनणेशून्यानां सङ्कलनमाह।

धनयोर्धनमृरामृरायोर्धनर्गयोरन्तरं समैक्चं खम् । ऋरामैक्चं च धनमृराधनज्ञून्ययोः ज्ञून्ययोः ज्ञून्यम् ॥ ३०॥

सु. भा-चनयोरैक्यं घनमृणयोरैक्यमृणं भवति । घनर्णयोरन्तरमेवैक्यं भवति । समयोर्धनर्णयोरैक्यं खं शून्यं भवति । ऋणशून्ययोरैक्यमृणं घनशून्ययो-रैक्यं च शून्यं भवति ।

अत्रोपपत्त्यर्थं मन्मुद्रिता भास्करबीजटिप्पग्री द्रष्टव्या ॥ ३० ॥

वि. मा—घनात्मकयोरङ्कयोयोंगो घनं भवति । ऋगात्मकयोयोंगश्च ऋगां भवति । घनर्णयोरन्तरमेव योगो भवति । तुल्ययोर्घनर्णयोयोंगः शून्यं भवति । ऋग्रशून्ययोयोंगो ऋणं घनशून्ययोयोंगश्च घनं भवति, शून्ययोयोंगः शून्यं भवतीति ।

### ग्रत्रोपपत्ति :।

यद्येकस्य पुरुषस्य प्रथमं रूप्यकपञ्चकं धनमासीत्, कालान्तरेग् तेन रूप्य-कचतुष्टयमितं तयोयोंगे तस्य नवरूप्यकािग धनािन भविष्यन्ति । एवं तस्य-व यदि रूप्यकपञ्चकमृगां पुना रूप्यकचतुष्टयमृणं कृतं तदा तयोयोंगे तस्य नव रूप्यकािग ऋगां भविष्यति । यदि च रूप्यकचतुष्टयं धनमस्ति तेन रूप्यकपञ्चकमृगां कृतं तदा रूप्यकचतुष्टयदानेन तस्य निकटे रूप्यकमेकमृगां मेव स्थास्यति । यदि रूप्यकपञ्चकं धनमस्ति, तेन पुना रूप्यकपञ्चकमृगां कृतं तदा रूप्यकपञ्चकं धनमस्ति, तेन पुना रूप्यकपञ्चकमृगां कृतं तदा रूप्यकपञ्चकदानेन तन्निकटे शून्यमेव स्थास्यति । सिद्धान्त शेखरे । ऐक्यां युतौ स्यात् क्षययोः स्वयोश्च धनगांयोरन्तरमेव योगः, श्रीपत्युक्तमिदं, बीजगिगिन्ते 'योगे युतिः स्यात् क्षययोः स्वयोवां धनणंयोरन्तरमेव योगः' भास्करोक्तमिदंचाऽचार्योक्तानुरूपमेवेति ॥ ३०॥

## श्रब घनाङ्क ऋगाङ्क श्रौर शून्य के सङ्कलन को कहते हैं।

हि. भा— घनात्मक अङ्कों का योग घन होता है। ऋगात्मक अङ्कों का योग ऋग होता है। घनाङ्क और ऋगाङ्क का अन्तर ही योग होता है। तुल्य घन और ऋग अङ्कों का योग शून्य होता है। ऋगात्मक दो शून्यों का योग ऋग होता है। घनात्मक दो शून्यों का योग घन होता है। दो शून्यों का योग शून्य होता है इति।

#### उपपत्ति ।

यदि किसी एक पुरुष के पास पहले पांच रुपये घन था, कालान्तर में उसने चार रुपये उपार्जन किया। तब दोनों का योग नौ रुपये उसके निकट घन होगा। यदि उसी को पहले पांच रुपये ऋएा था फिर उसने चार रुपये ऋएा लिया तब दोनों मिलकर उसके पास नौ रुपये ऋएा होंगे। यदि उसके निकट चार रुपये घन है और पांच रुपया लिया तब चार रुपये सघाने से उसके निकट एक रुपया ऋएा रहा। यदि उसके पास पांच रुपये घन है और पांच रुपये घन है और पांच रुपये खातो पांच रुपये सघाने से उसके पास शून्य (कुछ नहीं) रहा। इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ।। सिद्धान्तरोखर में 'ऐक्य' युतौ स्यात् क्षययोः' इत्यादि संस्कृतो-पपित में लिखित रुलोक से श्रीपित तथा बीजगिएत में 'योगे युतिः स्यात् क्षययोः स्वयोवी' इत्यादि से भास्कराचार्यं ने आचार्योक्त के अनुरूप ही कहा है इति।। ३०।।

### ग्रथ व्यवकलनमाह।

कनमधिकाद्विशोध्यं घनं घनादृग्गमृग्गादधिकमूनम् व्यस्तं तदन्तरं स्यादृग्गं घनं घनमृग्गं भवति ॥ ३१ ॥ शून्यविहीनमृग्गमृग्गं घनं घनं भवति शून्यमाकाशम् । शोध्यं यदा घनमृगाहग्गं घनाद्वा तदा क्षेप्यम् ॥ ३२ ॥

सु. मा-—ग्रिषकाद्धनादूनं घनं विशोध्यं शेषं घनं भवति । ग्रिषकाहणादूनमृणं विशोध्यं शेषमृणं भवति । ऊनाद्धनादिषकं घनं वोनाहणादिषकमृणं विशोध्यं
तदा तदन्तरं व्यस्तं विपरीतं स्यात् । अर्थादिषकं घनं विशोध्यं तदा शेषमृणं
भवति । ग्रिषकमृणं विशोध्यं तदा शेषं घनं भवति । कथं विपरीतं भवतीत्याह ।
ऋणं घनं भवति घनं चणं भवतीति । चेहणं शून्यविहीनं शून्येनं विहीनं तदा
ऋणं घनं च शून्यविहीनं घनं शून्यं च शून्यविहीनमाकाशं शून्यं भवति । यदि
ऋणाद्धनं शोध्यं वा घनाहणं शोध्यं तदा क्षेप्यमर्थात् तदा तयोयींग एवान्तरं
भवतीति ।

श्रत्रोपपत्त्यर्थं मन्मुद्रिता भास्करबीज टिप्पग्गि विलोक्घा ॥ ३१-३२ ॥

वि. मा.—ग्रधिकाद्धनादूनं (ग्रल्पं) घनं विशोध्यं तदा शेषं घनं भवति । ग्रधिकाहणादूनमृणं विशोध्यं तदा शेषमृणं भवति । ऊना (ग्रल्पात्) द्धनादधिकं घनं वा ऊनाहणादिधिकमृणं विशोध्यं तदा तदन्तरं विपरीतं स्यादर्थादिधिक्धनस्य शोधनेन शेषमृणं भवति । तथाधिक-ऋणशोधनेन शेषं घनं भवतीति । कथं व्यस्तं (विपरीतं) भवतीति कथ्यते। ऋण घनं भवति, घनं चणुँ भवति, चेहणं शून्येन विहीनं तदा ऋणम् । घनंच शून्यविहीनं तदा घनं, शून्यं च शून्यविहीनं तदा शेषं शून्यं भवति । यदि ऋणात् घनं शोध्यं वा घनाहणं शोध्यं तदा तयोयींग एवान्तरं भवतीति ॥

### अत्रोपपत्तिः।

यदि धनरूप्यकपञ्चकाद्र पकत्रयं घनं विशोध्यते अर्थादल्पं क्रियते तदा रूप्यक द्वयं धनमविशिष्यते । यदि ऋग्रारूप्यकपञ्चकाद्दग्रारूप्यकत्रयमल्पं क्रियते तदा रूप्यकद्वयमृग् स्थास्यति । अथ यस्य रूप्यकपञ्चकं धनमस्ति रूप्यकत्रयमृग्रमस्ति तदा तद्दग्रस्याधुना विशोधनं जातमर्थाद्येन तद्दग् दत्तं तेन न गृह्यते कथ्यते च यदहं तद्र प्यकत्रयं भवते दत्तवान् तदा तस्य अष्टौ रूप्यकाणि धनं भविष्यति । यदि च रूप्यकपञ्चकमृणं रूप्यकत्रयं च घनं स्यात्तदा तद्र प्यकत्रयस्य विशोधनेऽर्थादल्पीकरग्रे तद्र प्यकत्रयं ऋग्रात्मकं भविष्यति । तदानीं तस्याष्टौ रूप्यकाणि ऋग्रात्मकानि भविष्यंतीति । शेषं स्पष्ट मेवास्ति । सिद्धान्तशेखरे 'संशोध्यमानं स्वमृग्रां घनणं घनं भवेदुक्तवदत्र योगः' श्रीपत्युक्तमिदं, बीजगिग्रते 'सशोध्यमानं स्वमृग्राद्वमेति स्वत्वं क्षयस्तद्युतिरुक्तवच्च' भास्करोक्तमिदंचाऽऽचार्योक्तानुक्र्यमेवास्तीति ॥ ३१-३२ ॥

### ग्रब व्यवकलन को कहते हैं।

हि. मा.— ग्रांघक घन में से अल्प घन को घटाने से शंष घन होता है अधिक ऋग्य में से अल्प ऋग्य को घटाने से शंष ऋग्य होता है। अल्प घन में अधिक घन को वा अल्पऋग्य-में से अधिक ऋग्य को घटाने से वह अन्तर विपरीत होता है अर्थात् अधिक घन के घटाने से शंष ऋग्य होता है। तथा अधिक ऋग्य के घटाने से शंष घन होता है। क्यों विपरीत होता है सो कहते हैं। ऋग्य घन होता है, घन ऋग्य होता है यदि ऋग्य में से शून्य को घटाते हैं तो ऋग्य ही रहता है अर्थात् उस ऋग्याङ्क में किसी तरह का विकार नहीं होता है। घन में से शून्यको घटाने से शेष घन होता है। शून्य में से शून्य को घटाने से शेष शून्य होता है। यदि ऋग्याङ्क में से घनाङ्क को घटाया जाय वा घनाङ्क में से ऋग्याङ्क को घटाया जाय तब उन दोनों का योग ही अन्तर होता है इति।।

#### उपपत्ति ।

यदि घनात्मक पांच रुपये में से घनात्मक तीन रुपयों को घटाते हैं अर्थात् अल्प करते हैं तो दो रुपये घन शेष रहता है यदि ऋगात्मक पांच रूपयों में से ऋगात्मक तीन रुपयों को अल्प करते हैं तो दो रुपये ऋग् रहता है। जिसके पास पांच रुपये घन है और तीन रुपये ऋग् है उसके उन तीन रुपयों को घटजाना है लेकिन जिसने तीन रुपये दिये थे वह नहीं लिये कहा कि वह तीनों रुपये आप ही को दे दिये तब उस व्यक्ति के पास आठ रुपये घन हो गया। यदि पांच रुपये ऋग् है और तीन रुपये घन है तब उन तीनों रुपयों को विशोधन करने से वे तीनों रुपये ऋग् होंगें तब उसको कुल आठ रुपये ऋग्, होंग। श्रेष विषय स्पष्ट ही है। सिद्धान्त शेखर में 'संशोध्यमानं स्वमृग् घनगं मित्यादि' श्रीपत्युक्त तथा बीजगिगत में 'संशोध्यमानं स्वमृग् इत्यादि मास्करोक्त आचार्योक्त के अनुरूप ही है।। ३१-३२।।

## इदानीं गुराने कररासूत्रमाह।

## ऋ गमृ गाधनयोर्घातो धनमृ गायोर्धनवधो धनं भवति । शून्यर्गायोः खधनयोः खशून्ययोर्वा वधः शून्यम् ॥ ३३॥

सु. भा.—ऋगाधनयोधीत ऋगा भवति। ऋगायोर्वधो धनवधो धनयोर्वधश्च धनं भवति । शून्यर्गयोः खधनयोः शून्यधनयोर्वा खशून्ययोश्च वधः शून्यं भवति ।। ३३ ॥

वि. भा.—ऋ एाधनयोघितऋ एां भवति । ऋ एायोर्वं धनं भवति; धन-योर्वधश्च धनं भवति । शून्यर्एयोः, शून्यधनयोः, शून्यशून्ययोविषधः शून्यं भवतीति ॥

### भ्रत्रोपपत्तिः।

कल्प्यते गुण्यः =न-प गुण्यकः =य-क तदा "इष्टोनयुक्ते न गुणेन निष्नो-ऽभीष्टच्न गुण्यान्वित वींजतो वे" तिभास्करोक्तरीत्या गुण्नाय क सममिष्टं युक्तं तदा गुण्योः =य ग्रनेन गुण्ये गुण्यिते तदा जातम् यः न-यः प ग्रस्मात् क गुण्यित-गुण्योऽयं कः न-कः प विशोध्यस्तदा विशोधनप्रकारेण विशोधनेन जातं गुण्य-फलम् =यः न-यः प-कः न+कः प अत्रान्तिमखण्डे कः, प ऋण्योधीतो धना-स्मको जातस्था धनयोधीतो धनमृण धनयोश्च घात ऋण्यम्तियपि सुगममुपद्यते ॥

गुण्यो यदि रूपालगुणकेन गुण्यते तदा गुणनफलं गुण्यादलपं भवतीति पाटीगिणितरीत्या प्रसिद्धम् । एवं यथा यथा गुणाको रूपालपस्तथा तथा गुणान फलमल्पंभवित, तदिह गुणकपरमे ह्रासेऽर्थात् शून्यसमत्वे गुणानफलमिप परमालपं शून्यसमं भवतीति, एतावताऽऽचार्योक्तमुपपन्नम् । सिद्धान्तशेखरे 'वधे घनं स्याद्याः स्वयोश्च धनर्णयोः संगुणाने क्षयश्चेति श्रीपत्युक्तं बीजगणिते 'स्वयोरस्व-योर्वा वधः स्वर्णंघाते' इत्यादि भास्करोक्तंचाऽऽचार्योक्तानुरूपमेवेति ॥ ३३ ॥

## ग्रब गुरान के लिये विधि कहते हैं।

हि. भा.—ऋगात्मक अङ्क और धनात्मक अङ्क का घात करने से गुगानफल ऋगा होता है, दो ऋगात्मक अङ्कों का घात घन होता है, दो धनात्मक अङ्कों का घात भी घन होता है। शून्य और ऋगा का घात शून्य होता है। शून्य और घन का घात तथा शून्य-शून्य का घात शून्य होता है इति।।

#### उपपत्ति ।

कल्पना करते हैं गुण्य = न - प, गुण्क = य - क तब 'इष्टोनयुक्तेन गुरोन

निघ्नोऽभीष्टघ्न गुण्यान्वितर्वाजतो वा' इस भास्करोक्त रीति से क समान इष्ट को जोड़ने से गुएगक = य इससे गुण्य को गुएगने से य. न—य. प इसमें क गुएगत गुण्य 'क. न—क. प' को घटाने से गुएगन फल = य. न—य. प—क. न + क. प इसके ग्रन्तिम खण्ड में क, प दोनों ऋएगों का घात घनात्मक हुग्रा। तथा दो घनों का घात घन, घन ग्रीर ऋएग का घात ऋएग यें भी सुगमता ही से उपपन्न होता है। गुण्य को यदि क्ष्पाल्प गुएगक से गुएगा करते हैं तो गुएग फल गुण्य से ग्रन्प होता है यह पाटी गिएगत से प्रसिद्ध है। एवं जैसे जैसे गुएगक क्ष्पाल्प है वैसे वैसे गुएगनफल श्रन्प होता है। गुएगक के परम ह्रास में ग्रर्थात् शून्यसमत्व में गुएगनफल भी परमाल्प शून्य के समान होता है। इससे श्राचार्योक्त उपपन्न हुग्रा। सिद्धान्तशेखर में 'वधे धनं स्याहएगयो: स्वयोक्च' इत्यादि श्रीपत्युक्त तथा बीज गिएगत में 'स्वयोरस्वयोर्वा वधः स्वर्ण घाते' इत्यादि भास्करोक्त भी श्राचार्योक्तानुरूप ही है इति।।३३।।

### इदानीं भागहारे करणसूत्रद्वयमाह।

धनभक्तं धनमृग्रहृतमृग्ं धनं भवति खं खभक्तं खम् । भक्तमृग्गेन धनमृग्ं धनेन हृतमृग्गमृग्ं भवति ।।३४।। खोद्धृतमृग्ं धनं वा तच्छेवं खमृग्गधनविभक्तं वा । ऋग्गधनयोर्वगंः स्वं खं खस्य पदं कृतियंत् तत् ।।३४।।

सु. भा-धनं धनभक्तं वा ऋएां ऋएाभक्तं फलं धनं भवित । खभक्तं खं फलं खं भवित । ऋरोन धनं भक्तं फलमृणं स्यात् । धनेन ऋरां हृतं फलमृणं भवित । ऋणं वा धनं खेनोद्धृतं तच्छेदं तस्य शून्यस्य छेदो यिसमिन्नुरो वा धने तच्छेदं भवित । एवं खं शून्यमृराधन विभक्तं (शून्यं) वा तच्छेदं भवित । फलं शून्यं भवित वा शून्यं तद्धरं स्यादित्यर्थः । ऋराधनयोवर्गः स्वं भवित । खस्य वर्गः खं भवित । तदेव वर्गस्य पदं भवित । यत्कृतिः स एव वर्गो भवेदिति । भास्करबीजेप्येतदेव सर्वम् । अत्र खभक्तं खमर्थात् है इदं सर्वदा शून्यसमं नेत्येतदर्यं चलनकलनं विलोक्यम् ॥ ३४-३५ ॥

वि. भाः—धनं धनभक्तं ऋगां ऋगां फलं धनं भवति, खं (शून्यं) खभक्तं (शून्येन भक्तं) फलं शून्यं भवति । ऋगोन भक्तं धनं फलमृगां भवति, धनेन भक्तमृगां फलमृगां भवति, ऋणं धनं वा शून्येन भक्तं तच्छेदं तस्य शून्यस्य छेदो यस्मिन्नृगो धने वा तच्छेदं भवति । तथा शून्यमृगाधनभक्तं फलं शून्यं वा तच्छेदं भवति । ऋगाधनयोवंगंः धनं भवति । शून्यस्य वर्गः शून्यं भवति । तदेव वर्गस्य पदं भवति । यत्कृतिः स एव वर्गो भवतीति ॥

#### अत्रोपपत्तिः

गुरानोपपत्तिवैपरीत्येन भागहारोपपत्तिरिप सुगमैव। शून्यं शून्येन भक्तं

फलं शून्यं न भवतीति प्रदर्श्ते। यथा  $\frac{3-3}{\xi-\xi} = \frac{\circ}{\circ} = \frac{3}{\xi} (9-\xi) = \frac{3}{\xi}$  एतावता शून्ये न्यूनाधिकत्वं स्पष्टमेव हग्गोचरीभूतं भवत्यर्थात्सर्वािण शून्यािन न समानािन भवन्ति तस्मात् शून्येन शून्यं भक्तं फलं शून्यं न भिवतुमर्हति, ग्राचार्येण यदस्य  $\frac{\circ}{\circ}$  मानं शून्यं कथ्यते तत्समीचीनं नास्ति। समयोर्द्धयोर्धातस्य वर्गं इत्यभिधानात् धनयोर्धातस्य ऋण्योर्धातस्य च घनत्वात् वर्गस्य सर्वथैव घनत्वमेव। ऋण् धनं वा शून्येन विभक्तं तच्छेदं भवतीत्याचार्योक्तौ विचार्यते। यथा  $\frac{u}{\xi}$  ग्रत्र र मानं यथा यथाऽल्पं भवेत्तथा तथा लिखरिधका स्यात्, र मानस्य परमाल्पत्वेऽर्थाच्छून्यसमत्वे लिखः परमाधिकाऽनन्तसमा भवेदत एव बीजगिणिते  $\frac{u}{\circ}$  खहरराशिसम्बन्धे 'ग्रस्मिन् विकारः खहरे न राशाविप प्रविष्टेष्विप निः सृतेषु। बहुष्विप स्याल्लय-सृष्टिकालेऽनन्तेऽच्युते भूतग्गोषु यद्वत्, भास्करेण कथितम्। ग्रनेन खहरराशे-रिवकारिता दृष्टान्तप्रसङ्क्षेन भगवतोऽनन्तस्याच्युतस्य साम्यं प्रतिपादयित ।

श्रथ ऋणात्मक राशिसम्बन्धे किन्तिद्विचार्यते । ०>-य,  $\frac{u^*}{o}$  = श्रनन्त, तथा  $\frac{u^*}{-u}$  = -u परन्तु -u <  $\cdot$  :  $\frac{u^*}{-u}$  = -u >श्रनन्ताधिक । इति ऋणा- ऽत्मकराशेर्वेचित्र्यमाश्चर्यकारकमस्ति, यतः शून्यादल्पो भूत्वाऽनन्ततोऽपि महान् भवतीति ॥३४-३५॥

### श्रव भाग हार के लिये कहते हैं।

हि. मा.— धन को धन से वा ऋ एग को ऋ एग से भाग देने से फल धन होता है। धन को कृत्य से भाग देने से फल कृत्य होता है। धन को ऋ एग से भाग देने से फल ऋ एग होता है। धन से ऋ एग को भाग देने से फल ऋ एग होता है। ऋ एग वा धन को शून्य से भाग देने से उस ऋ एग वा धन में शून्य छेद (हर) होता है। शून्य को ऋ एग वा धन से भाग देने से फल शून्य होता है। ऋ एग और धन का वर्ग धन होता है। शून्य का वर्ग शून्य होता है। शून्य का पद (मूल) भी शून्य होता है इति।।

#### उपपत्ति ।

गुरानोपपत्ति वैषरीत्य से भागहारोपपत्ति भी सुगम ही है। शून्य को शून्य से भाग देने से फल शून्य नहीं होता है। जैसे  $\frac{3-3}{\xi-\xi}=\frac{o}{o}=\frac{3}{\xi}\frac{(?-?)}{(?-?)}=\frac{3}{\xi}$  इससे शून्यों में न्यूनाधिक्य स्पष्ट ही देखने में स्राता है। स्रर्थात् सब शून्य बराबर नहीं होते हैं स्रतः शून्य से

शून्य को भाग देने से फल शून्य नहीं हो सकता है। श्राचार्य है इसका मान शून्य कहते हैं सो ठीक नहीं है। य यहां र का मान ज्यों ज्यों श्रन्प होगा त्यों त्यों लिब्ध श्रिषक होगी। र मान के परमात्प में श्रर्थात् शून्य समत्व में लिब्ध परमाधिक श्रर्थात् श्रनन्त के बराबर होती है। भास्कराचार्य ने बीजगिएत में खहर य राशि के सम्बन्ध में 'श्रस्मिन् विकारः खहरे न राशाविप प्रविष्टेष्विप निःसृतेषु। बहुष्विप स्याल्लयसृष्टिकालेऽनन्तेऽच्युते भूतगरीषु यद्वत्' कहा है।

ग्रब ऋगात्मक राशि के वैचित्र्य को दिखलाते हैं।  $\circ > -u$ ,  $\frac{u^3}{\circ} =$ ग्रनन्त तथा  $\frac{u^3}{-u} = -u$  परन्तु  $\circ > -u$  .  $\frac{u^3}{-u} = -u >$ ग्रनन्त यह ऋगात्मक राशि की विचित्रता श्राश्चर्य कारक है। क्योंकि शून्य से भी ग्रत्य होकर ग्रनन्त से भी ग्रधिक होता है इति ।।३४–३४।।

## इदानीं संक्रमण्विषमकर्माह।

## योगोऽन्तर युतहोनो द्विह्तः संक्रमणमन्तरविभक्तं वा । वर्गान्तरमन्तरयुतहोनं द्विहृतं विषमकर्म ॥३६॥

सु. भा.—योगो राश्योयोंगोऽन्तरेण राश्यन्तरेण युतो हीनश्च द्विह्तो दिलतो राशो स्तः। इदं संङ्क्रमणं नाम गिणतम्। वा राश्योवेगीन्तरं राश्यन्तरेण विभक्तं फलमन्तरेण युतं हीनं द्विहृतं च राशी स्तः। इदं विषमकर्म नाम गिणि-तम्। 'योगोऽन्तरेणोनयुतः'—इत्यादि तथा 'वर्गान्तरं राशिवियोगभक्तं'—इत्यादि च भास्करोक्तं चैतदनुरूपमेव।। ३६।।

वि. मा — द्वयो राष्योर्योगस्तयोरन्तरेण युतो हीनश्च कार्यः । अधितस्तदा राशी भवेताम्, इदं सक्रमणं नाम गिणतम् । वा राश्योर्वर्गान्तरं राश्यन्तरेण विभक्तं लब्धमन्तरेण युतं हीनं द्वाभ्यो भक्तं तदा राशी भवेताम् । इदं विषमकर्मनाम गणितम् ॥

### भ्रत्रोपपत्तिः ।

कल्प्येते राशी य, र अनयोर्योगः  $= u + \tau$ , अन्तरम्  $= u - \tau$ , योगोऽन्तरेण् युतः  $u + \tau + u - \tau = \gamma$  य अधितः  $= \frac{2i\eta + 3i\eta}{\gamma} = u$ । योगोऽन्तरेण हीनः

a+t-(u-t)=a+t-a+t=2 र म्राधितः  $=\frac{a^{1}u-x^{2}-t}{2}=t$  इदं संक्रमणासंज्ञकं गिएतम् । तथा राज्योर्वर्गान्तरम्  $=u^{3}-t^{3}$  राज्यन्तरेण् u-t भक्त  $\frac{u^{3}-t^{3}}{2}=u+t$  ततः पूर्ववत् ।  $\frac{a^{1}u+x^{2}-t}{2}=u$ ।  $\frac{a^{1}u+x^{2}-t}{2}=t$ । इदं विषमकर्म नाम गणितम् । एतावताऽऽचार्योक्तमुपपन्नम् । लीलावत्यां 'योगोऽन्तरेणोन-युतोऽधितस्तौ राज्ञी स्मृतं संक्रमणाख्य' मिति तथा वर्गान्तरं राज्ञिवियोगभक्तं योगस्ततः प्रोक्तवदेव राज्ञी' इति च भास्करोक्तमाचार्योक्तानुरूपमेवास्ति ॥३६॥

## श्रव संक्रमण स्रौर विषम कर्म को कहते हैं।

हि. मा.— दो राशियों के योग में दोनों राशियों के ग्रन्तर को युत और हीन कर दो से भाग देने से दोनों राशियों का प्रमास होता है इसका नाम संक्रमस है। वा दोनों राशियों के वर्गान्तर को राश्यन्तर से भाग देकर जो लब्धि हो उसमें राश्यन्तर को युत ग्रौर हीनकर दो से भाग देने से राशिद्वय का मान होता है इसका नाम विषम कमें है।।

#### उपपत्ति ।

प्रथम राशि=य । द्वितीय रशि=र, प्ररा+द्विरा=य+र=योग । प्ररा-द्विरा =य-र=श्रन्तर, योग+श्रन्तर=य+र+य-र=२य  $\cdot \cdot \cdot \frac{217+27-12}{2}=2$  योग-श्रन्तर=य+र-(य-र)=य+र-य+र=२र। स्रतः  $\frac{217-27-12}{2}=2$  संक्रमण गिएत है । वा राशिद्वय का वर्गान्तर=य²-र², राश्यन्तर (य-र) से भाग देने से  $\frac{2^2-7^2}{2}=2+2$  योग तब पूर्ववत्  $\frac{217+27-12}{2}=2$ ।  $\frac{217-27-12}{2}=2$ , इसका नाम विषमकर्म गिएत है । इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ । लीलावती में 'योगोऽन्तरेगोनयुत' इत्यादि से तथा 'वर्गान्तरं राशिवियोगभक्त' इत्यादि से भास्कराचार्यं ने आचार्योक्त के अनुरूप ही कहा है इति ॥३६॥

# इदानीं समद्विबाहुत्रिभुजे लम्बज्ञानादकरएगिगतौ भुजावाह ।

# करणी लम्बस्तत्कृतिरिष्टहृतेष्टोनसंयुताऽल्पा मूः। ग्रिधको द्विहृतो बाहुः संक्षेप्यो यद्वधो वर्गः ॥३७॥

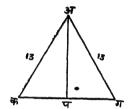
सु. मा. यो लम्बस्तस्य करणी संज्ञा ज्ञेया। तस्याः करण्याः कृतिरिष्टेन हृता। इष्टोनसंयुता कार्या अनयोर्याऽल्पा सा समद्विबाहोर्भूः कल्प्या। यश्चाधिकः स द्विहृतः समद्विबाहोर्बाहुर्जेयः। 'संक्षेप्यो यद्वधो वर्गः' इत्यस्याग्रे सम्बन्धः।

ग्रत्रोपपत्तिः । समद्विबाहौ यः शिरः कोगादाधारोपरि लम्बस्तद्वशाज्जात्य-द्वयं समानमृत्पद्यते । तत्र लम्बः कोटिः । आधाराधं भुजः । समद्विबाहोर्बाहुः कर्गः। भुजकर्गान्तरमिष्टं प्रकल्प्य तद्वर्गान्तरात् कोटिवर्गाद्विषमकर्मगाऽनन्तरप्रतिपादि-तेन द्विगुग्गभुजो भूः । कर्गो बाहुश्चाकरग्गीगत ग्रानीत इति ॥ ३७ ॥

वि. मा.—समद्विबाहौ शिरः कोणादाधारोपिर यो लम्बः सा करणी संज्ञका ज्ञेया, तस्या वर्ग इष्टेन भक्तः, इष्टोनयुक्तौ कार्यौ श्रनयोर्याऽल्पा सा समद्विबाहु- त्रिभुजस्य भूः कल्पनीया। योऽधिकः स द्वाभ्यां भक्तः समद्विबाहुत्रिभुजस्य भुजो ज्ञेयः। 'संक्षेप्यो यद्वधोवर्ग' इत्यस्याग्रे सम्बन्धः॥

### स्रत्रोपपत्तिः ।

अ क ग समद्विबाहु त्रिभुजम्। ग्र शिरः कोण बिन्दुतः क ग ग्राधारोपरि



लम्बः = ग्र र एतल्लम्बवशेन ग्रकर, ग्रगर जात्य-त्रिभुजद्वयं तुल्यं समुत्पद्यते, ग्रर लम्बः कोटिः, कर् ग्राधराधं भुजः । ग्रक = कणः । ग्रत्र भुजकर्णयोर्वगन्तिरं कोटिवर्गमिष्टं प्रकल्प्य वर्गान्तरं राशिवियोगभक्त-मित्यादिना  $\frac{कर्ण् - भूज = \frac{1}{6}$   $\frac{1}{6}$   $\frac{1}{6$ 

= कर्णं + भुज ततः कर्णं भुजयोर्योगान्तराभ्यां संक्रमणगणितेन भुजकर्णों भवेत् । भुजो द्विगुणितस्तदा भूभवेत् । कर्णो भुजश्चाकरणीगतः समागत इति ॥३७॥

ग्रव समद्विवाहु त्रिभुज में लम्बज्ञान से ग्रकरणीगत भुजदय को कहते हैं।

हि. भा.—सम दिबाहु में शिरःकोरा से आधार के ऊपर जो लम्ब होता है वह करगी संज्ञक है। उस के वर्ग को इष्ट से भाग देकर जो लिब्ब हो उस में इष्ट को हीन और युत करना चाहिये। इन दोनों में जो अल्प है उसको समदिबाहु त्रिभुज की भू कल्पना करना। अधिक जो है उस को दो से भाग देने से जो हो वह समदिबाहु का भुज होता है इति।।

#### उपपत्ति ।

यहां संस्कृतोपपित्त में लिखित (१) क्षेत्र को देखिये। श्रकग समिद्वबाहुक त्रिभुज है। श्र शिरः कोणिबन्दु से कग श्राधार के ऊपर लम्ब = श्रर इस लम्ब के वश से श्रकर, श्रगर दो तुल्य जात्य त्रिभुज उत्पन्न होता है। श्रर लम्ब = कोटि, कर श्राधारार्ध = भुज, श्रक = कर्ण यहां भुज श्रीर कर्ण के वर्गान्तर कोटि (लम्ब) वर्ग को इष्ट कल्पना कर 'वर्गान्तरं राशि वियोग भक्त' इत्यादि से कर्ण - भुज कर्ण - स्वर्ण - स्वर्ण

श्रीर भुज के योगान्तर से संक्रमण गिग्ति से भुज श्रीर कर्ण का प्रमाण श्राजायगा, द्विगुिगति भुज समद्भिबाहुक की भू है। इस तरह श्रकरणीगत भुज श्रीर कर्ण लाया गया है इति ॥३७॥

## इदानीं करणीयोगान्तरे गुणनं चाह।

## इष्टोद्धृतकरणी पदयुतिकृतिरिष्टगुणिताऽन्तरकृतिर्वा । गुण्यस्तिर्यगधोऽघो गुणकसमस्तद्गगुणः सहितः ॥ ३८ ॥

सु. भा.—यद्वधो ययोः करेण्योर्वधो वर्गो भवति तयोरेव संक्षेप्यो योगोऽन्तरं च भवतीति ज्ञेयम् । इष्टोद्धृतयोः करण्योः पदे ग्राह्यो तद्युतिकृतिर्वा तदन्तरकृति-रिष्टगुणिता तदा तयोः करण्योर्योगान्तरे स्तः । गुणकसमो गुण्यस्तिर्यक् पङ्क्ता-वधोऽधः स्थाप्यस्ततस्तद्गुणस्तैः खण्डकैर्गुणः सहितो गुणनफलं स्यात् ।

अत्रोपपत्तिः । मत्कृतभास्करबीजटिप्पग्गितः स्फुटा ।

यदा इ,  $\sqrt{n}$ , इ,  $\sqrt{n}$  एता हश्यों करण्यों तदेव गिंगात युक्त्या योग:= $(\xi, +\xi, )$   $\sqrt{n}$  =  $\sqrt{(\xi, +\xi, )^2}$  क। अम्तरम्= $(\xi, -\xi, )$   $\sqrt{n}$  =  $\sqrt{(\xi, -\xi, )^2}$  क। अथ तदा द्वयोर्वंध:= $\xi, \sqrt{n} \times \xi, \sqrt{n}$  =  $\sqrt{\xi, \xi, \eta}$  =  $\sqrt{\xi, \xi, \eta}$ 

अस्य मूलचिह्नान्तर्गतस्य मूलं निरग्रम्=इ, इ, क। श्रतो यदा द्वयोर्वधो वर्गोभवति तदैव तयोर्योगान्तरे उत्पद्येते ।। ३८ ।।

वि. भा. — ययोः करण्योवंधो वर्गो भवति तयोरेव संक्षेप्योऽर्थात् योगोऽन्तरं च भवतीति । इष्टोद्धृतयोः करण्योः पदे (मूले) ग्राह्ये तद्युतिः कृतिर्वा तदन्तरवर्ग- इष्टगुणितस्तदा तयोः करण्योयोगान्तरे भवतः । गुणकसमो गुण्यस्तिर्थक् पक्ता-वधोऽधः स्थाप्यः, ततस्तैः खण्डकैर्गुणः सहितो गुणन फलं भवेदिति ॥

#### भ्रत्रोपपत्तिः।

ग्रधुना नवीनैर्मूलिंचिन्हेन यत् प्रकाश्यते प्राचीनैस्तदेव करणी पदेन व्यविह्यते । यथा  $\sqrt{3}=$ क ३  $\sqrt{4}=$ क ५ इत्यादि, ग्रथ $\sqrt{4}\pm\sqrt{7}$  इदं स्वविग्येम्लसममतस्तद्वर्गः य+र $\pm\sqrt{4}$ . र ग्रस्य यन्मूलं वा करणी स एव योगो वियोगो वा भवति  $\sqrt{4}$ ,  $\sqrt{7}$  चानयोरिति । ग्रथ  $\sqrt{4}$   $\pm\sqrt{7}$  दं  $\sqrt{7}$  ग्रनेन गुणनेन भजनेन च  $\sqrt{7}$   $\times$   $\left(\sqrt{\frac{4}{7}}\pm\sqrt{\frac{7}{7}}\right)$ पूर्वागतरूपस्य यो वर्गस्तस्य

मूलमेव
$$\sqrt{a}$$
,  $\sqrt{t}$  श्रनयोर्युत्यन्तरं भवेदतो  $\sqrt{t} \times \left(\sqrt{\frac{a}{t}} \pm \sqrt{t}\right)$  ऽस्य-

वर्गः र $\sqrt{\frac{u}{z}}$   $\sqrt{\frac{x}{z}}$  अस्यमूलं वा करगाी  $\sqrt{u}$ ,  $\sqrt{x}$  अनयोर्योगोऽन्तरं

भवतीति । सिद्धान्तशेखरे 'ग्राह्यं न मूलं खलु यस्य राशेस्तस्य प्रदिष्टं करणीति नाम । विभाजको वा गुएगकोऽथवाऽस्याः कृतिनियुक्ता कृतिभिः करण्याः, ग्रनेन करणीपरिभाषां तथा गुएगनभजनयोविशेषं कथयति । करणीयोगवियोग-सम्बन्धे च, 'योगे वियोगे करणीं स्वबुध्या सन्ताड़येत्तेन यथा कृतेः स्यात् । तन्मूल-संयोगवियोगवर्गौ विभाजयेदिष्ट गुरोन तेन ।' उदाहरणार्थं 'द्विकाष्टमित्योस्त्रिभ-संख्ययो' रित्यादि भास्करोक्तः प्रश्नः ।

श्रीपत्युक्तौ 'संताड़येत्तेन यथा कृतिः स्यादिति तथा विभाजयेदिष्टगुरोन तेनेति पदद्वयं परिवर्त्यते चेत्तथैव ते एव योगान्तरे भवतः। तथा च तत्सूत्रमेतादृशं भवितुमहंति।

'योगे वियोगे करणीं स्वबुध्या विभाजयेत्तेन यथा कृतिः स्यात् । तन्मूलसं योगवियोगवर्गी संताड्येदिष्टगुर्णेन तेन' एताहशं सूत्रमेव परम्परया प्रसिद्ध-मस्ति ज्योतिर्वित्समाजेषु ।

'श्रादो करण्यावपवर्त्तनीये तन्मूलयोरन्तरयोगवर्गो । इष्टापवर्त्ताङ्कहतौ भवेतां क्रमेरा विश्लेषयुती करण्योः' इदमेव सूत्रं श्री जीवनाथदैवज्ञेन स्वक्रत भास्करबीज-गणितटीकायाम् ।

'आदौ करण्यावपवर्त्तनीये तन्मूलयोरन्तरयोगवर्गी' इष्टापवर्त्ताङ्कहतौ मते ते क्रमेण विश्लेषयुती करण्योः'। एवं कथितम् । भास्कराचार्येण लघुकरणी तुल्य-मपवर्त्तनाङ्कः प्रकल्प्य "लघ्व्या हृतायास्तु पदं महत्याः सैकं निरेकं स्वहतं लघु-घ्नम् । योगान्तरे स्तः क्रमशस्तयोर्वा पृथक् स्थितिः स्याद्यदि नास्ति मूलम्" इति सूत्रमुपनिबद्धम् ॥ यदि इ  $\sqrt{u}$ , इ $\sqrt{u}$  एता दृश्यौ करण्यौ तदैव गिणतयुक्तचा योगः =  $(\overline{z}+\overline{z})\sqrt{u}=\sqrt{(\overline{z}+\overline{z})^3u}$ , ग्रन्तरम्= $(\overline{z}-\overline{z})\sqrt{u}=\sqrt{(\overline{z}+\overline{z})^3}$ . य तदा द्योर्घातः= $\overline{z}\sqrt{u}\times\overline{z}\sqrt{u}=\sqrt{\overline{z}^3}$ . य अतो यदा द्योर्वधो वर्गो भवति तदैव तयोर्योगान्तरे भवित्महंत इति ॥ ३८॥

हि. भा.— जिन दो करिएयों का वध वर्ग होता है, उन दोनों का ही योगान्तर होता है। इष्टाङ्क से भाग देकर दोनों करिएयों का मूल लेना चाहिए।

दोनों का योग या वर्ग तथा अन्तर वर्ग इष्टगुिर्णित हो तब दोनों करिण्यों का योगा-न्तर होता है। गुर्णिक के तुल्य गुण्यखंड को अघोऽघः पंक्ति में तिर्यक् स्थापना करें, उसके बाद उन खण्डों से गुर्णिक को गुर्णाकर सबों का योग गुर्णानफल होता है।

#### उपपत्ति ।

इस समय मूलिचह्न से जो प्रकट होता है उसी को पुरातन समय में करणी नाम से प्रकट किया जाता था। 'विभाजको वा गुग्गकोऽथवाऽस्याः कृतिभिनियुक्ता कृतिभिः करण्याः' इस पद से करणी की परिभाषा एवं गुग्गन, भजन के लिए विशेष बात कही गई है।

करणीयोगान्तर के सम्बन्ध में 'योगे वियोगे करणीं स्वबुद्धचा सन्ताडयेत्तेन यथा कृतिः स्यात् तन्मूलम्' इत्यादि संस्कृतोपपत्ति में कहा गया है। उदाहरण के लिए 'ढिका-ष्टुमित्योस्त्रिभसंख्ययोः' इत्यादि भास्करोक्त है। श्रीपति की उक्ति में 'स्न्ताडयेत्तेन यथाकृतिः स्यात्' इत्यादि और 'विभाजयेदिष्टगुर्गेन तेन' इत्यादि दोनों पदों के परिवर्त्तन से उसी प्रकार योगान्तर होता है। तब यह सूत्र इस प्रकार होना चाहिए "योगे वियोगे करणीं स्व बुद्धचा विभाजयेत्तेन यथाकृतिः स्यात्" इत्यादि संस्कृतोपपत्ति में लिखित परम्परा ज्योतिषियों में प्रचलित है।

इसी प्रकार जीवनाथ दैवज्ञ ने भी ग्रपनी भास्करबीजगिएत की टीका में लिखा है 'ग्रादौ करण्यापवर्त्तनीये तन्मूलयोरन्तरयोगवर्गी' इत्यादि भास्कराचार्यं ने लघुकरएी के बराबर ग्रपवर्त्तनाङ्क मानकर 'लघ्व्या ह्तायास्तु पद्म' इत्यादि सूत्र लिखा है। उदाहरए के लिए यदि इ $\sqrt{u}$ , इ $\sqrt{u}$  यह दोनों करएी हैं। गिएत की भांति

योग = 
$$(\xi + \xi)$$
  $\sqrt{u} = \sqrt{(\xi + \xi)^2}$ .  $u$ ,

इस स्वरूप में मूलचिह्नान्तर्गत का मूल निरम्र = इ. इ. य है। इसलिए जिन दो का वध वर्ग होता है ।। ३६ ।।

# इदानीं करणीभागहारे वर्गे च करणसूत्रमाह।

स्वेष्टर्गाच्छेदगुराौ भाज्यच्छेदौ पृथक् युजावसकृत्। छेदैकगतहृतो वा भाज्यो वर्गः समद्विवधः ॥ ३९ ॥

सु. भा.—भाज्यच्छेदौ स्वेष्टर्णंच्छेदगुराौ छेदे या काचिदिष्टा करराि तामृणं प्रकल्प्य ताहक्छेदेन भाज्यहरौ द्वावेन गुराौ पृथक् सम्भवे सित गुराितभाज्ये गुराितच्छेदे च द्वयोद्वंयोः करण्योर्युजौ योगौ साध्यौ। पुनः स्वेष्टर्णंच्छेदगुराौ भाज्यच्छेदौ कार्यावेनमसकृद्वचावच्छेदगतैकैव करराि स्यात्। ततो भाज्यो हरैक-गतकरण्या हृतो वा फलं स्यात्। अत्र वा पदेन साधारराभागहारविधिश्च यद्गुराश्छेदो भाज्याच्छुध्यति स गुरा एव लब्धिरित्यप्याचार्येरा सूचितः। सम-द्विवधो वर्गो भवतीति स्फुटम्।

अत्रोपपत्त्यर्थं मस्कृतभास्करबीजिटप्पण्यां 'धनर्शाताच्यत्ययमीप्सितायारछेदे' इत्यादि सूत्रोपपत्तिविलोक्या ॥ ३९॥

वि. भा.—भाज्यहरौ हरे या काचिदिष्टा करणी तां ऋणं मत्वा ताहशेन हरेण गुणनीयौ, सम्भवे सित गुणितभाज्ये गुणितहरे च द्वयोर्द्वयोः करण्योयोंगौ साध्यौ। पुनः स्वेष्टणभाज्यहरौ कार्यावेवमसकृद्यावद्धरगतैकैव करणी स्यात्। ततो भाज्यो हरेकगतकरण्या भक्तो वा फलं स्यात्। यो गुणो हरो भाज्याच्छुध्यित स गुण एव लब्धिरिति साधारणभागहाररीतिरिप वा पदेनाचार्येण सूचितः, समिद्विघातो वर्गो वतीति।।

#### भ्रत्रोपपत्तिः।

भाज्यभाजकयोः समेनाङ्केन संगुण्य यदि भजेत्तदा लिब्धरिवकृतैवातो भाजकगतकरणीनामेकां व्यस्तधनणं रूपां प्रकल्प्य ताहशा भाजकेन भाज्यभाजकाबुभौ यदि गुण्येते तदा नूतनभाजके योगान्तरघातस्य वर्गान्तरसमत्वे नैका करणी
न्यूना भविष्यति पुनस्तथेव कृते प्रायो नूतनभाजकेऽप्येका करणी न्यूना भविष्यति,
एवमसकृत्कृतेऽन्त्ये सम्भवे भाजके भविष्यति ह्यं कैव करणीत्युपपन्नमाचार्योक्तम् ।
सिद्धान्तशेखरे "छेदे करण्याः समभीप्सितायाः कृत्वा विषयसिमृणस्वयोश्च ।
गुण्यौ पृथक् भाज्यहरौ युतौ तौ छेदेऽसकृत् स्यात् करणीयथैका ॥ तया भजेदूर्घ्वगभाज्यराशिमेचं करण्याः खलु भागहारः । समानराश्योशभयोश्च घाते कृते करण्याः
कृतिमप्युशन्ति" श्रीपत्युक्तमिदं, बीजगिणते "घनर्णता व्यत्ययमीप्सितायाश्छेदे
करण्या ग्रसकृद्धिघाय । ताहक् छिदाः भाज्यहरौ निहन्यादेकैव यावस्करणी हरेस्यात् ॥ भाज्यास्तया भाज्यगता करण्यः भास्करोक्तमिदं चाऽऽचार्योक्तानुरूपमे-

वास्ति । परन्तु यदि हरे धनकरणी भवेत्तदाऽऽचार्योक्तश्रीपत्युक्तभास्करोक्ता 'हरे यावदेकैव करणी स्यात्' नां व्यभिचारो भवेदिति ।। ३९ ।।

# ग्रब करणी भागहार ग्रीर वर्ग को कहते हैं।

हि. भा--हर में जो कोई इष्ट करगी हो उसकी ऋगा मानकर भाज्य और हर को गुगा देना चाहिये। सम्भव रहने से गुगात भाज्य में और गुगात हर में, दो दो करगा के योग साधन करना पुनः उपर्युक्त किया के अनुसार किया करनी चाहिये। इस तरह बार बार तब तक किया करनी चाहिए जब तक हर में एक ही करगा हो। तब भाज्य को भाजकगत एक करगा से भाग देने से फल होता है। वर्ग की परिभाषा कहते हैं समान दो अङ्कों का घात उसका वर्ग कहलाता है।।

#### उपपत्ति।

भाज्य और भाजक को समान श्रङ्क से गुणा कर यदि भाग दिया जाय तो लिख्य ज्यों की त्यों रहती है। ग्रर्थात् लिब्ध में किसी तरह का विकार नहीं होता है। इसलिये भाजक गत करिण्यों में एक को व्यस्त (उल्टा) धन, ऋण कल्पना कर उस भाजक से यदि भाज्य और भाजक को गुणा करते हैं तब नवीन भाजक में योगान्तर घात के वर्गान्तर के समान होने के कारण एक करणी न्यून होगी। पुनः उसी तरह किया करने से फिर भी नवीन भाजक में एक करणी न्यून होगी। एवं ग्रसकृत् (बार-बार) करने से हर में एक ही करणी होगी, इस से ग्राचार्योक्त उपपन्न हुमा। सिद्धान्तशेखर में 'छेदे करण्याः सममीप्सिताया' इत्यादि संस्कृतोपपत्ति में लिखित क्लोकों से श्रीपति ने तथा बीजगणित में 'धनगांता ब्यत्ययमीप्सिताया' इत्यादि संस्कृतोपपत्ति में लिखित क्लोकों से श्रीपति ने तथा बीजगणित में भाष्मायाँक्त के अनुरूप ही कहा है। परन्तु भाजक धनकरणी रहेगी तब 'यावद्धरे एकैंव करणी भवेत्' इसका व्यभिचार होगा इति।। ३६।।

# इदानीं करगीमूलानयनार्थमाह।

# इष्टकरण्यूनाया रूपकृतेः पदयुतोनरूपार्धे । प्रथमं रूपाण्यन्यत्ततो ततो द्वितीयं करण्यसकृत् ॥ ४०॥

सु. भा. — रूपकृतेः कि विशिष्टाया इष्टकरण्यूनायाः । इष्टा यैका तया विष्टयो-द्वंयोर्यो रूपवद्योगस्तेन वेष्टानामनेकासां यो रूपवद्योगस्तेनोनाया यत्पदं तेन रूपाणि पृथक् युतोनितानि तदर्घे च कार्ये । तत्र प्रथममर्घाद्योगार्धं रूपाणि कल्प्यानि । ततो उन्यदन्तरार्धं द्वितीयं मूलस्यैका करणी भवति । एवमसक्तन्मूलानयनं कार्यम् ।

श्रत्रोपपत्तिः । 'वर्गे करण्या यदि वा करण्योः' इत्यादि भास्करसूत्रस्य या महिप्पण्यामुपपत्तिस्तया स्फुटा । तत्रान्ये बहवो विशेषारच निरीक्षग्रीयाः ॥४०॥

वि. भा- रूपकृतेः इष्टकरण्यूनायाः इष्टायैका तया, इष्ट योद्वयोर्वा रूपवद्यो योगस्तेन, इष्टानामनेकासां यो रूपवद्योगस्तेनोनाया यत्पदं तेन रूपाणि पृथक्- युतोनितानि तदर्घे च कार्ये। तत्र प्रथमं योगार्घरूपाणि कल्प्यानि, ततोऽन्यदन्तरार्धं द्वितीयं मूलस्यैका करणी भवति। एवमसकृन्मूलानयनं कार्यमिति।

## ग्रत्रोपपत्तिः।

श्रथ श्र  $\pm \sqrt{n} = a \pm \sqrt{n}$  इत्येकं समीकरणं यत्र श्र, व संख्या-द्वयं संभवं न, म इति संख्याद्वयं चावर्गाङ्करूपं तदाऽत्र ग्र = व, न = म भवि-ष्यति । यद्येवं न तर्हि कल्प्यते ग्र = व + इ ग्रतः व + इ  $\pm\sqrt{$  न = व  $\pm$  $\sqrt{\mathtt{H}}$  समशोधनेन इ $\pm\sqrt{\mathtt{H}}=\pm\sqrt{\mathtt{H}}$  वर्गीकरगोन इ $^{\circ}\pm$ २ इ $\sqrt{\mathtt{H}}+\mathtt{H}$ = म समशोधनादिना  $\frac{\xi^2 - (H - f)}{\xi \xi} = \sqrt{f}$  अनेन न मूलं भिन्नं वा- **ऽभिन्नं** संभवसंख्यासमं जातं परन्तु क मानमवर्गाङ्करूपं पूर्वं प्रकृत्पितमवर्गस्य मूलं न सावयवं न निरवयवं च भिन्नवर्गे भिन्नत्वान्निरवयवाङ्कवर्गे वर्गाङ्कत्वा-दतः पूर्वकल्पना न समीचीना। ततोऽवश्यं ग्र = व, न = म इति सिध्यति। ग्रंथ कल्प्यते ग्र $+\sqrt{1}$  अस्य मुलं  $\sqrt{2}+\sqrt{1}$  वर्गकरगोन य + र+ $\sqrt{\ \ \ \ \ \ \ \ \ }$  म $\sqrt{\ \ \ \ \ \ \ \ }$  मूर्वंसमीकरणयुक्तचा य+र=अ।४य $\cdot$ र = -1, -1-२ य . र+र' = भ्र' - न मूलेन य -र  $=\sqrt{3'-}$  न ततः संक्रमर्गन य, र भ्रनयोर्मानं भवेदिति । सिद्धान्तशेखरे 'रूपकृतेः करगी रहिताया मूलयु-तोनितरूपगुराार्घे । रूपगुराः प्रथमं हि तदन्यत् स्यात् करराीपदमित्यसकृ<del>च्य</del>, श्रीपत्युक्तमिदमा वार्योक्तानुरूपमेवास्ति । भास्कराचार्येग श्रीपत्युक्तमिदं करणीम-लानयनं "वर्गेकरण्या यदि वा करण्योस्तुत्यानि रूपाण्यथवा बहूनाम् । विशोधयेद्रू -पकृतेः पदेन शेषस्य रूपाणि युतोनितानि ॥ पृथक् तदर्भे करणीद्वयं स्यान्म्लेऽथ बह्वी करणी तयोर्या। रूपाणि तान्येव कृतानि भूयः शेषाः करण्यो यदि सन्ति वर्गे।।" इत्यनेन स्पष्टीकरणपूर्वकं सम्यक् कथितमिति, करणीमूलानयनेऽन्ये-ऽपि बहुवो नियमाः स्वबीजगणिते प्रतिपादिताः ॥ ४० ॥

## भ्रब करणी मूलानयन को कहते हैं।

हि. मा — इष्ट एक करणी, वा इष्ट दो करिएयों का रूपवत् जो योग हो उससे वा अनेक करिएयों के रूपवत् योग से रिहत रूपवर्ग का जो मूल हो उससे रूप को पृथक् युत और हीन करना, दोनों का आधा करना, उसमें प्रथम योगार्ध की रूप कल्पना करना, और अन्य अन्तरार्ध के द्वितीय मूल्य की एक करणी होती है। एवं असकृत् मूलानयन करना चाहिये।।

#### उपपत्ति ।

 $x \pm \sqrt{7} = 4 \pm \sqrt{4}$  यह एक समीकरएा है जिस में x, ब ये दोनों संख्याएं संभव हैं, न, म, ये दोनों संख्याएं ग्रवर्गाङ्क रूप हैं तब ग्र=व, न=म होगा। यदि ऐसा नहीं होगा तो कल्पना करते हैं भ्र=व+इ ग्रतः व+इ $\pm\sqrt{-}$  =व $\pm\sqrt{-}$  समशो-धन से इ $\pm\sqrt{1}=\pm\sqrt{1}$  वर्ग करने से इ $^{\circ}\pm$ २ इ $\sqrt{1}$ न $\pm$ न=म समशोधनादि से  $\frac{\vec{s} \sim (H-T)}{2} = \sqrt{T}$  इससे सिद्ध होता है कि न का मूल भिन्न हो कर श्रभिन्न संभव संख्या के बराबर हुग्रा, लेकिन क का मान पहले श्रवर्गाङ्क रूप प्रकल्पित है, श्रवर्गाङ्क का मूल भिन्न वर्ग में भिन्नत्व के कारए। और निरवयवाङ्क के वर्ग में वर्गाङ्कत्व के कारए।, नसावयव होता है, न निरयव, इसलिये पूर्व कल्पना समीचीन नहीं हैं । श्रतः श्र=व, न=म सिद्ध होता है। कल्पना करते हैं श्र $+\sqrt{1}$ न इसका मूल  $=\sqrt{1}+\sqrt{1}$ वर्गं करने से य+र $+\sqrt{8}$  य. र=श्च $+\sqrt{7}$  पूर्वं समीकरणयुक्ति से य+र=श्च। ४ य. र=न वर्गं करने से य $^3+$ २ य. र+र $^3=$  $x^3$ । ४ य. र=न समशोधन से य $^3-$ २ य. र+र=श्र-न मूल लेने से य-र $=\sqrt{श^2-1}$ , श्रन्तर ज्ञान से संक्रमण गिणत से य र इन दोनों का मान विदित हो जायगा । इस से भ्राचार्योक्त उपपन्न हुम्रा । सिद्धान्त शेखर में 'रूपकृतेः करणी रहिता वा' इत्यादि संस्कृतोपपित में लिखित श्लोक से श्रीपित ने श्राचा-योंक्त के अनुरूप ही कहा है, भास्कराचार्य ने बीज गिएत में 'वर्गे करण्या यदि वा करण्योः' इत्यादि संस्कृतोपपत्ति में लिखित पद्यों से श्रीपत्युक्त कर्णीमूलानयन को स्पष्टी कर्ण पूर्व क कहा है।। ४०।।

इदानीमव्यक्तसङ्कलितव्यवकलितयोः करणसूत्रमाह।

# भ्रव्यक्त वर्ग घनवर्ग वर्ग पञ्चगत षड्गतादीनाम् । तुल्यानां संकलितव्यवकलिते पृथगतुल्यानाम् ॥ ४१ ॥

- सुः माः अव्यक्तानां तद्वर्गाणां घनानां वर्गवर्गाणां पञ्चगतानां पञ्च-घातानां षड्गतादीनां षड्घातादीनां तुल्यानां समानजातीनां सङ्कलितव्यवकलिते भवतोऽतुल्यानां भिन्नजातीनां च पृथक् स्थापनमेव तेषां सङ्कलितव्यवकलिते भवत इति । 'योगोऽन्तरं तेषु समानजात्योविभिन्नजात्योदच पृथक् स्थितिश्च'— इति भास्करोक्तमेतदनुरूपमेवातो ऽस्योपपक्तिश्च तद्वत् ॥ ४१ ॥
- वि. भा ग्रव्यक्तानां वर्गागां घनानां वर्गवर्गागां पञ्चघातानां षड्-घातादीनां तुल्यानां (समानजातीनां) योगोऽन्तरं भवति, श्रतुल्यानां (भिन्नजा-तीनां) पृथक् स्थितिरेव "तद्योगोऽन्तरं भवतीति ॥ नारायणीये बीजगणितावतंसे 'वर्णोषु च समजात्योयोगः कार्यस्तथा वियोगश्च । ग्रसहशजात्योयोगे पृथक् स्थितिः

# ग्रब ग्रव्यक्तों के सङ्कलित ग्रीर व्यवकलित को कहते हैं।

यदि १२ य<sup>९</sup>, इसमें ५ य' इसको जोड़ते हैं वा घटाते हैं तो पृथक् स्थापन ही होता है यथा १२य $^{\circ}$   $\pm$  ५य' एवं सर्वत्र समभना चाहिये इति ॥ ४१ ॥

# इदानीमव्यक्तगुराने सूत्रमाह।

# सदृशद्विवधो वर्गस्त्र्यादिवधस्तद् गतोऽन्यजातिवधः। ग्रन्योऽन्यवर्गाद्यातो भावितकः पूर्ववच्छेषम् ॥ ४२॥

त्रुः माः—सदृशयोर्द्धयोरन्यक्तयोर्वधो वर्गो भवति । त्र्यादीनां समजातीनां वधस्तद्वतस्त्र्यादिघातोऽर्थाद् घनवर्गवर्गादिको भवति । ग्रन्यजात्योर्विभिन्न-जात्योर्वधोऽन्योऽन्यवर्णघातो भवति स च भावितको भावित इत्युच्यते । शेषं

गुरानभजनादिकं कर्म पूर्ववदिति । 'स्याद्रूपवर्णाभिहतौ तु वर्णो द्वित्र्यादिकानां समजातिकानां' इत्यादिभास्करोक्तमेतदनुरूपमेव ॥ ४२ ॥

इति धनर्गादीनां सङ्कलितव्यवकलितादि ।

वि. भा. — समानयोर्द्वयोरव्यक्तयोर्घातो वर्गो भवति । समानाव्यक्तत्रया-रणां घातस्तद् घनोभवति ।

एवं समानानां चतुर्णामव्यक्तानां घातो वर्गवर्गो भवति एवं पञ्च घातादा-विष । विभिन्न जात्योवंधो उन्योऽन्यवर्णांघातो भवति स च भावित संज्ञकः' । शेषं गुर्णनभजनादिकं पूर्ववच्छोध्यमिति । स्रत्रत्यविषयाः पूर्वश्लोकस्य विज्ञानभाष्ये प्रदिश्ताः सन्ति । तत्र व ते द्रष्टव्या इति ॥ ४२ ॥

इति धनगादिनां सङ्कलितव्यवकलितादि।

## ग्रब ग्रव्यक्त गुएान को कहते हैं।

हि. मा.—समान दो अञ्यक्तों का घात उसका वर्ग होता है। समान तीन अञ्यक्तों का घात घन होता है, समान चार अञ्यक्तों का घात वर्गवर्ग (चतुर्घात) होता है। एवं पञ्चधातादि होता है। विभिन्न जातिक अञ्यक्तों के घात भावित संज्ञक है। शेष गुगान भजन ग्रादि कर्म पूर्ववत् समक्षना चाहिये। यहां के विषय पूर्वव्लोक के हि. भा. में दिखलाये गये हैं वे वहीं द्रष्टव्य हैं इति।। ४२।।

इति घन और ऋण ग्रादि का सङ्कलित भीर व्यवकलित समाप्त हुग्रा।

(१) "स्याद्र्पवर्णाभिहतौ तु वर्णो दिञ्यादिकानां समजातिकानाम् । वधे तु तद्वगेषमादयः स्युस्तद्भावितं चासमजातिषाते ॥ भागादिकं रूपवदेव रीषं व्यक्ते यदुक्तं गणिते तदत्र" भास्करोक्तमिदमाचा-र्योक्तानुरूपमेवेति ॥

# **भ्रथैकवर्णसमीकरणबीजम्**

# तत्राव्यक्तमानानयनार्थमाह।

श्रव्यक्तान्तरभक्तं व्यस्तं रूपान्तरं समेऽव्यक्तः । वर्गाव्यक्ताः शोध्या यस्माद्रूपाणि तदधस्तात् ॥ ४३ ॥

सु. भा-समे एकवर्णं समीकरणे व्यस्तं रूपान्तरमव्यक्तान्तरभक्तमव्यक्तमानं व्यक्तं भवेत् । यत्पक्षादव्यक्तमानादन्यपक्षाव्यक्तमानं विशोध्याव्यक्तान्तरं साध्यते तत्पक्षस्थरूपाण्यन्यपक्षरूपेभ्यो विशोध्य यच्छेषं तद्वचस्तं रूपान्तरमित्यर्थः। 'श्रव्यक्तः । वर्गाव्यक्ता'—इत्यादेरग्रे सम्बन्धः। 'एकाव्यक्तं शोधयेदन्यपक्षात्'— इत्यादि भास्करोक्तमेतदनुरूपमेव ॥ ४३॥

वि. भा.—समे (एकवर्णसमीकरणे) व्यस्तं रूपान्तरमव्यक्तान्तरभक्त-मव्यक्तमानं व्यक्तं जायते। यत्पक्षादव्यक्तमानादन्यपक्षाव्यक्तमानं विशोध्याव्य-क्तान्तरं साध्यते तत्पक्षस्य रूपाण्यन्यपक्षरूपेभ्यो विशोध्य यच्छेषं तद्वचस्तं रूपान्तरम्। अव्यक्तः। वर्गाव्यक्ता इत्यादेरग्रे सम्बन्धः। सिद्धान्तशेखरे 'अव्यक्त विश्लेषहृते प्रतीपरूपान्तरेऽव्यक्तमिती भवेताम्। स्याद्वा युतोनाहृतभक्तमि-च्छेत्तदाऽन्यपक्षे विहिते तथैव, श्रीपत्युक्तमिदं बीजगिणते ''यावत्तावत् कल्प्यमव्य-क्तराशेर्मानं तस्मिन् कुर्वतोद्दिष्टमेव। तुल्यो पक्षौ साधनीयौ प्रयत्नात्त्यक्त् वा क्षिप्त्वा वाऽपि संगुण्य भक्त् वा।। एकाव्यक्तं शोधयेदन्यपक्षाद्र पाण्यन्य-स्येतरस्माच पक्षात् शेषाव्यक्ते नोद्धरेद्र पशेषं व्यक्तं मानं जायतेऽव्यक्तराशेः" भास्करोक्तामिदं चाचार्योक्तान् रूपमेवेति।। ४३।।

> अब एक वर्ण समीकरण कीज प्रारम्भ होता है। उस में पहले अव्यक्त मानानयनार्थ कहते हैं।

हि. भा--एकवर्श समीकरण में विपरीत रूपान्तर को अव्यक्तान्तर से भाग देने से अव्यक्तमान व्यक्त होता है। जिस पक्ष के अव्यक्तमान में से अन्यपक्ष के अव्यक्त मान को घटाकर अव्यक्तान्तर साधन करते हैं उस पक्ष के रूप को अन्य पक्ष के रूप में से घटाकर जो शेष रहता है वही विपरीत रूपान्तर है। सिद्धान्त शेखर में 'अव्यक्तविश्लेषहृते प्रतीप रूपान्तरे' इत्यादि विज्ञान भाष्य में लिखित श्रीपतिपद्म तथा बीजगिएत में 'यावत्तावत्क-रूप्यमव्यक्तराशेः' इत्यादि वि. भा. लिखित भास्करोक्त आवार्योक्त के अनुरूप ही है इति ॥ ४३॥

# इदानीं वर्गसमीकरणमाह।

# वर्गचतुर्गु शितानां रूपाशां मध्यवर्गसहितानाम् । मूलं मध्येनोनं वर्गद्विगुशोद्धृतं मध्यः ॥ ४४ ॥

सु. मा. — यस्मात्पक्षादव्यक्तो वर्गाव्यक्ता ग्रव्यक्तवर्गश्च विशोध्यस्तदध-स्तादितरपक्षाद्र पाणि बिशोध्यानि । एवमेकपक्षेऽव्यक्तवर्गो ऽव्यक्तश्च । ग्रपरपक्षे च व्यक्तानि रूपाणि । तत्राव्यक्तमानं कथं भवेदित्येतदर्थमाह वर्गचतुर्गुणितानामित्यादि । रूपाणां व्यक्ताङ्कानां किविशिष्टानां वर्गचतुर्गुणितानां चतुर्गुणिताव्यक्तवर्गगुणकगुणितानाम् । पुनः कि विशिष्टानां मध्यवर्गसहितानां । मध्योऽव्यक्तस्तस्य गुणकश्चात्र मध्येन गृहीतस्तस्य गुणकस्य यो वर्गस्तेन सहितानां यन्मूलं तन्मध्येनाव्यक्तगुणकेनोनं वर्गदिगुणोद्धृतं द्विगुणाव्यक्तवर्गगुणकेनोद्धतं तदा मध्योऽव्यक्तोऽर्थादव्यक्तमानं स्यादिति ।

त्रत्रोपपत्त्यर्थं मत्कृतभास्करबीजटिप्पण्यां 'चतुराहतवर्गसमै रूपैः'— इत्यादि सूत्रोपपत्तिद्र ष्टव्या ॥ ४४ ॥

वि. मा.—यस्मात् पक्षादव्यक्तो वर्गाव्यक्तो ग्रव्यक्तवर्गश्च विशोध्य-स्तद्यस्तादितरपक्षाद्रूपाणि विशोध्यानि । एवमेकपक्षेऽव्यक्तवर्गोऽव्यक्तश्च भवति । इतरपक्षे रूपाणि भवन्ति । तत्राव्यक्तमानज्ञानं कथं भवेत्तदर्थं कथ्यते रूपाणां (व्यक्ताङ्कानां) चतुर्गुं णिताव्यक्तवर्गुंगुणकगुणितानां मध्यवर्गसिह-तानां मध्योऽव्यक्तस्तस्य गुणकश्चात्र मध्येन गृहीतस्तस्य गुणकस्य यो वर्गस्तेन सिहतानां यन्मूलं तन्मध्येनाव्यक्तगुणकेन हीनं वर्गद्विगुणभक्तं (द्विगुणाव्यक्त-वर्गगुणकेन भक्तं) तदा मध्योऽव्यक्तोऽर्थादव्यक्तमानं भवेदिति ।।

# स्रत्रोपपत्तिः ।

कल्प्यते य'. गु + य. गुं=व्य पक्षौ गु भक्तौ तदा य' + य. 
$$\frac{1}{1}$$
 गुं  $\frac{1}{1}$  च्य पक्षौ गु भक्तौ तदा य' + य.  $\frac{1}{1}$  गुं च्य वर्गयोगेनावश्यमेवाव्यक्तपक्षो मूलदो भवित " द्वयोद्वंयोश्चाभिहितं द्विनिध्नीम् "—इत्यादिना तेन य' + य.  $\frac{1}{1}$  गुं  $\frac{1}{1}$  मुं  $\frac{1}{1}$  प्तौ वर्गें गुरितौ वर्गें न त्यजतोऽतो गुरा-वर्गेणचतुर्गुं रोन गुणितौ जातौ ४ गुं. य'+४ गुं. गुं. य+गुं=गुं+४ गुं. व्य

 $= \forall \eta (\eta u' + \eta' u) + \eta' = \eta' + \forall \eta$  व्य एतेनाचार्योक्तं तथा चतुराहतवर्ग समै रूपैः पक्षद्वयं गुर्गयेत्। अव्यक्तवर्गरूपैर्युक्तौ पक्षौ ततो मूलमिति श्रीधराचार्योक्तसूत्रं चोपपद्यत इति ॥ ४४॥

# भ्रब वर्गसमीकरण को कहते हैं।

हि. भा.—जिस पक्ष में अव्यक्त श्रीर अव्यक्त वर्ग घटाते हैं उससे इतर पक्ष में रूप को घटाना चाहिये। इस तरह एक पक्ष में अव्यक्तवर्ग और अव्यक्त होता है, इतर पक्ष में रूप होते हैं, वहां अव्यक्त मान ज्ञान कैसे होता है उसके लिए कहते हैं। चतुर्गुणित अव्यक्त वर्ग के रूप से दोनों पक्ष को गुणा दें। दोनों पक्षों में अव्यक्त वर्ग रूप को जोड़कर दोनों पक्ष का मूल लें। तब अन्योन्य पक्षानयन भागादि किया करने पर अव्यक्त राशि मान आ जाता है।

#### उपपत्ति ।

इदानीं प्रकारान्तरेण वर्गसमीकरणेऽव्यक्तमानमानयति ।

# वर्गाहतरूपागामव्यक्तार्धकृतिसंयुतानां यत्। पदमव्यक्तार्थोनं तद्वर्गविभक्तमव्यक्तः ॥४५॥

सु० भा० —वर्गेगाव्यक्तवर्गगुगाकेन हतानां रूपागां किविशिष्टानामव्यक्तार्ध-कृतिसंयुतानामव्यक्तगुणकार्घवर्गसहितानां यत् पदं तदव्यक्तगुगाकार्घोनं तदव्यक्त-वर्गगुगाकविभक्तमव्यक्तोऽव्यक्तमानं स्यादिति ।

धत्रोपपत्तिः । चतुर्भिरपवर्त्यं पूर्वसूत्रविधिना स्फुटा ॥ ४५ ॥

2

वि. भा.—वर्गेगाव्यक्तवर्गगुग्गकेन गुग्गितानां रूपाणां (व्यक्ताङ्कानां) अव्यक्तगुग्गकार्धवर्गसंयुतानां यन्मूलं तदव्यक्तगुग्गकार्धेन हीनं तदव्यक्तवर्गगुग्गक-विभक्तः तदाऽव्यक्तराशिमानं भवेदिति ॥

#### ं स्रत्रोपपत्तिः ।

पूर्वसूत्रोपपत्तौ ४ गु (गु. य'+गु. य)+गुं=गुं+४ गु. व्य पक्षौ चतुर्भिर-पवित्तितौ गु.(गु. य'+गुं. य)+ $\frac{1}{8}$ = $\frac{1}{8}$ +गु. व्य=गुं. य'+गु. गुं. य+ $\frac{1}{8}$ =  $\frac{1}{8}$ +गु. व्य पक्षयोमू ल ग्रहरोन गु. य+ $\frac{1}{8}$ = $\sqrt{\frac{1}{2}}$ +गु. व्य पक्षयोः  $\frac{1}{8}$  हीनौ तदा गु. य= $\sqrt{\frac{1}{2}}$ +गु. व्य- $\frac{1}{2}$  एतेनाचार्योक्तमुपपन्नम् ॥४५॥

# श्रव प्रकारान्तर से वर्ग समीकरण में श्रव्यक्त मान लाते हैं।

हि. भा.—अव्यक्त वर्ग गुणक से गुणित रूपमें अव्यक्त गुणकार्ध वर्ग जोड़कर जो मूल हो उसमें से अव्यक्त गुणकार्ध को घटाकर अव्यक्त वर्ग गुणक से भाग देने से राशि मान होता है इति।

#### उपपत्ति ।

पूर्व सूत्रोपपत्ति में ४ गु (गु . य + गु . य) + गु = गु + ४ गु . व्य दोनों पक्षों को चार से अपवर्तन देने से गु (गु . य + गु . य) +  $\frac{1}{3}$  =  $\frac{1}{3}$  + गु . व्य = गु . य +  $\frac{1}{3}$  + गु . व्य = गु . य +  $\frac{1}{3}$  + गु . व्य चोनों पक्षों के मूल ग्रहरण करनेसे गु . य +  $\frac{1}{3}$  =  $\sqrt{\frac{1}{3}}$  + गु . व्य दोनों पक्षों में  $\frac{1}{3}$  घटाने से गु . य =  $\sqrt{\frac{1}{3}}$  + गु . व्य चोनों पक्षों

को गु से भाग देने से य= 
$$\frac{\sqrt{\frac{1}{\eta} + \eta}}{2}$$
  $\frac{\eta}{2}$  इससे ब्राचार्योक्त उपपन्न हुन्ना ।।४५।।

# इदानीं प्रश्नमाह।

# सैकादंशकशेषाद् द्वादशभागश्चतुर्गुं गोऽष्टयुतः । सैकांशशेषतुल्यो यदा तदाऽहर्गगं कथय ॥४६॥

सु. भा — म्रंशकशेषात् सैकाद्यो द्वादशभागः स चतुर्गुगोऽष्ट्रयुतस्तदा सैके-नांशशेषेण यदा तुल्यो भवति तदाहर्गणं कथयेति । म्रत्रांशशेषप्रमाणं या १। तदा प्रश्नालापेन

$$\frac{8(21+8)}{87}$$
 +  $2 = \frac{21+8}{8}$  +  $2 = \frac{21+8}{8}$  =  $2 = 21+8$ , अतब्बेदगामिना या +  $2 = 3$  या +  $3 = 2$  या =  $3 = 2$ 

अस्मादंशशेषात् रव्यादीनामुद्दिष्टात् पूर्ववदहर्गगः स्यादिति ॥ ४६ ॥

वि. भा.—एकेन सहितादंशकशेषाद्यो द्वादशांशः स चतुर्गुं गोऽष्टयुतस्तदा सैकेनांशशेषेण यदा तुल्यो भवति तदाऽहर्गगां कथयेति ॥

## अत्रोपपत्तिः।

अत्रांशशेषप्रमाणं कल्प्यते = य तदा सूत्रोक्तालापेन  $\frac{8(u+2)}{2}+2$  =  $\frac{u+2}{2}+2=u+2$  छेदगमेन u+2 = ३ u+3 समशोधनेन २ u=2 अतः  $u=\frac{2}{2}=2$  श्र अस्मादंशशेषाद्रव्यादीनामुद्दिष्टात् पूर्ववदहर्गणो भवेदिति ॥४६॥

#### भव अन्य प्रश्न की कहते हैं।

हि. भा.—एक सहित भंश शेष के द्वादशांश को चार से गुणा कर आठ जोड़ने से यदि एक सहित भंश श्रष के बराबर होता है तब अहर्गण प्रमाण को कही इति ॥

#### उपपत्ति ।

यहां कल्पना करते हैं ग्रंश खेष प्रमाण=य, तब सूत्रोक्त भालाप से ४ (य-१)

 $+ = \frac{u+2}{3} + = \frac{u+2x}{3} = u+2$  छेदगम से u+2x=3 u+3 समशोधन से u=22 u=22  $u=\frac{22}{3}$  = ११ इस ग्रंश शेष से पूर्ववत् ग्रहर्गण होता है इति ॥४६॥

## इदानीमन्यं प्रश्नमाह।

# हचूनमधिमासशेषं त्रिहृतं सप्ताधिकं द्विसङ्गुिरणतम् । स्रिधमासशेषतुल्यं यदा तदा युगगतं कथय ॥४७॥

सु. मा.—स्पष्टार्थम् । स्रत्र प्रश्नालापेन यदि स्रिधशेषमानं या १।  $2\left\{\frac{2I-2}{3}+6\right\}=\frac{2}{3}\frac{2I-3}{3}+8$ 

∴ या = ३८ । श्रस्मादिधमासशेषात् कुहकेन युगगतानयनं सुगमम् ।। ४७ ।।

वि. भा.—ग्रिधमासशेषं द्वाभ्यां रहितं त्रिभक्तं सप्तयुतं द्विगुिंगतं तदाऽ-धिमासशेषतुल्यं भवति तदा युगगतं कथयेति ॥

#### **अत्रोपपत्तिः**।

अत्र कल्प्यते ग्रिषिशेषमानम्=य, तदा प्रश्नोक्त्या २ $\left\{\frac{(u-2)}{2} + 6\right\}$   $= \frac{2u-8}{2} + 88 = \frac{2u-8+82}{2} = \frac{2u+32}{2} = \frac{$ 

## ग्रब ग्रन्य प्रश्न को कहते हैं।

हि. मा.— अधिमास शेष में से दो घटाकर तीन से माग देने से जो लब्ध हो उसमें सात जोड़कर द्विगुणित करने से यदि अधिमास शेष के बराबर होता है तब युगगत को कहो इति ।।

#### उपपत्ति

यहां कल्पना करते हैं प्रधिशेषमान = य, तब प्रश्नानुसार २ 
$$\left\{ \frac{(u-2)}{3} + v \right\} = \frac{2u-8}{3} + 2v = \frac{2u-8+82}{3} = \frac{2u+3u}{3}$$

## इदानीमन्यप्रश्नमाह।

# च्येकमवमावशेषं षडु द्वृतं त्रियुतमवमशेषस्य । पञ्चविभक्तस्य समं यदा तदा युगगतं कथय ॥ ४८ ॥

सु. मा.—स्पष्टार्थम् । स्रत्र प्रश्नालापेन यद्यवमावशेषं या १ ।  $\frac{u_1-v}{\varepsilon}+v=\frac{u_1+v_0}{\varepsilon}=\frac{u_1}{\varepsilon}$  । छेदगमादिना या = ८५ । अस्मात् क्षयशेषात् पूर्वप्रकारेण युगगतानयनं सुगममिति ॥ ४८ ॥

वि भा — स्रवमशेषमेकेन हीनं षड्भक्तं त्रियुतं यदा पञ्चभक्तस्यावम-शेषस्य तुल्यं भवति तदा युगगतं कथयेति ।

#### स्रत्रोपपत्तिः

श्रत्र कल्प्यते श्रवमशेषमानम् = य, तदा प्रश्नोक्तया  $\frac{u-9}{\xi}+3$   $=\frac{u-9+9c}{\xi}=\frac{u+9c}{\xi}=\frac{n+9c}{\xi}=\frac{n+9c}{\xi}=\frac{n+9c}{\xi}=\frac{n+9c}{\xi}$ मेन ५ य+c५ = ६ य श्रतः य = c५ श्रस्मादवमशेषात् पूर्ववद्युगगतानयनं स्फुटमिति ॥ ४८ ॥

#### श्रव श्रन्य प्रश्न को कहते हैं।

हि. भा - अवशेष में से एक घटाकर छः से भाग देने से जो लब्ध हो उसमें तीन जोड़ने से यदि पांच से विभक्त अवशेष के बराबर हो तब युगगत प्रमाए को कहो इति।

#### उपपत्ति ।

यहाँ कल्पना करते हैं भ्रबमश्चेषमान = य, तब प्रश्नानुसार  $\frac{u-2}{\xi}$   $\frac{1}{\xi} = \frac{u-2}{\xi} + \frac{2\xi}{\xi} = \frac{u+2\xi}{\xi} = \frac{u+2\xi}{\xi}$ छिदगम से ५ य  $\frac{1}{\xi} = \frac{u+2\xi}{\xi} = \frac{u+2\xi}{\xi}$ हे इति ॥ ४८ ॥

## इदानीमन्यप्रश्नमाह।

# मण्डलशेषाद् दृच्ननान्मूलं व्येकं दशाहतं द्वियुतम् । मण्डलशेषं व्येकं भानोर्ज्ञदिने कदा भवति ॥ ॥ ४६ ॥

सु. मा.—भानोर्मण्डलशेषाद् भगगाशेषात् । शेषं स्पष्टार्थम् । अत्र प्रश्नालापेन यदि भगणशेषप्रमागां या +२ । १० (या—१) +२ = १० या -८==या +२—१=या +१ पक्षान्तरानयनेन या -१० या = -९

वर्गसमीकरणविधिना या $^{3}$ —१० या+२५ = २५ —९ = १६ अतः या-५ =  $\pm$ ४  $\therefore$  या=९ वा १,

एवमत्र बीजयुक्तितो द्विविधं मानमुत्पद्यते यावत्तावतस्तद्वशेनोत्थापनैन भगणशेषमानम् =८३ वा, ३। श्रत्र चतुर्वेदाचार्येण प्रथममानमेव गृहीतम् । कस्माद्भगणशेषात् पूर्वंकुदृकविधिना ऽनेकधा ऽहर्गंगो भवति स चाभीष्टवारे ग्राह्यः ॥ ४९॥

वि. भा.—भानोः (सूर्यस्य) मण्डल शेषात् (भगराशेषात्) द्वाभ्यां हीनान्मूलं यत्तद् व्येकं दशगुरातं द्वियुतं व्येकं मण्डलशेषतुल्यं बुधदिने कदा भवतीति ॥

## भ्रत्रोपपत्तिः ।

#### ग्रब अन्य प्रश्न को कहते हैं।

हि. भा.— सूर्य के भगए। शेष में से दो घटा कर जो मूल होता है उसमें से एक घटा-कर दस से गुएगाकर दो जोड़ कर यदि एक हीन भगए। शेष तुल्य होता है तो बुध दिन में कब होगा इति।

#### उपपत्ति ।

यहां कल्पना करते हैं भगण शेष प्रमाण = य + २ तब प्रवनानुसार

( $\sqrt{u^4 + 2 - 2} - 8$ ) १० + 2 = (u - 8) १० + 3 = 8० य - 80 + 3 = 80 य - 80 + 3 = 81 य  $^3 + 8$ 2 य  $^4 + 8$ 2 सम शोधनादि से  $u^3 - 8$ 0 य = - 82 दोनों पक्षों में २५ जोड़ने से  $u^3 - 8$ 0 य + 24 = 24 - 85 य  $^4 - 8$ 6 य  $^4 - 8$ 7 य = 88 मूलप्रह्ण से य - 89  $\pm 8$ 1 अर्थात् य = 89, य = 81 इन दोनों से भग्णा शेष को उत्थापन देने से द्व3, ३ इस भग्णाशेष से कुद्दक युक्ति से अनेकथा अहर्गण होता है वह अभीष्ट दिन में प्रह्ण करना चाहिये इति ।। ४8 ।।

# इदानीमन्यप्रश्नमाह।

# स्रिषमासशेषपादात् त्र्यूनाद्वर्गो ऽधिमासशेषसमः । स्रवमावशेषतो वाऽवमशेषसमः कदा भवति ॥ ५०॥

सुः भाः—स्पष्टार्थम् । यद्यधिमासशेषस्य क्षयशेषस्य च प्रमागां या १ तदा प्रश्नालापेन ।

$$\left(\frac{u_1}{8} - \frac{1}{3}\right)^2 = \left(\frac{u_1^8 - \frac{1}{3}}{8}\right)^2 = \frac{u_1^8 - \frac{1}{3}}{\frac{1}{3}} = u_1 \text{ an } 3 + \frac{1}{3}$$

$$u_1^8 - \frac{1}{3} = \frac{1}{3} + \frac{1}{3} = \frac{1}{3} + \frac{1}{3} = \frac{1}{3} + \frac{1}{3} = \frac{$$

या -४० या +४००=४००-१४४=२५६

∴ या-२०= ±१६ ततः या= ३६ वा ४

श्रत्र यदि रूप्त्रयतोऽधिशेषस्य क्षयशेषस्य वा पादः शोध्यते शेषश्च धनात्मकोऽपेक्षितस्तदा द्वितीयं मानमेव ग्राह्मम् । ततोऽधिशेषादवमावशेषाच कुटकविधिना कल्पगतानयनं सुगममिति ॥ ५० ॥

वि. भा. — अधिमासशेषचतुर्थांशात् त्रिहीनात् वर्गोऽधिशेष समः । वा अवमावशेषतोऽवमशेषतुल्यः कदा भवतीति ॥

#### भ्रत्रोपपत्तिः ।

कल्प्यते ग्रधिमासशेषस्य मानम्=य, तदा प्रश्नोक्तचा 
$$\left(\frac{u}{8} - 3\right)^{8}$$
= ग्रधिशेष =  $u = \left(\frac{u - 27}{8}\right)^{8} = \frac{u^{8} - 28u + 28u}{25}$ 
=य छोदगमेन  $u^{8} - 28u + 28u = 25u$  समशोधनेन  $u^{8} - 80u = -28u$  पक्षयोः ४०० योजनेन  $u^{8} - 80u = 40u$  स्थाने  $u^{8} - 80u$  स्थान

एवमेवावमावशेषतः क्रिया कार्या तदा ऽवमशेषज्ञानं भवेत् । स्रत्र यदि रूपत्रयतो ऽधिशेषस्यावमशेषस्य वा चतुर्थाशः शोध्यते शेषश्च धनात्मकोऽपेक्षितस्तदा द्वितीयमानमेव ग्राह्मम् । ततोऽधिशेषादवमशेषाच्च कुदृकेन कल्पगतानयनं स्फुट-मेवेति ॥ ५०॥

# इत्येकवर्णसमीकरणम्

#### श्रब श्रन्य प्रश्न को कहते हैं।

हि. भा.— अधिमास शेष चतुर्थांश में से तीन घटाकर वर्ग करते हैं वह अधिशेष के बराबर होता है वा अवमशेष चतुर्थांश में से तीन घटाकर वर्ग करते हैं वह अवमशेष के बराबर कब होता है इति ।

#### उपपत्ति ।

कल्पना करते हैं अधिमास शेष प्रमाण = य, तब प्रश्नानुसार  $\left(\frac{u}{v}-v\right)^{2}$  = अधिशे =  $u = \left(\frac{u-v}{v}\right)^{2} = \frac{u^{2}-v}{v}$  = u = v छेदगम से  $u^{2}-v$  २४ य + v १६ य समशोधन से  $u^{2}-v$  ० य = v १४४ दोनों पक्षों में ४०० जोड़ने से  $u^{2}-v$  ० य + ४०० = ४०० - v १४४ मूलप्रहण से u - v २० = v १६ अतः v = v १६ अर्थात् v = v १४४ दोनों पक्षों में v श्रित् v = v १४४ दोनों पक्षों में v श्रित् v = v १४४ दोनों पक्षों में v १६० व्या शेष्टियां से के चतुर्थां से से चतुर्थां से से चतुर्थां से से चतुर्थां से चतुर्थां से से चतुर्थां से चतुर्थां से चतुर्थां से चतुर्थां से चतुर्थां से चतुर्थां से से चतुर्थां से चतुर्था

इति एक-वर्गां-समीकरण समाप्त हुआ।

# **भ्रनेकवर्णसमीकरणबीजम्**

#### इदानीमनेकवर्णसमीकरणमाह।

# ष्ट्राद्याद्यान् वर्गान् प्रोह्याद्यमानमाद्यहृतम् । सहशच्छेदावसकृद् द्वौ व्यस्तौ कुष्टको बहुषु ॥ ५१ ॥

सुः भाः—ग्राद्याद्वर्णाद्येऽन्ये वर्णास्तानितरस्मात् पक्षात् प्रोह्य शेषमाद्येना ऽऽद्यवर्णगुराकेन हृतमाद्यमानमाद्योन्मितः स्यात् । एकस्य वर्णास्योन्मितीनां बहुत्वे द्वौ पक्षौ व्यस्तावन्योन्यहरगुरानोद्भूतौ सहशच्छेदौ कृत्वाऽसकृत् तदन्यवर्णोन्नितः साध्या । एकपक्षस्य हरेगापरपक्षीयौ लवहरौ सङ्गुण्य छेदगमं च विधाय 'ग्राद्याद्वर्णादन्यान्' इत्यादिना तदन्यवर्णमानेयम् । एवमसकृत् कर्मं कार्यम् । श्रन्ते बहुषु वर्णोष्वज्ञातेषु कृहको भवति । तत्र कृहकोन्मितिः साध्येत्यर्थः । भास्करानेक-वर्णसमीकररामेतदनुरूपमेव ॥ ५१ ॥

वि.भा.-- श्राद्याद्व एविन्ये ये वर्णास्तानितरस्मात् पक्षात् प्रोह्य शेषमाद्य-वर्णागुराकेन भक्तमाद्यमानं भवति एकस्य वर्णस्योन्मितीनां बहुत्वे द्वौ द्वौ पक्षौ च्यस्तौ (परस्परहरगुणनोद्भूतौ) सदृशहरौ कृत्वाऽसकृत् तदन्यवर्गोनिमतिः साध्या । एकपक्षस्य हरेगापरपक्षीयावंशहरी संगुण्य छेदगमं च कृत्वा 'ब्राद्या-द्वर्णादन्यान्' इत्यादिना तदन्यवर्णमानेतव्यम्। एवमसक्रत्कर्मकार्यम्। श्रन्ते बहुषु वर्गोष्वज्ञातेषु कुहको भवति । तत्र कुहकेन मानं साध्यमिति ।। सिद्धान्तशेखरे 'आर्च वर्गं प्रोह्म पक्षात्कृतोऽपि त्यक्त्वा शेषानन्यतश्चाद्यभक्ते । प्राहुस्तज्ज्ञास्तामिती-राहुरेवं कार्यातुल्यच्छेदनाभिश्च भूयः ॥ एकोन्माने कुहकः स्यात् प्रमाणं तान्यन्यानि स्युः प्रतीपात्ततद्व । कुद्दाकारे भाज्यवर्णस्य मानं तस्मिन् लब्धं हारवर्णास्य चाहुः" ःश्रीपत्युक्तमिदमनेकवर्णंसमीकरणमाचार्योनुक्तारूपमेवास्ति, "आद्यं वर्गों शोधयेदन्यपक्षादन्यान् रूपाण्यन्यतश्चाद्यभक्ते। पक्षेऽन्यस्मिन्नाद्य वर्गोन्मितिः स्याद्वर्गस्यैकस्योन्मितीनां बहुत्वे ॥ समीकृतच्छेदगमे तु ताभ्यस्तदन्य-चर्फोन्मितयः प्रसाध्याः । अन्त्योन्मितौ कुदृविधेर्गुगाप्ती ते भाज्य तद्भाजक वर्गा माने ।। श्रन्थेऽपि भाज्ये यदि सन्ति वर्णास्तिन्मानमिष्टं परिकल्प्य साध्ये । विलोम-कोत्थापनतोऽन्यवर्णमानानि भिन्नं यदि मानमेवम् "भूयः कार्यः कुट्टकोऽत्रान्त्य-वर्गं तेनोत्थाप्योत्थापयेद् व्यस्तमाद्यान् ॥'' श्रनेन मास्कराचार्येगाचार्योक्तं श्री पत्युक्तं वा स्पष्टीकृत्योक्तं ध्याख्यातं चेति ॥ ५१ ॥

# ग्रब ग्रनेक वर्ग समीकरा को कहते हैं।

हि. भा.—प्रथम वर्ण से अन्य जो वर्ण है उनको इतर (दूसरे) पक्ष में से घटा कर शेष को प्रथम वर्ण गुणक से भाग देने से प्रथम वर्ण का मान होता है। एक वर्ण के अनेक मान रहने से दो दो पक्षों के समान हर कर के असकृत् (बार बार) अन्य वर्ण का मान साधन करना चाहिए। एक पक्ष के हर से दूसरे पक्ष के ग्रंश और हर को गुणा कर और छेदगम कर के 'आद्याद्वर्णादन्यान्' इत्यादि आचार्योक्ति से अन्य वर्ण का मान लाना चाहिये। एवं असकृत् कर्म करना चाहिये। अन्त में बहुत वर्णों के अज्ञात रहने से कुहक होता है अर्थात् वहां कुहक से मान साधन किया जाता है।। सिद्धान्त शेखर में ''आद्यं वर्णं प्रोह्म पक्षात्कु-तोऽपि' इत्यादि विज्ञान भाष्य में लिखित श्रीपतिप्रकार आचार्योक्त प्रकार के अनुरूप ही है। तथा बीजगिएत में ''आद्यं वर्णं शोधयेदन्यपक्षादन्यान् रूपाण्यन्यतस्वाद्यमक्ते' इत्यादि विज्ञान भाष्य में लिखित पद्यों से भास्कराचार्य ने आचार्योक्त प्रकार को वा श्रीपत्युक्त प्रकार को स्पष्टीकररणपूर्व क कहा हैं और व्याख्या की हैं इति।। ५१।।

## इदानीं प्रश्नानाह।

# गतभगरायुताद् द्युगरात् तच्छेषयुतात् तदैक्यसंयुक्तात् । तद्योगाद् द्युगरां वा यः कथयति कुटुकज्ञः सः ॥ ५२ ॥

सु. मा.—ग्रहर्गणादिष्टग्रहस्य गतभगण्युताद्योऽहर्गणं कथयति । वाऽहर्गणात् तस्य गतभगण्यस्य शेषयुताद्योऽहर्गणं कथयति । वाऽहर्गणात् तयोर्गतभगण्भगण्- शेषयोर्यदेक्यं तेन संयुक्ताद्योऽहर्गणं कथयति । वा तयोर्गतभगण्भगण्शेषयोर्यो- गाद्योऽहर्गणं कथयति स एव कुटकज्ञः ।

 तृतीय प्रश्ने ऽहर्गं एः =या १। गतभगएाः =का। ततो गतभगराशेषम् = ग्रभ. या - ककु. का

म्रतः भशे +या +ग्रभ = या (ग्रभ +१) — का (ककु -१) = यो

 $\therefore$  का  $=\frac{2I(yy+2)-2I}{6}$ । कुटकेन याक्तावन्मानं सुगमम्।

चतुर्थं प्रश्नेऽहर्गं गः=या । गतभगगाः=का ।

भगगाशेषम् = ग्रभ. या - कक्. का

∴ गभ + भशे = ग्रभ. या — ककु. का + का = ग्रभ. या — का (ककु — १)
 =यो । अतः का = ग्रम. या – यो । कुद्दकेन यावत्तावन्मानं सुगमम् ॥ ५२ ॥

वि. भा.— बुगणात् (श्रहर्गणात्) इष्टग्रहस्य गतभगणयुताचोऽहर्गणं कथ-यति । वा योऽहर्गणात् गतभगणस्य शेषयुतादहर्गणं कथयति । वा योऽहर्गणात् यतभगण भगणशेषयोर्यदैक्यं तेन संयुक्तादहर्गणं कथयति । वा यो गतभगण भगणशेषयोर्योगाद हर्गणं कथयति स कुटकज्ञ इति ॥

#### श्रत्रोपपत्तिः ।

प्रथमप्रश्ने कल्प्यते ग्रहर्गणः=य। भगणशेषमानम्=क ततोऽनुपातेन  $\frac{y + x + z}{x + x}$  = गभगण्  $\frac{y + x + z}{x + x}$  = गभगण्  $\frac{y + x + z}{x + x}$  = गतभगण्  $\frac{y + x + z}{x + x}$  = गतभगण् पक्षयोः य योजनेन गतभ  $\frac{y + x + z}{x + x}$  =  $\frac{y + x + x}{x + x}$  =  $\frac{y + x}{x$ 

द्वितीयप्रश्ने कल्प्यते ग्रहर्गणः=य। गतभगणः=क तदा  $\frac{\sqrt{3} + \times u}{6\pi q}$ =गतभ $+\frac{4}{6}$   $\frac{1}{6}$   $\frac{1}{6$ 

चतुर्थंप्रश्ने कल्प्यते ग्रहगंगाः = य। गत भगगाः = क तदा पूर्ववद्भगगाशेषम् = ग्रम × य - ककु × क पक्षयोः गतभगगायोजनेन भगगाशे + गतभ = ग्रम × य - ककु × क + क== ग्रम × य - क (ककु - १) = यो समयोजनेन ग्रम × य = यो + क (ककु - १) समशोधनेन ग्रम × य - यो = क (ककु - १) पक्षो ककु - १ भक्तौ तदा ग्रम × य - यो = क ग्रत्र कुट्टकेन य मानं सुखेन व्यक्तं भवेदिति ॥५२॥

#### भ्रव प्रश्नों को कहते हैं।

हि. मा. — जो व्यक्ति इष्ट ग्रह के गत भगए। युत श्रहगैंए। से श्रहगैंए। को कहता है। वा गतभगए। के शेष युत श्रहगैंए। से श्रहगैंए। को जो कहता है, वा गतभगए। भौर भगए। शेष के ऐक्य से युत श्रहगैंए। से श्रहगैंए। को जो कहता है। वा गत भगए। शेष के योग से श्रहगैंए। को जो कहता है वह कुट्टक का पण्डित है।।

## उपपत्ति ।

प्रथम प्रश्न में कल्पना करते हैं ग्रहर्गणमान = u । भगणशेषमान = क, तब  $\frac{1}{2}$   $\frac{1}{2}$ 

द्वितीयप्रश्न में कल्पना करते हैं ग्रहगंगा = य, गतभगण = क, तब प्रभ. य = गतभ कक्

 $+\frac{4\pi i \sqrt{3}}{6\pi g}$  ग्रतः ग्रम. य=ककु. गतभ+भगग्रहो, समशोधन से ग्रम. य—ककु. गतभ+भगग्रहो+य=यो=ग्रम. य+य—ककु. क दोनों पक्षों में य जोड़ने से भगग्रहो+य=यो=ग्रम. य+य—ककु. क=य(ग्रभ+१)—ककु. क समशोधनादि से $\frac{2($ ग्रभ+१)—यो=क यहां कुट्टक से य मान व्यक्त हो जायगा।

तृतीय प्रश्न में कल्पना करते हैं। ग्रहर्गेण=य। गत भगण=क, तब  $\frac{7 + 2}{6 + 2}$ = गतभ +  $\frac{1}{6 + 2}$   $\frac{1}{6$ 

चतुर्थं प्रश्न में कल्पना करते हैं ग्रहर्गण=य, गत भगण=क तब पूर्वं बत् भगण-शेष=ग्रभ. य—ककु. क दोनों पक्षों में गत भगण जोड़ने से भगणशे +गतभ=ग्रभ. य —ककु. क + क= ग्रभ. य—क (ककु-१)=यो समयोजन से ग्रभ. य=यो + क (ककु-१) समशोधन से ग्रभ. य—यो = क (ककु-१) दोनों पक्षों को ककु-१ भाग देने से ग्रभ. य—यो ककु-१
=क यहां कृट्टक से य मान सुगमता से ही ग्राजायगा ॥५२॥

# इदानीमन्यान् प्रश्नानाह ।

# गतभगगोनाद् द्युगगात् तच्छेषोनात् तदैक्यहोनाद्वा । तद्विवराद् द्युगगां वा यः कथयति कुट्टकज्ञः सः ॥५३॥

सु. भा — ग्रनन्तरप्रश्नेषु योगस्थाने वियोगः कृत इति स्पष्टार्थम् । उत्तरार्थं च पूर्वप्रश्नोत्तरे योगस्थाने वियोगं कृत्वा कर्म कर्तव्यमिति ॥ ५३ ॥

वि. भा.—ग्रनन्तरप्रश्नेषु योगस्थाने वियोगः कृतः । उत्तरार्धे पूर्वप्रश्नो-त्तरे योगस्थाने वियोगं कृत्वा कर्म कर्त्तव्यमिति ॥५३॥

## भव भ्रन्य प्रश्नों को कहते हैं।

हि. भा.—पूर्व प्रश्नोत्तर में योग स्थान में वियोग (ग्रन्तर) करके क्रिया करनी चाहिये।।५३।।

## इदानीमन्यान् प्रक्नानाह ।

# राश्याद्यं स्तच्छेषेश्चैवं अभुक्ताधिमासदिनहीनैः। तच्छेषेश्च युगगतं यः कथयति कृट्टकज्ञः सः ॥५४॥

सु. भा.—एवं राश्याद्यैस्तच्छेषैश्च युताद्धीनाद्वा ऽहर्गणात्। गतराश्यादि-तच्छेषयोगान्तराद्वा । भुक्ताधिमासक्षयाहैश्च युतोनितादहर्गणात् तच्छेषयुतो-नितादहर्गणाच्च वा गताधिमासाधिशेषयोगान्तराद्वा गतक्षयाहतच्छेषयोगान्तराद्वा यो युगगतं कथयति स एव कुदृकज्ञः।

अत्र यदि गतराशिदिनगरायोग उद्दिष्टस्तदाऽहर्गेराः = या । गतभगराः = का । भगराशेषम् = ग्रभ. या — ककु. का । इदं द्वादशगुरां राशिशेषमानं नीलकम-पास्य कल्पकृदिनहृतं गतराशयः = <u>१२ ग्रभ. या — १२ ककु. का — नी</u> कक्

 $\therefore$  गरा + श्रह =  $\frac{या (१२ ग्रभ + कक्) - १२ कक्. का - नी }{ कक्$ 

ततः या = १२ ककु. का + नी + यो. ककु । 'श्रन्येपि भाज्ये यदि सन्ति १२ ग्रम + ककु वर्णास्तन्मानिष्टः परिकल्प्य साध्ये' इत्यादि भास्करविधिना कुटकेन यावत्ता-वन्मानं सुगमम् । एवमालापानुसारेण समौ पक्षौ विधाय कुटकादिना ऽव्यक्तमान मन्येषु प्रश्नेष्वप्यानेयमिति ॥ ५४ ॥

वि. मा. — राश्याद्यैस्तच्छेषैश्च युतोनादहर्गणात् । भुक्ताधिमासावमैश्च युतोनितादहर्गणात् । तच्छेषयुतोनितादहर्गणाच्च, वा गताधिमासाधिशेषयोगा-न्तराद्वा गतावमतच्छेषयोगान्तराद्वा युगगतं यः कथयति स कुट्टकज्ञोऽस्तीति ।।

ग्रत्र यदि गतराश्यहर्गणयोग उद्दिष्टस्तदा कल्प्यते ग्रहर्गणः=य, गतभगणः=क तदा  $\frac{7}{8}$  = गतभ $+\frac{1}{8}$  छेदगमेन ग्रभ. य=ककु. गभ+भशे
समशोधनेन ग्रभ. य—ककु. गतभ=भशे=ग्रभ. य—ककु. क। इदं द्वादश
गुणितं राशिशेषमानं (न) त्यक्त्वा कल्पकुदिनभक्तं तदा गतराशयः।

भ्रत्र राशिशे = न,  $\frac{१2 \text{ प्रभ. } \text{ } \text{u} - १2 \text{ } \text{a}_{\overline{0}}}{\text{a}_{\overline{0}}}$  पक्षयोः य योजनेन

<u>१२ ग्रभ . य—१२ ककु . क—न</u> +  $u = \eta \pi \tau I + u = \pi \sigma I$ 

\_\_ १२ ग्रभ. य + कक. य - १२ कक्. क - न कक्  $=\frac{u\ (१२\ yy++aq)-१२\ aq.\ a-1}{aq}$  छेदगमेन  $u\ (१२\ yy++aq)$   $-१२\ aq.\ a-1=aq.\ ul$  समयोजनेन  $u(१2\ yy++aq)=१2\ aq.\ a+1$  +ul.  $aq.\ ull$  १२  $yy++aq.\ aq.\ a+1+ul$ .  $aq.\ ay++aq.\ aq.\ ay++aq.\ ay++aq.$ 

### भ्रव भन्य प्रश्नों को कहते हैं।

हि. भा.— राष्यादि से श्रीर उसके शेष से, युत्तहीन श्रहगंगा से, भुक्ताधिमास श्रीर खनम से, युत श्रीर हीन श्रहगंगा से, उसके शेष से, युत श्रीर हीन श्रहगंगा से भी ना गताधिमास श्रीर श्रिधशेष के योग-श्रन्तर से ना गतावम श्रवमशेष के योग-श्रन्तर से युगगत को जो कहता है वह कुट्टक का पण्डित है इति-।।

#### उपपत्ति ।

यहां यदि गतराशि श्रौर श्रहर्गण का योग उद्दिष्ट है तो कल्पना करते हैं श्रहर्गण = य गतभगण = क तब  $\frac{7 + 4}{6} = 1 + \frac{1}{6}$  छेदगम से ग्रभ. य= ककु. गभ= भशे समशोधन से ग्रभ. य= ककु. गतभ= भशे = ग्रम. य= ककु. क इसको वारह से गुणा कर राशि शेषमान को घटाकर कल्पकुदिन से भाग देने से गत राशि प्रमाण होता है। १२ ग्रभ. य= १२ ककु. क= = गत राशि । यहाँ राशि से=न दोनों पक्षों में य जोड़ने से ककु

<u>१२ प्रभ. य—१२ ककु. क—न</u>+य=गत राशि+य=यो

्यो . छेदगम से य (१२ प्रभ+ककु. क - न \_य (१२ प्रभ+ककु) --- १२ ककु. क - न ककु

=यो . छेदगम से य (१२ प्रभ+ककु) --- १२ ककु. क - न = ककु. यो समयोजन से य (१२ प्रभ+ककु) --- १२ ककु. क - न = ककु. यो समयोजन से य (१२ प्रभ+ककु) --- १२ ककु. क + न + यो . ककु ∴ १२ ककु. क + न + यो . ककु २२ प्रभ + ककु =य 'ग्रन्येऽपि भाज्ये यदि सन्ति वर्णा' इत्यादि भास्करोक्ति से कुट्टक युक्ति से य मान सुगमता ही से विदित होगा । एवं ग्रालापानुसार दोनों पक्षों को समान कर कुट्टकादि से ग्रन्य प्रश्नों में भी व्यक्तमान लाना चाहिये इति,।। ४४।।

## इदानीमन्यप्रश्नद्वयमाह ।

# श्रंशकशेषेरायुतात् लिप्ताशेषात्तदन्तरादथवा । भानोर्ज्ञदिने द्युगर्गं कथयति कुट्टकज्ञः सः ।।५५।।

सु. मा.—भानोलिप्ता शेषादंशकशेषयुताद्वा तयोलिप्तांशशेषयोरन्तराद्योबुधवारे ऽहर्गणां कथयित स एव कुद्दक । कल्प्यते ऽहर्गणाः =या । रिवभगणाभागाः =च भा रभ = ग्रा । गतभागाः =का । ततों ऽशशेषम् = ग्रा । या—ककु . का ।
इदं षष्टिगुणां कल्पकृदिनहृतं लब्धं नीलकमानं नी १। तद्गुणितं हरं भाज्यादपास्य जातं कलाशेषम् = ६० ग्रा या—६० ककु . का—ककु . नी ।

ग्रतः भाशे + कशे = ६० श्र.या—६० कक्.का—कक्. नी + श्र.या—कक्.का = या (६० श्र + श्र) — कक् (६१ का + नी) = यो ततः ६१ का + नी =  $\frac{2I(\xi + \Re y) - 2I}{8}$ । कृहकेन यावत्तावन्मानं सुगमम्।

यदि योगमानम्=५३६ । कल्पकुदिनानि=१०९६ । रिवभगगाः=३ । तदा स्र=चक्रभा . रभ=३६० $\times$ ३=१०८० ।

६१ भ्र=६५८८० । ततः पूर्वसमीकरणरूपम् ।

६१ का + नी <u>- ६५८८० या - ५३६ - १६४७० या - १३४ - ६२३५ या - ६७</u> १०**९**६ २७४ १३७

 $= \xi \circ a + \frac{\xi \psi a - \xi \psi}{\xi \xi \psi}$ 

अतो ऽय १५ या—६७ मभिनः। अत्र कुहकेन रूपविशुद्धौ वल्ली है

रूपविशुद्धौ गुर्गाः=६४। अभोष्ट ६७ विशुद्धौ गुर्गाः=४१

यावत्तावन्मानं सुखेन भवति । चतुर्वेदाचार्यमतं यच कोलब्र् केनानुवादितं महागौरवमप्रयोजकं च । एवमन्तरतोऽपि कर्म कर्तव्यम् ॥ ५५ ॥

वि. मा.—भानोः (सूर्यस्य) लिप्ता (कला) शेषात् म्र शकशेषेण युतात् वा कलांश शेषयोरन्तराद्बुधवारे योऽहर्गणं कथयति सः कुट्टकपण्डितोऽस्तीति ॥

## श्रत्रोपपत्तिः।

करुपते ग्रहगैराप्रमाराम् = य। रिवभगरागिशः = चभा । रिवभ = र, गत-भगरागः = क तदा  $\frac{\sqrt{16} + \sqrt{16}}{\sqrt{16}}$  च गतभगरा  $\frac{\sqrt{16}}{\sqrt{16}}$  छेदगमेन रिवभगगांश  $\times u = \tau \times u = \pi \pi_0$ , गतभगगा  $+ \pi_0$  शशे  $= \pi \pi_0$ ,  $\pi_0$   $+ \pi_0$  शशे समशोधनेन  $\pi_0$  शंशे  $= \tau \times u - \pi \pi_0$ ,  $\pi_0$  हुंदगमेन ६० र.  $u - \xi_0$   $\pi \pi_0$ ,  $\pi_0$   $= \pi_0$   $= \pi_0$ 

#### भ्रब भ्रन्य दो प्रश्नों को कहते हैं।

हि. भा. — सूर्य के कलाशेष में भ्रंश शेष जोड़ने से जो होता है उससे वा कलाशेष भौर भ्रंशशेष के भ्रन्तर से बुधदिन में जो भ्रहुर्गेशा को कहता है वह कुट्टक का पण्डित है इति।

#### उपपत्ति ।

कल्पना करते हैं ब्रह्मेंग्र प्रमागा = य। रिविभगणांश = चमा + रिविभ = र, गतमगणा = क तब  $\frac{var}{arg} = \frac{var}{arg} = \frac{var}{arg}$ 

## इदानीमन्यान् प्रश्नानाह ।

द्यंशकशेषं त्रियुतं लिप्ताशेषं कदा रवेर्ज्ञीदने । षट्सप्ताष्टी नव वा कुर्वन्नावत्सराद् गराकः ॥५६॥

सु० मा०—रवेरंशकशेषं त्रियुतं कदा बुधदिने लिप्ताशेषं भवति । वांशकशेषं षड्भिः सप्तभिरष्टभिर्वा नवभिर्युतं कदा बुधदिने लिप्ताशेषं भवति । श्रस्योत्तरमा-वत्सरादेकवर्षाभ्यन्तरे कुर्वन्नपि गेराक इत्युच्यते ऽस्माभिरिति ।

अनन्तरप्रश्नोक्तचा-ग्रंशशेषम् = ग्र. या - कक्. का कलाशेषम् = ६० अया -- ६० कक् . का -- कक् . नी ततः प्रश्नालापेन---

ग्र . या—ककुु. का ╂ ३=६० ग्र. या − ६० ककुु. का—ककुु. नी

मम् । एवं रूपत्रयस्थाने षट्, सप्ताद्याः स्थाप्याः ।

श्रत्रापि चतुर्वेदगौरवं न बुद्धिमद्भिराहतम् ॥ ५६ ॥

वि. मा. - रवेरंशकशेषं त्रियुतं बुधदिने कदा कलाशेषं भवति । वा षड्भिः सप्तभिरष्टभिनंवभिवा- अ शकशेषयुतं कदा बुधदिने कलाशेषं भवति, एतदुत्तरं वषिभयन्तरे कुर्वन्निप गणकः कथ्यते इति ॥

#### भ्रत्रोपपत्तिः ।

कल्प्यते अहर्गग्पप्रमाग्गम् =य । रिवभगणांशाः =र । गतमगणाः = क

तदाऽनुपातेन  $\frac{\overline{v} \cdot u}{\overline{n}} = \overline{v} \cdot \overline{u} + \frac{\overline{v} \cdot u}{\overline{n}}$  छेदगमेन  $\overline{v} \cdot u = \overline{v} \cdot \overline{u}$ + ग्रंशरो = क . ककु + ग्रंशे समाशोधन ग्रंशरो = र . य — क . ककु इदं षष्टिगुरिएतं कल्पकुदिनभक्तं लब्धं न मानम् =  $\frac{\varepsilon \circ (\tau. \ u-a. \ aag}{aag} = -$ \_\_ ६० र . य—६० क . ककु छेदगमेन ६० र . य—६० क . ककु = ककु . न एत-द्यदि प्रथमपक्षे शोध्यते तदा कलाशेषम् = ६० र . य-६० क. ककु - ककु. न-ततः प्रश्नोक्तया ग्रंशशे+३ = कलाशे = ६०र. य -६० क . ककु - ककु. न —र. य—क. ककु + ३ पक्षयोः क. ककु योजनेन ६०र. य—६०क. ककु + क. ककु — ककु. न=र. य + ३, ६०र. य — (५९ क. ककु + ककु. न) पक्षौ ५९ क . ककु + ककु . न योजनेन ६०र . य = र. य + ३ + ५९क. ककु + ककु. न पक्षौ र. य + ३ हीनौ तदा ६०र  $\times$  य - र. य - ३ = ५९र. य - ३  अत्र कुट्टकेन य मानं सुखेन विदितं भवेत् । एवं रूपत्रयस्थाने षट् सप्तादीन् संस्थाप्योपर्यु क्तिक्रययाऽभीष्टसिद्धिरिति ॥ ५६ ॥

#### श्रब श्रन्य प्रश्नों को कहते हैं।

हि. भा.—रिव के ग्रंश शेष में तीन जोड़ने से बुध दिन में कब कला शेष होता है। वा ग्रंशशेष में छः सात ग्राठ नौ जोड़ने से कब बुध दिन में कला शेष होता है इसके उत्तर को एक वर्षाम्यन्तर में करते हुए व्यक्ति गग्राक कहलाते हैं।।

#### उपपत्ति ।

कल्पना करते हैं ग्रहर्गे ए प्रमाण = य। रिवभगणांश = र। गतभगण = क तब ग्रनुपात से  $\frac{7}{4}$  य = गतभ +  $\frac{1}{2}$  छेदगम से र . य = ककु . गतभ + ग्रंशशे = ककु . क +  $\frac{1}{2}$  केकु छेदगम से र . य = ककु . गतभ +  $\frac{1}{2}$  शंशशे समशोधन से र. य = क ककु . च ककु . गतभ +  $\frac{1}{2}$  शंशशे समशोधन से र. य = क ककु =  $\frac{1}{2}$  शंशशे इसको साठ से गुणांकर कल्प कुदिन से भाग देने से लिब्ध =  $\frac{1}{2}$   $\frac{1}{$ 

## इदानीं प्रश्नद्वयमाह।

# श्च शासममंशशेषं कलासमं वा कलाशेषम् । दिवसकरस्येष्टदिने कुर्वन्नावत्सराद् गराकः ॥५७॥

सु. भा — कस्मिन्निष्टदिने दिवसकरस्य रवेरंशमानसममंशशेषं वा कलासमं कलाशेषं भवति । ग्रस्योत्तरमावत्सरात् कुर्वन्निप गणकः ।

अहर्गे गः=या १। गतभगगाः=का १। तदा

भगगाशेषम् = ग्रभ . या - कक् . का । इदं द्वादशगुगां कल्पकदिनैविभज्य

लब्धं राशिमानं नी १। तद्गुए।हरं भाज्यादपास्य जातं राशिशेषम् = १२ ग्रभ. या — १२ ककुः का — ककुः नी । इदं त्रिशद्गुणं कल्पकुदिनैर्विभज्य लब्धमंशमानम् पी १। तद्गुए।हरं भाज्यादपास्य जातमंशशेषम् = ३६० ग्रभः या — ३६० ककुः का — ३० ककुः नी — ककुः पी = पी

ततः या = 
$$\frac{350 \text{ कतु. } \text{ an} + \text{ ang. } -\text{fl} + \text{ql} \text{ (कतु} + \text{g)}}{350}$$

अत्र भाज्ये वर्णत्रयमतो वर्णाद्वयस्येष्टमाने प्रकल्प्य कुट्टकेन यावत्तावन्मानं ज्ञेयम् । एवमशशेषं षष्ट्या संगुण्य कल्पकुदिनैविभज्य लब्धं कलामानं लोहितकं प्रकल्प्य तद्गुणहरं भाज्यादपास्य कलाशेषतः समीकरणं कृत्वा तत्र भाज्ये वर्णत्रयमानानीष्टानि प्रकल्प्य यावत्तावन्मानं ज्ञेयम् ॥ ५७ ॥

वि. भा.—दिवसकरस्य (सूर्यस्य) ग्रंशसममंशशेषं वा कलासमं कलाशेषं कस्मिन्निष्टिदने भवति, एतदुत्तरमावत्सराद्वर्षाभ्यन्ते कुर्वन्निप गगाक उच्यते इति ॥

#### ग्रत्रोपपत्तिः।

कल्प्यते अहर्गरामानम् =य। गतभगराः =क तदा पूर्ववद् भगराशेषम् = ग्रमः य—ककुः क इदं द्वादशगुरां कल्पकृदिनैर्भक्तं लब्धं == न तद्गुरां हरं भाज्यादपास्य जातं राशिशेषम् = १२ ग्रमः य—१२ ककुः क—ककुः न इदं त्रिशद्गुरिएतं कल्पकृदिनैर्भक्तं लब्धमंशमानम् =प तद्गुणं हरं भाज्यादपास्यांश शेषम् = ३६० ग्रमः य—३६० ककुः क—३० ककुः न—ककुः प=प ततः समयोजनेन ३६० ककुः क + ३० ककुः न + प (ककुः + १) = ३६० ग्रमः य, ग्रतः ३६० कः ककुः न +प (ककुः + १) = ३६० ग्रमः य, ग्रतः ३६० कः ककुः न +प (ककुः + १) = ३६० ग्रमः य

द्वयस्येष्टमाने प्रकल्प्य कुट्टकेन य मानं सुखेन विदितं भवेत् । एवमंशशेषं षष्ट्या संगुण्य कल्पकुदिनेभंक्तं लब्धं कलामानं ल प्रकल्प्य तद्गुएगं हरं भाज्याद्विशोध्य कलाशेषात् समीकरएां कृत्वा तत्र भाज्ये वर्णत्रयमानानीष्टानि प्रकल्प्य य मानं ज्ञातव्यमिति ॥५७॥

# श्रव श्रन्य दो प्रश्नों को कहते हैं।

वि. मा. – किसी इष्ट दिन में रिव का ग्रांशमान ग्रांशशेष के बराबर होता है वा कलातुल्य कलाशेष होता है इसका उत्तर वर्ष पर्यन्त करते हुए व्यक्ति गणक कहलाते हैं इति ॥ ५७॥

#### उपपत्ति ।

कल्पना करते हैं अहर्गण प्रमाण = य, गत भगण = क, तब पूर्ववत् मगणके =

ग्रभ. य—ककु. क इसको बारह से गुगा कर कल्पकुदिन से भाग देने से लिब्ध —न तद्गुगित हर को भाज्य में से घटाने से राशिशेष = १२ ग्रभ. य—१२ ककु. क—ककु. न इसको तीस से गुगाकर कल्पकुदिन से भाग देने से लिब्ध — प, तद्गुगित हर को भाज्य में से घटाने से ग्रंशशेष = ३६० ग्रभ . य—३६० ककु . क— ३० ककु . न—ककु . प=प समयोजन से ३६० ककु. क+३० ककु. न+4० ककु. न+4० ककु. न+4० ककु. न+7) = ३६० ग्रभ . य, ग्रतः

३६० ककु. क + ३० ककु. न + प (ककु + १) =य । यहां भाज्य में तीन वर्गा हैं, दो वर्गा

का मान इष्ट कल्पना कर कुट्टक से य मान सुगमता ही से होता है। एवं श्रश शेष को साठ से गुणाकर कल्पकुदिन से भाग देने से लब्ध कलामान ल कल्पना कर तद्गुणित हर को भाज्य में से घटाकर कला शेष से समीकरण कर वहां भाज्य में तीनों वर्णों के मान को इष्ट कल्पना कर य मान जानना चाहिये इति ।।४७।।

# इदानीमन्यान् प्रश्नानाह ।

# ग्रवमावशेषमवमैरिधमासकशेषमधिमासैः । इष्टयुतोनं तुल्यं कुर्वन्नावत्सराद् गराकः ॥५८॥

सु. भा.—इष्टाङ्के न युतमूनं वाऽवमावशेषमवमैस्तुल्यं तथेष्टाङ्के न युतमूनं वाऽिधमासशेषमिष्ठमासेस्तुल्यमस्तीत्यस्योत्तरमावत्सरात् कुर्वन्निप गणकः।

ग्रत्राहर्गणमानम् =या १। गतावमानि =का १। तदा ऽवमावशेषम् =क्षदिः या—ककुः का । ततः प्रश्नालापेन क्षदिः या—ककुः का ±इ=का

∴ या =  $\frac{(44)}{8}$  का  $\mp \frac{1}{2}$  । ग्रतः कुहकेन यावत्तावन्मानं सुगमम् ।

द्वितीयप्रश्ने गतसौरमानम् = या १। गताधिमासाः = का। तदाऽधिमास-शेषम् = अधिमाः या—कसौदिः का। ततः प्रश्नालापेन—

ग्रिघमा. या-कसौदि. का ± इ=का

 $\therefore$  या= $\frac{(4\pi + 1)(4\pi + 1)}{3\pi}$  । अतो यावतावन्मानं सुगमम् ।

श्रस्योत्तरं गतेन्दुदिनमानं यावत्तावत्कल्प्यते तदाऽपि भवतीति ॥ ५८॥

वि. भा. — इष्टाङ्कोन युतं हीनमवमावशेषमवमैस्तुल्यं तथेष्टाङ्कोन युतं हीनमधिमासशेषमधिमासैस्तुल्यमस्तीत्येतदुत्तरमावत्सरात् (वर्ष पर्यन्तं) कुर्वन्न- पि गर्णकोऽस्तीति ।।

## अत्रोपपत्तिः ।

कल्प्यते ग्रहर्गणप्रमाणम् =य । गतावमानि = र तदाऽनुपातेन अवम य कक्

=गतावम $+\frac{300}{600}$  =र $+\frac{300}{600}$  छेदगमेन अवम . य=ककु . र+अवमशे समशोधनेन ग्रवम . य-र . ककु=ग्रवमशे, ततः प्रश्नोक्त्या ग्रवम . य-र . ककु=ग्रवमशे, ततः प्रश्नोक्त्या ग्रवम . य-र . ककु=ग्रवम . य+इ=र+र . ककु=र (१+ककु) समशोधनेन ग्रवम . य-र (१+ककु) + इ ग्रतः  $\frac{7}{300}$   $\frac{7}{300}$ 

द्वितीय प्रश्ने कल्प्यते गतसौरप्रमाणम्=य। गताधिमासः=र, तदाऽनु-पातेन  $\frac{\pi}{\pi}$  =गताधिमास +  $\frac{\pi}{\pi}$  =र+ग्रिधिशे, छेदगमेन श्रिषमा. य = कसौ. र+ग्रिधिशे, समशोधनेन ग्रिधमा. य — कसौ. र=ग्रिधिशे प्रश्नोक्त्या अधिमा. य — कसौ. र± इ=र पक्षयोः कसौ. र योजनेन ग्रिधमा. य ± इ=र + कसौ. र=र (१+ कसौ) समशोधनेन ग्रिधमा . य=र (१+ कसौ)  $\mp$  इ श्रतः र (१+ कसौ)  $\mp$  इ श्रतः र (१+ कसौ)  $\mp$  इ श्रतः ग्रिथमा

# ग्रब ग्रन्य प्रश्नों को कहते है।

हि. मा. —इष्टाङ्क से युत वा हीन अवम शेष अवम के बराबर है तथा इष्टाङ्क से युत वा हीन अधिमास शेष अधिमास के बराबर है इसका उत्तर वर्ष पर्यन्त करते हुए व्यक्ति गएक है इति ।।

#### उपपत्ति ।

कल्पना करते हैं ग्रहगेंगा प्रमागा = य। गतावम = र, तब ग्रनुपात से  $\frac{91}{8}$  ककुं  $\frac{1}{8}$  स्वमः य = ककुं र  $\frac{1}{8}$  समशोधन से प्रवमः य = र. ककुं  $\frac{1}{8}$  स्वमः य  $\frac{1}{8}$  र. ककुं जोड़ने से श्रवमः य  $\frac{1}{8}$  स्वमः  $\frac{1}{8$ 

द्वितीय प्रश्न में कल्पना करने हैं गत और प्रमाण्=य। गताविमास=र तब  $\frac{3}{3}$  प्रमाण्यात् से  $\frac{3}{3}$  प्रमाण्य

ग्रिंघमा . य—कसौ . र $\pm$ इ=र दोनों पक्षों में ककु-र जोड़ने से ग्रिंघमा . य $\pm$ इ=र +कसौ . र=र (१+कसौ )  $\pm$ ६ ग्रिंग  $\pm$ १ ग्रिंघमा . य=र (१+कसौ )  $\pm$ ६ ग्रिंग  $\pm$ १ ग्रिंमा  $\pm$ 1 श्रिंमा  $\pm$ 1 श्रिंमा  $\pm$ 2 यहां कुट्टक से सुगमता पूर्वक य मान विदित होगा इति ॥५८॥ ग्रिंधमा

# इदानीमन्यं प्रश्नमाह।

# िनिश्छेदभागहारो भानोः सप्ततिगुर्गोऽशशेषोनः । शुध्यत्ययुतविभक्तः कुर्वन्नावत्सराद् गराकः ॥५९॥

सु. भा-—िनश्छेदभागहारो हढ़कुदिनानि । शेषं स्पष्टार्थम् । ५५ श्रायी-प्रश्नोत्तरे यदि ग्र=चक्रभा. इग्रभ, तदा तेनैव विधिनांशशेषम् = अ . या—हककु. का = नी । ततः प्रश्नालापेन ७० हककु ग्र. या + हककु. का १००००

= ७० हककु-नी ।

ततः कुहकेन ऋगाभाज्यविधिना नीलकमानं सुगमम् ।। ५९ ।। इत्यनेकवर्णसमीकरगाबीजम् ।

वि. भा.—भानोः (सूर्यस्य) निक्छेदभागहारः (दृढ्कुदिनानि) सप्तत्यागुगः, ध्रांशशेषेगा हीनः, अयुतिवभक्तः शुध्यति, एतदुत्तरं वर्षपर्यन्तं कुर्वन् गणकोऽ स्तीति ॥

#### भ्रत्रोपपत्तिः।

५५ सूत्रोपपत्तौ रिवभगगांशाः = चभा . रिवभ = र तेनैव विधिनांऽशशेषम् = र . य — हककु . क = न ततः प्रश्नोक्त्या  $\frac{90 \times \text{हकक} - 31}{20000}$  =  $\frac{90 \times \text{हककु} - 7}{20000}$  =  $\frac{90 \times \text{हa}}{20000}$  =  $\frac{90 \times \text{gas}}{20000}$  =

# धव अन्य प्रश्न को कहते हैं।

हि. भा.—सूर्य के दृढ़कुदिन को सत्तर से गुएगाक्र अंश शेष घटाकर एक अयुत से भाग देने से निःशेष होता है इसका उत्तर वर्ष पर्यन्त करते हुए व्यक्ति गएगक है इति ।।

# **ब्राह्मस्फुटसिद्धान्ते** ं

#### उपपत्ति ।

भ्रनेकवर्णसमीकरए।बीज समाप्त हुआ।

# भावितबीजम्

### अथ भावितमुच्यते तत्र सूत्रम्।

भावितकरूपगुराना साव्यक्तवघेष्टभाजितेष्टाप्त्योः । म्राल्पेऽधिकोऽधिकेऽल्पः क्षेप्यो भावितहृतौ व्यस्तम् ॥ ६० ॥

मु. भा.—भावितकस्य भावितगुणकस्य रूपाणां च गुणना वधः किविशिष्टा साव्यक्तवधाऽव्यक्तगुणकयोवंधेन सहिता तत इष्टेन भाजिता लब्धिर्माह्या। अनयोरिष्टाप्त्योमंध्ये योऽधिकः सोऽत्पेऽव्यक्तगुणकेऽत्परचाधिकेऽव्यक्तगुणके क्षेप्यः। एवं यो द्वौ राशी भवतस्तौ भावितकहृतौ भावितगुणकेन हृतौ व्यस्तमव्यक्तमानं स्यात्। यावत्तावद्गुणके क्षेप्येण यन्मानं तत्कालकमानं कालकगुणके क्षेप्येण यन्मानं तद्यावत्तावन्मानं ज्ञेयमिति। एकस्मिन् पक्षे भावितमन्यस्मिन्नव्यक्तौ रूपाणि च कृत्वा तदोपरि लिखितं कर्मं कर्तंव्यमिति।

श्रत्रोपपत्तिः । पक्षान्तरादिना कल्प्यते समौ पक्षौ श्र. या. काः क. या + ख. का + ग ∴ याका = ज्या + ख का + ग श्रम्म क्षा का + ज्या

ततो 'भावितं पक्षतोऽभीष्टात् त्यक्त् वा वर्गो सरूपकौ' इत्यादि भास्कर-विधिना  $\frac{\bf g}{\bf g}$  इतीष्टं प्रकल्प्य फलं  $\Rightarrow \frac{\bf e}{\bf g} \cdot \frac{\bf g}{\bf g} \cdot \frac{\bf g}{\bf g}$  । यतः केवलं संयोजनेन

विशेषाञ्च भास्करबीजतोऽवगम्याः। तत्र मत्कृतोपपत्तिश्च तहिपण्यां विलोक्या ॥ ६० ॥

वि. मा.—भावितकस्य (भावित गुराकस्य) रूपाराां च गुराना (वधः) ऽव्य-क्तगुराकयोर्वधेन सिहता, इष्टेन भक्ता लिब्धप्राह्मा, इष्टलब्ध्योर्मध्ये योऽधिकः सो-ऽल्पेऽव्यक्तगुराकेऽल्पश्चाधिकेऽव्यक्तगुराके क्षेप्यः, एवं द्वो राशी भवतः, तौ भावि-तकभक्तौ (भावितगुराकेन भक्तौ) तदा विपरीतमर्व्यक्तमानं स्यात् ॥

#### ग्रत्रोपपत्तिः।

#### ग्रब भावित बीज को कहते हैं।

हि. मा.—भावित के गुएक और रूपों के घात में अव्यक्त गुएाकद्वयवध को जोड़ कर इष्ट से भाग देकर लिब्ध ग्रहण करना चाहिए। इष्ट और लिब्ध में जो अधिक हो उसको अल्प अव्यक्त गुएाक में जोड़ना और अल्प को अधिक अव्यक्तगुएाक में जोड़ना और, इस तरह दो राशिमान होता है उन दोनों राशियों को मावित गुएाक से भाग देने से विपरीत अव्यक्तमान होता है अर्थात् प्रथम अव्यक्त गुएाक में जोड़ने से जो होता है वह द्वितीय अव्यक्त का मान होता है, तथा द्वितीय अव्यक्त गुएाक में जोड़ने से जो होता है वह प्रथम अव्यक्त का मान होता है इति।।

#### उपपत्ति ।

यदि इ. य + इ. क + रू = य . क जिसमें य, छोर क का मान ग्रभिन्न है, यदि य = न + इ. क = प + इ तब य. क = (न + इ) (प + इ) = इ (न + इ) + इ (प + इ) + रू वा न . प + इ . न + इ . प + ई . इ = इ . न + इ . इ + इ . प + इ . इ रू समशोधन से न.प=इ.इ+क अतः है है +क जन, प मानों से उत्थापन करने से य, क, के मान होंगे।

जिससे 'प' मान भिन्न हो; तब न, प मानों से उत्थापन करने से य, क, के मान होंगे।

यदि इ. इ+क यह धनात्मक है तब 'च' की ऋगात्मक मानकल्पना करने से 'प' का भी

ऋगात्मक मान भ्रायगा। तब य=इ—न, क=इ—प इससे भ्राचार्योक्त उपपन्न हुआ।।

सिद्धान्तशेखर में 'जह्यात् पक्षादेकतो भावितानि' इत्यादि संस्कृतोपपत्ति में लिखित श्रीपत्युक्त भी उपपन्न होता है। बीज गगित में 'भावितं पक्षतोऽभीष्टात्' इत्यादि संस्कृतोपपत्ति में लिखित पद्यों से भास्कराचार्यं ने श्रीपत्युक्त हो को स्फुट कहा है इति।। ६०।।

#### इदानीं प्रश्नमाह ।

# भानोराश्यंशवधात् त्रिचतुर्गुणितान् विशोध्य राश्यंशान् । नर्वातं ह्यू वा सूर्यं कुर्वन्नावस्सराद् गराकः ॥ ६१ ॥

सु॰ भा॰—भानोः सूर्यस्य यद्राशिमानं यच्चांशमानं तयोर्वधात् त्रिगुगान् राशीन् चतुर्गुगानंशांश्च विशोध्य शेषं नवीतं दृष्ट् वाऽऽवत्सरात् सूर्यं कुर्वन्निप स गगाक इति ।

भ्रत्र राशिमानम् = या १ । भ्रंशमानम् =का १ । ततः प्रश्नालापानुसारेगा— या. का—३ या—४ का =९०

∴ या. का = ३ या + ४ का + ९०

∴ वर्णाङ्काहतिरूपैक्चम्=३×४+९०=१०२। इष्टम्=६। फलम्= $^{1}$ कृ $^{2}$ =१७। ततो या=१०। का=२०॥ ६१॥

वि. भा.—भानोः (सूर्यस्य) राश्यशयोर्वधात् त्रिगुणितान् राशीन् चतुर्गुणा-नंशांश्च विशोध्य शेषं नर्वति दृष्ट् वा सूर्यमाचत्सरात् (वर्षपर्यन्तं) कुर्वन्निप स गणक इति ।

अत्र कल्प्यते राशिप्रमाणम् स्य, ग्रंश प्रमाणम् स्र तदा प्रश्नोक्तचा य. र - ३ य-४र=९० समयोजनेन य . र=९०+३ य+४ र, ततो वर्णाङ्काहित-रूपैक्चम् =३×४+९०=१०२ इष्टम् =६

 $\frac{१ \circ ?}{\epsilon} = ? \circ =$  फलम् । स्रतो य= १०, र=२० ॥ ६१ ॥

#### भ्रव प्रश्न की कहते हैं।

हि. भा.—सूर्य की राशि भी न अंश के घात में से त्रिगुरिएत राशि चतुर्गुरिएत अंश

को घटाने से नव्वे होता है तब एक वर्ष पर्यन्त सूर्य का साधन करते हुए भी वह गएक है इति ।। ६१

यहां कल्पना करते हैं राशि प्रमाण=य। श्रंश प्रमाण=र, तब प्रश्नानुसार य. र — ३ य—४ र=६० दोनों पक्षों में ३ य + ४ र जोड़ने से य.र=६०+३ य + ४ र तब 'वर्णाङ्काहितिरूपैक्य' मित्यादि भास्करोक्त सूत्र से वर्णाङ्काहितिरूपैक्य = ३  $\times$  ४ + ६० = १०२, इष्ट=६  $\therefore$   $\frac{१०२}{६}$  = १७ = फल। श्रतः य=१०, र=२० इति ॥ ६१ ॥

इदानीं भाविते प्रकारान्तरमाह।

भावितके यद्द्र्घातो विनष्टवर्गोन तत्प्रमाणानि । कृत्वेष्टानि तदाहतवर्गोक्यं भवति रूपाणि ।। ६२ ॥ वर्गाप्रमाणभावितघातो भवतीष्टवर्गासङ्ख्येवम् । सिध्यति विनाऽपि भावितसमकरणात् कि कृतं तदतः ॥ ६३ ॥

सु. मा.—भावितके भावितसमीकरणे येषां वर्णानां घातो (यद्घातः) ऽस्ति । तत्प्रमाणानि विनष्टवर्णेनेष्टानि कृत्वा तदाहृतवर्णेनेष्टां रूपाणि भवित । एकवर्णमपहाय परेषां मानानीष्टानि प्रकल्प्य तदाहृतानां वर्णगुणकानामैन्धं यद्भवित तानि रूपाणि व्यक्तानि भवन्ति । इष्टानां वर्णप्रमाणानां भावितस्य भावितगुणकस्य च घात इष्टिविमुक्तवर्णसंख्या भवित । एवं भावितसमकरणाद् भावितसमीकरणाद्विनापि वर्णमानं सिघ्यति । श्रतस्तत् पूर्वं कृतं भावितं कि किमर्थं कार्यमिति शेषः । 'मुक्त् वेष्टवर्णं सुधिया परेषां कल्प्यानि मानानि तथेप्सितानि' इत्यादिभास्करोक्तमेतदनुरूपमेव ।

**अत्रोपपत्तिश्चेष्टंकल्पितमानानामुत्थापनेन स्फुटा ॥ ६२-६३ ॥** 

वि. मा.—भावितके (भावितसमीकरणे) येषां वर्णानां घातोऽस्ति तत्प्रमाणानि विनष्टवर्णेनेष्टानि कृत्वा तद्गुणितवर्णेक्यं रूपाणि भवित । एकवर्णं
त्यक्त् वा परेषां मानानीष्टानि प्रकल्प्य वर्णगुणानामेक्यं यद् भवित तानि
रूपाणि (व्यक्तानि) भवन्ति । इष्टानां वर्णप्रमाणानां भावितगुणकस्य घात इष्टविमुक्तवर्णसङ्ख्या भवित । एवं भावितसमीकरणाद्विनाऽपि वर्णमानं सिध्यिति,
ग्रतस्तत् "पूर्वं कृतं भावितं किमर्थं करणीयमिति" बीजगणिते 'मुक्त्वेष्टवर्णं
सुधिया परेषां कल्प्यानि मानानि यथेप्सितानि । तथा भवेदभावितभङ्ग एवं स्यादाद्यबीजिक्रययेष्टसिद्धिः भास्करोक्तमिदमाचार्योक्तानुरूपमेवास्तीति ॥ ६३ ॥

इति भावितबीजम्

# भावितबीजम्

## भ्रव भावित में प्रकारान्तर कहते हैं।

हि. भा.—भावित समीकरण में जिन वर्णों का घात है उसके प्रमाणतुल्य विनष्ट-वर्णों से इष्ट कर वर्णोंक्य को उससे गुणा करने से रूप होते हैं। एक वर्णों को छोड़ कर भ्रन्यों के मान इष्ट कल्पना कर वर्णोगुणकों का ऐक्य जो हो वे रूप होते हैं। इष्टवर्ण प्रमाण और भावित गुणक का घात इष्टविमुक्त वर्णसंख्या होती है। एवं भावित समी-करण विना भी वर्णमान सिद्ध होता है। भ्रतः पूर्व में किया हुआ भावित क्यों किया जाय। बीज गिणत में 'मुक्त वेष्टवर्ण सुधिया परेषां' इत्यादि भास्करोक्त भ्राचार्योक्त के भ्रनुष्ट्य ही है इति ।।६३।।

इति भावित बीज समाप्त हुआ।

# वर्गप्रकृतिः

बज्राभ्यासतोऽनेककनिष्ठज्येष्ठानयनम्

मूलं द्विधेष्टवर्गाद् गुराकगुराादिष्टयुतिवहीनाच्च । द्याद्यवधो गुराकगुराःसहान्त्यघातेन कृतमन्त्यम् ॥ ६४ ॥ वज्जवधैक्यं प्रथमं प्रक्षेपः क्षेपवधतुल्यः ॥ प्रक्षेपशोधकहृते मूले प्रक्षेपके रूपे ॥ ६४ ॥

सु० मा०—इष्टवर्गाद्गुण्कगुण्यादन्येनेष्टेन केनिच युता द्वोना च यन्मूलं तदन्त्यसंज्ञमधोऽघो द्विधा स्थाप्यम् । यस्येष्टस्य वर्गः कृतः स चाद्यसंज्ञोऽप्यधोऽघो द्विधा स्थाप्यः । येन युतेनोनेन वा मूलं प्राप्तं स क्षेपसंज्ञः शोधकसंज्ञो वा ऽधो ऽघो द्विधा स्थाप्यः । एवं तिर्यक्पंक्तिद्वये द्विधा कनिष्ठज्येष्ठक्षेपाणां विन्यासो जातः स्रत्रेष्टवर्गो येन गुण्केन गुण्तितस्तस्य संज्ञा प्रकृतिः । आद्यस्य कनिष्ठसंज्ञा । स्रन्त्यस्य च ज्येष्ठसंज्ञेति सर्वं भास्करबीजे प्रसिद्धम् । स्राद्ययोः कनिष्ठयोवंधो गुण्यकेन प्रकृत्या गुण्योऽन्त्ययोज्येष्ठयोधितेन सह सहितः । एवमन्त्यमन्यज्ज्येष्ठ कृतमाचार्येरिति शेषः । कनिष्ठज्येष्ठयोर्वज्ञवर्धेक्यं चान्यत् प्रथमं कनिष्ठसंज्ञं भवति । तत्र क्षेपयोर्वधेन तुल्यः प्रक्षेपो भवतीति । एवं प्रक्षेपे वा शोधके ऋण्क्षेपे तुल्यभावनया ये मूले कनिष्ठज्येष्ठे ते प्रक्षेपकेण वा शोधकेन हृते क्ष्पे प्रक्षेपके क्पक्षेपे कनिष्ठज्येष्ठे भवत इति सर्वं भास्करवर्गप्रकृतितः स्फुटम् ।

श्रत्रोपपत्त्यर्थं मस्कृतभास्करबीजटिप्पण्यां वर्गप्रकृत्युपपत्तिर्विलोक्घाः ।। ६४-६५ ।।

वि. मा.—इष्टवर्गात् गुराकगुरात् केनचिदन्येनेष्टेन युतात् हीनाच्च यन्मूलं तदन्त्यसंज्ञं (ज्येष्ठं) अघोऽघो द्विघा स्थाप्यम् । यस्येष्टस्य (कनिष्ठस्य) वर्गकृतः स ग्राद्यसंज्ञो (कनिष्ठ)ऽप्यघोऽघो द्विघा स्थाप्यः । येन युतेन हीनेन वा मूलं लब्धं स क्षेपसंज्ञः शोघकसंज्ञो वाऽघोऽघो द्विघा स्थाप्यः । एवं पंक्तिद्वये कनिष्ठज्येष्ठक्षेप्पाराां द्विघास्थापनं जातम् । अत्रेष्टवर्गो येन गुराकेन गुरिएतस्तस्य नाम प्रकृतिः । कनिष्ठज्योर्वंचः प्रकृत्या गुराो ज्येष्ठयोघितेन युत एतदन्यज्ज्येष्ठम् । कनिष्ठज्येष्ठ-योवंज्यवधैक्यमन्यत् कनिष्ठम् । तत्र क्षेपयोघितः क्षेपो भवति । एवं प्रक्षेपे वा शोघके ऋराक्षेपे तुल्यभावनया ये कनिष्ठज्येष्ठे ते प्रक्षेपकेरा शोधकेन वा भवते तदा रूपक्षेपे कनिष्ठज्येष्ठे भवत इति ॥

#### अत्रोपपत्तिः

सूत्रोक्त्या प्र. क'+क्षे=ज्ये'. ज्ये'—प्र. क'=क्षे। एवमेव ज्ये'— प्र. क'=क्षे ग्रन्योधातः क्षे. क्षे=ज्ये'. ज्ये'—ज्ये' प्र'. क.—ज्ये'. प्र. क' +प्र. क'. क' २ प्र. क. क. ज्ये. ज्ये इति धनमृरणमृरण धनं च क्रियते तदा ज्ये. ज्यें' ±२ प्र. क. क. ज्ये. ज्ये +प्र'. क'. क' + र प्र. क. क. ज्ये. ज्ये -ज्ये' प्र. क'=ज्ये'. प्र. क'=(ज्ये. ज्ये ±प्र. क. क)'—प्र{(ज्ये. क±ज्ये. क)} पक्षान्तरेण प्र{(ज्ये. क±ज्ये. क)}' +क्षे. क्षे=(ज्ये. ज्ये ±प्र. क. क)' ग्रतः क्षेपघाते क्षेपे ज्ये. क ±ज्ये. क इदं कनिष्ठं, ज्ये. ज्ये ±प्र. क. क इदं ज्येष्ठं भिवतुमहंतीति। एतावताऽऽचार्योक्तमुप-पन्नम्। सिद्धान्तशेखरे "कृतेर्गुणो यः प्रकृतिहि प्रोक्ता क्षिप्तस्त्येवर्णधनात्मका स्यात्। रूपं कनीयः पदमस्य वर्गे हते प्रकृत्या वियुते युते वा। क्षिप्त्या पदं यच्च बृह-रपदं तत् ताभ्यां पदे भावनया त्वनन्ते" श्री पत्युक्तमिदमाचार्योक्तानुरूपमेव। भावना विधिश्च।

वजाभ्यासौ ह्रस्वज्येष्ठकयोस्तद्युतिर्भवेद्ध्रस्वम् । लघुघातः प्रकृतिह्तो ज्येष्ठवधेनान्वितो ज्येष्ठम् ॥ क्षिप्त्योर्घातः क्षेपः स्याद्वजाभ्यासयोविशेषो वा । ह्रस्वं लघ्वोर्घातः प्रकृतिघ्नो ज्येष्ठयोश्च वधः ॥ तद्विवरं ज्यष्ठपदं क्षेपः क्षिप्त्योः प्रजायते घातः । ईप्सितवर्गेण हृतःक्षेपः क्षेपः पदे तदेष्टाप्ते ॥

बीजगिएते "इष्टं हस्वं तस्य वर्गः प्रकत्या क्षुण्णो युक्तो वर्गितो वा स येन । मूलं दद्यात् क्षे पकं तं घनणाँ मूलं तत्र ज्येष्ठमूलं वदन्ति ।। हस्वज्येष्ठक्षे प-कान्न्यस्य तेषां तानन्यान् वाऽघो निवेश्य क्रमेण । साध्यान्येभ्यो भावनाभिर्बहूनि मूलान्येषां भावना प्रोच्यतेऽतः ।। वजाभ्यासौ ज्येष्ठलघ्वोस्तदैक्यं हस्वं लघ्वोरा-हतिश्च प्रकृत्या । क्षुण्णा ज्येष्ठाभ्यासयुग् ज्येष्ठमूलं तत्राभ्यासः क्षे पयोः क्षेपकः स्यात्" भास्करोक्तमिदं सर्वमाचार्योक्तानुष्ठपमेवास्तीति ।। ६४-६५

## म्रब वर्ग प्रकृति म्रारम्भ किया जाता है।

हि. भा.—इष्ट बर्गं को गुराक से गुराा कर किसी अन्य इष्ट को युत वा हीन करने से जो होता है वह अन्त्य संज्ञक (ज्येष्ठ) है। उसको अघोऽघः दो स्थानों में रखना। जिस इष्ट (किनष्ठ) का वर्गं किया गया है आदा संज्ञक (किनष्ठ) है उस को भी अघोऽघः दो स्थानों में स्थापन करना। जिसको जोड़ने वा घटाने से मूल लाभ हुआ है वह क्षेपसंज्ञक

वा शोधक संज्ञक है। उसको भी अबोऽधः दो स्थानों में स्थापन करना। इस तरह दो पंक्तियों में कनिष्ठ ज्येष्ठ और क्षेप का स्थापन हुआ। इष्टवर्ग को जिस गुराक से गुरा किया गया है उसका नाम प्रकृति है। कनिष्ठ द्वय के घात को प्रकृति से गुरा कर ज्येष्ठ-द्वय घात को जोड़ने से अन्य ज्येष्ठ होता है कनिष्ठ और ज्येष्ठ के वज़ाम्यास का योग अन्य कनिष्ठ होता है वहां क्षेपद्वय का घात क्षेप होता है। एवं प्रक्षेप (शोधक) के ऋरा क्षेप में तुल्य भावना से जो कनिष्ठ और ज्येष्ठ होते हैं उन्हें प्रक्षेप से भाग देने से रूप क्षेप में कनिष्ठ और ज्येष्ठ होते हैं।

#### उपपत्ति ।

प्र=प्रकृति, क=किन्छ, ज्ये = ज्येष्ठ, क्षे = क्षेप तब सूत्रानुसार प्र. क<sup>2</sup> + क्षे = ज्ये <sup>2</sup>

ग्रतः ज्ये <sup>2</sup>— प्र. क<sup>2</sup> = क्षे, एवं ज्ये <sup>2</sup>— प्र. क<sup>2</sup> = क्षे, इन दोनों के घात करने से क्षे. क्षे =

ज्ये <sup>2</sup>. ज्ये <sup>2</sup>—ज्ये <sup>2</sup>. प्र. क<sup>2</sup>—ज्ये <sup>2</sup>. प्र. क<sup>2</sup> + प्र. क. <sup>8</sup> क. <sup>8</sup> इसमें २ प्र. क. क. ज्ये —ज्ये इसको

घन ऋणा और ऋणा घन करने से ज्ये <sup>2</sup>. ज्ये <sup>2</sup> ± २ प्र. क. क. ज्ये. ज्ये + प्र<sup>2</sup>. क<sup>2</sup>. क<sup>2</sup>

∓ २ प्र. क. क. ज्ये. ज्ये —ज्ये <sup>2</sup>. प्र. क<sup>2</sup>—ज्ये <sup>2</sup>. प्र. क <sup>2</sup> = (ज्ये. ज्ये ± प्र. क. क.) <sup>2</sup>

—प्र {(ज्ये. क ± ज्ये. क) <sup>2</sup>} पक्षान्तर से प्र {(ज्ये. क ± ज्ये. क) <sup>2</sup>} + क्षे. क्षे = (ज्ये. ज्ये ± प्र. क. क.) <sup>2</sup>

क्ये ± प्र. क. क) <sup>2</sup> घतः क्षेपघात तुल्य क्षेप में ज्ये. क ± ज्ये. क यह कनिष्ठ होता है गौर ज्ये. ज्ये ± प्र. क. क यह ज्येष्ठ होता है। इससे भावार्योक्त भावना उपपन्न होती है।।

सिद्धान्त शेखर में 'कृतेगुँ गो यः प्रकृतिहिं प्रोक्ता क्षिप्तिस्त्यैवगुँ घनात्मिका स्यात्' इत्यादि संस्कृतोपपत्ति में लिखित, श्रीपत्युक्त ग्राचार्योक्त भावना विधि 'वज्ञाम्यासौ हस्वज्येष्ठक्योस्तद्युतिभैवेद्ध,स्वम्' इत्यादि संस्कृतोपपत्ति में लिखित, भावना ग्राचार्योक्त भावना के अनुरूप ही है। बीजगिगित में 'इष्टं हस्वं तस्य वर्गः प्रकृत्या क्षुण्गो युक्तो विगतो वास येन' इत्यादि संस्कृतोपपत्ति में लिखित पद्योदि संस्कृतोपपत्ति में श्री ग्राचार्योक्त के अनुरूष्ण ही कहा है।। ६४-६४।।

# इदानीं विशेषमाह।

# रूपप्रक्षेपपदे पृथगिष्टक्षेप्यशोध्यम्लाभ्याम् । कृत्वाऽऽन्त्याद्यपदे ये प्रक्षेपे शोधनेवेष्टे ॥ ६६ ॥

सु. भा - रूपप्रक्षेपे ये पदे ग्राद्यान्त्यपदे ते पृथक् स्थाप्ये । तत इष्टक्षेपे वेष्ट-शोधके ये मूले ताभ्यां भावनयाऽन्ये ग्रन्त्याद्यपदे ज्येष्ठकनिष्ठे कृत्वा ते इष्टे प्रक्षेपे वेष्टे शोधने ऽन्ये ग्रन्त्याद्यपदे ज्ञेये इति ॥ ६६ ॥ नि. मा.—रूप प्रक्षेपे ये अन्त्याद्यपदे (ज्येष्ठ किनष्ठे) ते पृथक् स्थाप्ये, इष्ट-क्षेपे (इष्टशोधके वा) ये मूले (किनष्ठ ज्येष्ठे) ताभ्यां भावनया ज्येष्ठकिनिष्ठे कृत्वा ते इष्टक्षेपेऽन्ये ज्येष्ठ किनष्ठे ज्ञातव्ये इति ।

ग्रत्रोपपत्तिः स्पष्टैवास्तीति ॥ ६६ ॥

## धव विशेष कहते हैं।

हि. मा.—रूपक्षेप में जो ज्येष्ठ, किनष्ठ है उन्हें पृथक् स्थापन करना, इष्टक्षेप में जो किनिष्ठ, ज्येष्ठ है उसके साथ भावना से इष्टक्षेप में मन्य ज्येष्ठ, किनष्ठ होते हैं इति । उपपत्ति स्पष्ट हो है ॥ ६६ ॥

इदानीं चतुःक्षेपकिनष्ठज्येष्ठाभ्यां रूपक्षेपे किनष्ठज्येष्ठानयनमाह । चतुरिवकेऽन्त्यपदकृतिस्त्र्यूना दिलताऽन्त्यपदगुरा।ऽन्यपदम् । ग्रन्त्यपदकृतिक्येका द्विहृताऽऽद्यपदाहताऽऽद्य पदम् ॥ ६७ ॥

सु. भा.—चतुरिषके चतुःक्षेपेऽन्त्यपदकृतिस्त्रिभिक्त्नार्डीधताऽन्त्यपदगुगा फलं रूपक्षेपीयमन्त्यपदं ज्येष्ठं भवेत् । अन्त्यपदकृतिरेकेन हीना द्विह्ताऽऽद्यपदेन हता फलं रूपक्षेपीयमाद्यपदं कनिष्ठं भवेत् ।

म्रत्रोपपत्तिः। यदि चतुःक्षेपे किनिष्ठम् = क, ज्येष्ठम् = ज्ये। तदा इष्टवर्गहृतः क्षेपः क्षेपः स्यात्'—इत्यादिभास्करिविधना रूपक्षेपे किनिष्ठम् =  $\frac{\pi}{2}$ । ज्येष्ठम् =  $\frac{\sigma u}{2}$ । तथा विलोमेन प्रकृतिः =  $\frac{\sigma u^2 - v}{\pi^2}$  समासभाषनया  $\frac{\pi}{2}$ ,  $\frac{\sigma u}{2}$ , प्राभ्यामन्ये किनिष्ठज्येष्ठे रूपक्षेपे साध्येते तदा किनिष्ठम् =  $\frac{\pi \times \sigma u}{2}$ , ज्येष्ठम् =  $\frac{\sigma u^2 - v}{2}$  आभ्यां  $\frac{\pi}{2}$ ,  $\frac{\sigma u}{2}$  एताभ्यां च पुना रूपक्षेपे यदि किनिष्ठज्येष्ठे साध्येते तदा किनिष्ठम् =  $\frac{\sigma u^2 - v}{2}$  । ज्येष्ठम् = ज्ये (ज्ये॰ - ३) म्रत उपपद्यते ।। ६७ ॥

वि. भा-चतुरिषके (चतुः क्षेपे) उन्त्यपद (ज्येष्ठ) वर्गस्त्रिभिर्हीनोऽिषतो ज्येष्ठगुणितस्तदा रूपक्षेपे ज्येष्ठं भवेत्, ज्येष्ठवर्ग एकेन हीनो द्वाभ्यां भक्तः कनिष्ठगुणितस्तदा रूपक्षेपीयं कनिष्ठं भवेदिति ॥

#### अत्रोपपत्तिः ।

कल्प्यते चतुः क्षेपे किनिष्ठम् = क । ज्येष्ठम् = ज्ये, तदा 'इष्टवर्गहृतः क्षेप' इत्यादिना इष्टं द्वयं प्रकल्प्य रूपक्षेपे किनिष्ठम् =  $\frac{\pi}{2}$ , ज्येष्ठम् =  $\frac{\sqrt{32}}{2}$  तथा प्र. क² + ४ = ज्ये² समशोधनेन प्र. क² = ज्ये² - ४ ग्रतः प्र =  $\frac{\sqrt{32}}{4}$ ,  $\frac{\pi}{4}$ ,

# श्रद चार क्षेप के कनिष्ठ ग्रौर ज्येष्ठ से रूप क्षेप में कनिष्ठ ग्रौर ज्येष्ठ के ग्रानयन को कहते हैं।

हि.मा.—चार क्षेप में से जो ज्येष्ठ है उसके वर्ग में से तीन घटाकर दो से भाग देने से जो फल हो उसको ज्येष्ठ से गुएग करने से रूपक्षेप में ज्येष्ठ होता है। ज्येष्ठ वर्ग में एक घटाकर दो से भाग देने से जो फल होता है उसको कनिष्ठ से गुएग करने से रूपक्षेप में कनिष्ठ होता है इति ।।

#### उपपत्ति ।

कल्पना करते हैं चार क्षेप में किनष्ठ=क । ज्येष्ठ=ज्ये, तब 'इष्टवर्गहृतः क्षेप' इत्यदि मास्करोक्त प्रकार से दो इष्ट कल्पना करने से रूपक्षेप में किनष्ठ= $\frac{\pi}{2}$ , ज्येष्ठ  $=\frac{-\sigma u}{2}, avi प्रकृति लक्षण से प्र. क<sup>2</sup> + ४=ज्ये समशोधन से प्र. क<sup>3</sup>=ज्ये -४ प्रतः
<math display="block">\mathbf{y} = \frac{-\sigma u^{2} - 8}{\sigma^{2}}, \frac{\pi}{2}, \frac{-\sigma u}{2}$  इसकी तुल्य भावना से रूपक्षेप में किनष्ठ= $\frac{\pi}{2}$ , ज्येष्ठ  $=\frac{-\sigma u^{2} - 2}{2},$  इसको  $\frac{\pi}{2}$ ,  $\frac{-\sigma u}{2}$  इसके साथ भावना से रूपक्षेप में किनष्ठ= $\frac{\pi}{2}$  (ज्ये  $\frac{\pi}{2}$ )  $=\frac{-\sigma u^{2} - 2}{2},$  इसको  $\frac{\pi}{2}$ ,  $\frac{-\sigma u}{2}$  इससे ग्राचार्योक्त उपपन्न हुग्रा इति ।।६७।।

इदानीमृग्गात्मकचतुःक्षेपकनिष्ठज्येष्ठाभ्यां रूपक्षेपे कनिष्ठज्येष्ठयोरानयनमाह।

# चतुरूनेऽन्त्यपदकृती त्र्येकयुते वधदलं पृथग्व्येकम् । व्येकाद्याहतमन्त्यपदवधगुरामाद्यमन्त्यपदम् ॥६८॥

सु. भा. चतुरूनेऽन्त्यपदस्य क्वतिद्विधा स्थाप्या एकत्र त्रियुता उन्यत्रैकयुता । ध्रनयोर्वधदलं पृथक् स्थाप्यमेकत्र व्येकं कार्यं तद्वचे काद्याहतम् । ग्रन्यपदकृतिस्त्रि-युता प्रथमं या साधिता तद्वचे केना ज्ये भे नेन हतिमत्यर्थः । फलं रूपक्षेपेऽन्त्यं ज्येष्ठपदं स्यात् । पृथक् स्थापितं पदयोः किनष्ठज्येष्ठयोर्वधेन गुणं फलमान्त्यपदं पूर्वागतान्त्यपदसम्बन्धि ग्राद्यं पदं भवेदिति ।

ग्रत्रोपपत्तिः । कल्प्यते चतुरूने किनष्ठम् = क । ज्येष्ठम् = ज्ये । तदा विलोनिम प्रकृतिः =  $\frac{\sigma u^2 + 8}{\sigma^2}$  । रूपशोधके च किनष्ठम् =  $\frac{\sigma}{2}$  । रूपेष्ठम् =  $\frac{\sigma u^2 + 2}{2}$  । ग्राभ्यां समासभावनया रूपक्षेपे किनष्ठम् =  $\frac{\sigma \times \sigma u^2}{2}$  । रूपेष्ठम् =  $\frac{\sigma u^2 + 2}{2}$  । रूपेष्ठम् =  $\frac{\sigma u^2 + 2}{2}$  । रूपेष्ठम् । रूपेष्ठम् =  $\frac{\sigma u^2 + 8}{2}$  । ग्राभ्यां पूर्वसाधिताभ्याम्  $\frac{\sigma \times \sigma u^2}{2}$  ।  $\frac{\sigma u^2 + 2}{2}$  एताभ्यां च पुनः समासभावनया रूपक्षेपे किनष्ठम् =  $\frac{\sigma u^2 + 8}{2}$  ।  $\frac{\sigma u^2 + 8}{2}$  =  $\frac{\sigma u^2}{2}$  ।  $\frac{\sigma u^2 + 8}{2}$  ।  $\frac{\sigma$ 

वि.मा.—चतुरूने (ऋगात्मकचतुःक्षेपे) उन्त्यपद (ज्येष्ठ) कृतिर्द्धिधा स्थाप्या, एकत्र त्रियुताऽन्यत्रैकयुता, तयोघिताधं पृथक् स्थाप्यम्। एकत्रैकहीनं कार्यं तदेकहीन-किन्छगुराम्। अन्त्यपद (ज्येष्ठ) कृतिस्त्रियुता प्रथमं या साधिता तद्व्येकेना ज्ये +२ नेन गुगितिमत्यर्थः। तदा रूपक्षेपे ज्येष्ठं भवेत्। पृथक् स्थापितं किनष्ठ-ज्येष्ठयोघितेन गुगां फलं पूर्वागतज्येष्ठसम्बन्धिकिनष्ठं भवेदिति।

#### ग्रत्रोपपत्तिः।

करुप्यते ऋगात्मकचतुः क्षेपे कनिष्ठम् =क, ज्येष्ठम् =ज्ये, वर्गप्रकृतिलक्षग्रेन

अब ऋगात्मक चार क्षेप के कनिष्ठ ग्रीर ज्येष्ठ से रूपक्षेप में कनिष्ठ ग्रीर ज्येष्ठ के भ्रानयन को कहते हैं।

हि. भा.—ऋ शात्मक चार क्षेष में ज्येष्ठ वर्ग को दो स्थानों में स्थापन करना, एक स्थान में तीन जोड़ना दूमरे स्थान में एक जोड़ना, इन दोनों के घातार्घ को पृथक् स्थापन करना, एक स्थान में एक हीनकर जो हो उसको एक हीन कनिष्ठ से गुशा करना चाहिये तब रूप क्षेप में ज्येष्ठ होता है। पूर्व स्थापित को कनिष्ठ ग्रीर ज्येष्ठ के घात सें गुशा करने से पूर्वागत ज्येष्ठ सम्बन्धी कनिष्ठ होता है इति।

#### उपपत्ति ।

कल्पना करते हैं ऋगात्मक चारक्षेप में कनिष्ठ = क । ज्येष्ठ = ज्ये । वर्ग प्रकृति लक्षण से प्र. क रे = ज्ये रे दोनों पक्षों में चार जोड़ने से प्र. क रे = ज्ये रे + ४ ग्रतः प्र =  $\frac{ज्य^2 + 8}{67}$  'इष्ट वर्ग हृतः क्षेप' इत्यादि से इष्ट = २ कल्पना करने से ऋगात्मक रूपक्षेप में किनिष्ठ =  $\frac{\pi}{2}$ , ज्येष्ठ =  $\frac{\pi}{2}$ , ज्येष्ठ =  $\frac{\pi}{2}$  वृत्य भावना से रूपक्षेप में किनिष्ठ =  $\frac{\pi}{2}$ , ज्येष्ठ =  $\frac{\pi^2}{2}$  इनसे समास भावना से रूपक्षेप में किनिष्ठ =  $\frac{\pi}{2}$ , ज्येष्ठ =  $\frac{\pi^2}{2}$  इनसे समास भावना से रूपक्षेप में किनिष्ठ =  $\frac{\pi}{2}$ , ज्येष्ठ

 $= \frac{ \sqrt[3]{3} \sqrt[3]{2} + \sqrt[3]{3} \sqrt[3]{2} + \sqrt[3]{3} }{\sqrt[3]{2} + \sqrt[3]{3} } = \frac{\sqrt[3]{2} \sqrt[3]{2} + \sqrt[3]{3} }{\sqrt[3]{2} \sqrt[3]{2} + \sqrt[3]{3} } = \frac{\sqrt[3]{2} \sqrt[3]{2} + \sqrt[3]{3} }{\sqrt[3]{2} \sqrt[3]{2} + \sqrt[3]{3} } = \frac{\sqrt[3]{2} \sqrt[3]{2} + \sqrt[3]{3} }{\sqrt[3]{2} \sqrt[3]{2} + \sqrt[3]{3} } = \frac{\sqrt[3]{2} \sqrt[3]{2} + \sqrt[3]{2} \sqrt[3]{2} \sqrt[3]{2} + \sqrt[3]{2} \sqrt$ 

इदानीं वर्गात्मकप्रकृतौ किनष्ठज्येष्ठयोरानयनमाह । वर्गे गुराके क्षेपः केनचिदुद्भृतयुतोनितो दलितः । प्रथमोऽन्त्यमूलमन्यो गुराकारपदोद्भृतः प्रथमः ।।६९।।

सु. भा.—गुणके प्रकृतो वर्गे वर्गात्मके सित क्षेपः केनिचिदिष्टेनोढृतः फलं तेनैवेष्टेन युतमूनितं दलितं च कार्यम् । एवं राशिद्धयं भवेत् तत्र प्रथमो राशिरन्त्य-मूलं ज्येष्ठं भवेत् । अन्यो गुणकारपदोद्धृतो गुणकारः प्रकृतिस्तत्पदेनोद्धृतः फलं प्रथम आद्योऽर्थात् कनिष्ठं पदं भवेदिति । 'इष्टभक्तो द्विवाक्षेप' इत्यादि भास्क-रोक्तमेतदनुरूपमेव ।

अत्रोपपत्त्यर्थं मत्कृतभास्करबीज टिप्पण्याम्-इष्टभक्तोद्विधाक्षेपः इत्यस्योप-पत्तिद्रं ष्टव्या ॥ ६९ ॥

वि. भा- — गुराके (प्रकृती) वर्गे (वर्गात्मके) सित क्षेपः केनिविदिष्ठेन भक्तो लब्धं तेनैवेष्टेन युतं हीनं दलितं च कार्यम् एवं राशिद्वयं भवति । तत्र प्रथमो राशि-रन्त्यमूलं (ज्येष्ठं) भवति, गुराकारः (प्रकृतिः) तन्मूलेन भक्तो द्वितीयराशि स्तदा लब्धं किनिष्ठं भवेदिति ॥

#### ग्रत्रोपपत्तिः।

वर्गप्रकृत्या प्र<sup>२</sup> क<sup>२</sup> +क्षे = ज्ये<sup>२</sup> समशोधनेन क्षे = ज्ये<sup>२</sup>—प्र<sup>2</sup> क<sup>2</sup> वर्गान्तरस्य योगान्तरधातसमत्वात् (ज्ये + प्र क) (ज्ये — प्र क) = क्षे, ग्रत्र यदि ज्ये — प्र क इष्टं कल्प्यते तदा क्षे = (ज्ये + प्र क) . इ पक्षौ इ भक्तौ तदा क्षे = ज्ये + प्र क पक्षौ इ हीनौ तदा क्षे — इ = ज्ये + प्र क - (ज्ये — प्र क) = ज्ये + प्र क

—ज्ये + प्र.क=२ प्र.क पक्षौ २ प्र भक्तौ तदा  $\frac{\frac{2}{\xi}}{2}$  = क ।  $\frac{2}{\xi}$  अत्रैवेष्टयोजनेन  $\frac{2}{\xi}$  +  $\xi$  = ज्ये + प्र. क + ज्ये — प्र. क=२ ज्ये ग्रतः  $\frac{2}{\xi}$  = ज्ये, एतावताऽऽ- चार्योक्तमुपपन्नम् ।। बीजगिएते 'इष्टभक्तो द्विघाक्षेप' इत्यादि भास्करोक्तमेतदनु- रूपमेविति ।।६९।।

ग्रब वर्गात्मक प्रकृति में कनिष्ठ श्रौर ज्येष्ठ का श्रानयन करते हैं।

हि. मा. — वर्गात्मक प्रकृति में क्षेप को किसी इष्ट से भाग देकर जो फल हो उसमें उसी इष्ट को युत श्रीर हीन कर श्राधा करना चाहिये इस तरह दो राशियों का मान होता है, उनमें प्रथम राशि ज्येष्ठ होता है, द्वितीय राशि को प्रकृति के मूल से भाग देने से कनिष्ठ होता है इति।

#### उपपत्ति ।

वर्ग प्रकृति से प्र<sup>२</sup>. क<sup>२</sup> + क्षे = ज्ये <sup>२</sup> समशोधन से के = ज्ये <sup>२</sup> - प्र<sup>२</sup>. क<sup>२</sup> वर्गान्तर योगान्तर घात के बराबर होता है इसलिये के = (ज्ये + प्र. क) (ज्ये - प्र. क) यहाँ यदि = ज्ये + प्र. क= इष्ट माना जाय तब के = (ज्ये + प्र. क) इ  $\therefore \frac{\partial}{\partial x} = -\frac{\partial}{\partial x} + \frac{\partial}{\partial x} = -\frac{\partial}{\partial x} = -\frac{\partial}{\partial x} + \frac{\partial}{\partial x} = -\frac{\partial}{\partial x} = -\frac{\partial$ 

$$\frac{\frac{\dot{a}}{\xi} + \xi}{\xi} = -\frac{\dot{a}}{\xi} - \xi$$
संक्रमण गिएत से  $\frac{\ddot{a}}{\xi} = -\frac{\xi}{\xi} = -\frac{\xi}{\xi}$  = द्वितीयराशि=प्र . क

्बीज गिर्मित में 'इष्ट भक्तोद्विधाक्षेपः' इत्यादि भास्करों क इसके अनुरूप ही है इति ।।६९।।

श्रतोऽग्रे चैकाऽर्या नष्टा सा कोलब्रूकानुवादानुसारेण। वर्गेच्छन्ने गुणके प्रथमं तन्मूल भाजितं भवति। वर्गेच्छन्ने क्षेपे तत्पदगुणिते तदा मूले।।७०।। एवं भवितुमहेति। सु. मा — यदि गुएगकः प्रकृतिः केनचिद्वर्गेरा निःशेषो भवति तदा तं तद्वर्गोरा संहृत्य लब्धसमे गुराके मूले साध्ये तत्र प्रथममाद्यमर्थात् कनिष्ठं तस्य वर्गस्य मूलेन भाजितं फलमभीष्टे गुराके कनिष्ठं भवेत्। ज्येष्ठं त्वत्रापि तदेव। क्षेपे वर्गच्छिने सित वर्गेरा क्षेपं विभज्य लब्धसमे क्षेपे ये मूले ते तद्वर्गपदेन गुराते अभीष्टगुराके मूले भवत इति। 'वर्गच्छिन्ने गुरा हुस्वं तत्पदेन विभाजयेदिति भास्करप्रकारः प्रथमप्रकारानुरूपः। 'क्षुण्याः क्षुण्यो तदा पदे' इति भास्करप्रकारश्च द्वितीयप्रकारानुरूपः।

# भ्रत्रोपपत्त्यर्थं मत्कृतभास्करबीजटिप्पग्गी विलोक्या ॥ ७० ॥

वि. भा.—यदि गुरगकः (प्रकृतिः) केनापि वर्गाङ्केन भक्तः सन् निःशेषो भवेत्तदा तदगुराकं तद्वर्गाङ्केन भक्त् वा लब्धतुल्ये गुरगके (प्रकृतौ) कनिष्ठज्येष्ठे साध्ये तत्र प्रथमं (कनिष्ठं) तस्य वर्गाङ्कस्य मूलेन भाजितं तदा तद्गुरगके (नवीन-प्रकृतौ) कनिष्ठं भवेत्। ज्येष्ठं तदेव, क्षेपे वर्गाङ्केन छिन्ने सति वर्गाङ्केन क्षेपं भक्त्वा लब्धतुल्ये क्षेपे ये कनिष्ठज्येष्ठे ते तद्वर्गाङ्कमूलेन गुरगिते तदेष्टगुरगके कनिष्ठज्येष्ठे भवेतामिति।।

#### अत्रोपपत्तिः ।

वर्ग प्रकृति लक्षणेन प्र.क२+क्षे=ज्ये२, वा गु२. प्र.  $\frac{क²}{गु²}$  +क्षे=ज्ये२

=गु२. प्र.  $\binom{a}{y}$  अत्र यदि गु२.प्र इयमन्या प्रकृति=प्र तदा तत्सम्बन्धि कनिष्ठं  $\frac{a}{y}$  स्यादेतेन पूर्वाधं१ मुपपन्नम् । ग्रथ प्र. क२+क्षे=ज्ये२ पक्षो इ२ गुणितौ तदा

प्र. क२.गु२+क्षे.गु२=ज्ये२. गु२=प्र.(क.गु)२+क्षे.गु२=(ज्ये.गु)२ यदि क्षे.गु२

=क्षे तदा तत्सम्बन्धि कनिष्ठम्=क.गु=क, ज्येष्ठम्=ज्ये. गु=ज्ये तदा

प्र.क२+क्षे।=ज्ये२ एतेनोत्तरा२ धंमुपपद्यत इति ॥७०॥

६९ सूत्र से मागे की एक मार्या नष्ट है वह कोलब्रूक साहेब के मनुवादानुसार निम्नलिखित माशय की है।

हि. भा. - यदि प्रकृति किसी वर्गाङ्क से भाग देने से निः शेष हो तब प्रकृति को

<sup>(</sup>१) वर्गेच्छिन्ने गुरो ह्रस्वं तत्पदेन विभाजयेदिति भास्करोक्तमेतत्सदृशमेव।

<sup>(</sup>२) क्षेपः क्षुण्णः क्षुण्णे तदा पदे भास्करोक्तमिदमेतत्सदृशमेवेति ।

वर्गाङ्क से भाग देने से जो लिब्ब हो तत्तुल्य नवीन प्रकृति में किनष्ठ श्रीर ज्येष्ठ साधन करना, उस किनष्ठ को वर्गाङ्क के मूल से भाग देने से नवीन प्रकृति में किनष्ठ होता है, ज्येष्ठ यहां भी वही रहता है। यदि क्षेप किसी वर्गाङ्क से भाग देने से नि:शेष हो तब वर्गाङ्क से क्षेप को,भाग देने से जो लिब्ब हो तत्तुल्य नवीन क्षेप में जो किनष्ठ श्रीर ज्येष्ठ हो उनको उस वर्गाङ्क के मूल से गुगा करने से नवीन क्षेप में किनष्ठ श्रीर ज्येष्ठ होते हैं इति।

#### उपपत्ति ।

वगंप्रकृति लक्षण से प्र. क<sup>२</sup> + क्षे=ज्ये<sup>२</sup> = गु<sup>२</sup>. प्र.  $\frac{\pi^2}{y^2}$  = गु<sup>२</sup>.प्र.  $\left(\frac{\pi}{y}\right)^2$ 

यहां यदि गु<sup>2</sup>. प्र यह अन्य प्रकृति = प्र, है तब तत्सम्बन्धी कनिष्ठ क होगा, ज्येष्ठ वही रहेगा, इससे पूर्वार्घ उपपन्न हुआ। बीज गिएत में 'वर्ग विखन्ते गुरो हस्वं तत्पदेन विभाजयेत्' यह भास्करोक्त कोलबूक के अनुवाद के पूर्वार्घ के अनुरूप ही है। प्र. क<sup>2</sup> + क्षे = ज्ये<sup>2</sup> दोनों पक्षों को इ<sup>2</sup> से गुरा। करने से प्र.क<sup>2</sup>. इ<sup>2</sup> + क्षे. इ<sup>2</sup> = ज्ये<sup>2</sup>. इ<sup>2</sup> = प्र. (क.गु)<sup>2</sup> + क्षे.गु<sup>2</sup> = (ज्ये.इ)<sup>2</sup> यदि क्षे.गु<sup>2</sup> = क्षे तब तत्सम्बन्धी कनिष्ठ = क. गु = कं, तथा ज्येष्ठ = ज्ये. गु. इससे कोलबूक साहेब के अनुवाद का उत्तरार्घ उपपन्न हुआ। 'क्षेपः क्षुण्एाः क्षुण्णे तदा पदे' यह भास्करोक्त उसी के सहश है।।७०।।

# इदानीं प्रश्नविशेषस्योत्तरमाह ।

गुराकयुतिरष्टगुरिगता गुराकान्तरभाजिता राशिः। गुराको त्रिगुरागे व्यस्ताधिकौ हुतावन्तरेरा पदे ॥७१॥

सु. भा.—(गुराकद्वयेत गुरिगतः पृथक् पृथग्राशिरेकयुतश्च।
यदि तत्पदे निरग्रे कुर्वन्नावत्सराद् गराकः।।)

इति प्रश्नस्योत्तरार्थं गुणकयोर्युं तिरष्टगुणिता गुणकयोरन्तरवर्गेण भाजिता राशिः स्यात् । गुणकौ द्वौ त्रिगुणौ कार्यो तौ व्यस्ताधिकौ व्यस्तगुणका-धिकौ गुणकान्तरेण तौ हुतौ तदा ते एव निरग्रे पदे भवतः ।

अत्रोपपत्तिः । कल्प्यते गुराकद्वयं क्रमेरा गु., गु. । तथा राशिमानं या । गु. भनैकालापः स्वयं घटतेऽतोऽम् हितीयमुराकेन सङ्गुण्य रूपं प्रक्षिप्य काल-गु, या'—गु,+गु, कवर्षेरा समंकृत्वा पक्षौ — = का'। गु,

: गु, का'=गु, या'-गु, +गु,।

गु, गुिशातौ तथा प्रथमपक्षस्य मूलम् = गु, का। द्वितीयपक्षस्यास्य गु, गु, या'—गु, गु, +गु', वर्ग प्रकृत्या।

क ज्ये क्षे

प्रथ यदि इ = गु, तदोत्थापनेन राशिः।

$$= \frac{u \eta^2 - v}{y_t} = \left[ \left\{ \frac{v_t^2 + y_t^2}{y_t^2 + y_t^2} \right\}^2 - v_t^2 \right] \div y_t$$

$$\left\{ \left( \frac{v_t^2 + y_t^2}{y_t^2 + y_t^2} \right)^2 - v_t^2 \right\} \div y_t = \left( \frac{v_t^2 + v_t^2}{y_t^2 + v_t^2} \right) + v_t^2 + v_t^2$$

वि. मा.—गुराकयोर्योग अष्टगुरिएतो गुराकयोरन्तरेरा भक्तस्तदा राश्चि-भवत्। द्वी गुराको त्रिगुरिएतो तो व्यस्तगुराकाधिको गुराकान्तरेरा भक्ती तदा ते एव विरग्ने पदे भवेतासिति॥

## अत्रोपपत्तिः ।

कल्प्यते गुराकद्वयं क्रमेरा गु, गुं, तथा राश्विप्रमाराम् = राष्ट्रिय एतत् गु स्रनेन सङ्गुण्यैकं क्षिप्त्वा र वर्गेग्। समं  $\frac{u^2}{\eta}$  +१ =  $\frac{u^2}{\eta}$  + १ =  $\frac{u^2}{\eta}$  +  $\eta$  $= \tau^2$  छेदगमेन  $u^2$ .  $\eta - \eta + \eta = \eta \cdot \tau^2 \eta$  ' $\eta$ ' गुिंगतौ तदा  $\eta^2$ .  $\tau^2 = u^2$ . गु.गु—गु.गु + गु रथम पक्षस्य मूलम्=गु.र द्वितीय पक्षस्यास्य य रे.गु.गु—गु.गुं +गु<sup>२</sup> वर्गप्रकृत्या प्रकृतिः =गु. गुं, क्षेपः =गु<sup>२</sup>—गु. गुं। ग्रत्र कल्प्यते कनिष्ठम् =क=१ तदा ज्येष्ठम्=ज्ये=गु। क्षेपः=गु $^2$ -गु. गुं इष्टवर्गप्रकृत्योर्यद्विवरं तेन वा भजेदित्यादिना रूपक्षेपे कनिष्ठम् =  $\frac{7 \text{ ह}}{1}$ , ज्येष्ठम् =  $\frac{y.y+\text{ ह}^*}{1}$ ,  $y\sim\text{ ह}^*$   $y.y\sim\text{ g}^*$ क्षेपः = १ समासभावनया  $\frac{2 \cdot y}{3} \cdot \frac{\xi + y}{3} \cdot \frac{1}{3} + \frac{\xi^2}{3} = \pi$ ।  $\frac{2}{2}$   $\frac{1}{2}$   $\frac{1$ गु.गु∼इ' पक्षस्या  $(\bar{y}, \bar{z})$  स्य समम् । यदि इ =  $\bar{y}$  तदोत्थापनेन राशिः =  $\frac{\bar{u} - \bar{z}}{\bar{y}}$  $= \left[\left\{\frac{\vec{x}\cdot\vec{y}+\vec{y}\cdot\vec{y}}{\vec{y}\cdot(\vec{y}-\vec{y})}\right\}-\vec{y}\right]\div\vec{y}=\left\{\left(\frac{\vec{x}\cdot\vec{y}+\vec{y}}{\vec{y}}\right)^2-\vec{y}\right\}\div\vec{y}=$  $= \left(\frac{?\eta^{2} + \xi \, y. \, \dot{y} + \dot{y}^{2}}{\eta^{2} - ?\eta. \, \dot{y} + \dot{y}^{2}} - ?\right) \div \dot{y} = \frac{\varepsilon \, \dot{y}^{2} + \zeta \dot{\eta}. \dot{\eta}}{(\dot{\eta} - \dot{\eta})^{2}} \div \dot{\eta} = \frac{\varepsilon \, (\dot{\eta} + \dot{\eta})}{(\dot{\eta} - \dot{\eta})^{2}}$   $= \chi_{1} \times \dot{\eta} + \dot{\eta}^{2} + \chi_{2} \times \dot{\eta} + \dot{\eta}^{2} + \chi_{3} \times \dot{\eta} + \dot{\eta}^{2} + \chi_{3} \times \dot{\eta} + \dot{\eta}^{2} + \chi_{3} \times \dot{\eta}^{2} + \chi_$ द्वितीय पदम्= ३ गु-गु इति ॥७१॥

ध्रव प्रश्न विशेष का उत्तर कहते हैं।
हि. भा.—राशि को पृथक् पृथक् गुग्णकद्वय से गुग्णकर एक जोड़ने से यदि उनके

मूल को एक वर्ष पर्यन्त निः शेष करते हुए व्यक्ति गएाक है यह प्रश्न है। तो---

#### इसका उत्तर

गुराकद्वय योग को भ्राठ से गुराकर गुराकद्वय के अन्तर वर्ग से भाग देने से राशि-मान होता हैं। दोनों गुराकों को तीन से गुरा कर दोनों में विपरीत गुराक जोड़ कर गुराकान्तर से भाग देने से वे दोनों निःशेष पद इय होते हैं इति।

#### चपपत्ति ।

कल्पना करते हैं दोनों गुराक क्रम से गु, गु तथा राशिमान =  $\frac{u'-?}{1}$  इसको गु से गुराकर एक जोड़कर रवर्ग के बराबर करने से  $\frac{\eta - u^2 - \eta + \eta}{\eta} = \tau^2$  छेदगम से +गु<sup>२</sup> प्रथम पक्ष का मूल =गु.र, द्वितीय पक्ष गु.गु.य<sup>२</sup>—गु. गु+य<sup>२</sup> इसकी वर्गेप्रकृति से ्रा प्रकृति चगु,गु, क्षेपचगु<sup>२</sup>—गु . गु, यहां कनिष्ठ≕१, ज्येष्ठ≕गु, क्षेप≕गु<sup>२</sup>—गु . गु 'इष्टवर्गप्रकृत्योर्यद्विवर'' इत्यादि भास्करोक्त सूत्र से क =  $\frac{2 \ g}{\eta}$ , ज्ये =  $\eta_{\bullet}$   $\eta \hookrightarrow g^2$  $=\frac{\eta_{.}}{1}\frac{\eta_{.}}{1}+\xi^{2}$ , क्षेप = १ समास भावना से क =  $\frac{2\eta_{.}}{1}\frac{\xi+\eta_{.}}{1}\frac{\eta_{.}}{1}+\xi^{2}$ , ज्ये =  $\eta_{.}$   $\eta_{.}$   $\eta_{.}$   $\eta_{.}$   $\eta_{.}$ = २ गु. गु. इ + गु. गु. इं यहां कनिष्ठ (य) का मान होता है, तथा ज्येष्ठ प्रथम पक्ष  $(\eta, \tau)$  के बराबर होता है यदि  $\tau = \eta$  तब उत्थापन से राशि  $= \frac{u^2 - 2}{\eta}$  $= \left[ \left\{ \frac{\vec{a} \cdot \vec{a} + \vec{a} \cdot \vec{a}}{\vec{a} \cdot (\vec{a} - \vec{a})} \right\}_{s} - i \right] \div \vec{a} = \left\{ \left( \frac{\vec{a} \cdot \vec{a} + \vec{a}}{\vec{a} \cdot \vec{a}} \right)_{s} - i \right\} \div \vec{a} = \left\{ \left( \frac{\vec{a} \cdot \vec{a} + \vec{a}}{\vec{a} \cdot \vec{a}} \right)_{s} - i \right\} \div \vec{a} = \left\{ \left( \frac{\vec{a} \cdot \vec{a} + \vec{a}}{\vec{a} \cdot \vec{a}} \right)_{s} - i \right\} \div \vec{a} = \left\{ \left( \frac{\vec{a} \cdot \vec{a} + \vec{a}}{\vec{a} \cdot \vec{a}} \right)_{s} - i \right\} \div \vec{a} = \left\{ \left( \frac{\vec{a} \cdot \vec{a} \cdot \vec{a}}{\vec{a} \cdot \vec{a}} \right)_{s} - i \right\} \div \vec{a} = \left\{ \left( \frac{\vec{a} \cdot \vec{a} \cdot \vec{a}}{\vec{a} \cdot \vec{a}} \right)_{s} - i \right\} \div \vec{a} = \left\{ \left( \frac{\vec{a} \cdot \vec{a} \cdot \vec{a}}{\vec{a} \cdot \vec{a}} \right)_{s} - i \right\} \div \vec{a} = \left\{ \left( \frac{\vec{a} \cdot \vec{a} \cdot \vec{a}}{\vec{a} \cdot \vec{a}} \right)_{s} - i \right\} \div \vec{a} = \left\{ \left( \frac{\vec{a} \cdot \vec{a} \cdot \vec{a}}{\vec{a}} \right)_{s} - i \right\} \div \vec{a} = \left\{ \left( \frac{\vec{a} \cdot \vec{a} \cdot \vec{a}}{\vec{a}} \right)_{s} - i \right\} \div \vec{a} = \left\{ \left( \frac{\vec{a} \cdot \vec{a} \cdot \vec{a}}{\vec{a}} \right)_{s} - i \right\} \div \vec{a} = \left\{ \left( \frac{\vec{a} \cdot \vec{a} \cdot \vec{a}}{\vec{a}} \right)_{s} - i \right\} \div \vec{a} = \left\{ \left( \frac{\vec{a} \cdot \vec{a} \cdot \vec{a}}{\vec{a}} \right)_{s} - i \right\} \div \vec{a} = \left\{ \left( \frac{\vec{a} \cdot \vec{a}}{\vec{a}} \right)_{s} - i \right\} \div \vec{a} = \left\{ \left( \frac{\vec{a} \cdot \vec{a}}{\vec{a}} \right)_{s} - i \right\} \div \vec{a} = \left\{ \left( \frac{\vec{a} \cdot \vec{a}}{\vec{a}} \right)_{s} - i \right\} \div \vec{a} = \left\{ \left( \frac{\vec{a} \cdot \vec{a}}{\vec{a}} \right)_{s} - i \right\} \div \vec{a} = \left\{ \left( \frac{\vec{a} \cdot \vec{a}}{\vec{a}} \right)_{s} - i \right\} \div \vec{a} = \left\{ \left( \frac{\vec{a} \cdot \vec{a}}{\vec{a}} \right)_{s} - i \right\} \div \vec{a} = \left\{ \left( \frac{\vec{a} \cdot \vec{a}}{\vec{a}} \right)_{s} - i \right\} \div \vec{a} = \left\{ \left( \frac{\vec{a} \cdot \vec{a}}{\vec{a}} \right)_{s} - i \right\} + i \left( \frac{\vec{a} \cdot \vec{a}}{\vec{a}} \right)_{s} - i \right\}$  $=\left(\underbrace{\frac{\varepsilon\,\,\overline{y}^{\,2}\,+\varepsilon\,\,\overline{y},\,\,\overline{y}^{\,2}\,+\overline{y}^{\,2}}_{1}}_{1},\,\,\underline{y}^{\,2}\,+\varepsilon\,\,\overline{y},\,\,\overline{y}^{\,2}\,+\varepsilon\,\,\overline{y},\,\,\overline{y}^{\,2}}_{1},\,\,\underline{y}^{\,2}\,+\varepsilon\,\,\overline{y$ काब कालाप से प्रथम पद =  $\sqrt{\frac{c y^2 + c y}{1}, y} + ? = \frac{3 y + y}{1}$  ।  $+ ? = \frac{3 y + y}{1}$  ।  $+ ? = \frac{3 y + y}{1}$  ।  $+ ? = \frac{3 y + y}{1}$  ।

द्वितीय पद  $= \frac{3}{1} \frac{y - y}{1}$  इससे ग्राचार्योक्त उपपन्न हुग्रा इति ॥७१॥  $y \sim y$ 

## इदानीं प्रक्नान्तरिवशेषस्योत्तरमाह।

# वर्गोऽन्यकृतियुतोनस्तत्संयोगान्तरार्धकृतिभक्तः । तद्गुणितौ युतिवियुतौ वर्गौ घाते च रूपयुते ॥ ७२ ॥

सु० भा०—ययो राश्योर्युतिवियुतौ वर्गौ भवतस्तथा घाते रूपयुते च वर्गः स्यात् तत्र राश्योरानयनाय कश्चिदिष्टो वर्गः कल्प्यः । स चान्येष्टवर्गेरा युत ऊनश्च कार्यः । एवं राशिद्वयं यद्भवेत् तत्संयोगस्तदन्तरार्धवर्गेरा भक्तो यत् फलमागच्छेत् तेन पूर्वसाधितौ द्वौ राशी गुरिएतावभीष्सितौ राशी भवतः ।

अत्रोपपत्तिः । कल्प्येते राशी— २ इ<sup>२</sup> (या<sup>२</sup>—का<sup>२</sup>) । २ इ<sup>२</sup> (या<sup>२</sup>—का<sup>२</sup>)

ग्रंत्र राश्योर्योगवियोगौ भवतोऽत त्रालापद्वयं घटते । ग्रथानयोर्घातः सैकः =४ इ या —४ इ का मि १ ग्रयं वर्गः । ग्रत आद्यन्तयोः पदयोः —२ इ या न्, —१ ग्रनयोद्धिष्नहर्ति — ४ इ या मध्यपदसमां कृत्वा पक्षौ —४ इ या च = —४ इ का ।

$$\therefore ? \xi^{2} = \frac{? \ an^{2}}{\pi n^{2}} = \frac{(\ un^{2} + \pi n^{2}) + (\ un^{2} - \pi n^{2})}{\left\{\frac{(\ un^{2} + \pi n^{2}) + (\ un^{2} - \pi n^{2})}{?}\right\}^{2}}$$

श्रत उपपद्यते यथोक्तम् ॥ ७२ ॥

नि. भा.—ययो राश्योर्युतिवियुतौ वर्गो भवेता, घाते रूपयुते च वर्गः स्यात् तत्र तयो राश्योर्ज्ञानार्थं कोपीष्टो वर्गः कल्पनीयः। सोऽन्येष्टवर्गेण युतो हीनश्च कार्यः, तदा यद्राशिद्धयं भवेत् तयोर्योगस्तदन्तरार्धवर्गेण भक्तो यल्लब्धं भवेत्तेन पूर्वानीतौ राशी गुणितौ तदाऽभीष्सितौ राशी भवेतामिति ॥

#### ग्रत्रोपपत्तिः।

कल्प्येते राशी २ इ² (य²+र²), २ इ² (य²-र²) ग्रत्र राश्योर्योगान्तरे वर्गी भवतस्तेनाऽऽलापद्धयं घटते । ग्रनयोर्घातः ४ इँ (यँ-रँ)=४ इँ. यँ-४ इँ रँ रूपयुतः ४ इँ. यँ-४ इँ. रँ+१ तदा वर्गः स्यात् । तेनाऽऽद्यन्तयोर्मू लयोः -२ इ². य²-१ द्विष्टनघातं-४ इ². य² मध्यपदसमं कृत्वा जातौ पक्षौ-४ इ². 1² = -8 इँ र पक्षौ र भक्षौ तदा  $-\frac{8 \, \$^2 \cdot 2^2}{8^2} = -8$  इँ =

$$-\frac{2 \, \xi^{2} \cdot 7 \, u^{2}}{\tau^{2}} \quad u^{2} + 2 \, \xi^{2} \quad u^{2} + 2 \, u^{2} +$$

## भ्रब प्रश्नान्तर विशेष का उत्तर कहते हैं।

हि. भा. — जिन दो राशियों का योग और अन्तर करने से वर्ग होता है, तथा घात में एक जोड़ने से वर्ग होता है वहां दोनों राशियों के आनयन के लिए कोई इष्टवर्ग कल्पना करनी चाहिए। उसमें अन्य इष्टवर्ग को युत और हीन करना चाहिए। इस तरह जो राशि-द्वय होता है उनके योग में उन्हीं के अन्तरार्घ वर्ग से भाग देने से जो फल हो उससे पूर्व साधित राशिद्वय को गुएगा करने से अभीप्सित राशिद्वय होता है इति।।

#### उपपत्ति ।

इससे म्राचार्योक्त उपपन्न हुम्रा इति ॥ ७२ ॥

इदानीं पुनः प्रश्नान्तरिवशेषस्योत्तरमाह।

यैरूनो यैश्च युतो रूपैर्वर्गस्तदैक्यमिष्टहृतम् । इष्टोनं तद्दलकृतिरूनाऽभ्यधिका भवति राशिः ॥ ७३ ॥

सु. भा - को राशिरेतावद्भी रूपेर्यु तस्तथैतावद्भी रूपेरूनश्च वर्गो भव-तीति प्रश्नोत्तरार्थं ये रूपेरूनो येर्यु तश्च वर्गो भवति तेषामेक्यं केनचिदिष्टेन हुतं फलिमष्टोनं कार्यम् । तस्य शेषस्य दलस्यार्धीकृतस्य कृतिरूनाऽभ्यधिका । यै रूपै-रूनो राशिर्वगों भवति तान्यूनरूपाणि तैरूनैरभ्यधिका राशिर्भवतीत्यर्थः ।

अत्रोपपत्तिः । कल्प्यते राशिमानम् = या १। स्रत्र स्र-रूपैर्युतः क-रूपैरूनश्च वर्गो भवतीति प्रश्नालापेन — का $^2$  = या + स्र, नी $^2$  = या - क,

∴का<sup>२</sup>-नी<sup>२</sup>=ग्र+क । ग्रथ कल्प्यते का-नी=इ ।

∴ का+नी=
$$\frac{3+6}{\xi}$$
, ततः सङ्क्रमरोन नी= $\frac{1}{\xi}$   $\left\{ \left( \frac{3J+6}{\xi} \right) - \xi \right\}$  अतः नी  $^2 = \left[ \frac{1}{\xi} \left\{ \left( \frac{3J+6}{\xi} \right) - \xi \right\} \right]^2 = 2J - 6$  ततः या  $= \left[ \frac{1}{\xi} \left\{ \left( \frac{3J+6}{\xi} \right) - \xi \right\} \right]^2 + 6$ 

अत उपपद्यते यथोक्तम् ॥ ७३ ॥

वि. माः—को राज्ञी रूपैर्युतोऽन्यरूपैर्हीनश्च वर्गो भवति तदैक्यं केनचिदि-ष्टेन भक्तं लब्धमिष्टेन हीनं शेषस्यास्याधींकृतस्य कृतिर्हीनाऽभ्यधिकाऽर्थात् यैरूपै-र्हीनो राशिवर्गो भवति तानि हीनरूपाणि तैर्हीनैरभ्यधिका राशिर्भवतीति ॥

## भ्रत्रोपपत्तिः।

कल्प्यते राशिः = य । ग्रत्र ग रूपैर्यु तो मरूपैर्हीनश्च वर्गो भवतीति प्रश्ना-लापेन क $^2$  = य+ग, न $^2$  = य-म । ग्रतः क $^2$ -न $^2$  = ग+म, ग्रत्र यदि क-न = इ तदा वर्गान्तरं राशिवियोभक्तमित्यादिना क + न =  $\frac{^{1}}{5}$  ततः संक्रमगोन न =  $((^{1}+^{1}+^{1})_{-5})^{2}$ 

$$\left\{ \frac{\left(\frac{\eta + \eta}{\xi}\right) - \xi}{2} \right\}^{2} = a - \mu \text{ with } \eta \text{ act}$$

$$\left\{ \left(\frac{\eta + \eta}{\xi}\right) - \xi \right\}^{2} + \mu = a \text{ } \psi \text{ act} \text{ occ}$$

$$\left\{ \left(\frac{\eta + \eta}{\xi}\right) - \xi \right\}^{2} + \mu = a \text{ } \psi \text{ act} \text{ occ}$$

श्रव पुनः प्रश्नान्तरविशेष का उत्तर कहते हैं।

हि. मा. — कौन राशि है जिसमें रूप जोड़ने तथा अन्य रूप की हीन करने से वर्ग होता है उन दोनों वर्गाञ्कों के योग को किसी इष्ट से भाग देने से जो फल होता है उसमें

से इष्ट को घटाने से जो शेष रहता है उसके म्राधे का वर्ग हीन रूप है उसको जोड़ने से राशि प्रमाण होता है इति ।

#### उपपत्ति ।

कल्पना करते हैं राशिप्रमाण=य। इसमें ग रूप को जोड़ने से वर्ग होता है, तथा म रूप को घटाने से बर्ग होता है इस प्रश्नालाप से क $^2$ =u+v1।  $r^2$ =v-v4, प्रतः  $r^2$ - $r^2$ =v+v4, यदि क—r=v5 तब वर्गान्तरं राशिवियोगभक्तं इत्यादि भास्करोक्ति से कv+v5 =v7 वर्ग संक्रमण से v7 v8 =v7 वर्ग करने से v8 v9 v9 v9 =v9 =v9 v9 =v9 =v1 =v9 =v9

# इदानीं प्रश्नान्तरस्योत्तरमाह।

# याम्यां कृतिरिघकोनस्तदन्तरं हृतयुतोनमिष्टेन । तदृलकृतिरिघकोनाऽधिकयोरियकोनयो राशिः ॥ ७४ ॥

सुः माः — को राशिष्ठिदृष्टराशिभ्यां युक्तः कृतिभैवति । वा को राशिष्ठिष्ट्रराशिभ्यामूनः कृतिभैवतीति प्रक्ते याभ्यामुद्दिष्टाभ्यामधिको वोनः कृतिभैवति
बदन्तरिमष्टेन हृतं योगप्रक्त इष्टेनैव युतमूनप्रक्त इष्टेनैवोनं कार्यम् । यन्निष्यन्नं
तद्दलस्य कृतिरिधकोदिष्टराशिना कार्या श्रिधकयोष्ठिद्ष्टराश्योः । उद्दिष्टराश्योक्रनयोश्चाधिका कार्या । एवं राशिभैवति ।

श्रत्रोपपत्तिः । कल्प्यते राशिमानम् ≕या । यश्च श्र—क—राशिभ्यां युतो मूलदः । तथा अ>क तदा प्रश्नानुसारेगा—

का<sup>2</sup>=या+श्र  
नी<sup>2</sup>=य+क  
का<sup>2</sup>-नी<sup>2</sup>=ग्र-क  
का—नी=इ  
∴ का+नी= 
$$\frac{\pi}{\xi}$$
 =ल

अत उपपद्यते ॥ ७४ ॥

वि. भा.—स को राशिर्य उद्दिष्टराशिभ्यां युक्तो हीनो वा कृति (वर्गः) भ्विति, स्रत्र याभ्यामुद्दिष्टराशिभ्यां युक्तो हीनो वा वर्गो भवित तदन्तरिमष्टेन भक्तं योग-प्रश्ने इष्टेन हीनं विधेयम् तदा यद् भवित तदर्धस्य वर्गोऽधिको-दिष्टराशिना हीनः कार्यः,—स्रिधकयोरुदिष्टराश्योः । उद्दिष्टराश्योरत्पयोरिधकः (युक्तः) कार्यः, तदा राशिभैवित ॥

#### भ्रत्रोपपत्तिः ।

कल्प्यते राशिः=य, यो हि न, म उद्दिष्टराशिभ्यां युतो वर्गः स्यात् । मत्र न >म तदा प्रश्नानुसारेण य+न=क², य+म=व² ततः क²—व²=न-म स्रत्र यदि क-व=इ तदा वर्गान्तरं राशिवियोगभक्तमित्यादिना  $\frac{\tau-\mu}{\xi}$  = क²—व² =क+व=र तदा संक्रमणेन  $\frac{\tau+\xi}{\xi}$  =क, अतः य=क²—न तथा राशिरुद्धिभ्यां हीनो वर्गो भवतीति प्रश्ने क²=य-न। य-म=व² ततः व²-क²=न-म स्रत्र यदि व-क=इ तदा  $\frac{q²-{5}^2}{4}$  =व+क=  $\frac{\tau-\mu}{\xi}$  = र ततः संक्रमणेन  $\frac{\tau-\xi}{2}$  =क  $\therefore$  य=क²+न स्रत आचार्योक्तमुपपन्तम् ॥७४॥

## श्रब पुनः प्रश्नान्तर का उत्तर कहते हैं।

हि. मा. — कौन राशि है जिसमें उिह्म राशिद्वय को जोड़ने से वा घटाने से वगें होता है, यहां जिन उिद्युराशिद्वय को जोड़ने वा घटाने से वगें होता है उन दोनों उिद्युर राशियों के धन्तर को इष्ट से माग देने से जो लब्बि हो उसमें इष्ट को जोड़ना योग प्रक्त में । हीन प्रक्न में इष्ट को हीन करना तव जो हो उसके आधे के वर्ण में अधिक उिद्युराशि को घटाना चाहिए, अल्प उिद्युराशि को जोड़ना चाहिए तब राशि प्रमाण होता है इति ।

#### उपपत्ति ।

कल्पना करते हैं राशि = य, इसमें उिह्मृराशिद्धय को जोड़ने से वर्ग होता है, न, म उिह्मुराशिद्धय है, तथा न>म तब प्रश्न के श्रनुसार य+न=क $^2$ 

य
$$+\pi=a^2$$

शतः  $a^2-a^2=\pi-\pi$ , यदि  $a-a=\pi$  तब  $\frac{a^2-a^2}{\pi}=\frac{\pi-\pi}{\pi}=\pi+a=\tau$ ,

तब संक्रमण से  $\frac{\tau+\pi}{2}=\pi$   $\therefore$  य $=\pi^2-\pi$ , हीन प्रश्न में य $=\pi=\pi^2$ , य $=\pi=a^2$ 
 $\therefore$   $a^2-\pi^2=\pi-\pi$ । यदि  $a-\pi=\pi$  तब  $\frac{a^2-\pi^2}{\pi}=\frac{\pi-\pi}{\pi}=a+\pi=\tau$ ,

 $\therefore$  संक्रमण से  $\frac{\tau-\pi}{2}=\pi$   $\therefore$  य $=\pi^2+\pi$  इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ इति ॥ ७४ ॥

इति वर्गप्रकृतिः।

# उदाहरणानि

# तत्र प्रथमं वर्गप्रकृत्युदाहरणम्।

# राशिकलाशेषकृति द्विनवतिगुग्गितां त्र्यशीतिगुग्गितां वा । सैकां ज्ञदिने वर्गं कुर्वन्नावत्सराद् गराकः ।।७५।।

सुः भाः—राषिशेषक्वति द्विनवति—९२ गुणितां सैकां वा कलाशेषक्वितं व्यशीति—८३ गुणितां सैकां बुधदिने ग्रावत्सराद्वर्गं कुर्वन्निप स गणकोऽस्तीत्यहं मन्ये।

प्रथमप्रक्ने प्र ६२ क्षे १ ततो वर्गप्रकृतिसूत्रतः।

क १ ज्ये १०क्षे ≍

क १ ज्ये १० क्षे 🕏

भावनया, क २० ज्ये १६२ क्षे ६४

क इंज्ये २४ क्षे १

क इंज्ये २४क्षे

भावनया, क १२० ज्ये ११५१ क्षे १

अतो राशिशेषम् =१२०। एवं भावनया बहुषा राशिशेषं स्यादतः कुटुक विधिनाऽभीष्टाहेऽर्हुगराः स्यात्।

द्वितीय प्रश्ने गु ५३ क्षे १

ततः क १ ज्ये ६ क्षे २

क १ ज्ये ६ क्षे २

कं १८ ज्ये १६४ क्षे ४

क हज्ये ८२ क्षे १

भावनया कनिष्ठज्येष्ठयोरानन्त्यम् ।

ततः कलाशेषम् = १ । कलाशेषात् कुट्टकविधिनाऽभीष्टदिनेऽहर्गग्ः स्यात् ॥ ७५ ॥

वि. मा.— राशिशेषवर्गं द्विनवति (९२) गुग्गितं सैकं वा कलाशेषवर्गं त्र्यशी-तिगुग्गितं सैकं बुधदिने वर्षपर्यंन्तं वर्गं कुर्वन् स गणाकोऽस्तीति ।।

प्रथमप्रश्ने प्रकृतिः = ९२, क्षेपः = १, तदा 'इष्टं हस्त्रं तस्य वर्गः त्रकृत्या क्षुण्एा' इत्यादि भास्करोक्तसूत्रेण कनिष्ठम् = क= १, ज्येष्ठम् = ज्ये = १०, क्षेपः = क्षे = इ

ततो भावनार्थं न्यासः क=१, ज्ये=१०, क्षे=८  $= 10^{-2}$  क=१, ज्ये=१०, क्षे=६

वज्राभ्यासौ ज्येष्ठलघ्वोस्तदैक्यमित्यादि भास्करोक्त्या कनिष्ठम् = २०, ज्येष्ठम् = १९२, क्षे = ६४, तत इष्टवर्गहृतः क्षेप इत्यादिनेष्टं == प्रकल्प्य जाताः कनिष्ठज्येष्ठक्षेपाः, कनिष्ठम् =  $\frac{1}{2}$ , ज्येष्ठम् = २४, क्षेपः = १, भावनार्थं न्यासः क =  $\frac{1}{2}$ , ज्ये = २४, क्षे = १

 $\mathbf{a} = \frac{\mathbf{x}}{2}$ , ज्ये  $= \mathbf{v}$  , क्षे  $= \mathbf{v}$  ततः समासभावनया  $\mathbf{a} = \mathbf{v}$ , ज्ये  $= \mathbf{v}$ , क्षे  $= \mathbf{v}$ ,

अतो राशिशेषमानम् = १२०, भावनया राशिशेषमानमनेकथा भवति । ततः कुट्टकेनेष्टदिनेऽहर्गं एः स्यादिति । द्वितीयप्रश्ने प्रकृतिः = = ६३, क्षेपः = १, 'तदेष्टं हस्वं तस्य वर्गं' इत्यादि भास्करोक्त् या किनष्ठज्येष्टक्षेपाः = = १, ज्ये = ९, क्षे = = २, भावनार्थं न्यासः क = १, ज्ये = ९, क्षे = = २

क=१, ज्ये=९, क्षे=—२ ततः समासभावनया किनष्ठज्येष्ठ क्षेपाः क=१८, ज्ये=१६४, क्षे=४ अत्रेष्टं=२ प्रकल्प्य 'इष्टवर्ग-हृतः क्षेप' इत्यादिना रूपक्षेपे किनष्ठज्येष्ठक्षेपाः क=९, ज्ये=८२, क्षे=१ एवं भावनयाऽनेकघा किनष्ठज्येष्ठे भवतः । अतः कलाशेषमानम्=९, ततः कुट्टकेनेष्ट-दिनेऽहर्गणो भवेदिति ॥७५॥

# श्रव उदाहरएों को कहते हैं। पहले वर्ग प्रकृति के उदाहरए। कहते हैं।

हि. भा.—राशिशेषवर्ग को ६२ से गुएगा कर एक जोड़ने से जो होता है उसको वा कला शेष वर्ग को तिरासी ६३ से गुएगाकर एक जोड़ने से जो होता है उसके वर्ग को बुषदिन में वर्ष पर्यन्त करते हुए व्यक्ति गएगक हैं इति ॥७४॥

प्रथमप्रश्न में प्रकृति = ६२, क्षेप = १, तब 'इष्ट्र' ह्रस्वं तस्य वर्गः प्रकृत्या क्षुण्णः' इत्यादि भास्करोक्त सूत्र से कनिष्ठ क = १, ज्येष्ठ = ज्ये = १०, क्षेप = क्षे = = भावना के लिय न्यास करते हैं क = १, ज्ये = १०, क्षे = =

क=१, ज्ये=१०, क्षे=

'वजाम्यासौ ज्येष्ठलघ्वोस्तदैक्य' इत्यादि भास्करोक्त सूत्र से क=२०, ज्ये=१६२, क्षे=६४, अब इष्ट=द कल्पना कर 'इष्टवर्ग हुत: क्षेपः' इत्यादि भास्करोक्त सूत्र से क= $\frac{1}{2}$ , ज्ये=२४, क्षे=१, पुनः भावना के लिये न्यास क= $\frac{1}{2}$ , ज्ये=२४, क्षे=१

 $\mathbf{n} = \frac{\mathbf{y}}{2}$ , ज्ये  $= 2\mathbf{y}$ , क्षे = 2

समास भावना से क=१२०, ज्ये=११५१, क्षे=१, ग्रतः राशि शेष मान=१२०, भावना से राशि शेष ग्रनेकघा होता है। तब कुट्टक विघि से ग्रभीष्ट दिन में ग्रहगंगा सुगमता ही से होता है। द्वितीय प्रश्न में प्रकृति=६३, क्षेप=१, तब 'इष्ट' ह्रस्वं तस्य वर्गः' इत्यादि से क=१, ज्ये=६, क्षे=—२। भावना के लिये न्यास क=१, ज्ये=६, क्षे=—२ क=१, ज्ये=६, क्षे=—२ समास भावना से क=१८, ज्ये=१६४, क्षे=४, ग्रब इष्ट=२ कल्पना कर 'इष्टवर्गहृतः क्षेपः' इत्यादि से क=६, ज्ये=८२, क्षे=१ एवं भावना से किनष्ठ और ज्येष्ठ का ग्रानन्त्य होता है। ग्रतः कलाशेष=६ तब कुट्टक विधि से ग्रभीष्ट दिन में सुगमता ही से ग्रहर्गण होगा इति।।७५॥

# इदानीमन्यप्रश्नद्वयमाह ।

# सूर्यविलिप्ताशेषं पश्चभिरूनाहतं तथा दशिभः। वर्गं वृहस्पतिदिने कुर्वन्ना वत्सराद् गराकः।।७६।।

सुः भाः—सूर्यविलिप्ताशेषं पश्चिभिरूनं पश्चाहतं च बृहस्पतिदिने वर्गो भवति । वा विलिप्ताशेषं तथैव दशिभरूनं दशिभराहतं च वर्गो भवतीति प्रश्न-मावत्सरात् कुर्वन्निप स गणकोऽस्तीति ।

प्रथमप्रदने विलिप्तारोषम् =या।

ततः प्रश्नानुसारेण ५ या-२५ ग्रयं वर्ग इष्टवर्गेण समः कृतः।

ततः  $\psi$  या—२ $\psi$ = $\xi^2$  : या =  $\frac{\xi^3+2\psi}{\psi}$ ।

यदि इ=५ तदा या=१०।

एवं द्वितीयप्रश्ने १० या  $\stackrel{\leftarrow}{-}$  १००= $\xi$   $\stackrel{\circ}{\cdot}$  या =  $\frac{\xi^{3}+$  १०० ।

यदि इ=१० तदा या=२०। विलिप्ताशेषात् कुटुकेनाहर्गंगानयनं सुग-मम्।। ७६।।

वि भा — सूर्यंविलिप्ताशेषं पञ्चिभिर्हीनं पञ्चिभिर्गु िएतं च बृहस्पतिदिने वर्गो भवति, वा विलिप्ताशेषं दशिभर्हीनं दशिभर्गु िएतं च वर्गो भवतीति प्रश्नोत्तर मावत्सरात कुर्वेन् स गएकोऽस्तीति ॥

प्रथमप्रश्ने कल्प्यते विलिप्ताशेषम् = u, तदाऽऽलापानुसारेगा ५ (u—५) इष्टवर्गोग समोऽयं वर्गः कृतः ५ (u—५) =  $\xi^2$  = ५ u—२५ समयोजनेन ५ u =  $\xi^3$  + २५ पक्षौ पश्चिभिर्मक्तौ तदा u =  $\frac{\xi^2+24}{4}$ , प्रत्र यदि  $\xi$  = ५ तदा  $\frac{24+24}{4}$  = u =

= इ समयोजनेन १० य =  $\xi^2$  + १०० ग्रतः य =  $\frac{\xi^2 + 200}{20}$  ग्रत्र यदि  $\xi = 20$  तदा य =  $\frac{200 + 200}{20}$  = 20, विलिप्ताशेषाऽत्कुट्टकविधिनाऽहर्गग्। ज्ञानं सुखेन भवेदिति ॥ ७६॥

## ग्रब ग्रन्य दो प्रश्नों को कहते हैं।

हि. भा. — सूर्यं के विलिप्ता शेष में से पांच घटा कर पांच से गुराा करने से वृहस्पति दिन में वर्ग होता है। वा उसी तरह विलिप्ता शेष में से दस घटा कर दस से गुराा करने से बृहस्पति दिन में वर्ग होता है इन प्रश्नों के उत्तर एक वर्ष तक करते हुए व्यक्ति गराक हैं इति।

प्रथम प्रश्न में कल्पना करते हैं विलिप्ता शेष मान = u। तब प्रश्न के ध्रालापानुसार x (u-x) यह वर्ग है, इसको इष्ट वर्ग के बराबर करने से x (u-x) = x u-x  $= x^2$ , दोनों पक्षों में x जोड़ने से x  $u=x^2+x$  ध्रतः  $x=x^2+x$  प्रतः  $x=x^2+x$  प्

## इदानीमन्यान् प्रश्नानाह।

# मगर्णादिशेषवर्गं त्रिभिर्गुं गं संयुतं शतेर्नविभिः। कृतिमध्टशतोनं वा कुर्वन्नावत्सराद् गर्णकः।।७७।।

सु. भा.—भगणादीनां भगणा-राशि-कला-विकलानां शेषवर्गं त्रिभिर्गुणं नवभिः शतैः संयुतं वाष्ट्रशतोनं वर्गमावत्सरात् कुवर्न्निष स गणकोऽस्तीति । भ्रत्र भगणादिशेषमानम् =या ।

ततः प्रश्नालापेन प्रथमप्रश्ने ३ या +६०० ग्रयं वर्गः । अतः ७० सूत्रेरा-

क १ ज्ये २ क्षे १
क ३० ज्ये ६० क्षे ९००
भावनया कनिष्ठज्येष्ठयोरानन्त्यम् ।
ग्रतो भगगादिशेषमानम् = ३० । द्वितीयप्रश्नेऽप्येवम् ।
३ यार्-=०० श्रयं वर्गः ।

ग्रतः क १ ज्ये १ क्षे २ क २० ज्ये २० क्षे ५०० रूपक्षेपपदाभ्यां भावनयाऽत्रापि पदयोरानन्त्यम् । ग्रतो भगगादिशेषम् ≕२०।। ७७।।

वि. माः—भगगादि (भगगा-राशि-ग्रंश-कला-विकला) शेषवर्गं त्रिभिर्गुंणं नविभः शतैः संयुतं वाऽष्टशतोनं वर्गः स्यादित्यावत्सरात् कुर्वन् स गगाकोऽ-स्तीति ॥

प्रथमप्रश्ने कल्प्यते भगगादिशेषप्रमाग्यम् = य, तदाऽऽलापेन ३ य² + ९०० अयं वर्गः। अत्र प्रकृतिः = ३ कल्प्यते किनष्ठम् = १, तदा ज्येष्ठम् = २, क्षे = १, तदा क्षुण्णाः क्षुण्णाः क्षुण्णाः तदा पदे इत्यादिनेष्टम् = ३० प्रकल्प्य जाताः किनष्ठज्येष्ठक्षेपाः क = ३०, ज्ये = ६०, क्षे = ९०० अत्र भावनया किनष्ठज्येष्ठयो रानन्त्यम्। ततो भगगादिशेषमानम् = ३०।

द्वितीयप्रश्ने ग्रालापानुसारेण ३ य $^2$ —८०० ग्रयं वर्गः । ग्रत्र प्रकृति = ३, क्षेपः = - ५०० कल्प्यते कनिष्ठम् = १, तदा ज्येष्ठम् = १, क्षेपः = - २ ग्रत्रापि 'क्षेपः क्षुण्णाः क्षुण्णो तदा पदे, इत्यादिना इष्टम् = २० प्रकल्प्य जाताः कनिष्ठज्येष्ठक्षेपाः क= २०, ज्ये = २०, क्षे = - ८०० रूपक्षेपीयकनिष्ठज्येष्ठाभ्यां तयो (कनिष्ठ-ज्येष्ठयोः) रानन्त्यम् । ततो भग्णादिशेषमानम् = २०।७७।

## ग्रब ग्रन्य प्रश्नों को कहते हैं।

हि. मा. — भगगादि (भगगा-राशि-ग्रंश-कला-विकला) शेष वर्ग को तीन से गुणा कर नौ सौ जोड़ने से वर्ग होता है वा ग्राठ सौ को घटाने से वर्ग होता है इसको एक वर्ष पर्यन्त करते हुए व्यक्ति गणक है। यहां भगगादिशेष प्रमाण — य, है। तब प्रथम प्रश्न के ग्रालापानुसार ३ य² + ६०० यह वर्ग है। यहां प्रकृति — ३, है तब 'इष्ट हस्वं तस्य वर्ग प्रकृत्या क्षुण्णः' इत्यादि से क — १, ज्ये — २, क्षे — १ 'क्षुण्णः क्षुण्णे तदा पदे' इस भास्करोक्ति से इष्ट — ३० कल्पना करने से क — ३०, ज्ये — ६०, क्षे — ६०० यहां भावना से कनिष्ठ ग्रीर ज्येष्ठ ग्रनन्त होता है। ग्रतः भगगादि शेष — ३०।

द्वितीय प्रश्न में प्रश्न के भ्रालापानुसार ३ य<sup>2</sup>— ६०० यह वर्ग है, भ्रतः क = १, ज्ये = १, क्षे = — २। यहां भी 'क्षुण्एाः क्षुण्ऐा तदा पदे' इस भास्करोक्ति से इष्ट = २० कल्पना करने से क = २०, ज्ये = २०, क्षे = — ६००, यहां भी रूप क्षोपीय पदों से भावना द्वारा किनष्ठ भीर ज्येष्ठ भ्रनन्त होगा, इसलिये भग्एादि श्रेष = २० इति ॥७७॥

# इदानीमन्यं प्रश्नद्वयमाह।

भगगादिशेषवर्गं चतुर्गुगां पञ्चषष्टिसंयुक्तम् । षष्टचूनं वा वर्गं कुर्वन्नावत्सराद् गगाकः ॥७८॥

सु. भा.—स्पष्टार्थम् । प्रथमप्रक्ते भगगादिशेषमानम् = या । ततः प्रक्तानु-सारेगा ४ या + ६५ म्रयं वर्गः ।

श्रत्र ६९ सूत्रतः। इष्टम् = ५। 💱 = १३।

१३—५, 5 = 8।  $\sqrt{\frac{8}{8}} = 2$ । अतो भगगादिशेषम् = 2 रूपक्षेप-

पदाभ्यां भावनयाऽऽनन्त्यम्।

द्वितीयप्रश्नेऽप्येवं ४ या - ६० ग्रयं वर्गः।

अत्रेष्टम् -- २ । <sup>६</sup>० -- ३० । ३० + २ -- ३२ । ३३ -- १६ ।

्र्र <sup>३</sup> =८। श्रतोऽत्र भगगादिशेषम् =८। एवं बुद्धिमता ऋगक्षेपे गुगाके वर्गे चाधिकसंख्यातः कनिष्ठानयनं कार्यमिति ॥ ७८॥

वि भा — भगणादीनां (भगण – राशि-भाग-कला-विकलानां) शेषवर्गं चतुर्गुणं पञ्चषष्टचा युतं वर्गो भवति वा षष्टचा हीनं वर्गो भवतीति—ग्रावत्सरात् कुर्वन् स गणकोऽस्तीति ।

प्रथमप्रवने कल्प्यते भगरणादिशेषप्रमारणम् = य, तदा प्रवनालापानुसारेरण ४य रे + ६५ श्रयं वर्गः स्यात् । सत्र प्रकृतिः = ४, क्षेपः = ६५, वर्गात्मकप्रकृतौ किनव्ठज्येष्ठयोरानयनार्थं 'इष्टभक्तो द्विधाक्षेप' इत्यादि भास्करोक्तसूत्रेर्गेष्टं = ५ कल्पनेन जातं किनव्ठम् = २, रूपक्षेपीयकनिष्ठज्येष्ठाभ्यां भावनवा ऽऽनन्त्यम्, ततो भगरणादिशेषमानम् = २। द्वितीयप्रवने प्रवनालापानुसारेरण ४य रे - ६० श्रयं वर्गः स्यात् । श्रत्रापि 'इष्ट भक्तो द्विधाक्षेप' इस्यादि भास्करोत्तचा किनव्छम् = ८, श्रतो भगरणादिशेष मानम् = ८ एवं वर्गात्मकप्रकृतोश्रह्माक्षेपेऽधिक्संख्यातः किनष्टज्ञानं कार्यमिति ॥७६॥

# भव अन्य दो प्रश्नों को कहते हैं।

हि. भा. - भगसादि शेष वर्ग को चार से गुसा कर पैंसठ जोड़ने से वर्ग होता है,

वा साठ घटाने से वर्ग होता है इसको करते हुए व्यक्ति गएाक हैं। प्रथम प्रश्न में कल्पना करते हैं भगएगादि शेषमान = य, तब प्रश्न के म्रालापानुसार ४य२ + ६५ यह वर्ग है, यहां वर्गात्मक प्रकृति = ४ है, क्षेप = ६५ तब 'इष्टभक्तो द्विधाक्षेपः' इस भास्करोक्त सूत्र से इष्ट = ५ कल्पना करने से कनिष्ठ = २, रूपक्षेपीय कनिष्ठ भौर ज्येष्ठ से भावना द्वारा कनिष्ठ भौर ज्येष्ठ मनन्त होता है, इसनिये भगएगादिशेषमान = २ हुम्रा । द्वितीय प्रश्न में प्रश्न के म्रालापानुसार ४ य² - ६० यह वर्ग है यहां भी 'इष्टभक्तो द्विधाक्षेपः' इत्यादि भास्करोक्त सूत्र से कनिष्ठ = ६, ग्रतः भगएगादिशेषमान = ६ हुम्रा । एवं वर्गात्मक प्रकृति में भौर ऋगु- क्षेप में ग्रिधिक संख्या से कनिष्ठानयन करना चाहिये इति ।।७६।।

# इदानीमन्यं प्रश्नमाह ।

# इष्टभगरणादिशेषं द्विनवत्यूनं त्र्यशीतिसङ्गुरिणतम् । रूपेरण युतं वर्गं कुर्वन्नावत्सराद् गरणकः ॥७६॥

सु. भा.—इष्टभगगादिशेषं द्विनवितिभि ६२ रूनं कार्यं शेषं त्र्यशीति ८३ संगुगितं रूपेण युतं च वर्गमावत्सरात् कुर्वन्निप स गणकोऽस्तीति । इष्टभगगा-दिशेषमानम् =या । ततः प्रश्नालापेन —

= 3 (या—६२) + ? = 5 या— $5 \times 6 \times 7 + ?$  = 23 या— $6 \times 7 + ?$  = 23

वि. भा.—इष्ट भगगादिशेषं द्विनवत्या ९२ हीनं शेषं त्र्यशीति ८३ गुगितमेकेन युतं वर्गः स्यादित्यावत्सरात् कुर्वन् स गगाकोऽस्तीति । कल्प्यते इष्टभगगादिशेषप्रमाग्गम्=य, तदाऽऽलापानुसारेगा ५३ (य—९२) + १ = ५३ य—
८३×९२+१=८३य—७६३६+१=५३५ श्रयं वर्गः स्यात् कल्प्यते
५३य-७६३५=इ॰ पक्षौ ७६३५ युतौ तदा ८३य=इ॰ +७६३५ पक्षौ ८३ भक्तौ
तदा  $\frac{{\mathbb S}^2 + 6834}{53}$  =य, सन्न यदि इष्टम्=१ तदा य=  $\frac{6836}{53}$  =९२ इत्येव
भगगादिशेषप्रमाग्गम् ॥७९॥

## ग्रब ग्रन्य प्रश्न को कहते हैं।

हि. भा-—इष्ट भगए॥दिशेष में ६२ घटाने से जो शेष रहता है उसको ६३ से गुर्गाकर एक जोड़ने से वर्ग होता है इसको करते हुए व्यक्ति गए। है। यहां कल्पना करते हैं भगरा।दिशेषमान == य, तब प्रश्न के आलापानुसार ५३ (य – ६२) + १ == ६३य — ७६३६

+१===३य—७६३५ यह वर्ग है, कल्पना करते हैं =३य—७६३५= $\xi^2$ , दोनों पक्षों में ७६३५ जोड़ने से =३य= $\xi^2$ +७६३५, दोनों पक्षों को =३ से भाग देने से  $\frac{\xi^2$ +७६३५ =  $\xi^2$  =

# इदानीं प्रश्नद्वयमाह।

# श्रिधमासशेषवर्गं त्रयोदशगुरां त्रिभिः शतैर्युक्तम् । त्रिधनोनं वा वर्गं कुर्वन्नावत्सराद् गराकः ॥५०॥

मान हम्रा इति ॥७१॥

सु. भा.—त्रिघनेन सप्तिविशत्योनम् । शेषं स्पष्टार्थम् । अत्राधिमासशेषमानम् = या । ततः प्रश्नालापेन प्रथमे प्रश्ने १३ या + ३०० । अयं वर्गः । ग्रत्र वर्गप्रकृत्या, क १ ज्ये ४ क्षे ३ क १० ज्ये ४० क्षे ३००

अत्र रूपक्षेपपदाभ्यां भावनयाऽऽनन्त्यं कार्यम् । अत्र कनिष्ठ---१० मधिमास शेषमानम् ।

अत्र यदि क १ ज्ये ३ क्षे ४। ततः ६८ सूत्रेण।

ह्पक्षेपे किन्छम् = 
$$\frac{\pi. \, \overline{\text{ज्य}}\, (\overline{\text{ज्य}}^2 + १)\, (\overline{\text{ज्य}}^2 + 3)}{2}$$
 =  $\frac{8 \times 3\, (3^2 + 8)\, (3^2 + 3)}{2}$  =  $\frac{8 \times 3\, (3^2 + 8)\, (3^2 + 8)}{2}$  =  $\frac{8 \times 3\, (3^2 + 8)\, (3^2 + 8)\, (3^2 + 8)}{2}$  =  $\frac{8 \times 3\, (3^2 + 8)\, (3^2 + 8)\, (3^2 + 8)}{2}$  =  $\frac{8 \times 3\, (3^2 + 8)\, (3^2 + 8)\, (3^2 + 8)}{2}$  =  $\frac{8 \times 3\, (3^2 + 8)\, (3^2 + 8)\, (3^2 + 8)\, (3^2 + 8)}{2}$  =  $\frac{8 \times 3\, (3^2 + 8)\, (3^2 +$ 

एवं रूपक्षेपे पदे प्रसाध्य भावनयाऽऽनन्त्यं कार्यम् । द्वितीयप्रश्नेप्येवम् १३ या - २७ म्रयं वर्गः ।

ग्रतः क १ ज्ये ४ क्षे ३ क १ ज्ये २ क्षे ६ भावनया, क ६ ज्ये २१ क्षे २७ ग्रत्रापि रूपक्षेप पदाभ्यां भावनयाऽऽनन्त्यं कार्यम् । ग्रत्राधिशेषमानं व्यक्तम् =६॥८०॥ नि भाः—स्पष्टार्थम् । त्रिघनेन सप्तिविशत्या हीनम् । कल्प्यतेऽधिमासत्रेषप्रमाग्राम् = य, तदा प्रथम प्रश्ने प्रश्नोत्तचा १३ य² + ३०० ग्रयं वर्गः स्यात् ।

ऋत्र प्रकृतिः = १३, क्षेपः = ३००, इष्टं ह्रस्वं तस्य वर्गः प्रकृत्येत्यादिना क = १,

ज्ये = ४, क्षे = ३ ततः 'क्षुण्णः क्षुण्णो तदा पदे' इति भास्करोत्तचे ष्टम् = १०

प्रकल्प्य जाताः कनिष्ठज्येष्ठक्षेपाः क = १०, ज्ये = ४०, क्षे = ३०० रूपक्षेपीय

कनिष्ठ ज्येष्ठाभ्यां भावनया कनिष्ठज्येष्ठयोरानन्त्यम् । ग्रत्र कनिष्ठम् = १० =

ऋषिमासशेषप्रमाण्म् = य । ग्रत्र यदि क = १, ज्ये = ३, क्षे = -४ तदा

'चतुष्कनेऽन्त्य पदकृती त्र्येकयुते वघदल' मित्याचार्योक्त सूत्रेण रूपक्षेपे कनिष्ठम् =

क.ज्ये (ज्ये २ + १) (ज्ये २ + ३) \_ १ × ३ (३ २ + १) (३ २ + ३)

३

# श्रव अन्य दो प्रश्नों को कहते हैं।

क=६, ज्ये=२१, क्षेप:=-२७ रूपक्षेपकनिष्ठज्येष्ठाभ्यां भावनयाऽऽनन्त्यं

कार्यम् अत्र कनिष्ठमधिशेषमानम् = ६ = य ॥८०॥

हि. भा. - अधिमास शेष वर्ग को तेरह से गुगा कर तीन सौ जोड़ने से वर्ग होता है, वा अधिमास शेष वर्ग को तेरह से गुगा कर सताइस घटाने से वर्ग होता है इसको करते हुए व्यक्ति गगाक है इति ।। ८०।।

यहां कल्पना करते हैं अधिमास शेषमान = य, तब प्रथम प्रश्न में प्रश्नालाप से १३ य<sup>२</sup> + ३०० यह वर्ग है यहां प्रकृति = १३, क्षेप = ३००, 'इष्टं हस्त्वं तस्य वर्गः' इत्यादि से क = १, ज्ये = ४, क्षे = ३, तब 'क्षुरासाः क्षुरासो तदा पदे' इस भास्करोक्ति से इष्ट = १० कल्पना करने से क = १०, ज्ये = ४०, क्षे = ३०० रूपक्षेपीय कनिष्ठ और ज्येष्ठ से भावना हारा कनिष्ठ और ज्येष्ठ की अनन्तता करनी चाहिये। यहां कनिष्ठ = १० = अधिमास शेष प्रमासा = य, हुआ, यहां यदि क = १, ज्ये = ३, क्षे = = ४ तब 'चतुरूनेऽन्त्य पदकृती त्र्येकयुते' इत्यादि आचार्योक्त ६० सूत्र से रूपक्षेप में कनिष्ठ =  $\frac{\pi . ज्ये (ज्ये रे + १) (ज्ये रे + ३)}{२}$ 

$$= \frac{2 \times 3(3^2 + 2)(3^2 + 3)}{2} = \frac{3 \times 20 \times 27}{2} = 200, \quad \text{with} = \left\{ \frac{3^2 + 2}{2} \right\}$$

$$\left\{ \frac{(3^2 + 2)(3^2 + 3)}{2} - 2 \right\} = \left\{ 3^2 + 2 \right\}$$

$$\left\{ \frac{(3^2 + 2)(3^2 + 3)}{2} - 2 \right\} = 22 \times 22 = 226, \quad \text{vith} = 226 = 231.$$

ज्येष्ट साघन कर भावना से किनष्ठ ग्रीर ज्येष्ठ की ग्रनन्तता करनी चाहिये। एत्रं द्वितीय प्रश्न में १३ य<sup>२</sup>—२७ यह वर्ग है, 'इष्टं ह्रस्वं तस्य वर्गः' इत्यादि से क=१, ज्ये=४, क्षे=३ तथा क=१, ज्ये=२, क्षे=—१ इन दोनों की समास भावना से क=६, ज्ये=२१, क्षे=—२७ यहां भी रूपक्षेपीय किनष्ठ ग्रीर ज्येष्ठ से भावना द्वारा किनष्ठ ग्रीर ज्येष्ठ की ग्रनन्तता करनी चाहिये यहां ग्रीधमास शेष प्रमाण=६=य, हुग्रा ॥६०॥

## इदानीमन्यप्रश्नद्वयमाह ।

# इन्दुविलिप्ता शेषं सप्तदश गुरां त्रयोदश गुरां चापि । पृथगेकयुतं वर्षं कुर्वन्नावत्सराद् गराकः ॥८१॥

सु. भा.—स्पष्टार्थम् । स्रतः । गु. = १७ । गु. = १३, ततो विलिप्ताशेषम् = 
$$\frac{ = (गु. + गु.)}{(गु.  $\sim n$  गु.) $^2 = \frac{ = (१0 + १३)}{(१0 - १३)^2} = \frac{ < \times 30}{8 \times 8} = ?4$ ।$$

वि. शाः—चन्द्रस्य विलिप्ताशेषं पृथक् सप्तदशगुणितं, त्रयोदशगुणि बं एकयुतं वर्षं आवत्सरात् कुर्वन् स गणको उस्तीति । अत्र गुणकः—गु=१७ । गुणकः—गु=१३ तदा 'गुणकयुतिरिष्टगुणिता गुणकान्तरवर्षभाजिते ' स्याद्याचार्योक्तसूत्रेण विलिप्ताशेषम् =  $\frac{C(\overline{y}+\overline{y})}{(\overline{y}-\overline{y})^2} = \frac{C(\overline{y}0+\overline{y})}{(\overline{y}0-\overline{y})^2}$   $\frac{C\times 30}{8^2} = \frac{C\times 30}{8^2} = \frac{30}{7} = 84 ||C81||$ 

## भव अन्य प्रश्नद्वय को कहते हैं।

हि. भा. - चन्द्र के विलिप्ताशेष को पृथक् सतरह से श्रोर तेरह से गुणा कर एक जोड़ने से वर्ग होता है, इसको करते हुए व्यक्ति गणक है।। द१।। यहाँ गुणक = प् = १७,

गुराक =  $\eta$  = १३, तब 'गुराकयुतिरिष्टगुराता गुराकान्तरभाजिता' इत्यादि स्राचार्योक्त सूत्र से विलिप्ताशेष =  $\frac{1}{(\eta - \eta^3)} = \frac{1}{(१ - 1)^2} = \frac{1}{(1 - 1)^2} = \frac{1}{$ 

## इदानीमन्यं प्रश्नद्वयमाह।

# भ्रवमावशेषवर्गं द्वादशगुणितं शतेन संयुक्तम् । त्रिभिरूनं वा वर्गं कुर्वन्नावत्सराद् गराकः ॥ ८२ ॥

सु. मा.—स्पष्टार्थम्।
प्रथमप्रश्ने क्षयशेषमानम्=या। ततः प्रश्नानुसारेग्
१२ या +१०० भ्रयं वर्गः।
वर्गप्रकृत्या, क १ ज्ये ४ क्षे ४
क ५ ज्ये २० क्षे १००
भ्रथं चतुः क्षेप पदाभ्यां ६७ सूत्रेग्।
स्पक्षेपे क = क (ज्ये -१) = १ (४ -१) = १५
२ व्ये = ज्ये (ज्ये -३) = ४ (४ -३) = २६।
भ्राभ्यां भावनयाऽऽनन्त्यं कार्यम्। अत्र क्षयशेषम्=५।
द्वितीय प्रश्नेऽप्येवम्। १२ या -३ वर्गः।
भ्रतः क १ ज्ये ३ क्षे ३
स्पक्षेप पदाभ्यामत्राप्यानन्त्यं कार्यम्। भ्रत्र क्षयशेषम्=१॥ ५२॥

वि. मा.—स्पष्टार्थम् । कल्प्यते अवमशेषप्रमाणम्—य, तदा प्रथम प्रहनालाकेन १२ य²+१०० ग्रयं वर्गः स्यात् । ग्रत्र प्रकृतिः—१२, क्षेपः—१०० तदाकनिष्ठं १
प्रकल्प्य 'इष्टं ह्रस्वं तस्य वर्गं' इत्यादि भास्करोक्त्रया ज्येष्ठम् = ज्ये=४, क्षेपः=४
ततः क्रमेण न्यासः क=१,ज्ये=४, क्षेपः=४ ग्रुत्रेष्टं —५ प्रकल्प्य 'क्षुण्णाः क्षुण्णो तदा
पदे' इति भास्करोक्त्रया जाताः कनिष्ठज्येष्ठक्षेपाः क=५, ज्ये=२०, क्षं=१००,
वतुःक्षेपीय कनिष्ठ ज्येष्ठाभ्यां 'चतुरिषकेऽन्त्यपदकृतिरि'त्यादि ग्राचार्योक्तसूत्रेण
क्ष्पक्षेपे कनिष्ठमः = क् (ज्ये²-१) = १४(४²-१) = १६-१ = १५
२

द्वितीय प्रश्ने १२ य<sup>९</sup>—३ भ्रयं वर्गः स्यात् । भ्रत्र प्रकृतिः—१२, क्षेपः——३ तदेष्टं ह्रस्विमत्यादिना क—१, ज्ये—३, क्षे ——३, रूपक्षेपीय किनष्ठज्येष्ठाभ्यां किनष्ठज्येष्ठयोरत्राप्यनन्तत्वं विधेयम् । भ्रतोऽवमशेषमानम्—१ ॥ ८२ ॥

## श्रव श्रन्य दो प्रश्नों को कहते हैं।

हि. भा.— ग्रवमशेष वर्ग को बारह से गुणा कर एक सौ जोड़ने से वर्ग होता है, वा ग्रवम शेषवर्ग को बारह से गुणा कर तीन घटाने से वर्ग होता है इनका उत्तर करते हुए व्यक्ति गणक है इति ॥ ५२ ॥ कल्पना करते हैं ग्रबमशेष प्रमाण=य, तब प्रथम प्रश्न के ग्रालापानुसार १२ यै + १०० षह वर्ग है। यहाँ प्रकृति=१२, क्षेप=१०० तब 'इष्टं हस्वं तस्य वर्गः' इत्यादि भास्करोक्त सूत्र से चारक्षेप में क=१, ज्ये=४, क्षे=४, यहाँ इष्ट=५ कल्पना कर 'क्षुण्णः क्षुण्णे तदा पदे' इस भास्करोक्ति से क=५, ज्ये=२०, क्षे=१००, चारक्षेप सम्बन्धी कनिष्ठ ग्रीर ज्येष्ठ से 'चतुरिष्ठकेऽन्त्यपदकृतिः' इत्यादि ग्राचार्योक्त ६७ सूत्र से रूपक्षेप में कनिष्ठ  $\frac{\sigma (ज्ये^2-१)}{2} = \frac{१ \times (४^2-१)}{2} = \frac{१ \times - १}{2} = \frac{१ \times - १}{2}$  ज्येष्ठ  $\frac{\sigma (ज्ये^2-३)}{2} = \frac{8 \times (8^2-3)}{2} = \frac{8 \times (8^2-3)}{2}$ 

द्वितीय प्रश्न में १२ य<sup>९</sup>—३ यह वर्ग है। यहां प्रकृति = १२, क्षेप = —३, 'इष्टं ह्रस्वं तस्य वर्गः' इत्यादि से क = १, ज्ये = ३, क्षे = —३, रूपक्षेपीय किनष्ठ और ज्येष्ठ से भावना से यहाँ भी किनष्ठ और ज्येष्ठ की भनन्तता होती है। भ्रतः भवमशेष = १, हुआ इति।। =२।।

# इदानीमन्यं प्रश्नमाह।

# ज्ञदिनेऽर्ककलाशेषं गुरुदिनविकलावशेषयुक्तोनम् । वर्गं वधं च सैकं कुर्वन्नावत्सराद् गराकः ॥५३॥

सु. भा — बुधदिनेऽर्कस्य यत् कलाशेषं तद्गुरुदिनजेनार्कस्य विकलावशेषेग् युक्तमूनं च वर्गं तथा तथोः कलाविकलाशेषयोर्वधं सैकं च वर्गमावत्सरात् कुर्वन्निप स गगाकोऽस्तीति ।

श्रत्र ७२ सूत्रेएा कल्पित एको वर्गः १६ । ग्रन्यश्च ४ । ततः १६-1-४≔२० । १६—४=१२ ।

$$\frac{20+82}{\left(\frac{20-82}{2}\right)^2} = \frac{32}{85} = 2 \cdot 1$$
 अनेन गुरिएतौ २० । १२ जातौ राशी ४०।२४।

श्रत्र प्रथमं ४० कलाशेषं द्वितीयं लघुं २४ विकलाशेषम् । कलाशेषात् कुट्ट-केन बुधदिनेऽहर्गंगः साध्यः । विकलाशेषाच्च कुट्टकेन गुरुदिनेऽहर्गंगः साध्य इति ॥ ५३ ॥

वि मा — बुधिदने रवेः कलाशेषं यत्तद्बृहस्पतिदिनजेन रवेविकलाशेषेगा युतं हीनं च वर्गं तथा कलाविकलाशेषयोर्वधं सैकं च वर्गमावत्सरात् कुर्वन् स गगाकोऽस्तीति ।

'वर्गों उन्यक्तियुतोनस्तत्संयोगान्तरार्धकृतिभक्त' इत्यादि सूत्रेगौको वर्गः = १६ किल्पतः । द्वितीयश्च = ४, तदा १६+8=२० । १६-8=१२  $\therefore \frac{20+82}{(20-82)} = \frac{32}{8^2} = \frac{32}{8^2} = 2$ । ग्रनेन २०, १२ गुगितौ तदा राज्ञी

भवेताम् ४०। २४ अत्र प्रथमं = ४० = कलाशेषम् । द्वितीयं = २४ = विकलाशेषम् । कलाशेषात् बुधितने कुदृकेनाऽहर्गगः साध्यः, विकलाशेषात् कुदृकविधिना बृहस्पतिदिनेंऽहर्गगः साध्य इति ॥६३॥

## अव अन्य प्रश्न को कहते हैं।

हि. मा.—बुघ दिन में रिव के कलाशेष में बृहस्पितिदिनोत्पन्न रिव के विकलाशेष को जोड़ने से और हीन करने से जो वर्ग होता है उस वर्ग को तथा कलाशेष और विकलाशेष के घात में एक जोड़ने से जो वर्ग होता है उस वर्ग को करते हुए व्यक्ति गएक हैं । यहां 'वर्गोऽन्यकृतियुतोनः' इत्यादि माचार्योक्त ७२ सूत्र से एक वर्ग=१६ कल्पना किया, और दितीय वर्ग=४ तब माचार्योक्त ७२ सूत्र के अनुसार १६+४=२०। १६—४=१२ . .  $\frac{20+82}{82}=\frac{32}{82}=\frac{32}{82}=2$  इससे २०। १२ गुएग करने से दोनों

राशिमान होते हैं ४०। २४ इनमें प्रथम राशि = ४० = कलाशेष, द्वितीय राशि = २४ = विकलाशेष, कलाशेष से बुध दिन में कुटक विधि से ग्रहगैंगानयन करना चाहिये, विकला शेष से कुटक विधि द्वारा बृहस्पति दिन में ग्रहगैंगानयन करना चाहिये।

## इदानीमन्यप्रश्नमाह।

# विकलाञेषं सहितं त्रिनवत्या सप्तषिष्टहीनं च । भानोर्ज्ञविने वर्गं कुर्वन्नावत्सराद् गराकः ।।८४।।

सु. भा — भानोर्बु धदिने यद्विकलाशेषं तत् त्रिनवत्या सहितं वर्गं त्रथा सप्त-षिटहीनं च वर्गमावत्सरात् कुर्वन्निप स गणकोऽस्तीति ।

म्रत्र ७३ सूत्रेगा इष्टम् =४।

 $\frac{\xi + \xi \circ}{8} = \frac{\xi \xi \circ}{8} = 80$ ।  $80 - 8 = 3\xi$ ।  $\frac{3\xi}{2} = \xi \xi$ ।  $\xi \xi^3 = 3\xi \xi$ ।  $\frac{3\xi}{2} = \xi \xi$ ।  $\xi \xi^3 = 3\xi \xi$ ।  $\frac{3\xi}{2} = \xi \xi$ ।  $\xi \xi \xi \xi$ 

वि. भा - रवेर्ब घिदिने विकलाशेषं यत्तत् त्रिनवत्या ९३ युतं वर्गो भवति, तथा सप्तषिट हीनं च वर्गो भवतीत्येतत् ग्रावत्सरात् कुर्वन् गएकोऽस्तीति ।

यैरूनो यैश्च युतो रूपैर्वर्ग इत्याद्याचार्योक्त ७३ सूत्रेण, कल्पितमिष्टम् =४ तदा  $\frac{९३+६७}{8}=\frac{१६०}{8}=80$ । ४०-४=३६।  $\frac{३६}{२}=१$ ६, १८ $^2=3२$ ४ ततः ३२४+६७=३९१=विकलाशेषमतः कुहकविधिना बुधिदनेऽहर्गणः साध्य इति ॥८४॥

#### भव अन्य प्रश्न को कहते हैं।

हि. मा.—बुघदिन में रिव का जो विकलाशेष है उसमें तिरानवे जोड़ने से बर्ग होता है । तथा ६७ घटाने से वर्ग होता है इसको करते हुए व्यक्ति गएक हैं इति । 'यैंक्नो यैश्च युतो रूपवर्गः' इत्यादि श्राचार्योक्त ७३ सूत्र से ४= इष्ट कल्पना कर  $\frac{83+69}{8}=\frac{?5}{8}$  = १८, १८२=३२४ श्रतः ३२४+६७ = ३६१=विकला शेष, इससे कुटक विधि से ग्रहर्गएगानयन करना चाहिये इति ॥ = 100

## इदानीमन्यप्रश्नद्वयमाह।

# ज्ञदिनेऽर्ककलाशेषं द्वादशभिः संयुतं त्रिषष्टचा च । षष्टचाऽष्टाभिश्चोनं कुर्वन्नावत्सराद् गराकः ॥८४॥

सु भा - बुधिदनेऽकंस्य कलाशेषं यत् तद् द्वादशिमः संयुतं वर्गं तथा त्रिषष्टचा संयुतं च वर्गमावत्सरात् कुर्वन्निप स गराकोऽस्तीत्येकः प्रश्नः। वा तत् कलाशेषं षष्टचो ६० नं वर्गं तथाऽष्टाभिश्चोनं वर्गमावत्सरात् कुर्वन्निप स गराको- स्तीति द्वितीयः प्रश्नः । स्रत्र ७४ सूत्रेगा । प्रथमप्रश्ने इष्टं ३ प्रकल्प्य  $\frac{\xi 3 - \xi 7}{2} = \frac{4\xi}{3} = \xi 9 \cdot 1 \cdot \frac{\xi 9 + 3}{2} = \frac{20}{3} = \xi 0 \cdot 1 \cdot \xi 0^2 = \xi 00 \cdot 1 \cdot \xi 00 - \xi 3$  =  $30 \cdot 1 \cdot \xi 0 \cdot$ 

वि. मा.—बुधिदनें रवेः कलाशेषं द्वादशिमः संयुतं वर्गं कुर्वन् तथा त्रिषष्टिया संयुतं च वर्गमावत्सरात्कुर्वन् स गर्णकोऽस्तीति प्रथमः प्रश्नः । वा तदेव कलाशेषं षष्टिया हीनं वर्गं कुर्वन् तथाऽष्टाभिश्च हीनं वर्गमावत्सरात् कुर्वन् स गर्णकोऽस्तीति द्वितीयः प्रश्नः ।

याभ्यां कृतिरिधकोनं तदन्तरं हृतयुतोनिमिष्टेनेत्याचार्योक्तसूत्रेगा प्रथम-प्रश्ने इष्टं ३ प्रकलप्य  $\frac{\xi 3 - १2}{3} = \frac{48}{3} = 89$ ,  $\frac{89 + 3}{2} = \frac{29}{2} = 89$ ,  $(89)^3 = 899$ ,  $(89)^3 = 899$ ,  $(89)^4$ 

#### अब अन्य दो प्रश्नों को कहते हैं।

हि. भा — बुध दिन में कलाशेष में बारह जोड़ने से तथा तिरसठ जोड़ने से वर्ग को करते हुए व्यक्ति गए। क हैं यह प्रथम प्रश्न हैं। वा कलाशेष में साठ घटाने से तथा ग्राठ घटाने से वर्ग को करते हुए व्यक्ति गए। क हैं यह द्वितीय प्रश्न है।

'याम्यां कृतिरिधिकोनं तदन्तरं' इत्यादि आचार्योक्त ७४ सूत्र से प्रथम प्रश्न में इष्ट = ३ कल्पना कर  $\frac{\xi 3-\xi 2}{3}=\frac{\xi 8}{3}=\xi 9$ ,  $\frac{\xi 9+3}{2}=\frac{20}{2}=\xi 0$ ,  $(\xi 0)^3=\xi 0$ ,  $\xi 0$ 0,  $\xi 0$ 0

# इदानीमन्यान् प्रश्नानाह ।

# इन्दुविलिप्ताशेषाद्रविलिप्ताशेषमंशशेषं वा । स्रथवा मध्यममिष्टं कुर्वन्नावत्सराद् गराकः ॥८६॥

सु० भा०—इन्दुविलिप्ताशेषात् रविलिप्ताशेषं वांऽशशेषमथवाऽभीष्टं मध्यमं ग्रहमावत्सरात् कुर्वश्रिप स गराकोऽस्तीति प्रश्नत्रयम् । श्रत्र चन्द्रकलाविकला-शेषात् कुट्टकविधिनाऽहर्गराज्ञानं तस्मादिष्टमध्यानयनं रवेः कलांशशेषानयनं च सुगमम् ॥८६॥

वि. भा.—चन्द्रस्य विकलाशेषात् रवेः कलाशेषमंश शेषं वा, अथवेष्टं मध्यमं ग्रहं, भ्रावत्सरात् कुर्वेन् स गर्णकोऽस्तीति । भ्रत्र प्रश्नत्रयमस्ति । चन्द्रस्य विकलाशेषात् कुट्दकेनाहर्गर्णानयनं कार्यं तस्मादभीष्टमध्यमग्रहानयनं रवेः कलाशेषानयन-मंश शेषानयनं च विधेयमिति ।।८६।।

#### श्रव अन्य प्रश्नों को कहते हैं।

हि. मा.—चन्द्र के विकलाशेष से रिव के कला शेष को वा ग्रंशशेष को श्रथवा इष्ट मध्यम ग्रह को करते हुए व्यक्ति गराक हैं, यहां तीन प्रश्न हैं। चन्द्र के विकलाशेष से कुटक विधि से श्रहर्गराानयन करना चाहिये। उस से श्रभीष्ट मध्यमग्रहानयन, तथा रिव का कलाशेषानयन, ग्रंशशेषानयन सुगमता ही से हो जायगा इति।।८६॥

# इदानीमन्यान् प्रश्नानाह।

# जीवविलिप्ताशेषात् कुजिमन्दुं भौमलिप्तिकाशेषात् । रविमिन्दुभागशेषात् कुर्वन्नावत्सराव् गराकः ॥८७॥

सु० भा० - गुरुविलिप्ताशेषात् कुजं भौमकलाशेषाञ्चन्द्रं चन्द्रभागशेषाञ्च रविमावत्सरात् कुर्वन्नपि स गएकोऽस्तीति ।

गुरोर्विकलाशेषाद्वा भौमकलाशेषादथवा चन्द्रभागशेषात् कुटकेनाहर्गग्।-ज्ञानं ततोऽहर्गगादभीष्टग्रहज्ञानं स्फुटमेचेति ॥८७॥

वि. भा-—बृहस्पतिविकलाशेषान्मङ्गलं, मङ्गलकलाशेषाच्चन्द्रं, चन्द्र-स्यांशशेषाद्रविमावत्सरात् कुर्वन् स गएाकोऽस्तीति । बृहस्पतैविकलाशेषात्, वा मङ्गलस्य कलाशेषात् । वा चन्द्रस्यांशशेषात्कुदृकविधिनाऽहर्गणानयनं कार्यम् । तस्मादिष्टमध्यमग्रहानयनं सुगममेवेति ।।८७।।

# ब्राह्मस्फुटसिद्धान्ते

#### ग्रब ग्रन्य प्रश्नों को कहते है।

हिः भाः — बृहस्पति के विकला शेष से मङ्गल को, मङ्गल के कलाशेष से चन्द्र को, चन्द्र के ग्रंश शेष से रिव को करते हुए व्यक्ति गराक हैं इति । बृहस्पति के विकलाशेष से, वा मङ्गल के कलाशेष से, ग्रथवा चन्द्र के ग्रंशशेष से कुट्टक विधि से ग्रहगैरा। नयन करना चाहिये, ग्रहगैरा ज्ञान से इष्टमध्यम ग्रहानयन स्पष्ट ही है इति ।। ८७।।

# इदानीं पूर्वप्रश्नोत्तरमाह।

# इष्टग्रहेष्टशेषाद् द्युगगा गतनिरपवर्त्तं संगुणितः। छेददिनैरिकोऽस्मादन्यग्रहशेषमिष्टो वा ॥६८॥

सु. माः—इष्टग्रहस्येष्टकलाविकलादिशेषात् कुहकविधिना द्युगगोऽहर्गगाः साध्यः । स च गतिनरपवर्त्तसङ्गुिगितैश्छेददिनैरिष्टाहत दृढकुदिनैरिधिकोऽनेकधाः स्यादस्मादहर्गणादन्यग्रहस्य कलाविकलादिशेषं वा ऽभीष्टो मध्यमग्रह एव साध्य इति स्फुटमेव सिद्धान्तविदाम् ॥८८॥

वि. भा.—इष्टग्रहस्येष्टकलाविकलादिशेषात्कुदृकरीत्याऽहर्गणः साध्यः स इष्ट गुिंगतैष्छेदिनैः ( दृढ़कुदिनैः) युक्तोऽनेकथा स्यात् । ग्रस्मादहर्गणादन्यग्रहस्य कलाविकलादिशेषं साध्यं वा ऽभोष्टो मध्यम ग्रहः साध्य इति ।।८८।।

### म्रब पूर्व प्रश्न के उत्तर को कहते हैं।

हि. मा.—इष्टग्रह के इष्टकलाशेष, विकला शेष आदि से कुटक विधि से अहर्गण साधन करना चाहिये, उसमें इष्ट गुणित टढ़कुदिन को जोड़ने से अनेक प्रकार होते हैं। इस अहर्गण से अन्यग्रह के कलाशेष विकलादिशेष साधन करना चाहिये वा अभीष्ट मध्यमग्रह ही साधन करना चाहिए।। प्रदा।

इदानीमुद्दिष्टाहर्गे ग्रहयोर्भगणादिशेषे ये ते एव पुनः कस्मिन्नहर्गे एे भवेतामित्यस्योत्तरमाह।

> निक्केदभागहारौ ग्रहयोविपरीतौ ग्रहयोद्यु गरणात् । यस्मात् तन्निक्केदेनोद्धृ तयोर्लब्बसङ् गुरिणतौ ॥८६॥ निक्केदभागहारौ विपरीतौ तद्युतात् पुनस्तस्मात् । कोषे द्युगरणादेवं त्र्यादीनां प्राग्वदिष्टदिने ॥६०॥

# सु. भा.—(निरुष्ठेदभागहारौ ग्रहयोर्भगणादिशेषयोर्द्युगणात् । यस्मात् तन्निरुष्ठेदेनोद्धृतयोर्लब्धसंगुणितौ ॥८१॥)

यस्माद् द्युगणादहर्गणाद् ग्रह्योर्ये भगणादिशेषे भवतस्तयोर्यो निश्छेदभागहारौ स्वस्वदृढकुदिनसंश्चौ तयोनिश्छेदेन महत्तमापवर्त्तेनोद्धृतयोस्तयोर्धं ढकुदिनसंग्नयोः सतोर्ये लब्धे ताभ्यां विपरीतौ निश्छेदभागहारौ गुणितौ। महत्तमापवर्त्तभक्तात् प्रथमहढकुदिन संग्नाद्यल्लब्धं तेन द्वितीयहढकुदिनमानं गुण्यं
द्वितीयलब्धेन च प्रथमहढकुदिनमानं गुण्यमित्यर्थः। एवं समच्छेदौ भवतः।
तद्युतात् तस्मात् पूर्वसाधिताद् द्युगणात् पुनर्ग्रहयोस्ते एव भगणादिशेषे भवतः।
उद्दिष्टादहर्गणः पूर्वसाधितसमच्छेदेन युतस्तदा योगसमेऽहर्गणे पुनस्ते एव ग्रह्योभंगणादिशेषे भवत इत्यर्थः। एवं त्र्यादीनां ग्रह्मणामिष्टदिने यानि भगणादिशेषाणि तानि पुनः कदेति प्रश्नोत्तरं प्राग्वत् कार्यम्। द्वयोनिश्छेदभागहाराभ्यां
पूर्ववत् समच्छेदं विधाय नूतनो निश्छेदभागहारः कल्प्यः। पुनरस्य तृतीयहढकुदिनस्य च लघुतमापवर्त्याऽन्वेषणीयः। एवमग्रेऽपि कर्म कार्यम्। ग्रन्ते सर्वहढकुदिनानां यो लघुतमापवर्त्याःतेन युतोऽहर्गणः कार्यः। योगसमेऽहर्गणे च पुनस्तान्येव
शेषािण भवन्ति।

#### श्रत्रोपपत्तिः ।

यदि ग्रहाणां दृढभगणाः भ, भ, भ, दृढकुदिनानि च कु, कु, कु, कु, कल्प्यन्ते तथा दृढकुदिनानां लघुतमापवर्त्त्यश्च ग्रा। तदा ग्रमग्रह अस्मिन्नहर्गणे दृढभगणगुणे दृढकुदिनहृते प्रथमलण्डे निरवयवभगणा लभ्यन्ते ते प्रयोजनाभावा- चिद त्यज्यन्ते तदोद्दिष्टाहर्गणाचाद्भगणशेषं तदेव अ+ग्रह अस्मादिष । ग्राचार्यणा- च द्वयोद्द्वयोनिक्छेदभागहारयोमंहत्तमापवर्त्तनविभक्तयोः सतोर्ये लब्धे ताभ्यामन्योन्यहारौ सङ्गुण्य लघुतमापवर्त्त्यं एवोत्पादित इति गणितविदां प्रसिद्धमे- चेति।। ८९-९०।।

नि मा— यस्मात् द्युगणात् (श्रह्गंगात्) ग्रह्योर्ये भगणादिशेषे स्तस्तयो-निश्छेदभागहारौ (स्वस्व दृढ्कुदिनसंज्ञको) यौ तयोनिश्छेदेन (महत्तमापवर्त्तनेन) भक्तयोर्ये लब्धे ताभ्यां निश्छेदभागहारौ गुणितावर्थात् महत्तमापवर्त्तनभक्तात् प्रथम दृढ्कुदिनसंज्ञकाद्यस्लब्धं तेन द्वितीय दृढ्कुदिनप्रमाणं गुणनीयं, द्वितीयलब्धेन प्रथम दृढ्कुदिमानं गुणनीयमेवं समच्छेदौ भवतः । तद्युतात् (पूर्वसाधितादहर्गणात्) पुनस्ते एव ग्रह्योभंगणादिशेषे भवतः । पूर्वसाधितसमच्छेदेनोद्दिष्टाह्गंगो युतस्तदा योगसमेऽह्गंगो पुनस्ते एव भगणादिशेषे भवतः । एविष्टिदिने श्यादीनां ग्रहाणां यानि भगणादिशेषाणि तानि पुनः कदेतिप्रश्नोत्तरं पूर्ववत्कार्यम् । द्वयोनिश्छेदांशहाराभ्यां पूर्ववत् समच्छेदं विधाय नचीनो निश्छेदभागहारः कल्पनीयः। पुनरस्यतृतीयदृढ्कुदिनस्य चलघुतमापवर्त्यो गवेषग्गीयः । अग्रेऽप्येवमेव कर्म कार्यम् । अन्ते सर्वेषां दृढ्कुदिनानां यो लघुतमापवर्त्यस्तेनाहर्गगो युतस्तदा योगतुल्येऽहर्गगो पुनस्तान्येव शेषागि स्युरिति ॥८९-९०॥

#### भ्रत्रोपपत्तिः ।

यदि ग्रहाणां हढ्कुदिनानि क, ख, ग, हढ्भगणाः य, र, ल, कल्प्यन्ते, तथा हढ्कुदिनानां लघुतमापवर्त्यश्च = प, तदा 'प + ग्रह्गं एा' ऽयमहर्गणो हढ्भगणगुणो हढ्कुदिनभक्तः प्रथमखण्डे निःशेषभगणाः समागच्छन्ति, प्रयोजनाभावात्ते यदि न गृह्यन्ते तदोहिष्टादहर्गं णाद्यद् भगणशेषं तदेवा 'प + अहर्गण' स्मादिप, द्वयोर्द्वयोर्हं ढ् कुदिनसंज्ञकयोर्महत्तमापवर्त्तनेन विभक्तयोर्ये लब्धी ताभ्यां परस्परं हारौ सङ्गुण्य लघुतमापवर्त्यं एव सम्पादित आचार्येणेति ॥८९-९०॥

अब उद्दिष्ट ग्रहर्गेण में दो ग्रहों के भगगादि शेष जो है वे ही पुनः किस ग्रहर्गेण में होंगे इस प्रश्न के उत्तर कोकहते हैं।

हि. भा.-जिस अहगंगा से दो ग्रहों के जो भगगादि शेष हैं उन दोनों के अपने अपने हड़ कुदिन को महत्तमापवर्त्तन से भाग देने से जो लिब्बद्धय होता है उन दोनों से विपरीत दोनों हड़ कुदिन को गुगा करना चाहिए अर्थात् प्रथम हड़कुदिन संज्ञक को महत्तमावर्त्तन से भाग देने से जो लिब्ब हो उससे दितीय हड़कुदिन को गुगाना चाहिए और दितीय लिब्ब से प्रथम हड़कुदिन को गुगा करना चाहिए, इस तरह करने से समच्छेद होता है। उस से युत पूर्व साधित अहगंगा से फिर दोनों ग्रहों के वे ही भगगादि शेष होते हैं अर्थात् उदिष्टा-हर्गण में पूर्व साधित समच्छेद को जोड़ने से योग तुल्य अहगंगा में पुनः वे ही दोनों ग्रहों के भगगादि शेष होते हैं। इसी तरह तीन आदि ग्रहों के इष्टदिन में जो भगगादि शेष हों वे पुनः कब होंगे इसका उत्तर पूर्ववत् करना चाहिए। दो ग्रहों के हढ़कुदिन संज्ञकों से पूर्ववत् समच्छेद करके नये हढ़कुदिन कल्पना करना फिर इसके और तृतीय हढ़कुदिन कल्पना वाहिए। अन्त में सब हढ़कुदिनों के जो लघुतमापत्यं हो उसको अहगंगा में जोड़ देना चाहिए तब योग-तुल्य अहर्गण में पुनः वे ही शेष होंगे इति।।

#### उपपत्ति ।

यदि ग्रहों के हढ़कुदिन क, ख, ग, और हढ़भगए। य, र, ल कल्पना करते हैं तथा हढ़कुदिन संज्ञकों के लघुतमापनत्य = प, तब प + ग्रह्म ए। को हढ़भगए। से गुर्णाकर हढ़-कुदिन से माग देने से प्रथम खण्ड में निःशेष भगए। लब्ब होता है, प्रयोजना भाव से यदि उसको छोड़ देते हैं तब उद्दिष्ट ग्रहम ए। से जो भगए। दि शेष होता है वही प + ग्रहम ए।, इससे भी, ग्राचार्य ने यहां दो ग्रहों के हढ़कुदिन को महत्तमपवर्त्तन से भाग देने से जो लिब्बह्रय

होते हैं उन दोनों से परस्पर हारों को गुणाकर लघुतमापत्यें ही उत्पादित किया इति।।
।।८८–६०।।

#### इदानीमन्यान् प्रश्नानाह ।

## ं द्युगरामवमावशेषाद्रविचन्द्रौ मध्यमौ स्फुटावथवा । एवं तिथि ग्रहं वा कुर्वन्नावत्सराद् गराकः ॥६१॥

- मु. भा.—ग्रवमावशेषात् क्षयशेषाद् द्युगग्गमहर्गग्गं वा मध्यमौ रिवचन्द्रावथ वा स्फुटौ रिवचन्द्रौ वैवं तिथि वा ग्रहमिष्टग्रहं भौमाद्यन्यतममावत्सरात् कुर्वन्निप स गग्गकोऽस्तीति पञ्च प्रश्ना अत्र ॥६१॥
- वि. भा अवमावशेषादहर्गगां वा मध्यमौ रविचन्द्रौ, ग्रथवा स्फुटौ रविचन्द्रौ, चैवं तिथि वेष्टग्रहं मङ्गलाद्यन्यतममावत्सरात् कुर्वन् स गणकोऽस्तीति। ग्रत्र पञ्चप्रकाः सन्ति ॥९१॥
- हि. भा.—जो व्यक्ति भ्रवमशेष से भ्रहर्गे ए को कहते हैं वा मध्मय रिव भ्रौर मध्यम चन्द्र को कहते हैं श्रथवा स्फुट रिव भ्रौर चन्द्र को कहते हैं। वा तिथि को कहते हैं वा इष्ट्र ग्रह (कुजादि ग्रहों में किसी ग्रह) को कहते हैं वे गए। क हैं। यहां पांच प्रश्न है इति ।। ६१।।

# इदानीमन्यान् प्रश्नानाह ।

# एकदिनमवमशेषं यद्गु गमेकं रविचन्द्रभगगोनम्। शुध्यति भूदिनभक्तं व्येकं चान्द्रं स्तदुक्तिरियम् ॥६२॥

- सु. भा.— एकदिनसम्बन्ध्यवमशेषं यद्गुणं येन गुरामेकोनं भूदिनभक्तं शुध्यति वाऽवमशेषं यद्गुणं रिवभगणोनं भूदिनभक्तं शुध्यति । वाऽवमशेषं यद्गुणं चन्द्रभगणोनं भूदिनभक्तं शुध्यति । वाऽवमशेषं यद्गुणं व्येकं चान्द्रं श्चा-न्द्रदिनंभक्तं शुध्यति । अथेयं वक्ष्यमाणा तेषां प्रश्नानामुक्तिश्तरोक्तिरिति ।।६२॥
- वि. भा- एकदिनसम्बन्ध्यवमशेषं थेन गुरामेकहीनं कुदिन भक्तं शुध्यति । वाऽवमशेषं येन गुरां रविभगराहीनं कुदिनभक्तं शुध्यति । वाऽवमशेषं येन गुरां चन्द्रभगरीन हीनं कुदिनभक्तं शुध्यति, वाऽवमशेषं येन गुरां चन्द्रभगरीन हीनं कुदिनभक्तं शुध्यति, वाऽवमशेषं येन गुरामेकहीनं चान्द्रदिनैर्भक्तं शुध्यति । इदं वक्ष्यमारा तेषां प्रश्नानामुक्तरोक्तिः । अत्र चत्वारः प्रश्नाः सन्तीति ।।९२॥

#### म्रब मन्य प्रश्नों को कहते हैं।

हि. भा.- एक दिनसम्बन्धी अवमशेष को जिस गुराक से गुरााकर, एक घटाकर

कुदिन से भाग देने से निःशेष होता है। वा भ्रवमशेष को जिस गुएाक, से गुएाकर रिव-भगरा को घटाकर कुदिन से भाग देने से निःशेष होता है। भ्रथवा श्रवमशेष को जिस गुएाका द्भ से गुएाकर चन्द्रभगरा को घटाकर कुदिन से भाग देने से निःशेष होता है। वा श्रवमशेष को जिस गुएाका द्भ से गुएाकर एक घटाकर चान्द्र दिन से भाग देने से निःशेष होता है। श्रागे के विषय उन प्रश्नों की उत्तरोक्ति है इति ॥ ६२॥

#### ग्रथ प्रथमप्रश्नस्योत्तरमाह।

इषुशरकृताष्टिदिग्भिः १०८४५५ सङ्गुणितादवमशेषकाद् भक्तात् । रूपाष्टवेदरसशून्यशरगुर्णं ३५०६४८१ दिनगराः शेषम् ॥६३॥

सु. भा.— अवमशेषादिषु शरकृताष्टिदिग्भः १०८४५५ सङ्गुणितात् रूपाष्ट-वेदरसशून्यशरगुरौ ३५०६४८१ भक्ताच्छेषं दिगगणोऽहर्गणो भवति ।

#### अत्रोपपत्तिः।

कल्पहढावमानि दिनगरागुरानि हढावमशेषोनानि कल्पहढकुदिनहृतानि फलं निरग्रं गतावमानि । स्रतो हढकल्पावमानि भाज्यं हढावमशेषमृराक्षेपं हढकल्प-कुदिनानि हारं प्रकल्प्य यो गुराः सोऽहर्गराः स्यात् । तत्र लाघवार्थमाचार्येरा रूपशुद्धौ शरशरवेदाष्टपंक्तिमितः स्थिरकुहकः कृतः । रूपाष्टवेदादिसंख्या कल्प-

वि. मा. — अवमशेषात् १०८४५५ एभिगु शितात् ३५०६४८१ एभिभंक्तात्, यच्छेषं सोऽहुर्गं शः स्यादिति ॥

#### ग्रत्रोपपत्तिः ।

+ हढ़ावमशे पक्षौ हढ़ावमशे एभिर्हीनौ तदा हढ़कल्पावम × श्रहर्गण हढ़ककुदिन

\_ हढ़ावमशे = हढ़कल्पावम × श्रहगंगा—हढ़ावमशे = गतावमानि । श्रत्र यदि हढ़ककुदिन

हढ़कल्पावमं भाज्यं हढ़ावमशेषमृगाक्षेपं हढ़कल्पकुदिनं हारं कल्प्यते तदा कुट्टकेन योगुगाः समाग मिष्यति स एवाहगंगाो भवेत्। स्रत्राचार्येग लाघवार्थं रूपशुद्धौ (ऋगात्मकरूपक्षेपे) १०८४५५ गुगाकं प्रकल्प्य स्थिरकुट्टकः कृतः। ३५०६४८१ इति हढ़कुदिनानि सन्ति तदानयनं क्रियते।

#### श्रथ हढ़रविभगए। हढ़कुदिनयोरानयनं प्रदर्शते।

करभगरा <u>४३२००००००</u> <u>५०००० × ८६४००</u> ककुदिन <u>१५७७९१६४५००००</u> <u>५०००० × ३१५५८३२९</u>

= हढ़रविभगगा । एवमेव चं कल्पभगगा - ५७७५३३०००० हढ़कुदिन १५७७६१६४४००००

 $=\frac{40000\times88440\xi\xi}{40000\times38440\xi\xi}=\frac{40000\times3\times3040\xi\xi}{40000\times3884}=\frac{3040\xi\xi}{8048883}$ 

#### म्रब प्रथम प्रश्न के उत्तर को कहते हैं।

हि. भा.— म्रवमशेष को १०८४५५ इससे गुणा कर ३५०६४८१ इससे भाग देने से शेष म्रहर्गेण होता है ।।६३।।

#### उपपत्ति ।

यदि कल्प हढ़कुदिन में हढ़ कल्पावम पाते हैं तो ग्रहर्गणा में क्या इस ग्रनुपात से

#### श्रब दृढ़रिवभगणा श्रीर दृढ़कुदिन का श्रानयन करते हैं।

## इदानीमवमशेषाद्रव्यानयनमाह।

#### जिनरसगोऽन्धिरव ३२४६६२४ गुरगात् शशिवसुकृतरसंखभूतराम ३५०६४८१ हृतात् । इष्टावमशेषाद्यत् शेषं रविभगराशेषं तत् ।।६४।।

सु. भा.—स्पष्टार्थम् ।

#### अत्रोपपत्तिः।

अत्र पूर्वप्रकारेगाहर्गगः=१०८४५५ क्षशे—३५०६४८१ इ । अयं रिवहढ-भगगागुगस्तद् हढवु दिनगुगो जातो रिवर्भगगात्मकः । \_ <del>३२०० × १०८४ ४ ४ ११ — ३२०० × ३४०६२८१ इ</del> <u>३४७०५६००० क्षरो</u> ११६८८२७ : ११६८८२७

—३२०० $\times$ ३ इ $=\frac{१०८३२०५}{११६८८२७}$ +९६ क्षशे-६६०० इ स्रतो हढभगगशिषम्

= १०८३२०८ क्षशे — ११६८८२७ इ, । स्राचार्येण गुणहरौ त्रिभिः सङ्गुण्य हढक्षयशेषसम्बन्धिहढकुदिनहरे रवेभंगणशेषस् = ३२४६६२४क्षशे — ३५०६४८१ इ, इदं साधितमत इदं सर्वदा त्रिभिरपवत्यं तदा वास्तवमर्कहढ्भगणशेषं ज्ञेयम् । यद्याचार्यानीतं भगणशेषं त्रिभिर्नापवर्त्यं तदा प्रश्नः खिलो ज्ञेय इति सुगणके भूँ शं विचिन्त्यम् ॥६४॥

वि. भा.—इष्टावमशेषात् ३२४९६२४ एभिर्गुगात् ३५०६४८१ एभिर्भक्ता-

#### भ्रत्रोपपत्तिः।

भ्रय पूर्वसाधिताहर्गण = १०८४५५×भ्रवमशे - ३५०६४८१ इ, ततः भ्रहर्गण × दृढ्रविभगण = भगणात्मकरिवः = दृढ्रविकुदिन

३२०० × १०८४५५ अवमशे—३२०० × ३५०६४८१ इ \_\_ ३४७०५६००० अवमशे ११६८८२७ ११६८८२७

—३२०० ×३ इ = १०८३२०८ अवमशे + १६ अवमशे—१६०० इ, अतो हढ़-

भगणा शेषम् = १०८३२०८ श्रवमशे — ११६८८२७ इ, श्रत्राऽऽचार्येण हरगुणकौ तिभिः संगुण्य दृढ़ावमशेष सम्बन्धि हरे रवेभगणशेषं साधितम् । तद्रविभगणा- शेषम् = ३२४९६२४ श्रवमशे — ३५०६४८१ इ । तेनेदं सर्वदा यदि त्रिभिरपवर्त्यं तदैव रविभगणशेषं वास्तवं बोध्यं, यद्याचार्येणानीतं भगणशेषं त्रिभिरपवर्त्यं न भवेत्तदा प्रश्न एव खिलो बोध्य इति ॥९४॥

# अब अवमञ्रेष से रिव के आनयन को कहते हैं।

हि. भा - इष्टावमशेष को ३२४९६२४ से गुगाकर ३५०६४८१ इससे भाग देने से जो शेष रहता है वह रिव का भगरासेष होता है इति।

#### उपपत्ति ।

पूर्व प्रकार से ग्रहर्गेगा = १०८४५५ ग्रवमशे — ३५०६४८१६, ग्रतः ग्रहर्गेगा × दृढरिवभगगा == भगगात्मकर रिवदृक्कुदिन = <del>११६८८७ | ३२०० | ३४७०४६००० अवमर्शे | ३४७०४६००० अवमर्शे | ११६८८२७ | ११६८८२७ | ११६८८२७ | ११६८८२७ | ११६८८२७ | ११६८८२७ | ११६८८२७ | ११६८८२७ | ११६८८२७ | ११६८८२७ |</del>

 $-3२०० \times 3 = \frac{{9 \times 320 \times 32$ 

कर दृढ़ग्रवमशेष सम्बन्धी दृढ़कुदिन हर में रिव का भगग्गशेष = ३२४६६२४ भ्रवमशे— ३४०६४८१ इ, यह साधन किया हैं इसलिये सर्वदा इसको तीन से श्रपवर्त्तनीय होना चाहिये तब ही रिव के भगग्गशेष को वास्तव समभना चाहिये श्रन्यथा प्रश्न खिल (ग्रशुद्ध) समभना चाहिये।।६४।।

# इदानीमवमशेषात्तिथ्यानयनमाह।

गोऽगेन्दुखेश ११०१७६ गुणिताद् भक्तान्नख पक्ष यमरसेषु गुर्गैः। शेषमवमावशेषात्तिथयो ऽवमशेषकाद्विकलम् ॥६४॥

सु० भा० — ग्रवमशेषकाद्विकलं वर्त्तमान्तिथेर्भुक्तं मानं साध्यम् । शेषं स्पंष्टम् ।

#### अत्रोपपत्तिः।

चान्द्रेभ्यो यान्यवमानि यच्च तच्छेषं तान्यवमानि तदेव शेषं च सावनेभ्य इति 'सावनान्यवमानि स्युश्चान्द्रेभ्यः साधितानि चेत्'—इत्यादि मिताक्षरायां स्वगोलाध्याये भास्करेण स्फुटीकृतम्। अतो गतचन्द्रदिनैः कल्पावमानि गुणानि कल्पचन्द्रदिनैभंक्तानि फलं गतावमानि शेषं क्षयशेषम्।

श्रतः <u>इचादि × कक्षदि</u> । श्रयमभिन्नः । श्रतः क्षयदिनादि भाज्यं क्षयशे-कचादि षमृण्क्षेपं चान्द्रदिनानि हारं प्रकल्प्य यः कुहकः साध्यते तान्येव चान्द्रदिनानि गतितथयो भवन्ति । तत्राचार्येण लाघवार्थं रूपविशुद्धौ स्थिरकुहकः साधितः स एवावमशेषगुण्कः पठितः । श्रथ हढ़ावमचन्द्रदिनज्ञानार्थं न्यासः ।

कक्षिदि = २५०८२४५०००० = ५०००० × ५०१६५१ कचादि १६०२६६६०००००० = ५०००० × ३२०५६६८०

 $\frac{40000 \times 8 \times 44038}{40000 \times 8 \times 34870} = \frac{44038}{34870} = \frac{846}{870}$  हिल्लान्द्रितान्येव हर  $\frac{1}{8}$  हिल्लान्द्रितान्येव हर इति सर्वं स्फुटम्। गिएतागतमवमशेषम्  $\frac{1}{8}$  ४००००  $\times$  ९ अनेन विभज्य लब्धमत्र हढावमशेष सुधीभिज्ञेयमिति। ९१ आर्यायामन्ये येऽविशिष्टा प्रश्नास्तेषामुत्तराणि क्षयशेषादह्रगंणमानीय ततोऽहर्गणात् कार्याणि । ६२ ग्रार्यायां च ये प्रश्नास्ते-

षामुत्तराणि कुदृकविधिना स्फुटानि । भ्राचार्येगापीह स्फुटत्वात् तेषामुत्त-राणि नोक्तानीति ।।६४॥

वि. मा.—ग्रवमशेषात् ११०१७९ एतैर्गुणितात् ३५६२२२० एतैर्भक्ताच्छेषं तिथयो भवन्ति, ग्रवमशेषकाद्वर्त्तमानितथेर्भुक्तं मानं साध्यमिति ॥

#### भ्रत्रोपपत्ति :।

'सावनान्यवमानि स्युश्चान्द्रेभ्यः साधितानि चेत्। सावनेभ्यस्तु चान्द्रािग् तच्छेषं तद्वशात्त्रथेति' सिद्धान्त शिरोमणौ प्रतिपादितम्। तेन चान्द्रेभ्यो यान्यव-मानि तच्छेषं च यत्तदेव शेषमवमानि च सावनेभ्यो भवन्ति, ततः कल्पचान्द्रदिनैथैदि कल्पावमानि लभ्यन्ते तदा गत चान्द्रदिनैः किमित्यनुपातेन लब्धं गतावमानि शेषमवमशेषं तत्स्वरूपम् = कल्पावम × गत चान्द्रदि =गतावम + प्रवमशे कल्पचांदि

पक्षी अवशे एभिर्हीनी तदा कल्पावम × गतचान्द्रदि — अवमशे = गतावम, कल्पचांदि

स्रत्र कल्पावमानि भाज्यं, स्रवमशेषमृराक्षेपं कल्पचान्द्रदिनानि हारं प्रकल्प्य कु हकेन यो गुरास्तान्येव गतचान्द्रदिनानि गतितथयो भवन्ति । तत्राचार्येग ऋगा-त्मकरूप क्षेपे स्थिर कु हकः साधितः स एवावमशेष गुराकः पठितः । स्रथ हढ़ावम

 $= \frac{ q \circ \circ \circ \circ \times q \circ \xi \xi \zeta \xi}{ q \circ \circ \circ \circ \times \xi \times \xi \zeta \xi \xi \delta} = \frac{ q \circ \circ \circ \times \xi \times \zeta \zeta \zeta \xi \xi}{ q \circ \circ \circ \times \xi \times \xi \zeta \xi \xi \delta} = \frac{ q \circ \xi \xi \xi}{ \xi \zeta \xi \delta}$ 

= हिंदावमित अतो हिंद्यान्द्रितान्येव हरः सिद्धः । गिर्णतागतमवमशेष-६०००० × ९ मनेन विभक्तं लब्धमत्र हृद्दावमशेषं बोध्यमिति । ९१ श्लोके-अवशिष्टा अन्ये ये प्रश्नास्तेषामुत्तराण्यवमशेषादहर्गणं संसाध्य तस्मादहर्गणात्कार्यािए। ९२ श्लोके च ये प्रश्नास्तेषामुत्तरािण कुहकयुत्तचा कार्याणीति ॥९५॥

#### श्रब श्रवमशेष से तिथि के श्रानयन को कहते हैं।

हि. मा. — अवमशेष को ११०१७६ इससे गुणाकर ३४६२२२० इन से भाग देने से जो शेष रहता है वह तिथि होती है। अवमशेष से वर्त्तमान तिथि का भुक्तमान साधन करना चाहिये इति ॥६४॥

#### उपपत्ति ।

चान्द्रदिन से साधित भवम भीर जो अवमश्रेष होता है नहीं अवम भीर अवमश्रेष

सावन से भी होता है 'गोलाध्याय में सावनान्यवमानि स्युश्चान्द्रे भ्यः साधितानि चेत्' इत्यादि श्लोक की मिताक्षरा में भास्कराचार्योक्त से स्पष्ट है, अतः कल्प चान्द्र दिन में यदि कल्पा-वम पाते हैं तो गतचान्द्र दिन में क्या इस अनुपात से सशेष (शेष सहित) गतावम श्राता है उसका स्वरूप — कल्पावम × गतचांदि — गतावम — अवमशे कल्पचांदि — कल्पचांदि — कल्पचांदि — अवमशे कल्पचांदि — कल्पचांदि — अवमशे कल्पचांदि — गतावम, यहां यदि कल्पावम को भाज्य, कल्पचांदि — अवमशेष को ऋत्पक्षेप, कल्पचान्द्र दिन को हार कल्पना की जाय तब कुहक विधि से जो गत्पाक होता है वही गतचान्द्रदिन गतितिथ होती है । वहां श्राचार्य ने ऋत्पात्मक रूप क्षेप में स्थिर कुहक साधन किया है वही अवमशेषका गुग्गक पठित हैं। दृढ़ावम और दृढ़चान्द्र दिन का श्रानयन करते हैं क्लपवांदि — २५०६२४४०००० — ५०००० ×५०१६४१ — ४५०३६ — ४५७३६ — ४५७३६ — दृढ़ावमदि अतः चान्द्रदिन ही हर ५०००० ×६× ३५६२२० — ३५६२२० — दृढ़ावमंदि अतः चान्द्रदिन ही हर सिद्ध हुआ । गिगतागत अवमशेष को५००० ×६ इससे भाग देने से जो लब्ध होता है वह यहां अवमशेष समफ्रना चाहिये।

६१ क्लोक में अवशिष्ट जो अन्य प्रक्त हैं उन सबों के उत्तर अवमशेष से अहर्गण साधन कर उस अहर्गण से करना चाहिये। तथा ६२ क्लोक में जो प्रक्त हैं उन सबों के उत्तर कुटक विधि से स्पष्ट हैं; आचार्य ने भी इसी कारण से उनके उत्तर नहीं कहे हैं इति ॥६५॥

# इदानीं पुनः प्रश्नान्तरं तदुत्तरं चाह।

# भागकलाविकलेक्यं हृष्ट्वा विकलान्तरं च के शेषे। ऐक्यं द्विधाऽन्तराधिकहीनं च द्विभाजितं शेषे।।१६।।

सु भा-—भागविकलं भागशेषं । कलाविकलं कलाशेषम् । श्रनयोर्रेक्यं तथाऽनयोविकलयोः शेषयोरन्तरं न दृष्ट्वा शेषे ते द्वे के स्त इति प्रदनः । ग्रथ तदुत्तरमाहैक्यमिति ।

ऐक्यं द्विधा स्थाप्यमन्तरेगौकत्राधिकमन्यत्र हीनं कार्यं ततो द्विभाजितं दिलतं शेषे भवतः।

भ्रत्रोपपत्तिः । सङ्क्रमरागिरातेन स्फुटा ॥६६॥

वि. माः—भागविकलं (ग्रंशक्षेषं) कलाविकलं (कलाक्षेषं) एतयोरैक्यं (योगं) तथा विकलान्तरं (शेषयोरन्तरं) हष्ट्वा ते शेषे के स्त इति प्रकनः । ऐक्यं

(शेषयोर्योगं) स्थानद्वये स्थाप्यमेकत्रान्तरेग युतमन्यत्र हीनं कार्यं द्वाभ्यां भक्तं तदा शेषे भवेतामित्युत्तरम्।

#### श्रत्रोपपत्तिः ।

कल्प्यते ग्रंशशेषमानम्=य, कलाशेषमानम्=र, अनयोर्योगः=य+र =यो, तयोरेवान्तरम्=य-र=ग्रं तदा यो+ग्रं=(य+र)+(यो-ग्रं)=य+र+य-र=२ य :=  $\frac{$ यो-ग्रं $}{२}$ =य तथा यो-ग्रं=(य+र)-(य-र)=य+र -य+र=२ र :=  $\frac{$ यो-ग्रं=</u>=र, ग्रत ग्राचार्योक्तमुपपन्नम् ॥९६॥

श्रब पुनः प्रश्नान्तर श्रौर उसके उत्तर को कहते हैं।

हिः भाः — अंशशेष और कलाशेष का योग तथा उन्हीं दोनों शेषों का अन्तर जान कर वे दोनों शेष क्या हैं यह प्रश्न है। दोनों शेषों के योग को दो स्थानों में रख कर एक स्थान में अन्तर को जोड़ कर दूसरे स्थान में अन्तर को घटाकर आधा करने से दोनों शेषों के मान होते हैं, यह उत्तर है।

वृहद्राक्षिः = य, लघुराशिः = र । य+र = योगः = यो । य-र = अन्तरम् = अं, तब यो + अं = य+र + य -र = २ य अतः  $\frac{2i+3i}{2}$  = य, तथा यो - अं = य+र - (य-र) = य+र - य+र = २ र अतः  $\frac{2i-3i}{2}$  = र, यहां यदि अंशशेष = य, कलाशेष = र तब  $\frac{2i+3i}{2}$  = आचार्योक्त सूत्र उपपन्न होता है । आचार्य संक्रमण् गणित २ ''योगोऽन्तरयुत्तहीनो द्विहृत'' इत्यादि से पहले कह चुके हैं, यहां भी 'ऐक्यं द्विधाऽन्तराधिकः' हीनं' इत्यादि से उसी संक्रमण् की प्रक्रिया का पिष्टपेषण् करते हैं, सिद्धान्तशेखर में 'योगो- ऽन्तरेणोनयुतो द्विभक्तः कर्मोदितं संक्रमण्।स्थमेतत्' इससे श्रीपति तथा लीलावती में 'योगो- ऽन्तरेणोनयुतोर्श्वस्तौ राशी स्मृतं संक्रमण्।स्थमेतत्' इससे भास्कराचार्यं ने भी आचार्योक्त संक्रमण् कर्म के सद्दश ही संक्रमण् कर्म कहा है इति । १६६।।

इदानीं पुनः प्रश्नान्तरं तदुत्तरं चाह।

तद्वर्गान्तरमाद्ये तदन्तरं चान्तरोद्धृतयुतोनम् । वर्गान्तरं विभक्तं द्वाम्यां शेषे ततो द्युगराः ॥६७॥

पु. मा:- म्राचेऽनन्तरोक्ते प्रश्ने यदि तयोः शेषयोर्वर्गान्तरं तथा तयोरन्तरं

चोद्दिष्टं भवेत् तदा वर्गान्तरमन्तरेगोद्धतं लब्धं चान्तरेगा युतमूनं च कार्यम् । ततो द्वाभ्यां विभक्तं शेषे भवतः । ततो भागकलाशेषाभ्यां प्राग्वत् कुट्टकविधिनाऽहर्गगः साध्यः ।

अत्रोपपत्तिः । विषमकर्मगा स्फुटा ॥६७॥

वि. भा.—श्राद्ये (स्रनन्तरोक्ते) प्रश्ने यदि तयोः शेषयोर्वर्गान्तरं तथा तयोर-न्तरं चोहिष्टं भवेत् तदा वर्गान्तरमन्तरेण भक्तं लब्धं तयोर्योगो भवेत्, लब्धमन्त-रेण युतं हीनं च विधेयं द्वाभ्यां भक्तं तदा शेषे भवतः । ततोंऽशकला शेषाभ्यां पूर्ववत् कुदृकेनाऽहर्गणज्ञानं भवेदिति ।

#### अत्रोपपत्तिः।

कल्प्यते अंशशेषमानम्=य, कलाशेषमानम्=र, तदा  $\frac{u^3-v^3}{u-v}=u+v$   $=\frac{av_1-v_2}{av_1-v_2}=u_1\cdot u-v_2=v_2-v_3$   $=\frac{u^3-v_2}{v_3}=v_3$   $=v_3$   $=v_4$   $=v_4$ 

श्रव पुनः प्रश्नान्तर श्रीर उसके उत्तर को भी कहते हैं।

हि. मा.—यदि ग्रंशशेष ग्रीर कलाशेष का वर्गान्तर तथा उन्हीं दोनों का ग्रन्तर उद्दिष्ट है तब वर्गान्तर को ग्रन्तर से भाग देने से जो लब्ध हो उस में ग्रन्तर को युत ग्रीर हीन कर, दो से भाग देने से ग्रंशशेष ग्रीर कलाशेष होते हैं, इन दोनों शेषों से पूर्ववत् कृदक विधि से ग्रहगंग्रानयन सुगमता ही से होता है ॥६६॥

#### उपपत्ति ।

कल्पना करते हैं श्रंशशेषमान = य, कलाशेषमान = र, तब  $u^2-x^2=$  वर्गान्तर, u-x= श्रन्तर  $\frac{u^2-x^2}{u-x}=\frac{a\sqrt{n-x}}{u-x}=u+x=$  योग, श्रब योग श्रौर श्रन्तर ज्ञान से संक्रमण गिएत से य, श्रौर र विदित हो जायंगे, तब श्रंशशेष श्रौर कलाशेष ज्ञान से पूर्ववत् कुटक विधि से श्रहगंण ज्ञान सुगमता से हो जायगा । यहां श्राचार्य ने पूर्वोक्त विषम-कर्मोक्त प्रक्रिया लिख कर विषम कर्म का पिष्ट पेषण किया हैं ॥६७॥

# इदानीं शेषयोर्वर्गयोग-योगाभ्यां तयोरानयनमाह ।

कृतिसंयोगाद् द्विगुएगद्युतिवर्गं प्रोह्यमूलं यत् । तेन युतोनो योगो दलितः शेषे पृथगभीष्टे ॥६८॥

सु. भा.-एवं भवितुमहंति।

यदाऽनन्तरोक्ते प्रदेने शेषयोर्वगंयोगः शेषयोगश्चोद्दिष्टो भवेत् तदा द्विगुणात् कृतिसंयोगाच्छेषयोर्युतिवर्गं प्रोह्य शेषस्य यन्मूलं भवेत् तद्भागकलाशेष-योरन्तरं भवेत् तेन योगे। युतोनो दलितः पृथगभीष्टे भागकलयोः शेषे भवतः।

श्रत्रोपपत्तिः । अत्रप्रश्नानुसारेण । भाशे '+कशे '=वयु भाशे +कशे =यु ∴२ भाशे '+२ कशे '=२ वयु भाशे '+२ भाशे ×कशे +कशे '=यु ', द्वयोरन्तरेण भाशे '-२ भाशे ×कशे +कशे ' =(भाशे +कशे) '=वयु —यु ' ∴भाशे —कशे = √२ वयु —यु ' श्रवशिष्टोपपत्तिः सङ्क्रमणेन स्फुटा ।६८।।

वि. भा.—यदि पूर्वोक्तशेषयोर्वर्गयोगः शेषयोगश्चोद्दिष्टो भवेत्तदा शेषयोद्धिगुगाद्वर्गयोगाच्छेषयोर्यु तिवर्गं विशोध्य शेषस्य मूलं यत्तदंशकलाशेषयोरन्तरं
भवेत् तेन योगो युतोनोऽधितस्तदा पृथगभीष्टेंऽशकलयोः शेषे भवेतामिति ।।

#### भ्रत्रोपपत्ति :

कल्प्यते ग्रंशशेषप्रमाण्यस्य, कलाशेषमानम्सर, यैं + रैं = वर्गयोगः। य+ र= युतिः= यु, तदा २ वर्गयो = २ यैं + २ रैं, (u + र) रें = यु रें + २ य रें + रें ग्रतः २ वर्गयोः - यु रें = २ यें + २ रें - (u रें + २ य रें + २ रें - २ य रें + २

<sup>(</sup>१) एतस्योत्तरमन्यरीताऽपि भवति, यथा 'वर्गं योगस्य यद्राश्योर्युंतिवर्गं स्य चान्तः रिम' त्यादि भास्करोक्त सूत्रेण योग<sup>२</sup>—वर्गं यो  $= (u + \tau)^{2} - (u^{2} + \tau^{2}) = u^{2} + 2$  य.र  $+ \tau^{2} - u^{2} - \tau^{2} = 2$  य.र द्वाभ्यां गुणनेन २ (योग<sup>2</sup> - वर्गं यो) = ४ य.र ततश्चतुर्गुं णस्य घातस्य युतिवर्गं स्य चान्तरिम' त्यादि भास्करोक्त सूत्रेण योग<sup>2</sup> - ४घात =  $u^{2} + 2$  य.र  $+ \tau^{2} - 2$  य.र +

सूत्रमुपपन्नम् ॥९८॥

म्रब शेषद्वय के वर्गयोग म्रीर शेषद्वय के म्रानयन को कहते हैं।

हि. भा. — यदि पूर्वोक्त शेषद्वय का वर्गयोग श्रीर शेषयोग उहिष्ट हो तब ढिगुिगत वर्गयोग में से शेष योग वर्ग को घटा कर जो शेष हो उसका मूल दोनों शेषों का श्रन्तर होता हैं योग में इस अन्तर को युत श्रीर हीन कर श्राधा करने से दोनो शेषों के प्रमाग होते हैं ॥ ६ द।।

#### उपपत्ति ।

कल्पना करते हैं घंश शेषमान = य, कलाशेषमान = र,  $u^2 + v^2 = a^4u$ ो । u + v = uो v = uो, तब २ वर्ग यो  $v = u^2 + v^2 + v^2 = v^2 + v^2 + v^2 + v^2 = v^2 + v^$ 

# इदानीं पुनः प्रश्नान्तरस्योत्तरमाह।

# शेषवधाद् द्विकृतिगुर्गात् शेषान्तरवर्गं संयुतान्मूलम् । शेषान्तरोनयुक्तं दलितं शेषे पृथगभीष्टे ॥६६॥

सु. भाः — यदाऽनन्तरोक्ते प्रश्ने भागकलाशेषयोरन्तरं वधश्चेति द्वयमुद्दिष्टं भवेत् तदा द्विकृतिगुणात् । द्वयोर्या कृतिर्वर्गस्तेनार्थाद्वेदै ४ र्गुणाच्छेषवधाच्छेषान्त-रवर्गसंयु तान्मूलं ग्राह्यम् । तच्छेषान्तरेणोनं युक्तं दिलतं च पृथगभीष्टे भागक-लाशेषे भवतः ।

अत्रोपपत्तिः । अत्र प्रश्नानुसारेगा भाशे—कशे = ग्रं भाशे × कशे = व ∴ (भाशे—कशे)³ = भाशे³—२ भाशे × कशे + कशे³ = ग्रं⁴ ४ भाशे × कशे = ४ व द्वयोर्योगेन भाशे '+२ भाशे ×कशे +कशे '=(भाशे +कशे) '=ग्रं '+४ व मूलग्रहरोन, भाशे +कशे =  $\sqrt{\pi^3+8}$  व शेषवासना सङ्क्रमरोन स्फुटा ।।६६॥

वि भा- यदि स्रंशकलाशेषयोरन्तरं घातश्चेति द्वंयमुह्ष्टं भवेत्तदा द्विकृतिगुरणात् (चतुर्गुरणात्) शेषयोर्घाताच्छेषान्तरवर्गयुतान्मूलं यत्तच्छेषान्तरेण हीनं युक्तं तदर्षे पृथगभीष्टेंश्शकला शेषे भवेता मिति ।

#### म्रत्रोपपत्तिः ।

कल्प्यते ग्रंशशेषमानम् = य, कलाशेषमानम् = र शेषयोरन्तरं = य-र, चतुर्गुर्गा-घातः = ४ य.र = घा ग्रन्तरं + ४ घात = (य-र) + ४ य.र = यं - २ य.र + रं + ४ य.र = यं + २ य.र + र == (य+र) मूलग्रहरोन य + र = योग । ततः योग + ग्रन्तर २ = य, योग — अन्तर = र, बीजगिराते 'चतुर्गुर्गस्य घातस्य युतिवर्गस्य चा-न्तरिम' त्यादिना भास्कराचार्येण राज्योर्योगवधयोर्जानाद्राज्यन्तरज्ञानार्थं विधिः प्रदिश्तः, भ्रत्राऽऽचार्येण राज्योरन्तरवधयोर्ज्ञानाद्राशियोगञ्चानं कृतं वस्तु-तोऽनयोर्नं किश्चद् भेद इति । १९।।

#### श्रव पुनः प्रश्नान्तर के उत्तर को कहते हैं।

हि. भा — यदि पूर्वोक्त प्रश्न में अंश शेष भीर कलाशेष का भन्तर तथा उन्ही दोनों का चतुर्गृंश्यित घात उद्दिष्ट हो तब शेषान्तर वर्ग में चतुर्गृंश्यित घात को जोड़ कर जो मूल हो उस में से शेषान्तर को हीन और जोड़ कर भाषा करने से भ्रभीष्ट शेषद्वय का मान होता है इति ॥६०॥

#### उपपत्ति ।

कल्पना करते हैं। श्रंशशेष=य, कलाशेष=र, दोनों शेषों का श्रन्तर=श्रं=य

-र, चतुर्गुंशाघात=४ य.र=४ घा, श्रं + ४ घा =  $(u-t)^{2}+$  ४ य.र= $u^{2}-$ २ य.र + र  $^{2}+$  ४ य.र= $u^{2}+$ २ य.र+ र  $^{2}=$  (य+र)  $^{2}$  मूल लेने से य+ र=यो, तब  $\frac{1}{2}$  =  $\frac{1}{$ 

# इदानीं छात्रान् स्ववक्तव्यं कथयति ।

# हुन्मात्रममी प्रश्नाः प्रश्नानन्यान् सहस्रशः कुर्यात् । ग्रन्यैर्दत्तान् प्रश्नानुत्तचैवं स्राधयेत् करगौः ॥१००॥

सुः भाः—अमी पूर्वोक्ताः प्रश्नाश्छात्राणां हृन्मात्रं हृदये बोधार्थमात्रमेव मया लिखिताः। एतान् बुद्ध्वा बुद्धिमान् सहस्रशोऽन्यान् प्रश्नान् कुर्यात्। एवमु-त्त्रया पूर्वोत्त्या करणैः साधनप्रकारैश्चान्यैर्दत्तान् प्रश्नानिप बुद्धिमान् साधयेत् प्रश्नोत्तराणीति शेषः॥१००॥

ति. भा.—अमी पूर्वकथिताः प्रश्नाः, छात्राणां हृत्मात्रं (हृदये ज्ञानार्थमात्र-मेव) मया कथिताः । एतान् ज्ञात्वा प्रतिभावान् सहस्रज्ञोऽन्यान् प्रश्नान् कुर्यात् एवं पूर्वोत्तचा करणैः (साधन प्रकारैः) अन्यैर्दत्तान् प्रश्नान् प्रतिभावान् साधयेत् (तदुत्तराणि) इति ॥१००॥

#### श्रव छात्रों को श्रपना वक्तव्य कहते हैं।

हि. भा.—ये पूर्व कथित प्रश्न समूह छात्रों के हृदय में केवल बोध के लिये कहे है। इन प्रश्नों को मिघावी व्यक्ति समभ कर ग्रन्थ हजारों प्रश्नों को करे, पूर्वोक्त साधन प्रकारों से ग्रन्थ व्यक्ति से दिये हुए प्रश्नों को भी बुद्धिमान् साधन करे ग्रर्थात् उत्तर करे इति ॥१००॥

#### इदानीं प्रश्नप्रशंसामाह ।

# जन संसदि दैवविदां तेजो नाशयित भानुरिव भानाम् । कुट्टाकारप्रक्तैः पठितैरपि कि पुनः शतशः ॥१०१॥

सुः भाः—गर्णकः कुट्टाकारप्रश्नैः पठितैरपि जनसंसदि गर्णकजनसभायां दैविवदां ज्योतिर्विदां तेजो नाशयित भानां भानुरिव। पुनः सूत्रैः किं वक्तव्यमस्ति। प्रश्नपाठैरेव गर्णको ज्योतिर्विदां मध्ये भानुरिव भवति तत्सूत्रज्ञानेन पुनः किं भवतीति वर्णनातीतिमित्यर्थः॥१०१॥

वि. मा.—कुहाकारप्रक्नैः पठितैरिप गर्णको जनसंसदि (ज्योतिर्वित्स-भायां) ज्योतिर्विदां तेजो नाशयित यथा सूर्यस्याग्रे नक्षत्राणां तेजो नष्टं भवति, अर्थात्प्रक्नपठनमात्रेगौव गर्णको ज्योतिर्विदां संमुखे सूर्य इव भवति तदा पुनः शतशः सूत्रादिपाठेच कि भवतीति ॥१०१॥

#### भ्रब प्रश्न प्रशंसा करते हैं।

हि. भा.— कुटाकार प्रश्नों के पठनमात्र से ही गएक ज्यौतिषिकीसभा में ज्यौतिषिकों के तेज को नाशकरते हैं जैसे सूर्य भगवान् नक्षत्रों के तेज (प्रकाश) को नाश करते हैं। प्रयात् प्रश्नों के पठन मात्र ही से गएक ज्यौतिषिकों के मध्य में नक्षत्रों के मध्य में सूर्य की तरह होते हैं तब फिर उन सूत्रों के ज्ञान से क्या होगा प्रर्थात् उसका वर्णन नहीं हो सकता है इति ।। १०१ ।।

#### इदानीमध्यायोपसंहारमाह।

प्रतिसूत्रममी प्रश्नाः पठिताः सोह् शकेषु सूत्रेषु । स्रायात्र्यिकशतेन च कुहश्चाष्टादशोऽध्यायः ॥१०२॥

सु. भा.—प्रतिसूत्रं मयाऽमी प्रश्नाः पठिताः । एवं सोदाहररोषु सूत्रेषु भ्रायित्यधिकशतेनायं कुदृक नामाऽध्यायोऽष्टादशः।

मधुसूदनसूनुनोदितो यस्तिलकः श्रीपृथुनेह जिष्णुजोक्ते । हृदितं विनिधाय नूतनोऽयं रचितः कुदृविधौ सुधाकरेण ।।

इति श्री कृपालुदत्तसूनूसुधाकरद्विवेदि विरचिते ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त नूतन तिल के कुटकाध्यायोऽष्टादशः ॥१८॥

वि. भा. — मया प्रतिसूत्रममी पूर्वोक्ताः प्रश्नाः पठिताः । एवमुदाहरण-सिहतसूत्रेषु स्रायात्र्यिकशतेना (त्र्यिकशतप्रमिताऽऽर्यया) ऽयं कृहकनामाऽध्या-योऽष्टादशोस्तीति ।

इति श्री ब्राह्मस्फुटसिद्धान्ते कुहकाध्यायोऽष्टादशः समाप्तः ॥१८॥

#### भव भध्याय के उपसंहार को कहते हैं।

हि. भा.—हम ने पूर्वोक्त इन प्रश्नों को प्रति सूत्र में पठित किया है। एक सौ तीन आयिशों से कृदक नाम का यह अठारहवां अध्याय है इति ।।१०२॥

इति ब्राह्म स्फुट सिद्धान्त में अठारहवां (कृहक) अध्याय समाप्त हुआ ॥१६॥

# ब्राह्यस्फुटसिद्धान्तः

शंकुच्छायादिज्ञानाध्यायः

# ब्राह्मस्फुटसिद्धान्तः

#### म्रथ शंकुच्छायादिज्ञानाध्यायः

तत्र प्रथमं प्रश्नानाह।

हृष्ट्वा दिनार्षघटिका योऽर्कज्ञोऽक्षांशकान् विजानाति । उदयान्तरघटिकाभिर्ज्ञाताज्ज्ञेयं स तन्त्रज्ञः ॥१॥

सु. भा-चोऽर्कज्ञो दिनार्घघटिका दृष्ट्वाऽक्षांशकान् विजानाति । एकग्र-हस्योदयाद्यावतीभिर्घटिकाभिरन्यो ग्रह उदेति ता उदयान्तरघटिकास्ताभिद्वंयोग्र ह-योर्गध्ये यो ज्ञातो ग्रहोस्ति तस्माज्ज्ञातादपरं ज्ञेयं ग्रहं वा यो विजानाति स एव तन्त्रज्ञः सिद्धान्तविद्धाविदित्यहं मन्य इति शेषः ॥१॥

वि. भा- योऽकंज्ञो दिनाधंघिटका दृष्ट्वाऽक्षांशकान् विजानाति, उदया-न्तरघिटकाभिः (एकग्रह्स्योदयादन्यो ग्रहो यावतीभिषंटिकाभिष्देति ता उदयान्तर घटिकास्ताभिः) ग्रहयोर्मध्ये यो ज्ञातग्रहो (विदितग्रहः) ऽस्ति तस्मादपरं ज्ञेयं ग्रहं वा यो विजानाति स तन्त्रज्ञो (सिद्धान्त शास्त्रवेत्ता) उस्तीति।।१।।

> भव शङ्कुच्छायादि ज्ञानाघ्याय प्रारम्भ किया जाता है। उसमें पहले प्रश्नों को कहते हैं।

हि. भा.—जो रिव के जाता दिनाषं घटी को देख कर ग्रक्षांश को जानते हैं प्रणीत् जो व्यक्ति रिव ग्रीर दिनार्घ घटी से श्रक्षांश को जानते हैं। वा उदयान्तर घटी (एक ग्रह के उदय से दूसरे ग्रह जितनी घटी में उदित होते हैं वे उदयान्तर घटी हैं) से दोनों ग्रहों में जो विदित ग्रह है उससे ज्ञेय (ज्ञातव्य) ग्रह को जानते हैं वे सिद्धान्त विद्या के पण्डित हैं इति ॥१॥

> इंदानीमन्यान् प्रश्नानाह । ग्रस्तान्तरघटिकाभियीं ज्ञाताज्ज्ञेयमानयति तस्मात् । मध्यगीत युगभगगानानयति ततः स तन्त्रज्ञः ॥२॥

सु. भाः —एकग्रहस्यास्तानन्तरमन्यो ग्रहो यावतीभिर्घटिकाभिरस्तं याति ता ग्रस्तान्तरघटिकास्ताभिर्ज्ञाताच्चैकस्माद्ग्रहादन्यं ज्ञेयं ग्रहं य ग्रानयति । तस्मात् स्पष्टज्ञे यग्रहात् मध्यमर्गति मध्यमज्ञे यं ग्रहं य ग्रानयति । ततस्तस्मान्मध्यमज्ञे या- द्युगभगणान् तस्य य ग्रानयति स एव तन्त्रज्ञ इति ॥२॥

वि. मा- एकग्रहस्यास्तानन्तरं यावतीभिर्घटिकाभिर्द्वितीयग्रहोऽस्तं याति ता ग्रस्तान्तरघटिकास्ताभिर्ज्ञातादेकस्माद् ग्रहाज्ज्ञेयं (ज्ञातव्यं) द्वितीयग्रहं य ग्रानयित । वा तस्मात् स्पष्टज्ञेयग्रहात् ज्ञेयं मध्यमग्रहं य ग्रानयित, तस्मान्मध्य-मज्ञेयग्रहात्तस्य युगभगगान् य आनयित स तन्त्रज्ञोऽस्तीति ॥२॥

#### ग्रब ग्रन्य प्रश्नों को कहते हैं।

हि. भा- जो व्यक्ति ग्रस्तान्तर घटी (एक ग्रह के ग्रस्त के बाद द्वितीय ग्रह जितनी घटी में ग्रस्त होता है वह ग्रस्तान्तर घटी है) से विदित एक ग्रह से श्रेय (ज्ञातव्य) द्वितीय ग्रह को लाते हैं ग्रर्थात् जानते हैं। वा उस स्पष्टश्नेय ग्रह से मध्यम ग्रह को जानते हैं वा उस मध्यम ग्रह से उसके युग भगए। को जानते हैं वे सिद्धान्त विद्या के पण्डित हैं इति ॥२॥

#### इदानीमन्यान् प्रश्नानाह ।

# म्रानयति यस्तमोरविशशाङ्कमानानि दीपकशिखौच्च्यात् । शङ्कुतलान्तरभूमिज्ञाने छायां स तन्त्रज्ञः ॥३॥

सुः माः—यो राहुरिवचन्द्रबिम्बमानान्यानयित । दीपकशिखौच्च्यात् प्रदीपोच्छितेः शङ्कुतलान्तरभूमिज्ञाने प्रदीपतलाच्छङ्कुमूलान्तरं शङ्कुतला-न्तरम् । तदेव भूमिरिति शङ्कुतलान्तरभूमिस्तस्या ज्ञाने यश्छायामानयित स एव तन्त्रज्ञः ॥३॥

वि. मा. — यस्तमोरिवशशाङ्कमानानि (राहुरिवचन्द्रिबम्बमानानि) आन-यति, प्रदीपोच्छ्रितेः शङ्कुतलान्तरभूमिज्ञाने (प्रदीपतलाच्छङ्कु मूलं यावच्छंकु-तलान्तरं तदेव भूमिस्तस्याज्ञाने) छायामानयित स तन्त्रज्ञोऽस्तीति ॥३॥

#### अब अन्य प्रश्नों को कहते हैं।

हि. भा- जो व्यक्ति राहु-रिव और चन्द्र के विम्बमान को जानते हैं। दीपशिखी-च्च्य (दीप की ऊंचाई) से दीपतल और शङ्क मूल के अन्तर को जानते हैं। शंकुतलान्तर (दीपतल और शङ्कु मूल के अन्तर) से छाया को जानते हैं वे सिद्धान्त विद्या के पण्डित हैं इति ॥३॥

## इदानीमन्यं प्रश्नमाह।

# इष्टगृहौच्च्यज्ञो यस्तदन्तरज्ञो निरीक्षते तु जले । गृहभित्त्यग्रं दर्शयति दर्पग्गे वा स तन्त्रज्ञः ॥४॥

सु भा — य इष्टप्रहौच्च्यज्ञ म्रात्मस्थानात् तस्य गृहस्यान्तरज्ञश्च जले गृहभित्त्यग्रं निरीक्षते वा दर्पणे तदग्रं दर्भयति स एव तन्त्रज्ञः ॥४॥

हिः भाः—य इंष्टगृहौच्च्यज्ञाता स्वस्थानात्तस्य गृहस्यान्तरज्ञाता च जले गृहभित्त्यग्रं निरीक्षते वा दर्पेगे तदग्रं दर्शयति स तन्त्रज्ञोऽस्तीति ॥४॥

#### श्रब श्रन्य प्रश्न को कहते हैं।

हि. भा.—जो इष्टगृह की ऊंचाई तथा श्रपने स्थान से उस गृह के श्रन्तर का भी ज्ञाता जल में उस गृह की भीति के भग्न को देखता है वा दर्पण में उसके श्रग्न को दिखलाता है वह तन्त्रज्ञ हैं।।४।।

# इदानीमन्यं प्रश्नमाह । छायाद्वितीयभाग्रान्तर विज्ञानेन वेत्ति दीपौच्च्यम् । शङ्कुच्छायाज्ञो वा भूमेश्छायां स तन्त्रज्ञः ॥५॥

सु. भा. —यः शङ्कुछायाज्ञः (शङ्कोर्ये द्वे छाये ते जानातीति शङ्कुछायाज्ञः) छायाद्वितीयभाग्रान्तरविज्ञानेन छायायाः प्रथमच्छायाया द्वितीय भाग्रस्य द्वितीय-च्छायाया यदन्तरं तस्य विज्ञानेन दीपौच्च्यं वेत्ति वा भूमेर्भू मिमानाच्छायां वेत्ति स एव तन्त्रज्ञः ॥५॥

वि. मा.—यः शङ्कुच्छायाज्ञः (शङ्कोर्ये छाये ते जानातीति शङ्कुच्छा-याज्ञः) प्रथम छायाया द्वितीयच्छायायाश्च यदन्तरं तिद्वज्ञानेन दीपौच्च्यं जानाति वा भूमिमानात् छायां जानाति स तन्त्रज्ञोऽस्तीति ॥५॥

#### भव अन्य प्रश्न को कहते हैं।

हि. भा—जो शङ्कु के दो छायाओं के ज्ञाता हैं। तथा जो प्रथम छाया और द्वितीय छाया के अन्तर को जानकर दौपौच्च्य को जानते हैं वा भूमिमान से छाया को जानते हैं वे सिद्धान्त विद्या के पण्डित हैं।।।।।

#### इदानीमन्यं प्रश्नमाह।

गृहपुरुषान्तरसलिले यो दृष्ट्वाग्रं गृहस्य भूमिज्ञः । वेत्ति गृहौच्च्यं दृष्ट्वा तैलस्यं वा स तन्त्रज्ञः ॥६॥ सु. मा.—(गृहपुरुषान्तरसलिले यो दृष्ट्वाऽग्रं गृहस्य भूमिज्ञः। वेत्ति गृहौच्च्यं दृष्ट्वा तैलस्यं वा स तन्त्रज्ञः॥६॥

पुरुषो द्रष्टा ग्रहपुरुषयोरन्तरे मध्ये स्थापितं यत् सिललं जलं तिस्मन् गृहस्याग्रं दृष्ट्वा यो भूमिज्ञो जले यत्र गृहाग्रस्य प्रतिबिंब तस्माद्गृहान्तरं नरान्तरं च यत् तद्भूमिपदेनोच्यन्ते तज्ज्ञो गृहौच्च्यं वेत्ति वा तैलस्थं गृहाग्रं दृष्ट्वायो भूमिज्ञो गृहौच्च्यं वेत्ति स एव तन्त्रज्ञ इत्यहं मन्य इति ॥६॥

वि. मा. —गृहपुरुषयोरन्तरे स्थापितं यज्जलं तस्मिन् गृहस्याग्रं हष्ट्वा यो भूमिज्ञो (जले प्रतिबिम्बितस्य गृहाग्रस्य गृहस्य च यदन्तरं नरांतरं च यत्तदभूमि- शब्देन कथ्यते तज्ज्ञाता) गृहौच्च्यं जानाति, वा तैलस्यं गृहाग्रं हष्ट्वा यो भूमिज्ञो गृहौच्च्यं जानाति स तन्त्रज्ञोऽस्तीति अत्र पुरुषशब्देन द्रष्टा ज्ञेयः) ॥६॥

#### श्रव श्रन्य प्रश्नों को कहते हैं।

हि मा — एह और पुरुष (द्रष्टा) के अन्तर में रखे हुए जल में गृह के अग्र को देखकर जो जल में प्रतिबिम्बित गृहाग्र और गृह के अन्तर और नरान्तर को जानने वाले गृहीच्च्य को जानते हैं, वा जो जल में प्रतिबिम्बत गृहाग्र और गृह के अन्तर और नरान्तर को जानते हैं, वा जो जल में प्रतिबिम्बत गृहाग्र और गृह के अन्तर और नरान्तर को जानने वाले तेलस्थित गृहाग्र को देखकर गृहीच्च्य (गृह की ऊंचाई) को जानते हैं वे सिदान्त विद्या के जाता है इति ॥६॥

## इदानीमन्यं प्रश्नमाह।

# वीक्य गृहाग्रं सलिले प्रसार्य सलिलं पुनः स्वभूज्ञाने । भ्रानयति जलाद्भूमि गृहस्य वौच्च्यं स तन्त्रज्ञः ॥७॥

सु. मा.—सिलले गृहाग्रं वीक्ष्य सिललं च तिस्मन्नेव मार्गे स्थानान्तरे प्रसार्य पुनस्तिस्मिन् सिलले गृहाग्रं वीक्ष्यात्मसिललान्तरे ये वेषद्वये ते स्वभूसज्ञे तयोज्ञीने जलादगृहस्यान्तरं भूमि य ग्रानयित वा गृहस्यौच्च्यं य ग्रानयित स एव तन्त्रज्ञ इत्यहं मन्ये ॥७॥

वि. मा. जले गृहस्याग्रं हष्ट्वा जलं च तस्मिन्ने व मागं स्थानान्तरे प्रसार्थं पुनस्तस्मिन् जले गृहस्याग्रं हष्ट्वा स्वस्य जलस्य चान्तरे ये वेधस्थानद्वये ते स्वभू-संज्ञके तयोर्ज्ञाने गृहजलयोरन्तरभूमिं य ग्रानयित वा गृहस्यौच्च्यं य आनयित स तन्त्रज्ञोऽस्तीति ॥७॥

अब अन्य प्रश्न को कहते हैं। हिः मा- जल में गृह के अग्र को देखकर जलको उसी मार्ग में स्थानान्तर (दूसरे स्थान) में फैलाकर फिर उसी जल में गृह के अग्र को देखकर अपने और जल के अन्तर में जो बेधद्वय है उसके ज्ञान से गृह और जल की अन्तरभूमि को जानते हैं वा गृहीच्च्य (गृह की ऊंचाई) को जानते हैं वे सिद्धान्त विद्या के पण्डित हैं इति ॥७॥

#### इदानीं प्रश्नान्तरमाह।

# ज्ञातैरछायापुरुषैविज्ञाते तोयकुड्ययोविवरे । कुड्येऽर्कतेजसो यो वेत्त्यारूढि स तन्त्रज्ञः ॥८॥

सु. भा. — तोयकुडचयोर्जलिमत्त्योविवरेऽन्तरे विज्ञाते छायापुरुषैर्जातैः पुरुषस्योच्छित्या जले तच्छायामानेन च य ग्रारूढि भित्त्युच्छिति वेत्ति वाऽर्कतेज-सोऽर्कप्रकाशतरुखयादिज्ञानं विज्ञायारूढि वेत्ति स एव तन्त्रज्ञ इत्यहं मन्ये ॥८॥

निः भाः—तोयकुड्ययोः (जलिभत्त्योः) विवरे (म्रन्तरे) विज्ञाते छायापुरुषे-ज्ञातैः (पुरुषस्योच्छ्रित्या जले तच्छायाप्रमारोन च य म्रारुढ़ि (भित्त्युच्छ्रिति) जानाति, वा कुड्ये (भित्तौ) रवेः प्रकाशतछायादिज्ञानं विज्ञाय भित्युच्छ्रिति जानाति स तन्त्रज्ञोऽस्तीति ॥८॥

#### श्रव प्रश्नान्तर को कहते हैं।

हि. भा. — जल और भित्ति (दिवाल) के भ्रन्तर को जानकर पुरुषी ऊंचाई भीर जल में उसके छायाप्रमाण से जो व्यक्ति भित्ति की ऊंचाई को जानते हैं वा भित्ति में रिव के प्रकाश से छायादिशान जानकर भित्ति की उंचाई को जानते हैं वे सिद्धान्त विद्या के शासा है इति ।। व।।

# श्रथ प्रश्नानामुत्तराणि । प्रथमं प्रथमप्रश्नस्योत्तरमाह ।

इष्टविवसार्भघटिका पञ्चस्त्रान्तरप्रागाः। तद्दिवसचरप्रागास्तैरक्षं साधयेत् प्राग्वत् ॥६॥

सु. भा. —(इष्टदिवसार्धघटिकापश्वदशान्तरघटीभवाः प्रागाः । तद्दिवसचरप्रागास्तैरक्षं साधवेत् प्राग्वत् ॥१॥

पश्चदशेष्टदिनार्धान्तरघटोनां ये प्राणास्ते गोलयुक्त्या चरप्राणा भवन्ति । तैश्चरासुभिरकीत् क्रान्तिज्ञानेन च प्राग्वत् त्रिप्रश्नोत्तराध्यायविधिना गणकोऽक्ष-मक्षांशान् साधयेत् ॥६॥ नि. भा.—इष्टिदिनार्धघटी पञ्चदशघट्योरन्तरोत्पन्ना ये प्राग्गाः (ग्रसवः) ते चरासवो भवन्ति, तैः (चरासुभिः) पूर्ववत् (त्रिप्रश्नोत्तराध्याय विधिना) ग्रक्षं (ग्रक्षांशान्) साघयेद् गग्णक इति ॥६॥

#### श्रत्रोपपत्तः।

क्षितिजाहोरात्रवृत्तयोः सम्पाताद्याम्योत्तराहोरात्रवृत्तयोः सम्पातं याविद्नार्धम् । उन्मण्डलाहोरात्रवृत्तयोः सम्पाताद्याम्योत्तरवृत्तयोः सम्पाताद्याव्यपञ्चत्रया घटिकाः । अनयोरन्तरं क्षितिजाहोरात्रवृत्तयोः सम्पातादुन्मण्डलाहोरात्रवृत्तयोः सम्पातं यावच्चरार्घासवः = दिनार्धघटी ० पञ्चदशघटी, अत्र चरार्घासुरव्योज्ञनिनाक्षांशज्ञानं क्रियते । रिवज्ञानेन जिज्याः रिवभुजज्या = क्रांज्या,
तित्र क्रान्तिः, क्रान्तिज्ञानं जातम्, ततः √ित्र क्रांज्या = द्युः
सर्वर्याभ् = क्रुज्या, ततः क्रुज्या × १२ व्यलभा, तथा √क्रुच्या + क्रांज्या वर्ष्या म्हांज्या = अग्रा । तदा क्रुज्याः त्रि क्रांज्या अस्याश्चापम् = अक्षांशाः, एतेनोत्तरं जातमिति ।

# श्रव प्रश्नों के उत्तरों को कहते हैं। पहले प्रथम प्रश्न के उत्तर को कहते हैं।

हि. मा.—इष्ट दिनार्घं घटी और पञ्चदश (१५) घटी का अन्तर जनित जो असु है वह चरार्थासु है उससे पूर्ववत् (त्रिप्रश्नोत्तराध्यायोक्त विधि से) अक्षांश साधन करना चाहिए इति ॥६॥

#### उपपत्ति ।

यहां किसी इष्ट दिन में रिव और चरासु विदित है, इनसे श्रक्षांश ज्ञान करते हैं। क्षितिजाहोरात्रवृत्त के सम्पात से याम्योत्तरवृत्ताहोरात्रवृत्त के सम्पात पर्यन्त दिनार्थ घटीहै, तथा उन्मण्डलाहोरात्रवृत्त के सम्पात से याम्योत्तरवृत्ताहोरात्रवृत्त की सम्पात पर्यन्त पश्चदश (पन्द्रह) घटी है, इन दोनों का श्रन्तर करने से क्षितिजवृत्त और उन्मण्डल के अन्तर में झहोरात्र वृत्तीय चाप चरघटी है, यह विदित है, रिव के ज्ञान से जिज्या. रिव मुज्या क्रांज्या, इसका विप कान्ति, क्रान्ति ज्ञान से √ित्र क्रांज्या चयुज्या च्युज्या च्युज्या च्युज्या = युज्या = युज्या = युज्या = युज्या = युज्या वित्र कृज्या. १२ कृज्या, क्रांज्या पलमा, तथा √कृज्या न क्रांज्या अतः व्यापा वित्र व्यापा वित्र वित्

= अक्षज्या, इसका चाप = अक्षांश, इससे अभीष्ट सिद्धि हो गई इति ।।६।। इदानीमुदयान्तरघटिकाभिस्तथास्तान्तरघटिकाभिरित्यादि-प्रश्नद्वयस्योत्तरमाह ।

> ज्ञातज्ञेयग्रहयोरुवयान्तरनाड़िकाभिरधिकोनः । उदयैर्जातो ज्ञाताज्ज्ञेयः प्रागपरयोर्ज्ञेयः ॥१०॥ ज्ञातः सभार्षं उदयेरस्तान्तरनाडिकाभिरधिकोनः । ज्ञातात्पूर्वापरयोर्ज्ञेयो भार्घोनके ज्ञेयः ॥११॥

सु. भा.— ज्ञातज्ञेयग्रहयोर्या उदयान्तर घटिकास्ताभिरुदयैः स्वदेशोदयैर्जातात् प्रागपरयोः पूर्वपश्चिमयोर्जातोऽधिकोनः कार्यः । यदि ज्ञे यो ज्ञातात् पूर्वदिश्यर्थादग्रे तदा ज्ञातमकं प्रकल्प्य स्वदेशोदयैरुदयान्तरघटीमितेष्टे क्रमलग्नं ज्ञातात् पश्चिमस्थे च ज्ञेये विपरीतलग्नं यत् स एव स्फुटो ज्ञेयो ग्रहो ज्ञेयः । श्रस्तान्तरघटीज्ञाने च ज्ञातः सभाषोंऽर्कः कल्प्यः श्रस्तान्तरघटिका इष्टघटिकाः । अत्रापि ज्ञातात् पूर्वेऽग्रे ज्ञेये क्रमलग्नं पश्चिमस्थे च विपरीतलग्नं यत् तस्मिन् भार्थोनके सति ज्ञेयो ग्रहो भवतीति ।

श्रत्र वासना लग्नानयनवत् सुगमा ॥१०-११॥

विः भा-- ज्ञातज्ञे यग्रह्योख्दयान्तरघटिकाभिः स्वदेशीयोदयैर्जातात् पूर्वदिशि स्थिते ज्ञेये तदा ज्ञातं रिवं प्रकल्प्य स्वदेशीयोदयैः, उदयान्तघटीतुल्ये इष्टकाले
कमलग्नं यद् भवेत् तथा ज्ञातात् पश्चिमदिशि स्थिते ज्ञेये विपरीतलग्नं यद् भवेत्
स एव स्फुटो ज्ञेयग्रहो वाध्यः। अस्तान्तरघटिकाज्ञाने ज्ञातः षड्राशियुतः कार्यस्तं
रिवं प्रकल्प्य, अस्तान्तरघटिकामिष्टकालं प्रकल्प्य ज्ञातात् पूर्वे (अग्रे) ज्ञेषे
कमलग्नं साध्यं ज्ञातात् पश्चिमस्थे ज्ञेये विपरीतलग्नं साध्यं तत्र षड्राशिहीने सित
स्फुटो ज्ञेयग्रहो भवतीति ॥

# . श्रत्रोपपत्तिर्लंग्नानयनवद् बाध्येति ॥१०॥

भ्रव 'उदयान्तर घटिकाभिः' तथा 'भ्रस्तान्तर घटिकाभिः' इत्यादि प्रश्नद्वय के उत्तर को कहते हैं।

हि. भा.—ज्ञात ग्रह से ज्ञेय ग्रह पूर्व (आगे) में हो तब ज्ञात ग्रह को रिव कल्पना कर तथा ज्ञात ग्रह ग्रोर ज्ञेय ग्रह का उदयान्तर घटी को इष्ट काल मानकर स्वदेशीय उदय से क्रमलग्न जो हो वही स्फुट ज्ञेय ग्रह होता है, तथा ज्ञात ग्रह से पश्चिम में हो तब विपरीत लग्न जो होता है वही स्फुट ज्ञेय ग्रह होते हैं। ग्रस्तान्तर घटी के विदित रहने से ज्ञात ग्रह में छ: राशि जोड़कर जो हो उसको रिव कल्पना कर ग्रस्तान्तर घटी को इष्टकाल मानकर ज्ञात ग्रह से पूर्व (ग्रागे) में ज्ञेय ग्रह के रहने से क्रम लग्न जो हो उसमें छ: राशि घटाने से

स्फुट ज्ञेय ग्रह होते हैं । तथा ज्ञात ग्रह से पश्चिम में ज्ञेय ग्रह के रहने से विपरीत लग्न जो हो उसमें छ: राशि घटाने से स्फुट ज्ञेय ग्रह होते हैं इति ।।

उपपत्ति लग्नानयनवत् समभनी चाहिये ॥१०-११॥

इदानीं तस्मान्मध्यर्गीत ततो युगभगगान् साधयित य इत्यस्योत्तरमाह । ज्ञातं कृत्वा मध्यं भूयोऽन्यदिने तदन्तरं भुक्तिः । त्रैराशिकेन भुक्तघा कल्पग्रहमण्डलानयनम् ॥ १२ ॥

सुः भाः — एवं स्फुटज्ञेयग्रहात् स्पष्टीकरण्विलोमविधिना मध्यं ग्रहं ज्ञातं कृत्वा भूयः पुनरन्यदिने च मध्यं ग्रहं ज्ञातं कृत्वा तदन्तरं तयोरन्तरं कार्यमेवं ग्रहस्य मध्यमा भुक्तिभवेत्। ततो भुक्त्या त्रैराशिकेनैकस्मिन् दिने मध्यमा गतिस्तदा कल्पकृदिनैः किमिति त्रैराशिकेन कल्पग्रहभगणानयनं सुगममिति ॥१२॥

वि. माः—स्पष्टज्ञेयग्रहात् 'स्फुटं ग्रहं मध्यखगं प्रकल्प्ये' त्यादि भास्करोक्त-सूत्रेण स्पष्टीकरणविलोमिक्रयया मध्यमं ग्रहं संसाध्य पुनरन्यस्मिन् दिने तेनैव विधिना मध्यमग्रहसाधनं कार्यं तयोरन्तरमेकदिनजा ग्रहस्य मध्यमा गतिभैवेत् । ततोऽनुपातेना 'यद्येकस्मिन् दिने इयं मध्यमा गतिस्तदा कल्पकुदिनैः किम्' न कल्प-ग्रहभगणमानानयनं स्फुटमेवेति ॥१२॥

अत्रोपपत्तिर्विज्ञानभाष्यिलिखितस दृश्येवेति ॥१२॥

श्रव 'तस्मान्मघ्यर्गीत ततोयुत भगगामानयित यः' इसके उत्तर को कहते हैं।

हि. भा..—स्पष्ट ज्ञेयग्रह से 'स्फुटं ग्रहं मध्यखगं प्रकल्प्य' इत्यादि भास्करोक्त सूत्र से स्पष्टीकरण की विलोम विधि से मध्यम ग्रह ज्ञान करके पुनः ग्रन्य दिन में उसी विधि से मध्यम ग्रह ज्ञान करना चाहिये, दोनों मध्यम ग्रहों के ग्रन्तर एक दिन सम्बन्धी ग्रह की मध्यम गित हुई, तब इस मध्यम गित से अनुपात 'यदि एक दिन में यह मध्यम गित पाते हैं तो कल्प कृदिन में क्या' से कल्प ग्रह भगगानयन स्फुट ही है इति ।।१२।।

इदानीमानयति यस्तमोरिवशशाङ्कमानानीत्यस्योत्तरमाह । स्थित्यर्घाद्विपरीतं तमः प्रमागं स्फुटं ग्रहगो । मानोदयाद्ववीन्द्वोर्घटिकावयवेन भोदयतः ॥१३॥

सु. भा. – स्थित्यर्घाद्विपरीतं विपरीतविधिना ग्रह्गो स्फुटं तमः प्रमाणं भूभाबिम्बप्रमाणं भवति । भ्रत्रैतदुक्तं भवति । स्थित्यर्धं रविचन्द्रगत्यन्तरकलागुणं षष्टिहृतं स्थित्यर्धंकला भवन्ति । तद्वर्गाच्छरवर्गं युतान्मूलं मानेवयार्धकला-

स्ताभ्यश्चन्द्रबिम्बार्षं प्रोह्य भूभाबिम्बार्धम् । एवं विपरीतक्रमेण ज्ञेयमिति । मानोदयाद् घटिकावयवेन भोदयतः स्वदेशराश्युदयतो रवीन्द्वोबिम्बमाने ज्ञेये । यदा प्राक्षितिजे बिम्बोध्वंपालिदर्शनं जातं ततोऽनन्तरं यावता घटिकावयवेनाधः पालिदर्शनं जातं स घटिकावयवो वेधेन ज्ञेयः । ततः स्वदेशराश्युदयघटीभिरष्टा-दशशतकलास्तदा वेधोपलब्धघटिकावयवेन किमेवं बिम्बकला रवेश्चन्द्रस्य च भवन्तीति । रविबिम्बस्योध्वंधरप्रदेशौ यत्र क्रान्तिवृत्ते लग्नौ तयोख्दयदर्शनेनैवैवं बिम्बकला भवन्ति । चन्द्रश्च विमण्डले स्रमित तेनैवं चन्द्रबिम्बकलाः स्वल्पान्त-राद्भवन्ति ।।१२।।

वि. भा.—स्थित्यर्षाद्विपरीतविधिना ग्रहणे स्फुटं तमः प्रमाणं (भ्भाबिम्ब-मानं) भवत्यर्थात् 'षष्ट्या विभाजिता स्थितिविभर्ददलनाड्कि' त्याद्याचार्योक्त सूत्रेणा 'स्थित्यर्धनाड़ी गुणिता स्वभुक्तिरि' त्यादि भास्करोक्तसूत्रेण वा स्थित्यर्धकलाप्रमाणं विदितं भवेत्तद्वगंयुताच्छरवर्गान्मूलं मानेक्यार्धकला भवन्ति, तत्र चन्द्रविम्बार्धस्य विशोधनेन भूभाबिम्बार्धं भवेदिति, भोदयतः (स्वदेशीय-राश्युदयात्)मानोदयाद् घटिकावयवेन रिवचन्द्रयोविम्बमाने ज्ञेये, ग्रर्थात् पूर्वक्षितिजे यदा बिम्बस्योध्वंपालिदर्शनं भवेत्तस्माद्यावता घटिकावयवेन बिम्बस्याधः पालिदर्शनं भवेत्सघटिकावययो वेवेन ज्ञातव्यः। ततो

१८०० × वेघोपलघ्घ घटिकावयय ऽनुपातेनानेन रिवचन्द्रयोबिम्बकला भवन्तीति, स्वदेशीयराश्युदयघ रिविबम्बस्योघ्विघरप्रदेशौ यत्र क्रान्तिवृत्ते संलग्नौ तयोख्दयदर्शने नैवं बिम्बकला भवन्ति । परन्तु चन्द्रस्तु विमण्डले भ्रमगां करोति तस्मादेव स्वल्पान्तराच्चन्द्रबिम्ब-कला भवन्ति ॥१३॥

भ्रबं 'भ्रानयति यस्तमो रविशशाङ्कमानानि' इस प्रश्न के उत्तर को कहते हैं।

हि. भा.— स्थित्यर्घ से विपरीत विधि से श्रर्थात् जिस विधि से स्थित्यर्घ सोधन होता है उससे विपरीत विधि से ग्रहणा में स्फुट भूभाबिम्ब ज्ञान होता है, श्रर्थात् 'षण्ट्या विभाजिता स्थितिविमदंदलनाड़िका' इत्यादि आचादि आचार्योक्त सूत्र से मानैक्यार्घ कला श्राती है उसमें से चन्द्र बिम्बार्घ को घटाने से भूभा बिम्बार्घ होता है। रिव और चन्द्र के बिम्बोदय घटिकावयव से रिव और चन्द्र का बिम्बमान जानना चाहिए श्रर्थात् पूर्विक्षितिज में जब बिम्बकी ऊर्घ्वणाली देखने में ग्रावे उसके बाद जितने घटिकावय में बिम्ब के ग्रयः पाली का दर्शन हो उस घटिकावयव को वेध से जानकर अनुपात

१८०० × वेघोपलब्ध घटिका वयव , से रिव और चन्द्र की बिम्ब कला होती है। रिव स्वदेशीय राज्युदबघ बिम्ब का ऊर्घ्व प्रदेश और अघः प्रदेश और क्रान्तिवृत्त में जहां लगे हुए हैं उनके देखने ही

से इस तरह बिम्बकला होती है। परन्तु चन्द्र विमण्डल में रहते हैं इसलिये चन्द्र बिम्बकला इस तरह स्वल्पान्तर से होती है इंति ।।१३॥

इदानीं दीपखौच्च्याच्छङ्कुतलान्तरभूमिज्ञाने छायां य स्रानयतीत्य-स्योत्तरमाह ।

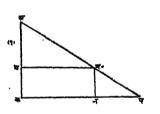
# दीपतलशङ्कुतलयोरन्तरमिष्टप्रमाग्गशङ्कुगुग्गम् । दीपशिखौच्च्याच्छङ्कुंविशोध्य शेषोद्धृतं छाया ॥१४॥

सु. भा.--गिताध्यायस्य ५३ आर्येयमतस्तत्रैव स्फुटा ॥१४॥

वि. मा ---- दीपतलशङ्कुतलयोरन्तरं इष्टशङ्कुगुगां दीपशिखौच्च्य शङ्क्व-न्तरेगा भक्तं तदा छाया भवेदिति ॥

#### भ्रत्रोपपत्तिः।

श्चक = दीपशिखौच्च्यम् । क == दीपतलम् । मन = शङ्कुः । न = शङ्कु-तलम् । नप = छाया । नक = दीपतलशङ्कुतलयोरन्तरम् = मश, म बिन्दुतः कप-



रेखायाः समानान्तरा मशरेखाऽस्ति । श्रक-कश =श्रक-मन = अश = दीपशिखोच्च्य-शङ्कु । तदा श्रशम, मनप त्रिभुजयोः साजात्यादनुपातः मश ×मन = नप = दीपशङ्कुतलान्तर × शङ्कु श्रश दीपशिखोच्च्य - शङ्कु = छाया। सिद्धान्तशेखरे "विशङ्कुना दीपशिखोच्छ्येग् शङ्कावभीष्टाङ्गुलके विभक्ते। प्रदीप-शङ्कवन्तरमाननिघ्ने प्रभाप्रमाणं प्रवदन्ति सन्तः"

श्रीपत्युक्तमिदं लीलावत्यां 'शङ्कुः प्रदीपतलशङ्कुतलान्तरघ्नश्छाया भवेद्विनरदीप शिखोच्च्यभक्तः' भास्करोक्तमिदं च स्नाचार्योक्तानुरूपमेवास्तीति ॥१४॥

> अब 'दीपशिखौ च्च्याच्छङ्कुतलान्तरभूमिज्ञाने छायां य आनयित' इस प्रश्न के उत्तर को कहते हैं।

हि. भा—दीपतल और शङ्कुतल के अन्तर को इष्टशंकु से गुणा कर शङ्कुहीन दीपशिसीच्च्य से भाग देने से छाया होती है।

#### उपपत्ति ।

यहाँ संस्कृतोपपित में लिखित (१) चित्र को देखिये। ग्रक = दींपिशिखीच्च्य । क =दीपतल, मन = शङ्कु, न = शङ्कुतल, नप = छाया, नक = दीपतल ग्रीर शङ्कुतल का अन्तर=म्बा, म बिन्दु से कप रेखा की समानान्तर रेखा मश है। अक—कश = अक—मन
=दीपशिखीच्च्य — शङ्कु = अश, तब अशम, मनप दोनों त्रिभुजों के सजातीयत्व से
अनुपात करते हैं 

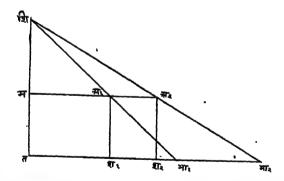
मश्रमन = दीप शङ्कुतलान्तर × शङ्कु = नप = छाया, इससे
आचार्योक्त उपपन्न हुआ। सिद्धान्तशेखर में 'विशङ्कुना दीपशिखोच्छ्येएा' इत्यादि संस्कृतोपपित में लिखित श्लोक से श्रीपित ने आचार्योक्त के अनुरूप ही कहा है लीलावती में 'शंकु:
प्रदीपतलशङ्कुतलान्तरध्नः' इत्यादि संस्कृतोपपित्त में लिखित पद्य से भास्कराचार्य ने
आचार्योक्त के अनुरूप ही कहा है इति ।।१४।।

इदानीं छाया द्वितीयभाग्रान्तरिवज्ञानेनेत्यादि प्रश्नोत्तरमाह ।

# शङ्क्वन्तरेगा गुगिता छाया छायान्तरेगा भक्ता भूः। स छायां शङ्कुगुगा दीपौच्च्यं छायया भक्ता ॥१४॥

सु. भा- छायेष्टस्य कस्यापि शङ्कोरछाया शङ्कोरन्तरेगा शङ्कुमूला-न्तरेगा गुगिता छाययोरन्तरेगा भक्ता भूभैवति । सा सच्छाया छायया सहिता शङ्कुगुगा छायया भक्ता च दीपौच्च्यं भवति ।

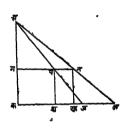
#### भ्रत्रोपपत्तिः ।



स्रत्राचार्येग तश, मानमेव भूसंज्ञं किल्पतिमत्युपपन्नम् । द्वितीवच्छाया ग्रहगोन द्वितीया भूभविति । इयं भूः सच्छाया तदा छायाव्यवहारस्य ५४ सूत्रीया भूभविति ततो दीपौच्च्यं प्राग्वदिति । स्रत उपपन्नम् ॥१५॥

वि. भा.—कस्यापीष्टशङ्कोश्छाया शङ्क्वन्तरेण (शङ्कुद्धयमूलान्तरेण)
गुणिता छाययो रन्तरेण भक्ता तदा भूभविति । सा छायया सहिता—शङ्कुगुणिता, छायया भक्ता तदा दीपौच्च्यं भवतीति ।।१५॥

#### ग्रत्रोपपत्तिः।



पश=नख = शङ्कुद्वयम्। शख = शङ्कु मूलान्तरम् = शङ्क्वन्तरम्। ग्रक = दीपौ-च्च्यम्। पश = प्रथमशङ्कुः। नख = द्वितीयशङ्कुः। शज = प्रथमच्छाया। खल = द्वितीय-च्छाया। जल = छायाग्रान्तरम्। खल—शज = छायान्तरम्।

खल—(शज—शख) = खल—शज+शख = छायान्तर+शङ्क्वन्तर ततो गिगताघ्यायस्य ५४ सूत्रेगा।

प्रथमच्छाया (छायान्तर+शङ्क्वन्तर) —कज, स्रतः कज – शज —कश । छायान्तर

= प्रथमछाया (छायान्तर + शङ्क्वन्तर) — प्रथमच्छाया । छायान्तर

ुप्रथमच्छाया ×छायान्तर+प्रथमच्छाया ×शङ्क्वन्तर—छायान्तर × प्रथमछाया छायान्तर

<u>प्रथमच्छाया × शङ् क्वन्तर</u> =कश = भूः । एवमेव <u>द्वितीयच्छाया. शंक्वन्तर</u> छायान्तर <u>छायान्तर</u>

=कस=मूं: । कश + शज = मू + प्रथमच्छाया = कज = (छायाव्यवहारस्य ५४

=- श्रक = दीपौच्च्यम् । एवमेव श्रकल, नखल त्रिभुजयोः साजात्यात् नख × कल खल

= हितीयशं (५४ सूत्रोक्त भू) =दीपौच्ध्यम् एतेनाऽऽचार्योक्त सूत्रमुपपन्नम् ॥१५॥

ग्रब 'छाया द्वितीय भाग्रान्तर बिज्ञानेन इत्यादि' प्रश्न के उत्तर को कहते हैं।

हि. भा.—िकसी इष्ट शङ्कु की छाया को शङ्कुद्वय के अन्तर (शङ्कुद्वय मूलान्तर) से गुणा कर छायान्तर से भाग देने से भू होती है, भू में छाया को जोड़ने से जो हो उसको शङ्कु से गुणा कर छाया से भाग देने से दी गैच्च्य होता है इति ॥१४॥

#### उपपत्तिः ।

यहां संस्कृतोपपित्त में लिखित (१) चित्र को देखिये । पश = नख = दोनों शङ्कु । शख = शङ्कुमूलान्तर = शङ्क्वन्तर । श्रक = दीपौक्च्य । पश = प्रथमशङ्कु । नख = दितीयशङ्कु । शज = प्रथमच्छाया = प्रछा, खल = दितीयच्छाया = दिछा जल = छाया - ग्रान्तर, खल — शज = छायान्तर, खल — (शज — शख) = खल — शज + शख = छायान्तर + शङ्क्वन्तर) = कज = छायान्तर क्वयान्तर क्वयान्तर

धतः कज—शज=कश= प्रद्धा (छायान्तर+शङ्क्वन्तर) —प्रद्धा= छायान्तर

=कश=भू। इसीतरह <u>दिखा. शङ्क्वन्तर</u> =कख=भू। कश + जज = भू + प्रछा

= छायाव्यवहार की १४ सूत्रोक्त भू। कल + खल = भू + हिद्या = कल = छायाव्यवहार की १४ सूत्रोक्त भू, लीलावती में 'छायाप्रयोरन्तर सङ्गुणाभा 'इल्यादि क्लोक में भारकराचार्य कज, कल इन्ही दोनों को प्रथम भू, भौर द्वितीय भू कहते हैं। भ्रब भ्रकज, पशज दोनों त्रिभुजों के सजातीयत्व से भ्रनुपात करते हैं। पश्यक्त = भक = (१४ सूत्रोक्तभू) × प्रथमशं शख्य

च्दीपौच्च्य । इसी तरह भ्रकल, नखन दोनों त्रिभुजों के सजातीयत्व से <u>नख × कल</u> खल

\_\_\_\_ दितीयशं (१४ सूत्रोक्त, भू) \_\_ दीपौच्च्य । इससे भ्राचार्योक्त उपपन्न हुम्रा इति ।।११॥ दिखा

#### इदानीं छायातो गृहादीनामौच्च्यानयनमाह।

## ज्ञात्वाशङ्कुच्छायामनुपातात् साधयेत् समुच्छ्रायान् । गृहचैत्यतरुनगानामौच्च्यं विज्ञाय वा छायाम् ॥१६॥

सु. भा.— शङ्कुच्छायां ज्ञात्वाऽनुपाताद्गृहचैत्यतरुपर्वतानां समुच्छ्रायान् गराकैः साधयेत्। वा तेषामौच्च्यं विज्ञाय तेषामिष्टकाले छायां साधयेत्। इष्टकाले गृहादीनां छायाप्रमाणं ज्ञात्वा तदैवेष्टशङ्कोश्च छायाप्रमाणं विज्ञाय शङ्कुच्छायया शङ्कुप्रमाणं तदा गृहादिच्छायया किम्। एवं गृहादीनामौच्च्यं भवति। श्रौच्च्याच्चैवमनुपातेन गृहादीनां छायां साधयेत्।।१६॥

वि. भा.— शङ्कुच्छायां ज्ञात्वा, ग्रनुपातात् गृहचैत्यवृक्षपर्वतानां समुच्छा-यान् साधयेज्ज्यौतिषिकः । वा तेषामौच्च्यं विज्ञायेष्टकाले तेषां छायां साध-येदि ॥१६॥

#### ग्रत्रोपपत्तिः।

यदि शङ्कुच्छायया शङ्कुप्रमागं लभ्यते तदा गृहचैत्यबृक्षपर्वतानां छायया किमित्यनुपातेन तेषामुच्छिति प्रमागामागमिष्यति । एवं तेषामौच्च्यज्ञानेन तेषां छायानयनमनुपातेनैव भवति यथा यदि शङ्कुना छाया लभ्यते तदा गृहादीना मौच्च्येन कि समागच्छन्ति तेषां छाया प्रमागानीति ।।१६।।

भव छाया से गृहादियों का भौच्च्या (ऊ वाई) नयन कहते हैं।

हि. मा.—शङ्कु की छाया जान कर अनुपात से गृह-चैत (माटा) वृक्ष, पर्वत इन सर्वो प्री उच्छिति (ऊंचाई) को गराक साधन करे, वा उन सर्वों की उच्छिति जानकर उन सर्वों की छाया साधन करे इति ।।१६॥

#### उपपत्ति ।

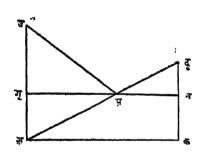
यदि शङ्कुञ्छाया में शङ्कु प्रमाण पाते हैं तो गृह-चैत्य-वृक्ष-पर्वतीं की छाया में क्या इस मनुपात से उन सबों की ऊंचाई के मान झाजायगा । यदि उन गृहादियों की ऊंचाई से उन सर्बों का छायानयन करना हो तो 'यदि शङ्कु में इष्टछाया पाते हैं तो गृहादियों के भीच्च्य में क्या' इस अनुपात से गृहादियों के छायाप्रमारा आते हैं इति ।।१६।।

## इदानीमिष्टगृहौच्च्यज्ञो य इत्यादि प्रश्नोत्तरमाह।

## युतदृष्टिगृहौच्च्यहृता ह्यन्तरभूमिर्दं गौच्च्यसङ्गुणिता । फलभून्यंस्ते तोये प्रतिरूपाप्रं गृहस्य नरात् ॥१७॥

सु. मा.—गृहस्य नरस्य च मध्ये याऽन्तरभूमिः सा हगौच्च्येन दृष्ट्यु च्छित्या सङ्गुरिएता युतदृष्टिगृहौच्च्यहृता दृष्ट्यु च्छितिसंयुतगृहोच्छित्या हृता । यत् फलं प्राप्तं तन्मिता भूनंराद्गृहाभिमुखी या तत्र तोये जले न्यस्ते तस्मिन् गृहस्य प्रतिरूपाग्रमग्रस्य प्रतिबिम्बं दृश्यं भवेदिति ।

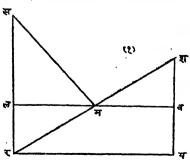
#### अत्रोपपत्तिः



गृत = गृहनरान्तरभूमिः = प्रक ।
गृत = गृहौच्च्यम्। प्र=जलम्। न ह=
हगौच्च्यम्। तदा ज्योतिर्विद्यया गृहाग्रप्रतिबिम्बं चेद् ह — हष्ट्या हश्यं तदा < गृ
प्र उ = < न प्र ह । श्रतः गृ उ = गृश्र =
न क । हक = न ह + गृउ। हश्र क, हप्र
न त्रिभुजे च सजातीये । ततः प्र न

= श्रक × हन हन । श्रत उपपन्नम् ॥१७॥

वि. भाः—नरात् (द्रष्टुः) गृहस्यान्तरभूमिरर्थाद् गृहनरयोर्मध्ये या भूमिः सा दृष्टच्यु च्छित्या गुणिता दृष्टच्यु च्छित्युतगृहौच्च्यभक्ता यत्फलं लब्धं भवेत् नराद् गृहाभिमुखं तन्मितभूमौ स्थापिते जले गृहाग्रस्य प्रतिबिम्बं दृश्यं भवेदिति ।



लस=गृहौच्यम्। वश=हगौच्यम्।
म=जलम्। लव=गृहनरान्तरभूमिः=रय,
गृहाग्रप्रतिबिम्बं यदि श दृष्ट्या दृश्य
भवेतदा ज्योतिर्विद्यायाः पतितपरावर्त्तितकोणसाम्यं भवतीति सिद्धान्तात् < लमस
= <वमश तथा < रमल = < वमश,

< मलर=< मलस= ६० ग्रतः रमल, लमस त्रिभुजद्वये तुल्ये (रे.प्र.ग्र.२६ क्षे) तेन लस= लर= वय । अतः यश = वश + लस शरय, शमव त्रिभुजयोः साजात्यादनुपातः रयः वश = वम ग्रत उपपन्नमाचार्योक्तमिति ॥१७॥
यश

भव 'इष्टगृहीच्च्यज्ञो यः' इत्यादि प्रश्न को उत्तर कहते हैं।

हि. भा- एह ग्रौर नर (द्रष्टा) के मध्य में जो ग्रन्तर भूमि है उसको दृष्टि की उच्छिति (ऊंचाई) से गुएग कर गृह की उच्छितियुत दृष्ट्य च्छित से भाग देने से जो लब्ध हो तत्तुल्य भूमि नर से गृह की तरफ (गृहाभिमुख) जो हो वहां जल को स्थापन करने से उस जल में गृह के अग्र के प्रति बिम्ब दृश्य होता है इति ।।१७।।

#### उपपत्ति ।

यहां संस्कृतोपपत्ति में लिखित (१) चित्र को देखिये। लस = गृहौ च्च्य, वश = हगी-च्च्य, दृष्टि की ऊंचाई, म = जल, लब = गृह और नर की अन्तर भूमि = रय, गृह के अग्र का प्रति बिम्ब यदि श दृष्टि से दृश्य होता है तब ज्योतिर्विद्या के पतित कोगा और परावित्तत कोगा की तुल्यता सिद्धान्त से ∠लमस = ∠वमश तथा < रमल = <वमश, <मलर = <मलस = ६०। इसलिये रमल, लमस दोनों त्रिभुज सर्वथा तुल्य हुए (रे.प्र.श. २६ क्षे) अतः लस = लर = वय, तथा यश = वश + लस, शरय, शमव दोनों त्रिभुजों के सजातीयत्व से अनुपात करते हैं स्य.वश = वम, अतः श्राचार्योक्त उपपन्न हुआ इति ।।१७॥

> इदानीं गृहपुरुषान्तरसिलले यो दृष्ट्वेत्यादि प्रश्नोत्तरमाह । गृहपुरुषान्तरसिलले वीक्ष्य गृहाग्रं हगौच्च्य सङ्गुगितम् । गृहतोयान्तरमौच्च्यं गृहस्य नृजलान्तरेग हृतम् ॥१८॥

सु. मा. —गृहपुरुषयोर्मध्येयत् सिललं स्थापितं तिस्मन् गृहाग्रं वीक्ष्य यदि गृहोच्च्यमपेक्षितं तदा गृहतोयान्तरं हगौच्च्यसङ्गुिएतं नृजलान्तरेण हृतं फलं गृहस्यौच्च्यं भवेत्। अत्रोपपितः। पूर्वश्लोक क्षेत्रे गृहतोयान्तरम् =गृप्र। नृजलान्तरम् =प्र न। प्र ग्र उ, ह न प्र त्रिभुजे च सजातीये ततः =गृ उ = गृप्र भ न ह अत उपपद्यते ॥१८॥

वि. मा.—गृहपुरुषान्तरे स्थापिते जले गृहाग्रं हृष्ट्वा यदि गृहौच्च्यज्ञानम-भीष्टं तदा गृहजलान्तरं हगौच्च्य (हृष्टयुच्छ्नाय) गुणितं पुरुषजलान्तरेण भक्तं तदा लब्धं गृहस्यौच्च यं भवेदिति ।

#### अत्रोपपत्ति:।

ग्रत्र पूर्वश्लोको (१७) पपत्तौ लिखितं क्षेत्रं द्रष्टग्यम् । लस —गृहौच्च्यम् । वश — हगौच्च्यम् । लव — गृहपुरुषान्तर भूमिः, म — जलम् । तदा सलम, शमव त्रिभुजयोः साजात्यादनुपातः 

वश × लम — लस — हंगौच्च्य × गृहजलान्तर पुरुषजलान्तर — गृहौच्च्यम् । एतेनोपपन्नमाचार्योक्तम् ॥१८॥

अब 'गृहपुरुषान्तर सलिले यो दृष्ट्वाग्रं' इत्यादि प्रश्न के उत्तर को कहते हैं।

हि. भा.—गृह और पुरुष के मध्य भूमि में स्थापित जल में गृह के अग्र को देख कर यदि गृहौच्च्यज्ञान अपेक्षित हो तब गृह और जल के अन्तर को हगौच्च्य (दृष्टि की उच्छिति) से गुगा कर पुरुष और जल के अन्तर से भाग देने से लब्ध गृहौच्च्य होता है इति।

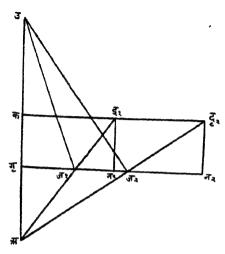
#### उपपत्ति ।

यहां पूर्व श्लोक (१७) की संस्कृतोपपत्ति में लिखित (१) क्षेत्र को देखिये। लस = गृहोच्च्य, वश = हगोच्च्य। लव = गृह ग्रौर पुरुष का ग्रन्तर, म = जल, तब सलम ग्रौर शवम दोनों त्रिभुजों में सजातीयत्व से ग्रनुपात करते हैं वश.लम = सल = हगोच्च्य.गृहजलान्तर = गृहोच्च्य, इससे ग्राचार्योक्त सूत्र उपपन्न हुन्ना ।।१८।। पुरुषजलान्तर

इदानीं वीक्ष्य गृहाम्रं सिलले प्रसार्येत्यादि प्रश्नोत्तरमाह । प्रथमद्वितीय नृजलान्तरान्तरेखोद्धता जलापसृतिः । हगौच्च्य गुर्णोच्छ्रायस्तोयान्नृजलान्तरगुर्णा सूः ॥१९॥

सु. भा — यत्र प्रथमं जले गृहाग्रप्रतिबिंब नरेगा दृष्टं तत्र यन्नृजलान्तरं तत् प्रथमं ज्ञेयम् । एवं द्वितीयं नृजलान्तरं जानीयात् । ततो जलापसृतिर्जलयोरन्तरे भूमिः सा प्रथमद्वितीयनृजलान्तरयोरन्तरेगोद्धृता लब्धिद्धिः स्थाप्या । एकत्र दृगौच्च्यगुगा तदा गृहोच्छ्यायः स्यादन्यत्र नृजलान्तरेगा गुगा तदा तोयाद्गृहत-लपर्यन्तं भूभूभिः स्यात् ।

#### ग्रत्रोपपत्ति:।



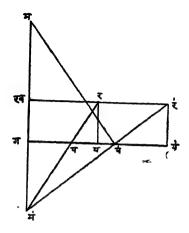
म्र गृ=गृ उ=गृहौच्च्यम्। ज, ज, प्रथम द्वितीय जलस्थाने। न, न, प्रथमद्वितीयनरस्थाने।गृक=न, ह, = न, ह, = हगौच्च्यम्।ज, ज, = जलान्त-रम् = जलापसृतिः। न, न, = ह, ह, = नरान्तरम्। द्वयोरन्तरम् = न, न, — ज, ज, = न, न, — (ज, न, + न, ज,) = न, न, — न, ज, — ज, न, = ज, न, — ज, न,।

श्र ज, ज, ग्र ह, ह, सजातीय त्रिभुजयोः क्रमेगा श्र गृ, श्र क बहिर्लम्बः।

ततः गृज, उ, ज, न, ह, सजातीयजात्ययोः ।

श्रत उपपद्यते ॥१६॥

वि. मा.—नरेण गृहाग्रप्रतिबिम्बं जले प्रथमं यत्र हुन्दं तत्र नरजलान्तरं यत्तत् प्रथमं नरजलान्तरं बोध्यं, एवं नरेण द्वितीयं गृहाग्रप्रतिबिम्बं जले यत्र हुन्दं तत्र द्वितीयं नरजलान्तरं ज्ञेयम्। जलयोरन्तरे जलापसृतिभूमिः प्रथमद्वितीय नरजलान्तरयोरन्तरेण भक्ता लब्धः स्थानद्वये स्थाप्या, एकत्र हुन्द्वच च्छ्रायेण गुणिता गृहोच्छ्रितभवेत् द्वितीयस्थाने नर जलान्तरेण गुणिता तदा जलाद् गृह-तलपर्यन्तभूमिमानं भवेदिति।।



#### उपपत्तिः ।

प, प प्रथम द्वितीय जल स्थाने, य, य प्रथम द्वितीय नरस्थाने, गमः गम = गृहो-च्छितिः । प प = जलान्तरम् = जलापसृतिः य य = र र = नरान्तरम् । ग्रनयोरन्तरम् = । य - प = प्य — पय, सजातीययोः

म पप, म र र त्रिभुजयोः क्रमेण मग, म ख बहिर्लम्ब स्तदा मुख = र र र मग पप, म र र त्रिभुजयोः क्रमेण मग, म ख बहिर्लम्ब स्तदा मुख = ए र र मग पप

उभयत्रैक शोधनेन  $\frac{1}{1}$   $\frac{1}$   $\frac{1}{1}$   $\frac{1}{1}$   $\frac{1}{1}$   $\frac{1}{1}$   $\frac{1}{1}$   $\frac{1}{1}$ 

 $=\frac{u}{u}\frac{1}{u}\frac{1}{u}$  प्रतः  $\frac{1}{u}$  =  $\frac{e^{x}}{u}$  =

गमप, परय सजात्य त्रिभुजयोः साजात्यादनुपातः पयः प्पः = गप = प्रथमजलस्था पय-पय

नाद् गृहतलपर्यन्तः = प्रथमनरजलान्तर × जलान्तर , एवमेव नरजलान्तरयोरन्तरं

द्वितीय नरजलान्तर×जलान्तर —द्वितीय जलस्थानाद् गृहत पर्यन्तं एतावता-नर जलान्तरयोरन्तरं ऽऽचार्योक्तमुपपन्नम् ॥१९॥

भ्रव 'बीक्ष्य गृहाग्रं सलिले प्रसार्य 'इत्यादि प्रश्न के उत्तर को कहते हैं।

हि. भा— ग्रह के अग्र का प्रतिबिम्ब जल में पहले जहां देखा गया वहां जो नर भौर जल का जो अन्तर है उसको प्रथम नर जलान्तर समभना चाहिये। एवं द्वितीय ग्रहाग्र प्रतिबिम्बं में जहां देखा गया वहां नर भौर जल का जो अन्तर है उस को द्वितीय नर जलान्तर समभना चाहिये। दोनों जलस्थानों के अन्तर (जलापसृति) में जो भूमि है उसको प्रथम द्वितीय नर जलान्तर के अन्तर से भाग देने से जो लब्बि हो उसको दो स्थानों में स्थापित करना एक

स्थान में दृष्टि की ऊंचाई (हगीच्च्य) से गुगा करने से गृहोच्छाय होता है। द्वितीय स्थान में नरजलान्तर से गूणा करने से जल से गृहतलपर्यन्त भूमि होती है इति ।

#### उपपत्ति ।

यहां संस्कृतोपपत्ति में लिखित (१) क्षेत्र को देखिये । प=प्रथम जलस्थान । प = द्वितीय जलस्थान । य = प्रथमनर (द्रष्टा) स्थान, य = द्वितीय नरस्थान, गम = गम = । । गृहोच्छित, पप =जलान्तर=जलापसृति यय = रर = नरान्तर, इन दोनों का अन्तर = यय  $= \frac{77}{1} - \frac{1}{1} - \frac{1}{1} + \frac{1}{1} + \frac{1}{1} + \frac{1}{1} - \frac$  $= \frac{1}{77} = \frac{1}{1} =$ च्छिति । ग्रथ गमप, परय, जात्य त्रिभुजद्वय के सजातीयत्व से पय. पप = गप = प्रथमजल स्थान से गृहतलपर्यन्त = प्रथम नर जलान्तर × जलान्तर , इसी तरह

द्वितीयनरजलान्तर×जलान्तर = द्वितोय जल स्थान से गृहतल पर्यन्त; इससे भ्राचार्योक्त सूत्र उपपन्न हुम्रा इति ।।१६॥

### इदानीमुच्छितिमाह।

## छायापुरुषच्छिन्नं जलकुडचान्तरमवाप्तमारूढिः। श्रध्यायो विश्वत्यार्याणामेकोन विशोऽयम् ॥२०॥

सु. मा. — छायाया यः पुरुषः शङ्कुभागस्तेन जलभित्योरन्तरं भक्तमत्र यदवाप्तं सा भित्तेरारूढिरुच्छितिभैवति । जलाद्यावताऽन्तरेगा नरो भित्त्यग्रप्रति-विंबं जले पश्यति तदन्तरमेवात्र नरस्य छाया कल्प्या । अर्कतेजसो या भित्तेश्छाया ज्ञातव्या । ( छायाव्यवहारस्य प्रथमश्लोकश्च छायापुरुवार्यं द्रष्टव्यः ) शेषं स्पष्टार्थम ।

अत्रोपपत्तिः । नरस्य छायया नरप्रमाणसमोच्छ्रितस्तदा भित्तेव्छायया किमित्यनुपातेन भित्तेवच्छितिः स्फुटा ।

मधुसूदनसूनुनोदितो यस्तिलकः श्रोपृथुनेह जिष्गुजोक्ते। हिद तं विनिधाय नूतनोऽयं रिचतो भादिविधौ सुधाकरेगा।।

इति श्रीकृपालुदत्तसूनुसुधाकरद्विवेदिविरिचते ब्राह्मस्फुटसिद्धान्तनूतन-तिलके शङ्कुछायादिज्ञानं नामैकोनिवंशोऽध्यायः ॥१६॥

वि. भा- जलकुडचान्तरं (जलिमत्त्योरन्तरं) छायापुरुषि च्छिन्नं (छायायाः पुरुषः शङ्कुभागस्तेन भक्तं) तदा लब्धं भित्तरि च्छितिभैवेत्, श्रारूढिशब्देनो- च्छितिबोध्या। जले भित्त्यग्रप्रतिबिम्बं नरो यावतान्तरेण पश्यित तदेवान्तरमत्र नरस्य छाया, रिविकरणसम्बन्धेन भित्तेशच्छायाऽन्यत्र जलकुडचान्तरं तदा नरस्य रिविकरणसम्बन्धेन या छाया सैव छाया बोध्येति। श्रार्याणां विशत्याऽयमे- कोनिवंशोध्यायोऽस्तीति।

#### ग्रत्रोपपत्तिः।

नरस्य छायया नरतुल्योच्छ्रितस्तदा भित्तेश्छायया किमिति समागच्छति भित्तेरुच्छ्रितिरिति ॥२०॥

इति ब्राह्मस्फुट सिद्धान्ते शङ्कुच्छायादिज्ञानं नामक एकोर्नावशो-ऽध्यायः ॥१९॥

#### अब भित्ति की उच्छिति को कहते हैं।

हि. भा.—जल और भित्ति के अन्तर को छाया के शङ्कुभाग से भाग देने से जो लिब्ध हो वह भित्ति की उच्छिति (ऊंचाई) होती है। जल में नर (द्रष्टा) भित्ति के अग्र के प्रतिबिम्ब जल से जितने अन्तर पर देखता है उसी (अन्तर) को यहां नर की छाया कल्पना करनी चाहिये। रिव के तेज से भित्ति की जो छाया होती है अन्य प्रश्न में जल और भित्ति का अन्तर होता है तब रिव के तेज से नर की जो छाया होती है वही छाया समस्रनी चाहिये। यह बीस आर्थायों के उन्नीसवां अध्याय है इति।

#### उपपत्ति ।

नर की छाया में नर प्रमारा तुल्य उच्छिति पाते हैं तो भित्ति की छाया में क्या इस अनुपात से भित्ति की उच्छिति झाती है ॥२०॥

इति ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त में शङ्कुच्छायादिज्ञान नामक उन्नीसवां ग्रध्याय समाप्त हुन्ना ।

## ब्राह्मस्फुटसिद्धान्तः

छन्द**िचत्युत्तराध्यायः** 

## ब्राह्मस्फुटसिद्धान्तः

### म्रथ छन्द्दिचत्युत्तराध्यायः

ऋग्वर्गः पर्यायः समूहयोगावयुक्षु युग्मेषु । स्रो याः प्राग्वत् प्राप्तादाश्चतुष्ककाः शेषयुक्तचोन्त्यः ॥ १ ॥ एकादियुतविहींनावाद्यन्तौ तद्विपर्ययौ यावत् । वर्गादिषु विषमयुजां क्रमोत्क्रमाद्वर्धयेत् पादान् ॥ २ ॥ एकैकेन द्वचा द्वचाः स्रोप्यधिकेषु तत् प्रतिष्ठेषु । वर्गादिरभीष्टान्तः प्रस्तारो भवति यवमध्यः ॥ ३ ॥ सूनोन्त्यो द्विपदाग्रं त्रिपदाद्यानामधः पृथक् संख्या। तच्छोध्यो व्येकः पृथगन्ताद्रूपमूर्ध्वयुतम् ॥ ४ ॥ यावत् पादाव्येकागच्छाद्वर्गेष्वर्थेक वृद्धेषु । रूपाद्युतघाते वर्गाद्यानां परा संख्या ॥ ५ ॥ रूपाधिकपादार्घे विषमेषुर्घ्वः समेषु पादार्घे । म्रघिद्वगुराां व्येकां युलान्यघस्तस्य सर्वेवाम् ॥ ६ ॥ माध्येस्तथार्घहीनैःक्रमपादैर्घस्ततुल्यपादाद्यः । विषमे व्येकं मध्ये प्रोह्याद्यान्यतः कुर्यात् ॥ ७ ॥ सैकक्रम तुल्याद्यं न्यांसोऽभ्यधिको विशोधितश्चाधः। संख्येक्यं ताहक् याहक् प्रथमस्त्रिरहितो नष्टे ।। ८ ।। माध्यैः कृतेश्च दलितैः समसंख्यायां क्रमोत्क्रमात्क्षेप्यम् । विषमायां व्येकायां दलं क्रमादुत्क्रमात्सेकम् ॥ ६ ॥ समसंख्यायां सोपानक्रमोत्क्रमाभ्यां तथैव विषमाभ्याम् । कल्प्यापचिते हष्टे प्रथमः शेषाक्षराण्यन्ते ॥ १० ॥ समदल समविषमागां संख्या पादार्घ सर्वकल्पवधः। स्वाद्यवधोऽन्यैः पादैः स्वपरस्य प्राग्वधः सैकैः ॥ ११ ॥

**ब्राद्यादनन्तरोऽधः कल्प्योऽन्यतुल्यमाद्यः प्राक्**। न्यासो वर्गोऽन्योनः प्रस्तारोऽर्धसमविषमागाम् ॥ १२ ॥ नष्टेऽन्त्यात् स्वाधस्थोनकल्पघातोऽर्धतुल्यविषमागाम् । ब्येकः पृथक् स्ववर्गोद्धतः फलं तुल्यकल्पानाम् ॥ १३ ॥ उद्दिष्टे कल्पहृतेऽतीतेः प्रथमः फले स्वरूपेऽन्यः। श्रसकृद्वर्गांशयुते सैके वार्धसमविषमागाम् ॥ १४॥ कल्पेषु पृथक् गुरुलचु संख्यैकादिभाजिता प्राग्वत् । विषमेष्वाद्यलेघूनो लघुभिर्मेष्टः समादीनाम् ॥ १५॥ एकद्वितयोः परतो द्विसङ्गुर्गोऽनन्तराद्विरूपोऽघः । . वर्गधराद्योनोदलसमविषमाँगां घ्वजो लघुभिः ।। १६ ।। लघुसंख्या पददलिता परतोऽघोऽघश्च ग्रुध्यति हृता यैः । द्विगुरगान्तैः शुद्धैर्वर्गपरैर्मन्दरो लघुभिः ।। १७ ॥ कृत्वाऽघोऽघः कल्प्यान्येकाद्येकोत्तरानधस्तेषाम् । स्वात्परतोऽन्यंक्यमधः प्रस्तारादुक्तविहाद्यैः ॥ १८ ॥ गुरुषष्टचेकानि घटीद्विगुर्णान्येकांगुलानि संख्या स्यात् । द्वाविश्वतिरायीं एां छन्दश्चित्युत्तरोऽष्यायः ॥ १६ ॥

इति श्रीब्राह्मस्फुट सिद्धान्ते छन्दश्चित्युत्तरोऽध्यायो विंशतितमः ॥ २०॥

# ब्राह्मस्फुटसिद्धान्तः

गोलाध्यायः

## ब्राह्मस्फुट**सिद्धान्तः**

#### म्रथ गोलाध्यायः

व्याख्यायते । तत्र प्रथमं तदारम्भप्रयोजनमाह ।

प्रहनक्षत्रस्रमणं न समं सर्वत्र भवति भूस्थानाम् । तद्विज्ञानं गोलाद्यतस्ततो गोलमभिधास्ये ॥१॥

सुः माः — भूस्थानां जनानां सर्वत्र ग्रहनक्षत्रभ्रमणं समं न भवति । तद्भ्र-मणसंस्थानविज्ञानं च यतो गोलादेव भवति ततोऽहं गोलमभिषास्ये कथया-मीति ॥१॥

वि. भा-भूगोलनिवासिनां जनानां मध्ये ग्रहाणां नक्षत्राणां च भ्रमणं सर्वत्र समं (एकरूपं) न भवति, तेषां ग्रहनक्षत्राणां भ्रमण्वैषम्मस्य विज्ञानं यतो गोलात् (गोलाध्यायात्) भवति, ततोऽहं (ब्रह्मणुप्तः) गोलं (गोलाध्यायं) भ्रमिधान्स्ये (कथयामि) । प्रायः सर्वेऽपि ज्यौतिषसिद्धान्तग्रन्था ग्रहगणितगोलाध्या-याभ्यां विभक्ता भवन्ति, तत्र ग्रहगणिते ग्रहसाधनादयो विधयो गोलाध्याये ग्रहसाधनादिविधीनामुपपत्तयश्च वर्णिता भवन्ति, पूर्वं ग्रहसाधनादिविधीनुक्त् वा-ऽधुना तदुपपीतं कथयतीति । सिद्धान्तशेखरे "उडुग्रहाणां भ्रमणां न तुल्यं सर्वत्र भूगोलनिवासिनां हि । तत्तत्त्वबोधावगितस्तु गोलादतः स्फुटं गोलिमहाभिधास्ये" श्रीपतिनाप्याचार्योक्तानुरूपमेव कथ्यत इति ॥१॥

अब गोलाध्याय प्रारम्भ किया जाता है, उसमें पहले आरम्भ करने का प्रयोजन कहते हैं।

हि. भा.—भूगोल निवासी लोगों के मध्य में ग्रहों का भ्रमण ग्रौर नक्षत्रों का भ्रमण सब जगह समान (एकरूप) नहीं होता है उनके भ्रमणविषम्य का ज्ञान गोलाध्याय से होता है इसलिये मैं (ब्रह्मगुप्त) गोलाध्याय को कहता हूं। प्रायः ज्यौतिष के सब सिद्धान्त ग्रम्थ ग्रहगणित श्रौर गोलाध्याय से विभक्त होते हैं। ग्रहगणित में ग्रहसाधनादि विधियों का वर्णन रहता है श्रौर गोलाध्याय में उनकी उपपत्तियों का वर्णन रहता है। पूर्व में ग्रहसाधनादि विधियों को कह कर श्रब उनकी उपपत्ति कहते हैं इति ।।१।।

#### इदानीं भूगोलसंस्थानमाह।

शशिबुधसितार्कं कुजगुरुशनिकक्षावेष्टितो भ कक्षान्तः । भूगोलः सत्त्वानां शुभाशुभैः कर्मभिरुपात्तः ॥२॥

सु. भा.—ग्रयं भूगोलः सत्त्वानां प्राणिनां शुभाशुभैः कर्मभिरुपात्तः प्राप्तो भवति । 'भूमेः पिण्डः शशाङ्कज्ञकविरवि–इत्यादि भास्करोक्तमेतदनुरूपमेव । शेषं स्पष्टम् ॥२॥

वि. मा. —चन्द्रबुधशुक्ररविकुजगुरुशनीनां कक्षावृत्तैर्वेष्टितः नक्षत्रकक्षाया मध्येऽयं भूगोलोऽस्ति यश्च प्राशानां 'शुभाशुभैः कर्मभिः प्राप्तो भवति । चन्द्रबुधशुक्रादिग्रहकक्षावृत्तानां कथमी दृशी उपर्युपरि स्थितिरस्ति तद्युक्तिज्ञानार्थं मध्यमाध्यायो द्रष्टन्यो वा महीकाविभूषितो वटेश्वरसिद्धान्तस्य मध्यमाधिकारो द्रष्टव्यः भूमेः स्वरूपे मतान्तराग्गि सन्ति यथा ''म्रादर्शोदरसिन्नभा भगवती विश्वम्भरा कीर्तिता, कैश्चित् कैश्चन कूर्मपृष्ठसहशी कैश्चित् सरोजा-कृतिः। ग्रस्माकं तु कदम्बपुष्पनिचयग्रन्थेः समा सम्मता सर्वत्रासुमता चयेन निचिता तोयस्थलस्थायिनाम्" कैश्चित् पौराग्तिकैः देवतास्वरूपा भगवती पृथ्वी मुकुरतलतुल्या कथिता, कैश्चन कूर्मपृष्ठसदृशी उन्नतमध्या, कैश्चित् कमलोकारा कथिता, ग्रस्माकं ज्यौतिषिकार्णां तु कदम्बपुष्पनिचयग्रन्थेः समा, सर्वत्र जीवानां चयेन निचिताऽनुमतेति सिद्धान्तशेखरे श्रीपत्युक्तिरस्ति, सिद्धान्त-शिरोमगाौ 'सर्वतः पर्वतारामग्रामचैत्यचयैश्चितः । कदम्बकुसुमग्रन्थिः केसर प्रसरेरिव' भास्करोक्तिरियं श्रीपत्युक्तिसदृश्येवास्ति, परन्तु नवीनाः पृथिव्या श्राकृति दीर्घं पिण्डाकृतिसदृशीं स्वीकुर्वन्ति । ग्रहनक्षत्रकक्षावृत्तसंस्थानसम्बन्धे सिद्धान्तशेखरे 'विधुबुघसित सूर्योरेज्यपातिङ्गकक्षावलयपरिवृत्तोऽसावृक्षकक्षोदर-श्रीपत्युक्तिरियं सिद्धान्तशिरोमग्गौ 'भूमेः पिण्डः शशाङ्कत्र-स्थं इत्यादि कविरविकुजेज्यार्किनक्षत्रकक्षावृत्तेवृंतो वृत्तः सन् मृदनिलसलिलव्योमतेजोमयो-ऽयम्' भास्करोक्तिरियं चाऽऽचार्योक्तिसदृश्येवास्तीति सम्प्रति वेधेन चन्द्रो भुवः समन्ताद् भ्रमणं करोति तथा सूर्यात् परितः क्रमेण बुधगुक्रभूमिभौमगुरुशनि नक्षत्राणि भ्रमन्तीति सिघ्यति । ग्रत एव प्राचीनानां भूस्थिरवादिनां भूपरितो ग्रहा स्रमन्तीति वदतां मते बुधशुक्र कर्णयोर्महदन्तरमिति प्रसिद्धम् । पूर्वपश्चिम-योस्तयोर्दं श्याद्दश्यत्वं च तन्मते न घटते । ग्रहागामूर्घ्वाघरत्वं च तेषां कर्णानां ज्ञानेन स्फुटं विज्ञायते । बिम्बीयकर्णानामानयनं पूर्वमेव मघ्यमाध्याये मया लिखितं तत्तत एवं ज्ञातव्यम् । एवं रविग्रहबिम्बान्तरवेधेन सर्वे ग्रहा रविपरितो भ्रमन्तीति स्फुटं सम्प्रति नव्यमतेन विज्ञायत इति ॥२॥

भव भूगोल संस्थान को कहते हैं।

हि. मा.—चन्द्र-बुध-बुक्र-रवि-मङ्गल-गुरु (बृहस्पति) शनि इन सबों के कक्षावृत्तों

से वेष्टित (घिराहुम्रा) नक्षत्र कक्षा के मघ्य में यह भूगोल है, जो प्राणियों के शुभ-ग्रशुभ कर्मों से प्राप्त होता है। चन्द्र बुध शुक्रादिग्रह कक्षावृत्तों की क्यों इस तरह उपर्युंपरिस्थिति है इस की युक्ति के लिये मध्यगति अध्याय में लिखित उपपत्ति अथवा बटेश्वर सिद्धान्त के मध्यमा-धिकार में हमारी लिखी हुई टीका देखनी चाहिये । भूगोल के स्वरूप में बहुत मतान्तर है जैसे पौराशिक लोग देवता स्वरूप भगवती पृथ्वी को श्रयनक के तल सहश कहते हैं, कोई कोई कच्छए की पृष्ठ के सहग पृथ्वी के स्वरूप कहते हैं, कोई कोई कमल के आकार के सहश कहते हैं, हमारे ज्यौतिषिकों के मत से कदम्ब फल के सहश है और जिस तरह कदम्ब फल में सर्वत्र केसर रहता है उसी तरह इस गोलाकार पृथ्वी के ऊपर सर्वत्र प्राणियों की स्थिति है यह विषय सिद्धान्तशेखर में 'श्रादर्शोदरसिन्नभा भगवती विश्वम्भरा' इत्यादि विज्ञान भाष्य में लिखित श्लोक से श्रीपति ने कहा है, सिद्धान्तिशरोमिं में 'सर्वेत: पर्वतारामग्रामचैत्य चयैश्चितः' इत्यादि श्लोक से भास्कराचार्य ने भी श्रीपति के कथनानुसार ही कहा है लेकिन नवीन लोग पृथ्वी का म्राकार दीर्घपिण्डाकार मानते हैं, इसके सम्बन्ध में वटेश्वर सिद्धान्त के मध्यमाधिकार में हमारी लिखी हुई टीका देखनी चाहिये। ग्रह-नक्षत्र कक्षावृत्तों की स्थिति के सम्बन्ध में सिद्धान्तशेखर में, 'विधुवुधसितसूर्यारेज्यपात क्रिकक्षा' इत्यादि से श्रीपति तथा सिद्धान्त शिरोमिए। में 'भूमे: पिण्डः शशाङ्क्रज्ञ कविरविक्रुजेज्यार्कि नक्षत्रकक्षावृत्तैः' इत्यादि से भास्कराचार्य ने भी भ्रचार्योक्त के अनुरूप ही कहा है । सम्प्रति वेघ से चन्द्र पृथ्वी के चारों तरफ भ्रमण करती है तथा सूर्व के चारों तरफ क्रम से बूध-शुक पृथ्वी-मञ्जल-गुरु-शनि श्रीर नक्षत्र परिश्रमण करते हैं यह सिद्ध होता है, इसलिये प्राचीनों के 'पृथ्वी स्थिर है उसके चारों तरफ ग्रह भ्रमण करते हैं' मत में बुघ भौर शुक्र के कर्ण में बहुत अन्तर होता जो नहीं होना चाहिये। तथा उन (प्राचीनों) के मत में बुध और शुक्रं का हश्वाहश्यत्व नहीं घटता है। ग्रहों का ऊर्घाघरत्व उन (ग्रहों) के बिम्बीय कर्णज्ञान से समफा जाता है। बिम्बीय कर्णों का ग्रानयन प्रकार मैं पहले ही मध्यमाध्याय में लिख चुका हूं। वह वहीं से समक्ता चाहिये; एवं रिव और ग्रह के बिम्बान्तर वेघ से रिव के चारों तरफ सव ग्रह भ्रमण करते हैं यह इस समय नवीनों के मत से समका जाता है इति ॥२॥

## इदानीं देवासुरसंस्थानमाह।

## खे भूगोलस्तदुपरि मेरौ देवाः स्थितास्तले दैत्याः । खे भगगाक्षाग्रस्थावुपर्यधस्य ध्रुवौ तेषाम् ॥३॥

सु. मा.— आकाशे भूगोलस्तदुपरि मेरुस्तत्र मेरावुपरि देवाः स्थिताः । तले मेरुतले कुमेरौ देत्याः स्थिताः । तेषां देवदैत्यानां ख आकाशे भगणाक्षाग्रस्थौ भगणाक्षो ध्रुवयष्टिस्तदग्रस्थौ ध्रुवावुपर्यघश्च । देवानामुत्तरो ध्रुव उपरि दक्षि-गोऽघो दैत्यानां दक्षिण उपरि उत्तरो ध्रुवश्चाध इति । 'सौम्यं ध्रुवं मेरुगताः खमध्ये' इत्यादि भास्करोक्तमेतदनुरूपमेव ॥३॥

विः माः — खे (ग्राकाशे) भूगोलोऽस्ति, भूगोलोपिर मेरुरस्ति, मेरावुपिर भागे देवाः) स्थिताः सन्ति, मेरुतले (मेरोरघोभागे) कुमेरौ दैत्याः स्थिताः सन्ति, तेषां (देवानां दैत्यानां च) खे (ग्राकाशे) भगगाक्षाग्रस्थौ (भगगाक्षशब्देन घृवयिट-स्तदग्रस्थितौ) घृवौ उपर्यध्रश्चार्थात् देवानामृत्तरो घृव उपिर, दक्षिगाध्रुवश्चाधः, दैत्यानां दक्षिगाध्रुव उपिर, उत्तर घृवश्चाध इति॥ सिद्धान्तशेत्ररे 'स्वमूर्धगं मेरुगतास्तमुत्तरं तथेतरं वाड्ववा सिनो जनाः, वड्वानलवासिनः — दैत्याः। श्रीपत्युक्तिमदं सिद्धान्तशिरोमगौ 'सौम्यं घृवं मेरुगताः समध्ये याम्यं च दैत्या निजमस्तकोध्वें, भास्करोक्तिमदं चाऽऽचार्योक्तानुरूपमेवास्तीति॥३॥

#### ग्रब देव ग्रौर दैत्य के संस्थान (स्थिति) को कहते हैं।

हि. भा.— आकाश में भूगोल है, भूगोल के ऊपर मेरु है, मेरु के ऊपरी भाग में देवता लोग स्थित हैं और मेरु के अघो भाग (कुमेरु) में दैत्य लोग स्थित हैं। उन देवताओं और दैत्यों के आकाश में ध्रुवयष्टी के अग्रद्धय में स्थित दोनों ध्रुव ऊपर और नीचे है अर्थात् उत्तर ध्रुव देवों के ऊपर है दक्षिण ध्रुव नीचे में है और दैत्यों का दक्षिण ध्रुव ऊपर में है उत्तर ध्रुव नीचे में है।। सिद्धान्तशेखर में 'स्वमूर्धग' मेरुगतास्तमृत्तरं' इत्यादि विज्ञान भाष्य में लिखित पद्ध से श्रीपति तथा सिद्धान्त शिरोमिण में 'सौम्यं ध्रुवं मेरुगताः खमध्ये' इत्यादि वि. भा. लिखित पद्ध से भास्कराचार्यं ने भी आचार्योक्त के अनुरूप ही कहा हैं इति।।३।।

## इदानीं देवानां दैत्यानां च भचक्रभ्रमण्व्यवस्थामाह। श्रुवयोर्वद्धं सन्यगममराणां क्षितिजसंस्थमुडुचक्रम्। श्रपसव्यगमसुराणां भ्रमति प्रवहानिलाक्षिप्तम्।।४॥

सु. मा.—स्पष्टम् । 'सव्यापसव्यं भ्रमदृक्षचक्रम्' इत्यादि भास्करोक्तमेत-दनुरूपमेव ॥४॥

वि. मा.—प्रवहवायुना प्रेरितं घ्रुवयष्ट्यधीनं देवानां क्षितिज संसक्तं भचकं सव्यगं भ्रमित, दैत्यानामपसव्यगं भ्रमत्यर्थादुत्तरं क्रान्तिमण्डलाधं देवाः सव्यगं पश्यन्ति, दिक्षरां तदधं—अपसव्यगं देत्याः पश्यन्ति, सव्यगमिति पश्चिमाभिमुखं भ्रमत् श्रपसव्यगं च पूर्वाभिमुखं भ्रमदित्यर्थः। चलद् भमण्डलं स्वक्षितिजगतं देवा दैत्याश्च पश्यन्ति, तित्क्षतिजमण्डलेन सह क्रान्तिवृत्तस्य स्थानद्वये योग इति नक्षत्रचक्रक्षितिजवृत्तस्थितमुपचर्यते। दिक्षणं क्रान्तिवृत्ताधं कदाचिदिप देवैनिविक्ष्यते उत्तरं क्रान्तिवृत्ताधं दैत्यैनिविक्ष्यत इति ॥ सिद्धान्तशेखरे 'सौम्यं हि मेषाद्यपमण्डलाधं पश्यन्त्यमी सव्यगमेव देवाः। तुलादिकं दक्षिणामन्यदधं सदैव दैत्यास्त्व-

पसन्यवर्त्ति, श्रीपत्युक्तिमदं सिद्धान्तिशरोमग्गौ 'सन्यापसन्यं भ्रमदक्षचक्रं विलोकयन्ति क्षितिजप्रसक्तम्' भास्करोक्तिमिदं चाऽऽचार्योक्तानुरूपमेवेति ॥४॥

#### श्रब देवों श्रौर दैत्यों की भचक्र-भ्रमण-व्यवस्था को कहते हैं।

हि. भा.—प्रवह वायु द्वारा प्रेरित ध्रुव यष्टी के अधीन (अर्थात् ध्रुव यष्टी के घूमने से घूमने वाला) देवों का क्षितिज वृत्त संसक्त भचक सव्य घूमता है, और द्वैत्यों का अपसव्य घूमता है, अर्थात् क्रान्तिमण्डल के उत्तरार्घ को देव सव्यग देखते हैं, क्रान्ति मण्डल के दक्षिगार्घ को दैत्य अपसव्यग देखते हैं, सव्यग से पश्चिमाभिमुख स्नमण करते हुए और अपसव्यग से पूर्वाभिमुख स्नमण करते हुए समक्षना चाहिए । सिद्धान्तशेखर में 'सौम्यं हि मेषाद्यपमण्डलार्घ' इत्यादि विज्ञान भाष्य में लिखित श्लोक से श्रीपति तथा सिद्धान्त शिरोमणि में 'सव्यापसव्यं स्नमदक्षचक्र' इत्यादि से भास्कराचार्यं ने भी आचार्योक्त के अनुरूप ही कहा है इति ।।४।।

#### इदानीं चक्रभ्रमग्रव्यवस्थामाह।

## ध्रन्यत्र सर्वतो दिशमुन्नमित भपञ्जरो ध्रुवो नमित । लङ्कायामुडुचक्रं पूर्वापरगं ध्रुवौ क्षितिजे ।।५।।

सु. भा.—ग्रन्यत्र मेरुतोऽन्यत्र सर्वतो दिशं भूगोले भपञ्जरो भवक्रमुन्नमित ध्रुवश्च नमित । लङ्कायामुडुचक्रं भचक्रं पूर्वापरगं सममण्डलाकारं ध्रुवौ च क्षितिजे स्त इति । ग्राचार्येण यथा यथा मेरुतो द्रष्टा सर्वतो दिशं याति तथा तथा ध्रुवो नमतीत्युक्तम् । भास्करेण लङ्कामेव मूलस्थानं प्रकल्प्य स्थितिः प्रतिपादिता 'ग्रतो निरक्षदेशे क्षितिमण्डलोपगौ ध्रुवौ नरः पश्यति दक्षिणोत्तरौ' इत्यादि भास्करोक्तमेतदनुरूपमेव ॥५॥

वि. भा.— मेरूतोऽन्यत्र सर्वतो दिशं पृथिव्यां भपञ्जरः (भचक्रं) उन्नमित, ध्रुवश्च नमित, लङ्कायां भचक्रं पूर्वापरगं सममण्डलाकारं ध्रुवौ च तिक्षितिजे स्तः। द्रष्टा मेरुतो यथा यथा सर्वतो दिशं याति तथा तथा ध्रुवो नमतीत्याचार्येणोक्तम्। लङ्कामेव मूलस्थानं मत्वा भास्कराचार्येणा स्थितिः प्रतिपादिता तेन 'निरक्षदेशे क्षितिमण्डलोपगौ ध्रुवौ नरः पश्यित दक्षिगोत्तरावि'त्यादि भास्करोक्ताऽऽचार्योक्त-योर्न कोऽपि भेदः, प्रथात् मेर्वभिमुखं गच्छतो नरस्योत्तरध्रवोन्नतिस्तथा भचकस्य नितर्भवित, एवमुत्तरभागतो निरक्षदेशाभिमुखं गच्छतो नरस्य विपरीते नतोन्नते भवतोऽर्थादुत्तरध्रुवस्य नितर्भचक्रस्योन्नतिर्भवित, 'उदग्दिशं याति यथा यथा नरः' इत्यादि भास्करोक्ते रिदं स्फुटमस्ति, निरक्षाद्वहुत्रोत्तरदेशेऽपि उत्तरध्रुव-दर्शनं न भवत्यतोऽत्र सिद्धान्तप्रतिपादने भूष्पृष्ठावरोधनमनङ्गीकृत्य भूगर्भतः सर्वं विचार्यम् ध्रुवयोर्बद्धं भचकं प्रवहवायुनाऽऽक्षिप्तं सततं पश्चिमाभिमुखं

भ्रमति । चन्द्रादीनां ग्रहाणां कक्षाश्च तिस्मन् भचके बद्धा भ्रमन्तीति ॥ सूर्यसिद्धान्ते "ध्रुवोन्नितभंचक्रस्य नितमें प्रयास्यतः। निरक्षाभिमुखं यातुर्विपरीते नितोन्नते ॥ भचकं ध्रुवयोर्बद्धमाक्षिप्तं प्रवहानिलैंः। पर्यत्यज्मूं तन्नद्धा ग्रहकक्षा यथाक्रमम्" इति सूर्याशपुरुषोक्तसदृशमथवाऽऽचार्योक्तं चेति ॥५॥

#### ग्रब चक्रम्रमग् व्यवस्था को कहते हैं।

हि. भा.— मेरु से ग्रन्थत्र सब दिशाओं में भचक की उन्नित होती है और उत्तर ध्रुव की नित होती है। लड्का में भचक सममण्डलाकार है और दोनों ध्रुव लड्का क्षितिज में हैं। द्रष्टा मेरु से ज्यों ज्यों सब दिशाओं में जाते हैं त्यों त्यों ध्रुव की नित होती है यह ग्राचार्य का कथन है, परन्तु लड्का ही को मूल स्थान मानकर भास्कराचार्य ने स्थिति का प्रति पादन किया है इसिलये 'निरक्षदेशे क्षितिमण्डलोपगी' इत्यादि भास्कराचार्योक्ति और ग्राचार्योक्ति में कुछ भी भेद नहीं है। ग्रर्थात् मेरु की ग्रोर जाते हुए मनुष्य को उत्तर ध्रुव की उन्नित ग्रीर अचक की नित देखने में ग्राती है। एवं उत्तर भाग से निरक्ष देशाभिमुख जाते हुए मनुष्य को नित ग्रीर उन्नित विपरीत देखने में ग्राती हैं भ्रर्थात् उत्तर ध्रुव की नित ग्रीर भचक कीं उन्नित देखने में ग्राती है। 'उदिग्दशं याति यथा यथा नरः' इत्यादि भास्करोक्ति से यह स्फुट है। निरक्षदेश से उत्तर भी बहुत देशों में उत्तर ध्रुव का दर्शन नहीं होता है, इसिलए यहां सिद्धान्त कहने में भूपृष्ठजनित ग्रवरोध को स्वीकार न कर भूगमं ही से सब कुछ विचार करना चाहिए।। सूर्य सिद्धान्त में भी 'ध्रुवोन्नितर्भचकस्य' इत्यादि विज्ञान माष्य में लिखित रलोकों से इन्हीं बातों को कहा गया है इति।।।।

इदानीं देवादीनां रिवम्रमणस्थिति कथयति ।

देवाः' सव्यगमसुराः पश्यन्त्यपसव्यगं रवि क्षितिजे । विषुवति समपश्चिमगं निरक्षदेशस्थिताः पुरुषाः ॥६॥

सु० मा०—विषुवित मेषतुलादौ देवाः क्षितिजे र्रावं सव्यगमसुरा अपसव्यगं निरक्षदेशस्थाः पुरुषास्च समपश्चिमगं पश्यन्तीति प्रसिद्धम् ॥६॥

वि. सा. —देवा दैत्याश्च नाडीमण्डलरूपक्षितिजे विषुवति (सायनमेषतुलादौ) क्रमशः सव्यगमपसव्यगं रवि पश्यन्ति । निरक्ष देशवासिनस्तं रवि (सायनमेषादौ सायनतुलादौ च स्थितं सूयँ) पूर्वापरवृत्तानुकारे नाडीवृत्ते पश्यन्तीति ।।६।।

ग्रब देवादियों की रिव म्नमण स्थिति को कहते हैं।

हि. भा. - नाड़ी मण्डल रूपिक्षतिज में सायन मेषादि में ग्रीर सायनतुलादि में

<sup>(</sup>१) 'देवासुरा विषुवित क्षितिजस्थं दिवाकरम् । पश्यन्ति' इति सूर्यं सिद्धान्तेऽप्येव-मेवास्ति ।

सव्यगत रिव को देवता लोग देखते हैं श्रीर दैत्य लोग श्रपसव्यगत देखते हैं। निरक्ष देश वासियों के नाड़ीवृत्त पूर्वापर वृत्त हैं इसलिए वे लोग तब (सायन मेषादिस्थित सूर्य को ग्रीर सायन तुलादि स्थित सूर्य को) पूर्वापर वृत्तगत देखते हैं इति ।।६।।

## इदानीं देवदैत्ययोराशिसंस्थानमाह ।

## सौम्यमपमण्डलाधं मेषाद्यं सव्यगं सदा देवाः । पश्यन्ति तुलाद्यधं दक्षिरामपसव्यगं देत्याः ॥७॥

सु. मा — देवाः सदा मेषाद्यं सौम्यमुत्तरं क्रान्तिमण्डलार्धं सव्यगं दैत्याश्च तुरुादिक्रान्तिमण्डलार्धं दक्षिरामपसव्यगं पश्यन्ति ।

#### स्रत्रोपपत्तिः ।

गोलसंस्थानेन 'लम्बाधिका क्रान्तिरुदक् च यावत्' — इत्यादि भास्करवि-धिना स्फुटा ॥७॥

वि. मा.—देवाः सर्वदा मेषाद्यमुत्तरं क्रान्तिवृत्तार्धंसव्यगं पश्यन्ति । दैत्याः तुलादिकान्तिवृत्तार्धं दक्षिणं (ग्रपसव्यगं) पश्यन्तीति ।

#### ग्रत्रोपपत्ति: ।

मेरौ कुमेरौ चाक्षांशा नवितः = ९०, श्रतो लम्बांशाः =०, तेनमेषादिषण्णां राशीनां क्रान्तेर्लम्बांशाधिकत्वात्तदहोरात्रवृत्तानां तिक्षितिजोर्ध्वंगतत्वाच्च तत्र स्थितं रिवं देवाः सर्वदा पश्यन्ति । एवमेव तुलाविषण्णां राशीनां क्रान्तेरिप लम्बांशाधिकत्वात्तदहोरात्रवृत्तानां तिक्षितिजोर्ध्वंगतत्वात्तेषु राशिषु स्थितं सूर्यं सर्वदा देत्याः पश्यन्त्येव । दिनरात्रिसम्बन्धे सिद्धान्तिशरोमण्गौ 'लम्बाधिका क्रान्तिरुदक् च यावत्ताविद्नं संततमेव तत्र । यावच्च याम्या सततं तिमस्रा' इत्येवं भास्करेण यत् कथितं तेनैव स्फुटमस्तीति ॥७॥

#### मब देवों के भीर दैत्यों के राशि संस्थान की कहते हैं।

हि. भा.—देवता लोग मेषादि उत्तर क्रान्तिवृत्तार्घं को सर्वदा सव्यगत देखते हैं। तथा दैत्य लोग तुलादि क्रान्तिवृत्तार्घं को अपसव्यगत देखते हैं इति ॥७॥

#### उपपत्ति ।

मेर में और कुमेर में श्रक्षाश = ६०, श्रतः लम्बांश शून्य = ०, है इसलिये मेषादि (उत्तर गोलीय) छः राशियों की क्रांतियों के लम्बांशाधिक होने के कारण उन राशियों के श्रहोरात्रवृत्तों के क्षितिजवृत्त से ऊपर होने से उन राशियों में स्थित सूर्य को सर्वेदा देखते हैं।

एवं तुलादि (दिक्षरागोलीय) छ: राशियों की क्रान्तियों के लम्बांशाधिक होने के काररा उन राशियों में स्थित सूर्य को दैत्य लोग सर्वदा देखते हैं, सिद्धान्त शिरोमिशा में 'लम्बाधिका क्रान्तिरुदक्' इत्यादि संस्कृतोपपत्ति में लिखित मास्करोक्त श्लोक से यह स्पष्ट है। सूर्य सिद्धान्त में 'देवासुरा विषुवित क्षितिजस्थं दिवाकरम् । पश्यन्ति' इससे सूर्यांश पुरुष आचार्योक्त के सदृश ही कहा है इति ।। ७ ।।

इदानीं देवदैत्ययोः पितृमानवयोश्च दिनप्रमागामाह । पश्यन्ति देवदैत्या रविवर्षार्थमुदितं सकृत् सूर्यम् । शशिगाः शशिमासार्थं पितरो भूस्था नराः स्वदिनम् ॥ ॥ ॥ ।।

सुः भाः—देवदैत्याः सक्नदुदितं सूर्यं रिववर्षार्धं सौरवर्षदलपर्यन्तं शिशाः शिशपृष्ठस्थाः पितरश्च शिशमासार्धं पर्यन्तं भूस्था नराश्च स्वदिनं स्वदिनमानपर्यन्तं परयन्ति ।

श्रत्रोपपत्तिः । भास्करगोलाघ्यायतः स्फुटा ॥८॥

ि मा देवा दैत्याश्च सङ्घदुदितं सूर्यं सौरवर्षार्वं पश्यन्ति । शशिगाः (चन्द्रपृष्ठस्थाः) पितरश्चान्द्रमासार्धं रवि पश्यन्ति । पृथिव्यां स्थिता मनुष्याः स्वदिनमानपर्यन्तं रवि पश्यन्तीति ।

#### ग्रत्रोपपत्ति:।

जत्तरध्रुवो देवानां खस्वस्तिकम् । दक्षिणध्रुवश्च दैत्यानां खस्वस्तिकम् । ध्रुवाभ्यां नवत्यंशेन यद्गृतं तम्नाडीवृत्तं देवदानवयोः क्षितिजवृत्तम् । नाडीवृत्तकान्तिवृत्तयोः सम्पाते सायनमेषादौ सायनतुलादौ च रिवद्यांनानन्तरं पुनस्तत्सायनमेषादौ सायनतुलादौ च रिवद्यांनानन्तरं पुनस्तत्सायनमेषादौ सायनतुलादौ च रिवद्यांनं यावता कालेन भवेत् स रवेरेकभगणः (सायनरिवभगणः) देवदैत्ययोरहोरात्रप्रमाणं भवित, परन्त्वेकसायनभगणभोगः सौरवर्षमतो देवदैत्ययोः सायनसौरवर्षाधं (षण्मासप्रमाणं) दिनं सिद्धम् । परन्तु देवदैत्ययोर्दिनरात्री विलोमेन भवतोऽर्थाद्यदा मेषादावुदितं रिव प्रतिदिनं क्षितिजोपरिगतं देवाः पश्यन्ति तदा देवानामधःस्थितत्वाद्दैत्यास्तं रिव न पश्यन्ति, ग्रतो यदा देवानां दिनं तदा देत्यानां रात्रः, यदा देवानां रात्रिस्तदा देत्यानां दिनमिति । सिद्धान्तशेखरे "सकृदुद्गतो दिनकरः सुरासुररिप वत्सरार्धमवलोक्यते स्फुटम् । पितृभिश्च मासदलमिन्दुगोलगैर्धुदलं महीतलगतेश्च मानवैः"श्रीपितनाऽनेनाक्षरश ग्राचार्योक्ता नुरूपमेव कथितम् । अस्योपपत्तिदिनरात्रिस्वरूपे च सिद्धान्तिशरोमणौ ।

"विषुवद्वृत्तं चुसदां क्षितिजत्विमतं तथा च दैत्यानाम् । उत्तरयाम्यौ क्रमशो मूर्घ्वोध्वंगतौ ध्रुवौ यतस्तेषाम् ॥ उत्तरगोले क्षितिजादूर्घ्ये परितो भ्रमन्तमादित्यम् । सन्यं त्रिदशाः सततं पश्यन्त्यसुरा असन्यगं याम्ये ॥

सांहितिका उत्तरायणदक्षिणायने देवानां दिनरात्री भवत इति कथयन्ति एतस्य खण्डनं सिद्धान्तशेखरे ।

> दिनप्रवृत्तिर्मरुतामजादौ तुलाधरादौ च निशाप्रवृत्तिः । ते किल्पते येमृ गकर्कद्योरत्रोपपत्ति न च ते ब्रुवन्ति ।। द्वन्द्वान्तयातं कनकाद्रियाताः पश्यन्ति पङ्को रुहिग्गीपति चेत् । भ्रपक्रमस्यात्र समानतायां कथं कुलीरे न विलोकयन्ति ।।

देवानां मेषादौ सूर्ये दिनारम्भः, तुलादौ च रात्र्यारम्भः, यैः सांहितिकैस्ते दिनरात्री मकरकर्नाद्योः किल्पते तेऽत्रं युक्ति न कथयन्ति । अर्थात् कथमुत्तर-दक्षिगायने देवानां दिनरात्री भवत इत्यत्र ते सांहितिकाः कान्त्रिद्युक्ति न वदन्ति । देवा मिथुनान्तस्थितं सूर्यं यदि पश्यन्ति तदा कर्कराशौ क्रान्तेः समत्वे कथं न पश्यन्तीति प्रश्नः । ग्रस्य किमप्युत्तरं न तेन 'ग्रत्रोपपित्तं न च ते ब्रुवन्ति' कथनमिदं युक्तम् । श्रीपितरत्नमालायाम्—

"शिशिरपूर्वमृतुत्रयमुत्तरं ह्ययनमाहुरहश्च तदामरम्। भवति दक्षिणमन्य दृतुत्रयं निगदिता रजनी मरुतां च सा॥ गृहप्रवेशत्रिदशप्रतिष्ठाविवाह चौलव्रत बन्धपूर्वम्। सौम्यायने कर्म शुभं विधेयं यद्गीहृतं तत्खलु दक्षिणे च॥"

इत्यनेन श्रीपितरिप संहितोक्तफलादेशार्थं—उत्तरदक्षिगायने एव दिनरात्री कथित्वाऽत्र ज्यौतिष सिद्धान्ते ''ग्रत्रोपपित न च ते ब्रुवन्ती'' ति तदुपहासं करोतीति ॥

## पितृदिनोपपत्तिः ।

चन्द्रस्योध्वंभागे पितरो निवसन्ति । भूगर्भाञ्चन्द्रकेन्द्रगता रेखा पितृरणामूर्ध्व-याम्योत्तरवृत्ते यत्र लगति तत्र तेषामूर्ध्वं खस्वस्तिकम्, तत्रैव परिण्तचन्द्रोऽपि, यदि तत्र रिवरिप भवेचन्द्रस्य शराभावश्चेत्तदा रिवचन्द्रयोरेकत्रं स्थित्वाद्द्रश्चान्तः, ऊर्ध्वं खस्वस्तिकगते रवौ दिनार्धं भवित तेन दर्शान्ते पितृणां दिनार्धं भवितिति सिध्यति, सैव भूगर्भतश्चन्द्रकेन्द्रगता रेखाऽधोयाम्योत्तरवृत्ते यत्र लगित, तत्र तेषामधः खस्वस्तिकम् । तत्र रिवचन्द्रयोः षड्भान्तरत्वात् पूर्णान्तः पितृणामर्धरा-त्रस्य, पितृणाममावास्यां मध्यान्हत्वात् पूर्णान्ते च रात्र्यर्धत्वात्तारतम्येन कृष्ण-पक्षस्य सार्धसप्तम्यां रिवस्देति शुक्लपक्षस्य सार्धसप्तम्यां चास्तमेतीति सिध्यति । सिद्धान्तशेखरे "चान्द्रे गोले शिरसि पितरः सन्ति तेषां च पर्वण्यूर्ध्वे भास्वान् भविति हि ततस्तत्र तद्वासरार्धम् । कृष्णाष्टम्यां सिवतुष्दयोऽस्तं च शुक्लाष्टमी चेत् ? प्रोक्तस्तेषामिह मुनिवरैः पौर्णमास्यां निशीथः ॥" श्रीपितनैवं कथ्यते। दर्शान्ते पितृदिनार्धम्, द्वितीयदर्शान्तेऽपितृदिनार्धं भवित, दर्शान्तद्वययोरन्तरं चान्द्रमासः, परन्तु दिनार्धान्तरकालः सूर्योदयान्तरकालतुल्यः। सूर्योदयद्वयान्तरकालश्चेकं दिनं तेन सिद्धं यित्पतृणामेकचान्द्रमासतुल्यं दिनं भवित । तेन चन्द्रोध्वंभागे वसन्तः पितरः सकृदुदितं रिवं चान्द्रमासार्धं (पक्षपर्यन्तं) पश्यन्तीति सिद्धम् । सूर्यसिद्धान्ते 'सकृदुद्गतमब्दार्धं पश्यन्त्यक्षं सुरासुराः । पितरः शिशगाः पक्षं स्वदिनं च नरा भुविं सूर्याशपुष्ठषोक्तस्यास्य सहशमेवाऽऽचार्योक्तमस्ति, सिद्धान्त शिरोमणौ 'रवीन्द्वोर्युतेः संयुतिर्यावदन्या विधोर्मास एतच्च पैत्रं च्यूरात्र' मिति भास्करोक्तमाचार्योक्तानुरूपमेव। तथा च भास्करः।

"विष्कृष्वभागे पितरो वसन्तः स्वाघः सुघादीधितिमामनन्ति । परयन्ति तेऽकं निजमस्तकोष्ट्यं दशें यतोऽस्माद् द्युदलं तदेषाम् । भार्धान्तरत्वान्न विघोरघःस्यं तस्मान्तिशीयः खलु पौर्णमास्याम् । कृष्णोरविः पक्षदलेऽभ्युदेति शुक्लेऽस्त मेत्यर्थत एव सिद्धम् ।"

यस्मिन् वृत्ते ग्रहिबम्बं भ्रमित तदन्तर्गतो द्रष्टा यदि सर्वदा ग्रहिबम्बस्यैकं भागमेव पश्यित तदा ग्रहिबम्बं स्वाक्षोपिरिस्वाङ्गभ्रमं करोति। यथा यदा वयं देव-मिन्दरस्य प्रदक्षिणां कुमंस्तदा भ्रमण् वृत्ताव्तर्गतो द्रष्टा सर्वदाऽस्मद्दक्षिणभागमेवा-स्मदङ्गभ्रमणेन पश्यित, भ्रमण् वृत्तबिहर्गतो द्रष्टा च स्वाभिमुखमस्मच्छरीरावयवं भिन्नं भिन्नं पश्यतीति प्रत्यक्षप्रतीतिः। यथा वालावात्यावद् भूमौ लघुप्रदेशे भ्रमंतः स्वाङ्गभ्रममुत्पादयन्ति तथा वयं महित प्रदेशे प्रदक्षिणा परिधौ भ्रमन्तः स्वाङ्गभ्रमण् भिन्नाच् भ्रमण् वृत्तस्यात्यल्पत्वात्तद्दिः स्था द्रष्टारो बालानां स्वाङ्गभ्रमेण् भिन्नाच् भिन्नानवयवान् पश्यन्तीति। ग्रथ यस्मिन् वृत्ते चन्द्रो भ्रमित तदन्तर्गता वयं सदा चन्द्रस्य कलङ्क्षसिहतं तमेव भागं पश्यामोऽतः पूर्वकथितसिद्धान्तेन चन्द्रो भ्रमत् स्वाङ्गभ्रममुत्पादयतीति सिघ्यति। ग्रथ यच्च चन्द्रे कलङ्कनाम्ना प्रसिद्धं तत् ,सूक्ष्मदर्शकयन्त्रबलेन चन्द्रोपरि वनं पर्वतादिकं चास्तीति स्फुटं दृश्यते नव्यस्तर्पर्वतादीनामुच्छितिज्ञानं च कृतमस्तीति। पितृदिनसम्बन्धे बटेश्वर सिद्धान्ते महीकाऽवलोकनीयेति।।८।।

अब देव-दैत्यों को और पितर-मनुष्यों के दिनमान कहते हैं।

हिः भाः—देव भौर दैत्य एक बार उदित सूर्य को छः महीने तक देखते हैं। चन्द्र पृष्ठ निवासी पितर एकबार उदित सूर्य को चान्द्रमासार्घ (एकपक्ष) देखते हैं। पृथ्वी पर स्थित मनुष्य ग्रहोरात्रार्घ तक रिव को देखते हैं।। ।।

#### उपपत्ति ।

उत्तरध्रुव देवों का सस्वस्तिक है। दक्षिए। ध्रुव दैत्यों का स्वस्तिक है। दोनों धूर्वों को केन्द्र मान कर नवत्यंश से जो वृत्त (नाड़ीवृत्त) होता है वह देव ग्रौर दैत्यों का क्षितिज वृत्त है। नाडीवृत्त और क्रान्तिवृत्त के सम्पातद्वय सायन मेषादि में भीर सायन तुलादि में रिव दर्शन के बाद पून: जितने काल में सायन मेषादि भौर सायन तुलादि में रिव-दर्शन होता है वह एक सायनरिवभगएा (एक सायन सौरवर्ष) देव और दैत्य का म्रहोरात्र मान होता है। अतः देवों और दैत्यों का सायन सौरवर्षार्ध (छ: महीने) दिन सिद्ध हुआ। परन्तु देवों श्रीर दैत्यों का दिन श्रीर रात्रि बिलोम से होती है श्रर्थात् जब मेषादि में उदित रिव को प्रति दिन क्षितिज से ऊपर देव लोग देखते हैं तब देवों से अघ: स्थित होने के कारण दैत्य लोग उस रिव को नहीं देखते हैं इसलिये जब देवों का दिन होता है तब दैत्यों की रात्रि होती है। जब देवों की रात्रि होती है तब दैत्यों का दिन होता है। सिद्धान्तशेखर में 'सकुदुद्गतो दिनकर: सुरासुरैरपि वत्सरार्धमवलोक्यते स्फुटम्' यह श्रीपत्युक्त ग्राचार्योक्त के अनुरूप ही है। सूर्य सिद्धान्त में 'सक्कुदुर्गतमब्दार्थ पश्यन्त्यक सुरासुराः' इस सूर्यांश पुरुषोक्ति के अनुरूप ही श्रीपत्युक्त और श्राचार्योक्त है। सिद्धान्तशिरोमिए। में 'रवेश्चक्रभोगोऽर्कवर्ष' प्रदिष्टं द्युरात्रं च देवासुराणां तदेव' इस से भास्कराचार्य ने भी माचार्योक्त के मनरूप ही कहा हैं। इसकी उपपत्ति और दिन रात्रि का स्वरूप सिद्धान्तशिरोमिए। में "विषुवद्वृत्तं द्युसदां क्षितिजत्विमतं तथा च दैत्यानाम् । उत्तरयाम्यौ क्रमशो मूर्घ्वोध्वंगतौ' इत्यादि संस्कृतो-पपत्ति में लिखित क्लोक से इस तरह भास्कराचार्य ने कहा है। सांहितिक लोग 'उत्तरायरा देवों का दिन और दक्षिए।।यन उनकी रात्रि होती हैं कहते हैं, इसका खण्डन सिद्धान्तशेखर में 'दिनप्रवृत्तिर्मरुतामजादौ तुलाघरादौ च निशा प्रवृत्तिः' इत्यादि से श्रीपति ने किया है। मेषादि में सूर्य के रहने से दिनारम्भ होता है, तुलादि में सूर्य के रहने से राज्यारम्भ होता है, जो सांस्कृतिक लोग मकरादि में श्रौर कर्कादि में दिन श्रौर रात्रि कहते हैं वे लोग इसमें यक्ति कुछ भी नहीं कहते हैं अर्थात् उत्तरायण देवों का दिन होता है और दक्षिणायन रात्रि होती है इसमें कुछ भी युक्ति नहीं कहते हैं। देवता लोग यदि मियुनान्त स्थित सूर्य को देसते हैं तो कर्कराशि में क्रान्ति के समत्व के कारए। क्यों नहीं देखते हैं। इस प्रश्न का उत्तर कुछू नहीं है। इसलिये 'अत्रोपपत्ति न च ते ब वन्ति' यह श्रीपति का कहना ठीक है। श्रीपति रत्नमाला में 'शिशिरपूर्वमृत्त्रयमत्तरं' इत्यादि संस्कृतीपपत्ति में लिखित क्लोकों से श्रीपति भी संहितोक्त फलादेश के लिये 'उत्तरायण और दक्षिणायन ही को दिन और रात्रि कह कर इस ज्यौतिष सिद्धान्त में 'स्रत्रोपपत्ति न च ते ब वन्ति' से उनका उपहास करते हैं।

## पितृ दिनोपपत्ति ।

चन्द्र के ऊर्घ्वं भागं में पितर बसते हैं। भूकेन्द्र से चन्द्रकेन्द्र गत रेखा पितरों के ऊर्घ्वं याम्योत्तरवृत्त में जहां लगती है वह बिन्दु उनका ऊर्घ्वं खस्वस्तिक है। वही बिन्दु परिगात चन्द्र भी पितृ त्रिज्या गोल में है। ऊर्घ्वंखस्वस्तिक गत रेखा श्रघोयाम्योत्तर वृत्त में जहां

लगती है वह पितरों का ग्रघः खस्वस्तिक है। पितरों के ऊर्घ्व खस्वस्तिक (परिग्गतचन्द्र) में रिन के भ्राने से पितरों का दिनार्ध काल होगा लेकिन वहीं पर चन्द्र भी है इसलिये यदि चन्द्र का शराभाव हो तो रिव ग्रीर चन्द्र के एक स्थान में रहने से दर्शान्त (ग्रमावास्या) होने के कारण सिद्ध होता है कि दर्शान्त में पितरों का दिनार्घ होता है। एवं द्वितीय दर्शान्त में द्वितीय दर्शान्त होता है, दोनों दर्शान्त का अन्तर एक चान्द्रमास है वही पितरों का दिनार्धा-न्तर काल भी है परन्तु दिनार्धान्तर काल (एक दिनार्ध से दूसरे दिनार्ध तक) उदयान्तर काल (एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक) के बराबर होता है, सूर्योदयद्वयान्तर काल एक दिन है ग्रतः दिनार्घान्तर काल भी एक दिन के बराबर हुग्रा । इसलिये सिद्ध हुग्रा कि पितरों का दिन (भ्रहोरात्र) एकचान्द्रमास के वराबर होता है अर्थात् पितर लोग चान्द्र मास के आधे (एक पक्ष) तक उदित सूर्य को देखते रहते हैं। सूर्य सिद्धान्त में 'सक्नुदुर्गतमब्दाधं पश्यन्त्यकं सुरासुरा: । पितरः शिशगाः पक्षं इस सूर्यांश पुरुषोक्त के अनुरूप ही आचार्योक्त है । सिद्धान्त शिरोमिण में 'रवीन्द्रोर्यु तेः संयुतिर्यावदन्या विघोर्मास एतच पैत्रं द्युरात्रम्' यह भास्करोक्त म्राचार्योक्त के म्रनुरूप ही है। तथा 'विघूर्घ्यभागे पितरो वसन्तः स्वाघः सुघादीधितिमामनिन्त पश्यन्ति तेऽक" इत्यादि संस्कृतोपपत्ति में लिखित श्लोक से गोलाध्याय में भास्कराचार्य ने उसी वात को कहा है इति ॥ = ॥

इदानीं भूगोले लङ्कावन्त्योः संस्थानमाह ।

भूपरिधि चतुर्भागे लङ्काभूमस्तकात् क्षितितलाच्य । लङ्कोत्तरतोऽवन्ती भूपरिधेः पश्चदशभागे ॥६॥

सु. मा. - भूमस्तको मेरुः क्षितितलश्च कुमेरुस्तस्माद्भूपरिधिचतुर्थभागेऽन्त रे दक्षिण्दिशि लङ्कानाम नगरी । लङ्कोत्तरतश्च भूपरिधिपञ्चदशभागेऽवन्ती वर्तते । भास्करश्चाचार्यानुयायी 'निरक्षदेशात् क्षितिषोडशांशे भवेदवन्ती' इति कथितवान् । तेनान्येषां मते 'षोडशे भागे' इत्यत्र पाठान्तरम् । चतुर्वेदाचार्यंसम्मतः पाठश्च 'पञ्चदशभागे' अयमेव' ॥ह॥

वि. भा.—भूमस्तकात् (मेरोः) क्षितितलाच (कुमेरोश्च) भूपरिधिचतुर्थाशा (नवत्यंश) न्तरे-दक्षिणस्यां दिशि लङ्का नाम नगरी वर्त्तते। लङ्कात उत्तरदिशि भूपरिधिप श्वदशांशान्तरेऽवन्ती (उज्जयिनी) वर्त्तते । भास्कराचार्येगा गोलाध्याये 'निरक्षदेशात् क्षितिषोड़शांशे भवेदवन्ती गिएतेन यस्मात्' एवं कथ्यते । भूपरिधि-योजनषोड़शांशान्तरे निरक्षदेशादवन्ती वर्त्तते तदर्थं गिर्गतम् । यदि षष्ट्यधिक-शतत्रयै ३६० रंशे भूपरिधियोजनानि लभ्यन्ते तदा ऽवन्त्यक्षांशेन किमित्यनुपातेन निरक्षदेशावन्त्योरन्तरयोजनान्यागछन्ति तत्स्वरूपम् । भूपरिधियोजन × ग्रवन्त्यक्षांश =िनरक्ष देशावन्त्योरन्तरयोजनानि । ग्रवन्तीदेशे-

Sक्षांशाः=२२। ३०=२२
$$\frac{?}{?}$$
= $\frac{४ \times }{?}$ , श्रतः  $\frac{1}{2}$ परिधियोजन $\times 8 \times$ 

 $= \frac{\frac{1}{2} \sqrt{1 + \frac{1}{2}} \sqrt{1 + \frac{1}{2}}}{\sqrt{1 + \frac{1}{2}}} \sqrt{1 + \frac{1}{2}} \sqrt{1$ 

= भूपरिधियोजन | विरक्षदेशावन्त्योरन्तर योजनानि । चतुर्वेदाचार्येण 'पञ्च-१६ दशे भागे' इत्येव कथ्यते यथा ऽऽचार्येण कथ्यते, कथं 'पञ्चदशे भागे' कथ्यते तत्र न कारणं किमपि प्रतिभाति । लङ्कातः सुमेरुः कुमेरुश्च नवत्यंशान्तरेऽस्ति' यतस्त-त्राक्षांशाः=९० सन्तीति ॥६॥

#### भव भूगोल में लङ्का भीर भवन्ती की संस्थिति कहते हैं।

भ्रवन्ती के भन्तर योजन । इसको सोलह से गुणा करने से भूपिरिध योजन होता है । भूपिरिधियोजन मान के लिये माचार्यों में मतभेद है । भ्रपनी कथित भूपिरिध की समीचीनता की हढ़ता के लिये बहुत जोर देकर गोलाघ्याय में कहते हैं ''श्रृङ्कोन्नतिग्रहयुतिग्रहणोदया-स्तच्छायादिकं परिधिना घटतेऽभुना हि । नान्येन तेन जगुरुक्तमहीप्रमाण प्रामाण्यमन्वययुजा-व्यितरेकेण' भ्रथात् चन्द्र की श्रृङ्कोन्नति, ग्रहयुति, ग्रहण (चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहण) ग्रहों का उदय समय और अस्त समय ग्रादि हमारे ही भूपिरिध मान से ठीक समय पर होता है भ्रन्यों के भूपिरिधमान से ठीक सयय पर नहीं होता है इसलिये हमारा ही कथित भूपिरिधमान ठीक है अन्याचार्यों का नहीं । भ्राचार्यं (ब्रह्मगुप्त) ने 'लङ्कोत्तरतोऽवन्ती भूपिरिध: पिरचे: पन्वदश भागे' से 'लङ्का से श्रवन्ती भूपिरिधयोजन के पन्वदशां १५ श पर है' जो कहा है इसमें कुछ युक्ति नहीं मिलती है । चतुर्वेदाचार्यं ने श्राचार्योक्त पाठ ही का श्रनुमोदन किया है इति ।। ६

#### इदानीं निरक्षस्वदेशान्तर योजनान्याह।

## श्रक्षांशकुपरिधिवधान्मण्डलभागाप्त योजनैविषुवत् । नतभागयोजनैरेवमुपरि सूर्योऽन्यदनुपातात् ॥१०॥

सु. मा. — अक्षांशानां भूपिरिधेश्च वधात् मण्डलभागैश्चकांशैर्भक्ताद्यान्यवा-प्तानि तैर्नतभागयोजनैः स्वदेशाद्विषुवन्निरक्षदेशो भवति । एवं जिनाल्पाक्षे देशे खस्वस्तिकोपिर यदा सूर्यो भवति तदा कैनंतभागयोजनैर्विषुवद् देशो भवति । इत्यन्यच्च मेरुस्वदेशान्तरयोजनादिज्ञानं तत्तदन्तरभागतोऽनुपातात् कार्यमिति स्फुटम् । स्रत्र टीकायां चतुर्वेदाचार्यः 'कान्यकुब्जेऽक्षभागाः' २६ । ३५' ।।१०।।

वि. भा.—अक्षांशभूपिरध्योर्घाताद् भांशैर्भक्ताल्लब्धैर्नतभागयोजनैः स्वदे-शाम्त्रिरक्षदेशो भवति । विषुवच्छब्देनात्र निरक्षदेशो ज्ञेयः । जिनाल्पाक्षांशे देशे यदा सूर्यः खस्वस्तिकोपिर भवति तदा कैर्नतभागयोजनैनिरक्षदेशो भवति । भ्रन्यच्च मेरुस्वदेशान्तरयोजनादिज्ञानं तत्तदन्तरांशतोऽनुपातात्कार्यमिति ।।

#### अत्रोपपत्तिः।

यदि भांशैर्भूपरिधियोजनानि लभ्यन्ते तदा स्वदेशीयाक्षांशैः किमित्यनुपातेन लब्ध्योजनानि स्वदेशनिरक्षदेशयोरन्तरयोजनानि भवन्ति । कस्मात् कस्माह् शा- न्निरक्षदेशः कियदन्तरेऽस्तीति ज्ञानार्थं तत्तदेशीयाक्षांशवशेन पूर्वोक्तानुपातः कार्यं इति ॥१०॥

## भव स्वदेश भौर निरक्षदेश के भन्तर योजन को कहते हैं।

हि. मा.— प्रक्षांश और भूपरिधियोजन के घात में भांश ३६० से भाग दैने से जो लिब्ब हो उतने योजन पर स्वदेश से निरक्षदेश होता है। जिनाल्पा (चौबीस से कम) क्षांश देश में जब सूर्य खस्विस्तिक के ऊपर होता है तब कितने नतभाग योजन पर निरक्ष देश होता है। मेरू और स्वदेश का अन्तर योजनादि ज्ञान तत्तद्देश के अन्तरांश (अक्षांश) से करना चाहिये, यदि निरक्ष देश से किसी देश का अन्तर योजन ज्ञान करना हो तो पूर्वोक्त अनुपात से करना चाहिये। यदि साक्ष देश में दो देशों का अन्तर योजन करना हो तो दोनों देशों के अक्षांशान्तर से अनुपात (भांश में भूपरिधि योजन पाते हैं तो अक्षांशान्तर में क्या) द्वारा करना चाहिये।

#### उपपत्ति ।

यदि भांश ३६° में भूपरिधि योजन पाते हैं तो स्वदेशीयाक्षांश में क्या इस अनुपात से लब्ध योजन निरक्षदेश और स्वदेश का अन्तरयोजन होता है अर्थात् लब्ध योजनान्तर पर अपने देश से निरक्ष देश है। जिस किसी देश से निरक्ष देश की दूरी ज्ञात करनी हो तो उस देश के श्रक्षांश से पूर्वोक्तानुपात से करना चाहिये इति ॥१०॥

#### इदानीं खकक्षां ग्रहकक्षां चाह ।

श्रम्बरयोजनपरिघिः शशिभगणाः शून्यखखजिनाग्निगुणाः ३२४००० । यस्य भगर्णैविभक्तास्तत्कक्षाऽकों भषष्टचंशः ॥११॥

सु० भा०—कल्पे ये चन्द्रभगरणास्ते ३२४००० एतैर्गुरणा खकक्षा भवति । सा च यस्य ग्रहस्य कल्पभगरौविभक्ता तत्कक्षा तस्य ग्रहस्य कक्षा भवति । ग्रर्कश्च भषष्टचंशः । ग्रर्ककक्षा भकक्षायाः षष्टिभागः । अतोऽर्ककक्षा षष्टिगुरणा भकक्षा भवतीति ।

#### स्रत्रोपपत्तिः।

कस्ये चन्द्रभगराः=५७७५३३'•००००)१८७१२०६'९२०००'०००० = सक (३२४०००

द्मतो भास्करेणाचार्योक्तैव खकक्षा पठिता । शेषोपपत्तिर्भास्करोक्त-विधिना स्फुटा ॥११॥

वि. माः कल्पे ये चन्द्रभगणास्ते ३२४००० एभिर्गुणास्तदाऽम्बरयोजन-परिधिः (खकक्षा) भवति । सा (खकक्षा) यस्य ग्रहस्य कल्पभगणैर्विभक्ता तस्य ग्रहस्य कक्षा भवति । भकक्षायाः षष्ट्यं (६०) शो रविकक्षा भवतीति ॥११॥

#### स्रत्रोपपत्तिः ।

श्राकाशे चतुर्दिक्षु यावत् रवेः किरणानां व्याप्तिः (प्रसारः) तत्परिधेः प्रमाणमेव खकक्षाप्रमाणमित्यागमप्रामाण्येन मान्यम् । वस्तुतो रवेश्चलत्वादाकाशे किरणानां सञ्चारेण यावत्तमोहानिस्तदाकारो वृत्तवन्न भवति । श्रत एव कल्पकु-दिनग्रहणतियोजनघातसमा पठितखकक्षा कल्पे ग्रहभ्रमणयोजनैः समेति वक्तुं शक्यते । वेधेन गतियोजनज्ञानं भिवतुमहंति, तत्कल्पकुदिनघातसमेयं पिठतखकक्षा संख्या भवित न वेति परीक्षा न भिवतुमहंति । ग्रत एव भास्कराचार्यः ।
"ब्रह्माण्डमेतिन्मतमस्तु नो वा कल्पे ग्रहः क्रामित योजनानि । यावन्ति पूर्वेरिह
तत्प्रमाणं प्रोक्तं खकक्षाख्यमिदं मतं नः।" कल्पे चन्द्र भगगाः=५७७५३३००००
ग्रतः कल्प चन्द्रभ × ३२४०००=१८७१२०६६२०००००००=खकक्षा भास्कराचायेगाऽपि 'कोटिघ्नैनंखनन्दषट्कनखभूभूमृद्भुजङ् गेन्दुभिज्योतिःशास्त्रविदो वदन्ति
नभसः कक्षामिमां योजनें रित्यनेनाऽऽचार्योक्त खकक्षा समेव खक्षं क्षामितिः
पठिता । खकक्षा तुल्यानि योजनानि कल्पे ग्रहः क्रामित, भगगाश्च पाठपठितसमाः । एकभगगाभोगेन ग्रहः स्वकक्षावृत्तयोजनानि भ्रमित ततोऽनुपातो यदि
कल्प ग्रहभगगाः खकक्षामितयोजनानि लभ्यन्ते तदैकेन भगगोन किमिति जाता ग्रह
कक्षा = खकक्षा
कन्नभ , ग्रकोभषष्टचंश इत्यागमप्रामाण्येन भक्षा
ह०

∴ भकक्षा = ६० रिवकक्षा, एतैयोंजनैः सर्वेषां ग्रहाणामुपरि दूरे कितपय नक्षत्राणां वृत्तं भ्रमित, एतेनाऽऽचार्योक्तमुपपन्नम् ॥११॥

#### धब खकक्षा और ग्रह कक्षा को कहते हैं।

हि. मा.— कल्प में पठित चन्द्रभगरा को ३२४००० से गुराा करने से खकक्षा योजन परिधि प्रमारा होता है। खकक्षा को जिस ग्रह के कल्प भगरा से भाग देते हैं फल उस ग्रह की कक्षा होती है। नक्षत्र कक्षा का साठवां भ्रंश रिव कक्षा होती है इति।

#### उपपत्ति ।

आकाश में चारों तरफ रिव किरणों का प्रसार जहां तक होता है, उस परिधि का प्रमाण ही खकक्षा प्रमाण है यह आगम प्रमाण से माना जाता है। वस्तुत: रिव के चलत्व

१ सकक्षा सम्बन्धे प्राचार्याणां भिन्नानि भिन्नानि मतानि सन्ति, सिद्धान्तशेखरे 'हिरण्यगर्भाण्डकटाहसंपुटप्रवेष्टकं तच्च बभाषिरे बुधाः । ग्रहश्यहश्यं च गिरिं पुरातना जगुः सकक्षामिति गोलबेदिनः' हिरण्यगर्भो ब्रह्मा तस्याण्डकटाहस्य यत् संपुटं (परस्पराभिमुखं खण्डद्वयं) तदेव प्रवेष्टकं (करण्डकं यस्य तत्तयोक्तम्) बुधा गीतवन्तः । प्रर्थात् ब्रह्माण्ड-करण्डकान्तः स्थितमाकाशवृत्तमिति यावत् । गोलवेदिनो हश्याहश्यं गिरिं (लोकालोकारव्यं गिरिं) सकक्षा मिति गीतवन्तः' इति मतान्तरं श्रीपतिना कथितम् । स्वमतसम्बन्धे तेनैवं 'श्रीमदायंभटिषष्णुनन्दन श्री त्रिविक्रमसुतादिस्रिरिमः । सिद्धिरम्बरचरस्य कक्षया या कृताऽथ मयकाऽपि सोच्यते' कथ्यते । जिष्णुनन्दनो ब्रह्मगुप्तः । श्रीत्रिविक्रमसुतो लल्लः, ग्रादिशब्देन सूर्यसिद्धान्तादिकारः कश्चिदिति बोध्यम् ।।

से श्राकाश में किरणों के संचार से जितनी दूर तक श्रन्थकार नष्ट होता है उसकी श्राकृति वृत्ताकार नहीं होती है। इसलिये कल्प कुदिन श्रौर ग्रहगित योजन के घाततुल्य यह खकक्षा कल्प में ग्रहों के भ्रमण योजन 'श्रर्थात् कल्प में जितने योजन ग्रह भ्रमण करते हैं' के बराबर होती है यह कह सकते हैं। खकक्षा के सम्बन्ध में ग्राचार्यों का मत भिन्न भिन्न है इसलिये सिद्धान्तिशिरोमिण में 'ब्रह्माण्डमेतिन्मतमस्तु नो वा कल्पे ग्रहः क्रामित योजनानि' से भास्कराचार्यं कहते हैं कि कल्प में जितने योजन ग्रह भ्रमण करते हैं तत्तुल्य ही खकक्षा योजन है यह मेरा मत है।

कल्प में चन्द्रभग्या = ५७७५३३०००० ग्रतः कल्प चंभग्या × ३२४००० = १८७१२०६६२००००००० = खकक्षा । भास्कराचार्यं ने भी 'कोटिघ्नैनंखनन्द-पट्कनख भू' इत्यादि से ग्राचार्योक्त खकक्षा के बरावर ही खकक्षा मान पठित किया है। ग्रहकल्प में खकक्षा तुल्य योजन भ्रमण करते हैं, एक भग्या भोग से ग्रह स्वकक्षावृत्त योजन भ्रमण करते हैं यदि कल्प ग्रहभग्या में खकक्षायोजन पाते हैं तो एक भग्या में क्या इस ग्रनुपात करते हैं यदि कल्प ग्रहभग्या में खकक्षायोजन पाते हैं तो एक भग्या में क्या इस ग्रनुपात से ग्रह कक्षा ग्राती है खकक्षा = ग्रहकक्षा, 'श्रकों भपष्ट्यं-ष्यः' ग्रयांत नक्षत्र कक्षा का साठवां भाग रिव कक्षा है' इस ग्रागमप्रमा से भक्षा = रिव-कक्षा ∴ भक्षा = ६० × रिवकक्षा । इतने योजन पर सब ग्रहों से ऊपर दूर में कितने नक्षत्र का वृत्त है, सूर्य सिद्धान्त में 'भवेद्भकक्षा तीक्ष्णांशोभ्र म्यां पिष्टतावितम् । सर्वोपरिष्टात् भ्रमति योजनैस्तैर्भमण्डलम्' सूर्यांश पुरुष की इस उक्ति के सहश ही ग्राचार्यं ने कहा है 'यस्य भग्यौर्विभक्तास्तत्कक्षा' यह ग्राचार्योक्त भी 'सैव यत्कल्प भग्यौर्यक्ता तद्भ्रमण्ं भवेत्' इस सूर्याश पुरुषोक्त के ग्रनुरूप ही है ।।११।।

## ग्रहाः कियन्ति योजनानि भ्रमन्तीत्याह । भपरिधिसमानि षष्टघा खपरिधितुल्यानि कल्परिववर्षैः । गच्छन्ति योजनानि ग्रहाः स्वकक्षासु तुल्यानि ।।१२।।

सु० भा०—षष्टघा रिववर्षपष्टिया ग्रहाः स्वकक्षासु भूपरिधिसमानि नक्षत्रकक्षासमानि योजनानि कल्परिविवर्षेश्च खपरिधितुल्यानि खकक्षासमानि योजनानि गच्छन्ति । तथा सर्वे ग्रहाः कल्पे तुल्यान्येव योजनानि खकक्षामितानि गच्छन्ति ।

#### अत्रोपपत्तिः।

भास्करोक्तेन विधिना स्फुटा। नकक्षा=६० रकक्षा= $\frac{खक}{a} \times \xi$ ० खक= $\frac{-a \times a + 1a}{\xi o}$ ।

कल्पसौरवर्षेः खकक्षामितयोजनानि तदा सौरवर्षषष्टचा किम्। लब्धानि ग्रहभ्रमणयोजनानि = नक्षत्रकला। ग्रत उपपन्नं भपरिधिसमानि षष्टचेति। संप्रति वेधेन नवीनानां मते ग्रहाणां योजनात्मिका गतिर्न समानेति सुधीभिश्चि-चन्त्यम्।।१२।।

वि. भा. — षष्टचा (सौरवर्षषष्टचा) कल्परविवर्षैश्च खकक्षातुल्यानि नक्षत्रकक्षासमानि योजनानि ग्रहाः स्वकक्षासु गच्छन्ति । तथा सर्वे ग्रहाः कल्पे तुल्यान्येव योजनानि खकक्षातुल्यानि परिभ्रमन्तीति ।

#### श्रत्रोपपत्तिः।

भकों भषष्टचं श इत्यागमप्रामाण्यात्  $\frac{-1813811}{50} = \sqrt{1200}$  स्वकक्षा  $\frac{1}{50} \times \sqrt{120}$  स्वकक्षा  $\frac{1}{50} \times \sqrt{120}$ 

यदि कल्पसौरवर्षेः खकक्षा तुल्यानि योजनानि तदा सौरवर्षषष्टचा किं समागच्छन्ति ग्रहभ्रमण्योजनानि नक्षत्रकक्षासमानानि श्रत उपपन्नमाचार्योक्त मिति ॥१२॥

अब ग्रह कितने योजन भ्रमण करते हैं सो कहते हैं।

हि. मा. — ग्रह अपनी कक्षा में साठ सौरवर्ष से नक्षत्र कक्षातुल्य योजन कल्प रिव वर्ष से खकक्षा तुल्य योजन परिश्रमण् करते हैं. ग्रौर सब ग्रह कल्प में खकक्षा तुल्य ही योजन परिश्रमण् करते हैं।

#### उपपत्ति ।

यदि कल्प सौरवर्ष में सकक्षा योजन पाते हैं तो साठ सौरवर्ष में क्या इससे लब्ध ग्रहभ्रमण्योजन नक्षत्रकक्षा के समान भाता है इति ॥१२॥

## इदानीं ग्रहकक्षाक्रममाह ।

भगरणस्याघः शनिगृष्मूमिजरविशुक्रसौम्यचन्द्रारणाम् । कक्षा क्रमेरण शीघाः शनैश्चराद्याः कलाभुत्तचा ॥१३॥ सु. भाः—भगणस्याघो भकक्षाया श्रघः क्रमेण शनि-गुरु-कुज-रिव-शुक्र-बुघ-चन्द्राणां कक्षाः सन्ति । कलाभुत्तचा शनैश्चराद्याः शीघ्राः शीघ्रगतयः सन्ति शनेर्गुरुः शीघ्रगामी । गुरोभोंमः । भौमाद्रविरित्यादि । एवं शीघ्रतमः शशी भवतीति । यदि शशिन अर्ध्वक्रमेण कक्षापाठः क्रियते तदा 'भूमेः पिण्डः शशाङ्कज्ञ-कविरिवकुजे' इत्यादि भास्करोक्तमेतदनुरूपमेव ।

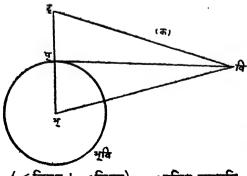
#### श्रत्रोपपत्तिः।

'कक्षाः सर्वा अपि दिविषदाम्' इत्यादिभास्करविधिना शनैश्चराद्याः शीघ्रा भवन्ति । कक्षाक्रमश्च वेघोपलब्ध्या । संप्रति वेघेन सर्वे ग्रहा दीर्घवर्तुले भ्रमन्ति । यदेकनाभौ रिवरचल इति सर्वमुपलभ्यते । प्राचीनैर्भ्भ माद्ग्रहागां कक्षा वृत्ताभा भूकेन्द्रकाश्च निश्चिता इति ।।१३।।

वि. भा- नक्षत्रकक्षाया श्रघः क्रमेण शिन-गुरु-मङ्गल-रिव-शुक्र-बुघ-चन्द्राणां कक्षाः स्युः । कलात्मकगत्या शनैश्चराद्या ग्रहाः शीघ्रगतयः सन्ति । शिनतोगुरुः, गुरोमंङ्गलः, मङ्गलाद्रविरित्यादयः शीघ्रगामिनः सन्ति । एतेन चन्द्रः सर्वेग्रहापेक्षया शीघ्रगामी भवतिः, यदि चन्द्रादूर्ध्वक्रमेण ग्रहकक्षास्थितिर्देश्यते । तदा 'भूमेः पिण्डः शशाङ्कज्ञकविरविकुजेज्यािकनक्षत्रकक्षावृत्ते' रित्यादि भास्करा-चार्योक्ता ग्रहकक्षास्थितिरेवाऽऽयातीति ।

#### भ्रत्रोपपत्तिः।

ग्रहकक्षानिवेशः कथमी दृश एतज्ज्ञानं बिम्बीयकर्णज्ञानाधीनमस्ति, यस्माद् ग्रहबिम्बीयकर्णाद्यस्य बिम्बीयकर्णमानमधिकं भवेत्तत्कक्षा महती भवत्यर्थाद्यस्य कर्णमानमल्पमस्ति कत्कक्षातः सा कक्षो (यस्यकर्णमानमधिकं तदीया) परिगता भवत्यतो वेधेन बिम्बीयकर्णसाधनं क्रियते।

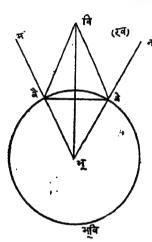


भू=भूकेन्द्रम्। पृ=भूपृष्ठस्थानम्। वि=ग्रहिबम्बकेन्द्रम्। ह=
हिष्टस्थानम्। पृह=नरोिच्छ्रितिः।
भूवि = बिम्बीयकर्गः। भूपृ =
भूव्यासार्घम्। भूव्यासार्घं विदितमस्ति, तथा नरोिच्छ्रितिरिप बिदितास्ति। विपृह, विहपृतुरीय यन्त्रहारामापनेनः। विदितौ ततः १८०-

(<विपृह+<विदृपृ)=<पृविह ग्रयमि को सो विदितो जातस्तदा विपृह त्रि-

भुजेऽनुपातेन पृह×ज्या < पृहिव — पृवि, कोर्णाज्या कोर्णोनभार्घाशज्ययोस्तुत्यत्वात् ज्या < पृविह ज्या < विपृह — ज्या < विपृह — रविपृह ) < विपृभू कोर्णस्यापिश्चानं जातम् । तदा विपृभू त्रिभुजे विपृ, भूपृ भुजयोस्तदन्तर्गतकोर्णस्य ज्ञानात् 'भूसंमुखास्रोद्भव कोटिशिङ्जिनीत्या' दि प्रकारेर्ण भूवि भुजस्य ज्ञानं भवेदयमेव विम्बीयकर्णं इति ।

## अथवा वेघेन बिम्बीयकर्गानयनम्।



भू = भूकेन्द्रम् । वि = ग्रह् बिम्बकेन्द्रम् । वे = प्रथमवेन घस्थानम् । वे = द्वितीयवेधस्थानम् । भूवि = ग्रह्बिम्बीयकर्णः । विवेन, विवेम कोगाौ तुरीययन्त्रद्वारा
मापनेन विदितौ, वेवे = वेधस्थानान्तरं विदितमस्ति
तदा तत्पूर्गांज्याऽपि विदिता भवेत् । भूवे = भूवे = भूव्यासार्धम् । तदा भूवेवे त्रिभुजे भुजत्रयज्ञानात् कोगात्रयस्यापि ज्ञानं भवेदेव १८० — ( < विवेन + < भूवेवे )
= < विवेवे एवं १८० — ( < विवेम + ८ भूवेवे )
< < विवेवे इति कोगाद्वयस्य ज्ञानात् १८० —

वेवि भुजयोस्तदन्तर्गंतकोरास्य च ज्ञानात् 'भूसंमुखास्रोद्भवकोटिशिञ्जिनी' त्यादिना भूवि स्राधारस्य ज्ञानं भवेदयमेव बिम्बीयकर्गः ।

एतद्वेधेन कर्णानयनेन सर्वंग्रहकर्णापेक्षया चन्द्रस्य कर्णोऽल्प उपलब्धोऽतः सर्वेषां ग्रहाणां कक्षापेक्षया चन्द्रकक्षालघ्वी, चन्द्रबिम्बीयकर्णाद्बुधिबम्बीय-कर्णोऽधिकस्ततोऽधिकः शुक्रस्येत्यादेर्यथा यथाऽधिकः कर्णा उपलब्धस्तथातथोप-र्युपरि चन्द्रबुधशुक्ररिवकुजगुरुशनैश्चराणां कक्षा ग्राचार्येणोक्ताः । वेधादिना सूर्यकेन्द्राद् ग्रहाणां विम्बान्तरसूत्रज्ञानेन ग्रहाः सूर्यपरितो दीर्घवृत्ताकारकक्षासु भ्रमन्तीति नव्यानां मतेन सिध्यति ॥१३॥

श्रव ग्रहकक्षाक्रम को कहते हैं।
हि. मा. — नक्षत्र कक्षा के नीचे क्रम से शनि-गुरु-मङ्गल-रिव-गुक्र-बुध-चन्द्र

ग्रहों की कक्षाएं हैं। कलात्मक गित से शनैश्चरादिग्रह शीघ्रगितक है ग्रर्थात् शिन से गुरु शीघ्रगितिक है, गुरु से मङ्गल, मङ्गल से रिव, रिव से शुक्र, शुक्र से बुध, बुध से चन्द्र शीघ्र-गामी है। इससे चन्द्र सब ग्रहों से ग्रिधक शीघ्रगितक सिद्ध होता है। यदि चन्द्र से उर्ध्व क्रम से ग्रह कक्षा स्थिति को देखा जाय तो सिद्धान्तिशरोमिण में 'भूमेः पिण्डः शशाङ्कत्र किव-रिवकुजेज्यािक नक्षत्रकक्षा' इत्यादि भास्कराचार्योक्त ग्रह कक्षा स्थिति ही देखने में ग्राती है।

#### उपपत्ति ।

यहां संस्कृतोपपत्ति में लिखित (क) क्षेत्र को देखिये। ग्रह कथान्रों का निवेशक्रम ऐसा (भाष्य में लिखित के अनुसार) क्यों हैं इसका ज्ञान ग्रहों के बिम्बीय कर्णों के ज्ञान से होता है। जिस ग्रह के बिम्बीय कर्णों में जिस ग्रह का बिम्बीय कर्णे ग्रधिक होता है उसकी कक्षा बड़ी होती है अर्थात् जिसका विम्बीय कर्णे ग्रल्प है उसकी कक्षा से वह कक्षा (जिसका बिम्बीय कर्णे ग्रधिक है) ऊपर होती है। ग्रतः वेघ से बिम्बीय कर्णानयन करते हैं।

भू = भूकेन्द्र, पृ = भूपृष्ठस्थानं, वि := ग्रह विम्बकेन्द्र, ह = हिष्टस्थान, पृह == नरोच्छिति, भूवि = बिम्बीयकर्णं, भूपृ = भूव्यासार्घं, भूव्यासार्घं और नरोच्छिति विदित है, विपृह,
विहपृ दोनों कोण तुरीय यन्त्र से मापन करके जान लिये तब १००-( < विपृह + < विहपृ)
= < पृविह यह कोण भी विदित हो गया, भ्रव विपृह त्रिभुज में अनुपात करते हैं।
पृह × ज्या < पृहिव = पृवि, कोण्ज्या और कोणोन भाषांशज्या बरावर होती है म्रतः
ज्या < विपृह = ज्या (१०० - < विपृह) से < विपृभू कोण का भी ज्ञान हो गया
तब विपृभू त्रिभुज में विपृ, भूपृ इन दोनों भुजों के तथा उसके मन्तर्गत कोण के ज्ञान से 'भूसंमुखास्रोद्भव कोठिशिञ्जिनो' इत्यादि प्रकार से भूवि भुज (म्राघार) का ज्ञान हो
जायगा यही बिम्बीय कर्णं है इति ।

#### प्रकारान्तर से बिम्बीय कर्गानयन करते हैं।

यहां संस्कृतोपपत्ति में लिखित (ख) क्षेत्र को देखिये। भू=भूकेन्द्र, वि=ग्रहिबम्ब-केन्द्र, वे=प्रथम वेघ स्थान, वें=द्वितीय वेघस्थान। भूवि =िबम्बीयकर्गां, विवेन, विवेम दोनों को गुरीय यन्त्र से मापन कर जान लिया, वेव = वेघस्थानान्तर विदित है, तब वेव चाप की पूर्गांज्या भी विदित हो जायगी, भूवे=भूवे = व्यासाघं तब भूवेवे त्रिभुज में तीनों भुजों के ज्ञान से तीनों कोगों का भी ज्ञान हो जायगा, १८०—(<विवेन + < भूवेवे) = <विवेव, एवं १८०—(<विवेम + < भूवेवे) = <विवेवे इन दोनों कोगों के ज्ञान से १८०—(<विवेव + <विवेवे |

श्राचार्योक्त पाठ है इति ॥१३॥

भुज में ग्रनुपात करने हैं  $\frac{\dot{a}\dot{a} \times \sigma u < \dot{a}\dot{a}\dot{a}}{\dot{a}\dot{a} \times \sigma u} = \dot{a}\dot{a}\dot{a}$  =  $\dot{a}\dot{a}\dot{a}$  =  $\dot{a}\dot{a}\dot{a}$ 

इस वेघ द्वारा कर्णानयन से सब ग्रहों के विम्बीय कर्णों की ग्रिपेक्षा चन्द्र का बिम्बीय कर्ण ग्रत्य उपलब्ध होता है ग्रतः सब ग्रहों की कक्षा की ग्रपेक्षा चन्द्र कक्षा छोटी है, चन्द्र कर्ण से बुध का कर्ण ग्रधिक होता है, ग्रतः चन्द्र कक्षा से बुध कक्षा बड़ी होती है, बुध कर्ण से शुक्र का कर्ण ग्रधिक होता है ग्रतः बुध कक्षा से शुक्र कक्षा बड़ी होती है, एवं शुक्र कक्षा से रिव कक्षा, रिव कक्षा से कुज कक्षा, कुज कक्षा से गुरु कक्षा इत्यादि कक्षाग्रों की छोटी बड़ी होने का कारण बिम्बीय कर्ण की न्यूनाधिकता है तथा कक्षाएं एक केन्द्रिक है इसलिये उपर्युपरि ग्राचार्योक्त कक्षाक्रम पाठ के सहश है, सूर्य सिद्धान्त में 'मन्दामरेज्यभूपुत्रसूर्यं- शुक्र न्दुजेन्दवः परिश्रमन्त्यघोऽधः स्थाः' इस सूर्यांश पुरुषोक्त कक्षाक्रम पाठ के ग्रनुरूप ही

इदानीं शनैश्चराद्याः कथं शीघ्रा इत्यस्य कारगामाह ।

# लघवोऽल्पे राश्यंशा महति महान्तोऽल्पवृत्तमल्पेन । पूरयतीन्दुर्महता कालेन महच्छनेश्चारी ॥१४॥

सुः माः — अल्पे वृत्ते राश्यंशाश्चक्रांशविभागा लघवो महित वृत्ते च महान्तो भवन्ति । श्रत इन्दुश्चन्द्रोऽल्पवृत्तं स्वकक्षाया श्रल्पेन कालेन शनैश्चारी शनिश्च महद्वृत्तं स्वकक्षाया महता कालेन पूरयति ।

म्रत्रोपपत्तिरचैककेन्द्रवृत्तानां चक्रांशविभागेनैव स्फुटा ॥१४॥

वि. मा.—ग्रल्पे वृत्ते भगणांशविभागा लघवो भवन्ति, महति वृत्ते ते विभागा महान्तो भवन्ति । ग्रस्मात् कारणात् चन्द्रोऽल्पवृत्तं स्वकक्षाया ग्रल्पेन कालेन पूरयति, शनैश्चारी (शनिः) महद्वृत्तं स्वकक्षाया महता कालेन पूरयतीति ।

#### श्रत्रोपपत्ति:।

सर्वेषां ग्रहाणां योजनात्मकगतयस्तुल्या एव भवन्ति, 'कल्पोद्भवैः क्षिति-दिनैगंगनस्य कक्षा भक्ता भवेद्दिनगतिगंगनेचरस्य । पादोनगोऽक्षघृतिभूमित योजनानी' त्यादि भास्करोक्तेः । सर्वासां ग्रहकक्षाणां कलानां वैषम्यात् कलादिका गतयस्तुल्या न भवंति । अर्थात् ग्रहाः स्वस्वकक्षावृत्ते भ्रमन्ति, कक्षावृत्तानि च चक्रकलाभिरिक्कृतानि सम्ति तेन यदि ग्रहकक्षायोजनैश्चक्रकला लभ्यन्ते तदा ग्रहगितयोजनैः किमित्यनुपातेन योजनगितसम्बिन्धिकलाः समायान्ति । तस्मा-द्यस्य ग्रहस्य कक्षा महती तस्य कलाया लघुत्वं, यस्य कक्षा लघ्वी तस्य कलाया महत्वं सिध्यति । शिन कक्षाऽन्यग्रहापेक्षया महती, चन्द्रकक्षा च लघ्वी, ग्रतः शनैश्चरस्य कलात्मिका मध्यगितर्लघुतमा, चन्द्रस्य च महत्तमा भवित, चन्द्रापेक्षया बुघोऽल्पगितः । बुघापेक्षया शुक्रोऽल्पगितः । शुक्रापेक्षया रिवरल्प-गितिरत्यादि । सिद्धान्तशेखरे 'तुल्या गितर्योजनवर्त्मनैषां लिप्ता प्रकृत्या मृदुशीघ्र-भावः' ऽप्येवमेवास्ति । सिद्धान्तिशरोमग्गौ "कक्षाः सर्वा ग्रिपि दिविषदां चक्रलिप्ता-च्चित्तास्ता वृत्ते लघ्व्यो लघुनि महति स्युर्महत्यश्च लिप्ताः । तस्मादेते शिज-भृगुजादित्यभौमेज्यमन्दा मन्दाक्रान्ता इव शशधराद् भान्ति यान्तः क्रमेग्य' इत्यनेन भास्कराचार्येगाप्याचार्योक्तानुरूपमेव कथ्यत इति ॥१४॥

श्रब शनैदचरादिग्रह कैसे शीधगितिक होते हैं इसके कारए। कहते हैं।

हि. मा.—स्वल्पवृत्त में राश्यंश विभाग लघु होते हैं। यहदृत्त में वे विभाग महान् (बड़े) होते हैं। इस कारण से चन्द्र छोटी अपनी कक्षा को अल्प समय में ही पूरा करते हैं अर्थात् सम्पूर्ण कक्षा में घूम जाते हैं, और शनैश्चर अपनी बड़ी कक्षा को बहुत समय में पूरा करते हैं अर्थात् सम्पूर्ण कक्षा में घूम में घूमते हैं।

#### उपपत्ति

सब ग्रहों की योजनात्मक गित तुल्य ही होती है, 'समा गितस्तु योजनैनंभः सदां सदा भवेदि' ति भास्करोक्तेः सिद्धान्तशेखरेऽपि 'तुल्यागितर्योजनवर्मनेषां' श्रीपत्युक्तेः । सव ग्रह कक्षाभ्रों की कलाश्रों की ग्रसमता के कारण कलादिक गित तुल्य नहीं होती है प्रशींत् प्रपनी अपनी कक्षा में भ्रमण करते हैं। कक्षा वृत्तों में चक्रकला ग्रिक्कृत है अतः यदि ग्रह कक्षा योजन में चक्र कला पाते हैं तो ग्रहगित योजन में क्या इस अनुपात से योजन गित सम्बन्धी कला भ्राती है। इस कारण से जिस ग्रह की कक्षा बड़ी हैं उसकी कला छोटी होती है और जिसकी कक्षा छोटी है उसकी कला बड़ी होती है यह सिद्ध हुआ। शिन कक्षा सब ग्रहों की कक्षाओं से बड़ी है इसलिये शनैश्वर की कलात्मक मध्यमगित सब ग्रहों की गित से छोटी होती है, चन्द्रकक्षा सब ग्रहों की कक्षा से छोटी है इसलिए चन्द्र की कला-त्मक मध्यमगित सब ग्रहों की मध्यम गित से बड़ी होती है। ग्रतः सबसे शिष्टगितिक चन्द्र होता है। चन्द्र से श्रल्पगितिक बुध, बुध से अत्पगितिक शुक्र, शुक्र से श्रत्पगितिक रिव इत्यादि कक्षाक्रम के श्रनुसार शीष्ट्रगितिक ग्रीर मन्दगितक होते हैं। सिद्धान्तशेखर में 'तुल्यागितर्योजनवर्त्तनेषां लिप्ता प्रकृत्या मृदुशीग्रभावः' इससे श्रीपित ने भी शीष्ट्रगितिक ग्रीर मन्दगितक होने का कारण यही कहा है। सिद्धान्त शिरोमिण में 'कक्षाः सर्वा भ्रिप दिविषदां' इत्यादि में भास्कराचार्यं भी भ्राचार्योक्त के भ्रनुरूप ही कहा है इति ।।१४।।

इदानीं कृत्तपरिघेर्व्यासानयनमाह । यन्मूलं तद्व्यासो मण्डललिप्ताकृतेर्दशहृतायाः । तस्यार्षं व्यासार्षं योजनकर्णंप्रमारणार्धम् ॥१५॥ सु. भा.—मण्डललिप्ताकृतेरचक्रकलाकृतेर्दंशहृताया यन्मूलं तच्चक्रकलाषिर-घेर्व्यासो भवित तस्यार्धं व्यासार्धं भवित । तद्वचासार्धं ग्रहकक्षायोजनैर्गुणं चक्र-कलाहृतं फलं ग्रहयोजनकर्गांप्रमाणं भवित । एवं योजनकर्णं प्रमाणार्थमिदं व्यासार्धमुपयुक्तमस्ति । इदं व्यासार्धं स्थूलं स्थूलाद्ग्रहयोजनकर्गंप्रमाणं च स्थूलं सुखार्थमङ्गीकृतम् । वस्तुतो वृत्तपरिधिवर्गस्य दशहृतस्य मूलं व्यासो न सूक्ष्मो भवतीति सूचितम् । ज्यादीनामानयने स्थूलत्वादयं व्यासो न युक्त इत्येतदर्थं वक्ष्यति चेति ।।१५॥

वि. भार-दशभक्तस्य चक्रकलावर्गस्य यन्मूलं तच्चक्रकला परिघेर्व्यासो भवति । तस्यार्धं व्यासार्धं भवति । तद्व्यासार्धं ग्रह कक्षायोजनैर्गुणं चक्रकलाभक्तं तदा ग्रहयोजनकर्णप्रमाणं भवति, इदं साधितं व्यासार्धं योजनकर्णप्रमाणार्थ-मुपयुक्तमस्तीति ।

#### अत्रोपपत्तिः ।

व्यासे भनन्दाग्निहते विभक्ते खवाग्यसूर्येरित्यादि भास्करोक्तपरिध्यान-यनप्रकारेण वृत्तपरिधिः=  $\frac{521 \times 3870}{8740}$ , म्रत्रा  $\frac{3870}{8740}$  स्य विततरूपकर-रोनाऽऽसन्नमानानि  $\frac{27}{9}$ ,  $\frac{344}{883}$ ,  $\frac{3829}{8240}$  व्यास परिष्योः सम्बन्धः  $\frac{27}{9}$  $\frac{344}{273}$ ,  $\frac{3636}{2240}$  भास्करेगा व्यास  $\times$  सम्बन्ध  $=\frac{221\times3926}{2240}$  = सूक्ष्मपरिधिः कथ्यते, तथा  $\frac{22 \times 221}{10}$  = स्थूलपरिधिः कथ्यते, पर  $\frac{344}{993}$  मिदं कथं न गृहीतं, एतद्ग्रहरोन तु-भास्करोक्तसूक्ष्मपरिघितोऽपि सूक्ष्मतरः परिधिर्भवितुमहृति ।  $\frac{\text{परिधि}}{\text{व्या}} = \text{सम्बन्ध} = \text{सं} = \frac{22}{9} = 3 + \frac{2}{9} \text{अत्राऽस्य वर्ग: } \text{सं}^3 = \left(3 + \frac{2}{9}\right)^3$ = १० स्वल्पान्तरात् :  $\frac{{}^{4}}{{}^{2}}$  = १० :  $\frac{{}^{4}}{{}^{2}}$  परिधि' = १०  $\times$  व्या' पक्षौ १० भक्तौ तदा  $\frac{qरिधि<sup>3</sup>}{% }$  = क्या<sup>3</sup>, मूलेन  $\sqrt{\frac{qरिधि<sup>3</sup>}{% }}$  = क्यासः, परन्तु  $\left(3 + \frac{% }{19}\right)^{3}$ < १० मतः 'तद्वर्गतो दशगुणात्पदं परिधिरि' तिसूर्यसिद्धान्तोक्तपरिध्यानयने नव्याः "तद्वर्गतोऽदशगुणात् पदं परिषिः" न दशेत्यदश कि चिन्न्यूना दश तेर्गुणात् पदं परिघिरेवं कथयन्ति दशगुराक एव समीचीन इति कमलाकरेएा सौरवासनायां सिद्धान्ततत्वविवेके च सर्वं युक्ति शून्यं प्रलिपतं रङ्गनाथेन स्वगूढ़ार्थप्रकाशे दश-गुराकः स्थूल उक्तः । एवं सौरभाष्ये नृसिहेनापि व्यासः कि चिद्धिकत्रिभिर्गुरिगतः

परिधिर्भवति, तत्र किन्धिदधिकत्रयाणां वर्गो दशिमतः कृतस्तेन व्यासवर्गो दशिमगुणितस्तन्मूलं स्थूलः परिधिरेव भिवतुमहंति, दशग्रहणाद् दोषावहमेव व्याख्यातमतो मन्नव्यानां व्याख्यानमेव समीचीनिमिति सूर्यसिद्धान्तस्य सुधार्वाषणीटीकायां
म.म. पण्डित सुधाकरिद्धवेदिनः कथयन्ति । स्थूलपरिधितः साधितं व्यासाधं
स्थूलमेव भवेत् । वस्तुतो दश भक्तस्य वृत्तपरिधिवर्गस्य मूलं सूक्ष्मो व्यासो न
भवति, ग्रयं साधितो व्यासः स्थूलः, ज्यादीनामानयनोपयुक्तो निह तत एवाग्रे
कथयतीति ॥१५॥

#### म्रब परिधि से व्यास के म्रानयन को कहते हैं।

हि. भा. — चक्रकला वर्ग को दश से भाग देने से जो लब्ध हो उसका मूल चक्र कला परिधि का व्यास होता है उसका ग्राधा व्यासार्व है। उस व्यासार्घ को ग्रह कक्षा योजन से गुणा कर चक्रकला से भाग देने से ग्रह योजन कर्ण प्रमाण होता है। यह साधित व्यासार्घ योजन कर्ण प्रमाण के लिये उपयुक्त है। ८

#### उपपत्ति ।

'व्यासे भनन्दाग्निहते विभक्ते खवाग्रासूर्यें:' इत्यादि भास्करोक्तपरिष्यानयन से वृत्तपरिधि =  $\frac{3876 \times 201}{8240}$  यहां इसका विततस्य करने से आसम्म मान  $\frac{27}{9}$ ,  $\frac{344}{8240}$  व्या =  $\frac{3876}{8240}$  आते हैं, व्यास और परिधि का सम्बन्ध =  $\frac{27}{9}$ ,  $\frac{344}{8240}$  व्या =  $\frac{27}{8240}$  आते हैं, व्यास और परिधि का सम्बन्ध = सं व्या  $\times$  प =  $\frac{211}{8240}$  व्या =  $\frac{211}{8240}$  व्या =  $\frac{211}{8240}$  व्यास, परिधि = प, व्यास और परिधि का सम्बन्ध = सं व्या  $\times$  प =  $\frac{211}{8240}$  व्यास मानकरोक्त सूक्ष्म परिधि, तथा  $\frac{22 \times 201}{9}$  = स्थूलपरिधि, परन्तु  $\frac{344 \times 201}{8240}$  यह भास्करोक्त सूक्ष्म परिधि से सूक्ष्मतर परिधि है, जिसको भास्कराचार्य ने नहीं कहा है। इस से सम्बन्ध में ''व्यासे पन्छशराग्नि क्षुप्पे दहनेशभाजिते परिधि: । आवार्योक्तात्सूक्ष्मा त्यिरिधेरिप भवित सूक्ष्मतरः'' यह संशोधक (बापूदेव शास्त्री जी) कहते हैं।  $\frac{41}{201}$  = सं इसका वर्गे =  $\frac{2}{1}$  श्रितः  $\frac{2}{1}$  श्रितः  $\frac{2}{1}$  व्यास =  $\frac{2}{1}$  व्यास दोनों पक्षों को दश से भाग देने से  $\frac{4}{1}$  =  $\frac{2}{1}$  व्या, मूल लेने से  $\frac{4}{1}$  =  $\frac{2}{1}$  व्या, परन्तु (  $\frac{2}{1}$  +  $\frac{2}{1}$ )  $\frac{2}{1}$  श्रितः तहर्गतोदशगुगात्पद परिधिः' इस सूर्यसिद्धान्तोक्त परिष्यानयन में नवीन लोग 'तहर्गतोऽदशगुगुगात्पद परिधिः' नहीं जो दश वह ब्रदश हमा

ग्रधांत् किन्बिन्न्यून दश से परिधि को गुणा कर मूल लेने से व्यास होता हैं इस तरह कहते हैं। दश गुणक ही ठीक हैं यह बात कमलाकर ने 'सौरवासना में' ग्रौर सिद्धान्त तत्त्व विवेक में सब युक्ति शून्य कही है। रङ्गनाथ ने ग्रपनी गूदार्थ प्रकाश टीका में दश गुणक को स्थूल कहा है। एवं सौर भाष्य में नृसिंह ने भी व्यास को तीन से कुछ ग्रधिक गुणक से गुणा करने से परिधि मान बताया है, वहाँ कुछ ग्रधिक तीन का वर्ग दश लिया है। ग्रतः व्यास वर्ग को दस से गुणाकर मूल लेने से स्थूल परिधिमान हो सकता है दश ग्रहण से दोषावह ही व्याख्या की गई है इसलिये हम नवीनों के व्याख्यान ही समीचीन हैं ये बातें सूर्यसिद्धान्त की सुधाविष्णी टीका में म.म. पण्डित सुधाकर द्विवेदीजी कहते हैं। स्थूल परिधि से साधित व्यासार्थ स्थूल ही है। वस्तुतः वृत्तपरिधि वर्ग को दस से भाग देकर मूल लेने से सूक्ष्म व्यास नहीं होता है, यह साधित व्यास स्थूल है, ज्या ग्रादियों के साधन के लिये उपयुक्त नहीं है इसलिये ग्रागे कहते हैं इति ।।१५॥

## इदानीं तदेव प्रतिपादयति ।

# भगगाकला व्यासाधँ भवति कलाभियंतो न सविकलं हि। ज्यार्धानि न स्फुटानि च ततः कृतं व्यासदलमन्यत् ॥१६॥

सु. मा.—यतो भगएकलाव्यासार्धं पूर्वप्रकारेए। सकलाभिः सावयवाभिः कलाभिरिप स्फुटं न भवित ततस्तस्माद्व्यासार्घाज्ज्यार्घानि च न स्फुटानि भवन्ति, तस्माज्ज्यासाधने स्फुटार्थं मया चक्रकलापरिविव्यासार्धमन्यत् कृतमित्याः चार्योक्तिर्गोलयुक्तियुक्ताऽतिसमीचीनेति सिद्धान्तविदां स्फुटमिति । चतुर्वेदाचार्य-सम्मतः पाठः 'सिविकलम्'—इति । सिवकलं सशेषिमत्यर्थः ।।१६।।

## इति सामान्यगोल प्रकरणम्।

वि. माः—हि (यतः) भगगाकलाव्यासार्घं पूर्वप्रकारेगा सावयवाभिः कलाभिरिप स्फुटं न भवति, ततः (तस्मात्) ज्यार्घानि स्फुटानि न भवन्ति, श्रस्मात् मया स्फुटार्थं चक्रकलापरिधि व्यासार्धं श्रन्यत्' कृतिमित्याचार्योक्ति-गॉलयुक्तियुक्ता । सिवकलं (स्शेषम्) इति ॥१६॥

इति सामान्यगोल प्रकरणम्

## भ्रब उसी को कहते हैं।

हि. भा.—जिस हेतु से सावयव कलाभ्रों से भी भगगा कला व्यासार्ध स्फुट नहीं होता है, इससे ज्यार्घ भी स्फुट नहीं होते हैं, इस कारगा से मैंने स्फुटार्थ चक्रकला परिधि व्यासार्घ ग्रन्य किया है यह ग्राचार्य की उक्ति गोलयुक्ति से युत है इति ॥१६॥

इति सामान्य गोल प्रकरण समाप्त हुआ।

१. दूसरा।

#### श्रथ ज्याप्रकरणं प्रारभ्यते

तत्र प्रथमं ज्याखण्डानयनमाह।

राश्यष्टांशेष्वङ्कान् पदसन्धिम्यः क्रमोत्क्रमात् कृत्वा । बघ्नीयात् सूत्राणि द्वयोर्द्धयोर्ज्यास्तदर्धानि ॥१७॥ ज्यार्धानि ज्यार्धानां ज्याखण्डान्यन्तराणि तान्येव । ज्यस्तान्यन्त्यादथवेषुरुतक्रमज्या धनुस्ताम्याम् ॥१८॥

सु. भा.—इष्टित्रिज्यया वृत्तमुत्पाद्य लम्बरूपाभ्यां व्यासाभ्यां वृत्तचतुर्भागं कृत्वा चत्वारि पदानि कार्याणि । तत्र कस्माचिदिप पदसन्धितो ऽष्टादशशतकलानामष्टांशसमं शरिद्वदस्रकलात्मकं घनुः क्रमादुत्क्रमात् कृत्वाऽर्थादुभयतो दत्त्वा
द्वयोरग्रयोः सूत्रं बघ्नीयादेवं द्विगुणशरिद्वदस्रकलाचापं पदसन्धित उभयतो दत्त्वा
द्वयोरग्रयोः सूत्रं बघ्नीयात् । एवं त्रिगुणचतुर्गुणादि प्रथमचापवशतः सूत्राणि
वघ्नीयात् । एवं द्वयोद्वयोरग्रयोबंद्धानि सूत्राणि ज्याः पूर्णांज्या भवन्ति । तासामर्घानि ज्यार्घानि चतुर्विशतिर्भवन्ति ज्यार्थानामन्तराणि ज्याखण्डानि भवन्ति ।
तान्येवान्त्याद्वचस्तानि स्थाप्यानि तदोत्क्रमज्या उत्क्रमज्या खण्डान्यथवेषुः शरखंण्डानि भवन्ति । ताभ्यां क्रमोत्क्रमज्याखण्डानां घनुः साधनीयम् ।

#### अत्रोपपत्तिः ।

'इष्टाङ्गुलव्यासदलेन वृत्तम्'—इत्यादि विधिना तथा 'स्यादुत्क्रमज्याऽत्र विलोमखण्डैः'-इत्यादि विधिना भास्करोक्तेन स्फुटा ॥१७-१८॥

निः माः—इष्टित्रिज्यथा वृत्तं विलिख्य लम्बरूपाभ्यां व्यासाभ्यां वृत्तचतुर्भागं विधाय पदानि कल्प्यानि, तत्र कस्माचिदपि व्यासप्रान्तासक्त (पदसिन्ध) बिन्दोः राशिकलानां (ग्रष्टादशशतकलानां) ग्रष्टमांशेषु (शरिद्वदस्कलात्मकेषु) प्रत्येकम-ङ्कान्—लाञ्छनान् (चिह्नानि) क्रमादुत्कमात् कृत्वाऽर्थादुभयभागतो दत्त्वा द्वयोद्वंयोः संमुखस्यचिन्हयोः सूत्राणि बघ्नीयात् तानि ज्याः (पूर्णंज्याः) भवन्ति, तासां पूर्णंज्या-नामधानि ज्याधानि चतुर्विशतिर्भवन्ति । ज्याधानामन्तराणि यानि तानि ज्याख-ण्डानि भवन्ति । तान्येवान्त्याद्वचस्तानि स्थाप्यानि तदोत्क्रमज्या खण्डानि, ग्रथवेषुः शरखण्डानि भवन्ति, ताभ्यां (क्रमोत्क्रमज्या खण्डाभ्यां) धनुः (चापं) साध्य-मिति ।।

#### श्रत्रोपपत्तिः ।

सिद्धान्तशेखरे "राश्यष्टभागेषु विधाय लाञ्छनान् सन्धेः पदानां तदनु द्वयोद्वंयोः। निवध्य सूत्राणि परस्परं तयोः क्रमात् क्रमज्या शकलानि तद्दलम्।। जीबादलानां वित्रराणि यानि ज्याखण्डकानीह भवन्ति तानि। व्यस्तानि वान्त्यादिषुवत्
स्थितानि भचक्रषड्गोंऽशधनुर्दलस्य।।" इति सर्वथैवाऽऽचार्योक्तमेव श्लोकान्तरेगोक्तं श्रीपतिना। भास्करोऽप्यमुमेवाशयं किश्विद्विशदीकृत्य इष्टाङ्गुल व्यास
दलेन वृत्तं कार्यं दिगङ्क भलवाङ्कितं च। ज्यासंख्ययाप्ता नवतेर्लवा ये तदाद्यजीवा
धनुरेतदेव।। द्वित्र्यादिनिष्नं तदनन्तरागां चापे तु दत्वोभयतो दिगङ्कात्। ज्ञेयं
तदग्रद्वयवद्धरज्जोरधं ज्यकार्धं निखिलानि चैवम्।। ज्याचापमध्ये खलुवागारूपा
स्यादुत्क्रमज्याऽत्र विलोमखण्डैः॥" एवमाह पूर्वं पठिताः क्रमज्या उत्क्रमज्याश्च
कथमानीयन्ते इत्येतदर्थमियमुपपत्तिरेव ज्यासाधनस्य। त्रिज्यादि कत्पनयाऽनेन
विधिना ज्यार्थानां प्रमागान्यानेतुं शक्यन्त एवेति॥१७।१८॥।

# भव ज्या प्रकरण प्रारम्भ किया जाता है। उसमें पहले ज्याखण्डानयन कहते हैं।

हि. भा- इष्ट त्रिज्या से वृत्त बना कर लम्बरूप दोनों व्यासों से वृत्त को चार भाग करने से चार पद होते हैं। उसमें किसी पद सिंग्य से अठारह सौ कलाओं के अष्टांश २२४ दो सौ पचीस कला तुल्य चाप को क्रम से और विलोम से अर्थात् दोनों तरफ से देकर दोनों के अग्र में सूत्र को बाँघ देना चाहिए। एवं द्विगुिएत दो सौ पचीस कला को पद सिंग्य से दोनों तरफ से देकर दोनों के अग्र में सूत्र को बाँघ देना चाहिए। इस तरह दो दो के अग्र में बाँघ हुए सूत्र पूर्यांज्याएं होती हैं। उनके आधे चौबीस ज्याघं (अर्घंज्या) होते हैं। ज्याघों के अन्तर ज्याखण्ड होते हैं। उन्हीं को अन्त्य से अयस्त (उल्टा) स्थापन करना। तब क्रमज्याखण्ड अथवा शरखण्ड होते हैं। उन दोनों खण्डों (क्रमज्या खण्ड औरउत्क्रमज्याखण्ड) से चाप साघन करना चाहिए।।

## उपपत्ति ।

सिद्धान्तशेखर में 'राश्यष्ट भागेषु विधाय लाञ्छनान् सन्धेः पदानां' इत्यादि संस्कृतो-पपत्ति में लिखित श्लोकों से श्रीपित ने ग्राचार्योक्त ही को सर्वथा श्लोकान्तर से कहा है। भास्कराचार्यं भी इसी ग्राशय को कुछ विशद कर 'इष्टाङ्गुलव्यासदलेन वृत्तं कार्यं दिनक्कं भलवाक्कितं च' इत्यादि श्लोकों से इस तरह कहते हैं। क्रमज्याएं ग्रीर उत्क्रमज्याएं कैसे लायी जाती हैं इसके लिये ज्यासाधन की यही उपपत्ति है त्रिज्यादि कल्पना कर इसी विधि से ज्याधों के प्रमारा ला सकते हैं इति ।।१७-१८।।

## इदानीं गिएतिन ज्यार्धानयनमाह।

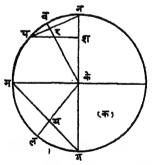
# एकद्वित्रिगुर्गाया व्यासार्धकृतेः पृथक् चतुर्थेम्यः । मूलान्यष्टद्वादशषोडशखण्डान्यतोऽन्यानि ॥१६॥

सुः भाः—व्यासार्घकृतेस्त्रिज्याकृतेः किभूतायाः । एकगुणायास्तथा द्विगुणायास्तथा त्रिगुणायाः पृथक् चतुर्थे भ्यश्चतुर्भागेभ्यो मूलानि क्रमेण अष्ट द्वादश
षोडश ज्याखण्डानि ज्यार्घानि भवन्ति । अत एभ्यो ज्यार्धेभ्योऽन्यानि वक्ष्यमाण्विधिना साध्यानि । अत्रैतदुक्तं भवति । त्रिज्यावर्गे एकगुणश्चतुर्भक्तस्तन्मूलं
राशिज्याऽष्टमी ज्या । त्रिज्यावर्गो द्विगुणश्चतुर्भक्तस्तन्मूलं शरवेदभागज्या द्वादशी
ज्या । त्रिज्यावर्गस्त्रिगुणश्चतुर्भक्तस्तन्मूलं षष्टिभागज्या षोडशी ज्या ।

भ्रत्रोपपत्तिः । भास्करज्योत्पत्त्या स्फुटा । भास्करेगापि तथैव पटितत्वा-दिति ॥१६॥

वि. भा.—एकगुणितत्रिज्यावर्गस्य, तथा द्विगुणितत्रिज्यावर्गस्य, तथा त्रिगुणितित्रज्यावर्गस्य, तथा त्रिगुणितित्रज्यावर्गस्य पृथक् चतुर्विभक्तस्य मूलानि क्रमेण अष्ट-द्वादश-षोङ्श ज्यार्घीनि भवन्ति, अत एभ्यो ज्यार्घेभ्योऽन्यानि ज्यार्घीन वक्ष्यमाणिविधना साध्यानीति।

#### श्रत्रोपपत्तिः।



के = वृत्तकेन्द्रम् । नपचापम् = ६०°, वनचापम् = ३०°, नर = ज्या३०, पश = ज्या६०, पन = पूर्गांज्या (६०°)। नश = ज्याउ६०, ज्याउ = उत्क्रमज्या तदा केनर, पनश त्रिभुजयोः साजात्यादनुपातेन = नश × केर पश = नर = ज्याउ६० × ज्या६० = ज्या६० •

ज्याउ ६०= त्रि—ज्या ३० समयोजनेन त्रि=ज्या ३० + ज्या ३० = २ ज्या ३० पक्षौ द्वाभ्यां भक्तौ तदा  $\frac{f_3}{2}$  = ज्या ३० = अष्टमं ज्यार्धम् = अष्टमी ज्या। अथ  $f_3$  = ज्या ३० = कोज्या ३० = ज्या ६० =  $f_3$  =  $f_3$ 

ज्या । त्रि=त्रिज्या । केम = केग = त्रि । मग = पूर्णंज्या (९०), मय = गय = ज्या ४५, ल = मगचापार्धविन्दुः । केम + केग = पूज्या (६०) = त्रि + त्रि = २ त्रि , पक्षी चतुर्भि मंक्ती तदा  $\frac{पूज्या \cdot (६०)}{8} = \frac{2 त्र \cdot 7}{8} = \frac{7}{8}$ 

=ज्या ४५ = द्वादशी ज्या, एतेनै कगुणितित्रज्यावर्गश्चतुर्भक्तस्तन्मूलम्ब्टमी ज्या दिश्राचा = त्रिश्चदंशज्या, त्रिज्यावर्गो द्विगुण्यश्चतुर्भक्तस्तन्मूलं पश्चचत्वारिश-दंशज्या = द्वादशी ज्या त्रिज्यावर्गस्त्रिगुण्यश्चतुर्भक्तस्तन्मूलं षष्टिभागज्या = षोड्यी-ज्या, ग्राचार्योक्तमुपपन्नम् । सिद्धान्तशेखरे "शशियमदहनम्नात् व्यासखण्डस्य वर्गात् पृथगुदधिविभक्तात् त्रीणि मूलानि यानि । वसुरिवनृपसंख्याभाञ्जि जीवादलानि क्रमश इह भवेयुर्नूनमन्यानि तेभ्यः।" इत्यनेन श्रीपितनाऽऽचार्योक्त-मेव श्लोकान्तरेणोक्तम् । भास्करेणापि "त्रिज्यार्धं राशिज्या तत्कोटिज्या च षष्टि-भागानाम् । त्रिज्यावर्गार्धंपदं शरवेदांशज्यका भवति ।" इत्युक्त्या तदेवोक्त-मिति ॥१९॥

#### धब गिएत से ज्यार्धानयन को कहते हैं।

हि. सा.—एक गुणित त्रिज्यावर्ग को चार से भाग देकर मूल लेने से म्रष्टमज्यार्घ = म्रष्टमीज्या = तीस म्रंश की ज्या होती है, तथा द्विगुणित त्रिज्यावर्ग को चार से भाग देकर मूल लेने से पैंतालीस म्रंश की ज्या = द्वादशीज्या होती है, एवं त्रिज्यावर्ग को तीन से गुणाकर चार से भाग देकर मूल लेने से साठ म्रंश की ज्या = षोड़शी ज्या होती है इति ।

#### उपपत्ति ।

बहां संस्कृतोपपत्ति में लिखित (क) क्षेत्र को देखिये । के=वृत्तकेन्द्र । नपचाप  $= \xi \circ^\circ$  । वनचाप  $= \xi \circ^\circ$  , तर  $= \forall x$ । ३०, पश  $= \forall x$ । दि० । नश  $= \forall x$ । वनचाप  $= \xi \circ^\circ$  , तर  $= \forall x$ । तब केनर, पनश दोनों त्रिभुजों के सजातीयत्व से  $= \forall x$ । ज्या दें  $= \forall x$ । तब केनर, पनश दोनों त्रिभुजों के सजातीयत्व से  $= \forall x$ । त्रिभुजों को दो से भाग देने से  $= \forall x$ । त्रिभुजों को दो से भाग देने से  $= \forall x$ । त्रिभुजों के  $= \forall x$ । त्रिभुजों को दो से भाग देने से  $= \forall x$ । त्रिभुजों के  $= \forall x$ । त्रिभुजों के सजा दें ते त्रिभुजों के सजातीयत्व से त्रिभुजों के स्वाचित्र से त्रिभुजों के स्वच्यात्व से त्रिभुजों के सजातीयत्व से त्रिभुजों के स्वच्यात्व से त्रिभुजों के स्वच्यात्व से त्रिभुजों के स्वच्यात्व से त्रिभुजों के स्वच्यात्व

मगचापार्घ बिन्दु केम<sup>२</sup>+ केग<sup>2</sup>=पूज्या<sup>2</sup> (६०)=२ त्रि<sup>2</sup> दोनों पक्षों में चार से भाग देने से पूज्या<sup>2</sup> (६०) =ज्या<sup>2</sup> ४५=  $\frac{2 \cdot 73^2}{8}$  मूल लेने से  $\sqrt{\frac{2 \cdot 73^2}{8}}$ =ज्या ४५= द्वाद-

शी ज्या, इससे घ्राचार्योक्त उपपन्न हुग्रा। सिद्धान्तशेखर में 'शशियमदहनघ्नात्' इत्यादि संस्कृतोपपत्ति में लिखित श्लोक से श्रीपित ने घ्राचार्योक्त ही को श्लोकान्तर से कहा है। भास्कराचार्यं ने भी 'त्रिज्यार्यं राशिज्या' इत्यादि से वही कहा है इति ॥१६॥

## इदानीमघौशज्यानयनमाह।

तुल्यक्रमोत्क्रमज्यासमखण्डकवर्गयुतिचतुर्भागम् । प्रोह्यानष्टं व्यासार्घवर्गतस्तत्पदे प्रथमम् ॥२०॥ तद्दलखण्डानि तदूनजिनसमानि द्वितीयमुत्पत्तौ । कृतयमलैकदिगीशेषु सप्तरसगुरानवादीनाम् ॥२१॥

सु. भा.—तुल्यचापस्यैकस्यैव चापस्य समक्रमज्योत्क्रमज्ययोर्वगंयुतेश्चतुर्था-शमनष्टं व्यासार्घकृतेः प्रोह्य हित्वा तत्पदे अनष्टस्य शेषस्य च पदे प्राह्ये । तत्र प्रथमं पदं तद्दलखण्डानि तच्चापार्घज्या द्वितीयं च तदूनजिनसमानि तदर्घचापकोटि-ज्या स्यात् । एवमुत्पत्तौ ज्योत्पत्तौ पुनः पुनः समज्यार्घादष्टमाद् द्वादशाच्च कर्माण् कृते कृतयमलैकदिगीशेषु सप्तरसगुणनवादीनां ज्यार्घानामुत्पत्तिः स्यात् ।

यथाऽष्टमाज्ज्यार्घात् तदर्धभागज्यया तत्कोटचर्धभागज्यया च

द्वादशाज्ज्याधिच

६ १८ ९ १५

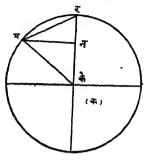
एतानि सिध्यन्ति ।

द्वादशं षोडशं चतुर्विशतिसङ्ख्यं त्रिज्येति त्रयं च ज्ञातमेव । अत इष्टव्या-सार्धे तदर्घज्यानयनेन चतुर्विशतिज्याः सिध्यंति ।

श्रत्रोपपत्तिः । 'क्रमोत्क्रमज्याकृतियोगमूलाद्' इत्यादिभास्करविधिना स्फुटा

वि. मा.—एकस्यैव चापस्य क्रमज्योत्क्रमज्ययोर्वगं युतेश्चतुर्थां शमनष्टं त्रिज्या वर्गाद्विशोध्य तन्मूले (ग्रनष्टस्य शेषस्य च) ग्राह्ये, तत्र प्रथममूलं तच्चापार्धज्या द्वितीयं च तदूनजिनसमानि तदर्धचापकोटिज्या स्यात्। एवमुत्पत्तौ (ज्योत्पत्तौ)

पुनः पुनः समज्यार्घादष्टमाद् द्वादशाच्च कार्यकरगोन कृत ४ यमलै २ क १ दिगी १० शे११ षु ५ सप्तरसगुगानवादीनां ज्यार्थानामुत्पत्तिभवेत्।



श्रत्रोपपत्तिः।

के = वृत्तकेन्द्रम्। रय = इष्टचापम्। यन = चापज्या रन = चापस्योत्क्रमज्या, यर = चापपूर्णज्या, तदा यनः +रनः = यरः = चापपूर्णज्याः पक्षौ चतुर्भिर्भक्तौ तदा  $\frac{24}{8} + \frac{1}{8} + \frac{1}$ 

=चापार्घकोटिज्या । द्वयोर्मूल ग्रहरोन  $\sqrt{\frac{चापज्या + चापोत्क्रमज्या }{४}}$  =चापार्घज्या ।  $\sqrt{\frac{}{ [त्र - \frac{चापपूर्यां ज्या }{४}]}} =$ चापार्घ कोटिज्या ।

एतेन नियमेनाष्टमाज्ज्यार्धात् तदर्धांशज्यया तत्कोटचंशार्धंज्यया च स्रव्टमाज्ज्यार्धात् तदर्धंज्या चतुर्थी ४। तत्कोटिज्या विशो २०। एवं चतुर्थात् दितीया २ द्वाविशो २२ च, द्वितीयात् प्रथमा १। त्रयोविशी च। एवमष्टम्या ज्यायाः तदर्धांशज्यया तत्कोटचर्धांशज्यया च ४।२०,२।२२,१।२३,१०।१४५।१९,७।१७,११।१३, द्वादश्याश्च ६।१८,३।२१,९।१५, त्रिज्या चान्ति-मा चतुर्विशी ज्या भवतीति। सिद्धान्तशेखरे।

"उत्क्रमक्रमसमानसमज्याखण्डवर्गं युतिवेदविभागम् । व्यासखण्डकृतितस्तमनष्टं शोधयेदथ पदे भवतो ये ॥ आद्यमूलिमह तद्दलसंख्यं तिद्व हीनिजनसिम्मितमन्यत् । ज्यार्धमेवमपराणि समेभ्यो ज्यादलानि न भवन्त्यसमेभ्यः॥" श्रीपत्युक्तस्यास्याऽचार्योक्तमादर्शरूपमस्ति । भास्कराचार्येणापि ।

"इष्टा त्रिज्या सा श्रुतिर्दोर्भुजज्या कोटिज्या तद्वर्ग विशेषमूलम् । दोः कोटच शानां क्रमज्ये पृथक् ते त्रिज्याशुद्धे कोटिदोरुत्क्रमज्ये। ज्याचापमध्ये खलु वार्णरूपा स्यादुत्क्रमज्या त्रिभमौर्विकायाः। वर्गार्धमूलं शरवेदभागजीवा ततः कोटिगुगोऽपि तावान्। त्रिभज्यकार्धं खगुग्गांशजीवा तत्कोटि जीवा खरसांशका-नाम्। क्रमोत्क्रमज्या कृतियोगमूलाद्दलं तदर्घांशकशिञ्जनी स्यात्।"

इत्ययमेवार्थः स्फुटोत्तचा सम्यगुक्त इति ॥२०-२१॥

## अब अर्घाशज्यानयन को कहते हैं।

हि. भा - एक ही चाप की समक्रमज्या भ्रौर उत्क्रमज्या के वर्ग योग के चतुर्थाश (ग्रनष्ट) को त्रिज्या वर्ग में से घटाकर उनका (ग्रनष्ट श्रौर शेष) मूल लेना चाहिये उन में

प्रथम मूल उस चापार्ध की ज्या होती है, श्रौर द्वितीय मूल चौवीस में से उसको घटाने से उस श्रधंचाप की कोटिज्या होती है। इस तरह ज्योत्पत्ति में पुनः पुनः समज्यार्ध श्रष्टम से श्रौर बारहम से कर्म करने से ४।२।१।१०।११।५।७।६।३।६ श्रादि श्रधांशज्या होते हैं। जैसे श्रष्टमज्या की श्रधांशज्या श्रौर उसकी कोटिज्या से ४।२०,२।२२,१।३,१०।१४,५।६,७।१७,११।१३ बारह वीज्या से ६।१८,३।२१,६।१५ बारहवीं सोलहवीं चौवीसवीं (त्रिज्या) ये तीनों ज्या विदित ही हैं इन से इष्ट व्यासार्ध में उनके श्रधंज्यानयन से चौवीस ज्याए सिद्ध होती हैं इति।

#### उपपत्ति ।

यहां संस्कृतोपपत्ति में लिखित (क) क्षेत्र को देखिये । के = वृत्तकेन्द्र । रय= इप्टचाप, यन = चापज्या । रन = चाप की उत्क्रमज्या । यर = चापपूर्णंज्या । तब यन  $^{2}$  + रन  $^{2}$  = यापपूर्णंज्या  $^{3}$ , दोनों पक्षों को चार से भाग देने से  $\frac{2\pi^{2}+7\pi^{2}}{8}$  =  $\frac{2\pi^{2}+7\pi^{2}}{8}$  =

#### इदानीं विशेषमाह।

# एवं जीवाखण्डाल्पानि बहूनि वाऽऽद्यखण्डानि । ज्यार्धानि वृत्तपरिघेः षष्ठचतुर्थभागानाम् ॥२२॥

बात को ही स्पष्टतया कहा है इति ।।२०-२१।।

सु. भा-एवं तदर्घज्यानयनेन गराकेनाल्पानि वा बहूनि यथेप्सितानि, जीवाखण्डानि साध्यानि । आचार्येण च स्वग्रन्थे चतुर्विशतिज्यांधानि साधितानि यदोप्सितानि ९६ ज्याधानि स्युस्तदा पुनस्तदर्धभागज्याविधिः कार्यः । ग्रर्धभाग-ज्याविधौ सर्वत्र त्रिज्यार्धं त्रिज्यावर्गार्धपदं त्रिगुरात्रिज्यावर्गचतुर्थाशपदं क्रमेग्र वृत्तपरिधैः षष्ठचतुर्थत्रभागानां ज्याधानि चाद्यखण्डानि व्यक्तानि । परिधिषष्ठ-भागस्य षष्टिभागानां या ज्या पूर्णज्या तस्या ग्रर्धं त्रिज्यार्धम् चतुर्थभागस्य नवते-

ज्यार्घं त्रिज्यावर्गार्घपदम् । त्रिभागस्य विश्वत्यधिकशतभागानां ज्यार्घं त्रिगुर्गात्रि-ज्यावर्गचतुर्थांशपदम् । इति ज्यार्घान्याद्यानि विज्ञाय ततस्तदर्धभागज्यानयन विधानेन वृत्तपादे यथेप्सितानि ज्याखण्डानि साध्यानीति सर्वं स्फुटम् ।

वि. भा.—एवं पूर्वोक्तार्धज्यानयनविधिनाऽल्पानि बहूनि वेप्सितानि

ज्याखण्डानि ज्योतिर्विद्भिः साध्यानि आचार्येण चतुर्विशतिज्यधिनि साधितानि यदि ९६ संख्यकज्याधिनीप्सितानि भवेगुस्तदा पुनस्तदधाँशज्याविधिः कार्यः । भ्रिष्ठशिज्याविधौ त्रिज्याधै-त्रिज्यावर्गाधैमूलं-त्रिगुरात्रिज्यावर्गचतुर्थाशमूलं क्रमेरा वृत्तपिरिधेः षष्ठचतुर्थतिभागा (६०, ९०, १२०) नां ज्याधिनि चाद्यखण्डानि व्यक्तानि । वृत्तपिरिधषष्ठांशस्य षष्ट्यं शस्य पूर्गांज्याधै त्रिशदंशज्या =  $\frac{\pi}{2}$  वृत्तपिरिधेश्चतुर्थाशस्य नवतेः पूर्णंज्याधै पञ्चचत्वारिशदंशज्या =  $\sqrt{\frac{- \pi^2}{2}}$  वृत्तपिरिधेश्चतुर्थाशस्य नवतेः पूर्णंज्याधै पञ्चचत्वारिशदंशज्या =  $\sqrt{\frac{- \pi^2}{2}}$  वृत्तपिरिधेस्तृतीयांशस्य विशत्यधिक शतिमतांशानां ज्याधै = ज्या ६० =  $\sqrt{\frac{- \pi^2}{2}}$  इति ज्याधीन्याद्यानि ज्ञात्वा ततस्तदभाशिज्यानयनिविधना वृत्तपादे (नवत्यंशनतुल्ये) यथेप्सिताचि ज्याखण्डानि साध्यानीति ॥२२॥

#### भव विशेष कहते हैं।

हि. सा.—एवं पूर्व कथित अर्घंज्यानयन से अल्प वा बहुत यथेच्छ ज्याखण्ड साधन करना चाहिये। आचार्य अपने ग्रन्थ में चौबीस ज्यार्घ साधन किया है, यदि ६६ संख्यक ज्यार्घ अभीष्ट हो तो फिर अर्घांशज्या विधि करनी चाहिये। अर्घांशज्या विधि में सब जगह तिज्या का आधा, तिज्यावगं के आधा का मूल, तिगुिि तिज्यावगं के चतुर्यांश का मूल क्रम से वृत्तपरिधि का षष्टांश, चतुर्यांश और तृतीयांश का ज्यार्घ आद्यखण्ड व्यक्त है वृत्तपरिधि का षष्टांश  $\frac{3६0}{2}$  =६० की पूर्णंज्या का आधा तिज्यार्घ, परिधि का चतुर्यांश  $\frac{3६0}{2}$  =६० की पूर्णंज्या का आधा तिज्यार्घ, परिधि का चतुर्यांश  $\frac{3६0}{2}$  = १२० इसका ज्यार्घ (पूर्णंज्यार्घ) = ज्या ६० =  $\sqrt{\frac{16}{3}}$ , परिधि का तृतीयांश को जान कर अर्घांशज्यानयन विधि से वृत्तपाद (६०°) में यथेप्सित ज्याखण्डों का साधन करना चाहिये इति ॥२२॥

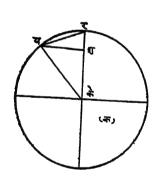
इदानीं प्रकारान्तरेगार्घाशंज्यानयनमाह । उत्क्रमसमखण्डगुगाद् व्यासादथवा चतुर्थभागाद्यत् । कृत्वोक्तखण्डकानि ज्यार्घानयनं न लघ्वस्मात् ॥२३॥ सु० भा० — अथवोत्क्रमसमखंडं समसङ्ख्यकज्बाया उत्क्रमज्या तया गुणाद् व्यासात् किविशिष्टात् चतुर्थभागाञ्चतुर्विभक्ताञ्चलब्धं तदुक्तखण्डानि क्रमोत्क्रम-ज्या वर्गयुतसमानि कृत्वा ज्यार्घानयनं प्राग्वत् कार्यम् । अस्मादानयनादन्यदानयनं न लघ्वस्तीति । अनेन प्रकारेण लाघवेन ज्यार्घानि सिध्यन्तीत्यर्थः ।

#### श्रत्रोपपत्तिः।

'त्रिज्योत्क्रमज्यानिहतेर्दंलस्य' इत्यादि भास्करविधिना स्फुटज्योत्पत्तावन्ये विशेषा भास्करान्त्यज्योत्पत्तौ प्रसिद्धा एव ॥२३॥

वि. भा. — यत्संख्यकाया ज्याया ग्रघंज्या ग्रानीयते तत्संख्यका या उत्क्रम-ज्या तया गुणाद् व्यासाञ्चतुर्विभक्ताद्यल्लब्धं तदुक्तखण्डानि क्रमोत्क्रमज्यावगंयुत समानि कृत्वा पूर्ववज्ज्यार्घानयनं कार्यम् । ग्रस्मादानयनादन्यदानयनं न लघ्वस्ति, ग्र्यादनेन प्रकारेण लाघवेन ज्यार्घानि सिध्यन्तीति ।

#### अत्रोपपत्तिः ।



के = वृत्तकेन्द्रम् । रयचापम् = ग्र. ग्रस्यैव चापस्या-धाँशज्यानयनमभोष्टम् । यश = ज्याग्र, रश = उज्या ग्र । रय = ग्र चापस्य पूर्णांज्या । केश = चापकोटिज्या = कोज्याग्र । त्रि = त्रिज्या = केर, तदा केर — केश = रश = त्रि — कोज्याग्र = उज्याश्र वर्गं करऐोन तिः — २ त्रि. कोज्याग्र + कोज्याः ग्र = उज्याः ग्र परन्तु यशः + रशः = ग्र चापपूर्णांज्याः = ज्याः ग्र + उज्याः ग्र = तिः — २ त्रि. कोज्याग्र + कोज्याः ग्र + ज्याः ग्र = तिः – २ त्रि. कोज्याग्र + तिः – २ त्रि. कोज्याग्र

= २ त्रि (त्रि—कोज्याम्र)= २ त्रि. उज्याव पक्षी चतुर्भिर्मक्ती तदा २ त्रि. उज्याव

'तुल्यक्रमोत्क्रमज्या समखण्डकवर्गयुतिचतुर्भागिम' त्याचार्योक्तप्रकारेण ग्रर्घां-शज्याभिस्तत्कोटिज्याभिश्चं ज्यार्घानि भवन्त्येनाचार्योक्तमुपपन्नम् । सिद्धान्तशेखरे "उत्क्रमाविषमखण्डविनिष्नात् व्यासतो भवति यो युगभागः । तेन पूर्वकथिताच्च

<sup>(</sup>१) एतेन 'त्रिज्योत्क्रमज्या निहतेदंलस्य मूलं तदर्घाशकशिञ्जिनी वा' भास्करोक्त-मिदमुपपद्यते ।

विधानात् ज्यादलानि यदि वाऽत्र भवन्ति" इत्यनेन श्रीपितनाऽऽचार्योक्तमेव पुनरुक्तीकृतम् । सिद्धान्तिशिरोमगौ भास्कराचार्येगापि—"त्रिज्योत्क्रमज्यानिह-तेर्देलस्य मूलं तदधांशक शिञ्जिनी वा । तस्याः पुनस्तद्दलभागकानां कोटेश्च कोट्यंशदलस्य चैवम् ।" इत्यनेन तदेवोक्त्वा वासनाभाष्ये सम्यगुपपादित—मिति ॥२३॥

## इति ज्या प्रकरणम्

#### श्रव प्रकारान्तर से श्रवांशज्यानयन को कहते हैं

हि. भा. — यत्संस्यक ज्या की द्यर्घज्या लाते हैं तत्संस्यक उत्क्रमज्या से व्यास को गुगा कर चार से भाग देने से जो लब्ध हो उससे पूर्ववत् ज्यार्धानयन करना चाहिये। इस आनयन प्रकार से अन्य आनयन प्रकार छोटा नहीं है अर्थात् इस प्रकार से लाधव ही से ज्यार्ध सिद्ध होता है।

#### उपपत्ति ।

यहां संस्कृतोपपत्ति में लिखित (क) क्षेत्र को देखिये । के व्यक्तिकेंद्र । रयचाप == ग्र, इसी चाप का अर्घांश ज्यानयन करना है। यश = ज्याग्र, रश = उज्याग्र, रय = ग्र-चाप की पूर्णज्या, केश =चापकोटिज्या =कोज्याम्र केर = त्रिज्या = त्रि । तब केर - केश = रय=त्र-कोज्याग्र=उज्याग्र, वर्ग करने से त्रि -२ त्रि. कोज्याग्र + कोज्या भ = उज्ला भ परन्त् यश<sup>२</sup> + रश<sup>२</sup> = अचाप पूर्णंज्या<sup>२</sup> = ज्या<sup>3</sup> अ + उज्या<sup>3</sup> अ = ति<sup>२</sup> - २ ति कोज्यास + को-ज्या म ज्या म = त्रि -- २ त्रि. कोज्याध + त्रि = २ त्रि -- २ त्रि. कोज्याध = ध्रचापपुज्या । = २ त्रि (त्रि-कोज्याम्र) = २ त्रि. उज्याम्र = व्या × उज्याम्र दोनों पक्षों को चार से भाग देने से व्यास—उज्याम्र = म्राचापपूज्या = ज्या है म्र इससे 'तुल्य क्रमोत्क्रमज्या सम-खण्डकवर्ग्रंयुतिचतुर्भागम्'' इस पूर्वोक्त प्रथम प्रकार से भ्रर्घांशज्या श्रौर उसकी कोटिज्या से ज्यार्घ होता है इससे म्राचार्योक्त उपपत्र हुग्रा । २ त्रि (त्रि—कोज्याम्र) = म्रचापपूज्या र = २ त्रि. उज्याध्य दोनों पक्षों को चार से भाग देने से २ त्रि. उज्याध्य हिन. उज्याध्य 'त्रिज्योत्क्रमण्या निहतेर्देलस्यमूलम्' इत्यादि भास्करोक्त उपपन्न होता है। सिद्धान्तशेखर में 'उत्क्रमाविषमखण्डविनिघ्नान्' इत्यादि श्रीपत्युक्त ग्राचार्योक्त की ही पुनक्क्ति है । भास्करा-चार्य ने भी 'त्रिज्योत्क्रमज्या निहतेर्दलस्य' इत्यादि इससे उसी को कह कर वसनाभाष्य में मच्छी तरह कहा है इति ॥२३॥

## श्रथ स्फुटगति वासना।

## तत्रादौ स्पप्टीकरणे छेद्यकमाह।

## कक्षामण्डलमध्यं भूमध्ये मध्यमः स्वकक्षायाम् ॥ श्रनुलोमं मन्दोच्चात् प्रतिलोमं भ्रमति शीघ्रोच्चात् ॥ २४॥

सु. भा.—भूमध्ये कक्षामण्डलस्य मध्यं केन्द्रमस्ति । मध्यमो ग्रहः स्वकक्षा-यां प्रतिवृत्ते मन्दोच्चादनुलोमं शीघ्रोच्चाच्च प्रतिलोमं भ्रमति । 'भूमेर्मध्ये खलु भूवलयस्यापि मध्यम्' –इत्यादिना तथा 'मन्दोच्चितोऽग्रे प्रतिमण्डले प्राग्ग्रहोऽनु— लोमं निजकेन्द्रगत्या'—इत्यादिना भास्करविधिनाऽपीयमेव स्थितिः ॥२४॥

वि भा-—भूमध्ये (भूकेन्द्रे) कक्षावृत्तस्य केन्द्रमस्ति, मध्यमो ग्रहः स्वकक्षायां (प्रतिवृत्ते) मन्दोच्चादनुलोमं शीघ्रोच्चाच्च विलोमं भ्रमित । मन्दोच्चादनुलोमं राश्यादिगण्नयाऽग्रतः शीघ्रोच्चाच्च विलोमत इति राश्यादिगण्नया पृष्ठतो यथोत्तरं भ्रमित । ग्रहगत्यपेक्षया शीघ्रोच्चगितमंहती भवतीति तत्र यदि शीघ्रोच्चं स्थिरं मन्यते तदा ग्रहो विपरीतगमन इव लक्ष्यते । मन्दोच्चस्य चालक्ष्याल्पगतित्वात् सदैव ग्रहो राश्यादिगण्नया अनुगामी भवतीति । सिद्धान्त शेखरे "मध्यः स्वकक्षा परिधौ स्फुटस्तु स्वकेन्द्रवृत्ते भ्रमित द्युचारी । स्वमन्दतुङ्गादनुलोमगत्या विलोमतो याति च शीघ्रतुङ्गात्' श्रीपतिनैवं कथितम् । ग्रत्र लल्लः—"अनुलोमं निजमन्दात् प्रतिलोमं गच्छित स्वशीघ्रोच्चात् । कक्षावृत्ते मध्यः स्वकेन्द्रवृत्ते ग्रहाः स्पष्टाः ॥ " स्वकेन्द्रवृत्ते (स्वीये प्रतिवृत्ते) । भास्करभ्र्य "मन्दोच्चतोऽग्रे प्रतिमण्डले प्राक् ग्रहोऽनुलोमं निजकेन्द्रगत्या । शीघ्राद्विलोमं भ्रमतीव भाति विलम्बितः पृष्ठत एव-यस्मात्" एवमेव ग्रहभ्रमण्व्यवस्थां प्रतिपादयतीति ॥ २४॥

श्रव स्फुटगित वासना प्रारम्भ की जाती है। उसमें पहले स्पष्टी करण में छेद्यक को कहते हैं।

हि. भा- भूकेन्द्र कक्षावृत्त का केन्द्र है। मध्यमग्रह ग्रपनी कक्षा में मन्दोच्च से अनुलोम (क्रमिक) श्रीर शीझोच्च से विलोम (उल्टा) श्रमण करते हैं मन्दोच्च से अनुलोम अर्थात् राश्यादि गणना से आगे श्रीर शीझोच्च से विलोम श्रर्थात् राश्यादि गणना से पीछे श्रमण करते हैं। ग्रहगित की श्रपेक्षा शीझोच्चगित श्रिषक हैं यदि शीझोच्च को स्थिर माना जाय तो ग्रह विपरीत चलते हुए लक्षित होते हैं। मन्दोच्च की श्रत्यन्त ग्रल्प गित के कारण राश्यादि गणना से ग्रह सर्वद अनुगामी होते हैं। सिद्धान्त श्रेखर में 'मध्य: स्वकक्षा परिषी'

इत्यादि से श्रीपित ने ग्राचार्योक्त के अनुसार ही कहा है। 'अनुलोमं निजमन्दात् प्रतिलोम' इत्यादि विज्ञान भाष्य में लिखित श्लोक से लल्लाचार्य तथा 'मन्दोचऽतोग्रे प्रतिमण्डले प्राक्' इत्यादि विज्ञान भाष्य में लिखित श्लोक से भास्करा चार्य ने भी इसी तरह ग्रहभ्रमण व्यवस्था कही है इति ।। २४।।

## इदानीं नीचोच्चवृत्तभङ्गिमाह।

नीचोच्चवृत्तमध्यं मध्ये तद् भ्रमित मध्यगः स्वोच्चात् । तत्परिधौ प्रतिलोमं मन्दोच्चाद् भ्रमित शीष्ट्रोच्चात् ॥ २४ ॥ अनुलोमं मध्यसमं भूस्थः पश्यित यतो न कक्षायाम् । स्पट्टं तन्मध्यान्तरमृग्ं धनं वा ग्रहे मध्ये ॥ २६ ॥

सुः भाः—कक्षायां यत्र मध्यग्रहिचह्नं तस्मिन् मध्ये नीचोच्चवृत्तस्य मध्यं नीचोच्चवृत्तकेन्द्रं भवति तत् केन्द्रं च मध्यचलनाद् भ्रमित । शेषं भास्करभङ्गचा स्फुटम् ॥२५-२६॥

वि. भा-- कक्षायां यत्रमध्यग्रहचिन्हं तत्र मध्ये नीचोच्चवृत्तस्य मध्यं (केन्द्रं) भवति । नीचोच्चवृत्तपरिधौ मन्दोच्चात् प्रतिलोमं शीघ्रोच्चाच्चानुलोमं ग्रहो भ्रमति । यतो (यस्मात्कारणात्)भूस्थो द्रष्टा कक्षायां मध्यग्रहतुल्यं स्पष्टग्रहं न पश्यति तस्मात् काररणात् स्पष्टमध्यग्रहयौरन्तरं फलं मध्यमग्रहे ऋणं धनं वा क्रियते तदा स्पष्टग्रहो भवति । ग्रर्थात् समायां भूमौ बिन्दुं कृत्वा तं केन्द्रं प्रकल्प्य त्रिज्यातुल्येन कर्कटकेन कक्षावृत्तं विलिखेत् । तद्भगगणाङ्कितं कृत्वा मेषादेरारभ्य ग्रहमच्चं च दत्त्वा चिन्हे कार्ये । भूकेन्द्रादुच्चोपरिगता रेखा कार्या सोच्चरेखा कथ्यते । भूकेन्द्रा-दुच्चरेखोपरि लम्बरेखा(तिर्यग्रेखा)कार्या, भूकेन्द्रादु पर्यन्त्यफलज्यामुच्चोन्मुखीं दत्त्वा तदग्रात् त्रिज्या व्यासार्धेनेव प्रतिवृत्तं कार्यम् । उच्चरेखया सह यत्रास्य सम्पातस्तत्र प्रतिवृत्तेऽप्युच्चं ज्ञेयम् । तस्मादुच्चभोगं विलोमेन देयम् । ततो ग्रहमनुलोमं दत्त्वा तत्र चिन्हं कार्यम् । प्रतिवृत्तंकेन्द्रादुच्चरेखोपरि लम्बरेखा प्रतिवृत्तीयतिर्यग्रेखा कार्या, तिर्यग्रेखयोरन्तरमन्त्यफलज्या तुल्यमेव सर्वत्र भवति । ग्रहोच्चरेखयोज्या-रूपमत्तरं दोर्ज्या (भुजज्या) भवति । ग्रहप्रतिवृत्ततिर्यग्रे खयोरन्तरं कोटिज्या, ग्रह कक्षामध्यगतिर्यग्रे खयोरूर्घ्वाघरमन्तरं स्फुटा कोटिः । भूकेन्द्रात्प्रतिवृत्तस्य ग्रहावधि सूत्रं कर्णाः । कर्णसूत्रं यत्र कक्षा वृत्तेलगति तत्र स्फुटो ग्रहः कक्षावृत्ते स्फुटमध्यग्रह-योरन्तरं फलं तच्च मध्यग्रहात् स्फुटग्रहेऽग्रस्थे घनं मेषादिकेन्द्रे पूर्वाकर्षर्गेनोत्पद्यते । मध्यग्रहात् स्फुटग्रहे पृष्ठस्थे फलमृणं तुलादिकेन्द्रे पश्चादाकर्षं ऐन भवति ।। सिद्धा-न्तशेखरे "द्रष्टा स्फुटं पश्यति मध्यतुल्यं भान्तस्थिते भार्धगते च केन्द्रे । यस्माद-भाबोऽत्र फलस्य तस्मात् भवेद् ग्रहस्योध्वंमघःस्थितस्य ।। ऊनाधिकं पश्यति मध्य-

माच्च स्फुटं नरस्तद्विवरं फलं हि । ऋणं धनं च क्रियतेऽत एव मध्यग्रहे स्पष्टबुभु-त्सुभिस्तत् ॥" श्रीपतिनैवमेवं कथितम् । लल्लाचार्यस्तु प्रथममार्यभटोक्त स्पष्टी-करणिक्रयाया उपपत्तिमेवाह । "मध्यमतुल्यं स्पष्टं भान्तगते भार्धगेऽपि वा केन्द्रे । द्रष्टा पश्यति यस्मान्मध्यस्यातः फलाभावः ॥ स्पष्टं पश्यति यस्मान्मध्यादृनाधिकं नरस्तस्मात् । विवरं तयोः फलमृणं धनं च मध्यग्रहे क्रियते ॥'' भास्कराचार्येगापि "भूमेर्मध्ये खलु भवलयस्यापि मध्यं यतः स्याद्यस्मिन् वृत्ते भ्रमित खचरो नास्य मध्यं कुमध्ये । भूस्थो द्रष्टा नहि भवलये मध्यतुल्यं प्रपद्येत्, तस्मात् तज्ज्ञैः क्रियत-इह तहीः फलं मध्यबेटे ॥" इत्यनेन प्रथममेकेनैव श्लोकेन प्राचीनोक्तो मध्यम-ग्रहस्य स्पष्टताविधायको विधिरुपपादितः पश्चाद्विशदव्याख्यया उपपादित इति । अय ग्रह स्पष्टीकरगो छेंद्यकाद्युपपत्तौ किमर्थं प्राचीनैः कक्षावृत्तप्रतिवृत्तादिकल्पना कृता तदर्थं किञ्चिदुच्यते । भूकेन्द्रमिति किल्पतात् कस्माच्चिदपि बिन्दोर्भीष्ट-त्रिज्याव्यासार्घेन कक्षावृत्तसंज्ञकं वृत्तं कार्यम्, वस्तुतं इदं वेघवलयं, एतद्वृत्तकेन्द्रात् तत्तद्गोलस्थग्रहेषु सूत्रं यत्र यत्राऽस्त्रिन् वृत्ते लगति तत्र तत्र स ग्रहः परिगातः कल्प्यते । कक्षावृत्तकेन्द्रात् (भूकेन्द्रात्) कक्षावृत्तस्योध्वीधरा व्यासरेखा कार्या, केन्द्रत एतदुपरि लम्बरूपाऽन्या तिर्यग्रेखा च कार्या, केन्द्रादूर्ध्वावरव्यासरेखा-यामिष्टग्रहस्य वेधावगतान्त्यफलज्यासमं खण्डं छित्वा छेदितबिन्दोस्तत्त्रिज्या व्या-सार्धेनैव वृत्तं शीध्रप्रतिवृत्तसंज्ञकं कार्यम् । इदमेव वृत्तं मन्दस्पष्टग्रहम्रमगावृत्तम् । वृत्तस्याप्यस्य केन्द्रं भूकेन्द्र (कक्षावृत्तकेन्द्रं) मेव कथं नेति प्रतिदिनं वेघविधिना कर्णज्ञानेन निश्चितम् । अथ स विन्दुर्भूकेन्द्रात् कियदन्तरेऽस्ति यस्मात्प्रतिवृत्तपर्यन्तं नीयमानं सूत्रं तुल्यं भवतीत्यस्यापि ज्ञानं वेधविधिना कृत्वा स एव बिन्दुः प्रतिवृ-त्तस्य केन्द्रेरूपः कल्पितः । कक्षावृत्तप्रतिवृत्तयोः केन्द्राभ्यां भगोलीयमेषादिगते रेखे यत्र यत्र कक्षावृत्ते प्रतिवृत्ते च लग्ने तत्र तद्रृत्तद्वये मेषादिबिन्दू भवत: । भू-केन्द्रात्प्रतिवृत्तस्य यो बिन्दुः सर्वबिन्द्वपेक्षयाऽतिदूरे भवेत्स उच्चसंज्ञकस्तस्य राज्या-दिज्ञानं कृत्वातिनमतमेव कक्षावृत्तेऽप्युच्चं परिकल्प्य ग्रहानयनं भवति, इतोऽन्यथा नेति, तथोच्चयोस्तुल्यत्त्वे एतयोः सूत्रयोर्भगोलीयमेषादिबिन्दौ योगे सत्यपि समाना-न्तरत्वं स्वीकृत्यानन्तदूरे यस्मिन् बिन्दौ सूत्रद्वयस्य योगो भवेत्ते सूत्रे श्रपि समा-नान्तरे भवत इति प्राचीनाः स्वीकृतवन्तः । इह वास्तवभगोलस्तावति दूरेऽस्ति यत्र भूकेन्द्रमारभ्य शनिकक्ष्मनिष्ठादिष कस्माच्चन बिन्दुतो नीयमाना रेखाऽनन्ता ग्रहसाधनगरिगते भूकेन्द्राच्छनिकक्षापर्यन्तमेव भगोलबिन्दुगतरेखयोः समानान्तरत्वं स्वीक्रियते । अतोऽत्र भगोलस्य केन्द्रं यत्र कुत्रापि कल्पियतुं शक्यते । भूकेन्द्रात् प्रतिवृत्तस्य को बिन्दुरितदूरेऽस्ति यदुच्चसंज्ञकं वृत्तद्वयकेन्द्रगतैव रेखा सर्वाधिका भवत्यतः प्रतिवृत्तस्यापीयमेव रेखोच्चरेखा भवेत्। वस्तुतः प्रतिवृत्त एवो च्चमस्ति । अनुपातागतं राश्याद्युच्चं कक्षावृत्ते दत्तं भूकेन्द्रात्तद्गतरेखैव प्रति-वृत्तीयोच्चरेखा भवतीति विलोमेन प्रतिवृत्ते मेषादिज्ञानं भवेत्। म्रथ यदि क्या-

ऽपि रीत्या प्रतिवृत्तीयग्रहस्य ज्ञानं भवेत्तदा तस्मात् स्थानादुच्चरेखायाः समानान्तर-रेला यत्रकक्षावृत्ते लगति तत्र तत्तुल्यो ग्रहः कक्षावृत्ते भवति, भूकेन्द्रात्प्रतिवृत्तस्थ ग्रहगता रेखा यत्र कक्षावृत्ते कगति तत्रैव स (प्रतिवृत्तीयः) ग्रहो हग्गोचरीभूतो भवत्यतस्तयोरन्तरं ग्रहस्य शीघ्रफलम् । अथ प्रतिवृत्ते मेषादितो मन्दोच्चराश्यादि दत्वा तदग्रे प्रतिवृत्तकेन्द्रारेखानेया तंत्र मन्दान्त्यफलज्या तुल्यं दानं दत्त्वा दाना-ग्रविन्दुतस्त्रिज्या व्यासार्थेन वृत्तं कार्यं तन्मन्दप्रतिवृत्तम् । त्रत्रापि मेषादिज्ञानं विपरीतगरानया भवेत्। शीघ्रप्रतिवृत्तमन्दप्रतिवृत्त केन्द्राभ्यां भगोलीयमेषादि-गतरेखयोः समानान्तरत्त्वमत्रापि स्वीक्रियते । श्रतस्ततो राज्यादिगरानयाऽन्-लोममेव मन्दस्पष्टग्रहो दत्तः । मन्दप्रतिवृत्तीयमन्दस्पष्टग्रहात्तत्रत्योच्चरेखायाः समानान्तरा रेखा यत्र शीघ्रप्रतिवृत्ते लगति तत्र मन्दप्रतिवृत्तीयमन्दस्पष्टग्रहतूल्य एव मन्दस्पष्टग्रहः । शीघ्रप्रतिवृत्तकेन्द्रमन्दप्रतिवृत्तीय मन्दस्पष्टग्रहगतारेखा यत्र शीघ्रप्रतिवृत्ते लगति तत्रैव तं ग्रहं शीघ्रप्रतिकेन्द्रस्थद्रश पश्यति, अतः शीघ्रप्रति-वृत्तकेन्द्रान्मन्दप्रतिवृत्तीयमन्दस्पष्टग्रहगत खा-तथोच्चरेखायाः समानान्तररेखा-याश्च शी घ्रप्रतिवृत्ते यदन्तरं तन्मन्दफलम् । मन्दप्रतिवृत्त केन्द्राच्छी घ्र प्रतिवृत्तीय मन्दस्पष्टग्रहगता रेखा यत्र मन्दप्रतिवृत्तो लगति स एव बिन्दुर्मन्दप्रतिवृत्तीयो मन्दस्पष्टग्रहः । अथ मन्दस्पष्टो निरूप्यते । वेधेन प्रथमं स्पष्टग्रहस्यैव ज्ञानं भवत्यतो वेधवृत्ते यत्र ग्रहविम्बमुपलभ्यते तदुपरि तत्केन्द्राद्गतारेखा यत्र ग्रहगोले लगति तत्रैव वास्तवं ग्रह बिम्बं तदुपरितद्गोलीयकदम्बप्रोतवृत्तं कार्यं तद्यत्रशीघ्रप्रतिवृत्ते लगति तत्रैकविधः शरसाधनोपयुक्तो मन्दस्पष्टग्रहः । वेधवलये यत्र बिम्बमुपलब्धं तदुपरि-तद्गोलीय कदम्बप्रोतवृत्तं कार्यं तत्कक्षावृत्ते यत्र लग्नं भूकेन्द्रात्तद्गता रेखा शीघ्र-प्रतिवृत्ते यत्र लगति सोऽन्यो मन्दस्पष्टग्रहः। प्राचीनैरेतयोर्मन्दस्पष्टग्रहयोर्भेदो न स्वीकियते। स्पष्टग्रहज्ञानं विना मन्दस्पष्टग्रहज्ञानं भवतु तदर्थं तदुपकररगरूपमेकं मन्दप्रतिवृत्ते भ्रमन्तं मध्यमग्रहं कल्पितवन्तः प्राचीनाः । स्रतोऽत्र मन्दप्रतिवृत्तीयो वास्तवो ग्रहो मध्यमग्रह एव, स तत्तुत्यराशेर्यदन्तरेगा शीघ्रप्रतिवृत्तेऽवलोक्चते तदेव मन्द फलम् । स एव च मन्दस्पष्टो ग्रहः । ततः सोऽपि मन्दस्पष्टग्रहो वेधवृत्ते तत्तुल्यराशेर्यंदन्तरेणावलोक्चते तदेव शीघ्रफलं स एव च स्पष्टग्रह इति कल्पनेऽपि न किमपि तारतम्यमिति कक्षावृत्तं यथार्थतः शीघ्रप्रतिवृत्तमेव मन्दफलसाधनार्थम् । श्रत्र तद्वेघाकरर्गोऽभीष्ट बिन्दुरेव ग्रहगोलकेन्द्रमतः कक्षावृत्तमेव ज्ञात्वा फलानयनं कृतम् । प्रतिवृत्तीया कोर्टिरेखा (उच्चरेखा समानांन्तरा रेखा) कक्षावृत्ते यत्र लगति तत्रैव शीघ्रप्रतिवृत्तीयमन्दस्पष्टसमानराश्यात्मको बिन्दुः। भूकेन्द्रादेत-द्विन्दुगता रेखा यत्र कक्षावृत्ते लगति तत्रैव सोऽवलोकितो भवति, तदन्तरं फल-मेवेति । तत्साघनोपायः समीचीन एव । यतः प्रथमतः कल्पितकक्षावृत्तं शीघ्र प्रतिवृत्तमस्ति । तत्र वेधाकरणे तावदिष्टस्थान एव मेषादिः कल्पितः । वृत्तकेन्द्रा-त्तदुपरि गतोच्चरेखैवात्रत्योच्चरेखा । मेषादेर्मन्दप्रतिवृत्तीयसमानो मध्यग्रहो दत्तः ।

मन्दकेन्द्रं वेदितव्यम् । ग्रथ चेषां तत्रैव वास्तवावस्थानमिति यथैतत्तुल्यं केन्द्रं तत्रापि भवेत्तथा मन्दप्रतिवृत्ते मेषादिः स्वीकृतः । मध्यस्य यत्रोपलम्भः स एव मन्दस्पष्टोऽतोऽत्रत्यं फलाद्यानयनं समीचीनं तत्संस्कारेण मन्दस्पष्टग्रहोऽपि समीचीनः । अथ चैतेन प्रदर्शितमार्गेण वास्तवं शीघ्रप्रतिवृत्तं यत्तत्रत्यस्य मन्दस्पष्टग्रहस्योच्चस्य मेषादेश्च ज्ञानं जातम् । ग्रथात्रवेधं विना ज्ञातव्यस्थितावेव पुनरभीष्टविन्दोः कृतं कक्षावृत्तं वास्तवकक्षावृत्तम् । अत्र मेषादिविन्दु-शीघोच्चमन्द स्पष्टग्रहश्च पूर्वोक्तविधनाऽङ्किताः । शीघ्रप्रतिवृत्ते या स्थितिरागता प्रथमं तथैव प्रयोजनमतोऽत्र मन्दस्पष्टादेदीयमानत्वात्तत्तुल्या एव ते स्वस्थाने शीघ्रप्रतिवृत्तसंज्ञके यथा भवेयुस्तथा मेषादिकल्पना कृता । प्रतिवृत्ते यो मन्दस्पष्ट विन्दुः ततस्तदुच्चरेखायाः समानान्तरा रेखा यत्र कक्षावृत्ते लगित तत्रैव तन्मन्दस्पष्ट-समानं खण्डं मेषादितो भवितुमहैति । भूकेन्द्रात्तरप्रतिवृत्तीयमन्दस्पष्टग्रहगता कर्णरेखा कक्षावृत्ते यत्र लगित तत्र तदुपलिद्यः । कोटिकर्णरेखयोरन्तरं फलिमिति तत्साधनार्थं यान्युपकरगानि तैस्तज्ज्ञानं सुगमिमिति ॥ २५-२६ ॥

## श्रव नीचो च्चवृत्त भङ्गी को कहते हैं।

हि. भा -- कक्षावृत्त में जहाँ मध्यमग्रह चिन्ह है वही नीचोच्चवृत्त का केन्द्र है। नीचोचवृत्त परिधि में मन्दोच्च से विलोग ग्रौर शीघ्रोच्च से ग्रनुलोम ग्रह भ्रमण करते हैं। जिस प्रकार भूकेन्द्र स्थित द्रप्टा (दर्शक) कक्षा में मध्यम ग्रह के वरावर स्पष्ट ग्रह को नहीं देखते हैं उसी प्रकार स्पष्ट ग्रह और मध्यम ग्रह का अन्तर (फल) मध्यम ग्रह में ऋरण वा घन किया जाता है तब स्पष्ट ग्रह होते हैं। ग्रर्थात् समान भूमि में इष्ट बिन्दु को केन्द्र मान कर इष्ट त्रिज्या व्यासार्घ से कक्षावृत्त बनाकर उसको भगगाङ्कित कर मेषादि से उच्च और ग्रह को देखकर चिह्नित करना चाहिये। भूकेन्द्र से उच्चोपिर गत रेखा उच्चरेखा कहलाती हैं। भूकेन्द्र से उच्चरेखा के ऊपर लम्ब रेखा (तिर्यंक्रेखा) करनी चाहिये। भूकेन्द्र से उच्च की ग्रोर उच्चरेखा में अन्त्य फलज्या तुल्य देकर दानाग्र बिन्दु के द्वारा उसी त्रिज्या व्यासार्घ से प्रति-वृत्त बनाना चाहिये । इस प्रतिवृत्त में उच्चरेखा ऊर्घ्व भाग में जहां लगती है वहां प्रतिवृत्त में उच्च होता है। बहां से प्रतिवृत्त में उच्च भोग विलोम देना चाहिये। वहां से ग्रह को भ्रनुलोम देकर चिह्न कर देना चाहिये। प्रतिवृत्त केन्द्र से उच्च रेखा के ऊपर लम्ब रेखा प्रतिवृत्तीय तिर्यक् रेखा करनी चाहिये। दोनों तिर्यक् रेखाओं का ग्रन्तर सर्वत्र ग्रन्त्यफलज्या तुल्य ही होता है। ग्रह और उच्च का ज्यारूप अन्तर दोर्ज्या (भुजज्या) होती है। ग्रह से प्रतिवृत्तीय तिर्यग्रे खा पर्यन्त कोटिज्या होती है। ग्रह से कक्षा मध्यगतिर्यग्रे खा पर्यन्त स्फुट कोटि है। भूकेन्द्र से प्रतिवृत्तस्य ग्रह पर्यन्त रेखा कर्ण है। कर्ण रेखा जहाँ कक्षावृत्त में लगती है नहीं स्पष्ट ग्रह है। कक्षावृत्त में स्फुट ग्रह श्रौर मध्यम ग्रह का श्रन्तर फल है। मध्यम ग्रह से स्फूट ग्रह के ब्रागे रहने से मध्यम ग्रह में उस फल को धन करने से स्फूट ग्रह होते हैं। मध्यम ग्रह से स्फूट ग्रह के पीछे रहने से मध्यम ग्रह में से उस फल को ऋए। करने से स्फूट

ग्रह होते हैं ॥ सिद्धान्तशेखर में 'द्रष्टा स्फूटं पश्यति मध्यतुल्यं भान्तिस्थते भार्घगते च केन्द्रे' इत्यादि विज्ञान भाष्य में लिखित क्लोकों से श्रीपति ने इसी तरह कहा है। लल्ला-चार्य ने पहले आर्यभटोक्त स्पष्टी करण किया की उपपत्ति ही कही है। 'मध्यमत्त्यं स्पष्टं भान्तरते भार्धगेऽपि वा केन्द्रें इत्यादि विज्ञान भाष्य में लिखित श्लोकों से भास्कराचार्यं ने भी 'भूमेर्मध्ये खलू भवलस्यापि मध्यं यतः स्यात्' इत्यादि विज्ञान भाष्य में लिखित श्लोक (एक ही) से पहले प्राचीनोक्त मध्यम ग्रह की स्पष्टता विघायक विधि को कहा हैं। पश्चात् विशद व्याख्या से प्रतिपादन किया है। ग्रहों के स्पष्टी करएा में छेद्यक ग्रादि की उपपत्ति में प्राचीनाचारों ने कक्षावृत्त-प्रतिवृत्तादियों की कल्पना क्यों की इसके सम्बन्ध में कुछ कहते हैं। किसी इष्ट बिन्दु (कल्पित भूकेन्द्र) से इष्ट त्रिज्या व्यासार्घ से कक्षावृत्त संज्ञक वृत्त बनाना वस्तुतः यह वेघवलय (वेघवृत्त ) है इस वृत्त के केन्द्र से तत्तत् ग्रह गोलस्थ ग्रह गत सूत्र जहां जहां इस वृत्त (कक्षावृत्त ) में लगते हैं तहां तहां वे ग्रह परिग्गत होते हैं । विका वृत्त केन्द्र (भूकेन्द्र) से कक्षावृत्त की ऊर्घ्वाघर व्यास रेखा श्रीर केन्द्र से उसके ऊपर लम्बरूप तिर्यक व्यास रेखा करनी चाहिये। ऊष्वाधार व्यास रेखा में केन्द्र से उच्चाभिमुख वेध विदित ग्रह की अन्त्यफलज्या तुल्य दान देकर दानाग्र बिन्दु से उसी त्रिज्या व्यासार्घ से वृत्त बनाना यह शीघ्र प्रतिवृत्त कहलाता है। यही वृत्त मन्दस्पष्टग्रह स्नमणवृत्त हैं। इस वृत्त का भी केन्द्र भूकेन्द्र ही क्यों नहीं होता है इसका ज्ञान प्रति दिन वेघविधि से कर्ए ज्ञान द्वारा होता है। वह बिन्दु भूकेन्द्र से कितने अन्तर पर हैं जहाँ से प्रति वृत्त की प्रत्येक बिन्दू गत रेखा बरावर होती है वेघ से इसको भी समफ कर उसी बिन्दु को प्रति वृत्त के केन्द्र की कल्पना की गयी, कक्षावृत्त और प्रतिवृत्त के केन्द्र से भगोलीय मेषादिगत रेखाद्वय वृत्तद्वय (कक्षावृत्त और प्रतिवृत्त ) में जहां जहां लगता है वहां वहां वृत्तद्वय में मेषादि बिन्द होते हैं। भूकेन्द्र से प्रतिवृत्त का जो प्रदेश सब बिन्दुओं से श्रति दूर है वह उच्च संज्ञक है, उसके राश्यादि जानकर तत्तुल्य ही उच्च कक्षावृत्त में कल्पना कर ग्रहानयन होता है। इससे अन्यया नहीं होता है। तथा उच्चद्वय के तुल्यत्व में इन दोनों रेखाओं को भगोलीय मैषादि बिन्दु में योग रहने पर भी समानान्तरत्व स्वीकार कर ग्रनन्त दूर में जिस बिन्दु में रेखा हय को योग होता है वह रेखाहय भी समानान्तर होता है इसको प्राचीनाचार्यों ने स्वीकार किया है। वास्तव भगोल इतनी दूर पर है जहां भूकेन्द्र से आरम्भ कर शनि कक्षानिष्ठ किसी बिन्दु से लायी गयी रेखा अनन्त होती है। प्रह गिएत में भूकेन्द्र से शनि कक्षापर्यंत ही भगोलीय बिन्दुगत रेखाद्वय का समानान्तरत्व स्वीकार किया जाता है। इसलिये भगोल का केन्द्र जहां तहां कल्पना कर सकते हैं। भूकेन्द्र से प्रतिवृत्त का कौन बिन्दु अति दूर है जो उच्च संज्ञक है वृत्तद्वय केन्द्र गत रेखा ही सर्वाधिक होती हैं, इसलिये यही रेखा प्रति-वृत्त की भी उच्च रेखा होती है, वस्तुतः प्रतिवृत्त ही में उच्च है, अनुपातागत राश्यादि उच्च को कक्षावृत्त में दिया जाता है भूकेन्द्र से तद्गत रेखा ही प्रतिवृत्तीय उच्च रेखा होती है इस विलोम से प्रतिवृत्त में मेषादि ज्ञान होता है। यदि किसी रीति से प्रति वृत्तीय ग्रह ज्ञान हो तो उस स्थान से उच्च रेखा की समानान्तर रेखा कक्षावृत्त में जहाँ लगती है वहां उसी ग्रह के बरावर ग्रह कक्षा वृत्त में होते हैं, भूकेन्द्र से प्रतिवृत्तस्थ ग्रहगत रेखा कक्षा वृत्त में जहां लगती है वहीं पर वह (प्रतिवृत्तीय ग्रह) दृश्य होते हैं ग्रतः उन दोनों का अन्तर ग्रह का शी झ फल है। प्रतिवृत्त में से मेपादि मन्दोच्चरास्यादि देकर उस के अग्र गत प्रतिवृत्त केन्द्र से जो रेखा होगी उसमें मन्दान्त्यफलज्या तुल्य प्रतिवृत्त केन्द्र से दान देकर दानाग्र बिन्दू से त्रिज्या व्यासार्थ से जो वृत्त होता है वह मन्द प्रतिवृत्त है, इसमें भी मेषादिज्ञान विपरीत गराना से होता है। शीघ्र प्रतिवृत्त ग्रीर मन्द प्रतिवृत्त के केन्द्र से भगोलीय मेषादि गत रेखाद्वय का समानान्तरत्व यहां भी स्वीकार करते हैं। स्रतः भेषादि से राश्यादि गराना से अनुलोम ही मन्द स्पष्ट ग्रह को देना चाहिये। मन्द प्रति-वृत्तीय मन्द स्पष्टग्रह से उच्च रेखा की समानान्तर रेखा शीघ्र प्रतिवृत्त में जहां पर लगती है वहां मन्द प्रतिवृत्तीय मन्द स्पष्टग्रह के बरावर ही मन्द स्पष्टग्रह होते हैं। शीझ प्रतिवृत्त के केन्द्र से मन्द प्रतिवृत्तीय मन्द स्पष्ट ग्रहगत रेखा शीझ प्रतिवृत्त में जहां लगती है वहीं पर उस ग्रह को शीघ्र प्रतिवृत्त केन्द्रस्य द्रष्टा देखता है इसलिये शीघ्र प्रतिवृत्त केन्द्र से मन्द प्रतिवृत्तीय मन्द स्पष्ट ग्रहगत रेखा ग्रीर उच्च रेखा की समाना-न्तर रेखा का शीघ्र प्रतिवृत्त में जो धन्तर होता है वह मन्द फल है। मन्द प्रतिवृत्त के केन्द्र से शीघ्र प्रतिवृत्तीय मन्द स्पष्टग्रह गत रेखा मन्द प्रतिवृत्त में जहां लगती है वही बिन्दु मन्द प्रतिवृत्तीय मन्द स्पष्ट ग्रह है। श्रव मन्द स्पष्टग्रह का निरूपण करते हैं। वेध से पहले स्पष्टग्रह ही का ज्ञान होता है ग्रतः वेच वृत्त में जहां बिम्ब उपलब्ध होता है केन्द्र से तद्गत रेखाग्रह गोल में जहां लगती है वहीं पर वास्तव ग्रहिबम्ब होता है, उसके ऊपर तद्गोलीय कदम्ब प्रोतवृत्त शीघ्र प्रतिवृत्त में जहां लगती है वहां एक तरह के शरसाधनीपयुक्त मन्द स्पष्टग्रह होते हैं। वेधवलय में जहां बिम्ब उपलब्ध होता है उसके ऊपर तद्गोलीय कदम्ब प्रोतवृत्त करने से वह कक्षावृत्त में जहां लगता है भूकेन्द्र से तद्गत रेखा शीघ्र प्रतिवृत्त में जहां लगती है वह अन्य मन्द स्पष्ट ग्रह है; प्राचीनाचार्य इन दोनों मन्द स्पष्ट ग्रहों में भेद नहीं मानते हैं। स्पष्ट ग्रह ज्ञान बिना मन्द स्पष्ट ग्रह ज्ञान हो इसके लिये उसके उपकरए। रूप मन्द प्रतिवृत्त में भ्रमण करते हुए एक मध्यम ग्रह को प्राचीनों ने किल्पत किया। इसलिये मन्द प्रतिवृत्तीय वास्तव ग्रह मध्यम ग्रह ही है वह जितना अन्तरित करके शीघ्र प्रतिवृत्त में देखे जाते हैं वही मन्द फल है, वही (मध्यम ग्रह) मन्द स्पष्ट ग्रह है। वह मन्द स्पष्ट ग्रह वेधवृत्त में तत्तुल्य राशि से जितना भ्रन्तर करके देखे जाते हैं वही शीघ्र फल है, वही स्पष्टग्रह है इस कल्यना में किसी तरह का तारतम्य नहीं है, यथार्थतः मन्द फल साधनार्थ शीझ प्रतिवृत्त ही कक्षा वृत्त है, यहां वेघ न करने से अभीष्ट बिन्दू ही ग्रह गोल का केन्द्र है यतः कक्षावृत्त ही का जान कर फलानयन किया। प्रतिवृत्तीय कोटि रेखा (उच्च रेखा की समानान्तर रेखा) कक्षावृत्त में जहां लगती है वहीं पर शीघ्र प्रतिवृत्तीय मन्द स्पष्ट समान राश्यात्मक बिन्दु है। इस बिन्दु में भूकेन्द्र से रेखा लाने से कक्षावृत्त में जहां लगती है वहीं पर वह देखे जाते हैं उन दोनों का अन्तर फल ही है । उसके साधन के उपाय समी-चीन ही है क्योंकि प्रथम कल्पित कक्षावृत्त प्रतिवृत्त ही है। वहां बिना वेध के इब्ट स्थान ही की मेषादि कल्पना की गयी। वृत्त केन्द्र से तदुपरिगत उच्च रेखा ही यहां की उच्च रेखा है, मेषादि से मन्द प्रतिवृत्तीय समान मध्यमग्रह देकर मन्दकेन्द्र जानना चाहिये। मध्यम ग्रह की उपलब्धि जहां होती हैं वही मन्द स्पष्ट है इसलिये यहां के फलादियों का ग्रानयन समीचीन ही है उसके संस्कार से मन्द स्पष्ट ग्रह भी समीचीन ही होते हैं। इस प्रदर्शित मार्ग से वास्तव शीघ्र प्रतिवृत्तीय मन्द स्पष्ट ग्रह-उच्च और मेषादि का ज्ञान हुग्रा। यहां वेध बिना जानने योग्य स्थिति ही में पुनः ग्रभीष्ट बिन्दु से जो कक्षावृत्त होता है वह वास्तव कक्षा वृत्त है। इसमें मेषादि विन्दु, शीघ्रोच्च ग्रौर मन्द स्पष्टग्रह पूर्त्रोक्त विधि से ग्रिक्कृत करना। शीघ्र प्रतिवृत्तीय मन्द स्पष्ट बिन्दु से उच्च रेखा की समानान्तर रेखा कक्षा वृत्त में जहां लगती है वहीं मेषादि से मन्द स्पष्टग्रह के तुल्य खण्ड होता है। भ्केन्द्र से प्रत्तिवृतीय मन्द स्पष्ट ग्रह गत कर्ण रेखा कक्षा वृत्त में जहां लगती है वहीं पर उसकी उपलब्धि होती है। कोटि रेखा ग्रौर कर्ण रेखा का ग्रन्तर फल है उसके साधन के लिये जो उपकरण (सामग्री) हैं उनसे उसका साधन सुगम ही है इति।।२४-२६।।

इदानीं नीचोच्चवृत्तभङ्गचा शीघ्रफलं साधयति।

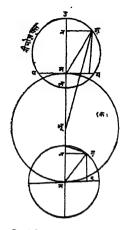
कोटिफलं व्यासार्धात् पदयोराद्यन्तयोर्भवत्युपरि । द्वितृतीययोर्यतोऽभस्तद्युक्तोनं ततः कोटिः ॥ २७ ॥ कर्णस्तद् भुजफलकृतिसंयोगपदं तदुद्धृता त्रिज्या । भुजफल गुर्गिताप्तधनुर्गिगितेनैवं फल शीझे ॥ २८ ॥

सु. मा.—स्पष्टार्थमार्याद्वयं भास्करोक्तभङ्गचा ।।२७-२८।।

नि. मा. — यत म्राद्यन्तयोः (प्रथम चतुर्थयोः) पदयोः — व्यासार्घात् (त्रिज्यातः) कोटिफलमुपिर भवति । द्वितीयतृतीयपदयोश्च कोटिफलं त्रिज्यातोऽघो भवति, तस्मात् कारणात् तेन कोटिफलेन युक्तं हीनं च व्यासार्धं (त्रिज्यामानं) नीचोच्च वृत्तीया स्फुटा कोटिर्भवति । तस्याः (स्फुटकोटेः) भुजफलस्य वर्गयोगमूलं शीघ्रं-कर्णो भवति । त्रिज्या भुजफलेन गुणिता तेन शीघ्रकर्णेन भक्ता लब्धस्य चापं शीघ्रं कर्मणि फलं (शीघ्रफलं) भवतीति ।

#### स्रत्रोपपत्तिः।

उ=उच्चम् । ग्र=पारमाथिको ग्रहः । भू -भूकेन्द्रम् । म = मध्यमग्रहः । मग्र = शीघ्रान्त्यफलज्या = ग्रंफज्या । भूम = त्रिज्या = त्रि । ग्रन = शीघ्रभुजफलम् । मन = ग्रर = कोटिफलम् = कोफ । म केन्द्राच्छीघ्रान्त्यफलज्या व्यासार्धेन शीघ्र-नीचोच्चवृत्तम् । पय = नीचोच्चवृत्तीय तिर्यंग्रेखा ।



कक्षावृत्ते मध्यमग्रहस्थानं केन्द्रं प्रकल्प्यान्त्य-फलज्यामितेन व्यासार्धेन नीचोच्चवृत्तं विलिख्य भूकेन्द्रान्मध्यग्रहस्थानगता रेखा कार्या साऽत्रोच्च-रेखा, नीचोच्चवृत्तस्योच्चरेखया सह यो योगौ तयोरूपरितन उच्चसंज्ञकः। ग्रधस्तनो नीचसंज्ञकः। उच्चरेखोपरि मध्यग्रहस्थानात्कृता लम्बरेखा नीचोच्चवृत्तीयतिर्यंग्रेखा, नीचोच्चवृत्तमुच्च-प्रदेशाद् भांशैरङ्कनीयम्। तत्रोच्चाच्छीघ्रकेन्द्रमनु-लोमं देयम्। तत्र शीघ्रकेन्द्राग्रे पारमार्थिको ग्रहः। ग्रत्र ग्रहोच्चरेखयोस्तिर्यंगन्तरं शीघ्रभुजफलम्।

ग्रह तिर्यग्रेखयोररन्तरं कोटिफलम् । भूकेन्द्र ग्रहयोरन्तरं शीघ्रकर्णः । एतदानयनम् । मकरादिकेन्द्रे (प्रथम पदे) भूम त्रिज्यात उपिरमन कोटिफलं दृश्यते ग्रतः
भूम + मन = त्रि + कोफ = भून = स्पष्टा कोटिः । भून + ग्रन = भूग = स्पष्टाको + ग्रुजफ = (त्रि + कोफ) + ग्रुजफ = शीघ्रकर्णा ग्रुलेन  $\sqrt{(त्रि + कोफ) + ग्रुजफ = शीघ्रफलम् । एवमेव चतुर्थे पदे, ग्रत्रोध्वंभागे क्षेत्रे
मकरादि केन्द्रं वोध्यम् । ग्रधोभागे च कवर्धादिकेन्द्रम् । कवर्धादिकेन्द्रे (द्वितीय पदे तृतीयपदे च) भूम = त्रिज्यातः ग्रर = कोटिफलं = मन ग्रन = ग्रुजफलम् । भूग = शीघ्रकर्णः । अत्र भूम त्रिज्यातः मन कोटिफलमधो दृश्यतेऽतः भूम — मन = भून = त्रि — कोटिफ = स्पष्टाकोटि, मन + ग्रुजफ = शीघ्रकर्णः | त्रि — कोफ) + ग्रुजफ = शीघ्रकर्णः मूल ग्रहर्णेन <math>\sqrt{(त्रि — कोफ) + ग्रुजफ = शीघ्रकर्णः मूल ग्रहर्णेन <math>\sqrt{(त्रि — कोफ) + ग्रुजफ = शीघ्रकर्णः मूल ग्रहर्णेन <math>\sqrt{(त्रि — कोफ) + ग्रुजफ = शीघ्रकर्णः मूल ग्रहर्णेन <math>\sqrt{(त्रि — कोफ) + ग्रुजफ = शीघ्रकर्णः मूल ग्रहर्णेन ग्रुलेक चित्रके ।$ 

श्रथ शीघ्रफलानयनम् । शीघ्रकर्णा एकोऽवयवः। भुजफलं द्वितीयोऽवयवः। स्पष्टा कोटिस्तृतीयोऽवयवः' इत्यवत्रयैवत्पन्नमेकं जात्यित्रभुजम् । त्रिज्यैकोऽवयवः। शीघ्र-फलज्या द्वितीयोऽवयवः । शीघ्रफल कोटिज्या तृतीयोऽवयवः, इत्यवयवत्रयैरुत्पन्नं द्वितीयं जात्यित्रभुजम् । एतयोस्त्रिभुजयोः साजात्यादनुपातो यदि शीघ्रकर्णेन भुजफलं लभ्यते तदा त्रिज्ययाकिमित्यनुपातेन समागच्छति शीघ्रफलज्या तत्स्व-

रूपम् = भुजफ ×ित्र =शीफज्या, ग्रस्याश्चापम् =शीघ्रफलम् । एतेनाऽऽचार्योक्त-

मुपपन्नम् । सूर्यं सिद्धान्ते "शैष्ट्यं कोटिफलं केन्द्रे मकरादौ घनं स्मृतम् । संशोध्यं तु त्रिजीवायां कर्क्यादौ कोटिजं फलम् ।। तद्बाहुफलवर्गेक्यान्मूलं कर्णश्चलाभिष्टः । त्रिज्याभ्यस्तं भुजफलं चलकर्गाविभाजितम् । लब्षस्य चापं लिप्तादिफलं शैष्ट्य-मिदं स्मृतमिति सूर्यंसिद्धान्तकारोक्तानुरूपमेवाचार्योक्तमस्ति । सिद्धान्त शेखरे "त्रिज्यकायां पदैस्तत् फलमथ खलु कोटेः कोटिसिद्धये विधेयम् । कोटिवाहु फल-वर्गसमासाद्यत्पदं तदिह कर्गामवेहि । दोः फल त्रिगुग्योरभिषातात् कर्गालब्ध-

धनुराशुफलं स्यात् ॥'' श्रीपत्युक्तमिदमाचार्योक्तानुरूपमेवेति । सिद्धान्तशिरोमगौ 'त्रिज्योध्वंतः कोटिफलं मृगादौ कर्क्यादिकेन्द्रे तदधो यतः स्यात् । अतस्तदैक्या-न्तरमत्र कोटिरि'त्यादि भास्करोक्तमाप्याचार्योक्तानुरूपमेवेति ॥ २७–२८ ॥

## ग्रव नीचोच्चवृत्तभङ्गी से शी घ्रफलानयन करते हैं।

हि सा -- प्रथम पद और चतुर्थपद (मकरादि केन्द्र) में त्रिज्या से कोटिफल कपर होता है। द्वितीयपद और तृतीयपद (कक्चीदिकेन्द्र) में कोटिफल त्रिज्या से नीचा होता है इसलिये मकरादि केन्द्र में त्रिज्या में कोटिफल को जोड़ने से और कक्चीदि केन्द्र में त्रिज्या में कोटिफल को घटाने से नीचो चतुर्तीय स्पष्टा कोटि होती है, स्पष्टकोटि और भुजफल के वर्गयोग का मूल शीझ कर्ण होता है। त्रिज्या को भुजफल से गुणाकर शीझकर्ण से भाग देने से जो लब्ब हो उसका चाप शीझफल होता है इति।

#### उपपत्ति ।

यहां संस्कृतोपपत्ति में लिखित (क) क्षेत्र को देखिये। उ = उच । ग्र = पारमार्थिक-ग्रह । भू=भूकेन्द्र, म=मध्यमग्रह । मग्र=शीझान्त्यफलज्या=श्रंफज्या । भूम=त्रिज्या = त्र । ग्रन = शी घ्रभुजफल । मन = ग्रर = कोटिफल = कोफ । म केन्द्र से शी घ्रान्त्यफलज्या व्यासार्घ से जो वृत्त होता है वह शीघ्रनीचोचवृत्त है । पय —नीचोचवृत्तीय तिर्यग्रेखा. उल = उच्चरेखा । कक्षावृत्तीय मध्यम ग्रहस्थान को केन्द्र मान कर ग्रन्त्यफलज्या व्यासार्घ से नीचोचवृत्त लिखकर भूकेन्द्र से मध्यमग्रह स्थान गत रेखा करनी चाहिये, वही यहां उच्च रेखा है। उच रेखा और नीचोच्चवृत्त का ऊपर भाग में योग उच्च संज्ञक है। स्रघोभाग में योग नीच संज्ञक है। उच्च रेखा के ऊपर मध्यमग्रह स्थान से लम्ब रेखा नीचोच्चवृतीय तिर्यंग्रेखा है। नीचोच्चवृत्त में उच्च प्रदेश से भांश ३६० म्रिङ्कित करना, उस (नीचोच्च-वृत्त) में उच से शीघ्र केन्द्र को अनुलोम दान देना, वहां शीघ्र केन्द्राग्र में पारमार्थिक ग्रह होता है। यहाँ ग्रह ग्रौर उच्चरेखा का तिर्यक् ग्रन्तर शीघ्र भुजफल है। ग्रह ग्रौर तिर्यक् रेखा का अन्तर कोटिफल है। भूकेन्द्र और ग्रह का अन्तर शी घ्रकर्श है। इसका आनयन करते हैं। मकरादि केन्द्र में (प्रथम पद में और चतुर्थपद में) भूम त्रिज्या से ऊपर मन कोटिफल को देखते हैं भतः भूम + मन = भून = त्रि + कोफ = स्पष्टाकोटि, भून + ग्रन  $\sqrt{(3+1)^3+1}$  मुजफ $^3=$  शिव्रक। इसी तरह चतुर्थपद में भी होता है । क्षेत्र के कर्घ्वं भाग में मकरादि केन्द्र समभना चाहिये। मधोभाग में कर्क्यादिकेन्द्र समभना चाहिये। द्वितीय पद में भूम = त्रिज्या, ग्रर = कोटिफल = मन । ग्रन = भुजफल, भूग्र = शी घ्रकर्र्या, यहां भूम त्रिज्या से मन कोटि फल को नीचा देखते हैं ब्रतः भूम —मन — भून — त्रि — कोफ =स्पष्टाको । भून $^3$ +ग्रन $^3$ =स्पको $^3$ +भुजफ $^3$ =(त्रि-कोफ) $^3$ +भुजफ $^3$ =शी ध्रक $^3$  मूल लेने से $\sqrt{(त्र - कोफ)^2 + भुजफ^2} =$  शीघ्रक, भ्रवशी घ्रफलानयन करते हैं। शीघ्र कर्ण एक

मुज, भुजफल द्वितीयभुज, स्पष्टा कोटि तृतीयभुज, इन तीनों भुजों से उत्पन्न एक जात्य त्रिभुज है। तथा त्रिज्या एक भुज, शीघ्र फलज्या द्वितीयभुज, शीघ्रफल कोटिज्या तृतीय भुज इन तीनों भुजों से उत्पन्न द्वितीय जात्य त्रिभुज है। इन दोनों त्रिभुजों के सजातीयत्व से धनुपात करते हैं यदि शीघ्र कर्णों में शीघ्र भुजफल पाते हैं तो त्रिज्या में क्या इस धनुपात से शीघ्र फलज्या झाती है उसका स्वरूप = शीभुफ × त्रि = शीफज्या, इसका चाप = शीकर्णं

शीफल, इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ। सूर्यंसिद्धान्त में "शैंब्र्यं कोटिफलं केन्द्रमकरादौ धनं स्मृतम् । संशोध्यं तु त्रिजीवायां' इत्यादि संस्कृतोपपत्ति में लिखित सूर्यंसिद्धान्तकारोक्त हलोकों के अनुरूप ही ग्राचार्योक्त है। सिद्धान्तशेखर में 'त्रिज्यकायां पर्देस्तत्। फल मथ खलु कोटेः कोटिसिद्धचै विधेयम्' इत्यादि श्रीपत्युक्त ग्राचार्योक्त के ग्रनुरूप ही है। सिद्धान्तशिरोमिण में 'त्रिज्योध्वैतः कोटिफलं मृगादौ कर्क्यादि केन्द्रे तदधो यतः स्यात्' इत्यादि भास्करोक्त भी ग्राचार्योक्त के ग्रनुरूप ही है इति ॥२७–२८॥

इदानीं मन्दकर्मिं कर्णः िकमु न क्रियते इत्यत्र कारणमाह।

त्रिज्याभक्तः परिविः कर्गगुराो बाहुकोटिगुराकारः । श्रसकृन्मान्दे तत्फलमाद्यसमं नात्रकर्गोऽस्मात् ॥ २६ ॥

सुः भाः—'स्वल्पान्तरत्वान्मृदुकर्मगीह'—इत्यादि भास्करोक्तेन स्पष्टेय-मार्या ॥ २९ ॥

वि. भा- मन्दफलसाधने मन्दपरिधिर्मन्दकर्गोन गुणितः त्रिज्याभक्तः सन् भुजकोटचोर्गु एकोऽसकृत् वारं वारं क्रियया स्यात्। ततश्च परिधेः मान्दं फलमाद्य-सममेव कर्णानुपातं विनैवानीते न मन्दफलेन सममेवेति तस्मान्मन्दफलानयन-क्रियायां कर्णो न कृतोऽर्थात् कर्णाग्रे यदि मन्दफलं तदा त्रिज्याग्रे किमिति त्रैराशि-कार्थं कर्णानयनं न कृतिमत्यर्थः। सिद्धान्तशेखरे "त्रिज्याहृतः श्रुतिगुणः परिधि-र्यतो दोः कोटचोर्गु गो मृदुफलानयनेऽसकृत् स्यात्। स्यान्मान्दमाद्यसममेव फलं ततश्च कर्णः कृतो न मृदुकर्मणि तन्त्रकारैः।।" इह मन्दफल साधनेऽपि कर्णानुपातेन यत्फलं तदेव समीचीनमिति कर्णः कथं न कृत इत्यस्योपपत्तिरूपोऽयं श्रीपतेः श्लोक श्राचार्योक्त श्लोकस्यानुवादरूप एव। भास्कराचार्येगापि "स्वल्पान्तरत्वान्मृदु-कर्मणीह कर्णः कृतो नेति वदन्ति केचित्। त्रिज्योद्धृतः कर्णागुणः कृतेऽपि कर्णो स्फुटः स्यात् परिधिर्यतोऽत्र ॥ तेनाद्यतुल्यं फलमेति तस्मात् कर्णः कृतो नेति च केचिद्चः। नाशङ्कनीयं न चले किमित्थं यतो विचित्रा फलवासनाऽत्र ॥" इह कर्णोन यत्फलमानीयते तदेव समीचीनम् । यन्मन्दकर्मणि कर्णोन कृतस्तत्स्बल्पान्तरात्। मन्दफलानि हि स्वल्पानि तदन्तरं चातिस्वल्पमिति केषांचित् पक्षः।

श्रय यद्येवं परिघेः कर्णोन स्फुटत्वं तर्हि शीघ्रकर्मिणि कि न कृतमत्र चतुर्वे-दाचार्यं श्राह । चले कर्मशीत्यं कि न कृतमिति नाशङ्कनीयम् । यतः फलवासना विचित्रा । शुक्रस्यान्यथा परिघेः स्फुटत्वं कुजस्यान्यथा तथा कि न बुधादीनामिति नाशङ्कनीयमत श्राचार्योक्तिरत्र सुन्दरी ॥ २९ ॥

श्रव मन्द कर्म में कर्णानुपात क्यों नहीं किया जाता है इसके कारएा कहते हैं।

हि. मा. - मन्द फल साधन में मन्द परिधि को कर्ण से गुर्णाकर त्रिज्या से भाग देने से भूज श्रीर कोटि का गुएाक बार-बार क्रिया से होता है। उस परिधि से मान्दफल श्राद्य सम ही होता है श्रर्थात् बिना कर्णानुपात के समागत मन्दफल के बराबर ही होता है। इसलिये मन्दफलानयन में कर्णानुपात नहीं किया गया अर्थात् यदि कर्णात्र में मन्दफल पाते हैं तो त्रिज्याप्र में क्या इस त्रैराशिक के लिये कर्णानुपात नहीं किया जाता है। सिद्धान्त-शेखर में 'त्रिज्याहृत: श्रृतिगृरा: परिधि:' इत्यादि विज्ञानभाष्य में लिखित इलोक से मन्दफल सावन में भी कर्णांनुपात से जो फल ब्राता है वही समीचीन है। इसलिये कर्णानुपात क्यों नहीं किया गया इसके उपपत्तिरूप श्रीपत्युक्तश्लोक ग्राचार्योक्त श्लोक के ग्रनुवादरूप ही है। भास्कराचार्यं भी 'स्वल्पान्तरत्वान्मृदुकर्मणीह' इत्यादि विज्ञानभाष्य में लिखित श्लोकों से यहां कर्ण से जो फल लाते हैं वही समीचीन हैं, मन्दकर्म में कर्णान्पात स्वल्पान्तर से नहीं किया गया, मन्दफल स्वल्प है उसका भ्रन्तर भ्रतिशयेन स्वल्प है यह किसी-किसी का पक्ष है । यहां म्राचार्य कारए। कहते हैं । मन्दकर्म में मन्दकर्ए तुल्य व्यासार्घ से जो वृत्त होता है वह कक्षावृत्त है। उसमें ग्रह भ्रमण करते हैं। पाठपठित मन्द परिधि त्रिज्याग्र में परिएात है। उसको कर्गा व्यासार्थ में परिरात करते हैं, यदि त्रिज्यावृत्त में यह पाठ-पठित मन्द-परिधि पाते हैं तो कर्णवृत्त में क्या इससे स्फुट परिधि प्रमाण श्राता है, इसको भूजज्या से गुर्णाकर ३६० भांश से भाग देकर जो फल होता है उसको त्रिज्या से गुर्णाकर कर्ण से भाग परिधि. भुज्या.

पूर्वं फल तुल्य ही फल बाता है यह आचार्य का मत है यदि इस तरह कर्ण से परिधि का स्फुटल्व होता है तब शीधकर्म में क्यों नहीं किया गया इसके लिये चतुर्वेदाचार्य कहते हैं।

शीघ्रकर्म में इस तरह क्यों नहीं किया गया यह आशङ्का नहीं करनी चाहिये क्योंकि फलो-पपत्ति विचित्र है, यहां ब्रह्मगुप्तोक्त ही वहुत सुन्दर है इति ॥ २६ ॥

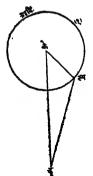
## इदानीं विशेषमाह।

# प्रतिपादनार्थमुच्चं प्रकल्पितं ग्रहगतेस्तथा पातः । भुक्त रूनाधिकता मानस्य च भवति कर्णवशात ।। ३०।।

सु. भा.---ग्रहगतेः प्रतिपादनार्थमुच्चं प्रकल्पितं तथा पातश्च प्रकल्पितः क्रान्तिवृत्तीयगत्यर्थमुच्चं विमण्डलीयगत्यर्थं पातः प्रकल्पित इति । कर्गास्य न्यूना-धिकवशात् भुक्ते बिम्बमानस्य च न्यूनाधिकता भवतीति । एवं मन्दस्पष्टग्रहे स्थितिर्भवति । भौमादीनां शीघ्रकर्ण्वशतश्च बिम्बमाने न्यूनाधिकता भवति परन्तु स्पष्टगतौ कर्णवशेन न न्यूनाधिकतोत्पद्यत इति छेद्यकेन सर्वं स्फुटम्। 'यः स्यात् प्रदेशः प्रतिमण्डलस्य' इत्यादि तथा 'उच्चस्थितो व्योमचरः सुदूरें' इत्यादि च भास्करोक्तमेतदनुरूपमेव ॥३०॥

वि. मा. -- ग्रहगतेः प्रतिपादनार्थमुच्चं प्रकल्पितं तथा पातश्च प्रकल्पितः । उच्चं क्रान्तिवृत्तीयगत्यर्थं विमण्डलीयगत्यर्थं च पातः प्रकल्पित इत्यर्थः । कर्णस्य न्यूनाधिक्चवशाद् भुक्ते बिम्बमानस्य च न्यूनाधिकता भवति । मन्दस्पष्टग्रहे एवं स्थितिभवति । मञ्जलादीनां ग्रहाराां शीझकर्णवशाद्विम्बमाने न्यूनाधिकत्वं भवति । परं स्फुटगतौ कर्णवशेन न्यूनाधिकता नीत्पद्यते । कर्णवशेन बिम्बमाने न्यूनाधि-कत्वं कथं भवति तदर्थं भास्करेण 'उच्चिस्थितो व्योमचर ; सुदूरे नीचिस्थित इत्यादिना युक्तियुक्तं कथितम् । यथा





ह=हष्टिस्थानम् = भूकेन्द्रम् । हके = ग्रह-कर्गाः । केस्प = बिम्ब व्यासार्धम् । दकेस्प त्रिभुजे-Sनुपातः क्रियते । यदि ग्रहकर्गोन त्रिज्या लभ्यते तदा बिम्ब व्यासार्घेन कि जाता बिम्बार्धकलाज्या तत्स्वरूपम् =  $\frac{त्रि. विव्या <math>\frac{1}{2}}{ y_{E}$  , उच्चस्थानीय

कर्णः >ग्रन्यस्थानीय क ग्रत उच्चस्थाने हरस्याघि-कत्वाद्विम्बमानमन्यस्थानीय-बिम्बमानादल्पं भवेत्। नीचस्थानीयकर्गाः < ग्रन्यस्थानीय कर्ण, ग्रतो नीच-स्थाने हरस्याल्पत्वादन्यस्थानीय बिम्बमानादिधकं

बिम्बमानं भवितुमर्हतीति ॥ ३० ॥

#### भ्रब विशेष कहते हैं।

हि. भा.—ग्रहगति ज्ञान के लिये उच्च की कल्पना की गई है तथा पात की कल्पना की गयी है। ग्रर्थात् क्रान्ति वृत्तीय गति के लिये उच्च किल्पत है, ग्रौर विमण्डलीय गति के लिये पात किल्पत है। कर्ण की न्यूनाधिकतावश से ग्रहगति ग्रौर बिम्बमान में न्यूनाधिकता होती है, इस तरह की स्थित मन्दस्पष्ट ग्रह में होती है। कुजादिग्रहों के शीघ्रकर्णवश से विम्बमान में न्यूनाधिकता होती है। लेकिन स्पष्टगति में कर्णवश से न्यूनाधिकता नहीं होती है। कर्णवश से बिम्बमान में न्यूनाधिकत्व क्यों होता है, नीचे लिखी हुई युक्ति से स्पष्ट है।

संस्कृत भाष्य में लिखित (१) क्षेत्र को देखिये। ह=हिष्टस्थान=स्वल्पान्तर से भूकेन्द्र । के=बिम्बकेन्द्र । हके=ग्रहकर्ण केस्प=बिम्ब व्यासार्ध । हकेस्प त्रिभुज में ग्रनुपात करते हैं। यदि ग्रहकर्ण में त्रिज्या पाते हैं तो बिम्ब व्यासार्ध में क्या इस श्रनुपात से विम्बार्ध कलाज्या श्राती है । इसका स्वरूप =  $\frac{1}{1}$  तिंव्या है = ज्या है विक । उच्च-

स्थानीय ग्रहकर्गे > ग्रन्यस्थानीयग्रहकर्गा, इसलिये उच्चस्थान में हर की ग्रधिकता से बिम्बमान ग्रन्य स्थानीय बिम्बमान से ग्रल्प होता है। तथा नीचस्थानीय कर्गा > ग्रन्यस्थानीय कर्गा, ग्रतः नीचस्थान में हर की ग्रल्पता से बिम्बमान ग्रन्यस्थानीय बिम्बमान से ग्रिक होता है इति ।। ३०।।

## इदानीं स्फुटयोजनात्मककर्णानयनमाह ।

# कक्षा व्यासार्वगुणा मण्डललिप्ता विभाजिता कर्णः । स्वकलाकर्णेन गुरगः कर्णस्त्रिज्याहृतः स्पष्टः ॥३१॥

सुः भाः --- प्रहकक्षा व्यासार्घेन त्रिज्यया गुगा मण्डललिप्ताभिश्वक्रकलाभि-विभाजिता फलं मध्यमयोजनकर्गः स्यात् । स कर्णः स्वकलाकर्गेन स्फुटशी झ-कर्गोन गुग्गस्त्रिज्याहृतः स्पष्टो योजनकर्गः स्यात् ।

#### अत्रोपपत्तिः।

पूर्वीर्धस्य परिधितो व्यासार्घानयनेन स्फुटा । त्रिज्यातुल्येन कलाकर्गोन मध्यो योजनकर्गास्तदा स्वेष्टकलाकर्णेन किमित्यनुपातेन स्फुटो योजनकर्गो भवति । 'लिप्ताश्रुतिष्नस्त्रगुरोन भक्तः'—इत्यादि भास्करोक्तमेतदनुरूप-मेव ॥३१॥

वि. मा.—ग्रहकक्षा त्रिज्यया गुणा मण्डलकलाभिः (चक्रकलाभिः) भक्ता तदा मध्यमयोजनकर्णो भवेत् स कर्णः स्फुटशी झकरणनगुणः, त्रिज्यया भक्तस्तदा स्फुटो योजनकर्णः स्यादिति ।

#### ग्रत्रोपपत्ति:।

यदि चक्रकलाभिग्र हिकक्षा योजनानि लभ्यन्ते तदा त्रिज्यया कि समागछिति मध्यमयोजनकर्णाः । पुनरनुपातो यदि त्रिज्ययाऽयं मध्यमयोजनकर्णो लभ्यते तदा स्फुटशी झकर्णेन कि समागच्छिति स्फुटो योजनकर्णाः । एतावताऽऽचार्योक्तमु-पपन्नम् । सिद्धान्तिशरोमगौ 'लिप्ताश्रु तिघ्नस्त्रिगुगोन भक्तः स्पष्टो भवेद्योजनकर्णं एवमिति' भास्करोक्तमाचार्योक्तानुरूपमेवास्तीति ॥३१॥

## भ्रब स्पष्ट योजनात्मक कर्णानयन को कहते हैं।

हि. भा.—ग्रहकक्षा को त्रिज्या से गुएगा कर चक्रकला से भाग देने से मध्यमयोजन कर्एं होता है। मध्यमयोजन कर्एं को स्फुट शीझ कर्एं से गुएगाकर त्रिज्या से भाग देने से स्फुट योजन कर्एं होता है।

#### उपपत्ति। -

यदि चक्र कला में ग्रह कक्षा योजन पाते हैं तो त्रिज्या में क्या इस अनुपात से मध्यमयोजन कर्णांप्रमाण आता है। पुनः अनुपात करते है यदि त्रिज्या में यह मध्यम योजन कर्णां पाते हैं तो स्फुट शीघ्र कर्णां में क्या इससे स्फुट योजन कर्णां आता है। इससे आचार्योंक उपपन्न हुआ। सिद्धान्तिश्रिरोमिण में 'लिप्ताश्रुतिष्निस्त्रगुणेन भक्तः' इत्यादि भास्करोक्त आचार्योंक के अनुरूप ही है इति ।।३१।।

## इदानीं भूरविचन्द्राएगं योजनव्यासानाह ।

# मृद्दहनजलमयानां विष्कम्भो योजनैः क्विनेन्द्रनाम् । शशिवसुतिथिभि १५८१ र्यमपक्षशररसै ६५२२ शून्यवसुवेदैः ।।३२।।

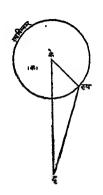
सु. भा.—क्विनेन्द्रनां भूरविचन्द्राणां किविशिष्टानां मृद्दहनजलमयानां क्रमेण शशिवसुितिथिभिर्यमपक्षशररसैंः शून्यवसुवेदैयोजनैविष्कमभो ज्ञेयः । भूगोल-स्य मृण्मयस्य व्यासः—१५८१ । सूर्यंगोलस्याग्निमयस्य व्यासः—६५२२ । जलम—यस्य चन्द्रस्य व्यासः—४८० । योजनात्मको ज्ञेय इत्यर्थः ।

अत्रोपपत्तिः । भास्करिविधिना 'पुरान्तरं चेदिदमुत्तरं स्यात्'—इत्यादिना तथा 'बिम्बं रवेद्विद्विशरर्तुसंख्यानि' इत्यादिना तत्तद्वासनया च स्फुटा ॥३२॥

वि. भा- मृण्मयस्य भूगोलस्य व्यासः = १५८१, श्रग्निमयस्य सूर्यगोलस्य व्यासः = ६५२२, जलमयस्य चन्द्रस्य व्यासः = ४८०, योजनात्मको भवतीति ।

# ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त<u>े</u>

#### अत्रोपपत्तिः ।



के = ग्रहिबम्बकेन्द्रम् । ह = हिष्टिस्थानम् । हके = हिष्टिन् सूत्रम् । हिष्टिस्थानाद्ग्रहिबम्बस्पर्शरेखा = हस्प, केस्प = ग्रहिबम्बव्यासार्धम् । ग्रहिबम्बव्यासार्धसंमुखः कोगो हिष्टिस्थानगतः = स्फुटिबम्बार्धकला । < हस्पके = ९०, तदा हकेस्प त्रिभुजे ऽनुपातेन हिके = ज्या < स्पहके = ज्या | स्फुर्वि = ति. १ योव्या |

= स्फुवि १ स्वल्पान्तराज्ज्याचापयोरभेदात् । ग्रतः नि. योव्या = मित, त्रि योव्या क

=स्फुर्वि, मक=मध्यमकर्गः ततः  $\frac{\text{स्फुर्वि}}{\text{मिव}} = \frac{\text{ति. योग्या मक}}{\text{ति. योग्या क.}}$ , यदि स्वल्पान्तरात् योग्या = योग्या तदा  $\frac{\text{स्फुर्वि}}{\text{मिव}} = \frac{\text{मक}}{\text{क}}$ , उच्चस्थाने ग्रहिबम्बं लघु,
गतिश्च लघ्वी, नीचस्थाने बिम्बं महत्, गतिश्च महती, अतो बिम्बयोगिष्यित्तर्गत्योगिष्पित्तसमा, ग्रतः  $\frac{\text{मक}}{\text{क}} = \frac{\text{स्फुर्ग}}{\text{मिव}} = \frac{\text{स्फुर्ग}}{\text{स्मुर्ग}}$ 

=क स्फुट बिम्बेऽस्योत्थापनेन स्फुर्वि =  $\frac{7}{8}$ .  $\frac{1}{8}$   $\frac{7}{8}$   $\frac{1}{8}$   $\frac{1}{8}$ 

स्थाने हके, हस्प यष्टिक्यां वेघेन यत् केस्प मानं तदेव द्विगुग्गं तदा योव्या मानं भवेत्। तथा स्फुट गित स्थाने यत् केस्प मानं तदेव द्विगुग्गं तदा योव्या मानं बोध्यम्, ग्रनया रीत्या रिव चन्द्रयोर्थोजनव्यासानयनं कार्यम् । भूव्यासानयनं वेघेन भवित तदर्थं वटेक्वर सिद्धान्ते मट्टीका द्रष्टव्येति ॥३२॥

# अब भू (पृथ्वी) रिव और चन्द्र के योजन व्यास को कहते हैं।

हि. मा. - मृण्मय भूगोल का योजनात्मक व्यास = ११८१, ग्रन्तिमय सूर्य गोल का योजनात्मक व्यास = ६५२२ है जलमय चन्द्रगोल का योजनात्मक व्यास = ४८०, है इति ।

#### उपपत्ति ।

यहां संस्कृतोपपत्ति में लिखित (क) क्षेत्र को देखिये। के = ग्रहविम्बकेन्द्र। ह= हष्टिस्थान । हके == हष्टि सूत्र । हष्टि स्थान से ग्रहबिम्ब की स्पर्शरेखा = हस्प, केस्प —- ग्रहबिम्ब व्यासार्घ, ग्रहबिम्ब व्यासार्घ संमुख दृष्टि स्थानगत कोर्ग ==स्फुट बिम्बार्घकला, < हस्पके = ६०, तब हकेस्प त्रिमुज में घनुपात से त्रि.केस्प = ज्या < स्पहके = ज्या स्फुर्वि = त्रि है योव्या = स्फुर्वि है स्वल्पान्तर से ज्या और चाप के अभेदत्व से अतः = मिंद । त्रि.योच्या = स्फुर्वि । मक = मध्यम कर्गां, स्फुट बिम्ब में मध्यम बिम्ब से भाग हेने से स्फूर्ति = त्रि. योव्या. मक यदि स्वल्पान्तर से योव्या = योव्या तब स्फूर्ति = मक उबस्थान में ग्रहबिम्व छोटा होता है, ग्रह गित भी छोटी होती है । नीच स्थान में ग्रह बिम्ब बड़ा होता है, गति भी बड़ी होती है स्रत: बिम्बों की निष्पत्ति गति की निष्पत्ति के बराबर होती है, भतः मक स्फुरित स्फुग, भतः मक.मग = क स्फुट बिम्ब में इसके उत्थापन से स्फुर्वि =  $\frac{7}{m}$   $\frac{1}{m}$   $\frac{7}{m}$   $\times$   $\frac{1}{m}$  स्वल्पान्तर से । यहां स्वल्पान्तर से यदि मध्यमकर्गं =स्फुट कर्गं तब नित्र स्फुग. योज्या = स्फुर्वि, भ्रतः क.स्फुर्वि =योज्या = स्फुग.योक्या मध्यम गति स्थान में हके, हस्प यष्टिद्वय से वेघ से जो केस्प मान होता है उसको द्विगुणित करने से योव्या मान होता है। तथा स्फुट गति स्थान में जो केस्प मान होता है उसको द्विगुणित करने से योव्या मान जानना चाहिये। इस रीति से रिव ग्रीर चन्द्र का ज्यासानयन करना चाहिये, भूव्यासानयन देघ से होता है उसके लिये वटेश्वर सिद्धान्त में मेरी टीका देखनी चाहिये इति ॥३२॥

## इदानीं भूभाविम्बानयनमाह।

क्वर्कव्यासान्तरगुरामिन्दुस्फुटकर्णमकंकर्णहृतम् । प्रोह्य भुवो भूच्छाया विष्कम्भश्चन्द्रकक्षायाम् ॥३३॥

सु० भा०-इन्दुस्फुटकर्एं क्वकंव्यासान्तरगुरामर्ककर्णहृतं फलं भुवो

भूव्यासात् प्रोह्य चन्द्रकक्षायां भूच्छायाविष्कम्भो भवति । 'भूव्यासहीनं रविबिम्ब मिन्दुकर्णाहृतम्' इत्यादि भास्करोक्तमेतदनुरूपमेव ।

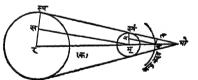
#### श्रत्रोपपत्तिः।

भास्करोक्तेन विधिना स्फुटा। भ्रनेन प्रकारेण चन्द्रकक्षायां भूभाव्यासो नायातीत्यस्य मीमांसा कमलाकरेण तत्त्वविवेकचन्द्रग्रहणाधिकारे समीचीना कृता । लाघवेन सूक्ष्मभूभाकला बिम्बानयनं मदुक्तं यथा

> रिवतनुदलजीवा लम्बनोर्व्या विहीना, क्षितिजजितिया तत्कार्मुकं कार्यमार्थेः । द्विजपितजपराख्यं लम्बनं तद्विहीनं।। भवति वसुमतीभाबिम्बखण्डं सुसूक्ष्मम्। स्रत्रोपपित्तर्भूभाक्षेत्रेण त्रिकोणिमत्या च सुगमा।।

यदि रिवभूबिम्बयोविरुद्धपालिभवा स्पर्शरेखा क्रियते तदा भूभाभोत्पद्यते यद्दशाच्चन्द्रबिम्बे मालिन्यमुपलभ्यते । भूभाभासाधनार्थमुपिरभूभानयनसूत्रे प्रथम-पादे 'विहीना' स्थाने 'च युक्ता' तृतीयपादे 'तिद्वहीन' मित्यत्र 'तद्युतं सत्' इति ज्ञेयम् । ग्रहणान्यविशेषार्थं मदीयं ग्रहणकरणं निरीक्षणीयमित्यर्थः ॥३३॥

नि. भा.—इन्दुस्फुटकर्एं (चन्द्रस्फुटकर्एं) क्वकंव्यासान्तरेगा (भूव्यास-हीनरिवव्यासेन) गुणं रिवकर्णभक्तं लब्धं भूव्यासाद्विशोध्य चन्द्रकक्षायां भूभा-व्यासो भवतीति।



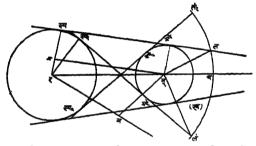
#### अत्रोपपत्तिः ।

रविबिम्बभूबिम्बयोः क्रमस्पर्शरेखा यत्र चन्द्रकक्षायां लगन्ति तद्विन्दुजनितमार्गो वृत्ता-कारो भवति तदेव भूभावृत्तम् । सर्वाः स्पर्श-

रेखा विधितरिवकर्णेन साकमेविस्मिन्नेव बिन्दौ मिलन्ति,स च योगबिन्दुः=यो,र= बिम्ब के, भू=भूकेन्द्रम् । रस्प=रिवव्यासार्धम् । भूस्प=भूव्यासार्धम् । भूबिन्दुतः स्पर्शरेखायाः समानान्तरा भूस रेखा कार्या च=चन्द्र केन्द्रम् । च बिन्दुतः स्पर्शरेखायाः समानान्तरा च न रेखा कार्या । सस्प=भूस्प=भूव्यासार्धम्=भूव्या ३ रस्प—सस्प=रव्या३—भूव्या३, भूर=रिवकर्णः । भूच=चन्द्रकर्णः । च बिन्दुतः स्पर्शरेखोपिरिलम्बो भूभाव्यासार्धसमः=नस्प, भूरस, भूचन त्रिभुजयोः साजा-त्यादनुपातेन  $\frac{रस×भूच}{रभू}=$  $\frac{(रव्या३-भूव्या३) चन्द्रकर्णः अतः भूस्प—$ 

भून = नस्प = भूव्या है — (रव्या है - भूव्या है) चंकर्ण = भूभाव्या है = चल द्विगुर्णो रकर्ण कररोन भूव्या — चंकर्ण (रव्या - भूव्या) = भूभाव्यासः, एतेनाऽऽचार्योक्तमुप-पन्नम्।

श्रयं भूभाव्यासश्चन्द्रकक्षायां नायातीति क्षेत्रदर्शनेनैव स्फुटम् । श्रनेनैवे "भूव्यासहीनं रिविबम्बिमन्दुकर्णाहतं भास्करकर्णभक्तम् । भूविस्तृतिर्छव्य-फलेन हीना भवेत्कुभाविस्तृति रिन्दुमार्गे।" ति भास्करोक्तमप्युपपद्यते । सिद्धान्त-शेखरे "इन्दुश्रुतिः स्फुटमहर्यतिभूतधात्रि व्यासान्तरेण गुणिता रिवकर्णभक्ता । भूविस्तृतेः फलमपोह्य वदन्ति शेषं छायां भुवः शशधरभ्रमणप्रदेशे।" श्रीपत्युक्त-मपीदमाचार्योक्तानुरूपमेवेति ।



र=रविविम्बकेन्द्रम् । भू = भूकेन्द्रम् । भूर = रविकर्गः ।

रस्प=रिवव्यासार्धम्=रव्याः । भूस्प=भूव्यासार्धम्=भूव्याः , भूविन्दुः स्पर्शरेखायाः समानान्तरा रेखा=भून, भूल=चन्द्रकर्गाः। रन=रव्याः -भूव्याः <
रनभू=९०, भूरन त्रिमुजेऽनुपातः क्रियते त्रि (रव्याः -भूव्याः ) =ज्या<
रक्
रभून= त्रिः रव्याः - त्रिः भूव्याः =ज्याः - रक्
रभून= त्रिः रव्याः - त्रिः भूव्याः =ज्याः - रक्
(चा) नवतेर्विशोध्यं तदा< नरभू=९०-चा=<च भूस्प, भूलस्प त्रिमुजेऽनुपातः त्रिः भृव्याः =ज्या<भूलस्प =ज्याचंपलं, अस्याश्चाम् =चंपलं नवतेर्विशोध्यं तदा चक्
रलभूस्प=९०-चंपलं, ततः <चभूस्प - रलभूस्प =९०-चा - (६० - चंपलं) =६० - चा - ९० + चंपलं =चंपलं - चा = रचभूल = भूभाबिम्बार्धम् । भ्रनेन "रिवतनुदलजीवा लम्बस्य ज्ययोना क्षितिजजनितया तत्कार्मुकं कार्यमार्यः। द्विजपतिजपराख्यं लम्बनं तद्विहीनं भवति वसुमतीभाबिम्बखण्डं सुसूक्ष्मम्।" इति म.म. सुधाकरोक्तमुपपद्यते। भ्रत्रैव यदि ज्याचापयोरभेदत्वं स्वीक्रियेत तदाः है रिवं -रपलं =चा। परन्तु भूभाबिम्बार्धम् =चंपलं -चा =चंपलं - (है रिवं -रपलं)

= चंपलं + रपलं - १रिवं, एतेन "दिवाकर निशानाथपरलम्बनसंयुतिः । रिवं बिम्बार्धं रिहता भूभाबिम्बदलं भवेत्।" इति यूरपदेशीयानां प्रकार उपपद्यत इति । एवं यदि स्प, स्प, स्प, स्प, विरुद्ध स्पर्शरेखे क्रियेते तदा चन्द्रकक्षायां ल, ल, विन्द्वोरन्तर्गतो भागः सर्वेकिरगानां संयोगाभावात् म्लान इव भवति । ग्रतस्तत्र

प्रदेशत एव चन्द्रकान्तिमालिन्यम् । ग्रत एव लभूच इदं कोणमानं भूभाभाविम्बा-धं कल्प्यते तदा र बिन्दुतः स्प, स्प, रेखायाः समानान्तरा रेखा कार्या तदुपरि भू बिन्दुतो लम्बः = भूम तदा भूम = १ रव्या + १ भूव्या ततो रभूभ त्रिभुजेऽनुपातेन त्रि (१ रव्या + १ भूव्या) रक

पम्=चा, नवतेर्विशोध्यं तदा ९०—चा=<मभूर, तथा भूलस्पं, त्रिभुजेऽनुपातः त्रि×१ भूव्या =ज्या<भूलस्पं, =ज्याचंपलं, ग्रस्याश्चापं, नवेतेर्विशोध्यं तदा

∴ १८०—{१८०—(चा+चंपलं)} = १८०-१८०+ चा +चंपलं चचा

+चंपलं = <चभूलं = भूभाभाबिम्वार्घम् । एतेन "रिवतनुदलजीवा लम्बनस्य
ज्ययाऽऽढचा क्षितिजजिनतया तत्कार्मुकं कार्यमार्येः। द्विजपितजपराख्यं लम्बनं
तद्युतंसद् भवित वसुमतीभाभावपुः खण्डमानम्।" इति म. म. सुधाकर द्विवेद्युक्तं
सूत्रमुपपन्नम्।
</p>

श्रत्रैव यदि स्वल्पान्तराज्ज्या चापयोरभेदत्त्वं स्वीक्रियेत तदा चा = १ रिवं +रपलं, तदा भूभाभाबिम्बार्धम् = चा + चंपलं = १ रिवं + रपलं + चपलं, एतेन "दिवाकर निशानाथपरलम्बनसंयुतिः । रिविबिम्बार्धसहिता भूभाभाविस्तृते-दंलम् ।" इति म. म. सुधाकरोक्तसूत्रमुपपद्यते । अत्रान्ये विशेषा वटेश्वरसिद्धान्तस्य मट्टीकायां विलोक्या इति ॥ ३३॥

## श्रव भूभा बिम्बानयन कहते हैं।

हि. भा.—चन्द्रके स्फुटकर्ण को भूव्यासहीन रित्र्यास से गुरााकर रिवकर्ण से भाग देने से जो लब्ध हो उसको भूव्यास में घटाने से चन्द्रकक्षा में भूभाव्यास होता है। इति ॥

#### उपपत्ति ।

यहां संस्कृतोपपित्त में लिखित (क) क्षेत्र को देखिये। रिविविम्ब और भूबिम्ब की क्रमस्पर्शरेखार्ये चन्द्रकक्षा में जहां जहां लगती है उन बिन्दु जिनत मार्ग वृत्ताकार होता है, वही भूभावृत्त है; विवत रिवक्ण चन्द्रकक्षा में जहां लगता है वह विन्दु उस वृत्त का केन्द्र होता है। सब स्पर्शरेखार्ये विवत रिवक्ण के साथ एक ही बिन्दु में मिलती है। वह यह

बिन्दु है। र=रिविविम्ब केन्द्र। भू=भूकेन्द्र। रस्प=रिवव्यासार्घ= है रव्या। भूस्प= भूक्यासार्घ= है मूव्या, भूर=रिवकर्ण। च= चन्द्रकेन्द्र। भू बिन्दु से स्पर्शरेखा की समानान्तरा रेखा=चन सस्प=भूस्प= है भूक्या, रस्प—सस्प= है रव्या— है भूक्या, च बिन्दु से स्पर्शरेखा के ऊपर लम्ब= है भूभाव्या = नस्प भूरस, भूचन दोनों त्रिभुजों के सजातीयत्व से अनुपात करते हैं  $\frac{\text{रख}\times \text{भूच}}{\text{रम}}$  = भून =  $\frac{(१ \text{ रव्या} - १ \text{ भूक्या}) चंकर्ण}{\text{रिवक}}$  अतः भूस्प— भून = नस्प = १ भूक्या— रक  $\frac{(१ \text{ रव्या} - १ \text{ भूक्या}) चंकर्ण}{\text{रक}}$  = १ भूभाव्या = चल, द्विगुसित करने से भूव्या— रक  $\frac{(१ \text{ रव्या} - भूष्या) चंक}{\text{रक}}$  = १ भूभाव्या = चल, द्विगुसित करने से भूव्या— रक  $\frac{(१ \text{ रव्या} - भूष्या) चंक}{\text{रक}}$  = भूभाव्यास, इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ। इसी से 'भूव्यासहीन रिव बिम्बमिन्दुकर्णाहृतं' हत्यादि संस्कृतोपपित्त में लिखित भास्करोक्त सूत्र भी उपपन्न होता है। यह भूभाव्यास चन्द्रकक्षा में नहीं आता है। यह क्षेत्र देखने ही मे स्फुट है।

ग्रव यहां संस्कृतोपपित्त में लिखित (ख) क्षेत्र को देखिये। र=रिव विम्वकेन्द्र । भू=भू केन्द्र, भूर=रिवकर्ण रस्प=रिवव्यासार्घ= है रव्या । भूस्प=भूव्यासार्घ= है भूव्या, भू बिन्दु से स्पर्शरेखा की समानान्तरा रेखा=भून, भूल = चन्द्रकर्ण, रन= है रव्या — है भूव्या, < रनभू == ६०, भूरन त्रिभुज में ग्रनुपात करते हैं।

 $\frac{\left|f_{1}\left(\frac{2}{5}\right. \tau o z u\right| - \frac{2}{5}\left. \frac{y}{2}\right. z u}{\tau a} = \frac{\left|f_{1}\left(\frac{2}{5}\right. \tau o z u\right|}{\tau a} - \frac{\left|f_{1}\left(\frac{2}{5}\right. \frac{y}{2}\right. z u}{\tau a}$   $= \circ u \cdot \frac{1}{5} \cdot \tau \left[a - \circ u\right] \tau v v v, \quad \exists u = 1, \quad \exists u =$ 

ग्रभेदत्व स्वीकार करने से हैं र्रीव—रपलं = चा, परन्तु भूभा विम्बार्घं = चंपलं — चा । ग्रतः चंपलं — (है र्रीव —रपलं) = चंपलं + रपलं है र्रीव = भूभाविम्बार्घं, इससे 'दिवाकर-िकानाथ परलम्बनसंयुतिः' इत्यादि संस्कृतोपपित में लिखित यूरप देशीय का प्रकार उपपन्न होता है ।।

एवं यदि स्प, स्प, स्प, स्प, स्प, विरुद्ध स्पर्शरेखायों की जाय तो चन्द्र कक्षा में ल, ल, ल, बिन्दुम्रों के अन्तर्गत भाग सब किरिणों के संयोग के अभाव से स्लान की तरह होता है, अतः वहां चन्द्रकान्ति की मिलनता होती है। अत एवं ल भू च कोणमान को भूभाभा विस्वाधं कल्पना करते हैं, तब र बिन्दु से स्प, स्प, रेखा की समानान्तर रेखा के ऊपर भू बिन्दु से लम्ब = भूम, तब भूम = ३ रव्या + ३ भूव्या, अतः रभूम त्रिभुज में अनुपात से त्रि (३ रव्या + ३ भूव्या)

रक = ज्या ३ रिव + ज्या रपलं = ज्या < मरभू, इसका चाप = चा, नवत्यंश में घटाने से १० — चा = < मभूर, तया भूलस्प, त्रिभुज में अनुपात से त्रि. ३ भूव्या = ज्या < भूलस्प, = ज्या चंपलं इसके चाप को नवत्यंश में घटाने से १० — चपलं = < लभूस्प, अतः < मभूर + लभूस्प, = १० — चा + १० — चपलं = < रभूल = १८० — चपलं = < रभूल (चा + चंपलं) ।

∴१८० — (चा + चंपलं) ।

∴१८० — (१८० — (चा + चंपलं))

च्या चंपलं = < चभूलं = भूभाभा विम्बार्धं, इससे 'रिवतनुदलजीवा लम्बनस्य ज्ययाऽऽदघा' इत्यादि संस्कृतोपपित में लिखित, म. म. पिण्डित सुधाकर द्विवेदीजी का सूत्र उपपन्न हुमा। यहां पर यदि ज्या भौर चाप में भ्रभेदत्व स्वीकार किया जाय तो चा = ई र्रीवं + रपलं, तब भूभाभा विम्बार्धं = चा + चंपलं = ई र्रीवं + रपलं + चंपलं, इससे ''दिवाकरिनशानाथपरलम्बनसंग्रुतिः । रिव विम्बार्धं सिहता भूभाभा विस्तृतेर्दलम्'' म. म. पिण्डित सुधाकर द्विवेदीजी का सूत्र उपपन्न होता है। यहां अन्य विशेष बातें वटेश्वरसिद्धान्त की हमारी टीका में देखनी चाहिये इति ॥ ३३॥

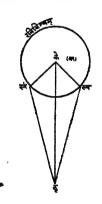
# इदानीं कलात्मकबिम्बान्याह । तद्दगुरिएतं व्यासार्घं शशिकर्गंहृतं तमः प्रमाएकलाः । एवं त्रिज्यारविशशिविष्कम्भगुरा स्वकर्गंहृता ॥३४॥

सुः माः—स्पष्टार्थम् । 'सूर्येन्दुभूभातनुयोजनानि त्रिज्याहतानि' इत्यादि मास्करोक्तमेतदनुरूपमेव।

### भ्रत्रोपपत्तिः।

### त्रैराशिकेन भास्करोत्तचा ॥३४॥

वि. भा.—भूभायायोजनात्मकिवम्बमानेन गुिंगतं त्रिज्याप्रमाणं चन्द्र-कर्गोन भक्तं तदा कलात्मकं भूभाविम्बं भवित । एवं योजनात्मकं रिविविम्बं त्रिज्यया गुगायित्वा रिवकर्णेन भजेत्फलं कलात्मकं रिविविम्बं भवित । योजनात्मकं चन्द्रविम्बं त्रिज्यया गुगायित्वा चन्द्रकर्गोन भजेत् फलं कलात्मकं चन्द्रविम्बं भवतीति ।



### स्रत्रोपपत्तिः।

के = रिविबिम्बकेन्द्रम् । ह = हिष्टिस्थानम् = भूकेन्द्रम् । हस्प हस्प हिष्टस्थानाद्रविविम्ब स्पशंरेखे, हके = रिविक्यां: । केस्प = केस्प = रिविबिम्ब व्यासार्धम् < केस्प ह = केस्प ह = ९०, < केहस्प = < केहस्प = रिविवम्ब कला । हकेस्प विभुजेऽनुपातेन  $\frac{1}{2}$   $\frac{1}{2}$ 

= नि× १ रव्या रिविक्णं प्रस्तावायों हिगुणितं तदा रिविक्कि कला प्रमाणं भवित । परन्त्वाचार्येण रिविक्कि क्षां प्रमाणं भवित । परन्त्वाचार्येण रिविक्कि क्षां प्रमाणं कृष्यते तन्न समीचीनं यतो हिगुणितार्षं ज्या हिगुणित चापपूर्णं ज्या भवित, पूर्णं ज्यातक् चापक रणिविक्षि निस्त्यतो भास्कराचार्योक्तं न समीचीनम् । एवमेष चन्द्रस्यापि निश्चे चंत्र्या चंकर्णं चंकर्णं चंत्र्या चंकर्णं चंत्रणं चंत्रणं चंत्रणं चंत्रणं चंत्रणं भूभाविक्ष्वकला प्रमाणं भवित । एवं निश्चे भूभाव्या चंत्रणं भूभाविक्ष्वकला प्रमाणं भवित, ग्राचार्योक्तन्त्वसमीचीनमेव । सिद्धान्त्रशेखरे "एतानि भास्करमृगाङ्कमहीप्रमाणां त्रिज्याहतानि तन्विस्तृतियोजनानि । भक्तानि भानुश्चिश्चशितकरश्रवोभिर्तिष्तामयानि हि भवित्त यथाक्रमेण ।" श्रीप्तुक्तिमदमाचार्योक्तानुक्पमेव तथा सिद्धान्तिशरोगणों "सूर्येन्दुभूभातनुयोजनानि त्रिज्याहतान्यक्षश्चित्रान्दुकर्णोः । भक्तानि तत्कार्मुकलिप्तिकास्तास्तेषां क्रमान्मानकला भवित ।" भास्करोक्तमिदं च न समीचीनमिति पूर्वोक्तोपपत्त्या स्फुट-मेवित ।।३४॥

### ग्रब कलात्मक बिम्बानयन को कहते हैं।

हि. भा.—योजनात्मक भूभाबिम्ब को त्रिज्या से गुणा कर चन्द्रकर्ण से भाग देने से कलात्मक भूभाबिम्ब होता है एवं योजनात्मक रिविबम्ब को त्रिज्या से गुणाकर रिविकर्ण से भाग देने से कलात्मक रिविबम्ब होता है। योजनात्मक चन्द्र बिम्ब को त्रिज्या से गुणा कर चन्द्रकर्ण से भाग देने से कलात्मक चन्द्र बिम्ब होता है इति।

#### उपपत्ति ।

## इदानीं छादकमाह।

# भूच्छायेन्दु चन्द्रः सूर्यं छादयति मानयोगार्घात् । विक्षेपो यद्युनः शुक्लेतरपञ्चदश्यन्ते ॥३४॥

सु. भा.—यदि मानयोगार्घात् मानैक्यखण्डाद्विक्षेप ऊनस्तदा शुक्ले पन्ध-दश्यन्ते पूर्णान्ते भूच्छाया चन्द्रं छादयति । इतरपञ्चदश्यन्ते दर्शान्ते चन्द्रः सूर्यं छादयति । 'भूभाविषुं विषुरिनं ग्रहणे पिष्ठत्ते' इति भास्करोक्तमेतदनुरूप— मेव ॥३५॥ वि. भा- यदि मानयोगार्धात् (बिम्वयोर्मानैक्यार्धात्) विक्षेपः (शरः) ऊनोऽल्पोभवेत्तदा शुक्ले पञ्चदश्यन्ते (पूर्णान्ते) भूच्छाया (भभा) चन्द्रं छादयित । इतरपञ्चदश्यन्ते (ग्रमान्ते) चन्द्रः सूर्यं छादयतीत्यर्थाद्यदा रिवतः षड्भान्तरे चन्द्रस्थानं तदा पूर्णान्तः । म्रतोऽमान्तकाले सूर्यचन्द्रस्थाने राश्यादिभिः सर्वावयवै-स्तुल्यौ स्यातां चन्द्रोपरिगतं कदम्बप्रोतवृत्तं क्रान्तिवृत्ते यत्र लगित तत्र चन्द्रस्थानं तत्रैव च यदा रिवस्तदाऽमान्तकाल इत्यमान्तस्य परिभाषातः, पौर्णामास्यन्ते चैकोऽन्यस्मात् षड्भान्तरेऽतस्तदांऽशादिकौ समौ स्याताम् । अयःस्थश्चन्द्रो मेघवद्रवेश्छादको भवेदत एव किंसिश्चद्देशे रिवश्छन्नः क्विचन्न छन्नो लक्ष्यते कक्षान्तरत्वात्। चन्द्रश्च पूर्वाभिमुखं गच्छन् भूभां प्रविशत्यत एव भूभैव चन्द्रस्य छादकः । ग्रस्तश्चन्द्रः सर्वत्रैव दर्शनयोग्ये समये लक्ष्यते । ग्रनेनैव छादकिनिर्ण्येन रवेः पश्चिमतः स्पर्शश्चन्द्रस्य च पूर्वत इति ॥३५॥

इति ब्राह्मस्फुट सिद्धान्ते स्फुटगतिवासना

#### भ्रव छादक को कहते हैं।

हि. भा- — छाद्य ग्रीर छादक के मानैक्यार्घ से चन्द्रशर ग्रह्म हो तब पूर्णान्त में भूभा चन्द्रिबम्ब को ग्राच्छा दित (ढकती) करती है, श्रीर ग्रमान्त में चन्द्र सूर्य विम्व को ग्राच्छा — दित करते हैं श्रर्थात् जब रिवसे छः राशि पर चन्द्रस्थान रहता है तब पूर्णान्त होता है। इसिलये ग्रमान्तकाले सूर्य ग्रीर चन्द्र स्थान राश्यादि सर्वावयव से बराबर होता है, चन्द्रोप-रिगत कदम्ब प्रोतवृत्त क्रान्तिवृत्त में जहां लगता है वही चन्द्र स्थान है, वहीं पर जब रिव होते हैं तो ग्रमान्तकाल होता है इस ग्रमान्त की परिभाषा से, पूर्णान्त में एक दूसरे से छः राश्यन्तर पर रहते हैं ग्रतः तब ग्रंशादि श्रवयव से दोनों बराबर होते हैं, चन्द्र पूर्वाभि-मुख जाते हुए भूभा में प्रवेश करते हैं इसलिये भूभा ही चन्द्र की छादिका है, रिव से ग्रधः स्थित चन्द्र मेघ की तरह रिव के छादक होते हैं, ग्रतः किसी देश में रिव छन्न, ग्रीर किसी देश में नहीं छन्न लक्षित होते हैं कक्षान्तरत्व के कारण से। ग्रस्त चन्द्र सब जगह दर्शन ग्रोग्य समय में लक्षित होते हैं । इसी छादक निर्णय से रिवग्रहण में पश्चिम से स्पर्श ग्रीर चन्द्रग्र-हण् में पूर्व से स्पर्श सिद्ध होता है इति।।३५।।

इति ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त में स्फुटगति वासना समाप्त ।

### श्रथ ग्रहणवासना प्रारभ्यते ।

#### तत्रादौ छादकनिर्णयमाह।

## महदिन्दोरावर्णं कुण्ठविषाणो यतोऽर्घसञ् छन्नः। ग्रर्घच्छन्नो भानुस्तीक्गाविषागुस्ततोऽस्याल्पम् ॥३६॥

सुः माः—यतोऽर्घसञ्छन्नश्चन्द्रः कुण्ठविषाणो भवत्यत इन्दोरावरणं छादकमानं महत्। भानुश्चार्धच्छन्नस्तीक्ष्णविषाणो भवति ततस्तस्मादस्यावरण-मल्पमस्तीत्यवगम्यते। लघुपरिघौ महापरिधिखण्डितेन विषाणयोः परिधियोग-विन्द्योः कुण्ठता महापरिघौ च लघुपरिघिखण्डितेन विषाणयोस्तीक्ष्णतोत्पद्यते। अतश्चनद्रस्य च्छादकः पृथुतरः सूर्यस्याल्पतर इति। 'छादकः पृथुतरस्ततो विधिः' इत्यादि भास्करोक्तमेतदनुरूपमेव।।३६॥

वि. भा.—यस्मात् कारणात् अर्थंच्छन्नश्चन्द्रः कुण्ठविषाणो भवित अतश्चन्द्रस्याऽऽवरणं (छादकमानं) महत्। भानुः (सूर्यः) अर्थंच्छन्नः तीक्ष्णविषाणो भवित, तस्मात्कारणादस्याऽऽवणमल्पमस्तीति। लघुपरिघेवृँहत्परिधिना खण्डने परिधियोगिबिन्दुरूपयोविषाणयोः कुण्ठता भग्नश्चुङ्गता जायते, बृहत्परिधेर्लंघुपरिधिना खण्डने विषाणयोस्तीक्ष्णतोपपद्यते। अत एव चन्द्रस्याच्छादको महान् सूर्यस्य च लघुरिति। एतं प्राचीनोक्तयुक्तिवादमेव भास्कराचार्योऽपि "छादकः पृथुतरस्ततो विघोरर्घंखण्डिततनोविषाण्योः। कुण्ठता च महती स्थितियंतो लक्ष्यते हरिण्लक्षरण्यहे। अर्थंखण्डिततनोविषाण्योस्तीक्ष्णता भवित तीक्ष्ण्यत्वीवितेः। स्यात् स्थितिर्वं चुरतो लघुः पृथक् छादको दिनक्रतोऽवगम्यते। इत्यनेनोक्तवानिति।।३६॥

#### भव ग्रह्ण वासनां प्रारम्भ की जाती है। उसमें पहले छादक निर्णाय को कहते हैं।

हि. मा.— आधा आच्छादित चन्द्र का शृङ्ककुण्ठ (भोंय) होता है इसलिये चन्द्र का छादक बड़ा है। आधे आच्छादित सूर्य के शृङ्क तीक्ष्ण (नुकीले) होते हैं अतः सूर्य के छादक छोटे हैं। लघुपरिधि को बृहत् परिधि से काटने से परिधि के योग बिन्दुरूप शृङ्क-द्रय की कुण्ठता होती है। वृहत्परिधि को लघु परिधि से काटने से दोनों शृङ्कों की तीक्ष्णता होती है अतः चन्द्र का छादक महान् है और सूर्य का छादक लघु है। इस प्राचीनोक्त युक्तिवाद ही को भास्कराचार्य ने भी "छादकः पृथुतरस्ततोविधोः" इत्यादि विज्ञान भाष्य में लिखित श्लोकों से कहा है इति ।।३६॥

इदानीं राहुकृतं ग्रह्णां नेति वराहमिहिरादीनां मतं प्रतिपादयति ।

यदि राहुः प्राग्भागादिन्दुं छादयति कि तथा नार्कम् ।
स्थित्यधं महदिन्दोर्यथा तथा कि न सूर्यस्य ।।३७॥
कि प्रतिविषयं सूर्यो राहुइचान्यो यतो रविप्रहरो ।
प्रासान्यत्वं न ततो राहुकृतं ग्रहरामकेन्द्रोः ।।३८॥
एवं वराहमिहिरश्रीषेराग्यंभटविष्णुचन्द्राद्यंः ।
लोकविषद्धमभिहितं वेदस्मृतिसंहिताबाह्यम् ।।३९॥

सुः भाः—ग्रार्याद्वयं स्पष्टार्थंम् । एवं वराहमिहिरादिभी राहुकृतं रवीन्द्वोर्नः ग्रहणमिति लोकविरुद्धं वेदस्मृतिसंहिताबाह्यं चाभिहितम् ॥३७-३९॥

वि. भा — यदि राहुः पूर्वतश्चन्द्रं छादयित ग्रर्थाञ्चन्द्रग्रहे पूर्वतः स्पर्शो भवित, तथा रिवं कथं न छादयित ग्रर्थात् सूर्यग्रहणेऽपि पूर्वत एव कथं न स्पर्शो भवित । चन्द्रग्रहणे स्थित्यर्धं महद्भवित तथा सूर्यस्य कथं न भवित । प्रत्येक देशे सूर्यो राहुश्च ग्रन्थोऽन्यो भवित किम् ? यतः सूर्यग्रहणे ग्रासान्यत्वं भवित तस्मात् कारणात् राहुकृतं सूर्याचन्द्रमसोग्रं हणं न भवितीति वराहिमिहिर-श्रीषेणार्यभट-विष्णुचन्द्राद्धेलोकविषद्धं वेदस्मृतिसंहिताबहिर्भूतं कथितिमिति । यदि राहुकृतं सूर्यचन्द्रयोग्रं हणं तदा चन्द्रस्य प्राक्स्पर्शः, सूर्यस्य पश्चादिति कथम् । राहोरेक-रूपत्वात् । चन्द्रस्य पश्चान्मुक्तिः, रवेः प्राग् मुक्तिरिति कथम् । ग्रहणद्वये स्पर्श-मोक्षादेर्वर्शनं समानरूपेण भवितव्यम् । अर्थखण्डितस्य रवेविषाणयोः (श्रुङ्गयोः) तीक्ष्णता स्थितश्च लघ्वी, रवेः क्वापि ग्रहण्मस्ति क्वापि नास्तीत्यादि नोपपद्यते भन्न वराह मिहिरोक्तम्।

''म्रावरणं महदिन्दोः कुण्ठविषाग्गस्ततोऽर्घंसञ्छन्नः । स्वल्पं रवेर्यतोऽतस्तीक्ष्णविषाग्गो रविर्भवति ॥''

लल्लोक्तं च-

"प्रथमं रिवमण्डलं ततो न ततः खण्डितमिन्दुमण्डलम् । न समाकृतिरीक्ष्यते स्थितिर्यदतो राहुकृतो न स ग्रहः ॥ सिवतुरुच यदन्यथाऽन्यथा प्रतिदेशं सकलं समीक्ष्यते । न च कुत्रचिदित्यवैत्य कः कुरुते राहुकृते ग्रहे ग्रहम् ॥"

### सिद्धान्तशेखरे

"राहुणा यदि पिघीयते ग्रहस्तिग्मशीतमहसोः स्वतृप्तये । नैकरूपमवलोक्यते कथं स्पर्शमोचनविमर्दपूर्वकम् ॥" श्रीपतिना संक्षेपेणोक्तमिति ॥३७–३९॥ श्रव राहुकृत ग्रह्मा नहीं होता है वराहमिहिरादियों के मत को कहते हैं।

हि. भा.—यदि राहु पूर्वदिशा से चन्द्र को आच्छादित (ढकता) करता है अर्थात् यदि चन्द्र ग्रहरा में पूर्व से स्पर्श होता है, तो उसी तरह सूर्य को क्यों नहीं ग्राच्छादित करता है अर्थात् सूर्य ग्रहरा में भी पूर्व ही से क्यों स्पर्श नहीं होता है, चन्द्रग्रहरा में स्थित्यर्घ बड़ा होता है वेसे ही सूर्यप्रहरा में क्यों नहीं होता है। क्या प्रत्येक देश में सूर्य स्रीर राहु भिन्न होते हैं, क्यों कि सूर्य ग्रहण में ग्रास में भिन्नता होती है । इस लिये राहुकृत सूर्यग्रहण श्रीर चन्द्रग्रहण नहीं होता है ये बातें वराहमिहिर-श्रीषेण-श्रार्यभट-विष्णु चन्द्र म्रादि म्राचार्यों ने लोकविरुद्ध भौर वेद स्मृति संहिता से वहिभूत कही हैं यदि राहुकृत सूर्य-प्रहरण और चन्द्रग्रहरण होता हैं तो चन्द्र के पूर्व तरफ स्पर्श और सूर्य के पश्चिम तरफ स्पर्श क्यों होता है क्योंकि राहु एक ही है। चन्द्र ग्रहण में पश्चिम में मोक्ष होता है, सूर्यग्रहण में पूर्व तरफ से क्यों ? दोनों ग्रहराों में स्पर्श मोक्ष म्रादि का दर्शन समान रूप से होना चाहिये, सो नहीं होता है, ग्रर्ध खण्डित रिविनम्ब के श्रुङ्जद्वय की तीक्ष्णता भ्रीर स्थिति लघु, रिव ग्रहरा कहीं दृश्य होता है कहीं नहीं इत्यादि उपपन्न नहीं होता है यहां वराह-मिहिरोक्त वचन 'भ्रावगां महदिन्दो: कुण्ठविषागाः' इत्यादि विज्ञान भाष्य में लिखित है। ''प्रथमं रवि मण्डलं ततो न ततः खण्डितमिन्दुमण्डलम्' इत्यादि विज्ञान भाष्य में लिखित श्लोकों से राहुकृत ग्रह्सा का खण्डन लल्लाचार्यं ने किया है। सिद्धान्तशेखर में 'राहुसा यदि पिघीयते ग्रहः इत्यादि से श्रीपति ने भी राहुकृत ग्रहरा का खण्डन किया है इति ।।३७-३६।।

> इदानीं संहितामतमवलम्ब्य वराहादीन् निराकरोति । यद्ये वं प्रहराफलं गर्गाद्यैः संहितासु यदिभहितम् । तदभावे होमजपस्नानादीनां फलाभावः ॥४०॥

सु. भा-—गर्गाद्यै राहुवशतः संहितासु यद्ग्रहणफलमभिहितं तद् व्यर्थमेव । यद्येवमेव वराहमिहिरादीनां मतिमिति । तदभावे राहुकृतग्रहणाभावे । शेषं स्पष्टार्थम् ॥४०॥

वि. भा-—यद्येवं वराहमिहिरादीनां मतं संहितासु राहुवशतो यद्ग्रहण्य-फलं कथितं तद्व्यर्थंमेव भवेत्। तदभावे (राहुकृत ग्रहणाभावे) होमजपस्नाना-दीनामपि फलाभावो भवेदिति॥४०॥

श्रव संहितामत को ऋवलम्बन कर वराहमिहिरादि मत का खण्डन करते हैं।
हि. मा. — यदि वराहमिहिर श्रादि श्राचार्यों के इस तरह मत हैं तब संहिताश्रों में
राहुवश से जो ग्रहरा फल कहा गया. है वह व्यर्थ है। राहुकृत ग्रहरा के श्रभाव (राहु के
द्वारा ग्रहरा नहीं होने) में होम जप स्नान श्रादि का भी फलाभाव होता है इति ॥४०॥

### इदानीं लोकप्रथामाह।

## राहुकृतं ग्रह्गाद्वयमागोपालाङ्गनादिसिद्धमिदम् । बहुफलमिदमपि सिद्धं जपहोमस्नानफलमत्र ।।४१।।

सु. भा. – स्पष्टार्थम् ॥४१॥

वि. भा.—राहुद्वारा सूर्यग्रहणां चन्द्रग्रहणां च भवतीति गोपस्त्रीष्विप प्रसिद्धमस्त्यर्थाद्गोपस्त्रियोऽपि जानन्ति यद्राहुकृतं ग्रहणाद्वयं भवति, ग्रत्र ग्रहणे जप करणे होम करणे स्नाने च बहुफलं भवतीत्यिप प्रसिद्धमस्तीति ॥४१॥

### . भ्रव लोक प्रथा को कहते हैं।

हि. भा.— राहुद्वारा सूर्यप्रहरण भीर चन्द्र ग्रहरण होता है यह विषय गोपालों (ग्वालों) की स्त्रियों में भी प्रसिद्ध है भर्यांत् ग्वालों की स्त्रियां तक भी इस बात को जानती हैं कि दोनों ग्रहरण राहु से ही होते हैं, भौर इस ग्रहरण समय में जप करने से, हवन करने से, ग्रौर स्नान करने से बहुत फल होता है यह भी उन लोगों (ग्वालों की स्त्रियों) में प्रसिद्ध है इति ॥४१॥

इदानीं राहुकृतं ग्रहणं भवतीत्यत्र स्मृतिवाक्यं प्रदर्शयति ।

स्मृतिषुक्तं न स्नानं राहोरन्यत्र दर्शनाद्वात्रौ । राहुग्रस्ते सूर्ये सर्वं गङ्गासमं तोयम् ॥४२॥

स्. भा.- स्पष्टार्थम् ॥४२॥

वि. भा-सूर्ये राहुग्रस्ते चन्द्रे वा राहुग्रस्ते सर्वं जलं गङ्गासमं भवति । राहुदर्शनाद् भिन्न समये रात्रौ स्नानं न कुर्यात् । एवं स्मृतिषु (धर्मशास्त्रेषु) उक्तम् (कथितम्) । सिद्धान्तशेखरे "सर्वं च गङ्गासममम्बु राहुग्रस्ते दिनेशे यदि वा शशाङ्के । राहूपलब्धेरपरत्र कुर्यात् । स्नानं न रात्रौ स्मृतिष्क्तमेवम् ।" श्रीपति-नैवमुच्यते । "ग्रप्रशस्तं निशि स्नानं राहोरन्यत्रदर्शनात् । राहुदर्शनसंक्रान्ति-विवाहात्ययवृद्धिषु । स्नानदानादिकं कुर्यान्निशि काम्यव्रतेषु च । सर्वं गङ्गासमं तोयं सर्वे ब्रह्मसमा द्विजाः । सर्वं भूमिसमं दानं राहुग्रस्ते दिवाकरे ।" इत्यादि स्मृति पुराण्वचनानुकूलं श्रीपत्युक्तमिति स्फुटमेवेति ॥४२॥

भव राहुकृत ग्रह्ण होता है इस में स्मृति वाक्य को दिखलाते हैं।

हि. मा. — राहु द्वारा सूर्य के ग्रस्त होने में वा चन्द्र के ग्रस्त होने में सब जल गङ्गाजल के बराबर होता हैं। राहुदर्शन से भिन्न समय में रात्रि में स्नान नहीं करना चाहिये, इस तरह घर्मशास्त्र में कहा गया है। सिद्धान्तशेखर में 'सर्व च गङ्गासममम्बुरा-हुग्रस्ते' इत्यादि विज्ञान भाष्य में लिखित क्लोक से श्रीपित ने ग्राचार्योक्त के अनुरूप ही कहा है। तथा ''ग्रप्रशस्तं निशि स्नानं राहोरन्यत्रदर्शनात्'' इत्यादि विज्ञानभाष्य में लिखित स्मृति पुराण बचनों के ग्रनुकूल ही कहा है इति।।४२।।

> इदानीं राहुकृतग्रह्गो वेदवाक्यं प्रदर्शयति । स्वर्भानुरासुरिनं तमसा विव्याध वेदवाक्यमिदम् । श्रुति संहितास्मृतीनां भवति यथैक्यं तदुक्तिरतः ।।४३।।

सु. भा. — 'स्वर्भानुई वा भ्रासुरिः सूर्यं तमसा विव्याध' — इति माध्यन्दिनी श्रुतिः । भ्रथ यथा श्रुतिसंहितास्मृतीनामैक्यं भवति तथा कथनमुचितमत एकवाक्यता प्रतिपादनार्थं तदुक्तिरत्रोचिता ।।४३।।

वि भा — स्वभोनुरासुरिरित्यादिवेदवचनम् यथा स्वभीनुईवा स्रासुरिः सूर्यं तमसा विव्याघ । इति माध्यन्दिनी श्रुतिस्तत्र स्रासुरिरसुरकुलोत्पन्नः स्वभीनुः (सिहिकासूनुः राहुः) तमसा (अन्धकारेग्) इनं (सूर्यंबिम्बं) विव्याध (भेदितवान्) इदं वेदवाक्यमस्ति, यथा श्रुतिसंहितास्मृतीनामेक्यं (समता) भवति तथा कथनमुचितमत एकताप्रतिपादनार्थं तदुक्तिरत्रोचितास्तीति । सिद्धान्तशेखरे 'स्वभीनुरासुरिरिनं तमसा घनेन विव्याध वेदवचने तदिप प्रसिद्धम् । प्रोक्तानि भानुशिवानोरसुरेश्वरेग् सञ्छन्नयोरिप च सांहितिकैः फलानि ।ः' श्रीपितनैवं कथितम् । असुरेश्वरेग् (राहुगा) ग्राच्छादितयोः सूर्याचन्द्रमसोः सांहितिकैः (संहितावेत्तृभिः) शुभाशुभानि च फलानि प्रोक्तानि । यदाह गर्गसंहितायां भटोत्पलः 'स्वन्नक्षत्रगतो राहुर्यं सते शिशमास्करौ । तज्जातानां भवेत्पोड़ा ये नराः शान्ति-वर्णिताः ।'' इत्यादिना सर्वत्रे व ग्रहगाकारणं राहुरिति प्रसिद्धम् ॥४३॥

## भव राहुकृत ग्रहरण में वेदवाक्य को कहते हैं।

हि. सा.— 'स्वर्भानुहंवा श्रासुरि: सूर्यं तमसा विव्याघ' यह माध्यन्दिनी श्रुति है इसका श्रयं यह है श्रासुरि (राक्षस कुलोत्पन्न) स्वर्भानु (सिहिका पुत्र राहु) ने श्रन्थकार से सूर्यं विम्ब को भेदित किया, । श्रुति (वेद) संहिता और स्मृति (घमँशास्त्र) में जैसे ऐक्य (समता-एकवाक्यता) हो वैसे कहना उचित है श्रतः एकता प्रतिपादन के लिये उस की उक्ति यहां उचित है। सिद्धान्तशेखर में 'स्वर्भानुरासुरिरिनं तमसा घनेन' इत्यादि से श्रीपित ने श्राचार्योक्त के सहश ही कहा है इति ॥४३॥

इदानीं स्वोक्तिमाह । राहुस्तच्छादयति प्रविशति यच्छुक्लपञ्चदश्यन्ते । भूछाया तमसीन्दोर्वरप्रदानात् कमलयोनेः ॥४४॥

# चन्द्रोऽम्बुमयोऽघः स्थो यदग्निमयभास्करस्य मासान्ते । छादयति शमिततापो राहुश्छादयति तत् सवितुः ॥४५॥

सु. भा. — इन्दोर्यद्बिम्बं गुक्लपञ्चदश्यन्ते पूर्णान्ते भूछायातमसि भूमान्ध-कारे प्रविश्तित तदेव बिम्बं कमलयोनेब्रं ह्याणो वरप्रदानाद् भूछायामाश्रित्य राहु-श्छादयति । एवं मासान्ते दर्शान्तेऽग्निमयस्य भास्करस्य महद्विम्बं जलमयः शमिततापोऽधः स्थश्च चन्द्रश्छादयति सिवतुः सूर्यस्य तदेव बिम्बं छायामाश्रित्य राहुश्छादयतीति । भास्करोक्तिरप्येतादृशी ॥४५॥

वि भा. — इन्दोः (चन्द्रस्य) यद्विम्बं शुक्लपक्षपश्चदश्यन्ते (पूर्णान्ते) भूछायातमसि (भूभान्धकारे) प्रविशति, तदेव बिम्बं ब्रह्मणो वरप्रदानात् भूछा-योमाश्रित्य राहुश्छादयति । एवं मासान्ते (ग्रमान्तकाले) ऽग्निमयस्य भास्करस्य (सूर्यस्य) महद्भिम्बं जलमयः शमिततापोडघः स्थरचन्द्ररुखादयति, सूर्यस्य तदेव बिम्बं भूछायामाश्रित्य राहुक्छादयतीति । सिद्धान्तशेखरे "विष्णुजूनशिरसः किल पङ्गोर्दत्तवान् वरिममं परमेष्ठी । हेमदानविधिना तव तृप्तिस्तिग्मशीतमह-सोरुपरागे। भूमेरुछायां प्रविष्टः स्थगयति शशिनं शुक्लपक्षावसाने राहुक् ह्य-प्रसादात् समिष्गतवरस्तत्तमो व्यासतुल्यः। ऊर्घ्वस्थं भानुबिम्बं सिललमयतनोर-प्यधोवर्त्तिविम्वं संसृत्यैवं च मासव्युपरिति समये स्वस्य साहित्यहेतोः।" इत्यनेन श्रीपतिनाऽऽचार्योक्तानुरूपमेव कथितम् । श्रीपत्युक्तइलोकार्थः विष्णुना (नाराय-रोन) लूनं (छिन्नं) शिरो (मस्तकं) यस्य स विष्सुलूनशिरास्तस्य पङ्गोः (गति-विकलस्य राहोरित्यर्थः) परमेष्ठी (ब्रह्मा) इमं वरं दत्तवान् । किं वरिमत्याह-तिग्मशीतमहसोः (सूर्याचन्द्रमसोः) उपरागे (ग्रह्णे) होमदानविधिना ग्रह्णकाले यद्दानं दीयते यच्चाग्नौ हूयते तेन तव तृप्तिः (तर्पणमाप्यायनमित्यर्थः) भविष्यति ब्रह्मप्रसादात् समधिगतेवरोराहुः तत्तमो व्यासतुल्यः (तस्या भूच्छायाया श्रन्धका-ररूपेरा व्यासेन समानः) शुक्लपक्षावसाने (पौर्णमास्यन्ते) भूभां प्रविष्टः सन् चन्द्रं ग्रसते । एवममूना प्रकारेरा मासव्युपरति समये (श्रमावास्यायां) स्वस्य साहित्यहेतोः । सूर्यचन्द्राभ्यां मिलनकामनया पीयूषिण्डस्य चन्द्रस्य अघोर्वात बिम्बं सूर्येबिम्बापेक्षयेतिभावः । संस्रत्य (ग्राश्रित्य) ऊर्घ्वस्थं सूर्येबिम्बं स्थगयित स्वस्य साहित्यहेतोरिति । ग्रत्र लल्लोक्तम्—"ग्रह्णे कमलासनानुभावाद्धृत-दत्तांशभुजोऽस्य सन्निधानम् । यदतः स्मृतिवेदसंहितासु ग्रह्णं राहुकृतं गतं प्रसि-द्धिम् ।" इति, श्रीपत्युक्तं च "भूमेश्छायां प्रविष्टः स्थगयति शशिन" मित्यादि हृष्ट्वा भास्कराचार्येण गोलाध्यायस्य ग्रहणवासनाधिकारे—

> दिग्देशकालावरणादिभेदान्नच्छादको राहुरिति ब्रुवन्ति । यन्मानिनः केवल गोलविद्यास्तत्संहिता वेदपुराणबाह्यम् ॥

राहुः कुभामण्डलगः शशाङ्कः शशाङ्कर्गश्छादयतीनिबम्बम् । तमोमयः शम्भवरप्रदानात् सर्वागमानामविरुद्धमेतत् ॥

एवमुक्तमिति ।

अथात्र संहितायां गिर्णतागतसमयात् पूर्वं परतो वा ग्रह्रणदर्शने तदुत्पात-रूपमिति तत्फलं च गर्गोक्तम् ।

"वेलाहीने शस्त्रभयं गर्भाणां श्रावणं तथा।
श्रितवेले फलानां तु सस्यानां क्षयमादिशेत्।।
हक्समे पर्वणि नृपा निर्वेरा विगतज्वराः।
प्रजाश्च सुखिताः सर्वाभयरोगिवर्वाजताः।।"
इति लक्ष्यीकृत्य वराहमिहिरेणा
"वेलाहीने पर्वणा गर्भविपत्तिश्च शस्त्रकोपश्च।
श्रितवेले कुसुमफलक्षयो भयं सस्यनाशश्च।।
हीनातिरिक्तकाले फलमुक्तं पूर्वशास्त्रहष्टत्वात्।
स्फुटगणितविदः कालः कथञ्चिदिप नान्यथा भवति॥"
एवं हग्गणितैक्चं विधाने स्वपाटवं प्रदिशतिमिति॥४४-४५॥

### भ्रब भ्रपना मन्तव्य कहते हैं।

हि. मा. — पूर्णान्तकाल में चन्द्र बिम्ब भूभा के ग्रन्धकार में प्रवेश करता है ब्रह्मा के वरप्रदान से भूछाया (भूभा) को आश्रयण कर श्रर्थात् भूभा बिम्ब में प्रविष्ट हो कर राह उसी चन्द्र बिम्ब को आच्छादित करता है। एवं ग्रमान्त काल में सूर्य बिम्ब से ग्रघ: स्थित चन्द्रबिम्ब सूर्यंबिम्ब को श्राच्छादित करता है, ब्रह्मवरप्रदान से राहु चन्द्रबिम्ब में प्रविष्ट हो कर उसी सूर्य बिम्ब को आच्छादित करता है। अर्थात् पूर्णान्त काल में भूभामण्डलगत राहु चन्द्र बिम्ब को माच्छादित करता हैं तथा भ्रमान्त में चन्द्रमण्डलगत राहु सूर्यबिम्व को म्राच्छादित करता है। सिद्धान्तशेखर में "विष्युलूनशिरसः किल पङ्गोर्दत्तवान् वरिममं परमेष्ठी" इत्यादि विज्ञान भाष्य में लिखित श्लोकों से श्रीपति ने भी ग्राचार्योक्त के ग्रनुरूप ही कहा है। 'ग्रहरो कमलासनानुभावाद्धुतदत्तांशभुजोऽस्य सन्निधानम्' इत्यादि विज्ञान भाष्य में लिखित लल्लोक्त श्लोक को देख कर तथा 'भूमेश्छायां प्रविष्टः स्थगयति शशिन' इत्यादि विज्ञानभाष्य में लिखित श्रीपत्युक्त को देख कर सिद्धान्तशिरोमिंग के गोलाघ्याय ग्रहरणवासनाधिकार में ''दिग्देश कालावरणादिभेदान्नच्छादको राहुरिति ब्र्वन्ति°' इत्यादि से भारकराचार्य ने श्राचार्योक्त के श्रनुरूप ही संहिता-वेद-स्मृति-पुराणों के मतों के साथ ज्यौ-तिष सिद्धान्त का समन्वय किया है। संहिता में गिएतागत समय से पहले वा पीछे ग्रहरा-दर्शन होने से उत्पातरूप फल गर्ग ने कहा है जैसे "बेलाहीने शस्त्रभयं गर्भागां श्रावरां तथा" इत्यादि विज्ञान भाष्य में लिखित श्लोकों को देखना चाहिये। इसी को लक्ष्य कर

वराह मिहिराचार्य ने "वेलाहीने पर्विण गर्भविपत्तिश्च शस्त्रकोपश्च" इत्यादि विज्ञान भाष्य में लिखित श्लोकों से हुग्गिणितैक्य विधान में ग्रपनी पटुता को दिखलाया है इति ॥४४-४५॥

## इदानीं राहुबिम्वमाह।

भूछायाव्याससमः शशिकक्षायां स्थितः शशिग्रहरो । राहुइछादयतीन्दुं सूर्यग्रहरोऽर्कमिन्दुसमः ॥४६॥

- सु. भा.—शशिग्रहणो शशिकक्षायां स्थितो भूछायाव्याससमो राहुरिन्दुं सूर्यग्रहणे चेन्दुसमोऽकं सूर्यं च छादयति ॥४६॥
- वि. भा.— शशिग्रहरो (चन्द्रग्रहरो) चन्द्रकक्षायां स्थितो भूभाव्याससमो राहुश्चन्द्रं छादयति । सूर्यग्रहरो च चन्द्रसमो राहुः सूर्यं छादयतीति ॥४६॥

## **अब राहुबिम्ब को क**हते हैं।

हि. सा. – चन्द्रग्रहण में चन्द्रकक्षा में स्थित भूभाव्यास के बराबर राहु चन्द्र बिम्ब को ग्रंस्त करता है। तथा सूर्यग्रहण में चन्द्र व्यास के बराबर राहु सूर्य को ग्रसित करता है इति ॥४६॥

इदानीं ग्रहरो राहुदर्शनं कथं न भवतीत्याह ।

## यत् तदधिकं तमोमयराहुव्यासस्य सूर्यहष्टत्वात् । नश्यति भूछायेन्द्रोर्क्याससमोऽस्माद् भवति राहुः ॥४७॥

- सु. भा.—तमोभयराहुव्यासस्य यन्मानं तदिधकं ताभ्यां भूभाचन्द्रव्या-साभ्यामिषकं तत् सूर्यहष्टत्वात् तत्तेजसा नश्यित तस्माद्राहुर्भू छायासमश्चनद्रमसो व्याससमश्चैव भवति । स चान्धकारमध्ये स्थितत्वान्न दृश्यो भवतीति स्फुटम् ॥४७॥
- वि. भा.—तमोमयराहुव्यासस्य यन्मानं तदिषकं ताभ्यां भूभाचन्द्राभ्याम-िषकं तत् सूर्यदृष्टत्वात्तत्तेजसा नश्यित, श्रस्मात् कारणाद्राहुर्भूछायेन्द्वोः (भूभाचन्द्र-मसोः) व्याससमञ्चेव भविति । स चान्धकारमध्ये स्थितत्वान्न दृश्यो भव-तीति ॥४७॥

## श्रव ग्रहण में राहु दर्शन क्यों नहीं होता है कहते हैं।

हि. भा.—भूभा और चन्द्र से सूर्य विम्ब के मधिक होने के कारण सूर्य विम्ब के तेज से अन्धकार मय राहु का अन्धकार नष्ट होता है अतः भूभाविम्ब व्यास के बराबर तथा चन्द्रविम्ब के व्यास के बराबर ही तंमोमय राहु व्यास होता है, वह अन्धकार के बीच में रहने के कारण दृश्य नहीं होता है इति ॥४७॥

## ब्राह्मस्फुटसिद्धान्ते

### इदानीं निर्गलितार्थमाह।

# भूछायेन्दुमतो हि ग्रहगो छादयति नार्कमिन्दुर्वा । तत्स्थस्तद्व्याससमो राहुश्छादयति शशिसूर्यौ ॥४८॥

सु. भा — ग्रतो ग्रह्णो भूछाया चन्द्रं वा चन्द्रः सूर्यं न छादयति । किन्तु तद्व्याससमस्तत्स्थो राहुरेव शशिसूर्यो छादयतीति सिद्धान्तः ॥४८॥

वि. भा.—श्रतोऽस्मात् कारणात् ग्रहणे भूछाया (भूभा) चन्द्रं न छादयति वा चन्द्रः सूर्यं न छादयति किन्तु तद्व्याससमस्तत्स्थो राहुरेव चन्द्रसूर्यो छादय-तीति ॥४८॥

### इति ग्रहरा वासना

### म्रब निर्गलितार्थ (निचोड़) को कहते हैं।

हि. भा.—इस कारण से ग्रहण में भूभा चन्द्र को ग्राच्छादित नहीं करती है, वा चन्द्र सूर्य को ग्राच्छादित नहीं करते है किन्तु उनके व्यास के बराबर तिस्थत राहु ही चन्द्र भौर सूर्य को ग्राच्छादित करता है इति ॥४८॥

इति ग्रहण वासना

#### ग्रथ गोलवन्धाधिकारः प्रारम्यते ।

तत्रादौ पूर्वापरयाम्योत्तरक्षितिजवृत्तान्याह । प्राच्यपरं सममण्डलमन्यद्याम्योत्तरं क्षितिजमन्यत् । परिकरवत् तन्मध्ये भूगोलस्तत्स्थितद्रष्टुः ॥४६॥

सु. भा- पूर्वापरमेव वृत्तं सममण्डलम् । श्रन्यद् याम्योत्तरवृत्तम् । परिकर-वत् कटिवन्धनवत् तदर्धेऽन्यत् क्षितिजम् । तन्मध्ये तेषां वृत्तानां गर्भीयकेन्द्रे तिस्थत द्रष्टुस्तस्य भूगोलस्योपरि स्थितो यो द्रष्टा तस्य भूगोलः कल्प्य इति ॥४९॥

नि. भा- प्रथमं पूर्वापरं सममण्डलसंज्ञकं वृत्तं विधायान्यत् (द्वितीयं) याम्योत्तरवृत्तं च विधाय पूर्वापरयाम्योत्तरवृत्तयोः सर्वतोऽप्यर्धभागे लम्बाकारेण संश्लिष्टमन्यत् (तृतीयं) क्षितिजवृत्तसंज्ञकं विधेयम्। तेषां वृत्तानां गर्भीयकेन्द्रे तस्य भूगोलस्योपिर स्थितो यो द्रप्टा तस्य भूगोलः कल्प्यः। सिद्धान्तशेखरे "श्रीपरार्यादिससारदारुघटितैः शलक्ष्णैः समैमंडलैगोलज्ञो दृढ्मिधबन्धश्चिरं गोलं विनिर्मापयेत्। तत्र प्रागपरं विधाय बलयं याम्योत्तरं चापरं तिर्यक् तद्द्वित्यार्धसक्तमितः कुर्यात्तृतीयं पुनः।" इति श्रीपत्युक्तवृत्तरचनाक्रम ग्राचार्योक्तानुरूप एव, एवमेव गोलबन्धविध्वर्ललोक्तशिष्यधीवृद्धिदतन्त्रे, भास्करसिद्धान्तिशरोमणौ चास्ति, भास्करेण "सुसरलवंशशलाकावलयैः शलक्ष्णैः सचक्रभागाङ्कैः। रचयेद् गोलं गोले शिल्पे चानल्पनैपुणो गणकः।" इति श्रीपत्युक्तिरेव्वविश्वदिव्यगम्यत इति ॥४९॥

अब गोलबन्धाधिकार प्रारम्भ किया जाता है। उस में पहले पूर्वापरवृत्त, याम्योत्तरवृत्त और क्षितिजवृत्त को कहते हैं।

हि. भा.—प्रथम सममण्डल संज्ञक पूर्वापर वृत्त बनाकर द्वितीय याम्योत्तर वृत्त को बनाकर इन दोनों (पूर्वापर वृत्त गौर याम्योत्तर वृत्त) के चारों तण्क अर्घभाग में लम्बाकार सटा हुआ तृतीय क्षितिजवृत्त बनाना चाहिये उन वृत्तों के गर्भीय केन्द्र में उस भूगोल के ऊपर स्थित द्रष्टा (दर्शक) के भूगोल की कल्पना करनी चाहिये । सिद्धान्तशेखर में 'श्रीपण्यादि ससार दारुघटितैं:' इत्यादि विज्ञान भाष्य में लिखित रलोक से श्रीपित ग्राचार्योक्त वृत्त रचनानुरूप ही वृत्त रचना क्रम को कहा है । इसी तरह गोलबन्ध विधि लल्लोक्त शिष्यवृद्धिदतन्त्र में और भास्कर सिद्धान्तिशरोमिण में भी है । भास्कराचार्य 'मुसरलवंशशलाकावलयैं:,' इत्यादि से श्रीपत्युक्ति ही को विश्वररूप में कहा है इति ॥ ४६॥

### इदानीमुन्मण्डलसंस्थानमाह।

# पूर्वापरयोर्लग्नं याम्योत्तरयोर्नतोन्नतं क्षितिजात्। स्वाक्षांशैरुन्मण्डलमहर्निशोर्हानि वृद्धिकरम् ।।५०।।

सु. भा.—स्पष्टार्थम् । पूर्वापरक्षितिजसङ्गमयोर्विलग्नम्'—इत्यादि भास्क-रोक्तमेतदनुरूपम् ॥५०॥

ति. भा-—पूर्वापरवृत्तक्षितिजवृत्तयोः पूर्वदिशि यत्र योगः पिश्चिमदिशि च यत्र योगस्ति द्विन्दुद्वयगतं क्षितिजात् स्वाक्षांशैर्याम्योत्तरयोर्नतोन्नतमर्थात् दक्षिण्-समस्थानात् स्वाक्षांशैरघोगतमुत्तरसमस्थानाञ्च स्वाक्षांशैरपरिगतमुन्मण्डलं भवति तच्च दिनरात्रयोरपचयोपचयकारकं भवत्यर्थादेतदुन्मण्डलं निरक्षद्वेशीयं क्षितिजं भवति उन्मण्डलवित देशे दिनरात्री-उपचयापचयवत्यौ भवतः । उन्मण्डलहीने निरक्षदेशे च दिनरात्री सर्वदैव समाने भवत इति । सिद्धान्तशेखरे "संसक्तं समवृत्तभूजवलयप्राक्पिश्चमासङ्गयोर्याम्योदक् क्षितिजाघरोत्तरगतं स्वाक्षांश-तुल्यान्तरे । स्यादुन्मण्डलमेतदप्यवनिजं देशे निरक्षे स्मृतं जायेते तमस्विनी दिवस्योर्वृद्धक्षयौ तद्वशात् ।" इति श्रीपत्युक्तोन्मण्डलरचनाक्रम श्राचार्योक्तानुरूप एव । सिद्धान्तिशरोमणौ 'पूर्वापरिक्षितिजसङ्गमयोविलग्नं याम्ये ध्रुवे पललवैः क्षितिजादधः स्थे । सौम्ये कुजादुपरिचाक्षलवैध्रुवे तदुन्मण्डलं दिनिनशोः क्षयवृद्धिकारि ।" भास्करोक्तमिदमाचार्योक्तानुरूपमेवेति ॥५०॥

### भ्रब उन्मण्डल संस्थान को कहते हैं।

हि. मा.—पूर्वापरवृत्त श्रौर क्षितिजवृत्त की पूर्वंदिशा में जहां योग (पूर्वंस्वस्तिक) है श्रौर पश्चिम दिशा में योग (पश्चिम स्वस्तिक) है, एतद्विन्दुद्वय गत तथा दक्षिए। समस्थान से अपने श्रक्षांशान्तर पर अघोगत उत्तर समस्थान से अपने श्रक्षांशान्तर पर ऊपर गया हुआ वृत्त उन्मण्डल है, यह दिन श्रौर रात्रि का हानि (श्रपचय) श्रौर वृद्धि (उपचय) कारक है। यह उन्मण्डल ही निरक्ष देशीय क्षितिज है इसलिये निरक्ष देश में दिन श्रौर रात्रि सर्वंदा बराबर होती है, निरक्ष देश से भिन्न देश (जहां उन्मण्डल है) में दिन श्रौर रात्रि के न्यूनाधिकत्व के कारए। उन्मण्डल ही है। सिद्धान्त शेखर में श्रोपित श्रौर भास्कराचार्य ने भी श्राचार्योक्त के श्रनुरूप ही कहा है इति ॥५०॥

इदानीं विषुवन्मण्डलसंस्थानमाह ।

विषुवन्मण्डलमूर्ध्वं सममण्डलतः स्थितं स्वकाक्षांशः। याम्येनोत्तरतोऽषः क्षितिजे प्राच्यपरयोर्लंग्नम् ॥५१॥ सु. भा.—ऊर्ध्वं खस्वस्तिकम् । स्रघोऽघः स्वस्तिकम् । शेषं स्पष्टम् । 'पूर्वा परस्वस्तिकयोर्विलग्नम्'—इत्यादि भास्करोक्तं चिन्त्यम् ॥५१॥

वि. मा.—सममण्डलतः (पूर्वापरवृत्तात्) स्वकीयाक्षांशैर्दक्षिणेनोर्ध्वभागे (ऊर्ध्वखस्वस्तिके) स्वकीलाक्षांशैरत्तरतोऽधः खस्वस्तिके स्थितं क्षितिजवृत्ते पूर्वस्वस्तिके पश्चिमस्वस्तिके च लग्नं विषुवन्मण्डलं विषुवन्नाम (समरात्रिन्दिव-कालः) उपचारात् समरात्रिन्दिवकालो यत्र तिष्ठित रवौ भवित तत्रासक्तमिति। पूर्वापर विन्द्वोरेव विषुवचिन्हे गोलवन्धे प्राचीनैः स्वीकृते इति पूर्वापर चिन्हयोः संसक्तमित्यर्थः) स्यात्-एतस्य नाम नाड़ीवृत्तमप्यस्ति यतो वृत्तमिदं षष्टिया ६० नाड़िकाभिश्चिन्हितमस्तीति। सिद्धान्तशेखरे "नतमथ समवृत्ताद्क्षिणेनाक्षभागै विषुवदुपपतन्तं मण्डलं नाड़िकाख्यम्। उदगपि पलभागैः स्यादधस्तात्तदेतद् गगन रसमिताभिर्लाञ्चितं नाड़िकाभिः।" श्रीपत्युक्तमिदमाचार्योक्तानुरूपमेवास्ति-सिद्धान्तिशरोमणौ "पूर्वापरस्वस्तिकयोविलग्नं खस्वस्तिकाद् दक्षिणतोऽक्षभागैः। ग्राधश्च तैरुत्तरतोऽङ्कितं च षष्टघाऽत्र नाड़ीवलयं विदध्यात्।" भास्करोक्तरचायं श्रीपत्यादर्शस्तो द्रष्टव्य इति। ५१।।

## भ्रव विषुवन्मण्डल की संस्थिति को कहते हैं।

हि. भा- पूर्वापर वृत्त से दक्षिण तरफ अक्षांशान्तर (अर्घ्वस्वस्तिक) में, उत्तर तरफ अद्यः खस्वस्तिक (अक्षांशान्तर) में स्थित, क्षितिज वृत्त में पूर्वस्वस्तिक और पिश्वम स्वस्तिक में लगा हुआ विषुवद्दत है, इसका नाम नाड़ी वृत्त भी है क्यों कि इस वृत्त में साठ नाड़ी (घटी) अङ्कित रहती हैं, विषुवद्वृत्त इसका नाम इसलिये है कि विषुवत् उसको कहते हैं जहां पर रिव के रहने से दिनमान और रात्रिमान बराबर होता है सायनमेषादि और सायन तुलादि में रिव के रहने से यह स्थिति होती है अर्थात् पूर्वस्वस्तिक और पिश्वम स्वस्तिक में संसक्त रहने से इसका नाम विषुददृत्त है इति । सिद्धान्तशेखर में 'नतमथसमवृत्ता-द्दिक्षगोनाक्षभागैः' इत्यादि विज्ञान भाष्य में लिखित क्लोक से श्रीपित ने आचार्यों के अनुरूप ही कहा है सिद्धान्तिशरोमिण में 'पूर्वापर स्वस्तिकयोर्विलग्नं' इत्यादि से भास्करा-चार्य श्रीपत्युक्त को आदर्श रूप मानते हैं इति ।।४१।।

इदानीं क्रान्तिमण्डलसंस्थानमाह ।

विषुवन्मण्डललग्नं मेषतुलादावुदक् कुलीरादौ । जिनभागैर्याम्येन मृगादावपममण्डलमिहार्कः ।।५२।।

पाताक्चन्द्रादीनां भ्रमन्ति भार्घे रवेक्च भूछाया । पातादपमण्डलवद् विमण्डलःनि स्वविक्षेपैः ॥५३॥ मु. भा.—स्पष्टार्थम् । 'क्रान्तिवृत्तं विधेयं'—इत्यादि तथा 'क्रान्तिपाते च पाताद्भपट्कान्तरे' इत्यादि भास्करोक्तं चिन्त्यं । आचार्यमतेऽयनाभावो ज्ञेयः । पातादपमण्डलवदित्यनेन ग्रहागां विमण्डलानि न्यस्तानीत्यग्रे सम्बन्धः ॥५२-५३॥

वि. भा.—पूर्वापरवृत्त नाड़ोवृत्त क्षितिजवृत्तोन्मण्डलानां पूर्वदिशि सम्पात-विन्दुः पूर्वस्वस्तिकं, पश्चिमदिशि सम्पातिवन्दुश्च पश्चिमस्वस्तिकम् । स्रनयोः पूर्वापरस्वस्तिकयोः मेपादितुलादिबिन्दू अपि तिष्ठत इत्ययनांशाभावकालिकी-स्थिति: । तेन मेपादिविन्दौ तुलादिविन्दौ च (पूर्वस्वस्तिके पश्चिम स्वस्तिके च) नाड़ीवृत्तेन सह सक्तवृत्तं क्रान्तिवृत्तं वघ्नीयात्, क्रुलोरादौ (कर्कटादौ) मिथुनान्त-विन्द्वारमके नवत्यंशचापे नाड़ीवृत्ताचतुर्विशत्यंशैरुत्तरतः-मृगादौ (धनुरन्तविन्द्वात्म-के तुलादिविन्दोर्नवत्यंशचापे) चतुर्विशत्यंशैर्दक्षिरातः । वध्नीयात् (क्रान्तिवृत्ते) वृत्ते रविभ्रमिति, चन्द्रादीनां ग्रहाग्गां पाताश्च भ्रमन्ति । रवेः षड्भान्तरे भूछाया (भूभा) भ्रमति । पातात् (क्रान्ति विमण्डल सम्पातात्) क्रान्ति वृत्तवत् स्वस्वशरांशान्तरे तेपां ग्रहाणां (चन्द्रादीनां) विमण्डलानि भवन्ति । सिद्धान्तशेखरे ''पूर्वापरस्वस्तिकसक्तवृत्तं क्रान्त्याख्यमत्राजतुलाघराद्योः । उदग् जिनांशैः खलु कर्कटादौ नाड़घाह्वयाद् दक्षिरातो मृगादौ । अमत्यमुब्मिन् वलये दिनेशः शशाङ्कपूर्वद्युसदां च पाताः । सहस्रगोः पड्भवनान्तरे हि छाया मही गोल समुत्थिता च ।'' श्रीपत्युक्तमिदमाचार्योक्तानुरूपमेव । शिष्यवीवृद्धिदे तन्त्रे लल्लोक्तं च "मेपतुलादौ लग्नं नाड़ीवृत्तेऽपमण्डलं तदुदक् । जिनभागैः कर्क्यादौ याम्यैस्तेरेव मकरादौ । भ्रमति रविरत्र वलये ग्रहाइच चन्द्रादयः स्वपातयुताः। भूभाभार्थेभानोः स्बशी ब्रवृत्ते ज्ञसितपातौ ।" इत्यनुपदमेव गृहीतं श्रीपतिना । भास्कराचार्येग च "क्रान्तिवृत्तं विषेयं गृहाङ्क भ्रमत्यत्र भानुश्रभार्धेकुभा भानुतः । क्रान्तिपातः प्रतीपं तथा प्रस्फुटाः क्षेपपाताश्च तत्स्थानकान्यङ्कयेत् । क्रान्तिपाते च पाताद् भषट्कान्तरे नाड़िकावृत्तलग्नं विदघ्यादिदम् । पाततः प्राक्तिभे सिद्धभागैरु-दक् दक्षिगो तैश्च भागैविभागे ऽपरे।" इति प्राचीनोक्तरीत्यैव तथैव क्रान्तिवृत्त-संस्थानमुक्तम् । रवित एव छायोत्पद्यते । रविकेन्द्राद् भूकेन्द्रगामिसूत्रं यत्र क्रान्ति-वृत्ते लगति तदेव भूभामध्यस्थानम् । रिवः कान्तिवृत्ते — क्रान्तिवृत्तस्य केन्द्रं च भूकेन्द्रम् । अतो रवेर्भूकेन्द्रगामिसूत्रं क्रान्तिवृत्तस्य व्यासत्वाद्रवितः षड्भान्तरे क्रोन्तिवृत्ते लगति तेन 'भार्घे रवेश्च भूछाये' ति युक्तियुक्तमाचार्योक्त-मिति ॥५२-५३॥

### भव क्रान्तिवृत्त संस्थान को कहते हैं।

हि भा — पूर्वापरवृत्त नाडीवृत्त क्षितिजवृत्त उन्मण्डल इन वृत्तों के पूर्वतरफ सम्पात बिन्दु पूर्वस्वस्तिक है, श्रौर पश्चिम तरफ सम्पात विन्दु पश्चिम स्वस्तिक है। श्रयनांशाभाव काल में पूर्वस्वस्तिक ही मेपादि बिन्दु तथा पश्चिम स्वस्तिक तुलादि विन्दु रहता है। ग्रतः मेषादि विन्दु (पूर्वस्वस्तिक) ग्रौर तुलादि विन्दु (पिव्चम स्विन्तिक) में नाड़ीवृत्त के साथ संसक्त क्रान्तिवृत्त को बांधना चाहिये। कक्योदि (मियुनान्त विन्द्वात्मकनवत्यं चचाप) में नाड़ीवृत्त से चौबीस ग्रंश उत्तर, मकरादि (धनुरन्तिवन्द्वात्मक नवत्य सचाप) में चौबीस ग्रंश दक्षिण क्रान्तिवृत्त को बांधना चाहिये, इस क्रान्तिवृत्त में रिव भ्रमण करते हैं चन्द्र ग्रादि ग्रहों के पात भ्रमण करते हैं। रिव से छः राशि पर भूभा भ्रमण करती हैं। पात (क्रान्तिवृत्त ग्रौर विमण्डल के सम्पात) से क्रान्तिवृत्त के सहश ग्रपने ग्रपने शर्पात्तर पर उन ग्रहों का विमण्डल होता है। रिव से छाया की उत्पत्ति होती है। रिव केन्द्र से भूकेन्द्र-गामी सूत्र क्रान्तिवृत्त में जहां लगता है वही भूभा मध्यस्थान (केन्द्र) है। रिव क्रान्तिवृत्त में है, क्रान्तिवृत्त का केन्द्र भूकेन्द्र है इसलिये रिव से भूकेन्द्रगामी सूत्र क्रान्तिवृत्त में छः राशि पर लगता है क्यों कि वह सूत्र (रिव से भूकेन्द्रगामी सूत्र) क्रान्तिवृत्त का ब्यास है, व्यास रेखा वृत्त के दो समान खण्ड करती है ग्रतः रिव से छः राशि पर भूभाकेन्द्र होना है यह ग्राचार्योक्त ग्रुक्तिग्रुक्त है। सिद्धान्तशेखर में 'पूर्वापर स्वस्तिक सक्तवृत्तं इत्यादि' विज्ञान भाष्य में लिखित श्लोकों से श्रीपतिभाचार्योक्त के ग्रनुरूप ही कहा है। शिष्यवृद्धिद तन्त्र में 'मेषतु-लादौ लग्नं नाड़ीवृत्तेऽपमण्डल' इत्यादि लल्लाचार्योक्त विषय को ग्रक्षरश: श्रीपित ने ग्रहण किया है इति ।।५२-५३।।

### इदानीं विमण्डलान्याह।

# सौम्यं विमण्डलार्धं प्रथमं याम्यं द्वितीयमेतेषु । चन्द्रकुजजीवमन्दा भ्रमन्ति शोझ्रोग् बुधशुक्रौ ॥५४॥

सु. भा — प्रथम विमण्डलाधं मेषादिराशिपट्कं विक्षेपांशैः सौम्यं द्वितीय— मधं तुलादिपट्कञ्च याम्यं विक्षेपांशैर्वध्नीयात् । बुधशुक्रौ शीघ्रोण् शीघ्रोच्चेन स्वस्वविमण्डले भ्रमतः । तयोः शीघ्रोच्चे विमण्डले भ्रमत इति शेषं स्पष्टा— र्थम् ॥५४॥

वि. भा.—क्रान्तिविमण्डलयोः सम्पातः पात इति ततः प्रथमं विमण्डलाधं मेषादिराशिपट्करूपं शरांशः सौम्यं (उत्तरिदिश) द्वितीयमधं (तुलादिराशिपट्कं च) शरांशैर्याम्यं (दिक्षिणदिशि) वघ्नीयात्। एतेषु स्वस्वविमण्डलेषु चन्द्रभौमगुरुश्चानयो भ्रमन्ति बुधशुक्रौ शीघ्रोच्चेन स्वस्वविमण्डले भ्रमतोऽर्थात्तयोः शीघ्रोच्चे विमण्डले भ्रमत इति। सिद्धान्तशेखरे "विमण्डलाधं प्रयमं निजेषुभागैरुदक् चोत्तर-पातिचन्हात्। सषड्गृहाद् दिक्षिणतो द्वितीयमधं तथाऽपक्रमवृत्तवच्च। एतेषु च स्वस्वविमण्डलेषु चन्द्रार जीवार्कसुता भ्रमन्ति। निजोच्चवृत्तेन चलाभिचेन किलोश-नश्चान्द्रमसायिनी च।" इत्यनेन श्रीपतिः, लल्लः "भूभा भार्धेमानोः स्वशीघ्रवृत्ते जसितपातौ। विक्षेपमण्डलदलं पूर्वं क्षेपांशकैरुदक् पातात्। षड्भयुताद्क्षिणतो

विमण्डलाधं द्वितोयं स्यात्।" भास्करश्च-नाडिकामण्डले क्रान्तिवृत्तं यथा क्रान्ति-वृत्ते तथा क्षेपवृत्तं न्यसेत्। क्षेपवृत्तं तु राश्यिङ्कतं तत्र च क्षेपपातेषु चिन्हानि कृत्वो-क्तवत्। क्रान्तिवृत्तस्य विक्षेपवृत्तस्य च क्षेपपाते सषड्भे च कृत्वा युतिम् । क्षेपपा-ताग्रतः पृष्ठतश्च त्रिभे क्षेपभागैः स्फुटैः सौम्ययाम्ये न्यसेत्।" इत्यनेन सर्वं तथैव कथितवाम्। केवलं "क्षेपभागैः स्फुटै" रित्युत्तचा ग्रहाणां स्फुटशरा श्रपेक्षितास्ते च

श्रीझकर्णेन भक्तास्त्रिभज्यागुणाः स्युः परक्षेपभागाग्रहाणां स्फुटाः । , क्षेपवृत्तानि षण्णां विदघ्यात्पृथक् स्वस्ववृत्ते भूमन्तीन्दु पूर्वाग्रहाः ॥

इत्यनेनानीता भगोलविमण्डल रचनां भास्करेण गृहीताः। प्राचीनैस्त एव पूर्वपठिताः शरा ग्रत्र विमण्डलरचनायामपि गृहीता ॥ इति ॥५४॥

## श्रब विमण्डलों को कहते हैं।

हि. भा.—क्रान्तिवृत्त और विमण्डल के सम्पात पात है, वहां से प्रथम विमण्डलार्ष (मेषादि छः राशिरूप) को शरांशान्तर पर उत्तर तरफ तथा द्वितीय विमण्डलार्ष (तुलादि छः राशिरूप) को शरांशान्तर पर दक्षिए तरफ बांधना चाहिये। इन अपने अपने विमण्डलों में चन्द्र, भौम, गुरु, शनि श्रमण करते हैं। बुध और शुक्र शीधों से अपने अपने विमण्डलों भें भमण करते हैं। सिद्धान्तशेखर में 'विमण्डलार्ष प्रथमं निजेषु भागैः' इत्यादि से श्रीपति, 'भूमा भार्षभानोः स्वशीध्रवृत्ते शितत पातौं इत्यादि से लल्लाचार्य, 'नाड़िका मण्डले क्रान्तिवृत्तं यथा क्रान्तिवृत्ते' इत्यादि से भास्कराचार्य ने सब एक ही तरह कहा है। केवल भास्कराचार्य ने 'शीध्रकर्णेन भक्तास्त्रभण्यागुणाः' इत्यादि से साधित भगोलीय परमस्फुटशरवश से भगोलीय विमण्डल रचना की हैं प्राचीनाचार्यों ने पूर्व पठितशर ही को इस विमण्डल रचना में ग्रहण किया है इति।।४४।।

### इदानीं हग्मण्डलाभिनिवेशमाह।

# हामण्डलार्धमूर्घ्वं यत् तत् परिधिस्थितं द्रष्टाः। पश्यति यतः क्षितिस्थस्तद्भमित ततो ग्रहाभिमुखम् ॥१५॥

सु. भा.—यतः क्षितिस्थः क्षितिगर्भस्थो द्रष्टा यदूष्वं हग्मण्डलार्धं तत्परि-घिस्थितं ग्रहं पश्यन्ति ततस्तस्मात् कारणात् तद् हग्मण्डलं ग्रहाभिमुखं भ्रमित । 'ऊर्घ्वाधर स्वस्तिककीलयुग्मे' इत्यादि भास्करोक्तं विचिन्त्यम् ॥५५॥

वि. भा. —यतः (यस्मात् कारणात्) भूगर्भस्थो द्रष्टा ऊर्ध्वं हग्मण्डलार्धं यत् तत्परिधिस्थितं ग्रहं पश्यति तस्मात् कारणात् तद् हग्मण्डलं ग्रहाभिमुखं भ्रमतीति । सिद्धान्तशेखरे "द्रष्टुर्ग्नहाभिमुखमभ्रमवृत्तसक्तं हग्मण्डलं प्रतिपलं भ्रमति ग्रहाणाम्" श्रीपत्युक्तमेवास्ति । भास्करहच-''ऊर्ध्वाघरस्वस्तिक कीलयुग्मे प्रोतं इलथं हग्वलयं तदन्तः । कृत्वा परिभ्राम्य च तत्र तत्र नेयं ग्रहो गच्छति यत्र यत्र । ज्ञेयं तदेवाखिल खेचराणां पृथक् पृथग्वा रचयेत्तथाष्टौ ।'' यथा हग्मण्डलवन्धनमुपपादयति तदेव श्रीपत्युत्तचाऽपि पर्यवस्यतीति स्फुटमेव ॥५५॥

### श्रब दग्मण्डल को कहते हैं।

हि. भा.—भूगर्भस्थित द्रष्टा (दर्शक) हग्मण्डल के ऊर्घ्व परिष्यर्घ स्थित ग्रह को देखता है इसलिये वह हग्मण्डल ग्रहाभिमुख भ्रमण करता है। सिद्धान्तशेखर में 'द्रष्टुर्ग्य हाभिमुखम-भ्रमवृत्तसक्तं हग्मण्डलं प्रतिपलं भ्रमित ग्रहाणाम्।' श्रीपित इस तरह कहते हैं। भास्कराचार्य 'ऊर्घ्वाघरस्वस्तिक कीलयुग्मे प्रोतं श्लथं हग्वलयं तदन्तः।' इत्यादि से हग्मण्डल बन्धन को जैसे कहते हैं श्रीपत्युक्ति से भी वही होता है इति ॥५४॥

## इदानीं हक्क्षेपवृत्तमाह।

# क्षितिजापमण्डलयुतिर्लग्नं लग्नाग्रया दिशा लग्नम् । हक्क्षेपमण्डलं दक्षिरगोत्तरं वित्रिभविलग्ने ॥५६॥

सु. भा.—क्षितिजकान्तिमण्डलयोर्थंत्र युतिस्तदेव लग्नम् । हक्क्षेपमण्डलं लग्नाग्रया दिशा लग्नं वित्रिभलग्ने वित्रिभलग्नस्थाने क्रान्तिमण्डले दक्षिगोत्तरं तिर्यग् भवति । लग्नाग्रा यद्युत्तरा तदा लग्नाग्रांशै दंक्षिग्गसमस्थानात् पूर्वस्वस्तिक-दिशि दक्षिगाग्रायां च लग्नाग्रांशैदंक्षिग्गसमस्थानात् पिरुचमस्वस्तिकदिशि क्षितिजे लग्नं वित्रिभखस्वस्तिकगतं हक्क्षेपमण्डलं भवतीत्यर्थः । 'ज्ञेयं तदेवाखिल-खे चरागाम्'— इत्यादि भास्करोक्तं विचिन्त्यम् ॥५६॥

वि. भा.—क्षितिजवृत्तकान्तिवृत्तयोर्यत्र योगस्तदेव लग्नम् । लग्नोत्पन्नं नवत्यंशवृत्तं हक्क्षेपवृत्तं भवित तच्च वित्रिभ लग्नस्थाने क्रान्तिवृत्तं तिर्यक् (लम्ब-रूपं) भवित, लग्नाग्रया दिशा लग्नमर्थाल्लग्नाग्रा यद्युत्तरा तदा दक्षिण्समस्था-नाल्लग्नाग्राशैः पूर्वस्वस्तिकदिशि यदि च लग्नाग्रा दक्षिणा तदा दक्षिण्समस्था-नाल्लग्नाग्राशैः पश्चिमस्वस्तिकदिशि क्षितिजे लग्नं वित्रिभलग्नखस्वस्तिकगतं तत् (हक्क्षेपवृत्तं) भवतीत्यर्थः । सिद्धान्तशेखरे 'प्राग्लग्नमत्र भवनित्रतेयेन हीनं हक्क्षेपमण्डलमुशन्ति कुशाग्रधीराः' इत्यनेन श्रीपतिः, सिद्धान्तशिरोमणौ 'हग्मण्डलं वित्रिभलग्नकस्य हक्क्षेपवृत्ताक्ष्यमिदं वदन्ती' त्यनेन भास्करोऽप्याचार्यो क्तानुक्ष्पमेव कथयतीति ॥५६॥

## ग्रब हक्सेपवृत्त को कहते हैं।

हि. भा.-क्षितिजवृत्त और क्रान्तिवृत्त की पूर्व दिशा में जहां योग है वही लग्न है।

लग्नोत्पन्न नवत्यं शतृत हक् क्षेपवृत्त होता है। वह (हक् क्षेपवृत्त) वित्रिभ लग्नस्थान में क्रान्तिवृत्त के ऊपर तिर्यक् (लम्ब रूप) होता है, तथा लग्नाग्रा यदि उत्तर दिशा की है तब दिक्षिण समस्थान से लग्नाग्रांशान्तर पर पूर्वस्वस्तिक की तरफ यदि लग्नाग्रा दिक्षिण दिशा की है तब दिक्षिण समस्थान से लग्नाग्रांशान्तर पर पश्चिम स्वस्तिक की तरफ क्षितिजवृत्त में लगता है। ग्रर्थात् वह हक् क्षेपवृत्त वित्रिभलग्न ग्रौर खस्वस्तिक में गया हुग्ना होता है। सिद्धान्तशेखर में 'प्राग्लग्नमत्र भवनित्रतेयत हीनं' इत्यादि से श्रीपति तथा सिद्धान्तशिरोमणि में 'हग्मण्डलं वित्रिभ लग्नकस्य' इत्यादि से भास्कराचार्य ने भी ग्राचार्योक्त के अनुरूप ही कहा है इति ।।५६।।

इदानीं मेषादि द्वादशराशीनामहोरात्रवृत्तान्यमाह । दिषुवदुदग् बध्नीयात् कान्त्यंश समान्तरेष्वजादीनाम् । वृत्तत्रितयं व्यस्तं कक्यादीनां तुलादीनाम् ॥५७॥ विषुवद्दक्षिरातोऽन्यन्मकरादीनां तदेव विपरीतम् । स्वाहोरात्राण्येषां व्यासाः पृथगेवमिष्टमपि ॥५८॥

सु. भा.—स्वाहोरात्राणि चुज्या एषामहोरात्रवृत्तानां व्यासा ज्ञेयाः। एविमिष्टमहोरात्रवृत्तमिपि पृथग्गोलोपिर निवेश्यम्। शेषं स्पष्टम्। ईप्सितक्रान्ति-तुल्येऽन्तरे' इत्यादि तथा 'श्रथ कल्प्या मेषाद्याः' इत्यादि च भास्करोक्तं विचि-न्त्यम्।।५७-५८।।

वि. मा. - अजादीनां (मेणादीनां) त्रयाणां राशीनां (मेणवृषमिथुनानां) क्रान्त्यंशतुल्यान्तरेषु नाड़ीवृत्तादुत्तरदिशि वृत्तित्रतयं स्वाहोरात्रवृत्ताह्वयं बध्नी-यादर्थान्मेषान्तक्रान्त्यंशैनीड़ीवृत्तादुत्तरे यद्वृत्तं तन्मेपान्ताहोरात्रवृत्तम् । वृषान्त-क्रान्त्यंशान्तरे नाड़ीवृत्तादुत्तरे यद्वृत्तं तद्वृषान्ताहोरात्रवृत्तम् । मिथुनान्त-क्रान्त्यंशान्तरे नाड़ीवृत्तादुत्तरे मिथुनान्ताहोरात्रवृत्तमिति । इति वृत्त त्रितय (मेष वृषमिथुनानामहोरात्रवृत्तित्रयं) व्यस्तं विपरीतक्रमेण् कव्यदिनामहोरात्रवृत्तन्वत्रानि भवत्यर्थाद्वृषान्ताहोरात्रवृत्तमेव कर्कान्ताहोरात्रवृत्तम् । मेषान्ताहोरात्रवृत्तन्व वृत्तमेव सिहान्ताहोरात्रवृत्तम् । कन्यान्ताहोरात्रवृत्तं तु मीनान्ताहोरात्रवृत्तक्षं नाड़ी-वृत्तमेवास्ति । तुलादीनां षण्णां राशीनां नाड़ीवृत्ताद्दक्षिणदिशि —अहोरात्र वृत्तं भवति । यथा तुलान्तकान्त्यशान्तरे नाड़ोवृत्ताद्दक्षिणदिशि यद्वृत्तं तत्तुलान्ताहोरात्रवृत्तम् । नाड़ीवृत्ताद्दक्षिणदिशि वृश्चिकान्तकान्त्यंशान्तरे वृश्चिकान्ताहोरात्रवृत्तम् । नाड़ीवृत्ताद्दक्षिणदिशि वृश्चिकान्तकान्त्यंशान्तरे घनुरान्ताहोरात्रवृत्तम् । तद्वव विपरीतं मकरादीनामहोरात्रवृत्तानि भवन्त्यर्थाद्वृत्तिम् । कन्यान्तान्ताहोरात्रवृत्तमेव कुम्भान्ताहोरात्रवृत्तम् । कन्यान्तान्ताहोरात्रवृत्तम् । तुलान्ताहोरात्रवृत्तमेव कुम्भान्ताहोरात्रवृत्तम् । कन्यान्तान्ताहोरात्रवृत्तम् । कन्यान्ताहोरात्रवृत्तमेव कुम्भान्ताहोरात्रवृत्तम् । कन्यान्तान्ताहोरात्रवृत्तम् । कन्यान्तान्तान्ताहोरात्रवृत्तम् । कन्यान्तान्तान्ताहोरात्रवृत्तम् वृत्तम्यान्तान्ते क्रमान्ताहोरात्रवृत्तम् । कन्यान्तान्ति

होरात्रवृत्तमेव नाड़ीवृत्तरूपं मीनान्ताहोरात्रवृत्तम् । एपामहोरात्रवृत्तानां व्यासाः पृथक् पृथक् द्युज्या भवंति । एविमिष्टमप्यहोरात्रवृत्तागोलोपिर पृथक् निवेश्यम् । सिद्धान्तशेखरे "मेषाद् वृत्तात्रितयमपमांशैर्गं हागां त्रयागां नाड़ीवृत्ता-दिदमुदगपि व्यत्ययात् कर्कटाञ्च । षण्णां ज्ञकात् कथितमनुदक् चैविमिष्टापमांशैः स्वाहोरात्राह्वयमभिहितं मण्डलं गोलिविद्भिः । "श्रीपितिः । लल्लश्च-वृत्तत्रयमपमांशैनांड़ीवृत्ताद् भवत्यजादीनाम् । ब्यस्तं कक्योदीनामेवं पण्णां तुलादीनाम् । इष्टकान्तेरग्रे तद् द्युज्यामण्डलं च बध्नीयात् । मध्येऽस्य ग्रहगोला भवन्ति वृत्तैर्भगो लस्य ।" श्राचार्यस्याऽऽदर्शभूताविति । भास्कराचार्योऽपि "ईप्सितक्रान्तितुल्येऽन्तरे सर्वतो नाड़िकाख्यादहोरात्रवृत्ताह्वयम् । तत्र वध्वा घटीनां च षष्ट्याऽङ्क्रयेदस्य विष्कम्भखण्डं द्युजीवा मता।" एषां प्राचीनानां सद्दशमेवाहोरात्रवृत्तं कथयति । केवलमयनांशलब्धिकारणात् 'विषुवत्क्रान्तिवलयोः सम्पातः क्रान्तिपातः स्यादि' ति प्रथमं कथयित्वा "ग्रथ कल्प्या मेषाद्या ग्रनुलोमं क्रान्तिपाताङ्कात् ।" इत्याह ॥५७-५८॥

### म्रब मेषादिद्वादश (वारह) राशियों के म्रहोरात्रवृत्त को कहते हैं।

हि. भा — मेषादि तीन राशि (मेष-वृष-मिथुन) यों के क्रान्त्यंशतुल्य अन्तर पर नाड़ीवृत्त से उत्तर तरफ बहोरात्र वृत्त संज्ञक तीन वृत्तों को बांधना चाहिये-ब्रयान् नाड़ीवृत्त से उत्तर तरफ मेषान्त क्रान्त्यंशान्तर पर जो वृत्त होता है वह मेषान्ताहोरात्रवृत्त है, वृषान्त क्रान्त्यंशान्तर पर नाड़ीवृत्त से उत्तर जो वृत्त होता है वह वृषान्ताहोरात्रवृत्त है । एवं नाड़ीवृत्त से उत्तर मिथुनान्त क्रान्त्यंशान्तर पर मिथुनान्ताहोरात्र वृत्त होता है । यह मेष- वृत्त-मिथुन के ग्रहोरात्र वृत्त विपरीत क्रम से कर्क्यादि तीन राशियों का श्रहोरात्रवृत्त होता है अर्थात् वृषान्ताहोरात्र वृत्त ही कर्कान्ताहोरात्र वृत्त होता है, मेषान्ताहोरात्रवृत्त ही सिंहान्ताहोरात्रवृत्त होता है। कन्यान्ताहोरात्रवृत्त मीनान्ताहोरात्रवृत्तरूप नाडीवृत्त ही हैं। तुलादि छः राशियों के नाड़ीवृत्त से दक्षिए। तरफ ब्रहोरात्रवृत्त होता है । जैसे नाड़ीवृत्त से दक्षिए। तुलान्त क्रान्त्यंशान्तर पर तुलान्ताहोरात्रवृत्त होता है । नाड़ीवृत्त से दक्षिए। वृश्चि-कान्त क्रान्त्यंशान्तर पर वृश्चिकान्ताहोरात्रवृत्त होता है । एवं नाडीवृत्त से दक्षिए। धनुरन्त क्रान्त्यंशान्तर पर धनुरन्ताहोरात्र वृत्त होता है। ये ही विपरीत क्रम से मकरादि राशियों का ग्रहोरात्र वृत्त होते हैं ग्रयाँत् वृश्चिकान्ताहोरात्रवृत्त ही मकरान्ताहोरात्रवृत होता हैं। तुलान्ताहोरात्रवृत्त ही कुम्भान्ताहोरात्रवृत्त होता है। कन्यान्ताहोरात्रवृत्त ही नाडीवृत्तरूप मीनान्ताहोरात्रवृत्त होता है। इन ब्रहोरात्रवृत्तों की व्यास चुज्या होती है। एवं इष्ट ब्रहोरा-त्र वृत्त को भी पृथक् गोल के ऊपर निवेश करना चाहिये । सिद्धान्तशेखर में 'मेषाद्वृत्त-त्रितयमपमांशैर्णं हाणां त्रयाणां इत्यादि विज्ञान भाष्य में लिखित श्रीपत्युक्त के तथा 'वृत्तत्र-यमपमांशैर्नाडीवृत्तात्' इत्यादि विज्ञान भाष्य में लिखित लल्लोक्त का श्रादर्शरूप श्राचार्योक्त ही है। भास्कराचार्य भी 'ईप्सितक्रान्तितुल्येऽन्तरे सर्वतो नाड़िकारव्यादहोरात्रतृत्ताह्वयम्'

इत्यादि से प्राचीनोक्त ग्रहोरात्रवृत्तों के सहश ही ग्रहोरात्रवृत्त कहते हैं । केवल ग्रयनांश की उपलब्धि के हेतु से 'विषुवत्क्रान्तिवलयो: सम्पातः क्रान्तिपातः स्यात्' पहले यह कह कर 'ग्रथ कल्प्या मेषाद्या ग्रनुलोमं क्रान्तिपाताङ्कात् ।' यह कहते हैं इति ।।५७-५८।।

इदानीं राश्युदयाः कथं समानेत्याशङ्कचाह।

लङ्का समपश्चिमगं प्रागोन कलां भमण्डलं भ्रमति । भ्रपमण्डलस्य राशिर्द्वादशभागः क्षितिजलग्नाः ॥५९॥

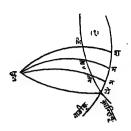
यान्त्युदयं मेषाद्या यतस्तदुदया न कालसमाः । क्रान्तिवशाल्लङ्कायां तदूनताधिक्यमक्षवशात् ॥६०॥

सुः भाः — लङ्कासमपश्चिमगं भमण्डलं भचक्रमध्यप्रदेशरूपं नाडीमंडलं प्रारोनैकेनासुना कलामेकं कलां भ्रमति । नाडीमण्डलस्यैका कलैकेनासुनोदेति । क्रान्तिमण्डलस्य द्वादशभागो द्वादशसमानभागो राशिरुच्यते । ते मेषाद्याः क्षिति-जलग्ना यत उदयं यान्त्यतो लङ्कायां क्रान्तिवशात् तिरश्चीनत्वात् तदुदयाः कालसमाः कालेन समा न सन्ति । एवं स्वदेशेऽपि क्रान्तिवशादक्षवशाच्च तेषां राशीनामुदयेषु ऊनताधिक्यं भवति । 'यो हि प्रदेशो ऽपमण्डलस्य तिर्यंक्स्थितो यात्युदयं तथाऽस्तम्' — इत्यादि भास्करोक्तं चिन्त्यम् ।।६०।।

वि. भा- लङ्कापिरचमपिरचमगं भमण्डलं भचक्रमध्यप्रवेशरूपं नाड़ीवृत्तं प्राग्णेन (एकेनासुना) कलां (एकां कलां) भूमत्यर्थान्नाड़ीवृत्तस्यैका कलैकेनासुनो-देति । क्रान्तिवृत्तस्य द्वादशतुल्यभागो राशिः कथ्यते, ते मेषाद्या यतः क्षितिजलग्ना उदयं यान्त्यतो लङ्कायां क्रान्तिवशात् तदुदयाः कालेन समा न सन्ति । एवं स्वदेशेऽपि क्रान्तिवशादक्षवशाच्च तेषां राशींनामुदयेषु न्यूनाधिक्यं भवतीति ।

#### अत्रोपपत्तिः ।

क्रान्तिवृत्तस्य त्रिंशदंशात्मक एको राशिः। राश्याद्युपिर राश्यन्तोपिर च ध्रुवप्रोतवृत्तकररोन तयोरन्तर्गतं नाडीवृत्तीयचापं तद्राशेनिरक्षोदयमानम्। यथा मेषाद्युपिरध्रुवप्रोतवृत्तं नाडीवृत्ते मेषादिविन्दा (नाडीवृत्त क्रान्तिवृत्तयोः सम्पात-बिन्दौ) वेव लगति तस्मान् मेषान्तोपिर ध्रुवप्रोतवृत्तनाडीवृत्तयोः सम्पातं यावन्मेषो-दयमानं निरक्षदेशीयम्। एवं मेषान्तो (वृषादि) पिर ध्रुवप्रोतवृत्तवृषान्तोपिर ध्रुवप्रोतवृत्तयोरन्तर्गतं नाडीवृतीयचापं निरक्षदेशीयं वृषोदयमानम् । वृषान्तो (मिथुनादि) परिध्रुवप्रोतवृत्तमिथुनान्तोपिर ध्रुवप्रोत (आयनप्रोतवृत्त) वृत्तयोर-न्तर्गतं नाडीवृत्तीयचापं निरक्षदेशीयं मिथुनोदयमानमेतेषु न्यूनाधिक्यं कथं भवतीति प्रदश्येते।



गो = गोलसिन्धः = मेपादिः । मे = मेपान्तविन्दुः । वृ = वृषान्तविन्दुः । मि = मिथुनान्त विन्दुः । गोमे = मेवृ = ३०°, गोन = मेषोदयमानम् । नम = वृषोदयमानम् । मश = मिथुनोदयमानम् । ध्रु = ध्रुवः । ध्रुमि = परमाल्प- द्युज्याचापम् = < ध्रुगोमि ध्रुमे = मेषान्त द्युज्याचापम् । ध्रु वृ = वृषान्त च्रुज्याचापम् । < मेवृध्रु = वृषान्तजय-

ष्टच शाः=९०-वृषान्तजायनवलनम् । गोल्सन्धावायनवलनं परमं जिनांशसमम् । भ्रयनसन्धावर्थान्मिथुनान्ते भ्रायनवलनम् =०, श्रत एतयोर्मध्ये वृषान्ते स्रायनवल-नम् <२४ परमाल्पद्युज्याचापम्=६०—जिनांश =६०—२४=६६,

वृषान्ते यष्टचं शाः=९०—वृषान्तजायनवलनं=९०—जिनांशाल्पाऽऽयनव-लनम् । स्रतो वृषान्ते यष्टचं शाः >परमाल्पद्युज्याचापम्, ध्रुगोमे चापीय त्रिभुजेऽनु-पातः क्रियते ज्या <गोध्रुमे = परमाल्पद्युज्या × ज्या ३० चेषोदयज्या = ज्यागोन मेषान्तद्युज्या

ध्रुमेवृ चापीय त्रिभुजेऽनुपातेन वृषान्तजयष्टि × ज्या ३० च्या < मेध्रुवृ = ज्या

नम = वृषोदयज्या, परन्तु वृषान्तय > परमाल्पद्यु । स्रतः वृषान्तयष्टि × ज्या ३० मेषान्तद्युज्या

> परमाल्पद्युज्या × ज्या ३० भ्रथीत् वृषोदयज्या > मेषोदयज्या वा मेषोदयमान मेषान्तद्युज्या

< वृषोदयमानं, एवमेव मिष्टध्रुचापीय त्रिभुजेऽनुपातेन वृषान्तयष्टि × ज्या ३० परमाल्पद्युज्या = ज्या < मिध्रुवृ == ज्यामश = मिथ्रुनोदयज्या, परन्तु वृषान्तयष्टि > परमाल्पद्यु तथा मेषान्तद्यु > परमाल्पद्यु अतः वृषान्तयष्टि × ज्या ३० परमाल्पद्यु अतः परमाल्पद्यु

> वृषान्तयष्टि × ज्या ३० ग्रर्थात् मिथुनोदयज्या >वृषोदयज्या 
मेषान्तद्यु

∴ मिथुनोदयज्या < वृषोदयज्या < मेषोदयज्या वा मिथुनोदयमा < वृषोद-यमान < मेषोदयमान ∴ सिद्धम् ।

एतदुपपत्तिर्वस्तुतो यथैव शिष्यधीवृद्धिदतन्त्रे लल्लाचार्येग्गोक्ता तथैव इलोकान्तरेग श्रीपतिना भास्कराचार्येग चोक्ता स्वस्वग्रन्थे ।

यथा लल्लः—

लङ्कावृत्ते मध्यस्थिते भुवो यत्कुजं तदुद्वृत्तम् । तेन न तत्र चरदलं सदा समत्व च दिवसनिशोः ॥ इत्यादि से प्राचीनोक्त ग्रहोरात्रवृत्तों के सहश ही ग्रहोरात्रवृत्त कहते हैं । केवल ग्रयनांश की उपलिब्ध के हेतु से 'विषुवत्क्रान्तिवलयो: सम्पातः क्रान्तिपातः स्यात्' पहले यह कह कर 'ग्रथ कल्प्या मेषाद्या ग्रनुलोमं क्रान्तिपाताङ्कात्।' यह कहते हैं इति ।।५७-५८।।

इदानीं राक्युदयाः कथं समानेत्याशङ्क्रचाह ।

लङ्का समपश्चिमगं प्रागोन कलां भमण्डलं भ्रमति । म्रपमण्डलस्य राशिद्वविश्वभागः क्षितिजलग्नाः ॥५९॥

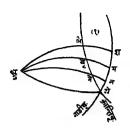
यान्त्युदयं मेषाद्या यतस्तदुदया न कालसमाः । क्रान्तिवशाल्लङ्कायां तदूनताधिक्यमक्षवशात् ॥६०॥

सु. भा. — लङ्कासमपश्चिमगं भमण्डलं भवक्रमध्यप्रदेशरूपं नाडीमंडलं प्राग्तेनैकेनासुना कलामेकं कलां भ्रमति । नाडीमण्डलस्यैका कलैकेनासुनोदेति । कान्तिमण्डलस्य द्वादशभागो द्वादशसमानभागो राशिरुच्यते । ते मेषाद्याः क्षिति-जलग्ना यत उदयं यान्त्यतो लङ्कायां क्रान्तिवशात् तिरश्चीनत्वात् तदुदयाः कालसमाः कालेन समा न सन्ति । एवं स्वदेशेऽपि क्रान्तिवशादक्षवशाच्च तेषां राशीनामुदयेषु ऊनताधिक्यं भवति । 'यो हि प्रदेशो ऽपमण्डलस्य तिर्यंक्स्थितो यात्युदयं तथाऽस्तम्' — इत्यादि भास्करोक्तं चिन्त्यम् ॥६०॥

वि. भा- लङ्कापिश्चमपिश्चमगं भमण्डलं भचक्रमध्यप्रवेशरूपं नाड़ीवृत्तं प्रायोन (एकेनासुना) कलां (एकां कलां) भूमत्यर्थान्नाड़ीवृत्तस्येका कलैकेनासुनो-देति । क्रान्तिवृत्तस्य द्वादशतुल्यभागो राशिः कथ्यते, ते मेषाद्या यतः क्षितिजलग्ना उदयं यान्त्यतो लङ्कायां क्रान्तिवशात् तदुदयाः कालेन समा न सन्ति । एवं स्वदेशेऽपि क्रान्तिवशादक्षवशाच्च तेषां राशींनामुदयेषु न्यूनाधिक्यं भवतीति ।

### अत्रोपपत्तिः ।

क्रान्तिवृत्तस्य त्रिंशदंशात्मक एको राशिः। राश्याद्युपिर राश्यन्तोपिर च ध्रुवप्रोतवृत्तकररोन तयोरन्तर्गतं नाडीवृत्तीयचापं तद्राशेनिरक्षोदयमानम्। यथा मेषाद्युपिरध्रुवप्रोतवृत्तं नाड़ीवृत्ते मेषादिविन्दा (नाड़ीवृत्त क्रान्तिवृत्तयोः सम्पात-बिन्दौ) वेव लगति तस्मान् मेषान्तोपिर ध्रुवप्रोतवृत्तनाड़ीवृत्तयोः सम्पातं यावन्मेषो-दयमानं निरक्षदेशीयम्। एवं मेषान्तो (वृषादि) पिर ध्रुवप्रोतवृत्तवृषान्तोपिर ध्रुवप्रोतवृत्तयोरन्तर्गतं नाड़ीवृतीयचापं निरक्षदेशीयं वृषोदयमानम् । वृषान्तो (मिथुनादि) परिध्रुवप्रोतवृत्तमिथुनान्तोपिर ध्रुवप्रोत (आयनप्रोतवृत्त) वृत्तयोर-न्तर्गतं नाड़ीवृत्तीयचापं निरक्षदेशीयं मिथुनोदयमानमेतेषु न्यूनाधिक्यं कथं भवतीति प्रदक्यते।



गो = गोलसिन्धः = मेषादिः । मे = मेषान्तिबन्दुः । वृ = वृषान्तिबन्दुः । मि = मिथुनान्त विन्दुः । गोमे = मेवृ = ३०°, गोन = मेषोदयमानम् । नम = वृषोदयमानम् । मश = मिथुनोदयमानम् । ध्रु = ध्रुवः । ध्रुमि = परमाल्प- द्युज्याचापम् = < ध्रुगोमि ध्रुमे = मेषान्त द्युज्याचापम् । ध्रुवृ = वृषान्तजय-

ष्टचंशाः=९०-वृषान्तजायनवलनम् । गोलसन्धावायनवलनं परमं जिनांशसमम् । भ्रयनसन्धावर्थान्मिश्रुनान्ते भ्रायनवलनम् =०, श्रत एतयोर्मध्ये वृषान्ते भ्रायनवल-नम् <२४ परमाल्पद्युज्याचापम्=६०—जिनांश =६०—२४=६६,

वृषान्ते यष्टघं शाः=९०—वृषान्तजायनवलनं =९०—जिनांशाल्पाऽऽयनव-लनम् । श्रतो वृषान्ते यष्टघं शाः >परमाल्पद्युज्याचापम्, ध्रुगोमे चापीय त्रिभुजेऽनु-पातः क्रियते ज्या <गोध्रुमे= परमाल्पद्युज्या × ज्या ३० चमेषोदयज्या = ज्यागोन मेषान्तद्युज्या

धुमेवृ चापीय त्रिभुजेऽनुपातेन वृषान्तजयष्टि × ज्या ३० = ज्या < मेध्रुवृ = ज्या

नम = वृषोदयज्या, परन्तु वृषान्तय > परमाल्पद्यु । स्रतः वृषान्तयष्टि × ज्या ३० मेषान्तद्युज्या

< वृषोदयमानं, एवमेव मिष्टध्रुचापीय त्रिभुजेऽनुपातेन वृषान्तयिष्टि × ज्या ३० परमाल्पद्युज्या = ज्या < मिध्रुवृ = ज्यामश = मिथ्रुनोदयज्या, परन्तु वृषान्तयिष्ट > परमाल्पद्यु तथा मेषान्तद्यु > परमाल्पद्यु ग्रतः वृषान्तयिष्ट × ज्या ३० परमाल्पद्यु परमाल्पद्यु परमाल्पद्यु परमाल्पद्यु परमाल्पद्यु

> वृषान्तयष्टि × ज्या ३० स्रर्थात् मिश्रुनोदयज्या > वृषोदयज्या । मेषान्तद्यु

∴ मिथुनोदयज्या < वृषोदयज्या < मेषोदयज्या वा मिथुनोदयमा < वृषोद-यमान < मेषोदयमान ∴ सिद्धम् ।

एतदुपपत्तिर्वस्तुतो यथैव शिष्यधीवृद्धिदतन्त्रे लल्लाचार्ये**ग्**गोक्ता तथैव इलोकान्तरेगा श्रीपतिना भास्कराचार्येगा चोक्ता स्वस्वग्रन्थे ।

यथा लल्लः---

लङ्कावृत्ते मध्यस्थिते भुवो यत्कुजं तदुदृत्तम् । तेन न तत्र चरदलं सदा समत्व च दिवसनिशोः ॥ तत्राक्षाभावेऽपि स्वस्वकान्त्या स्थितौ तिरश्चीनौ । ज्यायस्या मेषवृषौ यतोऽल्पकालोदयौ तेन ॥ मिथुनान्तोऽल्पकान्त्या पदान्तगत्वाहजुः स्थितो यस्मात् । तस्माच्चिरोदयोऽसावक्षवशाच्चान्यविषयेषु ॥ प्रागायतं कुलीरान्मकारादुदगायतं यतः षट्कम् । ग्रक्ष भूमवशगत्वादिधकन्यूनोदयं तस्मात् ॥ इति

### सिद्धान्तशेखरे श्रीपतिः--

यो द्वावशांशोऽपममण्डलस्य राशिः स ते द्वावश मेषपूर्वाः ।
तिर्यक्तया क्रान्तिवशान्निरक्षेऽप्युशन्ति कालेन समेन नैव ।।
निरक्षतायामपि हन्त यस्मात् तिर्यक् स्थितौ मेषवृषौ महत्या ।
क्रान्त्या भवेतामत एव चाल्पकालोदयौ तौ पुरि रावणस्य ।।
मिथुनोऽल्पतयाऽपमस्य तेषामृजुरास्ते नियतं पदान्तगत्वात् ।
ग्रतएव चिरोदयोऽन्यदेशेष्विप वा ऽक्षस्य वशेन तद्वदेवम् ।।
याम्यायतं कर्कटकाद् भषट्कं यतो मृगादेष्दगायतं हि ।
भवेत्ततस्तच्चिरतुच्छकालसमुद्गमि स्वाक्षवशभूमेण् ।। इति

सिद्धान्तिशरोमगोर्गोलाघ्याये भास्कराचार्यश्च ।
"यो हि प्रदेशोऽपममण्डलस्य तिर्यंक् स्थितो यात्युदयं तथाऽस्तम् ।
सोऽल्पेन कालेन य ऊर्ध्वंसंस्थोऽनल्पेन सोऽस्मादुदया न तुल्याः ॥
य उद्गमे याम्यनता मृगाद्याः स्वस्वापमेनापि निरक्षदेशे ।
याम्याक्षतस्तेऽति नतत्वमाप्ता उद्यन्ति कालेन ततोऽल्पकेन ॥
कक्यादयः सौम्यनता हि येऽत्र ते यान्ति याम्याक्षवशाहजुत्वम् ।
कालेन तस्माद्वहुनोदयन्ते तदन्तरे स्वं चरखण्डमेव ॥" इति ५९-६०॥

भ्रव राशियों का उदयमान बराबर क्यों नहीं होता है सो कहते हैं।

हि. भा.—भचक्रमध्यप्रदेशरूप नाड़ीवृत्त एक ग्रसु में एक कला भ्रमण करता है ग्रयात् नाड़ीवृत्त की एक कला एक ग्रसु में उदित होती है। क्रान्तिवृत्त का समान द्वादश भाग राशि कहलाता है। वे मेषादिराशि क्षितिज संलग्न होने से उदित होता है इसिलये क्रान्तिवश से लङ्का में वह उदय काल बराबर नहीं होता है एवं ग्रपने देश में भी क्रान्तिवश से श्रीर श्रक्षांश वश से उन राशियों के उदय में न्यूनाधिक्य होता है इति ॥५६-६०॥

#### उपपत्ति ।

राश्यादि के ऊपर घ्रुवप्रोतपृत्त तथा राश्यन्त के ऊपर ध्रुवप्रोतवृत्त नाड़ीवृत्त में जहाँ

लगता है तदन्तर्गत नाड़ीवृत्तीय चाप उस राशि का निरक्षदेशीय उदयमान होता है। जैसे मेषादिगत ध्रुवप्रोत्तावृत्ता में नाडीवृत्त मेषादि (गोलसिन्ध) ही में लगता है वहां (मेषादि) से मेषान्तोपरिगत ध्रुव प्रोतवृत्ता नाड़ीवृत्त के सम्पात पर्मन्त निरक्षदेशीय मेषोदयमान है। एवं मेषान्तो (वृषादि) परिगत ध्रुव प्रोतवृत्ता तथा वृषान्तोपरिगत ध्रुव प्रोतवृत्ता के म्नन्तर्गत नाड़ीवृत्तीय चाप निरक्ष देशीय वृषोदयमान है एवं वृषान्तो (मिथुनादि) परिगत ध्रुवप्रोतवृत्ता के मन्तर्गत नाड़ीवृत्तीय चाप निरक्ष देशीय वृषोदयमान है एवं वृषान्तो (मिथुनादि) परिगत ध्रुवप्रोतवृत्ता के मन्तर्गत नाड़ीवृत्तीय चाप निरक्ष देशीय मिथुनोदय मान हैं, इन उदयमानों में न्यूनाधिक्य क्यों होता है तदर्थ निम्नलिखित युक्ति है यहां संस्कृतोपपत्ता में लिखित (१) क्षेत्र को देखिये।

ग्रतः वृषान्तय  $\times$  ज्या ३०  $> \frac{9}{4}$  शर्मात् प्रशांत् मिथुनोदयज्या > 7 सेषान्तद्यु परमाल्पद्यु मेषान्तद्यु प्रशांत् मिथुनोदयज्या > 7 सेषोदयज्या, श्रतः मिथुनोदयज्या > 7 सेषोदयज्या, वा मिथुनोदयमान > 7 सेषोदयमा । श्रतः श्राचार्योक्त उपपन्न हुन्ना । यह उपपत्ति यथार्थतः शिष्यधीवृद्धिदतन्त्र में जिस तरह लल्लाचार्यं ने कहा है उसी तरह श्लोकान्तर से श्रीपित श्रौर भास्कराचार्यं ने श्रपने ग्रन्थ में कहा है ।

### जैसे लल्लाचार्योक्त शिष्यवृद्धिदतन्त्र में

'लङ्कावृत्ते मध्यस्थिते भुवो यत्कुजं तदुद्वृत्तम्' इत्यादि संस्कृतोपपत्ति में श्लोकों को देखना चाहिये।

#### सिद्धान्तशेखर में श्रीपति

'यो द्वादशांशोऽपममण्डलस्य राशिः स ते द्वादश मेष पूर्वाः' इत्यादि संस्कृतोपपत्ति में लिखित श्लोकों को देखना चाहिये।

सिद्धान्तशिरोमिं गोलाघ्याय में भास्कराचार्य

'यो हि प्रदेशोऽपममण्डलस्य तिर्यंक् स्थितो यात्युदयं' इत्यादि संस्कृतोपपत्ति में देखना चाहिये ॥५६-६०॥

### इदानीं चराग्रयोः संस्थानमाह।

## क्षितिजोन्मण्डलयोर्यत्स्वाहोरात्रान्तरं चरवलं तत् । क्षितिजेऽग्रा प्राच्यपरस्वाहोरात्रान्तरांशज्या ॥६१॥

मु. भा.—स्पष्टार्थम् । 'उन्मण्डलक्ष्मावलयान्तराले' — इत्यादि तथा 'क्ष्माजे द्युरात्रसमण्डलमघ्यभाग'— इत्यादि भास्करोक्तमेतदनुरूपं विचिन्त्यम् ।।६१॥

वि. भाः—स्विक्षितिजवृत्तोन्मण्डलयोरन्तरेऽहोरात्रवृत्तीयं चापं चरखण्डकालः कथ्यते । क्षितिजाहोरात्रवृत्तयोः सम्पातात्पूर्वंस्विस्तिकं यावत् क्षितिजवृत्ते ऽग्रांशाः । एतज्ज्याऽग्रा कथ्यत इति । सिद्धान्तिशरोमगोर्गोलाध्याये 'उन्मण्डलक्ष्मावलयान्त-राले द्युरात्रवृत्ते चरखण्डकाल' इत्यनेन भास्कराचार्येगाप्याचार्योक्तानुरूपमेव कथितम् । तथे' क्ष्माजे द्युरात्र सममण्डलमध्यभागजीवाऽग्रका भवति पूर्वपराशयोः सा' त्यनेनाचार्योक्तानुरूपमेवाग्रा स्वरूपं कथितमिति ॥६१॥

### अब चर और अग्रा की स्थिति को कहते हैं।

हिं. मा.— स्विक्षितिजवृत्त श्रौर उन्मण्डल के अन्तर्गंत अहोरात्र वृत्तीय चाप चरखण्ड काल कहलाता है। क्षितिजाहोरात्र वृत्त के सम्पात से पूर्वस्वस्तिकपर्यन्त क्षितिज वृत्तीय चाप अश्रांश है इसकी ज्या अश्रा कहलाती है। सिद्धान्तिशरोमिण गोलाध्याय में उन्मण्डल-स्मावलयान्तराले' इत्यादि से मास्कराचार्य आचार्योक्त चर खण्डकाल के सहश ही चरखण्ड काल कहा है। तथा 'क्ष्माजे खुरात्र सममण्डल मध्यभाँग' इत्यादि से आचार्योक्त अशा के अनुरूप ही अशा को भी कहा है इति ।।६१।।

इदानीं शङ्कुटग्ज्ययोः संस्थानमाह । स्वाहोरात्रे क्षितिजाहिनगतशेषोच्चता रवेः शङ्कुः । तस्माहिनगतशेषं शङ्कुकुमध्यान्तरं टग्ज्या ॥६२॥ सु. भा.—क्षितिजात् सकाशात् स्वाहोरात्रवृत्ते दिनगते वा पश्चिमकपाले दिनशेषे या रवेरच्चता लम्बरूपा स शङ्कुर्भविति । तस्माच्छंकोश्च त्रिप्रश्नाधिका-रिविधना दिनगतशेषं च भवित । शङ्कुकुमध्यान्तरं शङ्कुमूलस्य कुमध्यस्य भूगर्भस्य चान्तरं हग्ज्येत्युच्यते । रिविकेन्द्रात् क्षितिजोपरि लम्बः शङ्कुः । शङ्कु-मूलं भूगर्भान्तरं च हग्ज्या भवतीत्यर्थः ॥६२॥

वि. भा-—क्षितिजात् स्वाहोरात्रवृत्ते दिनगते वा पिश्चमकपाले दिनशेषे या रवेश्चता लम्बरूपा स शङ्कुभंवति । तस्मात् (शङ्कोः) त्रिप्रश्नाधिकारोक्त-विधना दिनगतशेषं च भवति । शङ्कुभूलस्य भूगभंस्य चान्तरं हग्ज्येति कथ्यते । रिविबम्बकेन्द्रात् क्षितिजधरातलोपिर लम्बः शङ्कुः कथ्यते । सिद्धान्तशेखरे "पूर्वापरिक्षितिजवृत्तत उन्नतांशज्याशङ्कुरत्र कथ्यतः स्फुटमिष्टभायाम् । तस्याग्रतो दिनकरोऽम्बररत्निबम्बमध्यावलम्बकमुत प्रवदन्ति शङ्कुम्।" इत्यनेन श्रीपितनापि भूगभंभूपृष्ठयोरभेदस्वीकारात् सूर्यंबिम्ब केन्द्रात् क्षितिजधरातलोपिर लम्बसूत्रं शङ्कुः कथ्यते । शिष्यधीवृद्धिदतन्त्रे लल्लः "पूर्वापरकुजवृत्तादुन्नत-लविशिङ्जनीष्टभाशङ्कुः । तस्याग्रे दिवसकरो नरोऽर्कविम्बावलम्बो वा।" भास्कराचार्यश्च "हष्टिमण्डलभवा लवाः कुजादुन्नता गगनमध्यतो नताः । शङ्कु-ष्नतलवज्यका भवेद हग्गुग्रश्च नतभाग शिङ्गिनो।" तथैव सहशोत्तर्यं व शङ्कुं-प्रतिपादयन्तीति ॥६२॥

### भ्रव शंङ्कु भ्रौर दुग्ज्या की स्थिति को कहते हैं।

हि. भा.— क्षितिजवृत्त से स्वाहोरात्रवृत्त जो दिनगत है उसमें वा पिरवमकपाल में दिनशेष में रिव की जो उच्चता है वह शङ्कु है प्रश्ति रिव बिम्वकेन्द्र से क्षितिज धरातल के ऊपर लम्ब रेखा शङ्कु है। उस शङ्कु से त्रिप्रश्नाधिकारोक्त विधि से दिनगत ग्रीर दिनशेष होता है, शङ्कु मूल से भूगभंपर्यन्त रेखा हण्ज्या कहलाती है तथा रिविबम्ब केन्द्र से क्षितिज घरातल के ऊपर लम्ब रेखा शङ्कु है ग्रर्थात् रिविबम्ब केन्द्र से खस्वस्तिक गत-वृत्ता हण्वा हण्या है, रिव केन्द्र से खस्वस्तिक पर्यन्त चाप नतांश चाप है इसकी ज्या हण्ज्या है, तथा रिविबम्ब केन्द्र से हण्वृत्त ग्रीर क्षितिजवृत्त के सम्पात पर्यन्त हण्वृत्तीय चाप उन्नतांश है, इसकी ज्या शङ्कु है। सिद्धान्तशेखर में श्रीपिति, शिष्यधीवृद्धिदतन्त्र में लल्लाचार्य, गोलाच्याय में भास्कराचार्य सब एक ही तरह शङ्कु को कहते है इति ॥६२॥

इदानी प्रकारान्तरेगा तयोः संस्थानं शङ्कृतलंचाह ।

हम्मण्डले नतांशज्या हम्ज्या शङ्कुरुन्नतांशज्या । भ्रकोंदयास्तसूत्राद्दिनशङ्कोदंक्षिगोन तलम् ॥६३॥

सु. भा. - दिनशङ्कोर्दिवाशङ्कोस्तलं मूलमर्कोदयास्तसूत्राइक्षिरोन भवति।

प्रकंग्रहरामुपलक्षराार्थम् ।

शेषं स्पष्टार्थम् । 'दृष्टिमण्डलभवा लवाः कुजात्'—इत्यादिभास्करोक्तमे-तदनुरूपं विचिन्त्यम् ॥६३॥

वि. मा.—हम्वृत्ते यो हि नतांशस्तज्ज्या हम्ज्या कथ्यते, उन्नतांशचापस्य ज्या शङ्कुः । दिवाशङ्कुमूलं रवेष्दयास्तसूत्राद्दक्षिणेन भवित । स्रत्राकंग्रहण्मुपलक्षणार्थम् । रव्युपिर हम्वृत्ते निवेशिते हम्वृत्तिक्षितिजवृत्तयोः सम्पातद्वयगतं सूत्र हक्कुज सूत्रम् । रिव विम्बकेन्द्राद्द्विधर सूत्रोपिर लम्बरेखा हम्ज्या । रिव-विम्बकेन्द्रादेव हक्कुज सूत्रोपिरलम्बरेखा शङ्कुः । शङ्कुमूलाद् भूकेन्द्रपर्यन्तं हक्कुजसूत्रखण्डं तथा नतांशज्यामूलाद् भूकेन्द्रपर्यन्तमूर्ध्विधरसूत्रखण्डं चेति भुजचतुष्टयैरेकं चतुर्भुजं जातम् । स्रत्र शङ्कूर्ध्विधररेखयोः समानान्तरत्वात् नतांशज्या-हक्कुजसूत्र खण्डं च समानान्तरमत इत्यायतं चतुर्भुजम् । तेन हक्कु-जसूत्रखण्डं हम्ज्यासंज्ञकं रिविबम्बकेन्द्राद्ध्विधरसूत्रोपिरलम्बेन नतांशज्या प्रमाणेन समानम् । तथैव शङ्कुरेखा नतांशज्यामूलाद् भूकेन्द्रपर्यन्तं-ऊर्ध्वाधर सूत्र खण्डेन समानेति । स्रत्र लल्लोक्तम्- "स्रम्बरमध्यांशुमतोर्मध्यांशज्या भवेन्नत-ज्या रवे । शङ्कोर्मूलाहिङ्मध्यगामिनी भूतले हम्ज्या।" इति "हिष्टमण्डलभवा लवाः कुजादुन्नता गगनमध्यतो नताः" इत्यादि भास्करोक्तं च सहश-मेवेति ॥६३॥

अब प्रकारान्तर से उन दोनों (हम्ज्या और शङ्कु) की संस्थिति और शङकुतल को कहते हैं।

हि. भा. — हम्बृत्ता में जो नतांश चाप है उसकी ज्या हम्ज्या कहलाती है। तथा उन्नतांश चाप की ज्या शङ्कु कहलाती है। दिवाशङ्कुमूल रिव के उदयास्त सूत्र से दिक्षिण होता है। यहां रिवग्रहण उपलक्षण के लिये है। रिविबम्ब केन्द्र के ऊपर हम्बृत्त करने से हम्बृत्त श्रौर क्षितिज वृत्त के दो स्थानों में जो योग है तद्गत् सूत्र हक्कुज सूत्र है। रिविबम्ब केन्द्र से अर्घ्वाधर सूत्र के ऊपर लम्बरेखा हम्ज्या है रिवि बिम्ब केन्द्र ही से हक्कुज सूत्र के ऊपर लम्ब रेखा शङ्कु। शङ्कुमूल से भूकेन्द्रपर्यन्त हक्कुज सूत्रखण्ड तथा नतांशज्या मूल से भूकेन्द्रपर्यन्त कर्घ्वाधर सूत्र के समानान्तर होने के कारण नतांशज्या श्रौर हक्कुज सूत्रखण्ड समानान्तर हुआ । यहां शङ्कु और अर्घ्वाधर सूत्र के समानान्तर होने के कारण नतांशज्या और हक्कुज सूत्रखण्ड समानान्तर हुआ ग्रतः यह आयत चतुर्भुं ज है। इसलिये हक्कुज सूत्र खण्ड हम्ज्या संज्ञक रिव बिम्ब केन्द्र से अर्घ्वाधर सूत्र के ऊपर लम्बनतांशज्या के बराबर हुआ। उसी तरह शङ्कुसूत्र और नतांशज्यामूल से भूकेन्द्रपर्यन्त अर्घ्वाधर सूत्र खण्ड के बराबर हुआ। यहां 'अम्बरमध्यांशुमतोः' इत्यादि लल्लोक्त तथा 'इिष्टमण्डलभवा लवाः' इत्यादि आस्करोक्त समान ही है इति ॥६३॥

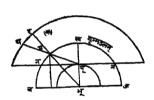
इदानीं हग्गोलस्य दृश्यादृश्यत्वं लम्बनावनत्युत्पत्तौ कारणं चाह ।

# दृश्यादृश्यं दृग्गोलाधं भूव्यासदलविहीनयुतम् । द्रष्टा भूगोलोपरि यतस्ततो लम्बनावनती ॥६४॥

सु. भा.—हग्गोलार्षं हग्मण्डलार्षं भूव्यासदलेन विहीनं कुपृष्ठगानां हश्यं खण्डं भूव्यासदलेन युतं चाहश्यखण्डं भवति । यतो द्रष्टा भूगोलोपिर भूपृष्ठे तिष्ठति ततस्तस्माल्लम्बनावनती भवतः । कुपृष्ठगानां कुदलेन हीनं'—इत्यादि तथा 'यतः क्वर्घोच्छितो द्रष्टा'—इत्यादि भास्करोक्तमेतदनुरूपं विचिन्त्यम् ॥६४॥

वि. भा-—हभ्मण्डलार्घं भूव्यासार्घेन विहीनं तदा भूपृष्ठवासिनां दृश्यं खण्डं भवति । हग्मण्डलार्घं भूव्यासार्घेन युतं तदाऽहृश्य खण्डं भवति । यतो द्रष्टा भूपृ-ष्टोपरि तिष्ठति तस्मात् कारणाल्लम्बनावनती भवेताम् ।

### यथोपपत्तः।



भू = भूकेन्द्रम् । पृ = भूपृष्ठ स्थानम्, चभूज = गर्भ-क्षितिज धरातलम्, नपृम = पृष्ठिक्षितिजधरातलम् । भूपृ = भूव्यासार्धम् । ग्र = हग्मण्डलेग्रहः । नसम = क्षितिजादुपरि हग्मण्डलार्धम् = हश्यसण्डम् ।

भूख = हंग्मण्डलव्यासार्धम् । हंग्मण्डलव्या है - भूपृ =

हग्मण्डलव्या ई—भूव्या ई=पृख, पृ (भूपृष्ठ) स्थितो द्रष्टा हग्मण्डलार्ध (ह्रय-खण्ड) स्थितं ग्र ग्रहं पश्यन्ति । क्षितिजाघो हग्मण्डलार्धम्=ग्रहश्य खण्डम्। = हग्मण्डलव्या ई+भूव्या ई। भू, पृ बिन्दुभ्यां (ग्र) ग्रहगते रेखे नीलाम्बरगो—लीय हग्मण्डले यत्र लग्ने तयोरन्तरं हग्मण्डलीयचापं हग्लम्बनं कथ्यते । यर = हग्लम्बनम् । ग्रख =पृष्ठीयनतांशाः = <ग्र पृख, कोरण्ज्या कोरणोन भाषांशज्ययो-स्तुल्यत्वात् ज्या <ग्रपृख = ज्या (१८० — <ग्रपृख) = पृष्ठीयहग्ज्या = ज्या <ग्रपृभू। भूग्र = ग्रहकर्गाः। तदाऽनुपातेन पृहग्ज्या.भूव्या ई = ज्या < भूग्रपृ = हग्लम्बन-ज्या, यतः < भूग्रपृ = <ग्रग्रर नीलाम्बरगोलस्य केन्द्रं यत्र कुत्रापि कल्पयितुं

ज्या, यतः < भूग्रपृ = < यग्र र नीलाम्बरगोलस्य केन्द्रं यत्र कुत्रापि कल्पयितुं शक्यंते तेन ग्र बिन्दाविप तत्केन्द्रं भिवतुमहिति । ग्रतः < यग्रर = यर चापम् । परं यरचापम् = हग्लम्बनम् । अतः < भूग्रपृ कोग्गोऽपि हग्लम्बनम् । नितश्च हग्लम्बना-धीना । लम्बननत्योक्त्पत्ते : कारणं भूपृष्ठिबिन्दुरेव सिद्धान्तशेखरे हग्मण्डलार्धं यदि होध्वंवित्तग्रहं यतस्तत्परिगाहसंस्थम् । द्रष्टा प्रपश्यत्यवनीतलस्थो भ्रमत्यतः सेच-रसंमुखं तत्।" लल्लश्च-हग्मण्डलमुपरिष्टाद् हष्टः स्यात्तद्वृत्तौ खचरः । श्रीपतेः प्रमाणम् । भास्कराचार्यः-कुपृष्ठगानां कुदलेन हीनं हग्मण्डलार्धं खचरस्य हश्यम् ।

कुच्छन्नलिप्तानुरतो विशोध्याः स्वभुक्तितिथ्यंशमिताः प्रभार्थम् ।'' इति विशेषमा-हेति ।।६४।।

ग्रब हग्गोल के हश्यत्व ग्रौर ग्रहश्यत्व को तथा लम्बन ग्रौर नित की उत्पत्ति के कारए। को कहते है।

हि. भा- हामण्डलार्ध में भूक्यासार्ध घटाने से भूपृष्ठत्थ लोगों का हश्यखण्ड होता है। हामण्डलार्ध में भूक्यासार्ध जोड़ने से श्रहश्य खण्ड होता है। क्योंकि द्रष्टा भूपृष्ठ के ऊपर रहता है इसलिये लम्बन श्रोर नित होती है (श्रर्थात् लम्बन श्रोर नित की उत्पत्ति होती है)।

#### उपपत्ति ।

यहां संस्कृतोपपत्ति में लिखित (क) क्षेत्र को देखिये। भू = भूकेन्द्र, पृ = भूपृष्ठस्थान चभूज = गर्मकितिजधरातल। नपृम = पृष्ठक्षितिजध, भूपृ = भूव्याक्षे = भूव्याक्षे, ग्र = हग्मण्डलं ग्रहः। नखम = क्षितिज से ऊपर हग्मण्डलार्घं = हश्यखण्ड । भूख = हग्मण्डलव्यासार्घ। हग्मण्डलव्याक्षे — भूव्याक्षे = पृत्वा । पृ (भूपृष्ठ) स्थित द्रष्टा हग्मण्डलार्घं (हश्यखण्ड) स्थित (ग्र) ग्रह को देखता है। क्षितिज ग्रधोभाग में हग्मण्डलार्घं = ग्रहश्यखण्ड = हग्मण्डलाव्याक्षे + भूव्याक्षे । भू श्रौर पृ बिन्दुश्रों से ग्र—ग्रहगत भूग्र, पृग्र रेखाद्वय को बढ़ाने से नीलाम्बर गोलीय हग्मण्डलं में जहां लगता है तदन्तगंत हग्मण्डलीय चाप हग्लम्बन कहलाता है। यर = हग्लम्बन ग्रख = पृष्ठियनतांश = < ग्रपृख, कोराज्या ग्रौर कोरागेन भार्धांशज्या बराबर होती है ग्रतः ज्या < ग्रपृख = ज्या (१८० — < ग्रपृख) = पृष्ठियहग्ज्या = ज्या < ग्रपृभ् । भूग = ग्रहकर्गं। तब श्रनुपात से पृहज्या. भूव्याक्षे = ज्या < भूग्रपृ = हग्लम्बनज्या। क्योंकि प्रकर्गं। तब श्रनुपात से पृहज्या. भूव्याक्षे = ज्या < भूग्रपृ = हग्लम्बनज्या। क्योंकि < भूग्रपृ = < यग्रर। नीलाम्बर गोल के केन्द्र जहां तहां मान सकते हैं, ग्रतः ग्र बिन्दु में भी

उसका केन्द्र हो सकता है, भ्रतः < यग्नर = यरचाप, लेकिन यरचाप == हग्लम्बन।

## इदानीं परमलम्बनावनती आह।

क्षितिजे भूदललिप्ताः कक्षायां हङ्नतिर्नभो मध्यात् । ग्रवनतिलिप्ता याम्योत्तरा रविग्रहवदन्यत्र ॥६५॥

सु. मा --- नभोमध्यात् खस्वस्तिकात् कक्षायां ग्रहगोले हग्मण्डले क्षितिजे

या भूदलिबप्ताः कुच्छन्निलप्ताः सा हङ्निति ग्राम्यनं परममुच्यते । स्रवनितिन्ता तत्र हम्मण्डले याम्योत्तरा लम्बरूपा भवित अन्यत्र ग्रह्योर्वा भग्रह्योर्युता-वेवं हम्लम्बननितसंस्थानं विज्ञाय स्पष्टलम्बनादिकं रिवग्रहवत् कार्यमिति । दिग्मा-त्रमिहाचार्येगा प्रदर्शितं ग्रह्युत्यादौ च विशेषतः प्रतिपादितमिति ॥६५॥

वि. भा.—नभोमध्यात् (खस्वस्तिकात्) कक्षायां (ग्रहगोलीयदृग्मण्डले) क्षितिजे या भूदललिप्ताः (भूव्यासार्घकलाः-कुच्छन्नकला वा) सा दृङ्नितः (परमं दृग्लम्बनं) कथ्यते, तत्र दृग्मण्डलेऽवनितकला याम्योत्तरा (लम्बरूपा) भवति । ग्रन्यत्रे (ग्रह्युतौ-भग्रह्युतौ च) वं नितदृग्लम्बनयोः संस्थानं ज्ञात्वा सूर्यग्रह्णवत् स्पष्टलम्बनादिकं सर्वं कार्यमिति ॥६५॥

### श्रत्रोपपत्तिः।

पूर्वश्लोकोपपत्तौ प्रदिशतं दृग्लम्बनज्या स्वरूपम् पृहग्ज्या. भूत्र्या है प्रकर्णा एतत्स्वरूपा वलोकनेन स्फुटमवसीयते यत्पृष्ठीयदृग्ज्याया यत्र परमत्वं भवेत्तत्रैव दृग्लम्बनज्यायाः परमत्वं भवेद्यदि कर्णामानं स्थिरं भवेत् । पृष्ठक्षितिजदृग्मण्डलयोः सम्पातिबन्दौ स्थिते ग्रहे पृष्ठीयदृग्ज्या = त्रि, तदा तत्र परमा दृग्लम्बनज्या = त्रि. भूब्याहै ग्रस्याश्चापं गर्भक्षितिजपृष्ठक्षितिजयोरन्तर्गतं दृग्मण्डलीयचापं ग्रकर्णं कुच्छन्नकलामानम् = परम दृग्लम्बनम् । नतेः परमत्वं वित्रिभे ग्रहे भवति दृग्लम्बनन्तर्योज्ञीनेन स्पष्टलम्बनज्ञानं भवेत्तद्वशतो ग्रह्गुत्यादेर्ज्ञीनं भवतीति ग्रह्गुत्यधिकारा-वलोकनेन स्फूटं भवतीति ॥६५॥

### श्रव परमलम्बन और नित को कहते हैं।

हि. भा.— खस्वस्तिक से ग्रहगोलीय दृग्मण्डल ग्रौर पृष्ठिक्षितिज के योग बिन्दु में जो भूव्यासार्घकला (कुच्छन्नकला) होती है वह परम दृग्लम्बन कला है। उस दृग्मण्डल में नितकला याम्योत्तर (लम्बरूप) होती है। श्रन्यत्र (ग्रह्युति—भग्रह्युति में) इस तरह नित श्रौर दृग्लम्बन की संस्थिति जानकर सूर्यग्रह्णवत् स्पष्टलम्बनादिक सब कुछ साधन करना चाहिये। यहां श्राचार्य ने केवल संकेत मात्र दिखलाया हैं, ग्रह्युत्यादि में विशेषरूप से कहते हैं इति।।६१।।

#### उपपत्ति ।

पूर्वंश्लोक की उपपत्ति में इंग्लम्बनज्या का स्वरूप = पृष्ठिया.भूव्या है इसको देखने ग्रहकर्ण से मालूम होता है कि यदि ग्रहकर्ण को स्थिर माना जाय तब पृष्ठीय इंग्ल्या का परमत्व

जहां होगा वहीं हग्लम्बन का भी परमत्व होगा। परन्तु ज्या परम त्रिज्या के बराबर होती है, पृष्ठीय हग्ज्या त्रिज्या के बराबर पृष्ठिक्षितिज श्रौर दृग्मण्डल के सम्पात बिन्दु में ग्रह के रहने से होती हैं ग्रतः वहीं (पृष्ठिक्षितिज दृग्मण्डल के सम्पात बिन्दु) पर परम दृग्लम्बन (गर्भिक्षितिजघरातल ग्रौर पृष्ठिक्षितिज घरातज के ग्रन्तर्गत दृग्मण्डलीय चाप (कुच्छन्नकला) होता है। नित का परमत्व वित्रिभ स्थान में ग्रह के रहने से होता है। दृग्लम्बन ग्रौर नित के ज्ञान से स्पष्ट लम्बन ज्ञान होता है उसके वश से ग्रह युत्यादि ज्ञान होता है यह ग्रहयुत्यिष-कार देखने से स्पष्ट है इति।।६४।।

## इदानीं हक्कमीह।

# सित्रगृहक्रान्तिरुदग्दक्षिरायोस्त्रिज्यया हृतं वलनम् । विक्षेपगुरामृराधनं ग्रहेऽन्यहक्कर्मचरदलवत् ।।६६।।

सु. भा.—उदग्दक्षिणयोरुत्तरदक्षिणानयनयोः सित्रग्रहक्रान्तिः सित्रभग्रह-क्रान्तिज्या वलनमायनं वलनं भवति । तिद्वक्षेपेण गुणं त्रिज्यया हृतं ग्रहे ऋणं वा घनमायनं हक्कर्म भवति । अन्यद्हक्कर्माक्षजं हक्कर्म चरदलवत् चरसाधनवज्ज्ञे - यम् ।

श्रत्रोपपत्त्यर्थमुदयास्ताधिकारे ३-४ श्लोकयोरुपपत्तिर्विलोक्या । श्रत्रैव चतुर्वेदाचार्येगा 'सत्रिग्रहोत्क्रमज्यया क्रान्तिः साध्ये' त्यन्यथा व्याख्यातमत एव भास्करः 'ब्रह्मगुप्तकृतिरत्र सुन्दरी सान्यथा तदनुगैर्विचार्यंते'—इत्याद्युक्त— वान् ॥६६॥

वि माः - उत्तरदक्षिणायनयोः सित्रभग्रहक्रान्तिज्याऽऽयनं वलनं भवति । तन्मध्यमशरेण गुणं त्रिज्यया भक्तं फलमृणं वा घनमायनं हक्कमं भवति । ग्रन्य- हक्कमं (ग्रक्षजं हक्कमं) चरदलवत् (चरसाधनवत्) बोध्यम् ।।६६।।

### भ्रत्रोपपत्तिः।

ग्रहिबम्बकेन्द्रोपिरगतं कदम्बप्रोतवृत्तं क्रान्तिवृत्ते यत्र लगित तदेव ग्रहस्थानम् । स्थानोपिर ध्रुवप्रोतवृत्तं कार्यं बिम्बकेन्द्रोपर्यहोरात्रवृत्तं कार्यं तदा बिम्बकेन्द्रात्स्थानाविष्ठ मध्यमशर एको भुजः । बिम्बकेन्द्रात्स्थानोपिर ध्रुवप्रोतवृत्तो-परिलम्बो द्वितीयो भुजः । स्थानोपिर ध्रुवप्रोतवृत्ते तृतीयो भुजः । त्रिभुजेऽस्मिन् स्थानगतकदम्बप्रोतवृत्तध्रुवप्रोतवृत्तयोरुत्पन्नः कोगा ग्रायनवलनम् । लम्बवृत्त-स्थानगतध्रुवप्रोतवृत्तयोरुत्पन्नः कोगाः

ह० । तेनानुपातेन

मध्यशरज्या × ग्रायनवलनज्या = लम्बवृत्तीयचापज्या = बिम्बीयाहोरात्रवृत्तीय-

चापज्या परन्तु सत्रिभग्रहक्रांज्या = द्युज्याग्रीयायनवज्या।

मध्यराज्या सत्रिभक्रांज्या <u>मध्यरार. सत्रिभग्रक्रांज्या</u> = विम्बीयाहोरा-

त्रवृचापज्या = बिम्बीयाहोरात्रवृत्तीयचापासवः, इति स्वल्पान्तरात् कलात्वेन स्वीकृता श्राचार्येग्, एतस्य कलात्वेन ग्रहे संस्कारो नोचित इति मत्वापि स्वल्पा-न्तरमवगत्याऽऽचार्येग् लल्लेन च तदेव फलं ग्रहे संस्कृतम् । भास्कराचार्येणे मध्यशः सित्रभग्रकांज्या तन्त्रिज्याग्रे परिगातं कृतं यथा

मध्यरा. सित्रभग्रकांज्या  $\times$ ित्र=नाडीवृत्तीयायन हक्कमीसवः

चार्येग साधितमायन हक्कमं कला प्रमाणं समीचीनं नास्ति, किन्तु श्राचार्योक्तापेक्षया किन्ति समीचीनमस्ति । भास्कराचार्येग श्रायनवलनज्यास्थाने सित्रभग्रहक्रांन्ति-

ज्या न स्वीकृता तदा तदुक्ताऽऽयनदृक्कमंकला = मशरः भ्रायनदलन १८०० एतेन चुः निरक्षोदयासु

"ग्रायनं वलनमस्फुटेषुगां सङ्गुगां द्युगां भाजितं हतम् । पूर्णं पूर्णंधृतिभिर्ग्रहाश्रित व्यक्षभोदयहृदायनाः कलाः ।" भास्तरोक्तमिदमुपपद्यते । सिद्धान्तशेखरे
"विक्षेप सित्रभखगोत्क्रमजाऽपमज्याघाते गृहत्रयगुगोन हृते कलास्ताः । शोध्या—
स्तयोः समदिशोः खचरेषु देया भिन्नांशयोभंवित हिन्विधिरेष पूर्वः ।" श्रोपितनैवं
कथ्यते । लल्लाचार्येगा सित्रभग्रहक्रान्तिज्या स्थाने सित्रभग्रहक्रान्त्युत्क्रमज्या
स्वीकृता, श्रीपितरिप बहुघाऽऽचार्यं (ब्रह्मगुप्त) मतानुसरणं कुर्वन्निप कुत्रचित्
स्थले लल्लोक्तमिप मतान्तरं स्वीचकार, तदत्रापि लल्लोक्तवत् सित्रभग्रहक्रान्तिज्यास्थाने तदुत्क्रमज्यां स्वीकृतवान् । क्रान्तेवंलनस्य च यद्येकैव दिक् यथा क्रान्तिः
श्रेरक्च यद्युत्तरिदक्कौ दक्षिणदिक्कौ वा भवतस्तदा शरेगोन्नामितो यावत् क्षितिजे
नीयते तावत् क्रान्तिवृत्तग्रहस्थानात् पृष्ठतः क्रान्तिवृत्तं क्षितिजे लगित तत्तत्र
फलमृगाम् । भिन्नदिक्कयोवंलनशरयोश्चेतद्विपरीतमतस्तत्र घनिमिति ॥६६॥

### श्रब हक्कमें को कहते हैं।

हिः भा - अत्तरायण ग्रौर दक्षिणायन में सित्रभग्रह क्रान्तिज्या ग्रायनवलन होती है। उसको मध्यमशर से गुणाकर त्रिज्या से भाग देने से फल ऋण वा घन ग्रायनदक्कर्म होता है। ग्रन्य दक्कर्म (श्राक्षदक्कर्म) चरखण्ड साधन की तरह समक्षना चाहिये इति ॥६६॥

#### उपपत्ति ।

ग्रहिबम्बकेन्द्रोपरिगत कदम्बप्रोतवृत्त क्रान्तिवृत्त में जहां लगता है वह ग्रह स्थान है। स्थानोपरिगत ध्रुबप्रोतवृत्त कर देना। बिम्ब केन्द्र के ऊपर ग्रहोरात्र वृत्त कर देना तब विम्बकेन्द्र से रथानपर्यन्त मध्यमशर एक भुज बिम्बकेन्द्र से स्थानोपरिगत ध्रुवप्रोतवृत्त के ऊपर लम्बवृत्त करने से लम्बवृत्तीय चाप द्वितीय भूज । लम्बन से स्थान पर्यन्त तृतीय भज इन तीनों भुजों से उत्पन्न त्रिभुज में स्थानगत कदम्बप्रोतवृत्त श्रीर ध्रुवप्रोतवृत्त से उत्पन्न कोए। ग्रायनवलन है। स्थानगतध्रुवप्रोतवृत्त ग्रौर लम्बवृत्ता से उत्पन्न कोए। = ६०, तब भ्रनुपात से <u>मध्यमशरज्याः भ्रायनवलनज्या</u> = <u>मध्यमशरः सत्रिभग्रहक्रान्ति</u> = लम्बवृ-त्तीयभापज्या — बिम्बीयाहोरात्रवृत्तीय चापज्या — बिम्बीयाहोरात्रवृत्तीयभापासु — बिम्बीया-होरात्रवृत्तीय चापकला स्वल्पान्तर से श्राचार्य स्वीकार करते हैं । इसकी कलात्व से ग्रह में संस्कार करना उचित नहीं है इस बात को मान करके भी स्वल्पान्तर समक्ष कर त्र्प्राचार्य और लल्लाचार्य उसी फल का ग्रह में संस्कार किया है। भास्कराचार्य मध्यमशर आयनवलन त्रि इसको त्रिज्याग्र में परिरात किया है जैसे मध्यशर. श्रायनवलन. त्रि = नाड़ीवृत्तीयायन-दक्कर्मासु — <u>मध्यमशर. ग्रायनवलन</u>, यहां स्वल्पान्तर से विम्बीयद्यु —स्थानीयद्यु — इस फल को ग्रह संस्कार योग्यत्व 'यदि ग्रहाश्चित राशि के निरक्षोदय।सु में राशिकला १८०० पाते हैं तो इन असुओं में क्या इससे आयनहक्कमें कला आती है उसका स्वरूप मध्यशर. ग्रायनवलन :< १८०० , किया है इससे भास्करोक्त 'ग्रायन' वलनमस्फुटेषुगा द्यु, निरक्षोदयासु सङ्गुरां' इत्यादि संस्कृतोपपत्ति में लिखित पद्य उपपन्न होता है। सिद्धान्तकोखर में 'विक्षेप सित्रम खगोत्क्रमज्याऽपमज्या' इत्यादि से श्रीपति प्रकार ग्राचार्योक्त प्रकार से भिन्न है । लल्लाचार्य ने सित्रभग्रह क्रान्तिज्या स्थान में उसकी उत् क्रममज्या ली है श्रीपति ने भी लल्लो- 🙍 क्तवत् सित्रभग्रह क्रान्तिज्या स्थान में उसकी उत्क्रमज्या को स्वीकार किया है। बहुत स्थानों में ब्राचार्यमत को ब्रनुसरएा करते हुए कहीं कहीं लल्लोक्त को भी श्रीपति ने स्वीकार किया है यहां भी लल्लोक्तवत् सित्रभग्रहकान्तिज्यास्थान उसकी उत्क्रमज्या को स्वीकार किया है। यदि क्रान्ति स्रोर वलन की एक दिशा हो यथा क्रान्ति स्रोर शर यदि उत्तर दिशा का है वा दक्षिए। दिशा का तब शर से उन्नामित ग्रह जब क्षितिज में श्राते हैं तावत् क्रान्तिवृत्त ग्रह स्थान से पृष्ठ ही क्रान्तिवृत्त क्षितिज में लगता है वहां फल ऋएा होता है। शर ग्रीर वर्लन की दिशा भिन्न रहने से विपरीत होता है अतः वहां फल धन होता है इति ॥६६॥

### इदानीं ग्रहर्क्षगोलयोः स्थिरवृत्तान्याह ।

# कक्षा मण्डलतुल्यं प्राच्यपरं दक्षिगोत्तरं क्षितिजम् । उन्मण्डलविषुवन्मण्डले स्थिराग्गि ग्रहर्कागाम् ॥६७॥

सु. भा.—पूर्वापरम् । दक्षिणोत्तरम् । क्षितिजम् । उन्मण्डलम् । विषुवन्म-ण्डलम् । सर्वं कक्षामण्डलतुल्यं समानं महद्वृत्तं च ज्ञेयम् । ग्रहक्षीणां गोलयोरेता-नि स्थिराणि वृत्तानि सन्तीति ॥६७॥

वि. भा-—प्राच्यपरं (पूर्वापरम्), दक्षिणोत्तरं (याम्योत्तरम्), क्षितिजम्, उन्मण्डलम्, विषुवन्मण्डलम् (नाड़ीवृत्तम्) सर्वं कक्षामण्डल (क्रान्तिवृत्त) तुल्यं महद्वृत्तं चेति, ग्रहाणां—नक्षत्राणां चैतानि पञ्चवृत्तानि स्थिराणि कथि-तानि ॥६७॥

श्रव ग्रहगोल ग्रौर नक्षत्र गोल में स्थिर वृत्तों को कहते हैं।

हि. भा- पूर्वापरवृत्ता, याम्योत्तारवृत्ता, क्षितिजवृत्ता, उन्मण्डल, नाड़ीवृत्ता ये सब (पांच) वृत्ता कक्षावृत्त (क्रान्तिवृत्ता के बराबर महद्वृत्ता हैं) ग्रहों के ग्रीर नक्षत्रों के ये पांच स्थिरवृत्ता कथित हैं इति ॥६७॥

### इदानीं ग्रहाणां चलवृत्तान्याह।

मन्दोच्चानां सप्तोच्चनीचवृत्तानि पश्चशीघ्राणाम् । प्रतिमण्डलानि चैवं प्रत्येकं भास्करादीनाम् ॥६८॥ दृग्मण्डलविक्षेपापममण्डलानि क्षपाकरादीनाम् । षद्कं विमण्डलानां चलवृत्तान्येकपश्चाञ्चत् ॥६९॥

सु. भा.—मन्दनीचोच्चवृत्तानि =७
भौमादीनां शीघ्रनीचोच्चवृत्तानि =५
मन्दप्रतिवृत्तानि =७
शीघ्रप्रतिवृत्तानि =५
हग्मण्डलं हक्क्षेपमण्डलं कक्षामण्डलं
चेति सप्तानां ग्रहाणाम् =२१
चन्द्रादीनां षड्विमण्डलानि =६

एवं चलवृत्तान्येकपञ्चाशत् सन्तीति ॥६८-६९॥

वि. भा.—रव्यादिग्रहाणां मन्दोच्चनीचवृत्तानि = ७, भौमादिपञ्चकाना-मेव ग्रहाणां शीघ्रोच्चत्वात् शोघ्रनीचोच्चवृत्तानि पञ्च=५, ग्रहाणां मन्दप्रति- वृत्तानिः ७, शी घ्रप्रतिवृत्तानि = ५, दृग्वृत्तं, दृक्क्षेपवृत्तं कक्षावृत्तं चेति रव्यादि-ग्रहाणामेकिविशतिः = २१, रिवं विनैव चन्द्रादिग्रहाणां विमण्डलानि = ६, सर्वेषां योग एकपश्चाशत् ५१ संख्यकानि चलवृत्तानि सन्तीति । सिद्धान्तशेखरे "मन्दोच्च-नीचवलयानि भवन्ति सप्त शैर्घ्याणा पश्च च तथा प्रतिमण्डलानि । दृक्क्षेप दृष्ट्य-पमजानि च सेचराणामकं विनैव खलु षट् च विमण्डलानि । पश्चादशेकसहितानि च मण्डलानि पूर्वापरं वलयमुत्तरदक्षिणांच । क्ष्माजं तथा विषुवदुद्दलयाभिधाने पञ्चस्थिराणि कथितान्युडु सेचराणाम् ।" इत्यनेन श्रीपतिनाऽऽचार्योक्तानुरूपमेव कथितम् ॥६९॥

# भ्रव ग्रहों के चलवृत्तों को कहते हैं।

हि. भा.—रव्यादि ग्रहों के मन्दोच्चनीच वृत्त सात ७ हैं, भौमादि पांच ग्रहों के शीझनीचोच्चवृत्ता ॥ ५, रव्यादि ग्रहों के मन्दप्रतिवृत्ता ॥ ७, भौमादिग्रहों के शीझप्रतिवृत्ता ॥ ५, हग्वृत्त, हक्षेपवृत्ता, ग्रौर कक्षावृत्ता ये सात ग्रहों के ॥ २१, चन्द्रादिग्रहों के विमण्डन ॥ ६, सबों के योग ॥ ५१, एतत् संख्यक चलधृत्त है सिद्धान्तशेखर में 'मन्दोच्च नीचवलयानि भवन्ति सप्त' इत्यादि विज्ञान भाष्य में लिखित श्लोकों से श्रीपित ने ग्राचार्योक्त के ग्रमुख्य ही कहा है इति ॥ ६ ६ - ६ ६॥

# इदानीमध्यायोपसंहारमाह।

# यत् स्पष्टीकरणाद्यं गोलादुत्प्रेक्ष्य तत् कृतं सर्वम् । गोलाष्यायः सप्तत्यार्याणामेकविशोऽयम् ।।७०।।

सु. भा.—इह मया यत्स्पष्टीकरणाद्यं सर्वं कृतं तद्गोलादुत्प्रेक्ष्यावगम्य कृतमतः सर्वं सयुक्तिकं ज्ञेयमिति । शेषं स्पष्टार्थंम् ।

मधुसूदनसूनुनोदितो यस्तिलकः श्रीपृथुनेह जिष्णुजोक्ते । हृदि तं विनिधाय नूतनोऽयं रचितो गोलविवौ सुधाकरेण ।

इति श्रीकृपालुदत्तसूनुसुघाकरद्विवेदिविरचिते ब्राह्मस्फुटसिद्धान्तनूतनित-लके गोलाघ्यायो नामैकविंशोऽघ्यायः॥२१॥

वि. गाः—मया स्पष्टीकरगाद्यं यत् सर्वं कृतं तद्गोलादवगम्य कृतम् । श्रयमार्याणां सप्तत्यैकविशो गोलाध्यायोऽस्तीति ॥७०॥

इति ब्राह्मस्फुटसिद्धान्ते गोलाध्यायो नामैकविंशतितमोऽध्यायः ॥२१॥

### ग्रब भ्रध्याय के उपसंहार को कहते हैं।

हि. मा.—स्पष्टीकरण मादि जो कुछ हमने किया है वह सब गोल से समक्ष कर किया है, इसलिये इन सबों को धुक्ति युक्त समक्षना चाहिये। सत्तर स्रायि मो का यह इक्कीसबां गोलाच्याय है इति ॥७०॥

इति ब्राह्मस्फुटसिद्धांत में गोलाध्याय नामक इक्कीसवां ग्रध्याय समाप्त ।

# ब्राह्मस्फुटसिद्धान्तः

यन्त्राध्यायः

# ब्राह्मस्फुट**सिद्धान्तः**

म्रथ यन्त्राध्यायः प्रारभ्यते ।

तत्र प्रथमं गोल प्रशंसामाह ।

मध्याद्यमिह यदुक्तं तत् प्रत्यक्षमिव दर्शयित यस्मात् ।

तस्मादाचार्यत्वं गोलविदो भवति नान्यस्य ॥ १ ॥

सु. भा.—यस्मादिह सिद्धान्ते यन्मध्याद्यं गिएतिमुक्तमस्ति तत् सर्वं गोल-वित् प्रत्यक्षमिव दर्शयति तस्माद्गोलविद एवाचार्यत्वं भवति नान्यस्येति ॥१॥

नि. भा.—यस्मात् कारणादिह सिद्धान्तग्रन्थे ग्रहाणां मध्याद्यं गिणतं यदुक्त (कथित) मस्ति तत्सर्वं गोलवित् प्रत्यक्षमिव दर्शयित, तस्मात्कारणाद्
गोलविद ग्राचार्यत्वं भवति, ग्रन्यस्य नेति ॥ १॥

ग्रव यन्त्राच्याय प्रारम्भ किया जाता है। उसमें पहले गोल प्रशंसा कहते हैं।

हि. भा.— जिस कारण से इस सिद्धान्त ग्रन्थ में ग्रहों के मध्यादि गणित जो कथित है उन सबों को गोलवेता (गोल को जानने वाले) प्रत्यक्ष के तरह दिखलाते हैं, इस कारण से गोलवेता ही को श्राचार्यत्व होता है, ग्रन्य किसी को ग्राचार्यत्व नहीं होता है प्रयात् गोल को जानने वाले ही ग्राचार्य होते हैं दूसरे नहीं ॥ १॥

इदानीं स्वगोलग्रथने कारएां कथयति।

म्राचार्येर्न ज्ञातः श्रीवेग्गार्यभद्दविष्णुचन्द्राचैः । गोलो यस्मात् तस्मात् बाह्यो गोलः कृतः स्पष्टः ॥ २॥

सु० भा० — यस्मात् श्रीषेगार्यभटविष्णुचन्द्राद्यैगींलो न ज्ञातस्तस्मान्मयाऽयं ब्राह्मो गोलः स्पष्ट कृत इति ॥ २ ॥ वि. भा.—यस्माद्धे तोः श्रीषेगार्यभटविष्णुचन्द्राद्यैराचार्येगीलो न ज्ञात-स्तस्मान्मयाऽयं ब्राह्मो गोलः स्पष्टः कृत इति ॥ २ ॥

### श्रब श्रपनी गोल रचना के कारए। कहते हैं।

हि. भा.—क्योंकि श्रीषेण-आर्यभट-विष्णु-चन्द्र आदि आचार्य गोल को नहीं समभे इसलिये हमने इस ब्राह्म गोल को स्पष्ट किया है इति ॥ २ ॥

इदानीं गिएत गोलयोः प्रशंसामाह ।

# गिर्णतज्ञो गोलज्ञो गोलज्ञो ग्रहगींत विजानाति । यो गिर्णतगोलबाह्यो जानाति ग्रहगींत स कथम् ॥ ३॥

सुः भाः—यो गिएतज्ञः स गोलज्ञो भवति (गोलस्य गिएतक्षेत्रान्तर्गतत्वात्)। यो गोलज्ञः स एव ग्रहगति विशेषेएा जानाति । तस्माद्यो गिएतगोलबाह्योऽस्ति स कथं ग्रहगति जानाति । न जानातीत्यर्थः ॥ ३ ॥

वि. भा.—यो गिएतिज्ञः स गोलज्ञो भवति (गोलस्य गिएतिन्तर्गतत्वात्), यो गोलज्ञः स ग्रहगिति विजानाति । सिद्धान्तिशिरोमरोगोलाध्याये "दृष्टान्त एवा-विनभग्रहार्णां संस्थानमानं प्रतिपादनार्थम् । गोलः स्मृतः क्षेत्रविशेष एषः प्राज्ञै-रतः स्याद् गिर्णतेन गम्यः ॥" भास्कराचार्येणाप्येवमेव कथ्यते । यो गिर्णतगोल-'बाह्योऽर्थाद् गिर्णतं गोलं च न जानाति स ग्रहगिति कथं जानाति । कथमि न जानातीति ॥ ३ ॥

### अब गिएत और गोल की प्रशंसा करते हैं।

हि. मा.—जो गिएत जानते हैं वे गोल को भी जानते हैं क्योंकि गोल-गिएतक्षेत्र परिधि के अन्तंगत है; जो गोल जानते हैं वे ग्रहगित को जानते हैं; सिद्धान्त-शिरोमिए के गोलाध्याय में 'इष्टान्त एवावनिभग्रहाएां' इत्यादि विज्ञान भाष्य में लिखित क्लोक से भास्कराचार्य ने भी आचार्योक्त के अनुरूप ही कहा है, जो गिएत और गोल नहीं जानते हैं वे ग्रहगित को कैसे जानेंगे अर्थात् िसी तरह भी नहीं जान सकते हैं इति ॥ ३॥

# इदानीं यन्त्राध्यायारम्भप्रयोजनमाह।

गोलस्य परिच्छेदः कत्तुँ यंन्त्रैविना यतोऽशक्धः। संक्षिप्तं स्पष्टार्थं यन्त्राध्यायं ततो वक्ष्ये ॥ ४ ॥

सु. मा. - यतो यन्त्रैर्विना गोलस्य परिच्छेदः सम्यग्विचारः कर्त् ग्राकोऽ-

शक्यो भवति ततो गोलस्य स्पष्टार्थं संक्षिप्तं यन्त्राध्यायमहं वक्ष्य इत्याचार्योक्तिः।। ४॥

विः भाः —यतो यन्त्रैविना ज्यौतिषिको गोलस्य परिच्छेदः (यथार्थक्षेग्ण विचारः) कर्त्तुं मसमर्थो भवति, तस्माद्धे तोर्गोलस्य स्पष्टार्थं संक्षिप्तं यन्त्राध्यायमहं वक्ष्ये ॥ सिद्धान्तशेखरे "शक्यः परिच्छेदविधिविधातुं यन्त्रैविना नो समयस्य तज्ज्ञैः । तेषां स्वयंवाहक पूर्वकाणामतः प्रवक्ष्ये खलु लक्षणानि ॥" श्रीपितिनैवं यन्त्राध्यायारम्भप्रयोजनं कथ्यते । सिद्धान्त शिरोमगोर्गोलाध्याये भास्कराचार्योऽपि श्रीपत्युक्तसदृशमेव कथयति—

"दिनगतकालावयवा ज्ञातुमशक्या यतो विना यन्त्रैः । वक्ष्ये यन्त्रािण ततः स्फुटानि संक्षेपतः कतिचित् ॥" सर्वेस्मिन् ज्यौतिषसिद्धान्तग्रन्थे यन्त्राध्यायो भवत्येवेति ॥ ४॥

ग्रंब यन्त्राध्याय ग्रारम्भ करने के कारए। कहते हैं।

हि. भा.—यन्त्रों के बिना ज्यौतिषिक लोग गोल का विचार अच्छी तरह करने में असमर्थ होते हैं। इसलिए गोल की स्पष्टता के लिए संक्षेरूप से यन्त्राध्याय को मैं कहता हूं। सिद्धान्त शेखर में "शक्यः परिच्छेदविधिविधातु यन्त्रीविना नो समयस्य तज्ज्ञैः" इत्यादि विज्ञानभाष्य में लिखित श्लोकोक्त अनुसार यन्त्राध्याय आरम्भ करने के कारण कहते हैं। सिद्धान्त शिरोमिण के गोलाध्याय में भास्कराचार्य भी श्रीपत्युक्त के सदृश ही कहते हैं। 'दिनगत कालावयवा ज्ञातुमशक्या यतो विना यन्त्रैः' इत्यादि। सब ज्यौतिष सिद्धान्त ग्रन्थों में यन्त्राध्याय होता ही है इति ॥ ४॥

इदानीं तन्त्राणि यन्त्रोपकरणानि चाह।

सप्तदश कालयन्त्राण्यतो घनुस्तुर्यंगोलकं चक्रम् । यिष्टः शङ्कुर्घटिका कपालकं कर्त्तरो पीठम् ॥४॥ सिललं भ्रमोऽवलम्बः कर्णश्रद्याया दिनार्घमर्कोऽक्षः । नतकालज्ञानार्थं तेषा संसाधानान्यष्ट्रौ ॥६॥

सु. भा.—यतो घनुर्यन्त्रम् । तुर्यगोलं तुरीयम् । चक्रयन्त्रम् । यष्टिः । शङ्कुः । घटिका घटीयन्त्रम् । कपल्यन्त्रम् । कर्त्तरी । पीठसं यन्त्रम् । सिललं जलम् । म्रमः शागः । अवलम्बोऽवलम्बस्त्रम् । कर्णश्लायाकर्णः । छाया शङ्कुच्छाया । दिनाधं दिनाधंमानम् । अर्कः स्यः । अक्षः पलांशाः । अतो नतकालज्ञानार्थं सप्त-दश कालयन्त्रागि सन्ति । तेषां यन्त्रागां मध्ये सिललादीन्यष्टौ यन्त्रसंसाधनानि यन्त्ररचनाम्लभूतानि सन्ति ।।५–६॥

वि. भा.—यतोषनुर्यन्त्रम्, तुर्यगोलकं (तुरीययन्त्रम्), चक्रं (चक्रयन्त्रम्), यष्टिः, शङ्कुः, घटिका (घटीयन्त्रम्), कपालकं (कपालयन्त्रम्), कर्त्तरी यन्त्रम् । पीठ संज्ञकं यन्त्रम् । सिललं (जलम्), भ्रमः (शागाः), श्रवलम्बः (श्रवलम्बसूत्रम्), कर्णः (छायाकर्णः), छाया (शङ्कुछाया), दिनार्षं (दिनार्थमानम्), श्रकः (सूर्यः), श्रक्षः (ग्रक्षांशाः), नतकालज्ञानार्थं सप्तदशकाल यन्त्राणा सन्ति, तेषां यन्त्राणां मध्ये सिललं भ्रम इत्यादीनि-ग्रष्टौ यन्त्रसंसाधनानि (यन्त्र निर्माणोपकरणानि) सन्तीति ॥५-६॥

# श्रव यन्त्र और यन्त्रोपकरण कहते हैं।

हि. मा. — धनुर्यन्त्र, तुर्यगोलक (तुरीय) यन्त्र, चक्र (चक्र) संज्ञक यन्त्र, यिष्ट, शङ्कु, घटिका (घटी) यन्त्र, कपाल यन्त्र, कत्तंरीयन्त्र, पीठसंज्ञकयन्त्र, सिलल (जल), अम (शार्ग), अवलम्ब (अवलम्ब सूत्र), छायाकर्ग्, शङ्कुच्छाया, दिनार्धमान, सूर्य, अक्षांश, नतकालज्ञान के लिये सत्रह काल यन्त्र हैं, उन यन्त्रों में जल, अम आदि आठ यन्त्ररचना— मूल भूत हैं इति ।। ५-६।।

# इदानीं सलिलादीनां कि प्रयोजनिमत्याह।

# सिललेन समं साध्यं भ्रमेगा वृत्तमवलम्बकेनोर्ध्वम् । तिर्येक् कर्गोनान्यैः कथितैश्च नव प्रवक्ष्यामि ॥७॥

सु० भा० — सिललेन समं साम्यं साध्यम् । भ्रमेण शागोन वृत्तं साध्यम् । अवलम्बकेनोध्वं मूर्ध्वाघरत्वं साध्यम् । कर्णोनान्यैः कथितैश्छायादिभिश्च यन्त्रस्य तिर्यंक् तिर्यंक्तवं साध्यम् । एवमविश्वष्टानि नव यन्त्राणि प्रवक्ष्याम्यहिमत्याचा-योक्तिः ।।७।।

वि. भा-सिललेन (जलेन), समं ( भुवः साम्यं ) साध्यम् । भ्रमेगा (शागोन), वृत्तं साध्यम् । भ्रवलम्बकेन यन्त्रे उध्वधिरत्वं साध्यम् । कर्गोन, भ्रन्यैः कथितैश्लायादिभिश्च यन्त्रस्य तिर्यक्तवं साध्यम् । एवमविशष्टानि नव यन्त्राण्यहं प्रवक्ष्यामि । सिद्धान्तशेखरे—

"अद्भिः समाभूवंलयं भ्रमात् त्र्यस्त्रं च कर्णाच्चतुरस्रयुक्तम् । लम्बोऽघ कर्घ्वार्जवसिद्धये स्यात् बीजानि तैलाम्बुरसाः ससूत्राः ॥" श्रीपितनैवं कथ्यते । ससूत्राः तैलाम्बुरसा बीजानि भवन्ति, तत्र सूत्रं मुख-विवराद्वालुकादिनिःसरणार्थं लोहतन्तुरूपम् । तैलं तथा श्रम्बु (जलं), रसाः (पारदाः), एतानि बीजानि श्रादि कारणानि सन्तीति । शिष्य धीवृद्धिद तन्त्रे लल्लश्च—

"इष्टं सुवृत्तवलयं लघुशुष्कदारु निर्मापितं विविध शिल्पवदाततक्ष्णा । गोलं समं सलिल नैलवृषाङ्कवीजैः कालानुसारिएाममुं भ्रमयेत् स्वबुद्धघा त्रिशत्पलं तरित यद्रसतैलकेषु तत्सार्यते त्रिभिरिदं स्ववहस्य वीजम् । वृत्ते भ्रमात् त्रिचतुरस्रमुपैतिकर्णार्लम्बाच्च सिद्धिमधऊर्ध्वमिला समाद्भिः

यान्युपकरणानि तद्वशेन यथैव स्वयंवहयन्त्रनिर्माणं च प्रतिपादयतस्ता-न्येवोपकरणानि तथैव स्वयंवहयन्त्रनिर्माणं च श्रीपतेरिभप्रतिमिति स्फुटं प्रतीयमानेऽपि तदुक्तचा न सर्वं स्फुटीभवतीति विवेचकैर्विवेचनीयम् ॥ ७ ॥

# श्रव सलिला (जल) दि से क्या किया जाता है कहते हैं।

हि. मा.—जल से पृथ्वी को बराबर करना चाहिये। शागा से वृत्त साधन करना चाहिए। ग्रवलम्ब सूत्र से यन्त्र में ऊर्घ्वांघो भाव विदित होता है। कर्गा से ग्रीर कथित छायादियों से यन्त्र का तिर्यक्त्व (तिरछापन) साधन करना चाहिये। एवं ग्रवशिष्ट नौ यन्त्रों को मैं कहता हूं।।

सिद्धान्त शेखर में 'म्रद्भिः समा भूर्वलयं भ्रमात्तु' इत्यादि विज्ञान भाष्य में लिखित श्लोकोक्त के मनुसार श्रीपति ने कहा है। शिष्य धीवृद्धिदतन्त्र में लल्लाचार्यं—'इष्टं सुवृत्त-वलयं लघुशुष्कदारु निर्मापितं' इत्यादि विज्ञान भाष्य में लिखित श्लोकों के मनुसार कहा है इति ।। ७ ।।

# इदानीं धनुर्यन्त्रमाह।

धार्यं धनुस्तथाऽन्यत् छाया साम्यं यथोन्नता भागाः। दिनगतशेषाः घटिकाः स्वलम्बभुक्ता धनुर्मध्या ॥ ८ ॥

सु. भा.— घनुर्यन्त्रं तथा घार्यं यथाऽन्यत् छायासाम्यं भवेत् । ग्रत्रैतदुक्तं भवित । यस्मिन् दिने घनुर्यन्त्रेण् कालज्ञानमभीष्टं तिह्नसम्बन्धिकान्तिचरादिना प्रतिघटिकोन्नत कालवशेन घनुर्यन्त्रकेन्द्रस्थापितेष्टप्रमाणकीलस्य छायाः प्रसाध्य स्वस्वोन्नतकालसम्मुखेऽङ्कचाः । इष्टदिने तथा घनुर्धार्यं यथा कीलच्छायाधनुरग्रयो-रन्तरे परिधौ कीलच्छायासंबंधि गिणतागतशङ्कभागसमा भागाः स्युस्तथा घृते वाऽवलम्बोऽपि हक्सूत्राकारो लगित । ग्रतो घनुर्मध्यात् स्वलम्बभुक्ता भागा रवे-

रुन्नता भागास्तथा तत्राङ्कित उन्नतकालश्च पूर्वापरकपालयोदिनगतशेषा घटिकाः स्युः ।

अत्रोपपत्तिः । गोलयुक्त्यैव स्फुटा ॥८॥

वि. भा- धनुर्यन्त्रं तथा घार्यं यथाऽन्यत् छायासाम्यं भवेदर्थात् क्रान्तिवर्शन 'अक्षप्रभासंगुिर्गतापमज्या तद्द्वादर्शाशो भवित | क्षितिज्येत्यादिना चरज्या साध्या, तथेष्टराङ्कोरिष्टहृतेर्ज्ञानम्, इष्टहृतेरिष्टान्त्या, ततरचरज्या संस्कारेग्रा सूत्रज्ञानं तत उन्नतकालावबोधः सम्यग्भवत्येवं प्रतिघटिकोन्नतकालवर्शन धनुर्यन्त्रकेन्द्रे स्थापितस्येष्टप्रमाणकीलस्य छायाः प्रसाध्य स्वस्वोन्नतकाल-संमुखेऽङ्कृतीयाः । धनुर्यन्त्रमभीष्टदिने तथा धार्यं यथा कीलच्छाया धनुरग्रयो-रन्तरे परिभौ कीलच्छायासम्बन्धिगिर्गतागतशङ्कुभागसमा भागाः स्युस्तथा धृते सति अवलम्बोऽपि हक्सूत्राकारो लगित, धनुर्मध्यात् स्वलम्बभुक्ता भागा रवेष्टनतभागास्तत्राङ्कित उन्नतकालक्च पूर्वापरकपालयोदिनगतशेषघटिकाः स्युरिति ॥

सिद्धान्तशेखरे गोलयन्त्रेण दिनगतघटिका दिनशेषघटिकाश्च निम्न-लिखित प्रकारेण श्रीपितना ग्रानीताः—

चक्रांशाङ्कं क्रान्तिवृत्तं विधेयं उर्वीवृत्तं याम्यवृत्तं च तद्वत् ।
नाड़ीवृत्तं षिटभागाङ्कितं हि याम्योदक्स्था यिष्टरुर्वीजमध्ये ॥
कार्यं खगोलस्य दृढ्स्य मध्ये भगोलमेतत् परितस्तथा च ।
यन्त्रांशके तिग्मकरो ऽपवृत्ते क्षिपेच्छलाकामिह तत्र भागे ॥
तान्नाड़िकावृत्तगतां विधाय समुद्गमात् सूर्यंवशेन भूजात् ।
तदीयभा केन्द्रगता यथा स्यात् स खम्बुनाडचा भ्रमयेत्तथैव ॥
पातङ्गचिह्नक्षितिजान्तरस्थाः समुद्गतांशा गर्गकर्निनरुक्ताः ।
नाडचः शलाका कुजयोस्तु मध्ये समुन्नतास्ता नियतं भवन्तीति ॥

व्याख्या—षष्टचिवकशतत्रयांशैः समानैश्विह्नितं क्रान्तिवृत्तं विधेयम्। तद्वत् ं समषष्टचिवकशतत्रयांशैश्विह्नित्तमेव क्षितिजवृत्तं याम्योत्तरवृत्तं च विधे- यम्। नाड़ीवृत्तं षष्टिभागाङ्कितं विधेयम् । क्षितिजवृत्तस्य केन्द्रे दक्षिग्गोत्तर- विन्द्वोर्गता यष्टि (सुसरलससारदाष्ट्रिनिमता यष्टिका) र्घार्या, गोलकेन्द्ररूपे क्षित्तिजवृत्तकेन्द्रे दक्षिग्गोत्तरसमस्थानरूपयोर्गता च यष्टिः कार्यत्यर्थः। दृद्धस्य (कठिनमाबद्धस्य) खगोलस्य (सममण्डल-याम्योत्तर मण्डलादिनिमितस्य गोलस्य) केन्द्रे तथा समन्ततः एतत् अनन्तरोक्त क्रान्तिवृत्त-क्षितिजवृत्त-याम्योत्तरवृत्त, नाड़ीवृत्तात्मकं भगोलं कार्यम्। इह भगोले क्रान्तिवृत्ते यत्रांशके (यिस्मन्नंशे) सूर्यं-

स्तिस्मिन्नंशे शलाकां (दारवीं लोहसंभवां वा) क्षिपेत् (दद्यात्)। तां शलाकां नाड़ीवृत्तसंलग्नां कृत्वा कथमित्याह । उदयक्षितिजात् सूर्यवशेन । तस्याः शला-कायाश्खाया यथा केन्द्रगतास्यात् तथा यन्त्रं भ्रमयेत् । पातङ्गं चिह्नं (शलाकया-क्षिप्तं रिविचह्नमिति तथा क्षितिजं च तयोरन्तरस्था ग्रंशा गराकैः क्षितिजादुन्न-तांशाः कथिताः । शलाकाक्षितिजयोर्मध्ये शलाकासंसक्तनाड़ीवृत्तस्य क्षितेज-वृत्तस्य च मध्ये नाडचो घटिकायास्ता समुन्नता नाडचो भवन्ति । दिनगत-घटिका दिनशेषा वा घटिका भवन्तीत्यर्थः ।

श्रीपत्युक्तं गोलयन्त्रद्वारे ए। रवेरुन्नतांशज्ञानं-उन्नतघटिकाज्ञानं च लल्लोक्तस्य-

श्रथ लग्नकाल सिद्धचै पूर्वापर परिकरोत्तरैर्नविभः।
निर्मापयेद् भगोलं प्राग्विधिना क्रान्तिवृत्तिमिह।।
तस्य बहिश्च खगोलं समवृत्तिक्षितिजदक्षिगोत्तरगैः।
उन्मण्डलेन च तथा ध्रुवयष्टचा पूर्ववत् सभुवा॥
षष्टचाङ्कयेद् भगोलं प्रागपराणीतराणि चक्रांशैः।
कुर्याद् दृढं खगोलं श्लथं भगोलं च निलकाभ्याम्॥
यस्मिन्नंशे सिवता तत्र शलाकां क्षिपेदपमवृत्ते।
नाड़ीवृत्तस्थां तामुदयक्षितिजाद्रविवशेन॥
भ्रमयेच्छश्वत्तद्वत् यथा न केन्द्रं त्यजेच्छलाकाभा।
रिविचन्हिक्षितिजान्तरमुदितांशास्तृग्वकुजान्तरं घटिकाः॥
अस्य सर्वयेव समानार्थंकिमिति॥

गोलाध्याययन्त्राध्याये भास्कराचारेगाऽप्येवमेवेदं गोलयन्त्रमभिहितम्।
"श्रपवृत्तगरिविचन्हं क्षितिजे घृत्वा कुजेन संसक्ते।
नाड़ीवृत्ते बिन्दुं कृत्वा घृत्वाऽथ जलसमं क्षितिजम्॥
रिविचन्हस्य च्छाया पतित कुमध्ये यथा तथा विघृते।
उड़गोले कुजबिन्द्रोमंध्ये नाडचो द्ययाताः स्यः॥

यथोक्तिविधना खगोलान्तर्भगोलं बद्ध्वा तत्र क्रान्तिवृत्ते मेषादेरारभ्य रिविभुक्तराशिभागाद्यं दत्त्वा तदग्रे यिचन्हं तदपवृत्तगरिविचन्हमुच्यते । भगोलं चालियत्वा रिविचन्हं क्षितिजे धार्यम् । तथा धृते सित क्षितिज प्राच्यां विषुवनमण्डले यत्र लग्नं तत्र खिटकया बिन्दुः कार्यः । ततः क्षितिजवृत्तं जलसमं यथा भवित तथा गोलयन्त्र स्थिर कृत्वा भगोलस्तथा चाल्यो यथा रिविचन्हस्य छाया भूगर्भे पतित तथा कृते सित विषुवद्वृत्ते क्षितिजिवन्द्वोर्मंध्ये यावत्यो घटिकास्तावत्यस्तिसम् काले दिनगता ज्ञेयाः इति ॥८॥

### भव धनुर्यन्त्र को कहते हैं।

हि. मा-धनुर्यन्त्र को इस तरह धारण करना चाहिये जिससे भ्रन्य छाया साम्य हो ग्रर्थात् क्रान्तिवश से 'ग्रक्षप्रभा सङ्गुणितापमज्या तद्द्वादशांशो भवति क्षितिज्या' इत्यादि से चरज्या साधन करना तथा इष्टशङ्कु से इष्टहिति का ज्ञान, उससे इष्टान्त्या का ज्ञान कर उसमें चरज्या संस्कार से सूत्रज्ञान कर उस से उन्नत काल का ज्ञान होता है। एवं प्रत्येक घटिकोन्नत काल वश से धनुर्यन्त्र केन्द्र में स्थापित इष्ट प्रमागा कील की छाया साधन कर अपने अपने उन्नत काल के संमुख अङ्कित करना । घनुर्यन्त्र को इष्ट दिन में ऐसे घारखा करना जिससे कील की छाया घनुष के दोनों ग्रग्न के श्रन्तर में कीलच्छाया सम्बन्धी गिर्णता-गतशङ्कुभाग के बरावर भाग (ग्रंश) हो, ऐसे घरने से श्रवलम्ब भी हक सुत्राकार लगता है। घनुष के मध्य से भ्रपने लम्बभुक्त भाग रिव के उन्नत भाग (उन्नतांश) होते हैं, वहां श्रिक्कित उन्नतकाल पूर्व कपाल श्रौर पश्चिम कपाल में दिनगत घटी-दिन शेष घटी होतीं है। सिद्धान्तशेखर में 'गोलयन्त्र से दिनघत घटी भौर दिन शेष घटी का ज्ञान भ्रधोलिखित प्रकार से श्रीपति ने किया है जैसे 'चक्रांशाङ्क' क्रान्तिवृत्तं विधेयं विदघ्यादुर्वीवृत्तं याम्यवृत्तं च तद्वत्' इत्यादि विज्ञान भाष्य में लिखित पद्यों से, श्रीपत्युक्त पद्यों का ग्रर्थ यह है क्रान्तिवृत्त क्षितिजवृत्त और याम्योत्तरवृत्त में तीन सौ साठ ग्रंश श्रङ्कित करना चाहिये। नाड़ीवृत्त को साठ ग्रंशों से श्रङ्कित करना । क्षितिजत्रृत्त के केन्द्र में गोलकेन्द्र में दक्षिए। सम स्थान ग्रौर उत्तर समस्थानगत यष्टि स्थापन करना; दृढ़ (मजबूती से बन्धा हुग्रा) खगोल (पूर्वापरवृत्त याम्योत्तर वृत्तादि से निर्मित गोल) के केन्द्र में तथा चारों तरफ क्रान्तिवृत्त क्षितिजवृत्त याम्योत्तरवृत्त नाड़ीवृत्तात्मक भगोल को करना, इस भगोल में क्रान्तिवृत्त में जिस श्रंश में सूर्य है उस प्रश में लकड़ी की वा लोहे की शलाका देनी चाहिये। उस शलाका को उदय क्षितिज से सूर्यवश से नाड़ीवृत्त से संलग्न कर शलाका की छाया जैसे केन्द्रगत हो वैसे यन्त्र को भ्रमण कराना चाहिये। शलाका से क्षिप्त रिव चिन्ह तथा क्षितिज के अन्तर में जो म्रंश है वह उन्नतांश कथित हैं। शलाका भ्रौर क्षितिज के मघ्य में शलाका संसक्त नाड़ीवृत्त भ्रौर क्षितिजवृत्त के मध्य में उन्नत घटी होती है अर्थात् दिनगत घटी और दिनशेष घटी होती है। श्रीपति कथित गोलयन्त्र द्वारा रिव का उन्नतांश ज्ञान ग्रीर उन्नत घटिका ज्ञान लल्लोक्त "ग्रथ लग्नकाल सिद्धर्यै पूर्वापरपरिकरोत्तरैर्नवभिः'' इत्यादि विज्ञान भाष्य में लिखित प्रकार के सर्वथा समानार्थंक है, गोलाघ्याय के यन्त्राध्याय में भास्कराचार्य ने भी 'ग्रपवृत्तग रविचिन्हं क्षितिजे घुत्वा कुजेन संसक्ते दत्यादि से इसी तरह कहा है इति ॥ = ॥

इदानीं प्रकारान्तरेण यन्त्रं सूर्याभिमुखे कथं समं धार्यमित्येतदर्थमाह ।

षायं समं तथा वा ज्या छाया मध्यगा यथा भवति । स्रग्नाविष्टा घटिका ज्यामध्यच्छायया भुक्ताः ॥६॥

सु. मा.--यथा ज्याञ्चाया धनुषो ज्यायाः पूर्णज्यायाश्चाया मध्यगा धनुषो

मध्यगा भवित तथा वा यन्त्रं समं धार्यम् । हग्मण्डलाकारं धार्यं यथा तत्पार्श्वयो रवेस्तुल्यं तेजो लगतीत्यर्थः । एवं ज्यामध्यच्छायया ज्याया धनुः पूर्णज्याया मध्ये-ऽर्थात् केन्द्रे स्थापितो यः कीलस्तस्य छायया भुक्ता या अग्राद्धनुः कोटघग्रादिङ्कृता घटिकास्ता इष्टा घटिकाः स्युः ॥

गोलयुक्तिरेव वासनाऽत्र ज्ञेया ॥९॥

वि. भा.— यथा ज्याछाया (धनुषो ज्यायाः पूर्णज्यायादछायाः) धनुषो मध्यगा भवित तथा वा यन्त्रं समं घार्यम् । हग्मण्डलाकारं घार्यं यथा तत्पादवयो रवेस्तेजो तुल्यं लगतींत्यर्थः। एवं ज्यामध्यच्छायया (ज्याया धनुः पूर्णज्याया मध्ये प्र्यात् केन्द्रे स्थापितो यः कींलस्तस्य छायया) भुक्ता श्रग्रात् (धनुः कोटचग्रा— दिङ्कता) या घटिकास्ता इष्टा घटिकाः स्युः ॥९॥

अब प्रकारान्तर से सूर्याभिमुख यन्त्र को कैसे रखा जाता है इस के लिये कहते हैं।

हि. भा.— जैसे घनुष की पूर्णांज्या की छाया घनुष के मध्यगत होती है वैसे यन्त्र को समरूप से घारण करना। हग्मण्डलाकार घारण करना जिससे उसकी दोनों वगल में रिव का तेज बराबर (तुल्य) लगता है। एवं घनुष की पूर्णांज्या के मध्य में प्रर्थात् केन्द्र में स्थापित जो कील उसकी छाया से भुक्त जो घनुष के कोटचग्र से श्रङ्कित घटी है वह इष्टघटी है इति।।६।।

इदानीं प्रकारान्तरेगोष्टघटिकां धनुः स्वरूपं चाह।

घटिका स्वशङ्कुभागैः पृथग्गतैर्लम्बभूसमज्यार्धात् । साशीतिशतांशाङ्कं चक्रस्यार्थं घनुर्यन्त्रम् ॥१०॥

- सु. भा.—पृथगातैः स्वशङ्कुभागैर्लम्बभूसमज्यार्घाद्वा घटिकाः साघ्याः। श्रत्रैतदुक्तं भवति । यदि स्वाभीष्टदिनेष्टकाले शङ्कुभागा एव विदितास्तदा धनुः-कोटचग्रात् तान् भागान् दत्त्वा तदग्राद्धनुज्यां या भूमिस्तस्या उपिर लम्ब एव यो ज्यार्घात् ज्याखण्डतो भवति स शङ्कुस्तस्मात् त्रिप्रश्नविधिनेष्टक्रान्तिचरादिनेष्टा-त्यामवगम्य घटिका ज्ञेया इति । चक्रस्य वृत्तस्यार्धं साशीतिशताङ्कं चक्रार्धांशाङ्कं धनुर्यन्त्रं भवति ।। १०।।
- वि. भा- पृथगतैः स्वशङ्कुभागैर्लम्बभूसमज्यार्घाद्वा घटिकाः साघ्याः। स्रर्थाद्यदीष्टदिनेष्टकाले शङ्कुभागा एव विदितास्तदा घनुःकोटघग्रात् तान् भागान् दत्वा तदग्राद्धनुर्ज्या या भूमिस्तदुपरि लम्ब एव यो ज्याखण्डतो भविन स शङ्कुस्तस्मात् त्रिप्रश्नाधिकार विधिनेष्टान्त्यां ज्ञात्वा घटिका ज्ञेयाः। चक्र-

स्यार्षं (वृत्तार्षं) अशीत्यधिकशतांशैरिङ्कृतं धनुर्यन्त्रं भवतीति । पूर्वश्लोकोक्त-विषयस्यैतच्छोकोक्तविषयस्य चानुरूप एव सिद्धान्तशिरोमगाौ भास्कराचार्येगा-भिहितो यथा चक्रं चक्रांशाङ्कं परिधावित्यादि, फलकयन्त्रेगापि साहाय्यं नेयम् ।

"धार्यं तथा फलकयन्त्रमिदं यथैव तत्पार्श्वयोर्लगित तुल्यमिनस्य तेजः। छायाक्षजा स्पृशित तत्पिरधौ यमंशं तत्रांशके मितमता तरिएाः प्रकल्प्यः। अक्षप्रोतां रिवलवगतां पिट्टकां न्यस्य तस्मात्, यष्टेरग्रादुपिर फलकेऽधभ्र गोलक्रमेएा। यत्नाद्देयश्चरदलगुर्एस्तत्र या ज्या तयात्र, छिन्ने वृत्ते तलगघटिकाः स्युर्नता लम्बकान्ताः।"

ग्रस्यार्थः — यन्त्रमाधारेऽवलम्बमानं तथा धाय यथा यन्त्रोभयपार्श्वयोस्तुल्यकालमे-वार्कतेजो लगित । अर्काभिमुख नेमिकं हग्मण्डलाकारिमित्यर्थः । तथा धृते सुषिरे प्रोतस्याक्षस्य छाया वृत्तपरिधौ यिसमन्नंशे लगित तत्रांशेऽकः कल्प्यः । अक्षप्रोतंव पिट्टका रिवचिन्हे स्थाप्या तथा धृतायां पिट्टकायां यत्पूर्वं कृतं यिष्टिचिन्हं तस्मादुपर्युत्तरगोले । दक्षिण गोले तु तदधक्चरज्यामितान्यङ्गुलानि फलके गण्यित्वा तत्र चिन्हं कार्यम् । चिन्हस्थाने या ज्यारेखा सा वृत्ते यत्र लग्ना तस्मादघोवृत्ते लम्बरेखावधेर्यावत्यो घटिकास्तावत्यस्तत्काले नता क्षेयाः । एतद्वशेन्वेष्टघटिकाक्षानं सुलभिनित ॥१०॥

### ग्रब प्रकारान्तर से इष्ट्रघटी तथा धनुः स्वरूप को कहते हैं।

हि. सा.—यदि इष्टदिन में इष्टकाल में शङ्कुभाग ही विदित हो तब धनुःकीटघग्र से उन भागों (ग्रंशों) को दान देकर उस के श्रग्र से धनुष की ज्या रूप भूमि के ऊपर लम्ब हीं शङ्कु हैं, उससे त्रिप्रकाधिकारोक्त विधि से इष्टान्त्या जानकर इष्ट्रघटीं का ज्ञान करना चाहिये, वृक्तार्थ में एक सौ ग्रस्सी ग्रंशों को श्रङ्कित करने से धनुर्यन्त्र होता हैं। पूर्वंश्लोकोक्त विषय ग्रीर इस श्लोकोक्त विषय के श्रनुरूप ही भास्कराचार्य ने 'चक्रं चक्रां-शाङ्कं परिधौ' इत्यादि से कहा है, फलक यन्त्र से भीं काम लेना चाहिये इति ।। १०।।

### इदानीं परोक्तघटचानयनं खण्डयति ।

# मध्यदिवसोन्नतांशर्दिनार्धनाड़ीर्वदन्ति तुल्या ये। ते मूर्खास्तच्छाया इष्टच्छाया समा न यतः ॥११॥

सु. मा. —ये मध्यदिवसोन्नतांशैर्दिनार्धनाडीस्तुल्या इष्टघटिकाः प्रकल्प्या-भीष्टोन्नतांशैरनुपातेनेष्टा घटिका वदन्ति ते मूर्खाः सन्ति । यत इष्टघटीतो यदि दिनार्घे घटिकाभिर्मध्योन्नतांशास्तदेष्टघटिकाभिः किमित्यनुपातेन य इष्टोन्नतांशा श्रायान्ति तच्छाया वेधोपलव्धेष्टकालिकच्छाया समा न भवन्तीति तेषामानयन-मसत् ॥ ११॥

वि. भाः — ये मध्यान्हकालिकोन्नतांशैरिनार्धनाङीतुल्या इष्टघिटकाः प्रकल्प्याभीष्टोन्नतांशैरनुपातेनेष्टा घटिका वदन्ति ते मूर्खाः सन्ति । यतो यदि दिनार्धघटींभिर्मध्योन्नतांशास्तदेष्टघटीभिः किमित्यनुपातेन य इष्टोन्नतांशा आयान्ति तच्छाया वेघोपलब्घेष्टकालिकच्छाया समा न भवत्यतस्तदानयनं न समीचींनमिति ॥ सिद्धान्तशिरोमग्गौ ।

चक्रं चक्रांशाङ्कं परिधौ श्लथश्टङ्खलादिकाधारम् । धात्री त्रिभ ग्राधारात् कल्प्या भार्धेऽत्र खार्धं च ॥ तन्मध्ये सूक्ष्माक्षं क्षिप्त्वाकाभिमुखनेमिकं धार्यम् । भूमेरुन्ततभागास्तत्राक्षच्छायया भुक्ताः । तत्खार्धान्तश्च नता उन्नतलवसंगुर्गीकृतं द्युदलम् । द्युदलोन्नताँशभक्तं नाडयः स्थूलाः परेः प्रोक्ताः ॥

व्याख्या-घातुमयं दारुमयं वा समं चक्रं कृत्वा तन्नेम्यां श्रृङ्खलादिराधारः शिथिलः कार्यः । चक्रमध्ये सूक्ष्मं सुषिरमाधारात् सुषिरोपिरगामिनी लम्बवदूर्ध्वरेखा कार्या । तन्मत्स्यतोऽन्या तिर्येग्ने खा च कार्या । तच्चक्रं पिरधौ भगणांशैरङ्कृयित्वाधारात् त्रिभ इंति नवतिभागान्तरे तिर्येग्ने खा तत्पिरिध-सम्पाते धात्री क्षितिः कल्प्या । भार्धेऽन्तर ऊर्ध्वरेखा नेमिसम्पाते खार्षं कल्प्यम् । सुषिरे सूक्ष्मा शलाका प्रदातव्या । सा चाक्षसंज्ञा तच्चक्रमकिम्बनेमिकं च यथा भवित तथाधारे धार्यम् । तथा धृतेऽक्षस्य छाया परिवौ यत्र लगित तत्कुज-चिन्हयोरन्तरे येंऽशास्तेरवेश्ननतांशाः । ये छायाखार्षयोरन्तरे ते नतांशा ज्ञेयाः । एवमत्र नतोन्नतांशज्ञानं भवित । अतोऽन्यैर्घटिका अप्यानीताः । तिस्मिन् दिने गिणितेन मध्यदिनोन्नतांशान् दिनार्धमानं च ज्ञात्वानुपातः कृतः । यदि मध्यदिनोन्नतांशिदिनार्धनाड्यो लभ्यन्ते तदैभिः किमित्येवं स्थूला घटिकाः स्युः ॥ अत्र पर-वाक्यम् ।

इष्टोन्नतांशा द्युदलेन निष्ना मध्योन्नतांशैविद्दचाश्च नाड्यः। दिनस्य पूर्वापरभागयोश्च याताश्च शेषाः क्रमशो भवन्ति ॥ वस्तुत एतस्य खण्डनमाचार्येग् भास्कराचार्येग् च यत् क्रियते तत्समीचीन-मेवेत्याचार्योक्तश्लोकव्याख्यायां द्रष्टव्यमिति ॥११॥

ग्रब दूसरों के घट्यानयन का खण्डन करते हैं।

हि. मा. - जो लोग मध्याह्नकालिक उन्नतांश से दिनार्ध घटी तुल्य इष्ट घटी

कल्पना कर ग्रभीप्ट उन्नतांश से ग्रनुपात द्वारा इष्ट घटी कहते हैं वे मूर्ख हैं। क्योंकि यदि दिनार्ध घटी में मध्योन्नतांश पाते हैं तो इष्ट घटी में क्या इस ग्रनुपात से जो इष्ट उन्नतांश ग्राते हैं उसकी छाया वेघोपलब्ध इष्ट कालिक छाया के बराबर नहीं होती है इस लिये उनका ग्रानयन ठीक नहीं है इति ।। सिद्धान्त शिरोमिण में 'उन्नतलवसंगुणीकृतं खुदलम् खुदलोन्नताशभक्तं नाडचः स्थूलाः परेंः प्रोक्ताः' इससे भास्कराचार्य ने भी ग्रन्यों के घटिका नयन का खण्डन किया है। ग्रन्य के वाक्य इष्टोन्नतांशा खुदलेन निघ्ना मध्योन्नतांशैविह्नाश्व नाडचः' इत्यादि विज्ञान भाष्य में लिखित के ग्रनुसार है। वस्तुनः इसका खण्डन ग्राचार्य ग्रीर भास्कराचार्य भी जो करते है सभीचीन है यह ग्राचार्योक्त क्लोक के उपरिलिखित भाष्य से स्पष्ट है इति ।।११।।

इदानीं यन्त्रेगा नतोन्नतकालज्ञानमाह । जीवां स्वाहोरात्रे परिकल्प्याग्रान्नतोन्नतत्रिज्याः । श्रनुपातात् कार्यास्तुर्यगोलके चक्रके चैवस् ।।१२।।

सु. भा.—स्वाहोरात्रे द्युज्यावृत्तेऽनुपाताद् द्वादश कोट्या पलकर्णस्तदा शङ्कुकोट्या किमित्यनुपातात् जीवामिष्टहृति प्रकल्प्य ततोऽग्राद्धनुः कोट्यग्रान्न-तित्रज्याः कार्यास्त्रिज्यावशेन नतोन्नतकालौ कार्यो । ग्रत्रैतदुक्तं भवति । इष्टहृति-वशेन त्रिज्यानुपातेनेष्टान्त्याः कार्याः । तत्र चरसंस्कारेण सूत्रमृत्पाद्य तत्समां ज्यां धनुषि दत्त्वा धनुरग्राद्या घटिकास्ताश्चरसंस्कृतोन्नतकालघटिकाः । ज्याया धनुर्यन्त्राधरभागपर्यः तं या घटिकास्ता नतकालघटिकाः । एवं गोलयुक्तिवशान्न-तोन्नतकालौ तुर्यगोलके तुरीये चक्के च भवत इति ॥ १२ ॥

वि. भा—स्वाहोरात्रे (द्युज्यावृत्ते) अनुपातात् ''द्वादशाङ् गुलशङ्कुना पलकर्णस्त देष्टशंकुना कि'' मित्यनुपातेन समागतां हृति जीवां परिकल्प्य ततोऽप्रात् (धनुःकोटघ-प्रात्)नतोन्नतित्रज्याः कार्याः। त्रिज्यावशेन नतोन्नतकालौ कार्यो, अर्थादिष्टहृतिवशेन तिज्यानुपातेने (इहृति.त्रि इष्टान्त्या )ष्टान्त्याः कार्याः, तत्र चरज्या संस्कारेगा सूत्रं 'इष्टाष्टा ∓ चरज्या = सूत्रम्' भवति । तत्तल्यां जीवां धनुषि दत्वा धनुरग्राद्या घटिकास्ताश्चर संस्कृतोन्नतकाल घटिका भवंति । जीवाया धनुः (चापं) यन्त्राधो—भागपर्यन्तं या घटिकास्ता नतकालघटिकाः । एवं नतोन्नतकालौ तुर्यगोलके (तुरीय यन्त्रे) चक्रे (चक्रयन्त्रे) च भवत इति ॥१२॥

अब यन्त्र से नतकालज्ञान और उन्नतकालज्ञान को कहते हैं।

हि. मा. - बुज्यावृत्त में अनुपात से 'द्वादश कोटि में यदि पलकर्ण-कर्ण पाते हैं तो

इष्टराङ्कुकोटि में क्या इससे इष्टहृति ग्राती है, इष्टहृति को जीवा कल्पना कर तब धनुष के कोटचग्र से त्रिज्यावश से नतकाल ग्रौर उन्नत काल साधन करना ग्रर्थान् इष्टहृतिवश से त्रिज्यानुपात से 'इहृतिःति = इष्टान्त्या' इष्टान्त्या लानी चाहिये, उसमें चरज्या संस्कार से इष्टान्त्या ± चरज्या = सूत्र, सूत्र होता है, एतत्तुल्यज्या को धनुष (चाप) में देकर धनुष के ग्रग्र से जो घटी होगी वह चर संस्कृत उन्नतकाल घटी होती है, इससे उन्नत काल घटी का ज्ञान स्पष्ट ही है। ज्या के चाप यन्त्र के ग्रघोभाग पर्यन्त जो घटी है वह नतकाल घटी है। इस तरह तुरींय यन्त्र में ग्रौर चक्र यन्त्र में भीं नतकाल ग्रौर उन्नत काल विदित होते हैं इति ।।१२।।

इदानीं यन्त्रादेव नतीम्नतकालज्ञानमाह । दिनघटिकाङ्कितयष्टेर्व्यस्त नतज्याग्रमुन्नतज्यां च । दिङ्मध्ये च शलाका तच्छायाग्रान्नता नाडचः ॥१३॥

सु. भा- दिनघटिकाङ्कितयष्टिर्गुं ज्या तस्याः सकाशात् प्रतिघटिकं दिङ्-मध्यस्थापितशलाकाछाया प्रसाध्या सा रिवतो व्यस्तिदिका भवति । तत्र प्रति-घटिकोन्नतकालसम्बंधिच्छायाग्रे तात्कालिकं नतज्याग्रं नतज्यामुन्नतज्यां नतकाल-मुन्नतकालं चाङ्कयेत् । एवमेकस्मिन् फलके प्रतिद्युज्यासम्बन्धिनीं नतकालाद्यङ्कितां भाभ्रमरेखामुत्पादयेत् । इष्टदिनेष्टकाले समधरातले यथा दिक्के स्थापिते फलके दिङ्मध्यशलाकाछायाग्रं तिद्दनसम्बन्धि भाभ्रमरेखायां यत्र लग्नं तत्राङ्किता नाडघो नता नाडघः स्युः । एवं तत्राङ्कितोन्नत कालादित उन्नतकालादिज्ञानं भवतीति गोलयुक्तितः स्फुटम् ॥ १३ ॥

नि. भा-—िदनषटिकािङ्कतयिष्टः (शुज्या) तस्याः सकाशात् प्रत्येकषटिकायां दिङ् मध्यस्थापित शलाकायाश्छायाः साध्यास्ता रिवतो व्यस्ता (विपरीतिदिक्काः) भवन्ति । तत्र प्रतिषटिकोन्नतकालसम्बन्धिष्ठायाग्रे न तज्याग्रं नतज्यामुन्नतज्यां नतज्यामुन्नतज्यां नतज्यामुन्नतज्यां नतज्यामुन्नतज्यां नतज्यामुन्नतज्यां नतज्यामुन्नतज्यां नतज्यामुन्नतज्यां नतज्यामुन्नतज्यां नतज्यामुन्नतज्ञालं चाङ्कयेत् । एव मेकस्मिन् फलके प्रतिद्युज्यासम्बन्धिनी नतकाला-िङ्कतां भान्नमरेखां रचयेत् । इष्टिवने इष्टकाले समधरातले यथादिक्के स्थापिते फलके दिङ् मध्यशलाका छायाग्रं तिह्नसम्बन्धि भान्नमरेखायां यत्र लगित तत्राङ्किता नाडचो (षटिकाः) नता नाडचः (नतषटिका) भवन्ति एवमेव तत्राङ्कितोन्नतकालादित उन्नतकालादिज्ञानं भवतीति ।।१३॥

भ्रब यन्त्र ही से नतकालज्ञान और उन्नत कालज्ञान को कहते हैं।

हि. भा.—दिन घटी से ग्रिङ्कित यष्टि (द्युज्या) से प्रत्येक घटी में दिङ्मध्य (दृत्त-

केन्द्र) स्थापित शलाका की छायाएँ साधन करनी चाहिये। वे रिव से विरुद्ध दिशा की होती हैं। वहां प्रत्येक घटी के उन्नतकाल सम्बन्धी छायाग्र में नतकाल भ्रौर उन्नतकाल को श्रिङ्कित करना। एवं एक फलक में प्रति द्युज्या सम्बन्धी नतकाल से श्रिङ्कित (चिन्हित) भाश्रम रेखा बनानी चाहिये। इष्टविन में इष्टकाल में समधरातल में यथादिशा में स्थापित फलक में दिङ्मध्यशलाका का छायाग्र उस दिन सम्बन्धी भाश्रमरेखा में जहां लगता है वहां अङ्कित नाड़ी (घटीं) नतनाड़ी (नतवटीं) होती है। इसी तरह उसमें श्रिङ्कित उन्नतकालादि से उन्नत कालादि ज्ञान होता है इति ।।१३।।

# इदानीं धनुर्यन्त्रे विशेषमाह।

धनुषः पृष्ठे द्रष्ट्रा वेध्या ज्यामध्य संस्थया द्रष्टचा । इष्टान्तरं नतज्या धनुषि च्छायोन्नतज्यायाः ॥१४॥ ज्यार्षं दृष्टेर्द्रं ज्यां नतजीवांशं कुमुन्नतज्यां च । धनुषि प्रकल्प्य योज्यं यद्युक्तं नाडिकाद्यं च ॥१४॥

सुः माः—द्रष्ट्रा पुरुषेण धनुषः पृष्ठे ज्यामध्यसंस्थया पूर्णंज्यो परिस्थापित-नलकरन्ध्रगतया दृष्ट्या इष्ट्यरह्योरन्तरम् । उन्नतज्यायाः सकाशात् धनुषि यन्त्रे नतज्या छाया चेत्यादि सर्वे पदार्था वेध्याः । एवं धनुषि धनुर्यन्त्रे दृष्टेज्यां धंमेव दृण्यां नतजीवांशं नतभागान् । कुं भूमिपर्यन्तमर्थात् यन्त्रे कित्पितक्षितिज पर्यन्त-मुन्नतज्यां च प्रकल्प्य यन्नाडिकाद्यमुपयुक्तमस्ति तत् सर्वं योज्यं गोलयुक्तितः । तथैव यन्त्रचिन्तामण्यादौ तुरीययन्त्रेऽिङ्कताश्चोन्नतांशादयः प्रसिद्धाः सिद्धान्त-विदाम् ॥ १४-१५ ॥

वि. भा-— द्रष्ट्रा (दर्शकेन पुरुषेण) घनुषः पृष्ठे, ज्यामध्यसंस्थया (पूर्ण-ज्योपिरस्थापितनलकरन्ध्रगतया) दृष्ट्या, इष्टान्तरम् (इष्टग्रयोरन्तरम्), उन्नतज्यायाः सकाशात् घनुषि (धनुर्यन्त्रे) नतज्या, छाया चेत्यादयः सर्वे पदार्था ज्ञातव्याः । एवं घनुर्यन्त्रे दृष्टेज्यीधंमेव दृष्ज्यां-नतजीवांशं नतांशान् कुं (भूमिपर्यन्त-मर्थात् यन्त्रे कित्पतिक्षितिजपर्यन्तं) उन्नतज्यां च प्रकल्प्य यन्नाडिकाद्यमुपयुक्तं तत्सर्वं गोलयुक्त्या योज्यम् । तुरीययन्त्रे तथेवोन्नतांशादयोऽङ्किता यन्त्रचिन्ता—मण्यादि ग्रन्थे सन्तीति ॥ १४-१५ ॥

### अब धनुर्यन्त्र में विशेष कहते हैं।

हि. सा.—दर्शक पुरुष को धनुष के पृष्ठ में पूर्यांज्या के ऊपर रथापित नलकरन्ध्रगत हृष्टि से इष्ट दो ग्रहों का अन्तर तथा धनुर्यन्त्र में उन्नतज्या से नतज्या-छाया इत्यादि सब पदार्थ जानने चाहियें। एवं धनुर्यन्त्र में हृष्टि से ज्यार्ध को हृज्या नतांश को यन्त्र में किल्पत क्षितिज पर्यन्त उन्नतज्या मानकर जो नाड़िकादि उपयुक्त हैं उन सबों को काम में लाना चाहिये। तुरीय यन्त्र में उसी तरह उन्नतांशादि म्रङ्कित है यन्त्र चिन्तामिए। म्रादि ग्रन्थों में स्फुट है इति ।।१४-१५।।

## इदानीमन्यं विशेपमाह।

# श्रबलम्बनं शलाकाज्यार्धं याँच्ट प्रकल्प्य वा धनुषि । भूम्युच्छ्रायाल्लम्बो यष्टचुक्तं रानयेत् करगाः ॥१६॥

सु. भा.—वा घनुषि घनुर्यन्त्रे केन्द्रगां शलाकामवलम्वनमवलम्वसूत्रं ज्यार्धं चापानां ज्यार्धानि शलाकाप्रोतां यष्टिं च प्रकल्प्य यष्टयुक्ते यंष्टचादिभिरुदितैः करणैः साधने भूमयुच्छ्रायात् क्षितिजोच्छ्रायाल्लम्बः शङ्कुभागादीन् गण्क स्नान-येत्। स्नाचार्योक्तित एव तथैव भास्करेण फलकयन्त्रे सर्वं रचितमिति ॥ १६॥

वि. मा.—वा धनुर्यन्त्रे केन्द्रगतां शलाकामवलम्बसूत्रचापानां ज्यार्धानि शलाकां प्रोतां यिष्ट च प्रकल्प्य यष्ट्रचादिभिः कथितैः साधनैः क्षितिजोच्छ्राया-ल्लम्बः शङ्कुभागादीन् गण्क ग्रानयेत्। सिद्धान्तशिरोमणौ 'कर्त्तव्यं चतुरस्रकं सुफलक' मित्यादि फलकयन्त्ररचनावैशद्यमाचार्योक्तमिदं संक्षिप्तमादर्शमादाय भास्कराचार्येण प्रतिपादितमिति ॥१६॥

### भ्रब भ्रन्य विशेप कहते हैं।

हि. भा.— अथवा घनुर्यन्त्र में केन्द्रगतशलाका को अवलम्बसूत्र, चाप के ज्यार्घ शलाका प्रोत (पहराई हुई) यिट मान कर यष्ट्रचादि से कथित साघनों से क्षितिज के उच्छा-य से उन्नतांशादि को गणक लावे, सिद्धान्तशिरोमिण में 'कर्त्तव्यं चतुरस्रकं सुफलकं' मित्यादि फलकयन्त्र रचना का स्पष्टीकरण भास्कराचार्य ने आचार्योक्त इस संक्षिप्त आदर्श को लेकर किया है इति ।।१६॥

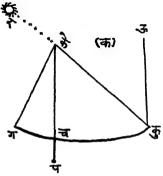
# इदानीं तुर्यगोलमाह।

# भ्रङ्कितमंशनवत्या घनुषोऽर्धं तुर्यगोलकं यन्त्रम् । घटिकानतोन्नतांश ग्रहान्तराद्यं घनुर्वदिह ॥१७॥

सु. भा.—धनुषोऽर्षं कोदण्डखण्डमंशनवत्याङ्कितं तुर्यगोलकं यन्त्रं भवति । इहात्रापि धनुर्यन्त्रवद्घटिकानतोन्नतांशग्रहान्तराद्यं सिघ्यति ।। १७ ॥

वि. भा. – धनुषोऽर्घं (कोदण्डखण्डं) ग्रंशनवत्याऽिङ्कृतं कार्यं तत्तुर्यगोलकं यन्त्रं भवति, ग्रत्रापि धनुर्यन्त्रवत् घटिकानतोन्नतांशग्रहान्तराद्यं सिध्यतीति।

कथमेतेन यन्त्रेण नतोन्नतांश ज्ञानं भवतीति प्रतिपाद्यते ।। नतोन्नतांशज्ञानार्थमुपपत्तिः ॥



केन्द्ररन्ध्रद्वारा कुजरन्ध्रं रविकिरराो यथा विशेत्तथा यन्त्रं धार्यम् ।

र = रिविबिम्बम् । तत्तेजः 'के' बिन्दु द्वारा 'कु' हिष्टिबिन्दौ निर्गच्छिति । तथा यन्त्रे स्थिरीकृते ग्रहें क्षितिजस्थे सित, यदि कु दृष्टिस्थानमि क्षितिजस्थं भवेत्तदा केग ऊर्घ्वाघरसूत्रमवलम्बसूत्रम् । कुजादू- ध्वंस्थे ग्रहे तथोक्तबद्यन्त्रे स्थिरीकृते केग ऊर्घ्वाघर- रूपं न भवेदिन-ऊर्घ्वाघररूपं = केप, तत्समानान्त-

रम् — कुऊ सूत्रमप्यूर्ध्वाधररूपम् । ततः < उकुके = < कुकेच, परं < ऊकुके = नतांशाः, ग्रतः < पकेग = उन्नतांशाः । सिद्धान्ततत्त्वविवेके —

"धातुजं दारुजं वा यत् यन्त्रं बुद्धिमता कृतम् । तस्य केन्द्रकुजोध्वंस्थे रन्ध्रे कार्ये समान्तरे ॥ कुजरन्ध्रस्थदृष्टचवं केन्द्ररन्ध्रगतं ग्रहम् । सस्थं विध्वाऽथ तद्यन्त्रं कार्यं दृग्वृत्तवद्बुधैः ॥'

व्याख्या—तस्य यन्त्रस्य केन्द्रकुजिबन्द्रोरुर्घ्यं समान्तरे रन्ध्रे (छिद्रे) कार्ये, ग्रर्थात् कुजरेखा तु निलकारूपा कार्या, तथा कृते कुजरन्ध्रे दृष्टि निवेश्य दृग्वृत्तघरातले तथैतद्यन्त्रं घार्यं, यथा सा निलकारूपा कुजरेखा, ग्रहगर्भदृष्टिस्त्रं भवेत्तदैव ग्राकाशस्यं ग्रहं केन्द्ररन्ध्रगतं पश्येदिति । ग्रत्र यन्त्रमघोमुखं परिवर्त्यं निवेशितम् ।।

श्रथवा केन्द्ररन्ध्रेण क्ष्माजरन्ध्रं विशेद्यथा ।
अर्कतेजस्तथा यन्त्रं धार्यमर्कमुखं सदा ॥
श्रकींदये भवेत् खस्थं लम्बसूत्रं यथा यथा ॥
वियत्यकः कुजस्थानादुन्नतश्च तथा तथा ।
यन्त्रे खतश्च तत्सूत्रं नेम्यंशैश्चलितं भवेत् ॥
श्रतः खादुन्नतांशाश्च ज्ञेया भूजान्नतांशकाः ।
तज्ज्यके शङ्कुदृग्ज्ये च यन्त्रे दृग्वृत्तवत् स्थिते ॥"
कमलाकरेणैवं यन्त्रद्वारोन्नतांशनतांशयोर्ज्ञानं प्रतिपादितम् ।
तथा यन्त्रचिन्तामग्गौ—

"केन्द्रोर्घ्वरन्ध्रेण यथाऽर्कतेजः क्ष्माजोर्घ्वरन्ध्रं प्रविशेत्तर्थेव । धार्यं तु केन्द्रादवलम्बभागज्या हग्ज्यका स्यान्नतशिञ्जिनी वा ।" कमलाकरोक्तसहशमेवोक्तमस्तीति ॥१७॥

### ग्रब तुर्यगोल को कहते हैं।

हि. भा.— घनुष (चक्राघं) के ग्राधे भाग (कोदण्डखण्ड) को नव्ये ग्रंश से ग्रिङ्कित करने से वह तुर्यंगोलक नाम का यन्त्र होता है यहां भी घनुर्यंन्त्र की तरह घटी, नतांश, उन्नतांश ग्रहान्तरादि सिद्ध होता है। इस यन्त्र से नतांश और उन्नतांश ज्ञान कैसे होता है उसके लिये उपपत्ति।

यहां संस्कृतोपपत्ति में लिखित (क) क्षेत्र को देखिये। केन्द्र छिद्र द्वारा क्षितिजस्य रन्ध्र (छिद्र) में रिविकिरण जिस तरह प्रवेश करे उस तरह यन्त्र को धारण करना चाहिये। र—रिव बिम्ब। उनके तेज 'के' विन्दु द्वारा 'कु' दृष्टि विन्दु में निकलता है। यन्त्र को स्थिर करने से ग्रह के क्षितिजस्थ रहने पर यदि 'कु' दृष्टिस्थान भी क्षितिजस्थ हो तव केग उद्याधर सूत्र ध्रवलम्ब सूत्र होगा। क्षितिज से ग्रह के उपर रहने से पूर्ववत् यन्त्र को स्थिर करने से केग उद्याधर रूप न हो तथापि उद्याधररूप—केप, उसके समानान्तर—कुऊ सूत्र भी उद्याधर रूप है तब दिक्कुके—दक्किच, लेकिन उक्कुके—नतांश, द्यतः दिकेग — उन्तन्तांश। सिद्धान्त तत्त्व विवेक में "धातुजं दारुजं वा यत् यन्त्रं बुद्धिमता कृतम्" इत्यादि तथा "श्रथवा केन्द्ररन्ध्रेण क्ष्माजरन्ध्रं विशेद्यथा। श्रकंतेजस्तथा यन्त्रं धार्यमकंमुखं सदा" इत्यादि श्लोकों से कमलाकर ने उपर्युक्त उपपत्ति से यन्त्र द्वारा नतांश श्रीर उन्नतांश का ज्ञान कहा हैं। तथा यन्त्र चिन्तामणि में 'केन्द्रोद्वर्यन्ध्रेण यथाऽकंतेजः क्ष्माजोद्वर्यन्त्रं प्रविशेत्तर्थवं इत्यादि से कमलाकरोक्त के सदृश ही कहा गया है इति ।।१७।।

### इदानीं चक्रयन्त्रमाह।

# परिधौ भगगांशाङ्कं मीनान्तं चक्रतो विद्ध्वा । चक्रकयन्त्रं मध्याल्लम्बोऽत्र फलं घनुस्तुल्यम् ॥१८॥

सु. भा.—चक्रकयन्त्रं परिघो मीनान्तं द्वादशराश्यकं भगगांशाङ्कं च कार्यम् । म्रत्र परिघो किल्पताघारमध्याल्लम्बः कार्यः । म्रस्माच्चक्रतश्चक्रयन्त्रा-द्ग्रहादीन् विद्ध्वा फलं घनुस्तुल्यं घनुर्यन्त्रसमं भवति । विशेषार्थं भास्करचक्रयन्त्रं तदीयगोलयन्त्राध्याये चिन्त्यम् ॥ १८ ॥

वि. भा.— चक्रकयन्त्रपरिषो भगणांशाङ्कं मीनान्तं (द्वादशराश्यङ्कं) च कार्यम् । ग्रत्र (चक्रकयन्त्र) परिषो किल्पताऽधारमध्याल्लम्बः कार्यः । ग्रस्माचक्रतः (चक्रयन्त्रात्) ग्रहादीन् विद्वा फलं धनुस्तुल्यं (धनुर्यन्त्रं समं) भवतीति । सिद्धा-न्तशेखरे —

> "कृत्वा सुवृत्तं फलकं हि षष्ट्या चक्रांशकेश्चाङ्कितमत्र मध्ये । लम्बस्तद्ग्रात् सुषिरेण यद्वत् केन्द्रे ऽर्करिमः पततीति दध्यात् ॥

लम्बेन मुक्ता रिवभागतोंऽशास्तत्रोदितास्ते घटिकास्तु याताः। चक्रारव्यमेतद्दलमस्य चापं ज्यामध्यरन्ध्र स्थित लम्बमेतत्॥"

श्रीपितनैवमुक्तम् । सुवृत्तं फलकं षष्ट्रचा चक्रांशैश्चाङ्कितं कृत्वा । अयमर्थः—सुसरलससारदारुजातं वर्तुलं पीठाकारं यन्त्रं निर्माय तत्र (यन्त्रे) घटिकाज्ञानार्थं षिटिविभागाः । श्रंशादिज्ञानार्थं च षष्टचिकशतत्रयं ३६०विभागाः कार्याः । अस्मिन् यन्त्रे मध्ये (केन्द्रबिन्दौ) अवलम्बयष्टिः—देयः । यद्वत् श्रवलम्ब-यष्टिमूलगतयन्त्रच्छिद्रेण्, श्रकंरिमः (सूर्यविम्बकेन्द्रतेजः) यन्त्रकेन्द्रे पतित इत्यनेन विधिना यन्त्रं स्थापयेत् । लम्बेन (श्रवलम्बष्ट्रचा) मुक्ताः (त्यक्ता) ये भागास्ते सूर्योधिष्ठितांशात् उदिता भागाः स्युः । घटिकास्तु श्रवलम्बभुक्ता व्यतीता घटिकाः स्युः । श्रनेन प्रकारेण् निर्मितं यन्त्रं चक्रयन्त्रं स्यात् श्रस्य चक्र-यन्त्रस्यार्धं चापसंज्ञकं यन्त्रं भवति । एतच्चापयंत्रं ज्यामध्यरन्धस्थितलम्बं कार्यं चक्रयन्त्ररूप वृत्तस्यार्धभागकारिण्या व्यासरेखाया मध्ये रन्ध्रं तत्र लम्बश्च देयः।

### म्रत्रोपपत्तिः।

वृत्ताकारकाष्ठयन्त्रं षष्टिघटीभिः षष्टघिषक्षितत्त्रयां ३६० शैरवाङ्कितं कृत्वा मध्ये स्वल्परन्ध्रं तद्गतावलम्बयष्टिकं च सूर्याभिमुखं तथा स्थापितं यथैतद्यन्त्रं विधतं सत् सूर्यविम्बकेन्द्रगतं भवेत्। तत इदं हग्वृत्तानुरूपं जातम्। एतत्केन्द्रे लम्बरूपाया यष्टेरुछाया तत्परिधौ यत्र लगित स बिन्दुः सूर्यकेन्द्रिविन्दोः षड्भान्तरे भवेत्। अत्र सूर्योदयकाले सूर्याधिष्ठितांशात् षड्भान्तरे परिचम बिन्दावेवावलम्बच्छाया यन्त्रपरिधौ लगित । ततोऽनन्तरं सूर्यो यथा यथोपरि गच्छिति तथा तथा लम्बच्छाया परिचमबिन्दोरघो गच्छिति, त एव लम्बमुक्ता अंशास्ते सूर्याधिष्ठितांशात् आरभ्योन्नतांशा एव । घटिकाभिश्चाङ्कितं यन्त्रमिति यन्त्रमुक्ता घटिकाः सूर्योदयाद् गतघटिका इति । एतच्चक्रयन्त्रस्यार्धं वृत्तार्धंरूपं चापयन्त्रमिति । तत्रापि वृत्तार्धंकारिण्या व्यासरेखाया मध्ये सूक्ष्मं छिद्रं चक्रयन्त्र-वल्लम्बश्च देयः। चक्रयन्त्रवदेवेहोन्नतांशानामुन्नतघटिकानां च ज्ञानं वृत्तार्धदेव क्रियते। अत्र लल्लोक्तम्—

"वृत्तं कृत्वा फलकं षड्वर्गाङ्कं तथा च षष्ट्यङ्कम् ।
मध्यस्थितावलम्बं मध्यस्थित्या प्रविष्टोष्णम् ॥
तदधो लम्बविमुक्तं गृहादि यत्तदुदितं दिनकरांशात् ।
नाडचः पूर्वकपाले द्युगतास्ताः पश्चिमे द्युदलात् ॥
चक्रास्यं यन्त्रमिदं दलं धनुर्यन्त्रमाहुरस्यैव ।
ज्याकार्म्कभृच्छिद्रप्रविष्टदिनकरकरं धार्यम् ॥

#### यन्त्राध्यायः

मध्यस्थ लम्बमुक्ताः कोटेरारभ्य नाड़िका द्युगताः । उदितारच दिनकरांशादारभ्य भवन्ति गृहभागाः ॥"

इति श्रीपतिना छन्दोऽन्तरेगोक्तमिति स्फुटमेव गग्गकानाम् । भास्कराचा-र्येगापि—

> "चक्रं चक्रांशाङ्कं परियौ श्लथशृङखलादिकाधारम्। धात्रीत्रिम ग्राधारात् कल्प्या भाषेंऽत्र खार्यं च ॥ तन्मध्ये सूक्ष्माक्षं क्षिप्ताऽकांभिमुखनेमिकं धार्यम् । भूमेष्क्रतभागास्तत्राक्षच्छायया भुक्ताः ॥ तत्खार्धान्तश्च नता उन्नतलवसंगुणीकृतं द्युदलम् । द्युदलोन्नतांशभक्तं नाडयः स्थूलाः परैः प्रोक्ताः ॥"

इत्युत्तचा चक्रयन्त्रं तथैव कथितं सिद्धान्तशिरोमऐार्वासनाभाप्यान्मिता-क्षराच्छ्रीपतेराशयोऽपि विविच्य विज्ञैनिरूपएाीय इति ॥१८॥

#### भ्रब चक्र यन्त्र को कहते हैं।

हि. भा.—चक्रयन्त्र परिधि में भगणांश को म्रिक्क्त करना चाहिये, ग्रौर द्वादश राशि (बारहों राशि) को भी म्रिक्कित करना चिहये। इस चक्रयन्त्र परिधि में किल्पत माधार मध्य से लम्ब करना चाहिये। इस चक्रयन्त्र से ग्रहादियों को वेध कर फल धनुर्यन्त्र के बराबर होता है। सिद्धान्तशेखर में "कृत्वा सुतृत्तं फलकं हि पृष्ट्या चक्रांशकैश्वाङ्कित—मत्र मध्ये" इत्यादि विज्ञान भाष्य में लिखित क्लोकों के म्रनुसार कहा है, श्लोकों का मर्थ यह है—सरल सार वाली लकड़ी के वर्त्तुलाकार यन्त्र बनाकर उस यन्त्र में घटी ज्ञान के लिये साठ विभाग और ग्रंश ज्ञान के लिये तीन सौ साठ विभाग करना चाहिये। इस यन्त्र के केन्द्रबिन्दु में भ्रवलम्ब यष्टि देनी चाहिये जैसे भ्रवलम्बयष्टिमूलगत यन्त्रछिद्र से सूर्य बिम्ब के तेज यन्त्र केन्द्र में पतित हो इस तरह से यन्त्र को स्थापन करना चाहिये। भ्रवलम्बयष्टि से त्यक्त जो भाग वे सूर्याधिष्टित भ्रंश (जिस भ्रंश में सूर्य है) से उदित भाग होते हैं। भ्रौर घटी व्यतीत (गत) घटी होती है। इस चक्रयन्त्र का भ्राधा चाप संज्ञक यन्त्र होता है। चक्रयन्त्रक्षप वृत्त को भ्राधा करने वाली व्यास रेखा के मध्य में रन्ध्र (छिद्र) करना और उसमें लम्ब देना।

#### उपपत्ति ।

वृत्ताकार काष्ठ के यन्त्र में साठ घटी को ग्रौर तीन सौ साठ ग्रंश को श्रिक्कित कर मध्य में छोटा छिद्र कर तद् गत श्रवलम्बयिष्ट को सूर्याभिमुख इस तरह रखना चाहिये जिससे यन्त्र को बढ़ाने से सूर्यबिम्ब के केन्द्र में चला जाय । इसलिये वह हम्मण्डलाकार हुआ। इसके केन्द्र में लम्बरूपयण्टि की छाया उसकी परिधि में जहां लगती है वह बिन्दु सूर्यंकेन्द्र बिन्दु से पड्भान्तर (छः राशि अन्तर) पर होता है। सूर्योदयकाल में सूर्याधिष्ठित अंश (जिस अंश में सूर्य है) से षड्भान्तर (छः राशि अन्तर) पर पश्चिम बिन्दु ही में अवलम्ब की छाया यन्त्र परिधि में लगती है, उसके बाद ज्यों—ज्यों सूर्य ऊपर जाते हैं त्यों त्यों लम्ब की छाया पश्चिम बिन्दु से नीचे जाती है। वही लम्ब से त्यक्त अंश है, वह सूर्याधिष्ठित अंश से लेकर (आरम्भकर) उन्नतांश ही है। यह यन्त्र घटिकाओं से अङ्कित है इसलिये यन्त्र मुक्त (यन्त्र से त्यक्त) घटी सूर्योदय से गत घटी है। इस चक्रयन्त्र का आधा वृत्तार्थ रूप चाप यन्त्र होता है। उस चाप यन्त्र में भी वृत्त की अर्थकारिणी व्यास रेखा के मध्य में सूक्ष्म छिद्र और तद्गत लम्ब चक्र यन्त्र ही की तरह देना चाहिये। चक्र यन्त्र के अनुसार ही इस चाप यन्त्र में भी वृत्तार्थ ही से उन्नतांश और उन्तत घटी का ज्ञान करते हैं। शिष्यधीवृद्धिद तन्त्र में वृत्तां कृत्वा फलकं षड्वगांं क्र तथा च षष्ट्यङ्कम् इत्यादि विज्ञान भाष्य में लिखित, लल्लाचार्योक्त श्लोकों के आशय को श्रीपति ने श्लोकान्तर से कहा है। सिद्धान्तिशरोमिण के गोलाध्याय में 'चक्र चक्रांशाङ्क परिधौ श्लथम् इल्ला धिकाधारम्' इत्यादि श्लोकों से भास्कराचार्य ने भी चक्रयन्त्र उसी तरह कहा है इति ।।१८।।

# इदानीं यष्टघाशङ्क्वाद्याह।

# यिष्टिस्तियंग्धार्या नष्टच्छायावलम्बकः शङ्कुः । दृष्ट्यान्तरमनुपातात् स्वाहोरात्रार्धमग्रा च ॥१६॥

सु. भा.—क्षितिजवृत्तकेन्द्रगता यष्टिस्तथा धार्या यथा सा नष्टच्छाया स्यात्। एवं यष्टिव्यासार्धभवगोले यष्टिघग्रे रिवकेन्द्रं भवित तस्मात् क्षितिजोपिर योऽवलम्बकः स शङ्कुभैवित । यष्टिमूलाच्छङ्कुमूलपर्यन्तमन्तर दृग्ज्या भवित । श्रनुपातात् यष्टेरनुपातात् स्वाहोरव्यासार्घं द्युज्या तथाऽग्रा च साध्या । उदयकाले रिवकेन्द्रोपिर यष्टचनुपातेनार्थाद्यष्टचग्रप्रपातेन क्षितिजे तत्प्राग् बिन्द्वन्तरमग्रांशाः ततः पलकर्णेन द्वादशकोटिस्तदाऽग्रया कि जाता क्रान्तिज्या । तत्कोटिज्या द्युज्या प्रसिद्धेव । 'यष्टचग्राल्लम्बोना ज्ञेया दृग्ज्या नृकेन्द्रयोर्मध्ये' इति तथा उदयेऽस्ते यष्टचग्रप्राच्यपरा मध्यमग्रा स्यात्—इति च भास्करोक्तं चिन्त्यम् ॥ १६ ॥

वि.मा.—क्षितिजवृत्तकेन्द्रगता यष्टिस्तथा धार्या यथा सा नष्टद्युतिर्भवेत् । एवं यष्टिव्यासार्घोत्पन्नगोले यष्टचग्रे रिवर्भविति, रिवकेन्द्रात् क्षितिज धरातलो-पिर योऽवलम्बकः सशङ्कुर्भविति । यष्टिमुलाच्छङ्कुमूल पर्यन्तं दृग्ज्या भविति । यष्टेरनुपातात् स्वाहोरात्रार्धं (द्युज्या) स्रग्ना च साध्या । यष्टचग्रपूर्विपर रेखयो-रन्तरं त्रिज्यावृत्ते ज्यार्धवत् स्थितम् । साग्रा ज्ञेया । ततः पलकर्गोन द्वादशकोटि-स्तदाऽग्रया कि जाता क्रान्तिज्या, ततः ्रित्रं —क्रांज्या = द्युज्या, "यष्ट्रचाग्राल्ल-

म्बोना ज्ञेया हग्ज्या नृकेंन्द्रयोर्मध्ये'' तथा ,उदयेऽस्ते यष्टचग्रप्राच्यपरामध्यमग्रा स्यात्' इति भास्करोक्तं विविच्य ज्ञेयमिति ॥१९॥

# ग्रव यण्टि से शङ्कु ग्रादि को कहते हैं।

हि. मा. — क्षितिज वृत्तकेन्द्रगत यिष्ट को इस तरह रखना चाहिये जिससे छायारिहत यिष्ट हो । एवं यिष्टिक्यासार्घोत्पन्न गोल में यिष्ट के अग्र में रिव होते हैं । रिव केन्द्र से क्षितिज धरातल के ऊपर लम्ब शंकु है । यिष्ट के मूल से शङ्कु मूलपर्यन्त ग्रन्तर हण्या होती है । यिष्ट के प्रपात (पतन) से स्वाहोरात्रार्ध (शुज्या) तथा अग्रा साधन करना चाहिये प्रयात् उदयकाल में रिवकेन्द्र के ऊपर यष्ट्रधग्र के प्रपात से क्षितिज में उसका और पूर्व बिन्दु का अन्तर अग्रा है, तब पलकर्गा में यदि द्वादश कोटि पाते हैं तो अग्रा में क्या इस अनुपात से क्रान्तिज्या ग्राती है, इसकी कोटिज्या √(त्रि॰—क्रांज्या) = खुज्या, सिद्धान्तिशिरोमिण के गोलाघ्याय में 'यष्ट्रधग्राल्लम्बो ना ज्ञेया हण्या नृकेन्द्रयोर्मध्ये' तथा 'उदयेऽस्ते यष्ट्रधग्राच्यपरामध्यमग्रा स्यात्' यह भास्करोक्त के विचार करने से स्फुट है इति ॥१६॥

# इदानों यष्टियन्त्रमाह।

परिलिख्य वृत्तमवनौ यिष्टिक्यासार्धमन्यदस्यान्तः । स्वाहोरात्रार्घार्धं घटिका षष्टचङ्कितं परिघौ ॥२०॥ यिष्टिक्यासार्धेऽग्रा यष्टयग्रान्तरसमज्यया धनुषि । घटिका द्वितीयवृत्ते याताः प्रागपरतः शेषाः ॥२१॥

सु. भा. — भ्रवनौ समावनौ यिष्टिक्यासार्धं वृत्तं परिलिख्यस्यान्तरेककेन्द्रकमन्यद् द्युज्यावृत्तं च स्वाहोरात्रार्धार्धं स्वाहोरात्रार्धं द्युज्या सैवार्धं व्यासदलं यस्य
तच्च परिलिख्यास्य परिधौ घटिकाषष्टचिङ्कृतं कार्यम् । ततो यिष्टिक्यासार्धे गोले
यत्र यिष्टिनंष्टद्युतिर्जाता तत्र यिष्टः स्थिरा कार्या । क्षितिजेऽग्रायास्तद्यष्टद्यग्रस्य
च यदन्तरं तत्समा या ज्या पूर्णंज्या तया द्वितीयवृत्ते द्युज्यावृत्ते यद्धनुर्भवेत् तिस्मन्
धनुषि या घटिकास्ताः प्राक् कपाले याता ग्रपरतः पश्चिमकपाले शेषा दिनशेषा
घटिकाः स्युः । 'त्रिज्याविष्कमभार्धं वृत्तं कृत्वा दिगिङ्कृतं तत्र' इत्यादिभास्करोक्तमेतदनुरूपमेव । एकस्मिन् दिने यदि द्युज्या स्थिरा स्यात् तदैवानेन विधिना
कालज्ञानमिति स्फुटं सिद्धान्तविदाम् ॥ २०-२१॥

वि. मा.—ग्रवनौ (समपृथिव्यां) यष्टिव्यासार्घेन वृत्तं परिलिख्यास्यान्तः (मध्ये) स्वाहोरात्रार्घार्धं (स्वाहोरात्रार्घ) द्युज्या सैवार्घं व्यासार्घं यस्य तच्चैक-केन्द्रकमन्यद् द्युज्यावृत्तं परिलिख्यास्य परिधौ घटिका षष्टचङ्कितं कार्यम् । ततौ

यष्टिन्यासार्थेगोले यत्र यष्टिनंष्टचुतिर्जाता तत्र यिष्टः स्थिरा कार्या । क्षितिजेऽग्रायास्तचष्टचग्रस्य च यदन्तरं तत्समा या पूर्णंज्या तया द्वितीयवृत्ते (चुज्यावृत्ते) यद्धनु(चापं) भेवेत्तस्मिन् धनुषि (चापे) या घटिकास्ताः पूर्वकपाले गताः, ग्रपरतः
पश्चिमकपाले) शेषाः (दिनशेषाः) घटिकाः स्युः । यद्येकस्मिन् दिने चुज्या स्थिरा
भवेत्तदैवानेन विधिना कालज्ञानं भवितुमर्हतीति । सिद्धान्तशेखरे—

"संसाधिताशं कृतचक्रभागं विधाय वृत्तं समभूप्रदेशे।
विजयाङ्गुलाङ्कां सुसमां च यष्टि नष्टद्युर्ति तज्जठरे निदध्यात्॥
तदग्रलम्बः खलु शङ्कुरुक्तस्तन्मूलकेन्द्रान्तरमत्र हण्या।
पूर्वापरात्तिद्दिवरं भुजः स्याछङ्क्र् वग्रमस्तोदयसूत्रमध्यात्॥
शङ्क्र् वग्रमर्कौर्गुरिगतं विभक्तः तल्लम्बकेन स्फुटमक्षभा स्यात्।
ग्रग्रग्रग्रभागान्नतकालमौर्वी कार्येह खल्वङ्गुलवृत्तजाता॥"

श्रीपितनैवं कथ्यते; एतेषामयमर्थः—समपृथिव्यां पूर्वादिदिशां ज्ञापकैश्चिन्हैः सिहतं षष्ट्यिषकशतत्रयमिताः समाना भागाः कृता यस्मिन् तत्—एतादृशं वृत्तं विधाय तज्जठरे (मध्ये-केन्द्रं वा) स्वेच्छानुसारं यावदङ्गुलतुल्या त्रिज्या किल्पता भवेत्तावद्भिरङ्गुलचिन्हैश्चिन्हितां सर्वतोऽपि निम्नोन्नतभावरिहतां छायाहीनाम-र्थात् सूर्याभिमुखं यिष्टस्तथा स्थापिता भवेद्यथा स्वमार्गे विधिता सती सूर्यविम्ब-केन्द्रं गच्छेत्तादृशीं यिष्ट धारयेत् । यष्टचग्रात् भूपिर पात्यमानोलम्बः शङ्कुः । स्यस्मिन् वृत्तं शङ्कुमूलकेन्द्रान्तरं दृग्ज्या (नतांशज्या) भवित । पूर्वापरसूत्राच्छ-ङ्कुमूलस्यान्तरं भुजसंज्ञको भवित । उदयास्तसूत्राच्छङ्कुमूलं यावच्छङ्क्वयः संज्ञकम् । सस्य नाम भास्करेगा शङ्कृतलं कथ्यते । शङ्कृतम् यावच्छङ्क्वतलं) द्वादशिभर्गुणितं पूर्वकथितलम्बेन (शङ्कुना) विभक्तं तदा स्फुटा पलभा स्यात् । स्वदेशसम्बन्धिनी पलभा भवतीति । अग्राग्रविन्दोरत्र ग्रङ्गुलवृत्तजाता नतांशज्या कार्या । प्रथमं त्रिज्यारूपा यष्टिर्यावन्मिताङ्गुला रिचता तदङ्गुलव्यासार्धवृत्तनसम्बन्धिनी दृग्ज्या कर्त्ववेति ।

### म्रत्रोपपत्तिः।

समायां भुवि कृतिदिक् चिन्हं भगगांशािङ्कृतं च यद्वृतं तत् क्षितिजवृत्तम् । विजयाङ् गुला यिष्टि स्त्रिज्यास्वरूपा । सा नष्टचुतिर्यथा भवेत्तथा धार्या, येन यष्टचम्नं विधतं सद्रविविम्बकेन्द्रं गच्छेत् । नष्टचुतेर्यष्टेरग्रादधो यावान् लम्बस्तावांस्तिस्मन् समये शङ्कुः । त्रिज्यारूपाया यष्टेः शङ्कुरूपलम्बस्य च वर्गान्तरमूलं नतांशज्ये (हग्ज्या) ति शङ्कुमूबुलत्तकेन्द्रयोरन्तरं भुजः । अग्रग्रग्रयोः (पूर्वापर दिग्गतयोरुपरिगता रेखोदयास्तस्त्रम्) उदयास्तस्त्रस्य शङ्कुमूलस्य चान्तरं शङ्कृवगं शङ्कुत्तलनाम्ना प्रसिद्धम् । तदा शंङ्कुना

यदिशङ्कुतलं भुजो लभ्यते तदा द्वादश शङ्कुना किमित्यनुपातेन समागच्छिति पलभा । अग्राग्रविन्दोरङ्गुलवृत्तजाता नतज्या उन्नतज्या वा कार्येत्यस्यायमाशयः । शङ्कुमूलयिष्टमूलयोरन्तरं दृग्ज्या तत्स्वरूपं प्रथममुक्तम् । अत्र तु नतांशज्या, अग्राग्रविन्दोः यष्टश्चङ्गुलमानानुसारेगाङ्गुलात्मकप्रमाग् वती आनेया । शङ्कु-मूलयिष्टमूलयोरन्तरे एकां सरलशलाकां धृत्वा तामङ्गुलेन मापयित्वा तन्मानं ज्ञेयमिति ।

### अत्र लल्लोक्तम्—

दिङ् मध्यस्थितमूला यष्टिनंष्टप्रभा त्रिगुरातुल्या । धार्या तदीयलम्बककाष्ठांशा वोदिता भागाः ॥ यष्टिस्त्रिज्याकर्गों लम्बोना कृतिविशेषपदमनयोः । दृग्ज्या छाया प्राक्पर लम्बनिपातान्तरं वाहुः ॥ प्रागपराग्रासक्तं सूत्रं शङ्क्ष्वन्तरं हृतं सूर्यैः । यष्टचवलम्बविभक्तं यष्टचवलम्बेन विषुवद् भा ॥"

### इति । भास्करोक्तं च-

"त्रिज्याविष्कम्भार्षं वृत्तं कृत्वा दिगङ्कितं तत्र । दत्वाऽग्रां प्राक् पश्चाद् द्युज्यावृत्तं च तन्मध्ये ॥ तत्परिषौ षष्टचङ्कं यष्टिर्नष्टद्युतिस्ततः केन्द्रे । त्रिज्याङ्गुला निषेया यष्ठचग्राग्रान्तरं यावत् । तावत्या मौर्व्या यद् द्वितीयवृत्ते घनुर्भवेत्तत्र । दिनगतशेषा नाडघः प्राक् पश्चात् स्युः क्रमेगीवम् ॥"

इति सर्वथा श्रीपत्युक्तसममेवेति ॥२०-२१॥

### भ्रब यष्टियन्त्र को कहते हैं।

हि. भा.—समान पृथ्वी में यिष्ट व्यासार्घ से वृत्त लिखकर इसके मध्य में खूज्या व्यासार्घ से एक कैन्द्रिक अन्यद्युज्या वृत्त लिखकर इसकी परिधि में साठ घटी अिक्कृत करनी चाहिये। अनन्तर यष्टिव्यासार्घगोले जहां यष्टि नष्टद्युति (छाया रहित) हुई है वहां यष्टी को स्थिर करना। क्षितिज में उस यष्ट्रच्य का और अग्रा का जो अन्तर है तत्तुल्य पूर्यांज्या से द्वितीयवृत्त (खुज्यावृत्त) में जो चाप हो उस चाप में जो घटी है वह पूर्वंकपाल में दिनगत घटी होती है भौर पश्चिमकपाल में दिनशेषघटी होती है। यदि एक दिन में खुज्या स्थिर मानीजाय अर्थात् एक दिन में रिव की क्रान्ति स्थिर हो तब ही इस विधि से कालज्ञान हो सकता है। सिद्धान्तशेखर में 'संसाधिताशं कृतचक्रभागं विधायवृत्तं समभूप्रदेशे। त्रिज्या-इक्षुलाङ्कां' इत्यादि श्लोकोक्त के अनुसार कहते हैं। इन श्लोकों का यथं यह है कि समान

पृथिवी प्रदेश में वृत्त लिखकर उसमें पूर्वादि दिशाओं के सूचक चिन्ह श्रिङ्कित करना तथा तीन सौ साठ समान भाग कर देना, उसके मध्य (केन्द्र) में श्रपनी इच्छा के अनुसार जितने श्रङ्गुल की त्रिज्या हो उतनी श्रङ्गुल संख्या से चिन्हित श्रौर सब तरह से समान छायाहीन श्रर्थात् सूर्याभिमुख यिष्टं इस तरह रखी जाय जिससे स्वमार्ग में यिष्ट को बढ़ाने से सूर्यविम्ब केन्द्र में चली जाय। यष्ट्रधग्र से भू (क्षितिज) के ऊपर लम्बशङ्कु होता है। इस वृत्त (पूर्व लिखितवृत्त) में शङ्कुमूल श्रौर केन्द्र के श्रन्तर हग्ज्या (नतांशज्या) होती है शङ्कुमूल से उदयास्त सूत्रपर्यन्त लम्बरूपरेखा शङ्कु वग्र संज्ञक है यही शङ्कुतल हैं। शङ्कु वग्र (शङ्कुतल) को बारह से गुणाकर पूर्वकथित लम्ब (शङ्कु) से भाग देने से स्फुट पलभा होती है। पहले त्रिज्यारूप यष्टि जितनी श्रङ्गुल की बनाई गई तदङ्गुल व्यासार्धवृत्त सम्बन्धिनी हग्ज्या करनी चाहिये इति।।

#### उपपत्ति ।

समान पृथिवी में इष्ट त्रिज्या से वृत्त बनाकर उसमें दिशाओं के चिन्ह ग्रिङ्कित कर देना तथा भगगांश श्रङ्कित कर देना चाहिये वह क्षितिज वृत्त है । त्रिज्याङ्गुल यष्टि को इस तरह रखना चाहिये जिससे उसकी छाया नष्ट हो तथा उसको बढ़ाने से यष्ट्रचग्र रिव बिम्बकेन्द्र में चला जाय । नष्टद्युति (छाया रहित) यष्ट्रचग्र से नीचे जितना लम्ब है उतना उस समय में शङ्कु है । त्रिज्यारूप यष्टि ग्रीर शङ्कुरूप लम्ब का वर्गान्तरमूल नतांशज्या (इंग्ज्या) शङ्कुमूल और वृत्तकेन्द्र का अन्तर रूप होता है। शङ्कुमूल से पूर्वीपर रेखा के ऊपर लम्ब भुज है । अग्राग्रगत (पूर्व पश्चिम दिग्गत ग्रग्राद्वयगत) रेखा उदयास्तसूत्र है। उदयास्तसूत्र श्रीर शङ्कुमूल का लम्बरूप श्रन्तर शङ्क् वग्र ( शङ्कुतल ) है। तब श्रनुपात करते हैं यदि शङ्कु में शङ्कुतल भुज पाते हैं तो द्वादशाङ्गुल शङ्कु में क्या इस अनुपात से स्कुट पलभा भ्राती है। शङ्कुमूल भ्रौर यष्टिमूल का अन्तर हज्ज्या है इसका स्वरूप पहले कहा गया है। यहां नतज्या — अग्राग्र बिन्दु से यष्टचङ्गुल मान के अनुसार अङ्गुलात्मक प्रमाण वाली लानी है। शङ्कुमूल और यष्टिमूल के अन्तर में एक सरल शलाका रख कर उसको ग्रङ्गुल से मापन कर उसका मान समफना चाहिये। यहां लल्लाचार्य "दिङ्मध्य-स्थित मूला यष्टिर्नेष्टप्रभा त्रिगुरातुल्या" इत्यादि विज्ञान भाष्य में लिखित श्लोकों के अनुसार कहते हैं सिद्धान्तिशरोमिंगा के गोलाध्याय में" त्रिज्या विष्कम्भार्षं वृत्तं कृत्वा दिगङ्कितं तत्र" इत्यादि विज्ञानभाष्य में लिखित श्लोकों से भास्कराचार्य सर्वथा श्रीपत्युक्त के समान ही कहा है इति ॥२०-२१॥

इदानीं प्रकारान्तरेगा घटिकानयनमाह।

यष्टेः स्वाहोरात्रार्घभाजिताऽन्तरदलाहता त्रिज्या।

फलचापांशा द्विगुरााः षड्भिर्वा भाजिता घटिकाः ॥२२॥

सु. भा. — पूर्वमग्रा यष्टचग्रयोरन्तरं मित्वा यद्गृहीतं तस्य दलं कार्यम् । तेनान्तरदलेन त्रिज्याऽऽहता यष्टेः स्वाहोरात्रार्धेन यष्टिव्यासार्धभवद्युज्यया भाजिता फलचापांशा द्विगुणाः षड्भिर्भाजिता वा घटिकाः स्युरिति ।

### म्रत्रोपपत्तिः।

श्रन्तरं घटचं शपूर्णंज्याऽतस्तदर्धं तदर्धंज्या द्युज्याव्यासार्घे ततोऽनुपातेन त्रिज्यावृत्तें परिणता कृता तस्याश्चापं द्विगुण्मंशात्मकं तत् पड्भिविभज्य घटिकाः कृता इति स्फुटम् ॥ २२॥

वि. भाः — पूर्वमग्राग्रयष्ट् योरन्तरं मित्वा यद् गृहीतं तस्यार्धं कार्यम् । त्रिज्या तेनान्तरार्घेन गुणिता यष्टेः स्वाहोरात्रार्घेन (यष्टिन्यासार्घोत्पन्नद्युज्यया) भक्ता फलचापांशा द्विगुणाः षड्भिर्भक्ता वा घटिकाः स्युरिति ॥

### म्रत्रोपपत्तिः।

अन्तरं घटघंशपूर्णेज्या, एतस्या ग्रधं घटघंशार्घज्या द्युज्याव्यासार्घे, ततोऽनुपातेन 'द्युज्याव्यासार्घे यदीयं घटघंशार्घज्या लभ्यते तदा त्रिज्याव्यासार्घे कि समागच्छति त्रिज्याव्यासार्घे घटघंशार्घज्या तत्स्वरूपम् = ज्या है घटघंश त्रि द्यु अस्याश्चापं द्विगुरामंशात्मकं तत् षड्भिर्भक्तं तदा घटिकाः स्युरिति ॥

#### सिद्धान्तशेखरे

"न्यस्येदग्रां प्राक् प्रतीच्यग्रतोऽत्र याम्योदक्स्था मध्यदेशान्नतज्या । साध्यः शङ्कुस्तिन्मितिभ्यां स्रमस्तु देयस्तिस्मन् स्वोदयात् स्वाग्रकाग्रात् ॥ विरचित समयांशस्तिन्मतंशङ्कुमस्मिन् तदुदरगतभाग्रं स्थापयेदग्रकाग्रात् । तदविध विगतास्ते कालभागा भवेगुदिनगतघित्काः स्युः कालभागारसाप्ताः ॥'

श्रीपितनैवं कथ्यते । अस्यार्थः — श्रत्रास्मिन् पूर्वलिखितवृत्ते प्राक् प्रतीच्य-ग्रतः (पूर्वापरिबन्दुभ्यां) ग्रग्रां न्यस्येत् । मध्यदेशात् (वृत्तकेन्द्रबिन्दोः) याम्योदक्-स्था (दक्षिणिदिक्स्था, उत्तर दिक्स्था वा) नतज्या देया । तन्मितिभ्यां (ग्रग्रान्तज्ययोमीनाभ्यां) शङ्कुः साध्यः । तिस्मिन् वृत्ते भ्रमः — अहोरात्रवृत्तं — विरचितसमयांशः (विरचिताश्चिन्हिताः समयांशा यस्मिन्) षष्टिघटीभिरहोरात्रवृत्तं चिन्हितं (ग्रिङ्कित) भवति, श्रत्राहोरात्रवृत्तमंशात्मकमर्थात् षष्ट्यिषकशतत्रय भागात्मकं कार्यम् । तच्च स्वोदयात् (स्वोदयिबन्दोः) स्वाग्रकात् (अग्राग्रबिन्दोः) दातन्यः । ग्रस्मिन् षष्ट्यिषकशतत्रयभागाङ्कितेऽहोरात्रवृत्ते तन्मितंशङ्कु (ग्रग्रानत ज्ययोर्मानानुसारेण मापितमङ्गुलात्मकं शङ्कुं तदुदरगतभाग्रं यथा स्यात्तथा स्थापयेत् । अग्रकाग्रात् तदविध (अग्राग्रबिन्दोः) शङ्कुमूलपर्यन्तमहोरात्रवृत्ते येंऽशास्ते गता कालभागाः स्युः । ते कालभागाः षड्भिभंक्ता सन्तो दिनगत घटिका भवेयुरिति ।।

#### ग्रस्योपपत्तिः ।

समभूमौ वृत्तकरणं यष्टेः राङ्कोश्च स्वरूपादिकं कथितमेव। स्रत्र पूर्वापर-बिन्दुभ्यामङ् गुलात्मिकाऽग्रा वृत्तकेन्द्रबिन्दोश्च नतज्या दत्ता, यष्टचप्रबिन्दोर्लम्बरू-पोऽङ् गुलात्मकः राङ्कुस्तदनुसारिमानेन मापित्रचक्रभागाङ्कितेऽहोरात्रवृत्ते यष्टि-संलग्नस्तथा स्थापितो यथा छायाग्रं वृत्तकेन्द्रेपतेत्। एवमग्राग्रबिन्दोः राङ्कुमूल-पर्यन्तमहोरात्रवृत्तीयमंशादिमानं कालभागाः स्युरिति । अत्र श्री भास्कराचार्येग् "स्रग्राग्रउदितो रवियंथा यथाऽहोरात्रवृत्त गत्योपरि गच्छित तथा तथा केन्द्रे निवेशितमूलाया यष्टेरग्रे भ्राम्यमाग्रे यिनष्टव्ह्युतिः स्यात्। यतो यष्टचग्रे रिवः। स्रग्राग्रादकं यावदहोरात्रवृत्ते यावत्यो घटिकास्तावत्यो दिनगता भवन्ति। तत्राकाशे द्युज्यावृत्तं लेखितुं नायाति।

स्रतोऽग्राग्र यष्ट्रचग्रयोरन्तरं शलाकया मित्वा गृहीतम् । ततो भुवि लिखिते सुज्यावृत्ते तया शलाकया ज्यारूपया धनुषि घटिकाज्ञानं युक्तियुक्तम् ॥"

इत्युच्यते, श्रनयोर्भावनया श्रीपत्युक्तं भास्करोक्तं च सर्वमुपपद्यते । श्रत्र कलांशाः षड्भक्ता घटिका भवन्त्यहोरात्रवृत्ते शष्ट्यधिकशतत्रयमंशा श्रङ्किताः सन्ति तेन षष्टिघटिकानुसारेगा षड्भिरंशैरेका घटिका भवतीति । श्रीपत्युक्तमिदं यष्टियन्त्रेगा समयज्ञानं भास्करोक्तं च लल्लोक्तस्य—

> "श्रप्राग्राच्छङ्कुभ्रमवृत्ते कालांशकैलिखेद्राशिम्। दिङ्मध्यच्छायाग्रं कृत्वाऽत्र स्थापयेच्छङ्कुम् ॥ अग्राग्राच्छङ्कुतलान्तरस्थिता वा समुद्गता भागाः। कालांशाः षट्कहृता भवन्ति घटिका दिनस्य गताः॥ इत्यस्यैवानु रूपमिति विज्ञैविवेच्यम्॥२२॥

### अब प्रकारान्तर से घटिकानयन को कहते हैं।

हि. भा.—पहले अग्राप्र और यष्ट्रचग्र के अन्तर को मापन कर जो लिया गया है। उसके आपे को त्रिज्या से गुर्गाकर यष्टि व्यासार्घोत्पन्न द्युज्या से भाग देने से जो फल हो उसके चापांश को दो से गुर्गा कर छः से भागदेने से वा (प्रकारान्तर से) घटी होती है इति।।

#### उपपत्ति ।

ग्रगाग्र भीर यष्ट्रचग्र के म्रन्तर घटचंश की पूर्णज्या है। इसका म्राधा चुज्याव्यासार्ध में घटचं शार्घज्या होती है। तब भ्रनुपात करते हैं यदि चुज्याव्यासार्घ में यह घटचं शार्घज्या पाते हैं तो त्रिज्या व्यासार्ध में क्या इस ग्रनुपात से त्रिज्याव्यासार्ध में घटघ शार्घज्या ग्राती है ज्या है घटचंश.त्रि इसके चाप को दो से गुगा करने से ग्रंशात्मक होता है उसको छ: से भाग देने से घटी होती है इति । सिद्धान्तशेखर में "न्यसेदग्रां प्राक् प्रतीच्यग्रतोऽत्र याम्योद्कस्था मध्यदेशान्नतज्या" यहां संस्कृतोषपत्ति में लिखित श्लोकों के श्रनुसार श्रीपति कहते हैं। इन श्लोकों का ग्रर्थ यह है—इस पूर्वेलिखित वृत्त में पूर्वेबिन्दु भौर पश्चिम बिन्दु से ग्रया का न्यास करना चाहिये। वृत्त के केन्द्र विन्द् से दक्षिए। दिशा में वा उत्तर दिशा में नतज्या दान देना चाहिये ग्रग्ना ग्रौर नतज्या के मानों से शङ्कु स धन करना । उस वृत्त में भ्रहोरात्रष्ट्रत साठ घटी से भ्राङ्कित होता है यहां भ्रहोरात्र वृत्त को श्रंशात्मक श्रथीत् तीन सौ साठ श्रंशात्मक करना चाहिये। वह अग्राग्न विन्दु से देना चाहिये म्रर्थात् महोरात्रवृत्त में स्रंश विभाग स्वोदयिबन्दु (म्रग्राग्रविन्दु) से करना चाहिये। इस तीन सौ साठ ग्रंश से ग्रङ्कित श्रहोरात्रवृत्त में श्रग्रा ग्रौर नतज्या के मानानुसार मापित शङ्कु को उसके मध्यक्त छायाग्र में जैसे हो वैसे स्थापन करना चाहिये । अग्राग्र बिन्दु से शङ्कुमूल पर्तन्त महोरात्रवृत्त में जो मंश है वे गतकलांश है, उन गतकलांश को छ: से भाग देने से दिनगत घटी होती है इति ॥

### इसकी उपपत्ति।

समान पृथिवी में वृत रचना और यिष्ट-शङ्कु के स्वरूपादि पूर्व में कथित ही है। इस वृत्त में पूर्व बिन्दु और पिरचम बिन्दु से झ्या दान देना तथा वृत्त केन्द्र बिन्दु से नतज्या देनी चाहिये। यष्ट्यप्र बिन्दु से लम्बरूप अङ्गुलात्मकशङ्कु को चक्रभाग (३६० अंश) से अङ्कित अहोरात्रवृत्त में यिष्ट से संलग्न उस तरह स्थापना करना चाहिये जिससे छायाप्र वृत्तकेन्द्र में पितत हो। इस तरह अग्राप्र बिन्दु से शङ्कुमूल पर्यन्त अहोरात्रवृत्तीय अंशादिमान कालभाग होते हैं। यहां भास्कराचार्य संस्कृतोपपत्ति में लिखित 'अग्रागउदितो-रिवः' यहां से लेकर घटिकाज्ञानं युक्ति युक्तं पर्यन्त' कहते हैं, इन दोनों का विचार करने से श्रीपत्युक्त और भास्करोक्त भी उपपन्न होता है। यहां काजांश को छः से भाग देने से घटी होती है। यहां श्रीर मास्करोक्त भी उपपन्न होता है। यहां काजांश को छः से भाग देने से घटी होती है। यह श्रीपत्युक्त यियन्त्र से समय ज्ञान भास्करोक्त भी शिष्यधी-वृद्धिद तन्त्र में लल्लोक्त 'अग्रायाच्छङ्कुभ्रमवृत्ते कालांशकैलिखेद्राशिम्' इत्यादि संस्कृतोपपित्त में लिखित इन श्लोकों के अनुरूप ही इसको विवेचक लोग विचार कर देखें इति ।।२२।।

### अथवा घटिकानयनमाह।

# यिष्टिक्यासार्धे वा घटिका शङ्कः वङ्गुलादितो मूलात्। अवलम्ब सूत्र युत्तचा घटिका दिवसस्य गतशेषाः ॥२३॥

सु. मा.—वा यिष्टिव्यासार्धे गोले शङ्क्वङ्गुलादितो मूलात् शङ्कुतलाच्च घटिकाः साध्याः । शङ्कुतलात् शङ्कोश्चेष्टहृतिमानीय ततो द्युज्यानुपातेनेष्टान्त्यां सूत्रं चानीय त्रिप्रश्नोक्तचा घटिका साध्या इत्यर्थः । स्रर्थाद् गोलरचनां विनैव नष्टद्युतेर्यष्टेरग्रादवलम्बकं कृत्वा शङ्कुं विज्ञाय १९ सूत्र युक्तचा द्युज्येष्टान्त्या-दिना त्रिप्रश्नोक्तचा गतशेषा घटिका ज्ञेयाः ॥ २३ ॥

वि. मा — वा यष्टिव्यासार्थे गोले शङ्क वङ्गुलादितो मूलात् (शङ्कुत — ल्लाच्च) घटिकाः साघ्याः । अर्थात् √शङ्कु मेशंतल = इहृति ततो द्युज्ययेष्टहृति- लंभ्यते तदा त्रिज्यया किं समागतीष्टान्त्या = हहृति ति तत्र द्यु तत्र तत्र त्र प्रयोन्नतादून युताच्चरेगोत्यादि भास्करोक्तविधिनोन्नतकालाववोधः सम्यग्भवतीति । वा ऽवलम्बसूत्रयुत्तचा दिवसस्य गतशेषा घटिकाः साध्या अर्थाद्गोलरचनां विनेव नष्टद्युतेयंष्टेरग्रादवलम्बकं कृत्वा शङ्कुं ज्ञात्वा १९ सूत्रयुत्तचा द्युज्यां तत इष्टान्त्यां ज्ञात्वोपर्यक्तरीत्या दिवस्य गतघटिकाः शेषघटिकाश्च विज्ञान्तव्या इति ॥२३॥

### भ्रव पुनः घटिकानयन को कहते हैं।

हि. भा.— वा यष्टिव्यासार्घगोल में शक्क वङ्गुल ग्रीर शङ्कुतल से घटी साधन करना चाहिये अर्थात् √ शङ्कुरै + शंतल = इहृति । तब अनुपात 'द्युज्या में इष्टहृति पाते हैं तो त्रिज्या में क्या' से इष्टान्त्या का ज्ञान होता है इसमें चरज्या संस्कार करने से सूत्र का ज्ञान होता हैं तब 'अर्थोक्षतादूनगुताच्चरेगोत्यादि' भास्करोक्त सूत्र से उन्नतकाल ज्ञान होता हैं । अथवा अवलम्बसूत्र युक्ति से दिनगतघटी और दिनशेष घटी साधन करना चाहिये अर्थात् बिना गोल रचना के नष्ट द्युति यष्टि के अप्र से अवलम्बसूत्र कर शङ्कु को जानकर १६ सूत्र युक्ति से द्युज्या ज्ञान से इष्टान्त्या जानकर त्रिप्रश्नोक्त विधि से दिनगतघटी और दिनशेष घटी का ज्ञान सुलभ ही है इति ।।२३।।

इदानीं यष्टियन्त्रेरा वेधेन रविचन्द्रान्तरांशानाह।

यिष्टिन्यासार्घोद् भुवि वृत्तं भगराांशकं कृत्वा । यिष्टकीलप्रोते मूले पृथगप्रयोर्बद्धे ॥२४॥

# ताभ्यां सूर्यशशाङ्कौ वेध्यावप्रस्थितेन सूत्रेगा। सूत्रज्ययाऽन्ररांशा ये तेऽर्कविभाजिता स्तिथयः ॥२५॥

सु० भा० — यष्टिक्यासार्घात् समभुवि भगगांशकं चक्रांशाङ्कितं वृत्तं कृत्वा केन्द्रगतः कीलः कार्यः । कीलप्रोते द्वे यष्टी वृत्तन्यासार्धं प्रमागो कार्ये । किविशिष्टे यष्टी मूले पृथगग्रयोर्वद्धे । यत्र कीले यष्टिम्लाग्रे ते एकत्र मिलिते कार्ये इत्यर्थः । ताभ्यां मूलमिलिताभ्यां यष्टिभ्यां मूलस्थद्दष्टचा युगपदेकेकयष्टचग्रगतौ सूर्यश्चाञ्चौ गगाकेन यष्टचग्रयोर्गतं यत् सूत्रं तेन सूत्रेगा वेष्यौ । तत् सूत्रं च रिवचन्द्रान्तरांशपूर्णंज्या गोलयुक्तचा भवित । अतस्तत्सूत्रज्यया पूर्णंज्यया क्षितिजवृत्तं यद्धनुस्ते रिवचन्द्रयोरन्तरांशा भवित । एवं येऽन्तरांशास्तेऽकंविभाजिता द्वादश-भक्तास्तिथयः स्युरिति ॥ २४-२५ ॥

वि. भा-समपृथिव्यां यष्टिव्यासार्धात् वृत्तं कार्यं तच्च चक्राशाङ्कितं कृत्वा तत्केन्द्रगतः कीलः कार्यः। कीलप्रोते वृत्तव्यासार्धं प्रमाणे द्वेयष्टी कार्ये। मूले पृथगप्रयोर्वद्धे (कीले यष्टिमूलाग्रे एकत्र मिलिते कार्ये) ताभ्यां मूलमिलिताभ्यां यष्टिभ्यां मूलस्य दृष्ट्या युगपदेकैक यष्ट्रचग्रगतौ सूर्यं चन्द्रौ यष्ट्रचग्रयोगंतेन सूत्रेण वेष्यौ। तद्यष्ट्रचग्रगतं सूत्रं रिव चन्द्रान्तरांश पूर्णंज्या भवति ग्रतस्तत् सूत्रज्यया (पूर्णंज्यया) क्षितिजवृत्ते यच्चापं ते रिव चन्द्रान्तरांशा भवति। तेऽन्तरांशा दृष्टिश भक्ता स्तदा तिथयो भवन्तीति। सिद्धान्तशेखरे

"वृत्ते चक्रव लाङ्कितेऽक्ष शकटाकारं शलाकाद्वयं कृत्वा तेन विवेययेद्रविविधू लम्बस्य पातस्तयोः।

यावन्तः परिधो तदन्तरलवाः सूर्येदिभक्ता गताः शुक्ले स्युस्तिथयो भवन्ति बहुले पक्षे च भोग्याः स्फुटम् ॥

श्रीपतिनोक्तमाचार्योक्तानुरूपमेव । श्रस्य सूत्रस्यायमर्थः—भगणांशांङ्कितेऽत्रवृत्ते शकटाकारं शलाकाद्वयं मूले इद्विद्धं यिष्टिद्वयं विधाय तेन शलाकाद्वयेन
सूर्यचन्द्रौ वेधयेदर्थात् यष्ट्रचोर्मूले एकत्र कृत्वा मूलमिलिताभ्यां तभ्यां यष्टिभ्यां
मूलस्थ दृष्टचा यष्ट्रचग्रगतौ सूर्यचन्द्रौ वेधयेत् (तयोर्यष्ट्रग्रगतयो रिवचन्द्रयो र्लम्बस्य
पातः कार्योर्थाद्रविवेधकारि यष्ट्रचग्रादेको लम्बश्चन्द्रवेधकारि यष्ट्रचग्राच्चान्योलम्बः
कार्यः । यावन्तः परिधौ तदन्तरलवा । श्रयमर्थः लम्बयोरन्तरं यत् तत्परिधौ तस्य
येऽन्तरांशा अर्थाज्ज्यावत्सम्पादितस्य लम्बान्तरस्य परिधौ यावन्मिता ग्रंशाः
स्युस्ते द्वादशिभर्माजिताः सन्तः शुक्लपक्षे गतास्त्रिथयः स्युः । बहुले पक्षे (कृष्णपक्षे)
भोग्या ग्रवशेषास्त्रिथयो भवन्तीति ।

#### भ्रत्रोपपत्ति:।

तत्र लम्बनिपाताभ्यां तयोरन्तरं ज्यावद्यद् भवति शकटाकारेण धृतं शला-

काद्वयं तथैव तस्मिन् वृत्ते स्थापितं सद्वा येंऽशास्ते रिवचन्द्रयोरन्तरांशा एव भवन्ति । सूर्यचन्द्रयोरन्तरांशा द्वादशभक्तास्तिथयो भवन्तीति स्फुटमेव । केवलं गिएतिन तिथ्यानयने सूर्योनचन्द्रांशाः क्रियन्ते ते द्वादशभक्तास्त्रदा शुक्लप्रतिपदादि-कास्तिथयो भवन्ति । स्रत्र तु स्रन्तरांशा स्रायान्तीति चन्द्रोनसूर्यांशस्थले तदन्तरांशा द्वादशभक्ता इति चन्द्रतो रिवपर्यन्तमर्थाद्रविचन्द्रयोः पुनर्योगात्मकामावास्यापर्य-न्तं तिथयो भवन्ति ता एव भोग्यास्तिथय इति । स्रत्र लल्लश्च—

"शकटाकृतियिष्टिभ्यां विद्ध्वा रिवशीतग् तदवलम्बे। भगराशिङ्के वृत्ते मुक्त्वा संलक्षयेत् स्थाने।। ग्रन्तरमनयोर्भागा हि सूर्यशिशनोदिवाकरिवभक्ताः। तिथयः शुक्ले याताः कृष्णो शेषाः फलं भवति॥" इत्येतदनुरूपमेव श्रीपत्युक्तमिति॥२४-२५॥

अब यष्टि यन्त्र द्वारा वेध से रिव और चन्द्र के अन्तरांशानयन को कहते हैं।

हि. मा.— समान पृथिवी में यिष्ट व्यासार्ध से वृत्त बनाकर चकांश से श्रिष्कृत कर उसको केन्द्रगत कील करना चाहिये। कीलगत वृत्त के व्यासार्ध तुल्य दो यिष्ट करना, कील में दोनों यिष्टयों के मूल को मिलाकर रखना चाहिये। उन मूल मिलित यिष्टद्वय से मूलस्थ दृष्टि द्वारा एक ही समय में एक एक यष्ट्रघग्रगत सूर्य और चन्द्र को यष्ट्रघग्रगत सूत्र से वेघ करना चाहिये। वह यष्ट्रघग्रगत सूत्र रिव श्रीर चन्द्र की श्रन्तरांश पूर्णंज्या होती है। श्रतएव उस पूर्णंज्या से क्षितिज वृत्त में जो चाप होता है वह रिव श्रीर चन्द्र का श्रन्तरांश होता है। उस श्रन्तरांश को बारह से भाग देने से तिथि होती है। सिद्धान्तशेखर में "वृत्ते चक्रलवांक्कितेऽत्र शकटाकारं शलाकाद्वयं" इत्यादि विज्ञान भाष्य में लिखित श्लोक के श्रनुसार श्रीपित कहते हैं। इस श्लोक का श्रर्थ यह है भगए। क्कित वृत्त में शकटाकार मूल में मिली हुई दो यष्टियों से सूर्य श्रीर चन्द्र को वेघ करना श्रर्थात् दोनों यष्टियों के मूल मिलाकर मूलस्थ दृष्टि से यष्टिद्वय द्वारा यष्ट्रघग्रगत सूर्य श्रीर चन्द्र को वेघ करना चाहिये। यष्ट्रघग्रगत रिव श्रीर चन्द्र से लम्ब गिराना चाहिये। परिधि में लम्बान्तर के जितने श्रंश हैं उनको बारह से भाग देने से शुक्लपक्ष में गत तिथि होती है। कृष्णपक्ष में भोग्य (श्रविषष्ट) तिथि होती है इति।

#### उपपत्ति ।

मूल में मिली हुई दो यिष्टियों से सूर्य और चन्द्र को वेघ करना चाहिये, वेघ करने से यष्ट्रचग्रगत सूर्य और चन्द्र से लम्ब गिराने से लिखित वृत्त में लम्बान्तर के जितने ग्रंश हैं वे सूर्य और चन्द्र के श्रन्तरांश होते हैं। उनको बारह से भाग देने से तिथि होती हैं। केवल गिएात से तिथि साघन में चन्द्र में सूर्य को घटाने से जो श्रन्तरांश होता है उस को बारह से

भाग देने से शुक्ल प्रतिपदादिक तिथि होती है। यहां तो अन्तरांश आते हैं इसिलये चन्द्र-रिहत सूर्य (अन्तरांश) को बारह से भाग देने सेच न्द्र से रिव पर्यन्त अर्थात् रिव और चन्द्र की पुनः योगात्मक अमावास्या पर्यन्त तिथि होती है वे ही भोग्य तिथियां हैं। यहां लल्लाचार्य ने—"शकटाकृति यष्टिभ्यां विद्ध्वा रिवशीत गूतदवलम्बे" इत्यादि संस्कृतो-पपत्ति में लिखित श्लोकों के अनुसार कहा है। लल्लोक्त के अनुरूप ही श्रीपत्युक्त है इति ।।२४-२४।।

# इदानीं प्रकारान्तरेगान्तरांशानयनमाह ।

# सूत्रार्थेगुर्णा त्रिज्या यष्टिह्ता फलधनुद्विगुर्णितं वा । रविचन्द्रान्तरमिष्टव्यासार्घोल्लिखतवृत्तस्य ॥२६॥

सु. मा. पूर्वं यत् पूर्णंज्यासमं सूत्रमागतं तस्याघेंन त्रिज्या गुणा यिष्टिहृता फलघनुद्धिगुणितं वा रविचन्द्रान्तरं भवति । इष्टव्यासार्घोत्लिखितवृत्तस्याग्रे सम्बन्धः।

### भ्रत्रोपपत्तिः।

सूत्रार्धं यष्टिव्यासार्घे रिवचन्द्रान्तरार्धज्या सा त्रिज्या व्यासाध परिगाता । तद्धनुद्धिगुग्गमन्तरांशा भवन्ति ॥२६॥

वि. मा.—पूर्वश्लोकोपपत्तौ रिवचन्द्रान्तरपूर्णज्यासमं यत्सूत्रं समागत तेन त्रिज्या गुणिता यष्ट्या भक्ता लब्धस्य चापं द्विगुणितं वा रिवचन्द्रान्तरांशा भवन्तीति । इष्टव्यासार्घोल्लिखतवृत्तस्याग्रे सम्बन्धः ।

### भन्नोपपत्तिः।

श्रथ सूत्रम् = रिवचन्द्रान्तरांश पूर्णंज्या, अतः सूत्र = ज्याई रिवचन्द्रान्त-रांश, इयं यष्टिव्यासार्घेऽस्ति, ततो ऽनुपातेनेष्ट त्रिज्या व्यासार्घे समानीयते, यदि यष्टि-व्यासार्घे इयं रिवचन्द्रान्तरार्घज्या लभ्यते तदा त्रिज्या व्यासार्घे कि समागच्छति

त्रिज्या व्यासार्घे रिवचन्द्रान्तरार्घज्या तत्स्वरूपम् २ प्रिट

चन्द्रान्तरार्धम् । द्विगुणितं तदा रिवचन्द्रान्तरांशा भवन्तीति ॥२६॥

#### श्रब प्रकारान्तर से श्रन्तरांशानयन कहते हैं।

हि. भा.—पूर्वश्लोक में रिवचन्द्रान्तरांश की पूर्णज्या तुल्य जो सूत्र भ्राया है उससे त्रिज्या को गुर्णा कर यिष्ट से भाग देने से जो लब्ध हो उसके चाप को द्विगुर्णित करने से रिवचन्द्रान्तरांश होता है इति ।

#### उपपत्ति ।

सूत्र = रिवचन्द्रान्तरांश पूर्णज्या, म्रतः सूत्र = ज्या है रिवचन्द्रान्तरांश, यह यष्टि-व्यासार्षगोलीय है। इसको त्रिज्याव्यासार्थ में परिगात करते है। यदि यष्टि व्यासार्थ में यह रिव चन्द्रान्तरार्घज्या पाते हैं तो त्रिज्या व्यासार्थ में क्या इससे त्रिज्या व्यासार्थ में रिव चन्द्रान्तरार्घज्या म्राती है। इसके चाप को द्विगुगित करने से रिवचन्द्रान्तरांश होती है इति ॥२६॥

## इदानीं यष्टियन्त्रेगा दिक्साधनमाह।

# मध्यषृताया यष्टेर्लम्बकशङ्कू प्रवेशनिर्गमने । क्रान्तिवशात् प्राच्यपरे मत्स्याद्यास्योत्तरे साध्ये ॥२७॥

- सु. मा.—समावनाविष्टव्यासार्घेन लिखितस्य वृत्तस्य मध्ये स्थापित-कीलस्य छाया पूर्वकपालस्थे रवौ यत्र प्रतीच्यां परिघौ लगति स प्रवेशिबन्दुः । यत्र च पश्चिमकपालस्थे रवौ प्राचि लगति स निर्गमनिबन्दुः । तत्र प्रवेशिनगमने समये मध्यषृताया यष्टेर्नष्टद्युतेरग्राल्लम्बं विधाय द्वौ समौ शंकू साध्यौ । ताभ्यां तत्तत्कालकान्तिवशात् त्रिप्रश्नोत्तघा भुजान्तरं विधाय प्राच्यपरे साध्ये ताभ्यां मत्स्याद्याम्योत्तरे च साध्ये इति सवं त्रिप्रश्नाधिकारतः स्फुटम् ॥२७॥
- नि. मा-—समपृथिव्यामिष्टव्यासार्घेन लिखितवृत्तस्य केन्द्रे स्थापितस्य कीलस्य छाया पूर्वकपालस्थे रवौ यत्र पिश्चमिदिशि वृत्तपिरधौ लगित स छाया- प्रवेशिबन्दुः । पिश्चमकपालस्थे रवौ कीलच्छाया पूर्विदिशि वृत्तपिरधौ यत्र लगित स छायानिर्गमनिबन्दुः । तत्र प्रवेशिनर्गमनसमये केन्द्रस्थयष्टे (कीलस्य) निष्ट्युतेरग्राल्लम्बं विघाय द्वौ समौ शङ्कू साध्यौ, ताभ्यां (शङ्कुभ्यां) तत्तत्काल-क्रान्तिवशाद भुजान्तरं कृत्वा पूर्वापरे साध्ये ताभ्यां मत्स्योत्पादनेन याम्योत्तरे साध्ये इति ।

#### भ्रत्रोपपत्तिः ।

छायाप्रवेशनिर्गमनसमये केन्द्रस्थयष्टेरग्राल्लम्बं विधाय द्वौसमौ शंक्क साध्यौ,
तदा चाङ्कृतल × १२ = पलभा । ततः √पलभा + १२ = पलकर्गः । क्रान्तिशानं तु वर्त्तत एवातः पलक क्रांज्या = प्रवेश कालिकाग्रा = ग्रग्रा । पक × क्रांज्या
१२ = निर्गमनकालिकाग्रा = ग्रग्रा । क्रांज्या = छायाप्रवेशकालिक क्रान्तिज्या । क्रांज्या
= छायानिर्गमनकालिक क्रान्तिज्या । शङ्क वोस्तुल्यत्वाच्छंतकुलमपि तुल्यमस्ति ।
ग्रग्रा ± शंतल = भुजः प्रवेशकालिकः । ग्रग्रा ± शंतल = भुजः = निर्गमनकालिकः ।
ग्रनयोरन्तरम् । ग्रग्रान्तरम् = भुजान्तरम् । एतद्भुजान्तर वशेन वास्तवपूर्वापर

भ्रग्रा ± शंतल = भ्रजः प्रवेशकालिकः । भ्रग्रा ± शंतल = भ्रुजः = निर्गमनकालिकः । भ्रनयोरन्तरम् । भ्रग्रान्तरम् = भ्रुजान्तरम् । एतद्भुजान्तर वशेन वास्तवपूर्वापर रैखायाः समानान्तररेखाया ज्ञानं भवेत् । वृत्तकेन्द्रविन्दुतस्तत्समानान्तरा रेखा वास्तव पूर्वापररेखा भवेत् । केन्द्रविन्दुतस्तदुपरिलम्बरेखा दक्षिग्गोत्तरा रेखा भवेत् । प्राचीनै रेखोपरिलम्बकरगार्थं मत्स्योत्पादनं क्रियते स्म । एतावता दिग्ज्ञानं जातमिति ॥२७॥

# ग्रब यष्टियन्त्र से दिक्साधन को कहते हैं।

हि. भा.—समान पृथिवी में इष्टव्यासार्घ से लिखित वृत्त के केन्द्र में स्थापित कील की छाया पूर्वकपाल में रिव के रहने से पिरचम दिशा में वृत्त परिधि में जहां लगती है वह बिन्दु छायाप्रवेश बिन्दु है। पिरचम कपाल में रिव के रहने से कील की छाया पूर्वदिशा में वृत्तपरिधि में जहां लगती है वह छाया निर्गमिबन्दु है। छायाप्रवेश समय में घीर निर्गमन समय में नष्टद्युति यष्टि के अप्र से लम्ब करके दो समानशङ्कु का साधन करना। उन दोनों शङ्कुओं से तत्तत्कालिक (प्रवेशकालिक और निर्गमनकालिक) क्रान्तिवश से भूजान्तर लाकर पूर्वापर दिशा साधन करना, उन दोनों से मत्त्योत्पादन से दक्षिणदिश्वा धौर उत्तर दिशा साधन करना चाहिये इति ॥२७॥

#### उपपत्ति ।

छाया प्रवेश समय में ग्रौर निर्गमन समय में केन्द्रस्थ यष्ट्रि के ग्रग्न से लम्ब करके दो समान शङ्कु का साधन करना चाहिये। तब  $\frac{शंतल \times ??}{शङ्कु} = 9लभा। \sqrt{\frac{1}{900}}$ 

= पलकर्र्ण । क्रान्ति के ज्ञान से पलक.क्रांज्या १२ । पलक.क्रांज्या १२ । पलक.क्रांज्या १२ । पलक.क्रांज्या = निर्गमनकालिक स्रग्रा = स्रग्रा । क्रांज्या = छायाप्रवेशकालिक क्रान्तिज्या । क्रांज्या = छाया निर्गमन कालिक क्रान्तिज्या । दोनों शङ्कुत्रों के बराबर रहने से शङ्कुतल भी बराबर है।

ः श्रगा ± शंतल = प्रवेशकालिक मुज । श्रगा ± शंतल = भुज = निर्गमनकालिक भुज दोनों के अन्तर करने से अग्रान्तर = भुजान्तर, इस भुजान्तर वश से वास्तव पूर्वापर रेखा की समानान्तर रेखा का ज्ञान होता है । वृत्त के केन्द्रबिन्दु से उसकी समानान्तरा रेखा वास्तव पूर्वापर रेखा होती है । केन्द्र बिन्दु से उसके ऊपर लम्बरेखा दक्षिगोत्तरा रेखा होती है । प्राचीनाचार्य रेखा के ऊपर लम्ब करने के लिये मत्स्योत्पादन करते थे । इससे दिक् साधन हो गया इति ॥२७॥

# इदानीं भुजकोटिसाधनमाह।

# शङ्कुतलाग्रान्तरयुतिरन्यैकदिशोर्भुं जो भुजस्य कृतिम् । हग्ज्याकर्णकृतेः प्रोह्य पदं पूर्वापरा कोटिः ॥ २८॥

सु. मा.—स्पष्टार्थम् । त्रिप्रक्नाधिकारे सर्वं स्फुटमेव प्रतिपादितम् ॥२८॥

वि. भा — ग्रन्यदिशि शङ्कुतलस्याग्रायाश्चान्तरमेकदिशि तयोर्योगो भुजो भवति । हण्यारूपकर्णवर्गाद् भुजस्य कृति (वगँ) प्रोह्य (हित्वा) पूर्वापरानुकारा कोटिभंवेदिति ॥

#### भ्रत्रोपपत्तिः।

यष्ट्रघग्रादवलम्बस्तं शङ्कुः । शङ्कुम्लात्पूर्वापरस्त्रोपरिलम्बो भुज-संज्ञकः । स्वोदयास्तस्त्रपूर्वापरस्त्रयोरन्तरमग्रा । शङ्कुम्लात्स्वोदयास्तस्त्रो-परिलम्बः शङ्कुतलम् । एतेषां भुजाग्राशङ्कुतलानां स्वरूपदर्शनेन स्फुटमस्ति यदग्राशङ्कुतलयोभिन्नदिक्कयोरन्तरमेकदिक्कयोर्योगो भुजो भवति । शङ्कुमूलाद्वृ-त्तकेन्द्रपर्यन्तं दग्ज्याकर्णः । भुजाग्राद्वृत्तकेन्द्रपर्यन्तं प्वापरस्त्रखण्डं कोटिः । भुज-संज्ञको भुजः । एतैः कर्णाकोटिभुजैक्त्पन्नत्रिभुजे √दग्ज्या — भुज — कोटिः । एतेनाचार्योक्तमुपपन्नम् ॥२८॥

#### ग्रव भुज श्रौर कोटि के साधन को कहते हैं।

हि. भा - अग्रा और शङ्कुतल की भिन्न दिशा रहने से दोनों का अन्तर भुज होता है। तथा दोनों की दिशा एक रहने से योग करने से भुज होता है। हण्ज्यारूप कर्ण वर्ग में भुज वर्ग को घटाकर मूल लेने से पूर्वापरानुकार कोटिसंज्ञक होता है। इति ॥२८॥

#### उपपत्ति ।

यष्ट्यग्र से अबलम्ब सूत्र शङ्कु है। शङ्कुमूल से पूर्वापर सूत्र के ऊपर लम्ब भुज संज्ञक है स्वोदयास्त सूत्र और पूर्वापर सूत्र का ग्रन्तर ग्रग्ना है। शङ्कुमूल से स्वोदयास्त सूत्र के ऊपर लम्ब शङ्कुतल है। इन भुज, ग्रग्ना शङ्कुतल का स्वरूप देखने से स्पष्ट है कि भिन्न दिशा का शंकुतल और ग्रग्ना का ग्रन्तरभुज होता है, तथा एक दिशा का शंकुतल और ग्रग्ना का योग करने से भुज होता हैं। शङ्कुमूल से वृत्तकेन्द्रपर्यन्त हग्ज्याकर्ण, भुजसंज्ञक भुज, भुजाग्र से वृत्त केन्द्रपर्यन्त कोटि, इन कर्णभुज और कोटि से उत्पन्न जात्यत्रिभुज में √ह्र्यार भुज कोटि। इससे ग्राचार्योक्त उपपन्न हुग्ना इति।।२८।।

# इदानीं यष्टियन्त्रेग् पलभाज्ञानमाह।

# उदयास्तसूत्रशङ् क्वन्तरं हृतं शङ्कुनाऽर्कसङ्गुश्गितम् । विषुवच्छायैवं वा विनोदयास्तमयसुत्रेग् ।।२६।।

सुः भाः — उदयास्तसूत्रशंक्वन्तरं शंकुतलं तदर्कसंगुिर्गतं शंकुना हृतं फलं विषुवच्छाया पलभा भवति । उदयास्तसूत्रेगा विनाऽपि वा पलभाज्ञानमेवं वक्ष्यमागोन विधिना भवतीत्यस्याग्रे सम्बन्धः ।

श्रत्रोपपत्तिः । श्रक्षक्षेत्रानुपातेन स्फुटा ॥२९॥

नि भा- उदयास्तसूत्रशंक्वन्तरं (शंकुतलं) तद्द्वादशिभर्गुणितं शंकुना भक्तं लब्धं बिषुवच्छाया (पलभा) भवति उदयास्तसूत्रेण विनाऽपि वा पलभाज्ञान मेवमग्रिमश्लोकेन भवतीति।

#### भ्रत्रोपपत्तिः ।

पूर्वं समभुवि लिखितं वृत्तं क्षितिजवृत्तम् । त्रिज्याङ्ग ला यिष्टः स्वत एव त्रिज्यारूपा । सा नष्टद्युतिर्यथा भवति तथा धार्या, येन यष्ट्रचग्रं विधितं सद्रविधिन्ध-केन्द्रं गच्छेत् । यष्ट्रचग्रादधो यावान् लम्बस्तावान् तिस्मन् काले शंकुः । ग्रथ त्रिज्यारूपाया यष्टेः शङ्क्रुरूपलम्बस्य वर्गान्तरमूलं नतांशज्या (दृग्ज्या) शंकुमूल-वृत्तकेन्द्रयोरन्तररूपेति । शंकमूलपूर्वापररेखयोरन्तरं भुजः । पूर्वापरदिग्गतयोर- ग्राग्रयोरुपरि गता रेखोदयास्तसूत्रम् । उदयास्तसूत्रस्य शंकुमूलस्यान्तरं शंकुतलम् । तदाऽक्षक्षेत्रानुपातेन यदि शंकुना शंकुतलं लभ्यते तदा द्वादशशंकु— ना किमिति समागच्छति पलभा तत्स्वरूपम् = शंकु एतावताऽऽचार्योक्तमु-पपन्नम् ॥२६॥

#### श्रब यष्टियन्त्र से पलभाज्ञान कहते हैं।

हि. भा- उदयास्तसूत्र भ्रौर शङ्कुमूल के श्रन्तर (शङ्कुतल) को बारह से गुगा कर शङ्कु से भाग देने से पलभा होती है। बिना उदयास्तसूत्र के भी पलभा ज्ञान भ्रागे कहते हैं इति ॥२६॥

#### उपपत्ति ।

पूर्व में समान पृथिवी में लिखित वृत्त क्षितिजवृत्त है। यिष्ट त्रिज्या के बराबर है।
यिष्ठ को इस तरह धारण करना चाहिये जिससे यष्ट्रधम्म को बढ़ाने से रिव बिम्बकेन्द्र में
जाय, यष्ट्रधम्म से नीचे जो लम्ब होगा वह शङ्कु है। त्रिज्यारूपयिष्ट भौर शङ्कुरूप लम्ब
का वर्गीन्तरमूल नतांशज्या (हम्ज्या) शङ्कुमूल भौर वृत्तकेन्द्र का अन्तररूप है। शङ्कुम्
मूल से पूर्वापरसूत्र पर्यन्त लम्बरूपभुज है। शङ्कुमूल से उदयास्तसूत्रपर्यन्त लम्बरूप
शङ्कुतल है। तब अनुपात करते है यदि शङ्कु में शङ्कुतल पाते हैं तो द्वादशा (बारह
धङ्गुल) ङ्गुल शङ्कु में क्या इस अनुपात से पलभा आती है, इसका स्वरूप

= शंतल × १२ शङ्कु = पलभा। इससे ऋाचार्योक्त उपपन्न हुआ इति ॥२६॥

# इदानीं भुजद्वयतः पलभाज्ञानमाह।

# प्राच्यपराशङ् कृतलान्तरद्वयान्तरयुतिः समान्यदिशोः । द्वादशगुग्गिता विषुवच्छाया शङ्क्रू वन्तर विभक्ता ॥३०॥

सु मा —शंकुम्लप्राच्यपरान्तरं भुजः। एवमेकस्मिन् दिने भुजद्वयं श्रेयम् तयोः समान्यदिशोरन्तरयुतिः कार्या सा द्वादशगुणिता शंक्वन्तरिवभक्ता विषुव-च्छाया भवति । 'भुजयोरेकान्यदिशोरन्तरमेक्यं रिवक्षुण्णिम —त्यादिभास्करोक्त-मेतदनुरूपमेव ।

#### भ्रत्रोपपत्ति: ।

भास्करविधिना स्फुटा सजातीयक्षेत्रयोर्भुजयोः कौटघोः कर्णयोरन्तरतो योगाद्वा तथैव सजातीयक्षेत्रोत्पन्नत्वात् ॥३०॥

वि भा — शङ्कुतलम् (शङ्कुमूलम्), प्राच्यपरा (पूर्वापररेखा) । शङ्कु-मूल पूर्वापररेखयोरन्तरं भुजः । एकस्मिन् दिने भुजद्वयं ज्ञेयम् । तयोर्भुजयोरेकदि-शायां वियुत्तिः (श्रन्तरं) भिन्न दिशायां युतिः कार्या, सा द्वादशगुणिता शंक्वन्त-रेण विभक्ता तदा विषुवच्छाया (पलभा) भवतीति ॥

#### श्रत्रोपपत्तिः।

ग्रगाशङ्कुतलयोः संस्कारेगा भुजः = ग्रगा ± शंतल । तथा ग्रगा ± शंतलं = भुजः, ग्रनयोरन्तरम् = शङ्कुतलान्तरम् = भुजान्तरम् । तदा शङ्कुतलान्तरं भुजः । शङ्कू वन्तरं कोटिः । हृत्यन्तरं कर्णः, इति भुजनयैरुत्पन्नत्रिभुजमप्यक्षेत्र— सजातीयमतोऽनुपातः शङ्कुतलान्तर × १२ = भुजान्तर × १२ = पलभा । शंक्वन्तर शंक्वन्तर सिद्धान्तशिरोमगोर्गोलाघ्याये भास्करोक्त 'भुजयोरेकान्यदिशोरन्तरमैक्यं रिव - क्षुण्ण' मित्याचार्योक्तानुरूपमेवास्तीति ॥३०॥

# अब भुजदय से पलभाज्ञान को कहते हैं।

हि. भा.—शङ्कुमूल और पूर्वापररेखा का अन्तरभुज है। एक दिन में दो भुजों को जानना चाहिये। एक दिशा में दोनों भुजों के अन्तर को और भिन्न दिशा में दोनों भुजों के योग को बारह से गुएगाकर शंक्वन्तर से भाग देने से पलभा होती है इति ॥३०॥

#### उपपत्ति ।

मग्रा भौर शङ्कुतल के संस्कार से भुज होता है। ग्रग्रा  $\pm$  शंतल = भुज। तथा ग्रग्रा + शंतल = भुज दोनों का अन्तर करने से शंकुतलान्तर = भुजान्तर। शंकुतलान्तर भुज, शंक्वन्तरकोटि, हृत्यन्तर कर्गा इन तीनों भवयवों से उत्पन्न त्रिभुज ग्रक्ष क्षेत्र के सजातीय हैं, इसलिये भनुपात करते हैं।  $\frac{शंतलान्तर \times १२}{शंक्वन्तर} = \frac{भुजान्तर \times १२}{शंक्वन्तर} पलभा, इससे भावायोंक्त उपपन्न होता है। सिद्धान्तशिरोमिण के गोलाध्याय में 'भुजयोरेकान्यदिशोरन्तर-मैक्यम्' इत्यादि भास्करोक्त भावायोंक्त के भनुरूप ही है इति ॥३०॥$ 

#### इदानीं रिवज्ञानमाह।

शङ्कुप्राच्यपरान्तर शङ्कः वर्षः क्यमुदगन्तरं याम्ये । सम्बगुरां यष्टिहृतं क्रान्तिज्याऽतो रविः साध्यः ॥३१॥ सुः माः — शंकुप्राच्यपरान्तरंभुजः । शंक्वग्रं शंकुतलम् । उदग्भुजेऽनयोरैक्यं याम्ये भुजेऽन्तरमग्रा भवति । एवमैक्यान्तरं लम्बगुग्गं लम्बज्यया गुग्गं यष्टिहृतं त्रिज्याहृतं फलं क्रान्तिज्या भवति । ग्रतः प्राग्वत् त्रिप्रश्नोक्तिवद्रविः साध्यः ।

## म्रत्रोपपत्तिः।

त्रिज्याकर्गोन लम्बज्या कोटिस्तदाऽग्राकर्गोन कि जाता क्रान्तिज्या । शेष वासना स्फुटा ॥३१॥

वि. मा.-शङ्कुप्राच्यपरान्तरं भुजः । शंक्वग्रं शङ्कुतलम् । उत्तरे भुजेऽनयो (शङ्कुतल भुजयोः) योंगः, दक्षिरो भुजेऽन्तरं कार्यं तदाऽग्रा भवति । तद्योगान्तरं लम्ब (लम्बज्यया) गुर्गा यिष्ट (त्रिज्या) भक्तं तदा क्रान्तिज्या भवति । त्रतः पूर्ववत् (त्रिप्रश्नोक्तवत्) रिवः साध्य इति ।।

#### अत्रोपपत्तिः।

श्रग्राशङ् कृतलयोः संस्कारेण भुजो भवत्यत एतिहलोमेन शङ् कृतलभुजयोः संस्कारेणाग्रा भवेत् । ततोऽनुपातो यदि त्रिज्यया लम्बज्या लम्यते तदाऽग्रया कि समागच्छिति क्रान्तिज्या तत्स्वरूपम् लंज्याः श्रग्रा =क्रांज्या, ततः तिः क्रांज्या चित्रज्या चरविभुजज्या अस्याश्चापं रिवभुजाशाः स्युरिति ॥३१॥

## ग्रब यष्टियन्त्र से रिवज्ञान कहते हैं।

हि. सा. — शङ्कुमूल और पूर्वापर सूत्र का अन्तरभुज है। शङ्कू वग्र (शङ्कुतल), उत्तरभुज में शङ्कुतल कौर भुज का योग अग्रा होती है। दक्षिराभुज में शङ्कुतल और भुज का योग अग्रा होती है। उस योगान्तर (अग्रा) को लम्बज्या से गुर्गाकर यिष्ट (त्रिज्या) से भाग देने से क्रान्तिज्या होती है। इससे पूर्ववत् (त्रिप्रश्नाधिकारोक्त विधि से) रिव का साधन करना चाहिये।।३१।।

#### उपपत्ति ।

अग्रा और शङ्कुतल के संस्कार से भुज होता है, इसके विलोग से शङ्कुतल और भुज के संस्कार से अग्रा होती है। तब अनुपात करते हैं, यदि त्रिज्या में लम्बज्या पाते हैं तो अग्रा में क्या इस अनुपात से क्रान्तिज्या आती है उसका स्वरूप — लंज्या आग्रा — क्रांज्या।

अतः नि.क्रांज्या = भुजज्या इसके चाप करने से भुजांश होता है इति ॥३१॥

# इदानीं यष्ट्या गृहाद्यौच्च्यानयनमाह ।

# श्रपसृतिरन्यशलाका गुरगा शलाकान्तरेरा भक्ता भूः। भूः स्वशलाकागुरिगता यष्टि विभक्ता गृहाद्योच्च्यम् ॥३२॥

सु. भा.—इष्टप्रमार्णंका यष्टिर्घायां। तस्या एकस्मिन्नग्रे लम्बरूपाऽङ्गुला विभिरिङ्किता विपुलेका शलाका बद्ध वा दृढीकार्या यथा यष्टिशलाकाभ्यां कोगः समकोगों भवेत्। यष्टयन्याग्रसंस्थद्दष्टचा समघरातलस्थगृहादौच्च्यमन्यया चलयष्टचा विष्येत्। इयमन्या यष्टिर्यत्र शलाकायां लग्ना तस्माच्छलाकामूलपर्यन्तं सङ्ख्या वेषसम्बन्धिनी शलाका श्रेया। एवं प्रथमस्थानतो वेषं कृत्वा शलाकाप्रमागां विज्ञाय प्रथमस्थानतस्तस्यामेव सरलरेखायामपस्त्य द्वितीयस्थानतो गृहादौच्च्यं विष्वा तत्रापि शलाकाप्रमाणं जानीयात्। वेधस्थानयोरन्तरं चापसृतिष्च्यते। ग्रपसृतिरन्यशलाकागुगा शलाकान्तरेगा भक्ता तदा भूः स्वभूर्वेषस्थानगृहान्तरं भवति। भूश्च स्वशलाकागुगा यष्टिविभक्ता गृहादौच्च्यं स्यात्।

#### अत्रोपपत्तिः।

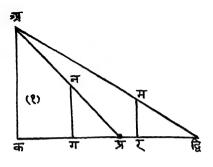
गृउ-गृहौच्च्यम् । प्रमू-यिष्टः-द्विम् । प्र-प्रथमवेधस्थानम् । द्वि = द्वितीयवेधस्थानम् । मूअ,-प्रथमवेधे शलाका = श, मू घ्र, द्वितीयवेधे शलाका = श, प्रद्वि=भ्रपस्तिः = द्यागृप्र = भू, । गृद्वि = भू, = भू, + ग्र ।

#### सजातीयक्षेत्रतः

नि. भा- एकेष्टा यष्टिर्भं हीतव्या तस्या एकस्मिन्नम्रे तदुपरि लम्बरूपा-ऽङ् गुलादिभिव्चिन्हिता विपुलैका शलाका तथा वन्धनीया यथा दृढ़ा भवेत्। यष्टचन्याग्रस्थितदृष्ट्या समपृथिव्यां स्थितं गृहाद्यौच्च्यं विध्येत्। शलाकाप्रमाणां च ज्ञात्वा प्रथमवेषस्थानात्तस्यामेव सरलरेखायामपस्त्य (किन्धिद्गत्वा) द्वितीयस्थानतोऽपि गृहाद्यौच्च्यं विध्येत्। तत्रापि शलाकाप्रमाणं ज्ञेयम्। वेषस्थान योरन्तरमपस्तिः कथ्यते। अपसृतिरन्यशलाकया गुणा शलाकान्तरेण भक्ता तदा भूः (वेषस्थानस्य गृहस्य चान्तरं) भवति। भूः स्वशलाकया गुणिता यष्ट्या भक्ता तदा गृहाद्यौच्च्यं भवेदिति।।

#### ग्रत्रोपपत्तिः।

प्रग=यिष्टः = द्विर ।
प्र=प्रथमवेघस्थानम् ।
द्वि=द्वितीयवेघस्थानम् प्रथमवेघस्थानेशलाका = गन = श ।
द्वितीयवेघ स्थाने शलाका
=रम=श प्रद्वि=अपसृतिः ।
कप्र=भूः । कद्वि=भू = भू + अपसृति ।



तदा स्रकप्र, नगप्र त्रिभुजयो सजातीयत्वादनुपातः शामू = स्रक = गृहाद्यौ-

च्च्यम् । तथा अकृष्टि, मरद्वि त्रिभुजयोः साजात्यादनुपातेन श्रिः =

$$=\frac{1}{u^{2}}(\frac{1}{u^{2}+\frac{1}{2}u^{2}}+\frac{1}{2}u^{2}}$$
  $=\frac{1}{u^{2}}(\frac{1}{u^{2}}+\frac{1}{2}u^{2})$ 

पक्षौ 'यष्टि' गुगितौ तदा श.भू = र्ग (भू + अपस्ति) = र्ग.भू + र्ग.अपस्ति,
समशोधनेन श.भू — र्ग.भू = भू (श — र्ग) = र्ग अपस्ति पक्षौ श — र्ग भक्तौ तदा

रा.अपस्ति = भू। एवं रा.अपस्ति = भू, एतेनोपपन्नमाचार्योक्तमिति ॥३२॥
श — र्ग रा.अपस्ति = र्ग्

## भ्रव पष्टि से गृहादि की ऊंचाई का भ्रानयन कहते हैं।

हि. भा.—एक इष्ट प्रमाण की यिष्ट ग्रहण कर उसके एक अग्र में उस के ऊपर लम्बरूप ग्रङ्गुलादि से श्रङ्कित एक विपुल (मोटी) शलाका खूब हढ़ता से बाँधनी चाहिये। यिष्ठ के ग्रन्य ग्रग्न स्थित हिष्ट से समधरातलस्थित गृहादि की ऊँचाई को वेध करना शलाका प्रमाण को भी जान कर प्रथमवेधस्थान से उसी सरल रेखा में कुछ दूर जाकर द्वितीय स्थान से भी गृहादि की ऊँचाई को वेध करना चाहिये। वहां भी शलाका प्रमाण जान लेना चाहिये। दोनों वेध स्थानों का ग्रन्तर ग्रपस्ति कहलाती है। ग्रपस्ति को ग्रन्यशलाका से गुणाकर शलाकान्तर से भाग देने से भू (वेध स्थान ग्रौर ग्रहादि का ग्रन्तर) प्रमाण होता है। भू को ग्रपनी शलाका से गुणाकर यिष्ठ से भाग देने से ग्रहादि की ऊँचाई होती है इति ।।३२॥

#### उपपत्ति ।

यहां संस्कृतोपपत्ति में लिखित (१)क्षेत्र को देखिये। प्रग=यष्टि=द्विर। प्र=प्रथम वेधस्थान। द्वि=द्वितिय वेधस्थान। प्रथम वेधस्थान में शलाका=गन=श। द्वितीय वेध स्थान में शलाका=रम=श। प्रदि=ग्रूपस्ति। कप्र=भू। किट्ट=भू=भू+श्रपस्ति, तब श्रकप्र, नगप्र दोनों त्रिभुजों के सजातीयत्व से श्रनुपात करते हैं  $\frac{1}{2}$   $\frac{1}{2}$ 

इदानीं प्रकारान्तरेगा गृहाद्यौच्च्यानयनमाह । हष्टचा गुरिगताऽपसृतिर्ह ष्टि विशेषेगा भाजिता भूमिः । मूमिः स्वहष्टिभक्ता शलाकया सङ्गुगोच्छ्रायः ॥३३॥

सु. भा.—समघरातले यिष्टरूष्वि घरा लम्बरूपा धार्या। घरातले हिष्टि-स्तथा चालनीया यथा हिष्टर्यष्टेरग्रं गृहाद्यग्रं चैकसरलरेखायां स्युः। एवं कृते हिष्टयष्टिमूलयोरन्तरं यत् तदेवेह हिष्टिरित्युच्यते। अथ पुनः सैव यिष्टर्स्तस्यामेव सरलरेखायां तयैवोध्विधरा स्थाप्या। तद्वशतो द्वितीयवेधेऽपि हिष्टस्थानं निश्चेयं तथा हिष्टियष्टिमूलान्तरं द्वितीयहिष्टिश्च ज्ञातव्या। द्वयोर्हे ष्टिस्थानयोरन्तरं चात्रापस्तिष्च्यते। अपस्तिर्हेष्ट्या स्वहष्ट्या गुणिता हष्ट्योविशेषेणान्तरेण् भाजिता स्वभूमिः स्यात्। सा भूमिशलाकया यष्ट्या संगुणा स्वहिष्टभक्ता गृहा-द्युच्छ्रायः स्यादिति।

स्फुटसिद्धान्ते

## भ्रत्रोपपत्तिः।

क्षेत्रं १४५७ तमे पृष्ठे द्रष्टव्यम् ।

गृउ = गृही च्च्यम् । मूग्र, = मूग्र, = यिष्टः । मूप्र = प्रथमहिष्टः = ह, । मूि = द्वितीय हिष्टः = ह, । प्रद्वि = अपस्रितः = ग्र। प्रगृ = प्रथमभूिमः = भू, । द्विगृ = द्वितीयभूिमः = भू, = भू, +ग्र।

ततः सजातीयक्षेत्रतः ।

गृउ= 
$$\frac{u. \frac{1}{\pi_{i}}}{\overline{\epsilon_{i}}} = \frac{(\frac{1}{\pi_{i}}, +\frac{1}{\pi_{i}}). u}{\overline{\epsilon_{i}}}$$
 ततः  $\frac{1}{\pi_{i}}. \overline{\epsilon_{i}} = \frac{1}{\pi_{i}}. \overline{\epsilon_{i}}. \overline{\epsilon_{i}}$  ततोऽनुपातेनोिच्छ्त्यानयनं सुगमिति ॥३३॥

नि. मा — समघरातले ऊर्ध्वाघरा लम्बरूपा च यष्टिः स्थाप्या, समघरातले दृष्टिस्तथा स्थाप्या यथा दृष्टियंष्टेरग्नं गृहाद्यग्नं चैकस्यां सरलरेखायां भवेयुः । एवं करणेन दृष्टियष्टिमूलयोरन्तरं यत्तदृदृष्टिः कथ्यते । पुनः सैव यष्टिस्तस्यामेव सरलरेखायां पूर्ववदेवोध्वाधरा लम्बरूपा च स्थाप्या, तद्वशेन द्वितीय वेधेऽपि प्ववदेव दृष्टिस्थानस्य निश्चयः कार्यः । तथा दृष्टियष्टिमूलान्तरं ज्ञातव्यं द्वितीयदृष्टिश्च ज्ञेया । दृष्टिस्थानयोरन्तरमपस्तिः कथ्यते । ग्रपस्ति स्वदृष्टिचा गुणिता दृष्टिचोर—न्तरेण भक्ता तदा स्वभूमिभवेत् । सा भूमिः शलाकया (यष्टिचा) संगुणितां स्वदृष्टिभक्ता तदोच्छ्रायः (गृहादेष्ट्छ्रायः) भवतोति ।।

#### अत्रोपपत्तिः ।

कन = पश = यिष्टः ।

नप्र =प्रथमहिष्टः = ह ।

शिंद्ध = द्वितीय हिष्टः = ह ।

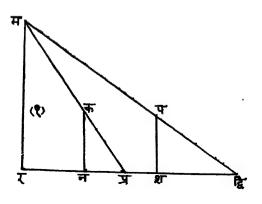
मर = गृहाद्योच्च्यम् ।

प्रिंद्ध = ग्रिपसृतिः ।

प्रर = प्रथम भूमिः = भू ।

द्विर = द्वितीयभूमिः = भू |

=भू + ग्रपसृतिः ।



तदा कनप्र, मरप त्रिभुजयोः साजात्यादनुपातेन  $\frac{u \times v}{\overline{\epsilon}}$  — गृहाद्यौच्च्यम् तथा पश्चि, मरिद्व त्रिभुजयोः सजातीयत्वादनुपातः  $\frac{u \times v}{\overline{\epsilon}}$  —  $\frac{u \times v}{\overline{\epsilon}}$  —

#### अव प्रकारान्तर से गृहादि की ऊंचाई का आनयन कहते हैं।

हि. भा.—सम घरातल में ऊर्घ्वाघर लम्बरूप यष्टि स्थापन पर करना, समघरातल में दृष्टि को उस तरह रखना चाहिये जिस से दृष्टि, यष्टि का अग्र और गृहादि का अग्र एक ही सरल रेखा में हो। इस तरह करने से दृष्टि और यष्टि के मूल का अन्तर यहां दृष्टि कहलाती है। पुन: उसी यष्टि को उसी सरल रेखा में पूर्ववत् उर्घ्वाघर—लम्बरूप स्थापन करना। उसके वश से द्वितीय वेघ में भी पूर्ववत् ही दृष्टिस्थान निश्चित करना चाहिये। तथा दृष्टि और यष्टि मूल का अन्तर जानना चाहिये। द्वितीय दृष्टि भी ज्ञातव्य है, दोनों दृष्टि स्थानों का अन्तर यहां अपस्ति कथित है अपस्ति को अपनी दृष्टि से गुगाकर दोनों दृष्टि के अन्तर से भाग देने से अपनी भू (भूमि) होती है। भूमि को शलाका (यष्टि) से गुगाकर अपनी दृष्टि से भाग देने से गृहादि की उन्तर होती है इति।।३३।।

#### उपपत्ति ।

यहां संस्कृतोपपत्ति में लिखित (१) क्षेत्र को देखिये। कन — पश = यष्टि । नप्र

— प्रथमदृष्टि — ह । शद्धि — द्वितीयदृष्टि — ह । मर — गृहादि की ऊंचाई। प्रद्वि — ग्रप्सित ।

पर = प्रथम भूमि — भू। द्विर — द्वितीयभूमि — भू — भू — भू न ग्रप्सित । तब कनप्र, मरप दोनों

त्रिभुजों के सजातीयत्व से अनुपात करने से  $\dfrac{z.\gamma}{\varepsilon}$  = गृहादि की ऊंचाई । एवं पशद्वि,

= गृहादि की ऊंच। ई, ग्रत: समीकरण करने से 
$$\frac{u. y}{\varepsilon} = \frac{u(y+y)}{\varepsilon}$$
 दोनों  $\varepsilon$ 

पक्षों को (य) भाग देने से 
$$\frac{\chi}{\epsilon} = \frac{\chi + 3 \pi}{1}$$
 छेदगम से भू. $\epsilon = \epsilon$  ( $\chi + 3 \pi \pi$ )

$$= \varepsilon. \frac{1}{2} + \varepsilon. \frac{1}{2}$$
 समशोधन करने से भू.  $\varepsilon. \frac{1}{2} - \varepsilon. \frac{1}{2} = \varepsilon. \frac{1}{2}$  ह. अपस्रति होनों पक्षों को  $\varepsilon. \frac{1}{2} - \varepsilon$  इससे भाग देने से भू  $\frac{\varepsilon. \frac{1}{2}}{\varepsilon. \frac{1}{2}} = \varepsilon. \frac{1}{2}$  इस  $\frac{1}{\varepsilon. \frac{1}{2}} = \frac{1}{\varepsilon}$ 

से भाचार्योक्त सूत्र उपपन्न हुम्रा ॥३३॥

# इदानीं गृहादिमूलवेधेन भूमिज्ञानमाह । लम्बनिपातान्तरकं लम्बौच्च्यान्तरविभक्तमधिकगुग्गम् । भूर्लम्बान्तरगुग्गिता लम्बनिपातान्तरविभक्ता ।।३४॥

सु.भा.—इष्टप्रमाणा या यष्टेर्मूलस्य दृष्टचा यष्टचप्रगं गृहादिमूलं विध्येत् । यष्टिमूलाग्राभ्यां द्वौ लम्बौ कार्यौ तयोर्लम्बिनपातंयोरन्तरकं लम्बौच्च्ययोरन्तरेण विभक्तमिकेन लम्बमानेन गुर्णभूः स्यात् । लम्बान्तरगुर्णितेत्यादेरग्रे सम्बन्धः ।

## अत्रोपपत्तिः।

यष्टिमूलाद्गृहादिमूलपर्यन्तं रेखाकर्णः । यष्टिमूलादिषको लम्बः कोटिः । ग्रिषकलम्बगृहादिमूलयोरन्तरभूमिर्भुजः । इदमेकं त्रिभुजम् । लम्बोच्च्यान्तरं कोटिः । यष्टिः कर्णः । लम्बिनपातान्तरभूमिर्भुजः । इदं द्वितीयं त्रिभुजं प्रथमसजातीयमतोऽनुपातेन भूम्यानयनं सुगममिति ॥३४॥

वि. मा.—इष्टयष्टेर्मूलस्थदृष्ट्या यष्ट्यग्रगं गृहादिमूलं विध्येत् । यष्टिमू-लाग्राभ्यां लम्बौ कार्यों, तयोर्लम्वयोर्मूलान्तरं ग्रंघिकेन लम्बेन गुगां लम्बौच्च्ययोर-न्तरेगा विभक्तं तदा भूर्भवेत् । लम्बान्तर गुगाितेत्यादेरग्रे सम्बन्ध इति ॥

#### ग्रत्रोपपत्तिः ।

यिष्टिमूलादिष्ठको लम्बः कोटिः । श्रिषिकलम्बगृहादिमूलयोरन्तरं भुजः । यिष्टमूलादगृहादिमूलपर्यन्तं कर्गः । एतैः कोटिभुजकर्गौरुत्पन्नमेकं त्रिभुजम् । लम्बौच्च्यान्तरं कोटिः । लम्बमूलयोरन्तरं भुजः । यिष्टः कर्गः । एतैः कोटिभुज-कर्गौरुत्पन्नं द्वितीयं त्रिभुजम । त्रिभुजयोः साजात्यादनुपातो यदि लम्बौच्च्यान्तरकोटौ लम्बमूलान्तरं भुजो लभ्यते तदा ऽधिकलम्बकोटौ कि समागच्छिति, श्रिषिकलम्ब-गृहादिमूलयोरन्तरभूमिस्तत्स्वरूपम् लम्बमूलान्तर अग्रिषिकलम्ब एतेनोपपन्न सम्बौच्च्यान्तर माचार्योक्तमिति ॥३४॥

# अव गृहादि मूलवेध से भूमिज्ञान कहते हैं।

हि भा — इष्टयष्टि की मूलस्थ दृष्टि से यष्ट्रचग्रगत गृहादि के मूल को वेध करना।
यष्टि के मूल और अग्र से लम्ब करना, इन दोनों लम्बम्लान्तर को ग्रधिक लम्ब से गुणाकर
लम्बीच्च्यान्तर से भाग देने से भूमि होती है।।३४।।

#### उपपत्ति ।

यष्टि के मूल से अधिक लम्बकोटि । अधिकलम्ब गृहादि मूल के अन्तरभुज । यष्टि के भूल से गृहादिमूलपर्यन्त कर्ण इन कोटि भुज कर्णों से उत्पन्न एक त्रिभुज । तथा लम्बौच्च्यान्तर कोटि, लम्बमूलान्तरभुज । यष्टि कर्ण इन कोटिभुज कर्णों से उत्पन्न द्वितीय त्रिभुज इन दोनों त्रिभुजों के सजातीयत्व से अनुपात करते हैं यदि लम्बौच्च्यान्तर कोटि में लम्बमूलान्तर भुज पाते हैं तो अधिक लम्बकोटि में क्या इस अनुपात से अधिकलम्ब गृहार्दि मूल का अन्तर भूमि प्रमाण आता है उसका स्वरूप लम्बमूलान्तर. अधिकलम्ब इससे आचार्योन्तर क उपपन्न हुआ इति ॥३४॥

# इदानीं भूमिज्ञाने वंशीच्च्यज्ञानमाह।

# लब्धोनो हग्लम्बो हग्लम्बादग्रलम्बके हीने। श्रिधिकेऽधिको गृहौच्च्यं तलाग्रके विद्धया हृष्ट्या ।।३५।।

सु० भा०—इप्टप्रमाण्यष्टेमूँलस्थ दृष्ट्या गृहाद्यग्रं विध्येत्। यष्टिमूलाग्रा-भ्यां भुवि लम्बौ कार्यो । मूलाल्लम्बो हग्लम्ब इत्युच्यते । भूर्लम्बौच्च्ययोरन्तरेण् गुणिता लम्बनिपातयोरन्तरेण भक्ता लब्धेन हग्लम्बो हीनः कार्यो हग्लम्बादग्र- लम्बके हीने सित । ग्रिधिके चाधिकः कार्यस्तदा गृहाद्यौच्च्यं भवेत् । एवं तलाग्रके ये तयोविद्धया दृष्टया भूम्यौच्च्ये भवतः । भूमिज्ञानं तलवेधेनौच्च्यज्ञानं चाग्रवेधेन भवतीत्यर्थः ।

#### श्रत्रोपपत्तिः।

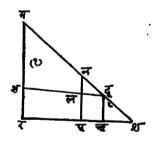
लम्बनिपातान्तरेगा लम्बीच्च्ययोरन्तरं तदा ऽऽत्मगृहाद्यन्तरभूम्यां किं लब्धेन हीनो युतश्च हग्लन्बो हग्लम्बादग्रलम्बे हीनाधिके गृहाद्यीच्च्यं भवतीत्यत्र स्थितिद्वये क्षेत्रे विरचय्य सर्वं स्फुटं निरीक्षग्गीयम् ॥३५॥

विः भाः—इष्टयष्टेर्मूलस्थ दृष्ट्या गृहाद्यग्रं विध्येत् । यष्टिमूलाग्राभ्यां भुवि लम्बौ कार्यों, मूलाल्लम्बो दृग्लम्बः कथ्यते । भूलंम्बौच्च्ययो रन्तरेगा गृगिता लम्बिनिपातयो रन्तरे भक्ता लब्धेन दृग्लम्बो हीनः कार्यो यदि दृग्लम्बादग्रलम्बो हीनो भवेत् । ग्रग्नलम्बाद दृग्लम्बो हीनश्चेत्तदाऽधिकः (युक्तः) कार्यस्तदा गृहाद्यौच्च्यं भवेत् । एवं तलाग्रके ये तयोविद्धया दृष्ट्या भूम्यौच्च्ये भवतोऽर्थात्तलवेधेन भूमि- ज्ञानमग्रवेधेन चौच्च्यज्ञानं भवतीति ।।

## ग्रत्रोपपत्तिः।

हन=यिष्टः । ह = हिष्ट स्थानम्। रम = गृहाद्यों च्च्यम् । हच = हष्टच्छ्रायः = हग्लम्बः । नप = यष्टचग्राल्लम्बः । नल= लम्बान्तरम् । पच = लम्बनिपा-तान्तरम्=हल । ततः मशह, नलह त्रिभुजयोः साजात्यात्

लम्बान्तर×भू लम्बनिपातान्तर =मश ।



ः मश् +शर=मश् + हम्लम्ब=मर=गृहाद्यौच्च्यम् । दश=आत्मगृहाः
न्तरभूमिः=भू । अत्र हम्लम्बादग्रलम्बो ऽधिकोस्ति । हम्लम्बादग्रलम्बेहीनेऽप्येवमेवोपपत्तिरिति ॥३५॥

# श्रव भूमिज्ञान से वंशीच्च्यज्ञान की कहते हैं।

हि. भा - इष्ट यिष्ट की मूलस्थ हिष्ट से ग्रहादि के प्रश्न की वैध करना। यिष्ट के मूल ग्रीर अग्न से भूमि के ऊपर लम्ब करना। यिष्ट के मूल से जो लम्ब हीता है वह हग्लम्ब कहलाता है। भू को लम्बीच्च्य के अन्तर से गुणा कर लम्ब निपातान्तर से भाग देने से जो लब्ध हो उसको हग्लम्ब में से हीन करना यदि हग्लम्ब से अग्रलम्ब हीन हो तब। अग्रलम्ब से हग्लम्ब हीन हो तब जोड़ने से गृहादि का औच्य (अंचाई) प्रमाण होता है। एवं तल वेध से भूमिज्ञान और अग्रवेध से औच्च्यज्ञान होता है।।३५।।

#### उपपत्ति ।

यहां संस्कृतोपपत्ति में लिखित(१)क्षेत्र को देखिये। इन = यिष्टि। इ = इिष्ट्स्थान।

रम = गृहाद्यौच्च्य। इच = इच्ट्युच्छ्राय = इग्लम्ब। नप = यप्टच्य से लम्ब। नल

= लम्ब-मूलान्तर। पच = लम्बिनपातान्तरभू = इल तव मशह, नलह दोनों

त्रिभुजों के सजातीयत्व से अनुपात करते हैं लम्बान्त × भूर लम्बिनपातान्तर

+ इग्लम्ब = मर = गृहाद्यौच्च्य। इश = ध्रात्मगृहान्तर भूमि = भू। यहां इग्लम्ब से अग्र लम्ब अधिक है। इग्लम्ब से अग्रलम्ब के हीन रहने पर भी इसी तरह उपपत्ति समभनी
चाहिये इति ॥३५॥

# इदानीं प्रकारान्तरेण भूम्यौच्च्यानयनमाह ।

# हिष्टहं ग्लम्बगुणा विभाजिताऽघः शलाकया भूमिः । सकलशलाका गुणिता भूमिहं ष्टचा हृतोच्छ्रायः ॥३६॥

सु. भा --- यिसमन् घरातले गृहाद्योच्यं वस्तु वर्तते तिस्मन् घरातले उद्धि-घरा लम्बरूपैकेष्टप्रमारागा शलाका स्थाप्या। ततो हिष्टिस्तथा चाल्या यथा हिष्टि शलाकाग्रं गृहादिम्लं चैकरेखायां स्युः। एवं तत्र हगौच्च्यं हग्लम्बः। हगौच्च्य-शलाकाम्लयोरन्तरं भूमिहिष्टिरित्युच्यते। सा शलाका चाघः शलाका ज्ञेया। हिष्टिर्हं ग्लम्बगुर्गाऽघः शलाकया विभाजिता भूमिः स्यात्। एवं तिस्मन्नेव घरातले तथा हिष्टिनियोज्या यथा हिष्टः शलाकाग्रं गृहाद्यग्रं चैकरेखायां स्युः। भूत्र शलाका सकलशलाका। हिष्टशलाकाम् लयोरन्तरं हिष्टिरित्युच्यते। भूमिः सकलशलाकागुरगा हृष्टया हृतोच्छ्रायो भवति।

श्रत्रोपपत्तिः । सजातीर्यक्षेत्रानुपातेन स्फुटा ॥३६॥

वि. मा.—यत्र भूमौ गृहाद्यौच्च्यं वस्तु वर्त्तते तत्रैव घरातले ऊर्घ्वाघरा लम्बरूपैका शलाका स्थाप्या । ततो दृष्टिस्तथा चालनीया यथा दृष्टिः शलाकाग्रं गृहादिमूलं चैकस्यां रेखायां भवेगुः । तत्र दृगौच्च्यं दृग्लम्बः दृगौच्च्यशलाका-मूलयोरन्तरं भूमिद्दंष्टिः कथ्यते । सा शलाकाऽधः श्रलाका बोध्या । दृष्टिद्दंग्लम्ब-

गुगाऽघःशलाकया विभाजिता तदा भूमिः स्यात्। एवं तत्रैव घरातले तथा हिष्टः स्थाप्या यथा हिष्टः शलाकाग्रं गृहाद्यग्रं चैकस्यां रेखायां भवेयुः। ग्रत्र शलाका सकल शलाका ज्ञेया। हिष्टशलाकामूलयोरन्तरं हिष्टः कथ्यते। भूमिः सकलशलाका गुगा हष्टचा भक्तोच्छ्रायो भवतीति।।

ग्रत्रोपपत्तिः।

क्षेत्ररचनयाऽनुपातेन च स्फुटेति ॥३६॥

ग्रब प्रकारान्तर से भूमि ग्रौर ग्रौच्च्य (ऊंचाई) के ग्रानयन को कहते हैं।

हि. भा. — जिस घरातल में गृहादि उच्च वस्तु है उसी घरातल में ऊर्घ्वाघर लम्बरूप एक यिष्ट स्थापन करना। दृष्टि को उस तरह चलाना जिससे दृष्टि, शलाका का अग्र, और गृहादि का मूल एक ही रेखा में हो। वहां दृगौच्च्य दृग्लम्ब है। दृगौच्च्यमूल और शलाका मूल का अन्तर भूमि दृष्टि संज्ञक है। उस शलाका को अधः शलाका समभना चाहिये। दृष्टि को दृग्लम्ब से गुएगा कर अधः शलाका से भाग देने से भूमि होती है। एवं उसी घरातल में दृष्टि को उस तरह चलाना जिससे दृष्टि, शलाका का अग्र और गृहादि का अग्र एक ही रेखा में हो। यहां शलाका सकल (सम्पूणं) शलाका समभनी चाहिये। दृष्टि शलाका मूल की अन्तर दृष्टि संज्ञक है। भूमि को सकल शलाका से गुएगा कर दृष्टि से भाग देने से गृहादि का उच्छाय होता है।

उपपत्ति ।

क्षेत्ररचना से ग्रनुपात द्वारा स्फुट है इति ॥३६॥

इदानीं प्रकारान्तरेगा गृहौच्च्यानयनमाह ।

मित्वा गृहैकदेशं विद्ध्वेष्टशलाकया गृहं सर्वम् । प्रथमशलाकाभक्तं मितं द्वितीयागुरिगतमौच्च्यम् ॥३७॥

सु. मा.—यस्मिन् घरातले लम्बरूपं गृहादि वर्तते तस्मिन् घरातले लम्बरू-पोध्वीघरांगुलादिभिरिङ्क्क्षंकेना शलाका स्थाप्या। ततो हिष्ट तस्मिन्नेव घरातले कुत्रापि संस्थाप्य निलक्या वा उत्ययष्टिचा ज्ञातौच्च्यं गृहैकदेशं विध्येत्। निलका वाउत्ययष्टियंत्र शलाकायां लग्ना तस्मात् शलाकामूलपर्यन्तं प्रथमा शलाका शलाकामूलहिष्टस्थानान्तरं च हिष्टिर्ज्ञातव्या। पुनस्तत्रस्थयेव हष्टिया गृहाग्रं चैकयष्टिया विध्येत्। इयं यष्टियंत्र पूर्वशलाकायां लग्ना तस्मात् शलाकामूलपर्यन्तं द्वितीया शलाका ज्ञेया। स्रथ व्याख्या। गृहैकदेशं प्रथमशलाकावशेन मित्वा गर्गायित्वा धार्यम्। इष्टशलाकया च सर्व गृहौच्च्यं विद्वुवा द्वितीया शलाका ज्ञातच्या । ततो गृहैकदेशौच्च्यं मितं गिएतं द्वितीयशलाकया गुिएतं प्रथमशला-कया भक्तं गृहौच्च्यं स्यात् ।

## ग्रत्रोपपत्तिः।

प्रथमशलाकया दृष्टितुल्यो भुजस्तदा ज्ञातौच्च्येन कि जाता भूमि:

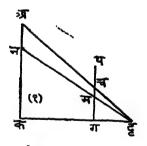
= जाम्रो ह । ततो दृष्टया द्वितीयशलाका तदा भूम्या कि जातं गृहौच्च्यं

= दिश जाम्रो ह = दिश गृम्रो । म्रत उपपन्नम् ॥३७॥

प्रश ह प्रश

वि. भा.—यस्मिन् घरातले लम्बरूपं गृहादि वर्त्तते तस्मिन् घरातले लम्बरूपोध्वीधराङ्ग लादिभिरिङ्कितैका शलाका स्थाप्या। ततो दृष्टिं तस्मिन्नेव घरातले कुत्रापि संस्थाप्य निलकयाऽन्ययष्टिचा वा ज्ञातौच्च्यं गृहैकदेशं विध्येत्। निलकाऽन्ययष्टिची शलाकायां यत्र लग्ना तस्माच्छलाकामूलपर्यन्तं प्रथमा शलाका, शलाकामूलदृष्टिस्थानान्तरं च दृष्टिर्श्वातव्या। पुनस्तत्रस्थयेव दृष्ट्या गृहाग्रं चैकयष्ट्या विध्येत्। इयं यष्टिर्यत्र पूर्वशलाकायां लग्ना तस्माच्छलाकामूलपर्यन्तं द्वितीया शलाका ज्ञेया।

गृहैकदेशं प्रथमशलाकावशेन गरायित्वा धार्यम् । इष्टशलाकया च सवं गृहौच्च्यं विद्ध्वा द्वितीया शलाका श्रेया, ततो गृहैकदेशौच्च्यं द्वितीयशलाकया गुरातं प्रथमशलाकया भक्तं गृहौच्च्यं भवेत् ।



#### स्रत्रोपपत्तिः।

त्रक = गृहाद्यो च्च्यम् । गप = शलाका । ह-= हष्टिस्थानम् । कन = ज्ञातो च्च्यम् । कह = भूमिः । मग = प्रथम शलाका । चग = द्वितीय शलाका । गह = हष्टि संज्ञकः = ह तदा कन ह, गमह त्रिभुजयोः सजातीयत्वादनुपातेन

शातीच्च्य × ह = भूमिः । ततः अकद्द, चगह त्रिभुजयोः साजात्यादनुपातः प्रथमशलाका

= द्वितीयशलाका.ज्ञातौच्च्य एतेनोपपन्नमाचार्योक्तमिति ॥३७॥ प्रथमशलाका

#### ग्रब प्रकारान्तर से गृहौच्च्यानयन को कहते है।

हि. भा.—जिस घरातल में लम्बरूप गृहादि है उस घरातल में ऊर्घ्वाघराकार ग्रंगुलादि से ग्रङ्कित एक शलाका स्थापन करना। दृष्टि को उसी घरातल में कहीं पर रखकर निलका से या ग्रन्य यिष्ठ से गृहादि का एक प्रदेश (जिसकी अंचाई विदित है) को वेघ करना। निलका वा ग्रन्ययिष्ठ शलाका में जहां लगती है वहां से शलाका मूलपर्यन्त प्रथम शलाका संज्ञक है। शलाका मूल दृष्टि स्थान का ग्रन्तर दृष्टि समक्षती चाहिये। पुन: उसी स्थान स्थित दृष्टि से गृहाग्र को एक यिष्ठ से वेघ करना। यह यिष्ठ पूर्व शलाका में जहां लगती है वहां से शलाकामूल पर्यन्त द्वितीय शलाका संज्ञक है। गृहादि के एक प्रदेश को प्रथम शलाकावश से ग्राना कर घारण करना। इष्टशलाका से गृहीच्य को वेघ कर द्वितीयशलाका समक्षनी चाहिये। तब गृह के प्रदेश के ग्रीच्च्यको द्वितीय शलाका से गुणा कर प्रथम शलाका से भाग देने से गृहीच्य होता है इति।।३७।।

#### उपपत्ति ।

यहां संस्कृतोपात्ति में लिखित (१) क्षेत्र को देखिये। श्रक = गृहादि का श्रीच्च्य (ऊं वाई), गप = शलाका। ह = हिष्टिस्थान । कन = ज्ञातीच्च्य = (विदित ऊं वाई)। कह = भूमि = भू। मग = प्रथमशलाका। चग = द्वितीयशलाका। गह = हिष्ट संज्ञक = ह। तब कनह, गमह दोनों त्रिभुजों के सजातीयत्व से अनुपात करते हैं। ज्ञातीच्च्य ह भूमि = भू। ः श्रकह, चगह दोनों त्रिभुजों के सजातीयत्व से श्रनुपात करते हैं। वितीयशलाकाः ह भूमि = गृहाद्यौच्च्य = वितीयशलाकाः ज्ञातीच्च्य ह ससे प्रथमशलाकाः ह प्रथमशलाकाः ह ससे प्रथमशलाकाः ह श्राचार्योक्त उपपन्न हुआ इति ॥३७॥

#### इदानीं परमतं खण्डयति

# यष्टचा हृताच्छलाका त्रिज्याघाताद्धनुर्गृ हान्तरकम् । यैरुक्तं मूर्खास्ते यतो न दृष्टान्तरं दृग्ज्या ॥३८॥

सुः भाः — पूर्वश्लोकोक्तविधिना गृहाग्रवेधे ऽन्ययिष्टियंत्र शलाकायां लग्ना तस्माद् दृष्टिस्थानपर्यन्तं कर्णं एव यिष्टः । द्वितीयशलाका कोटिः । दृष्टिर्भुजः । शलाका त्रिज्यागुणा यिष्टिहृता फलस्य धनुद्वेष्टिस्थानाद्गृह मूलाग्ररेखयोरन्तरगः कोगाो गृहान्तरांशाभिधस्त्रिकोग्गमित्या वास्तव एव सिध्यति । गृहाग्ररूपग्रह-

स्य दृष्टान्तरं दृष्टिसंज्ञसमं दृग्ज्या भवेद्वा न । भ्रतो 'यैराचार्येः पूर्वफलचापसमं गृहान्तरकमुक्तं ते मूर्खाः सन्ति यतो दृष्टान्तरं दृग्ज्या नास्तीति वाग्बलमेतद्दूषग्-मिति सुधीभिश्चिन्त्यम् ॥३८॥

वि. भाः—शलाका त्रिज्यागुगा यष्टिहृता फलस्य धनुः (चापं) गृहान्तरकं यैराचार्येक्तः ते मूर्काः सन्ति । यतो हष्टान्तरं हण्ज्या नास्तीति ॥

## श्रत्रोपपत्तिः।

#### श्रव श्रन्यों के मत का खण्ड़न करते हैं।

हि. भा— शलाका को त्रिज्या से गुणाकर यष्टि से भाग देने से जो फल प्राप्त हो उसके चाप को जो ग्राचार्य गृहान्तर कहते हैं वे मूर्ख हैं, क्योंकि हष्टान्तर इंग्ज्या नहीं है इति ॥३८॥

#### उपपत्ति ।

पूर्वरिलोकोक्त विधि से गृहाग्रवेष करने से ग्रन्य यिष्ट शलाका में जहां लगती है, वहां से दृष्टि स्थान पर्यन्त यष्टिकर्ण, द्वितीयशलाका कोटि, दृष्टिभुज, पूर्वोक्तरिलोकोपपत्ति में लिखित क्षेत्र को देखना चाहिये। दृच = यिष्टिकर्ण, चग = शलाका कोटि, गदृ = दृष्टिभुज, इस त्रिभुज में कोणानुपात करते हैं, यदि यिष्ट में तत्सं मुख कोणज्या त्रिज्या पाते हैं तो शलाका में क्या इस ग्रनुपात से दृष्टि स्थान से गृह के ग्रग्न ग्रीर मूलगत रेखाद्वय से उत्पन्न कोणज्या ग्राती है उसका स्वरूप = त्रि.शलाका = ज्या > गदृच, इसका चाप = < गदृच यष्टि

= वास्तव गृहान्तरांश, गृहाप्ररूपप्रह का दृष्टान्तर (दृष्टि संज्ञतुल्य) दृण्या होती है, स्राचार्य का यह खण्डन ठीक नहीं है इति ।३८।।

# इदानीं शंकुमाह।

मूले द्वचङ्गुल विपुलः सूच्यग्रो द्वादशाङ्गुलोच्छ्रायः । शंकुस्तलाग्रविद्धोऽग्रवेधलम्बाहजुर्जेयः ॥३६॥

सु. भ्रा — (शंकुस्तलाग्रविद्धोऽग्रवेधलम्बाहजुर्ज्ञेयः ॥३९॥ श्रग्रवेधलम्बादग्ररन्ध्रगतावलम्बाहजुर्लम्बाकारो ज्ञेयः । तलादाधारवृत्तकेन्द्रादग्रपर्यन्तं विद्धः सरन्ध्र इत्यर्थः । शेषं स्पष्टार्थम् ॥३६॥

वि. भा. — मूले (तले) द्वघङ् गुलपिण्डः, अग्रे सूच्याकारः । द्वादशाङ् गुलमुच्छितः । अग्रवेधलम्बात् (अग्रप्तन्ध्रगतावलम्बात्) ऋजुः (सरलाकारो लम्बाकारो वा), तलाग्रविद्धः (आधारवृत्तकेन्द्रादग्रपर्यन्तं विद्धः सरन्ध्र इतिः)
शंकुर्त्रयः । सिद्धान्त शेखरे । "अमिवरचितवृत्तस्तुल्यमूलाग्रभागो द्विरदरदनजन्मा सारदारूद्भवो वा । गुरु ऋजुरवलम्बादव्रणः षट्कवृत्तः समतल इह शस्तः
शंकुरकिङ् गुलः स्यात् ॥" अस्यार्थः —अमेगा (शागोन) विरचितं कृतं वृत्तं
यस्मिन् सः । अत एव तुल्यमूलाग्रभागः (समानो मूलभागोऽग्रभागश्च यस्य सः)
घर्षण शिलया तथा धृष्टो यथा सर्वत्रैव कृतानां वृत्तानां परिधयस्तुल्या भवेयुः ।
गजदन्तसम्भवः । वा सारवल्काष्ठेन निर्मितः । गुरुः (अलघुतौल्यः) । अवलम्बसूत्रतः सरलाकारः । व्रण्यरहितः । षड्वृत्तसहितः । समतलः (समीकृतस्तलभागो यस्य), द्वादशाङ् गुलप्रमाणः । इह यत्रोपयोगे एतादृशः शंकुः प्रशस्तः
स्यात् । ज्यौतिषसिद्धान्ते दिग्देशकालज्ञानार्थं सर्वत्रैव शंकुरपयोगित्वेन
प्रसिद्धोऽस्ति । परं स कीदृशो निर्मापयितव्यस्तदेवानेन श्लोकेन श्रीपतिना कथ्यते,
अतः कथित बक्षरणयुक्तः शंकुरेव प्रशस्तस्तिद्भन्नश्चाशोभन इति ।

भ्रत्र लल्लोक्तम्-

"भ्रमसिद्धः सममूलाग्रपरिधिरतिसुगुरुसारदारुमयः। रज्जुत्र गराजिलाञ्छनस्तथा च समतलः शंकुः॥"

इति लल्लोक्तमेव श्रीपतिना छन्दोऽन्तरेगोक्तमिति स्फुटमेव विदुषाम्। भास्कराचार्योऽपि—

> "समतलमस्तकपरिधिभ्रं मसिद्धो दन्तिदन्तजः शंकुः । तच्छायातः प्रोक्तं ज्ञानं दिग्देशकालानाम् ॥"

इत्यनेन लल्लोक्तं श्रीपत्युक्तं च विविच्य स्पष्टाशयं शंकुयन्त्रं कथयतीति । सूर्यं सिद्धान्ते "नरयन्त्रं तथा साधु दिवा च विमले रवौ । छायासंसाधनैः प्रोक्तं कालसाधनमुक्तमम् ॥" एवं कथ्यते ॥ इति ३६ ॥

#### ग्रब शंकु को कहते हैं।

हि. मा. - मूल (नीचे) में दो अंगुल मोटा, अग्र में मूची (सूई) के आकार का, बारह अंगुल ऊंचा, अग्र में जो रन्ध्र (ख्रिद्र) तद्गत अवलम्ब से ऋजु (लम्बाकार), म्राधारवृत्त केन्द्र से भ्रम्पर्यन्त रन्ध्र में मिला हुम्रा शंकु समभना चाहिये इति ।। सिद्धान्त शेखर में 'भ्रम विरचितवृत्तस्तुल्यमूलाग्र भागो । द्विरदरदनजन्मा सा<mark>र</mark>दारूद्भवो वा' इत्यादि विज्ञान भाष्य में लिखित श्लोक से श्रीपित कहते हैं कि शाए। से विरचित है वृत्त जिसमें श्रत एव समान है मूल भाग श्रीर श्रग्र भाग, ग्रर्थात् विसने वाले पत्थर से इस तरह विसा गया है जिससे सब जगह किये हुये वृत्तों की परिधि तुल्य है। हाथी दांत के या सार वाले काष्ठ का बना हुन्ना, गृरु (भारी), सरलाकार, व्रग्ग (ग्रावड खुवड़) से रहित, तत्व भाग जिसका समान है, ऐसे बारह भ्रंगुल के शंकु प्रशस्त है। ज्यौतिष सिद्धान्न ग्रन्थों में दिशा-देश श्रीर काल के ज्ञान के लिये सब स्थानों में शंकू उपयोगिता के कारए। प्रसिद्ध है अर्थात् हर जगह शंकु की जरूरत होने से शंकु प्रसिद्ध है लेकिन वह शंकु कैसा होना चाहिये वही बात श्रीपित ने उपर्युक्त क्लोक से कही है, उपर्युक्त लक्षराों से यक्त शंकु से भिन्न शंकु प्रशस्त (शोभन) नहीं है। यहां लल्लाचार्यं ने "भ्रम सिद्धः सममूलाग्रपरिधिरतिसुगुरु सारदारुमयः" इत्यादि विज्ञानभाष्य में लिखित श्लोक के अनुसार कहा है, लल्लोक्त का ही ने श्रीपित अनुवाद किया है। सिद्धान्त शिरोमिण के गोलाघ्याय में "समतल मस्तक परिविर्भ मिसद्धो दन्तिदन्तजः शंकु:" इत्यादि से भास्कराचार्य भी लल्लोक्त श्रौर श्रीपत्युक्त को ही सोच विचार कर स्पष्ट रूप से शंकु यन्त्र को कहते हैं। सूर्य सिद्धान्त में नरयन्त्र तथा साधु दिवा च विमले रवी । छाया संसाधनैः' इत्यादि विज्ञान भाष्य में लिखित श्लोक के अनुसार कहा गया है, शंकुच्छाया से कालज्ञाम होता है जैसे छाया ज्ञान से  $\sqrt{$ छाया + शंकु  $=\sqrt{$ छाया + १२ $^{\circ}$ =छायाकर्गा । तब छायाक × शंकु = इहित । इष्टहित से = इष्टहित.त्रि = इप्टान्त्या । इस में चरज्या संस्कार करने से सूत्र ज्ञान होता है, इससे उन्नत काल का ज्ञान सुलभता ही से होता है, सिद्धान्त शिरोमिए भ्रादि देखने से स्फूट है इति ॥३६॥

इदानीं शंकुयन्त्रेगा कालज्ञानमाह।

छ्रायां हुग्ज्यां हृष्टिं छ्रायाकर्णमवलम्बकं शंकुम् । परिकल्प्य शंकुयन्त्रे योज्यं घटिकादि यष्टचुक्तम् ॥४०॥

- मु. भा.— शंकुयन्त्रे छायाँ हग्ज्यां धर्षिट छायाग्रशंक्वग्रसूत्रं छायाकर्गं शंकुमवलम्बकं प्रकल्प्य यष्टियुक्तं यष्टियन्त्रोक्तः घटिकादिसर्वं योज्यम् । यष्टि-यन्त्रात् सर्वं यथा साधितं तथाऽस्मादिप साधनीयमित्यर्थः ॥४०॥
- वि. भा.—शंकुयन्त्रे छायां हग्ज्यां हिंद्र छायाग्रशंक्वग्रगतं सूत्रं छायाकग्रां शंकुमवलम्बकं प्रकल्प्य यिष्टियन्त्रोक्तं घटिकादिसर्वं योज्यमर्थाद्यष्टियन्त्राद्यथा सर्वे साधितं तथाऽस्मादिष साधनीयमिति ॥४०॥

# ग्रब शंकुयन्त्र से कालज्ञान को कहते हैं।

हि. भा. — शंकुयन्त्र में छाया को हण्ज्या, हिष्ट (छायाग्रशंक्वग्रगतसूत्र) को छाया— कर्गो, शंकु को ग्रबलम्बसूत्र कल्पना कर यिष्ट यन्त्र में कथित घटिकादि सब साधन करना चाहिये ग्रथीत् यिष्ट यन्त्र से जैसे सब कुछ साधन किया गया है वैसे इससे भी साधन करना चाहिये इति ।।४०।।

# इदानीं घटीयन्त्रमाह।

# घटिका कलशार्घाकृति ताम्रम् पात्रं तलेऽपृथुच्छिद्रम् । मध्ये तज्जलमज्जनषष्टचा द्युनिशं यथा भवति ॥४१॥

- सु. मा.—ताम्रं ताम्रभवं पात्रं कलसार्धाकृतिघटार्धप्रतिमं घटिका घटीयन्त्रं भवति । स्रस्य पात्रस्य तले मध्ये तथाऽपृथुच्छिद्रं कार्यं यथा यज्जलमज्जनषष्टया द्युनिशमहोरात्रमानं भवति । एवमेकिनमज्जनेनैका घटी भवतीति सर्वं स्फुटम् ॥४१॥
- वि. भा.—ताम्रभवं पात्रं घटार्धानुकारं घटिका (घटी यन्त्रं) भवति । श्रस्य ताम्रपात्रस्य तले तथा ऽपृथु (लघु) च्छिद्रंकार्यं तथा तज्जलमज्जनषष्टचा-ऽहोरात्रमानं भवति-श्रर्थादेकनिमज्जनेनेका घटी भवतीति ॥ सिद्धान्तशेखरे—

शुल्बस्य दिग्भिर्विहितं पलैर्येत् षडङ्गुलोच्चं द्विगुगांयतास्यम् । तदम्भसा षष्टिपलैः प्रपूर्यं पात्रं घटार्धप्रमितं घटी स्यात् ॥ सत्र्यंशमाषत्रय निर्मिता या हेम्नः शलाका चतुरङ्गुला स्यात् । विद्धं तया प्राक्तनमत्र पात्रं प्रपूर्यते नाडिकयाऽम्बुना तत् ॥"

श्रीपितनैवमुच्यते । अस्यायमर्थः — शुल्बस्य (ताम्रस्य) दिग्भिः (दशिभः) प्रकैं:- "क्यैंश्चतुभिश्चपलं तुलाज्ञा" इति भास्करोक्तचा चत्वारिशिद्धः कर्षेः । विहितं (निर्मित)षड्ङ्गुलोच्छ्रायम्, (द्वादशाङ्गुलदीर्घमुखम्), घटार्थप्रमितं (कलशार्घरूपम्) ग्रम्भसा (जलेन) षष्टिपलैः पूर्णं यत्पात्रमर्थाज्जलपात्रे निक्षिप्तं सत् – एकघटचा

जलपूर्णं भूत्वा यत्पात्रं निमज्जित तत् घटीसंज्ञकं यन्त्रं स्यात् ॥ अथानया रीत्या निर्मितं घटीयन्त्रं यथा जलपात्रे षिटिपलेंनिमज्जेत्तदर्थं तस्य तले छिद्रकरण्रीति कथयति । सत्र्यंशमाषत्रयनिर्मितेत्यनेन, तुल्या यवाभ्यां कथिताऽत्र गुञ्जा, दशार्ध-गुञ्जं प्रवदन्ति माषम्" इत्युक्तलक्षणेन सत्र्यंशमाषत्रयेण निर्मिता चतुरङ्गुला सुवर्णशलाका या स्यात्तयाविद्धं (भेदितं) पूर्वकथितं घटीयन्त्ररूपं पात्रमेकेन दण्डेन जलेन पूर्णं भवतीति ॥ अत्र लल्लाचार्योक्तम्—

"दशभिः शुल्बस्य पलैः पात्रं कलशार्घ सन्निभं घटितम् । हस्तार्घमुखव्यासं समघटवृत्तं दलोच्छ्रायम् ॥ संत्र्यंशमाषकत्रयनलया समसवृत्तया हेम्नः । चतुरंगुलया विद्धं मज्जिति विमले जले नाड्याः ॥"

इत्येवानूदितं श्रीपतिना, अत्र भास्कराचार्येगा । "घटदलरूपा घटिता घटिका तास्री तलेऽपृष्ठिष्टद्रा । द्युनिशनिमज्जनमित्या भक्तं द्युनिशं घटीमानम् ॥"

दशिमः शुल्बस्य पलैरित्यादि यद् घटीलक्षणं कैश्चित् कृतं तद्युक्तिशून्यं दुर्घटं चेत्येतदुपेक्षितम् । इष्टप्रमारणाकारसुषिरं पात्रं घटीसंज्ञमङ्गीकृतम् । यदि द्युनिशिनमञ्जनसंख्यया षट्त्रिशच्छता ३६०० नि पलानि लभ्यन्ते तदैकेन निमज्जनेन किमिति रीत्या घटीयन्त्रप्रमारणिनरूपणं लल्लश्रीपत्याद्युत्तचा षष्टिपल-प्रपूर्यघटीयन्त्रनिर्मारणस्य युक्तिशून्यत्वं च यत्कथ्यते तत्समीचीन-मेवेति (क) ॥४१॥

## भव घटीयन्त्र को कहते हैं।

हि.मा.— आशा घट (घड़ा) के सहश ताम्र (तांबा) का पात्र घटीयन्त्र होता है। इसके तल के मध्य में छोटा छिद्र (सूराख) ऐसा करना चाहिये जिससे जलपात्रस्य जल में साठ बार उसके इबने से ग्रहोरात्रमान हो ग्रार्थात् एक बार इबने से एक घटी हो इति। सिद्धान्तशेखर में ''शुल्वस्य दिग्भिविहितं पलैंग्नेंं 'इत्यादि विज्ञान भाष्य में लिखित इलोकों से श्रीपित कहते हैं कि दशपल ग्रार्थात् 'कर्षश्चर्त्तां भश्च पलं' इस भास्करोक्त सूत्र के अनुसार चालीस कर्ष ताम्र (तांबां) से बनाया हुग्रा छः ग्रंगुल ऊ चाई, बारह ग्रंगुल चौड़े मुख की लम्बाई, ग्राधे घट (घड़ें) के सहश साठ पल में जल से पूर्ण जलपात्र में देने से एक घटी में जल से पूर्ण हो कर जो पात्र इबता है वह घटी नाम का यन्त्र (घटीयन्त्र) है। इस तरह निर्मित घटी यन्त्र जैसे साठ पल में जलपात्र में इबे, उसके लिये उसके तल के मध्य में

<sup>(</sup>क) सूर्यंतिद्धान्ते 'ताम्नपात्रमधिष्ठद्वं न्यस्तं कुण्डेऽमलाम्भसि । षष्टिमंज्यत्यहोरात्रे स्फुटं यन्त्रं कपालकम्' इत्यनेन घटी यन्त्रमेव कपालयन्त्रं कथ्यते

छिद्र करने के प्रकार कहते हैं। 'तुल्या यवाभ्यां कथिताऽत्र गुञ्जा, दशार्षं गुञ्जं प्रवदित्त माषम्' इस लक्ष्या से तृतीयांश सिहत तीन माषा से निर्मित चार अंगुल सुवर्णं शलाका से विद्ध (भेदित) पूर्वं कथित घटी यन्त्र रूप पात्र जल से एक दण्ड में पूर्णं होता है। यहां लल्लाचार्योक्त है ''दशिं शुल्बस्य पलें पात्र' कलशार्षसिन्नमं घटितम्'' इत्यादि विज्ञान भाष्य में लिखित श्लोकों का अनुवाद श्रीपित ने 'शुल्बस्य दिग्गिंविहित' इत्यादि से किया है। भास्कराचार्य के गोलाघ्याय में "घटदलरूपा घटिता घटिका ताम्री तलेऽपृथुच्छिद्रा" इत्यादि वशिंसः शुल्बस्य पलें इत्यादि घटी लक्षण जो किसी ने किया है वह युक्ति शून्य और दुर्घट है इसलिये वह उपेक्षा के योग्य है। इष्ट प्रमाण आकार छिद्र वाला पात्र घटी संज्ञक स्वीकार किया गया है। यदि द्युनिश (अहोरात्र) निमज्जन संख्या में छत्तीस सौ ३६०० पल पाते हैं तो एक निमज्जन में क्या इस रीति से घटी यन्त्र प्रमाण निरूपण किया है। लल्ल और श्रीपित आदि आचार्योक्ति से साठ पल में जल से भरने योग्य घटीयन्त्र के निर्माण को युक्ति शून्य और दुर्घट जो कहते हैं सो समीचान ही हैं इति।।४१।।

# इदानीं कपालमन्त्रमाह।

# मध्याद्य स्वनतांशैः कपालकं दिक्स्थ सूत्रमध्याग्रात् । व्यस्तोन्नतांश विवरे सूत्रैक्यापाततो नाडघः ॥४२॥

सु. भा.—मध्याद्यस्वनताँशैः कपालकं कपालयन्त्रं भवति । क्षितिजानुकारं दिगङ्कितं फलके वृत्तं विरचय्य इष्टदिने द्युज्याचरज्यादिना प्रत्यंशं
नतांशं प्रकल्प्योन्नतघटिका मध्यनताँशाविध प्रसाध्य व्यस्तकपाले ता घटिकाः
स्वस्वनतांशाग्रे वृत्तपालावंक्याः । एवं कपालयन्त्रं भवति । इष्टकाले
हग्मण्डलाकारे घृते कपालयन्त्रे केन्द्रस्थकीलच्छायानुसारि केन्द्रगतं सूत्रं यत्र परिघौ लगति तत्राङ्किता नाडय इष्टघटिका भवन्ति । एवं दिक्स्थसूत्रमध्याग्रात्
सूत्रैक्यापाततः सूत्रभयोर्यदैक्यं तस्यापाततो वृत्तपरिघौ संयोगतो व्यस्तोन्नताँशविवरे व्यस्तकपालस्थोन्नताँशान्तरे नाडयो भवन्ति गोलयुक्तितः ॥४२॥

वि. भा—मध्याद्यस्वनतांशैः कपालयन्त्रं भवति । फलके दिगङ्कितं क्षितिजानुकारं वृत्तं कृत्वाऽभोष्टदिने द्युज्या चरज्यादिना प्रत्यंशं प्रकल्प्योन्नत- घटिका मध्यनतांशाविष साधियत्वा ता घटिका व्यस्तकपाले स्वस्वनतांशाग्रे वृत्त- पालावङ्क्र्याः एवं कपालयन्त्रं भवति । इष्टकाले कपालयन्त्रे हग्मण्डलाकारे धृते केन्द्रस्थकीलछायानुसारि केन्द्रगतं सूत्रं वृत्तपरिधौ यत्र लगित तत्राङ्किता नाडच

<sup>(</sup>१) सूर्यसिद्धान्त में 'ताम्नपात्रमधिष्छद्र' इत्यादि से पूर्व कथित घटी यन्त्र को ही कपाल यन्त्र कहते हैं।

इष्टघटिका भवन्ति । एवं दिक्स्थसूत्रमध्याग्रात् सूत्रैक्चापाततः सूत्रयोर्यदैक्चं तस्यापाततो वृत्तपरिधौ संयोगतो व्यस्तोन्नतांशविवरे (व्यस्तकपालयस्थोन्नतांशा-न्तरे) घटघो भवन्ति । सिद्धान्तशेखरे ।

> "इदं भवेदूर्ध्वशलाकमुर्व्या स्थितं कपालं द्युतिदिक् च चापम्। मध्यस्थकीलप्रभया विमुक्ताः प्रत्यग्गतास्ता घटिकानिरुक्ताः॥"

श्रीपितनैवं कथ्यते—श्रस्यार्थः—इदं चापयन्त्रमूर्ध्वशलाकं (ऊर्ध्वगलम्बं वा) द्युतिदिक् उव्यां स्थितं (छायादिशि समभूमौ स्थितं) कपालयन्त्रं भवेत् । कपाल-यन्त्रे व्याससूत्रमध्यिबन्दौ स्थापितस्य कीलस्य छायया विम्क्तास्त्यक्ता घटिका प्रत्यग्गता भवन्तीति । श्रीचार्योक्तसूत्रोपपित्तरिप भाष्यरूपैवास्तीति । श्रीपत्यक्त-

# सूत्रार्थमुपपत्तिः।

वृत्तार्धस्वरूपं चापयन्त्रं यस्यां दिशि अध्वंगशलाकायाश्छाया पतित तस्यां दिशि चापं स्थितमर्थात् याम्योत्तरसूत्रघरातले यन्त्रस्य व्याससूत्रं छायादिशि च तिद्वृत्तार्धमिति रीत्या स्थापितं तद्वशतोऽपि तथेव भुक्ता लम्बच्छायया या घटिका-स्ताः प्रत्यग्गता दिनघटिका इति ॥ शिष्यधीवृद्धिदतन्त्रे लल्लोक्तम्—

इदमेवोर्ध्वंशलाकं भुवि स्थितं स्यात् कपालकं यन्त्रम् । श्रनयोः कीलच्छायामुक्ता घटिका भवन्ति वारुण्याः।।

इत्येव श्रीपतेर्मूलम् । सिद्धान्तशेखरे शिष्यघीवृद्धिदे चैकत्रैव कपालयनत्र-पीठयनत्रयोहल्लेखोऽस्ति । यथा सिद्धान्तशेखरे—

> इदं भवेदूर्ध्वंशलाकमुर्व्या स्थितं कपालं श्रुतिदिक् च चापम् । संसाधिताशं खलु चक्रयन्त्रं पीठं भवत्यूर्ध्वंशलाकमेव ।। मध्यस्थकीलप्रभया विमुक्ताः प्रत्यग्गतास्ता घटिका निरुक्ताः । पीठे तु सूर्योदयबिम्बवेधाद् भुक्तांशजीवा स्फुटमग्रका स्यात् ॥

# शिष्यघीवृद्धिदे च

इदमेवोर्घ्वशलाकं भ्रुवि स्थितं स्यात् कपालकं यन्त्रम् । चक्रं चोर्घ्वशलाकं वदन्ति पीठं सुसिद्धाशम् ॥ भ्रनयोः कीलच्छायामुक्ता घटिका वदन्ति वारुण्याः । पीठाकोदयवेधादग्राश्चापांशकाश्चापि ॥४२॥

#### ग्रब कपालयन्त्र को कहते हैं।

हि. भा. — मध्यादि अपने नतांश से कपालयन्त्र होता है। फलक में दिशा से अिंद्धत क्षितिजानुकार वृत्त बनाकर अभीष्ट दिन में खुज्या—चरज्या आदि से प्रत्येक अंश को कल्पनाकर मध्य नतांश पर्यंन्त उन्नतंश्वी साधन कर उस घटी को व्यस्त कपाल में अपने अपने नतांशाग्र में वृत्तपाली में अिंद्धत करना चाहिये, इस तरह से कपाल यन्त्र होता है। इष्टकाल में कपाल यन्त्र को हग्मण्डलाकार रखने से केन्द्रस्थ कीलच्छायानुसार केन्द्रगत सूत्र वृत्तपरिधि में जहां लगती है वहां अिंद्धत नाड़ी इष्टघटी होती है। एवं दिक्स्थसूत्र मध्याग्र से सूत्रों का जो ऐक्ध (योग) है उसके आपात से अर्थात् वृत्तपरिधि के साथ संयोग ते ध्यस्त (उल्टा) कपालस्थ उन्नतांशान्तर में घटी होती है। सिद्धान्तशेखर में "इदं भवेद्रव्वंशलाकमुख्यों स्थितं कपालं खुतिदिक् च चापम्" इत्यादि विज्ञान भाष्य में लिखित श्लोकों के अनुसार श्रीपित कहते हैं इस श्लोक का अर्थ यह है उध्वंगत है शलाका वा लम्ब जिसमें ऐसा यह चाप यन्त्र समान पृथिवी में छाया दिशा में स्थित कपाल यन्त्र होता है। कपाल यन्त्र में व्यास सूत्र के मध्य बिन्दु में स्थापित कील की छाया से त्यक्तघटी पश्चिम दिशा में होती है इति ॥४२॥

श्राचार्योक्त सूत्र की उपपत्ति व्याख्यारूप ही है । श्रीपत्युक्त सूत्रोपपत्ति के लिये शिष्यधीवृद्धिद तन्त्र में "इदमेवोध्वंशलाकं भुवि स्थितं स्यात् कपालकं यन्त्रम्" इत्यादि लल्लोक्त ही श्रीपत्युक्त का मूल है, सिद्धान्तशेखर में श्रीर शिष्यधीवृद्धिद में भी कपालयन्त्र भीर पीठ यन्त्र का उल्लेख साथ साथ है। जैसे सिद्धान्त शेखर में

इदं भवेदूर्ध्वंशलाकमुर्व्यां स्थितं कपालं द्युतिदिक् च चापम् । संसाधिताशं खलु चक्रयन्त्रं पीठं भवत्यूर्ध्वंशलाकमेव ।। मध्यस्य कीलप्रभया विमुक्ताः प्रत्यमातास्ता घटिका निरुक्ताः । पीठे तु सूर्योदय विम्बवेघाद् भुक्तांशजीवा स्फुटमग्रका स्यात् ।।

#### शिष्यधीवृद्धिद तन्त्र में।

इदमेवोर्घ्वशाकां मुनि स्थितं स्यात् कपालकं यन्त्रम् । चक्रं चोर्घ्वशाकां वदन्ति पीठं सुसिद्धाशम् ॥ धनयोः कीलच्छायामुक्ता घटिका वदन्ति वारुण्याः । पीठाकोदयवेषादग्राश्चापांशकाश्चापि ॥

# इदानीं विशेषमाह।

ग्रयवा कपालके नाड़िकादि सर्वे यथा धनुष्युक्तम् । कर्त्त रि यन्त्रं स्यूलं कृतं यतोऽन्येवंदामि ततः ॥४३॥

- सुः भाः—ग्रथवा यथा धनुषि धनुर्यन्त्रे सर्वं नाडिकादि यथोक्तं तथैव कपालकेऽपि ज्ञेयम् । ग्रथान्यैर्यतः कर्त्तरियन्त्रं स्थूलं कृतं ततस्तस्मादहं सूक्ष्मं वदामीति ॥४३॥
- वि. भा.— अथवा धनुर्यन्त्रे सर्वं नाडिकादियथोक्तं कपालके यन्त्रेऽपि तथैव ज्ञेयम् । यतोऽन्यैराचार्यैः कर्त्तरि यन्त्रं स्यूलं कृतं तस्मात्कारगादहं सूक्ष्मं वदामीति ॥४३॥

## भन विशेष कहते हैं।

हि. भा.—अथवा धनुर्यन्त्र में सब नाड़िकादि वातें जैसी कही गयी है वैसी ही कपालयन्त्र में समक्तनी चाहिये। नर्यों कि ग्रन्य ग्राचार्य लोगों ने कर्त्तरी यन्त्र को स्थूलरूप से वर्णन किया है इस कारण से मैं सूक्ष्म कहता हूं इति ॥४३॥

# इदानीं कर्त्तरी यन्त्रमाह।

# द्विक्स्थितफलकद्वियुतिस्तले तदग्रस्थसूत्रयोर्मध्ये । कीलस्तच्छायापात् कर्त्तं यां नाड्काः स्यूलाः ॥४४॥

- सु. भा-— प्रधंवृत्तानुकारं फलकद्वयं कार्यम् । एकमधोऽर्धनाडीवलयानुकारमन्यदघोऽर्धयाम्योत्तरवृत्तानुकारम् । ततस्तले यथादिक्स्थितयोर्द्वयोः
  फलकयोर्युतिः कार्या यथैकं नाडोमण्डलधरातलेऽन्यत् स्वयाम्योत्तरमण्डलधरातले
  स्यात् । तदग्रस्थे ये पूर्वापरदक्षिणोत्तरानुकारे सूत्रे तयोर्मध्येऽर्थाद्वृत्तयोः केन्द्रे
  कीलः स्थाप्यो यथाऽयं कीलो ध्रुवयिष्टिरेव भवेत् । एविमदं कर्त्तरीयन्त्रं भवेत् ।
  ध्रस्यां कर्त्तर्यां तच्छायाग्रात् कीलच्छायाग्रात् स्थूला नाडिका इष्टघटघो भवन्ति ।
  इदमेव भास्करेण 'भूस्यं ध्रुवयिष्टिस्थं चक्रम्'— इत्यादिना नाडीवलयाख्यं यन्त्रमुदितं । भास्करिविमा यदि रिविक्वान्तिरेकिस्मन् दिने स्थिरा तदैवोन्नतघटिका वास्तवा गोल युत्तया भवन्ति परन्तु रवेः क्वान्तेः प्रतिक्षणं चलत्वान्नाडिकाः स्थूला भवन्तीत्याचार्योक्तं गोलयुक्तियुतं बुद्धमिद्धिश्वन्त्यम् । अनेन
  यन्त्रेण नतकाल-क्वानं सूक्ष्मं भवतीति सिद्धान्तिवदां स्फूटम् ॥४४॥
- वि. भा-अर्घवृत्तानुकारं फलकद्वयं कार्यम् । एकमघोऽर्घनाङीवृत्ताकारमन्य-दघोऽर्घं याम्योत्तरवृत्तानुकारम् । ततस्तत्तले यथादिक् स्थितयोर्द्धयोः फलकयोर्युतिः कार्या यथैकं नाङीवृत्तघरातलेऽन्यत् स्वयाम्योत्तरवृत्तघरातले स्यात् । तदग्रस्थे ये पूर्वापर दक्षिणोत्तरानुकारे सूत्रे तयोर्मध्येऽर्थाद्वृत्तयोः केन्द्रे कीलः स्थाप्यो यथाऽयं कीलो घ्रुवयिटरेव भवेत् । एविमदं कर्त्तरीयन्त्रं भवेत् अस्यां कर्त्तर्यां कीलच्छाया-ग्रात् स्थूला इष्ट नाडिका भवंति । सिद्धान्तशेखरे—

"ज्यामध्यतिर्यक्स्थितकीलमेतत् पूर्वापरस्थं स्थिरकर्त्तरी स्यात्। प्रत्यग् घनुः कोटिमुखात् द्युनाडचः समुज्झिताः कीलरुचा भवन्ति ॥"

श्रीपितनैवं कथ्यते ग्रस्यार्थः एतच्चक्रयन्त्रं ज्वामध्यतिर्यंक् स्थितकीलकं व्यासरेखाया मध्यबिन्दौ तिर्यगाकारेण निवेशितलौहादिकीलं पूर्वापरस्थं (पूर्वपिष्ट्रिमानुरूपेण स्थापितं) स्थिरकर्त्तरोति कर्त्तर्याख्यं यन्त्रं स्यात् । प्रत्यग्धनुः कोटिमुखात् पश्चिमबिन्दौ यद्धनुः या च कोटिः (धनुषः प्रान्तः) तदारभ्य कीलख्चा (ज्यामध्यस्थापित कोलच्छायया) समुञ्ज्ञिताः (मुक्ताः) नाडचः द्युनाडयः (दिनगत घटिका) भवन्ति ।

#### अत्रोपपत्तिः ।

चक्र यन्त्रस्यैव भेदान्तरं कर्त्तरीयन्त्रम् । चक्रयन्त्रे नाड़ीवृत्तानुसारेग्रा स्थापिते पूर्ववदेव पश्चिमबिन्दोः कीलच्छायाविधका घटिकाः सूर्योदयतो दिनगता घटिकाः स्थूला भवन्ति । पूर्वविन्दोः सूर्यो यथायथोपरि याति तथा तथा पश्चिम-बिन्दोः कीलच्छायाऽघो यातीति । ग्रत्र लल्लोक्तम्—

"समपूर्वापरमेतत् स्थिरं स्थितं भवति कर्त्तंरीयन्त्रम् । ज्यामध्यस्थित तिर्यक्कीलच्छायोज्झिता घटिकाः ॥"

इति श्रीपत्युक्तसदृशमेव । सिद्धान्तशिरोमगोर्गोलाध्याये इदमेव 'भूस्थं ध्रुवयिष्टस्थम्' इत्यादिना भास्करेग नाड़ीवलयाख्यं यन्त्रं कथितम् । भास्करोत्तया यद्येकस्मिन् दिने रिवक्रान्तिः स्थिरा भवेत्तदैवोन्नतघिटका वास्तवा भवितुर्महन्ति परन्तु रवेः क्रान्तेः प्रतिक्षणं वैलक्षण्यान्नाड़िकाः स्थूलाभवन्तीत्याचार्योक्तं युक्तियुक्तम् । अनेन यन्त्रेग नतकालज्ञानं सूक्ष्मं भवतीति विज्ञैर्ज्ञयम् ॥४४॥

## भव कर्त्तरी यन्त्र को कहते हैं।

हि. मा. — एक नीचे में अर्घ नाड़ीवृत्ताकार, दूसरा नीचे में अर्घयाम्योत्तरवृत्ताकार, इस तरह के अर्घवृत्तानुकार दो फलक करना चाहिये। उसके बाद उनके तल में दोनों फलकों को इस तरह योग करा देना जिस से एक नाड़ीवृत्त घरातल में हो और दूसरा याम्योत्तरवृत्त घरातल में हो जाय। उन के अग्र में जो पूर्वापरानुकार और दक्षिणोत्तरानुकार सूत्र हो उन दोनों के मध्य में अर्घात् वृत्तद्वय के केन्द्र में कील को स्थापन करना जिससे यह कील ध्रुवयष्टि हो, इस तरह यह कर्त्तरी यन्त्र होता है। इस कर्त्तरीयन्त्र में कीलच्छायाग्र से स्थूल इष्टघटी होती है। सिद्धान्तशेखर में 'ज्यामध्यतिर्यक्रियतकीलमेतत्' इत्यादि विज्ञान भाष्य में लिखित श्लोक के अनुसार श्रीपित कहते हैं। इसका तात्वर्य यह है कि यह चक्र यन्त्र व्यास रेखा के मध्य बिन्दु में तिर्यक् झाकार से निवेशित लोह आदि कील

को पूर्वीपर रूप से स्थापन करने से कर्तरी संज्ञक यन्त्र होता है । पञ्चिम विन्दु में जो धनुष ग्रौर उसका जो प्रान्त उससे ग्रारम्भ कर ज्यामघ्य स्थापित कीलच्छाया से मुक्त (त्यक्त) नाड़ी — द्युनाडी (दिनगत घटी) होती है । इति ॥४४॥

#### उपपत्ति ।

चक्रयन्त्र ही का भेदान्तर कर्त्तरी यन्त्र है। नाड़ीवृत्तानुसार चक्रयन्त्र को स्थापन करने से पूर्ववत् ही पिश्चम बिन्दु से कीलच्छायापर्यन्त घटी सूर्योदय से दिनगत स्थूल घटी होती है, पूर्वबिन्दु से ज्यों-ज्यों ऊपर जाते हैं त्यों त्यों पिश्चमिवन्दु से कीलच्छाया नीचे जाती है। यहां 'समपूर्वापरमेतत् स्थिर स्थितं भवित कर्त्तरी यन्त्रम्' इत्यादि संस्कृतोपपित्त में लिखित लल्लाचार्योक्त श्रीपत्युक्त के सदृश ही है। सिद्धान्तिशरोमिण के गोलाघ्याय में 'सूस्थं घ्रुवयिष्टस्थम्' इत्यादि से श्रीभास्कराचार्यं ने इसी को नाड़ीवलय संज्ञक यन्त्र कहा है। यदि एक दिन में रिव की क्रान्ति स्थिर मानी जाय तब ही भास्कराचार्योक्ति से उन्तत घटी वास्तव हो सकती है परन्तु रिव की क्रान्ति प्रतिक्षण विलक्षण होती है इसलिये 'नाड़िकाः स्थूला भवन्ति' यह ग्राचार्योक्त युक्तियुक्त है। इस यन्त्र से नतकाल ज्ञान सूक्ष्म होता है इति ।।४४॥

#### इदानीं पीठयन्त्रमाह।

# हृष्ट्योच्च्यं समपीठं यष्टिव्यासार्धमन्तिकं परिधौ । दिग्भगगांशेर्मूर्धन्यग्रा घटिकादिभिश्चाङ्कभ्यम् ॥४५॥

सु. भा.—एकं हचौच्च्यं हचौ च्च्यसमे प्रदेशे से गतं यिष्ट व्यासार्धमिन्तिक समपीठं समं चाकाकारं फलकं कार्यम् । परिषो दिग्भिभंगणांशेस्तथा मूर्धनि परिष्यग्रभागेऽग्राघटिकादिभिरग्रोन्नतघटयादिभिश्चाङ्क्यं पीठसंज्ञ यन्त्रं चक-यन्त्राकारं भवतीत्यर्थं : ॥४५॥

तथा च लल्लः चक्कं चोर्घ्वंशलाकं वदन्ति पीठं सुसिद्धाशम्।
(शिष्यघीवृ० यन्त्राध्याय, श्लोक २५)

वि भा.—हष्टघौच्च्यसमे प्रदेशे खे गतं यष्टिव्यासार्घमन्तिकं समपीठं (सम चक्राकारं फलकं कार्यम् ) परिघौ दिग्भिर्भगणांशैः, मूर्घित (परिध्यग्रभागे) प्रग्राघटिकादिभिः (ग्रग्रोन्नत घटिकादिभिः) अङ्क्रुचं पीठयन्त्रं चक्राकारं भवतीति । सिद्धान्तशेखरे—

"संसाधिताशं खलु चक्रयन्त्र पीठं भवत्यूर्ध्वशलाकमेव। पीठे तु सूर्योदय बिम्बवेघाद् भुक्तांशजीवा स्फुटमग्रका स्यात्॥" श्रीपितनैवं कथ्यते । ग्रस्यार्थः—संसाधिताशं चक्रयन्त्रं (कृतिदक् साधनं पूर्वकथितंचक्रयन्त्रं) ऊर्ध्वशलाकमेव (उपिरगतलम्बमेव) पीठं (पीठ संज्ञकं) यन्त्रं भवेत् । पीठे यन्त्रे सूर्योदयिबम्बवेधात् (सूर्योदयसमये रिविबम्बवेधेन) भुक्तांशजीवा (भुक्तानामंशानां जीवा) ऽग्रका स्यात् । स्फुट (प्रत्यक्षमेव दृश्यते) मिति ।

#### भ्रत्रोपपत्तिः ।

कृतिदक् साधनं वृताकारं पीठयन्त्रं सूर्योदये सूर्याभिमुखं स्थापितं तेन पिक्चमिबन्दोर्यदन्तरेण छाया पितता तदन्तरमग्रा चापांशास्तज्ज्याऽग्रा भवतीति यन्त्रस्थितिदर्शनेनेव स्फुटम् । शिष्यघीवृद्धिद तन्त्रे —

'चक्रं चोध्वंशलाकं वदन्ति पीठं सुसिद्धाशम् । पीठाकोदयवेधादग्राश्चापांशकाश्चापी ॥' ति लल्लोक्तमेव श्रीपत्युक्तस्य मूलमिति विज्ञैविवेचनीयम् ॥४५॥

## श्रब पीठ यनत्र को कहते हैं।

हि. मा- हिष्ट की ऊं चाई के तुल्य प्रदेश में आकाशस्य यिष्ट व्यासार्धजितत चक्राकार फलक करना चाहिये। परिधि में दिशा और भगणांश को अिक्कृत करना चाहिये तथा
परिधि के अग्रभाग में अग्राघटी को अिक्कृत करना अर्थात् पीठ यन्त्र चक्राकार होता है।
सिद्धान्तशेखर में "संसाधिताशं खलु चक्रयन्त्रं" इत्यादि विज्ञान माष्य में लिखित श्लोक
के अनुसार कहते हैं, इसका अर्थ यह है-पूर्वकथित चक्रयन्त्र जिसमें दिक्साधन किया हुआ
है उपरिगत लम्ब ही पीठ संज्ञक यन्त्र होता है, पीठ यन्त्र में सूर्योदयकाल में रिविविम्ब विध
से भुक्त अंशों की जीवा (ज्या) अग्रा है इति ॥४४॥

#### उपपत्ति ।

जिस में दिक्साधन किया हुआ है ऐसे वृत्ताकार पीठ यन्त्र को सूर्योदयकाल में सूर्याभिमुख स्थापन करने से पश्चिम बिन्दु से जितने अन्तर पर छाया पतित होती है वह अग्राचापांश है उसकी ज्या अग्रा होती है, यह यन्त्रस्थित की भावना ही से स्फुट है। शिष्यधीवृद्धिदतन्त्र में 'चक्र' चोर्घ्वंशलाकं वदन्ति पीठं' इत्यादि लल्लोक्त ही श्रीपत्युक्ति का मूल है इसको विज्ञलोग विचार कर देखें इति ॥४५॥

## इदानीं यन्त्रान्तरमाह।

नलको मूले विद्वस्तत्स्नुतिघटिकोद्धृतः समुच्छ्रायः । सन्धाङ्गुलैस्तु तैर्नाड्रिका क्रिया यन्त्रसिद्धिरतः॥४६॥ सु० भा० — एक इष्टप्रमाणो नलको मूले विद्धः कार्यः । स च जलैः पूर्णः कार्यः । ग्रघोरन्ध्रेण यावतीभिषंटीभिर्जलस्रुतिः स्यात् ताः स्नुतिघटिका ज्ञातव्याः । नलकस्य समुच्छ्रायस्तत्स्नुतिघटिकोद्धृतस्तैर्लव्धाङ्गु, लैर्नलके चैकैको विभागोऽङ्कृनीयःः । ग्रत एभ्यो विभागेम्यो नाडिका क्रिया यन्त्रा सिद्धिर्भवति । नाडिकाक्रियया यन्त्रसिद्धिर्भवतीत्यर्थः । एकविभागपर्यन्तं जलस्रुत्येका घटी द्वितीयभागपर्यंतं जलस्रुत्या घटीद्वयम् । एवमत्र कालज्ञानं भवति ।

श्रत्रोपपत्तिः। यदि स्नुतिघटिकाभिर्नलकोच्छ्रितिसमा जलस्नुति-स्तदैकया घटचा किं जानैकघटी समकालजलस्नुताबुच्छ्रितिरिति ॥४६॥

विः भाः—एक इष्टप्रमाणो नलको ग्राह्यस्तन्मूले विद्धः कार्यः । स जलैः पूर्णः कार्यः । अघोरन्ध्रेण यावतीभिषंटीभिर्जलस्नुतिः स्यात् ताः स्नुतिष्ठिका बोद्धव्याः । तत्स्नुतिष्ठिकया नलकोच्छ्रायोभक्तौ लंट्यांगुलैर्नलके एकैको विभागिश्चिन्हितः कार्यः । स्रत एभ्यो विभागेभ्यो नाङ्किक्रियया यन्त्रसिद्धिर्भवत्यर्थादेक-चिन्हपर्यन्तं जलस्नुत्येका ष्टिका, द्वितीयचिन्हपर्यन्तं जलस्नुत्या ष्टिकाद्वयम् । एवमग्रेऽपि, स्रनया रीत्यात्र कालज्ञानं भवतीति ।

#### भ्रत्रोपपत्तिः ।

यदि जलस्रुतिघटिकाभिर्नेलकोच्छ्रितितुल्या जलस्रुतिर्लभ्यते तदैकया घटचा कि जातैकघटीतुल्यकालजनितस्रुतानुच्छ्रितिरिति । सिद्धान्तशेखरे श्रीपतिनैतिद्भिन्नमेव यन्त्रान्तरं कालज्ञानार्थं कथ्यते यथा—

"नीरस्नुत्या चिन्हिते नाडिकाद्यैर्मूलिच्छिद्रे वारिपूर्णे च पात्रे। गोलं तुम्बं पारताढ्यं गुरोन बद्धे केन प्रक्षिपेत्तत्र युक्ते।। यथा यथाऽम्बु स्रवित क्रमेरा तथा तथाऽघो ब्रजदत्र तुम्बम्। गोलं परिभ्रामयित स्वयं तत् सूर्यांशभुजान्तरगास्तु नाडघः॥"

ग्रस्यार्थः — मूलिच्छद्दे (अघोरन्ध्रवित) वारिपूर्णे पात्रे (जलपूर्णे कांस्या-दिभाजने) नीरस्रुत्या (जलप्रस्रविणेन) नाड़िकाद्यैः (घटीपलिवपलाद्यैः) चिन्हिते पारतसिहतं गोलं तुम्बं (वर्तुलाकारमलावु) तत्र जलपूर्णेपात्रे गुर्णेन (रिहमिभः) वद्धे, केन (जलेन) युक्ते प्रक्षिपेत् । ग्रम्बु (तद्भाजनजलं) यथा यथा स्रवित (प्रस्रवितं भवित) तथा तथा ग्रत्र ग्रघो त्रजत् तुम्बं स्वयं (ग्रनन्यसापेक्षं) गोलं परिभ्रामयित । तत्र सूर्यांशभुजान्तरगाः — क्रान्तिवृत्ते यस्मिन्नं शे सूर्यो वर्त्तते तस्य क्षितिजवृत्तस्य चान्तरे गता नाडघो भवन्ति । ग्रत्र लल्लोक्तम् —

> जलकुण्डेऽघिरछद्रे घटिकाकालाङ्किते जलस्रुत्या । गोले वेष्टनस्त्राग्रबद्धतुम्बं क्षिपेत् सरसम् ॥

स्रवति च यथा यथाऽम्भस्तथा तथाऽलाबु गच्छमानमधः । भ्रमयति गोलकमंभो भुक्ताङ्का नाडिका ज्ञेयाः ।

इदमेव श्रीपत्युक्तस्य मूलम् । सूत्रानुसारेगा गोलनिर्माणं अधिश्छद्रजल-कुण्डे मूलच्छिद्रे जलपूर्णपात्रे वा सपारदतुम्बप्रक्षेपेगा नीचतो गच्छत् तत्तुम्बं स्वयं गोलं भ्रामयतीति कारुकार्यनिपुगा एव तादृशं तुम्बयन्त्रमिदं निर्मातुमर्हन्ति । नाड़ीवृत्ते क्षितिजसूर्याभ्यन्तरगा अवयवाः सावनघटिका भवन्तीति ॥४६॥

#### ग्रब यन्त्रान्तर को कहते हैं।

हि. भा.— एक इष्ट प्रमाण नलक लेकर उसके मूल में छेद करना चाहिये। नलक को जल से भर देना चाहिये, नीचे के छेद से जितनी घटी में जलस्नुति (जल का बहना) होती है, उसको जलस्नुतिघटी समक्षनी चाहिये। उस जलस्नुति घटी से नलक के उच्छाय (ऊंचाई) में भाग देने से जो लब्ध अंगुल हो उससे नलक में एक एक विभाग अङ्कित करना, इन विभागों से नाड़िका किया द्वारा यन्त्र सिद्धि होती है अर्थात् एक विभाग पर्यन्त जलस्नुति से एक घटी, द्वितीय विभाग पर्यन्त जलस्नुति से दो घटी, आगे भी इसी तरह, एवं काल जान होता है।।४६॥

#### उपपत्ति ।

यदि स्नुति घटी में नलक की उच्छिति तुल्य जलस्नुति पाते हैं तो एक घटी में क्या इससे एक घटी तुल्य काल जलस्नुति में उच्छिति झाती है इति ।।४६।।

# इदानीं पुनर्यन्त्रान्तरमाह।

घटिकाङ्गुलान्तरस्थैश्चीरिर्गुटकैर्घटीघृतैरङ्कचा। उपरिनरोऽषः सुषिरस्तिर्यक् कीत्लोऽस्य मुखमध्ये॥ ४७॥ ध कीलोपरिगामिन्यां चीर्यां घृतपारमलावु तस्मिन्। स्रवति जले क्षिपति नरो गुटिकां कूर्मादयश्चैवम्॥ ४८॥ ध

सु. भाः — ग्रत्पविस्तारं विपुलदैर्घ्यं वस्त्रखण्डं चीरिरित्युच्यते । एकस्यां घटचां मनुष्यमुखाद्यावद्वस्त्रखण्डं तदग्रबद्धसपारदालाबुना जलस्यावाचातेन बहिनिः

- २. घटिकाङ्गुलान्तरस्यैश्चीरिर्गुटकैर्घटीघृतैरङ्कथा । उपरिनरोऽघःसुषिरस्तिर्यक् कीलोऽस्य मुखमध्ये ॥ ॥४७॥
- १. कील्प्रेपरिगामिन्यां चीर्यां धृतपारदमलाबु तस्मिन्।

सरित तद्घटिकाङ्गुल मुच्यते । चीरिर्घटिकाङ्गुलान्तरस्थेर्गुटकैर्घटीघृरौरङ्कघा । घटिकाङ्गुलान्तरस्थेरेकद्वित्र्यादिघटिकाङ्कितगुटिकास्तत्र योज्या इत्यर्थः ।

इयं चीरिर्नराकारस्य यन्त्रस्याधो रन्ध्रस्य मध्ये स्थाप्या तदुपरि च नरः स्थाप्यो यथा चीरिर्नराधो रन्ध्रतः प्रविष्टा नरमुखस्थितर्यक्कीलोपरिगा भवेत्। नरमुखाग्ने कीलोपरि यच्चीरिखण्डं तदग्ने पारदपूर्णमलावुतुम्बं वध्नीयात्। तस्मिन् तथा जलधारा नलकादिना देया यथाधो गच्छताऽलाबुना घटिकया नरमुखादेकां गुटिकां बहिर्गच्छेत्। एवं जले स्रवित नरो नराकारयन्त्रं घटिकयैकां गुटिकां मुखाद् बहिः क्षिपति। एवं नराकार यन्त्रस्थाने क्रमीदयः क्रमीदीनामाकारा बुद्धिमता कार्या इत्यर्थः।।४७-४८।।

वि. भा.— अल्पविस्तारं विपुलदैष्यं वस्त्र खण्डम्-चीरिरित्युच्यते । एकस्यां घट्यां मनुष्यमुखाद्यावद्वस्त्रखण्डं तदग्रबद्धसपार-दालावुना जलस्रावाघातेन बहिनिः सरित तद्घटिकाङ्गुलमुच्यते । चीरिषंटिकाङ्गुत्रान्तरस्येगुंटकैषंटीवृतै-रङ्क्ष्या, अर्थात् घटिकाङ्गुलान्तरस्येरेकद्वित्र्यादिघटिकाङ्क्तिगुटिकास्तत्र देयाः । इयं चीरिर्नराकारस्याघोरन्ध्रस्य यन्त्रस्य मध्ये स्थाप्या यथा चीरिर्नराघोरन्ध्रतः प्रविष्टा नरमुखस्य तिर्यक् कीलोपिरगता भवेत् । नरमुखाग्रे कीलोपिर यच्चीरिखण्डं तदग्रे पारदपूर्णमलाबुतुम्बं बघ्नीयात् तिसमन् तथा जलधारा नलकादिना देया यथाऽघो गच्छताऽलाबुना घटिका बहिर्गच्छेत् । एवं जले स्रवित नराकारयन्त्रं घटिकां गुटिकां मुखाद्वहिः क्षिपति । एवं नराकारयन्त्रस्थाने क्षुमादीनामाकारा विज्ञैः कार्येति ।। सिद्धान्त शेखरे—

"चीरीं प्रकुर्योद् घटिकाङ्गुलाङ्कामेतेन मुक्त्वा वदनेन घार्या । तां निक्षिपेत् काष्ठनरोदरे तु तदाऽस्य तिर्यक्स्थितकीललग्नम् ॥ चीरीसूत्रं क्रोड़काधोगतं स्यात् तस्मिंस्तुम्बं पूर्ववद्वद्वमुच्चेः। पात्रेऽघोऽघस्तद्व्रजेत् कर्णयन्त्रान्नाड़ी भुक्तामुन्स्जत्येष नाडघाः॥"

श्रीपत्युक्तमस्ति । लल्लोक्तं च-

"क्षिटकाङ्काङ्गुल संख्यां बद्ध्वा चीर्यां निवेशयेद् घटिकाः।
सदनेन ता निरुष्यादुदरे नतवदनमनुजस्य ।।
चीर्येत बद्धसूत्रे तिर्यक्स्थितवदनकीलकनलेन ।
चीत्वा जठरिच्छद्रेगा केनिचत्तद्वहिः कुर्यात् ॥
सत्र निबद्धमलावु प्राग्वत् सलिलेन नीयमानमघः।
चीरीमाकृष्यान्यां जपत्यमुं नाड्कां गुटिकाम् ॥

इति, आचार्योक्तं लल्लोक्तं च श्रीपत्युक्तेर्मूलमिति प्रतीयते । लल्लोक्त-मार्यात्रयं बहुत्रैवाशुद्धमिव प्रतिभाति न चास्य किमिप व्याख्यानं सम्यक्-दृश्यते । एतयो (आचार्यं लल्लयोः) रनुरूपरचनस्य श्रीपत्युक्तस्य नितरामेवाशयोऽशुद्ध-त्वान्नावगम्यते ॥ इति. ४७-४८ ॥

#### भव पुनः यन्त्रान्तर कहते हैं।

हि. भा --- ग्रल्प विस्तार ग्रीर ज्यादा दैर्घ्य (लम्बाई) वाला वस्त्र खण्ड (कपड़े का टुकड़ा) चीरी कहलाता है। एक घटी में मनुष्य के मुख (मूंह) से जितना बड़ा वस्त्र खण्ड जलस्राव (जल का निकलना) के ग्राधात (श्रक्का) से बाहर निकलता है वह घटिकां-गुल कहलाता है। घटिकांगुलान्तरस्थित एक, दो-तीन ग्रादि घटी से ग्रङ्कित (चिन्हित) गुटिका (गोली) चीरी में देनी चाहिये। इस चीरी को नरा (मनुष्य) कार यन्त्र के नीचे के छिद्र में रखना चाहिये, जिससे चीरी नर के नीचे छिद्र से प्रविष्ट होकर नर मुख में स्थित तिर्यक्रूप कील के उपरिगत हो जाय। नर मुखाग्र में कील के ऊपर जो चीरी का खण्ड है उसके ग्रग्र में पारे से भरे हुए तुम्ब (तुम्बी) की बांघ कर, उसमें नलक ग्रादि से जलघारा देनी चाहिये जिस से नीचे जाती हुई तुम्बी से घटिका में नरमुख से एक गुटिका (गोली) बाहर चली जाय। एवं जलस्राव से नराकार यन्त्र घटिका से एक गुटिका को मुख से बाहर फेंकता (निकालता) है। इस तरह नराकार यन्त्र की जगह कूमें (कल्लुमा) म्रादि आकार का यन्त्र भी समक्षना चाहिये। सिद्धान्तशेखर में "चीरीं प्रकुर्याद् घटिकांगुलाङ्का-मेतेन मुक्त वा वदनेन वार्या" इत्यादि विज्ञान भाष्य में लिखित श्लोकानुसार श्रीपति कहते हैं। "घटिकाङ्कांगुल संस्थां बद्घ्वा चीयाँ" इत्यादि विज्ञान भाष्य में लिखित लल्लोक्त श्लोक श्रीर श्राचार्योक्त ही श्रीपत्युक्ति का मूल है। लल्लोक्त तीनों क्लोक बहुत जगह श्रशुद्ध मालूम होते है। इनकी सम्यक् व्यास्या कहीं पर कुछ भी देखने में नहीं श्राती है। श्राचार्योक्त भौर लल्लोक्त के अनुरूप श्रीपत्युक्त का आशय अग्रुद्धता के कारण समक्त में नहीं आता है इति ॥४७-४८॥

# इदानीं विशेषमाह।

# जलपूर्णकृत घटीभिः स्तनास्यकर्णाविभिर्जलं क्षिपति । पुरुषोऽन्यस्यासक्ते वक्क्षे पुरुषस्य कृतमुपरि ॥४६॥ ध

सु. मा. पुरुषो (नराकारयन्त्रम्) रचनीयः। जलपूर्णकृता घटी घटीयन्त्र-. मस्य स्तने मुखे कर्णादौ वाऽन्तस्था योज्या यथाऽयं पुरुषः स्तनास्यकर्णादिभि-रन्यस्य प्रतिपुरुषस्य तदासक्ते वक्त्रे मुखे घटीमितेन कालेन जलं क्षिपित। एवमप्युपरि पूर्वश्लोके प्रतिपादितं यन्त्रं प्रकारान्तरेण कृतं भवेदित्यर्थः ॥४९॥

१ः पुरुषोऽन्यस्याऽसक्ते वक्त्रं पुरुषस्य कृतम्परि ॥४९॥

वि. भा- पुरुषो (नराकार यन्त्रं) निर्मातव्यः । जलपूर्णंकृतघटी (घटी-यन्त्रं) अस्य स्तने-श्रास्ये (मुखे) कर्णादौ वाऽन्तस्तथा प्रयोक्तव्या यथाऽयं पुरुषः स्तनास्यकर्णादिभिरन्यस्य पुरुषस्य तदासक्ते वक्त्ने (मुखे) घटीतुल्यकालेन जलं क्षिपति। एवमुपरि कथितं यन्त्रं प्रकारान्तरेण कृतं भवेदिति ॥४९॥

## म्रब विशेष कहते हैं।

हिः साः—नराकार यन्त्र बनाना चाहिये। जल से भरे हुए घटीयन्त्र को इसके स्तन-मुख (मुंह) कर्एा (कान) आदि में भीतर इस तरह प्रयोग करना चाहिये जिस से यह पुरुष स्तन-मुख-कर्एा आदिओं से अन्य पुरुष के उससे आसक्त मुख (मुंह) में एक घटी तुल्यकाल में जल को निकाले। इस तरह पूर्वकथित यन्त्र प्रकारान्तर से किया हुआ होता हैं इति ॥४६॥

# इदानीं पुनर्विशेषमाह।

एवं वधूवरं नाड़िकांगुलैः संयुता वरे योज्या।
युद्धानि मल्लगजमिहषमेव विविधायुधमृतां च ॥५०॥
निगिरति गिरति घटिकांगुलाङ्कितैः खण्डकैमंयूरोऽहिम्।
चीर्यामेवं गुटिकोपरिस्थितैक ह्मचार्याद्यैः ॥५१॥

सु. भा.— एवं वधूवर मुखस्थतिर्यक् कीलोपरिगचीरिगतनाडिकाङ्गुलैस्तथैव वरे वधूर्योज्या यथा वध्वघोरन्ध्रभचीर्यभबद्धालाबुनाऽघोगच्छता घटीमितेन कालेनैका गुटिका वरमुखाद्बहिनिर्गत्य वधूमुखे प्रविशेत्। एवमनेनैव बीजेन घटीमितेन कालेन मल्लगजमहिषमेषविविघायुघभृतां च युद्धानि स्युः। मयूरो घटिकाङ्गुलाङ्कितैः खण्डकैरिहं सर्पं च निगिरित वा गिरित। एवं चीर्या गुटिकोपरि स्थापितैब्रह्मचार्याद्याकारैः कीलोत्क्षेपाभिहतः पटहो वा घण्टाशब्दं करोति। एवमत्र यन्त्र-सहस्राशा भवन्ति।।५०-५२।।

वि. मा.—एवं वधूवरमुखस्थितिर्यक्कीलोपरिगतचीरिगतनाडिकांगुलैस्तथैव वरे वधूर्योज्या यथा वध्वधोरन्ध्रगचीर्यग्रवद्वालाबुनाऽघो गच्छता घटीमितेन कालेनेका गुटिका वरमुखाद्वहिर्निर्गत्य वधूमुखे प्रविशेत्। एवमनेनैव बीजेन घटीमितेन कालेन मल्ल-गज-महिष-मेषविविधायुधभृतां च युद्धानि स्युः। मयूरो घटिकांगुलाङ्कितैः खण्डकैरहिं (सपं) च निगिरति वा गिरति। एवं चीर्या गुटिकोपरि स्थापितैर्ब्रह्मचार्याकारैः कीलोत्क्षेपाभिहतः पटहो घण्टा वा शब्दं

१. चीर्यामेवं गुटिकोपरिस्थितैर्बं ह्मचार्याद्यैः ॥५१॥

करोति । एवमत्र यन्त्रसहस्राणि भवन्तीति । सिद्धान्तशेखरै —

"इत्थं स्वबुद्ध्या गण्कः प्रकुर्यान्मेषादियुद्धं गजयन्त्रमत्र। यत्र स्वयंवाहकनाभिमध्यात् बीजं दशाङ्कोन हि कर्मणा यः ॥"

श्रीपतिनैवं कथ्यते । श्रस्यार्थः — इत्थममुना विधिना मेषादियुद्धं यन्त्रं तथा गजयन्त्रं चात्र गएकः प्रकुर्यात् । ग्रत्र क्लोकोत्तराद्धं मप्रासिङ्गकमर्थरिहतं च प्रतिभाति । ग्रत्र कल्लोक्तं च—

"कुर्यादयोऽपि चैवं घटिका जन्हुर्यथेष्टकालेन ।
मेषादीनां युद्धं सूत्रे सक्ते भवेदुभयोः ॥
परिकल्पित कालाध्विन युत्तया योगो भवेद्वधूवरयोः ।
घटिकांगुलाङ्कितं वा ग्रसित मयूरः क्रमादुरगम् ॥
हन्ति मनुष्यः पटहं छादयित छादकस्तथा छाद्यम् ।
एवं विधानि यन्त्राण्यैवमनेकानि सिध्यन्ति ॥"

इति श्रीपतेर्मूलम् । श्राचार्यादीनां समये ईहशानि यन्त्राणि साधारणजना-नामाश्चयं कराण्यासिन्नत्यनुमीयते । श्रीपतिना त्वल्पान्येव यन्त्राणि सुगमोपायेनोप योगवन्ति तत एवादाय लिखितानोति ॥५०-५२॥

#### श्रव पुनः विशेष कहते हैं।

हि. मा.—एवं वधू-वर मुखस्थ तियंक्-कीलोपरिगत चीरिगत नाड़िकांगुल से उसी तरह वर में वधू को जोड़ना (मिलाना) चाहिये जिससे वधू के नीचे रन्ध्र (छिद्र) गत चीरी के अग्र में बंधा हुआ नीचे जाते हुये अलाबु (तुम्बी) से एक घटीकाल में एक गुटिका वर के मुख (मृंह) से वाहर निकल कर वधू के मुख में प्रवेश करे। एवं इसी बीज (मूल) से एक घटीमितकाल में मल्ल (पहलवान) गज (हाथी) महिष (भेंसा) मेष (भेंगा) और अनेक तरह के हथियार रखने वालों के युद्ध होते हैं। मयूर घटिकांगुल से अिद्धत खण्डों से सर्प को निगलता है। एवं चीरी में गुटिका के ऊपर स्थापित (रखे हुए) अह्मचारी आदि आकार से कील के उत्क्षेपण के आघात से घण्टा शब्द करती है। इस तरह यहां हजारों यन्त्र होते है। सिद्धान्तरीखर में 'इत्थं स्वबुद्धधा गणक: प्रकुर्यात् 'इत्यादि विज्ञान भाष्य में लिखित क्लोक के अनुसार श्रीपित कहते हैं। इसका धर्ष यह है—इस विधि से मेषा (भेंगा) दि युद्धयन्त्र तथा गजयन्त्र की रचना गणक (ज्योतिषी) करें। इस क्लोक का उत्तरार्ध बिना प्रसङ्ग का और बिना अर्थ का है। यहां 'कुर्यादयोऽपि चैवं घटिका जन्हुयंथे-इकालेन' इत्यादि विज्ञान भाष्य में लिखित लल्लोक्त ही श्रीपत्युक्ति का मूल है। आचार्य (ब्रह्मगुप्त) आदि के समय में इस तरह के यन्त्र साधारण जनों के आद्वयं कारक थे ऐसा

मालूम होता है। श्रीपित ने सुगम उपाय से उपयोग के लायक थोड़े ही यन्त्रों को (ग्राचार्योक्त भौर लल्लोक्त से) लेकर लिखा है इति ।।४०-४२।।

#### इदानीं स्वयंवहयन्त्रमाह।

लघुदारुमयं चक्रं समसुषिरारान्तर पृथगराणाम् । भ्रघेन रसेन पूर्णे परिधौ संहिलष्टकृतसन्धिः ॥५३॥ तियंक्कीलोमध्ये द्वचाघारस्थोऽस्य पारदो भ्रमति । छिद्राण्यूर्ध्वमधोऽतश्चक्रमजस्रं स्वयं भ्रमति ॥५४॥।

सुः भाः — अराणामाराणाम् । संश्लिष्टकृतसिन्धः संश्लिष्टो मुद्रितः कृतः सिन्धिश्छिद्रम् यस्य चक्रस्य तत् । अस्य यन्त्रस्य मध्ये तिर्यवकीलो मध्ये स्थाप्यश्चक-श्चायस्कारशाणवद्द्वयाधारस्थः कार्यः । स्रस्य चक्रस्य पारदो रस स्राराणां छिद्राणि प्रति ऊर्ध्वमधश्च यतो भ्रमित स्रतस्तदाकृष्टं चक्रं स्वयमेवाजस्रं भ्रमित । 'लघुदारुजसम चक्रे समसुषिराराः समान्तरा नेम्याम्'-इत्यादि भास्करोक्तमेतद-नुरूपमेव ॥५३--५४॥

वि. भा.—पृथक् श्राराणां समिन्छद्रं समान्तरं लघुकाष्ठमयं चक्रं विघेयम् । अर्घेन रसेन (पारदेन) पूर्णे परिघो संदिलष्टकृतसिन्धः (संदिलष्टो मुद्रितः कृतः सिन्धिहछद्रं यस्य चक्रस्य तत्), श्रस्य यन्त्रस्य मध्ये तियंक्कीलः स्थाप्यः, चक्रश्चा-यस्कारशाणवद्द्वयाधारस्थः कार्यः। श्रस्य चक्रस्य पारदो (रसः), श्राराणां छिद्राणि प्रति ऊर्ध्वमधश्च यतो भ्रमति, श्रतस्तदाकृष्टं चक्रं स्वयमेवाजस्रं (सततं) भ्रमति। यन्त्रपालिगता श्रंकुशाकृतयो रसप्रक्षेपार्थं धातुजाः काष्ठजा वा रूपविशेषा श्राराः। श्रारादिषु कियत्पारादिदानेन तद्यन्त्रं स्वयं भ्रमेदित्यस्य ज्ञानं दुर्घटं देशकालयन्त्रपरिमाणाधीनमीश्वरेकगम्यमिति। सिद्धान्तशिरोमणौ—

''लघुदारुजसमचक्रे समसुषिराराः समान्तरा नेम्याम् । किञ्चिद्वक्रा योज्या सुषिरस्यार्घे पृथक् तासाम् ॥

रसपूर्णे तच्चकं द्वयाघाराक्षस्थितं स्वयंभ्रमतो" ति भास्करोक्तमाचार्योक्तानुरूपमेवास्ति ॥ अस्यार्थः — ग्रन्थि कीलरहिते लघुदारुमये भ्रमसिद्धे चक ग्राराः
कि विशिष्टाः — समप्रमाणाः समसुषिराः समतौल्याः समान्तरा नेम्यां योज्याः ।
ताश्च नद्यावर्त्तंवदेकत एव सर्वाः किश्विद्धका योज्याः । ततस्तासामाराणां सुषिरेषु
पारदस्तथा क्षेप्यो यथा सुषिरार्धमेव पूर्णं भवति, ततो मुद्रिताराग्रं तच्चक्रमयस्कारशाणवद् द्वचाधारस्थं स्वयं भ्रमति । श्रत्र युक्तिः — यन्त्रेकभागे रसोह्यारामूलं

१. छिद्राण्यूर्ध्वमधोऽतश्चकमजस्यं स्वयं स्रमति ॥५४॥

प्रविशति । श्रन्यभागे त्वाराग्रं धावति । तेनाक्रृष्टं तत् स्वयं भ्रमतीति ।।५३-५४।। ग्रब स्वयंवहयन्त्र को कहते हैं ।

हि. भा. -- लघुकाष्ठमय चक्र यन्त्र बनाना चाहिये, जिसके ग्राराग्रों में समान छिद्र हो तथा समान्तर हो, जिस चक्र यन्त्र के संश्लिष्ट (मुद्रित) छिद्र है। तथा ग्राधे पारे से पूर्ण (भराहुआ) परिधि है। इस यन्त्र के मध्य में तिर्यं क्रूप में कील स्थापन करना। चक्र को शाए। चढ़ाने वाले चक्र की तरह दो श्राधार पर रखना चाहिये। क्यों कि श्राराओं के छिद्र में पारा ऊपर श्रौर नीवे से घूमता है इसलिये उससे शाकृष्ट (खींचाहुश्रा) चक्र बराबर स्वयं (भ्रपने ही भ्राप) भ्रमए। करता है। यन्त्र की पालीगत अंकुश की भ्राकृति (ग्राकार स्वरूप की तरह पारे के प्रक्षेपण के लिये पारा ढालने के लिये धातु की वा काष्ट्र (लकड़ी) की बनी हुई चीज आरा शब्द से व्यवहृत है। सिद्धान्तशिरोमिए। में 'लघुदारुज समचक्री समसुषिराराः समान्तरा नेम्याम्'— इत्यादि विज्ञान भाष्य में लिखित भास्करोक्त प्रकार भाचार्योक्त के अनुरूप ही है। भास्करोक्त क्लोक का तात्पर्य यह है। प्रन्थि (गेठी-गिरह) लाघु दारु (लकड़ी) मय भ्रमसिद्ध (खरादा हुम्रा) चक्र में समप्रमाएा के समछिद्र के सम-तौल्य (सम वजन) के समान्तर पर ब्राराधों को नेमी (परिधि) में जोड़ देना, वे नदी के हिलोड़ (पानी बहने के घुमाव) की तरह एक ही तरफ सबों को जोड़ना चाहिये । तब उन भाराग्रों के छिद्रों में पाराग्रों को उस तरह देना चाहिये जिससे छिद्र का भाषा ही पूर्ण (पूरा) हो, तब मुद्रित आरा के अग्र वाला वह चक्र शान चढ़ाने के चक्र के सहश दो आधार पर स्थित होकर स्वयं घूमता है। यहां युक्ति यह है-पारा जहां एक भाग में भ्रारा के मूल में प्रवेश करता है और अन्य भाग में भारा के भग्न में दौड़ता है, उससे भाकृष्ट वह चक्र स्वयं भ्रमण करता है इति ॥५३-५४॥

#### इदानीं विशेषमाह।

## छिद्रे स्विधया क्षिप्ता समं यथा पारदं भ्रमित । कालसमिष्टमानैश्चक्रसमुत्तानमूर्ध्वं वा ॥५४॥

सु. भा- छिद्रे स्वबुद्ध्या समं पारदं क्षिप्त्वा तथा चक्रं स्थाप्यं यथा कालसमं कालानुसारि समुत्तानं क्षितिजानुकारं वोर्ध्वमूर्घ्वाधरं जलयन्त्रविद्ध-मानैर्भं मित । एकभ्रमगोन यथेष्टमानसमं कालमुत्पादयेत् तथा ऋतुविशेषे लघुगुरुकाष्ठमयं चक्रम् स्वल्पाधिकपारदसहितारं विरचयेदिति ॥५५॥

वि. भा.—छिद्रे स्विधया (स्वबुद्ध्या), समं पारदं क्षिप्त्वा चक्रं तथा स्थाप्यं यथा कालसमं (कालानुसारि) समुत्तानं क्षितिजानुकारं वोर्ध्वं (ऊर्ध्वाघरं जलयन्त्रवत्) इष्टमानेर्भ्रमित । एकभ्रमऐन यथेष्टमानसमं कालमुत्पादयेत्तथा

ऋतुविशेषे लघुगुरुकाष्ठमयं चक्रं स्वल्पाधिकपारदसहितारं विरचयेत्। भास्कराचार्येण-

> "उत्कीर्यं नेमिमथवा परितो मदनेन संलग्नम् । तदुपरि तालदलाद्यं कृत्वा सुषिरे रसं क्षिपेत् तावत् ॥ यावद्रसैकपार्श्वे क्षिप्तजलं नान्यतो याति । पिहितच्छिद्रं तदतरचक्रं भ्रमति स्वयं जलाकृष्टम् ॥"

सिद्धान्तशिरोमणी स्वयंवहयन्त्रसम्बन्धे एवमभिहितम् । ग्रस्य व्याख्या यन्त्रनेमि भ्रमयन्त्रेण समन्तादुत्कीयं द्वचगुलमात्रं सुषिरस्य वेधो विस्तारक्च यथा भवति ततस्तस्य सुषिरस्योपिर तालपत्रादिकं मदनादिना संलग्नं कार्यम् । तदिप चक्रं द्वचाधाराक्षस्थितं कृत्वोपिर नेम्यां तालदलं विद्ध्वा सुषिरे रसस्तावत् क्षेप्यो यावत् सुषिरस्याधोभागो रसेन मुद्रितः । पुनरेकपाक्ष्वं जलं प्रक्षिपेत् । तेन जलेन द्ववोऽपि रसो गुरुत्वात् परतः सारियतः न शक्यते । भ्रतो मुद्रितच्छिद्रं तच्चकः जलेनाकृष्टं स्वयं भ्रमतीति ॥५५॥

#### म्रब विशेष कहते हैं।

हि. भा- छिद्र में अपनी बुद्धि से पारा देकर चक्र को इस तरह स्थापन करना चाहिये जिससे कालानुसारी क्षितिजानुकार वा कर्घ्वाघर जलयम्त्रवत् इष्टमान से अमगा करता है। एक समगा से जैसे इष्टमान के तुल्यकाल को उत्पादन करें वेसे ऋतु विशेष में लघु-गुरु काष्ठमय चक्र को जिसमें स्वल्य—अधिक पारे वाला आरा हो बनाना चाहिये। सिद्धान्तिशिरोमिण में 'उत्कीयं नेमिमथवा परितो मदनेन संलग्नम् । तदुपरितालदलाद्यं कृत्वा सुषिरे रसं क्षिपेत् तावत्' इत्यादि विज्ञान भाष्य में लिखित श्लोकानुसार भास्कराचायं स्वयं इस यन्त्र के विषय में कहते हैं। इसका अर्थ यह है—यन्त्र की परिषि को चारों तरफ अम-यन्त्र (खरादने के यन्त्र) से इस प्रकार ठीक करना चाहिये कि छिद्ध की ऊंचाई और विस्तार दो अंगुल रह जाय। अनन्तर उस छिद्ध के ऊपर तालपत्रादि को चिपका देना चाहिये चक्र को दो आधाराक्ष (आधार घुरी) स्थित करके ऊपर नेमि (परिषि) में ताल पत्र को वेष कर छिद्ध में पारे को तब तक ढारना चाहिये जब तक छिद्ध का अधोभाग पारे से मुद्धित (छिप जाय) हो। फिर एक पार्व (बगल) में जल देना—उस जल से द्वव (तरल) भी पारा गुरुत्व (भारीपन) के कारण चारों तरफ निकल नहीं सकता है, अतः वह चक्र जिसमें छिद्ध मुद्धित है जल से आकृष्ट (खींचा गया) हो कर स्वयं अमगण करता है इति

इदानीं पुनर्विशेषमाह।

कीलस्योपरिगामिनि तत्पर्ययसूत्रके घृतमलाबु । प्रमन्वन्तलके प्रक्षिप्य नाड्का स्रवति पानीये ॥५६॥ सु. मा.—येन तिर्यंक्कोलेन सह चक्रमयस्कारशाए।वद्धृतं तिस्मन् सूत्रस्यैकमग्रं बद्ध्वा विपुलदेध्यं सूत्रं वेष्टयेत्। तत् सूत्रं च पर्यसूत्रकमुच्यते। तिस्मन्
कीलस्योपिरगामिनि तत्पर्ययसूत्रकस्य द्वितीयाग्रे ऽलाबुतुम्बं धृतं बद्धं कार्यम्। ततः
प्राग्वन्नलकेऽधोरन्ध्रे जलं प्रक्षिप्य तथा जलाधारा प्रयोज्या यथा तदाधातेनाधोगच्छताऽलाबुना नाडिकया चक्रस्यैकं भ्रमणं भवेत्। एवं पानीये जले
स्वित नाडिकोत्पद्यते इत्याचार्याभिप्रायः ॥५६॥

वि. भा.—येन तिर्यंक् कीलकेन सह चक्रमयस्कारशा एवद्धृतं तिस्मन् सूत्रस्यैकमग्नं बद्ध्वा विपुलदेध्यं सूत्रं वेष्टयेत् तत्सूत्रं पर्ययसूत्रकं कथ्यते । तिस्मन् कीलस्योपिरगामिनि तत्पर्ययसूत्रद्वितीयाग्रे ऽलाबु (तुम्बं) बद्धं कार्यम् ततः पूर्ववन्नलकेऽघोरन्घ्रं जलं प्रक्षिप्य जलाघारा तथा प्रयोक्तव्या यथा तदाघातेनाधो गच्छताऽलाबुना नाडिकया चक्रस्यैकं भ्रमणं भवेत् । एवं पानीये (जले) स्रवित नाडिकोत्पद्यते इत्यार्याभिप्राय इति । शिद्धान्तिशरोमणौ—

"ताम्रादिमयस्यांकुशरूपनलस्याम्बुपूर्णस्य ।
एकं कुण्डजलान्तद्वितीयमग्रं त्वधोमुखं च बहिः ॥
युगपन्मुक्तं चेत् कं नलेन कुण्डाद् बहिः पतित ।
नेम्यां बद्ध्वा घटिकाश्चक्रं जलयन्त्रवत्तथा धार्यम् ॥
नलकप्रच्युतसलिलं पतित यथा तद्घटीमध्ये ।
भ्रमति ततस्तत् सततं पूर्णंघटीभिः समाकृष्टम् ॥
चक्रच्युतं तदुदकं कुण्डे याति प्रगालिकया ॥"

भास्कराचार्येगौवं स्वयंवहयन्त्र विषये कथ्यते ।

श्रस्य व्याख्या-ताम्नादिघातुमयस्यांकुशरूपस्य वक्रीकृतस्य नलस्य जलपूर्णं-स्यैकमग्रं जलभाण्डेऽन्यदग्रं बहिरघोमुखं चैकहेलया यदि विमुच्यते तदा सकलमिप भाण्डजलं नलेन बहिः क्षरित । तद्यथा । छिन्नकमलस्य कमिलनी नलस्य जलभृद्भाण्डे क्षिप्तस्य जलपूर्णं सुषिरस्यैकमग्रं भाण्डाद्बहिरघोमुखं द्रुतं यदि घ्रियते तदा सकलमिप भाण्डजलं नलेन बहिर्याति । ग्रथ चक्रनेम्यां घटीबंद्ध्वा जलयन्त्रवत् द्वचाघाराक्षसंस्थितं तथा निवेशयेद्यथा नलकप्रच्युतजलं तस्य घटीमुखे पतित । एवं पूर्णघटीभिराकृष्टं तद्भ्रमत् केन निवार्यते । चक्रच्युतस्य जलस्याघः प्रगालि-कया कुण्डगमने कृते कुण्डे पुनर्जलप्रक्षेपर्गं रपेक्ष्यमिति ।।५६।।

ग्रव पुनः विशेष कहते हैं।

हि. भा. - जिस तिर्यं क्रूप कील के साथ चक्र शाएा देने के यन्त्र की तरह रक्खा

गया है उसमें सूत्र के एक अग्र को बांध कर बहुत लम्बे सूत्र को वेष्टित (लपटाना) करना वह सूत्र पर्यंय सूत्र कहलाता है। उसमें कील के ऊपर गया हुग्रा उस पर्यंयसूत्र के द्वितीयाग्र में म्रलाबु (तुम्ब) को बाँध देना। तब पूर्ववत् नलक के नीचे छेद में जल देकर जल धारा का उस तरह प्रयोग करना चहिए जिससे उसके भ्राघात से नीचे जाने वाले तुम्ब से एक नाड़ी में चक्र का एक भ्रमण हो । एवं जलस्राव से नाड़िका उत्पन्न होती है यह भ्राचार्य का स्रभिप्राय है। सिद्धान्तशिरोमिण में "ताम्नादिमयस्यांकुशरूपनलस्याम्बुपूर्णस्य । एकं कुण्डजलान्तद्वितीयमग्रं त्वघो मुखो च बहिः'' इत्यादि विज्ञान भाष्य में लिखित श्लोकों से भास्कराचार्य ने स्वयं वह यन्त्र के सम्बन्ध में भ्रपना विचार व्यक्त किया है।। इसका अर्थ-ताम्बा म्रादि धातुमय मंकुशरूप टेढ़ा किये हुए जलसे भरे हुए नल के एक सिरे को जल-भाण्ड (वर्तन) में भौर दूसरे सिरे को बाहर यदि एक ही समय में खोल देते हैं तब सम्पूर्ण में भाण्ड (बर्तन) स्थित जल नल के द्वारा बाहर गिर जाता है। जैसे कमल के नल को जलकुण्ड में छोड़ने से जलपूर्णछिद्र के एक अग्र को प्रघोमुख भाण्ड से बाहर यदि शीघ्र घरते हैं तो सम्पूर्ण भाण्डस्थित जल नल के द्वारा बाहर चला जाता है। चक्र नेमी (परिधि) में घटी को बांध कर जलयन्त्रवत् दो ग्राधाराक्ष संस्थित उस तरह रखना चाहिये जिससे नलक से गिरा हुमा जल उस के घटी मुख में पतित हो। एवं पूर्णंघटी से ब्राकृष्ट उसके भ्रमण को कौन रोक सकता है।।५६॥

# इदानीं पुर्नाविशेषमध्यायोपसंहारं चाह। करर्गेर्ज्याक्षिप्रचलनमेवं शरमोक्षरां खशब्दाश्च। प्रघ्यायो द्वाविशो यन्त्रेष्वार्यास्त्रिपञ्चाशत्।।४७॥

सु. माः—एवं करणैर्जलघारा प्रवाहसाधनैर्धनुरुयियाः क्षिप्रचलनं शीघ्र-चलनं भवति येन शीघ्रं शरमोक्षणं शरप्रक्षेपणं च भवति । जलघाराप्रवाह-विकारेग्रैव खशब्दा मेघगर्जनानि भवन्तीति । शेषं स्पष्टार्थम् ॥५७॥

मघुसूदनसूनुनोदितो यस्तिलकः श्रीपृथुनेह जिष्गुजोक्ते । हृदि तं विनिधाय नूतनोऽयं रचितो यन्त्रविधौ सुधाकरेगा ।।

इति श्रीक्रुपालुदत्त सूनुसुघाकरद्विवेदिविरिचते बाह्यस्फुटसिद्धांतनूतनितलके यन्त्राध्यायो द्वाविशः ॥२२॥

वि. भा.—एवं करएौं: (जलघाराप्रवाहसाघनैः) धनुज्यियाः शीघ्रंचलनं भवित येन शरमोक्षर्णं (शरप्रक्षेपर्णं) च भवित । जलघाराप्रवाहिवकारेराौव खशब्दाः (मेघगर्जनानि) भवन्ति । यन्त्राघ्याये त्रिपःचाशदार्थाः सन्ति । स्रयं

(यन्त्राध्यायः) द्वाविशोऽध्यायः समाप्तिमगादिति ॥५७॥

इति ब्राह्मस्फुटसिद्धान्ते यन्त्राध्यायो नाम द्वाविशोध्यायः समाप्तः ॥२२॥

धब पुनः विशेष धौर ध्रघ्याय के उपसंहार को कहते हैं।

हि. भा.—एवं करएा (जलघारा प्रवाहसाधन) से धनुष की ज्या (डोरी) का शीघ्रचलन होता है जिससे शर प्रक्षेपएा (शरका छोड़ा जाना) होता है। जलघारा प्रवाह विकार ही से खशब्द (श्राकाश में शब्द—मेच गर्जन) होता है। यन्त्राध्याय में तिरपन श्रायाएँ हैं। यह बाईसवां श्रध्याय (यन्त्राध्याय) समाप्त हुआ इति ।।५७।।

इति ब्राह्मस्फुटंसिद्धान्त में यन्त्राध्याय नामक बाईसवां शब्याय समाप्त हुआ ॥२२॥

## ब्राह्यस्फुटसिद्धान्तः

मानाध्यायः

## ब्राह्यस्फुटसिद्धान्तः

ग्रथ मानाध्यायः प्रारभ्यो

तत्र केन केन मानेन के के पदार्था गृह्यन्त इत्याह । सौरेगाब्दा मासास्तिथयक्चान्द्रोग सावनैदिवसाः ।

विनमासाब्दपमध्यां न तद्विनाऽकेंन्दुमानाम्याम् ॥१॥

सु० भा०—सौरेगाब्दाः । चान्द्रेगा मासास्तिथयश्च । सावनैर्दिवसा दिनमासाब्दपा मध्या ग्रहाश्च गृह्यन्ते । तत् सावनमानं चार्केन्दुमानाभ्यां विना न भवति । सौरचान्द्राभ्यां विनाऽहर्गगासाधनं न भवतीत्यर्थः ॥१॥

नि.भा — सौरेगा मानेनाच्दा स्रथदिहर्गेगानयने सौरमानेन वर्षािग गृह्यन्ते । तेषां (सौरवर्षागां) द्वादश गुग्गनानन्तरं यदा मासा युज्यन्ते तदा चान्द्रमासा गृह्यन्ते । ततिस्त्रशद् गुग्गनानन्तरं चान्द्रमानादेव तिथयोऽपि प्राह्या भवन्ति । पुन-रानीतेऽहर्गगो सावनमानाद्दिनानि गृह्यन्ते । सावनैरेव वर्षपितमासपितज्ञानम् । तथा चोक्तम्—

ब्रहर्गगात् कल्पगतादवाप्तं खषड्गुग्रै ३६० लेब्धमथ त्रि३ निघ्नम्। रूपाधिकं भूधर ७ भक्तशेषं रवेर्भवेत् सावनहायनेशः॥ एवं वर्षाधिपतिज्ञानम्।

तथा —

श्रहगंगात् खाग्नि ३० हतादवाप्तं द्विष्नं सरूपं नगभक्तशेषम् । वदन्ति तं सावनमासनाथं क्रमेण सूर्यादिह वर्त्तमानम् ॥

एवं मासाविपतिज्ञानम् । मध्यमग्रहाश्च सावनमानैरेव गृह्यन्ते । तत् सावनमानं च सौरचान्द्रमानाभ्यां विना न भवत्यर्थात् सौरचान्द्राभ्यां विनाऽहर्गगसाघनं न भ⊣तीति । सिद्धान्तशेक्षरे "वर्षाग्रि सौरात् प्रवदन्ति चान्द्रात् मानात्तिथि सावनतो दिनानि । सौरैन्दवाभ्यां तु विना न तत्स्यात्" इति श्रीपत्युक्तमाचार्योक्तानुरूपमेव । एकराशि हित्वा यावता कालेन रवी राश्यन्तरं याति स सौरोमासस्तित्त्रिशद्भागः सौरं दिनं भवतीति सौरमानम् । त्रिशक्तिथिभिश्चान्द्रो मासो भवति । रिवचन्द्रयोर्युतिरमावस्यान्ते भवति ततो यावता कालेन पुनस्तद्युतिभवति स एव चान्द्रमासः । एकस्मिन् चान्द्रे मासे त्रिशत् तिथयस्तदा रिवचन्द्रयोरन्तरं च चक्रांशा ३६० श्रतोऽनुपातेनैकस्यां तिथौ रिवचन्द्रयोरन्तरं द्वादशभागाः, इति चान्द्रमानम् । सूर्योदयद्वयान्तं रिवसावनदिनं तेषां त्रिशता सावनमासो मासो भवतीति सावनमानम् । नाड़ीनां षष्ट्रया नाक्षत्रमहोरात्रं भवति । एकनक्षत्रस्योदयानन्तरं यावता कालेन तस्य पुनरुदयः स नाक्षत्रमहोरात्र-कालः । तेषामहोरात्राणां त्रिशता नाक्षत्रमासो भवतीति नाक्षत्रमानम् । सूर्यसिद्धान्ते—

नाड़ीषष्ट्या तु नाक्षत्रमहोरात्रं प्रकीत्तितम् । तित्त्रशता भवेन्मासः सावनोऽर्कोदयैस्तथा । ऐन्दवस्तिथिभिस्तद्वत् सकान्त्या सौर उच्यते । मासद्वीदशिभवंषिमिति" एवं प्रतिपादितमस्ति । सिद्धान्त शेखरे— "दर्शाविध मासमुशन्ति चान्द्रं सौरं तथा भास्करराशिभोगम् ।

त्रिशहिनं सावनसंज्ञमार्यो नाक्षत्रमिन्दोर्भगगाश्चमश्च' शुक्लप्रतिपदा-दिर्दर्शान्तश्चान्द्रो मासः । रवेः स्फुटगत्या त्रिशद्भागभोगः सौरमासः । त्रिशहिनं सावनमासः । चन्द्रस्य द्वादश राशिभोगो नाक्षत्रमास इति ॥१॥

#### भव मानाध्याय प्रारम्भ किया जाता है।

उसमें पहले 'किस किस मान ते कौन कौन पदार्थ ग्रहण किये जाते हैं' कहते हैं।

हि. भा.—सौर मान से (म्रहर्गणानयन में सौरमान से) वर्ष ग्रहण किये जाते हैं। उन सौर वर्षों को बारह से गुणा करने के बाद जब मास जोड़ते हैं तो चान्द्रमास ग्रहण करते हैं। उसको तीस से गुणा करने के बाद तिथि जोड़ने के समय चान्द्रमान ही से तिथि ग्रहण करते हैं। पुनः साधित ग्रहगंण में सावन मान से दिन ग्रहण करते हैं। सावनमान ही से वर्षपित और मासपित का ज्ञान होता है। जैसे 'ग्रहर्गणात् कल्पगतादवाप्त' मित्यादि विज्ञान भाष्य में लिखित श्लोक से वर्षाधिपित ज्ञान सावनमान ही से है तथा 'ग्रहर्गणात् खाग्न ३० हतादवाप्त' मित्यादि विज्ञान भाष्य में लिखित श्लोक से मासाधिपितज्ञान भी सावनमान ही से है। मध्यम ग्रहसाधन सावनमान ही से होने से मध्यम ग्रह सावनमान ही से ग्रहण किये जाते हैं। वह सावनमान सौरमान और चान्द्रमान के बिना नहीं होता है। ग्रर्थात् सौर चान्द्र के बिना ग्रहर्गण साधन नहीं होता है। सिद्धान्तशेखर में "वर्षाणि सौरात् प्रवदन्ति चान्द्रात्" इत्यादि विज्ञानभाष्य में लिखित श्लोक से श्रीपित ने ग्राचार्योक्त

के अनुरूप ही कहा है। एक राशि को छोड़ कर जितने काल में रिव राश्यन्तर (दूसरी राशि) में जाते हैं वह सौर मास है, उसका तीसवां अंश एक सौर दिन होता है, बारह सौर मासों का एक सौर वर्ष होता है, यह सौरमान है। तीस तिथि का एक चान्द्रमास होता है। रिव और चन्द्र का योग अमावस्थान्त में होता है, उसके बाद जितने काल में पुनः (फिर) उन दोनों का योग होगा वह चान्द्र मास है, एक चान्द्रमास में तीस तिथियां होती हैं तब रिव और चन्द्र का अन्तरांश चक्रांश ३६० के बरावर होता है इस से अनुपात द्वारा एक तिथि में रिव और चन्द्र का अन्तरांश वारह अंश होता है, यह चान्द्रमान है, दो सूर्योदय का अन्तरकाल एक रिव सावन दिन होता है, तीस सावन दिनों का एक सावन मास होता हैं, यह सावन मान है, साठ नाड़ी (दण्ड) का एक नाक्षत्र अहोरात्र होता है, एक नक्षत्र के उदय के बाद पुनः जितने काल में उसका उदय होता है वह नाक्षत्राहोरात्र काल है। तीस नाक्षात्राहोरात्र का एक नाक्षत्र मास होता है, यह नाक्षत्र मान है। सूर्य सिद्धान्त में 'नाड़ीषष्ट्रचा तु नाक्षत्रमहोरात्र' प्रकीत्तितम्' इत्यादि विज्ञान भाष्य में लिखित क्लोकों से सौरादि मान विरात है। सिद्धान्तशेखर में 'दर्शाविध मासमुश्चन्ति चान्द्रं सौरं तथा मासकरराशिभोगम्' इत्यादि से श्रीपित ने भी सूर्य सिद्धान्तोक्त के अनुरूप ही कहा है इति ॥१॥

#### इदानीं मानान्याह।

मानानि सौरचान्द्रार्क्षसावनानि ग्रहानयनमेभिः।

मानैः पृथक् चतुर्भिः संव्यवहारोऽत्र लोकस्य ॥२॥

सु भा — सौरं चान्द्रमाक्षं सावनमिति मानानि सन्ति । एभिर्मानैग्रं हानय-नमेभिश्चतुर्भिः पृथक् पृथगत्र भुवि लोकस्य प्राणिनो ब्यवहारो भवति । 'ज्ञेयं विमिश्रं तु मनुष्यमानम्'—इत्यादि भास्करोक्तमेतदनुरूपमेव ॥२॥

वि. भा- सौरं चान्द्रं नाक्षत्रं सावनमिति मानानि सन्ति । एभिर्मानैग्रंहा-नयनं भवति, तथैभिश्चतुभिः पृथक् पृथक् मत्र पृथिव्यां लोकस्य व्यवहारो भवति । सिद्धान्तशेखरे —

> सीर चान्द्रमससावनमानैः सौड़वैर्ग्रहगतेरवबोधः। एभिरत्र मनुजव्यवहारो हत्यते च पृथगेव चतुर्भिः।

उडूनि नक्षत्रारिंग तत्संम्बन्धीन्यौड़वानि तैः सह वर्त्त दित सौड़वानि तैरित्यर्थः ' न केवलं शास्त्रव्यवहारसिद्धत्वं किन्तु लोक व्यवहारसिद्धत्व-मप्यस्त्येभिः। श्रीपत्युक्तमिदमाचार्योक्तानुरूपमेव। सिद्धान्तशिरोमग्गौ 'ज्ञेयं विमिश्रं तु मनुष्यमानम्' भास्करोक्तमपीदमाचार्योक्तानुरूपमेवेति ॥२॥

#### श्रव मानों को कहते हैं।

हि. भा .- सीर-चान्द्र-नक्षत्र-सावन ये मान हैं, इन मानों से ग्रहानयन होता है,

तथा इन चारों से पृथक् पृथक् इस पृथिवी में लोगों का व्यवहार होता है, सिद्धान्तशेखर में 'सौर चान्द्रमससावनमानैः सौड़वैर्यं हगतेरवबोधः' इत्यादि श्रीपत्युक्त आचार्योक्त के अनुरूप ही है। सिद्धान्तशिरोमिण में 'श्रेयं विमिश्रं तु मनुष्यमानम्' यह भास्कराचार्योक्त भी आचार्योक्त के अनुरूप ही है इति ॥२॥

इदानीं विशेषमाह।

युगवर्षं विषुवदयनर्त्वर्हानशोवृं द्विहानयः सौरात् । तिथिकरणाधिकमासोनरात्रपर्वक्रियाश्चान्द्रात् ॥३॥

यज्ञसवनप्रमाराग्रहगत्युपवाससूतकचिकित्साः । सावनमानाज् ज्ञेयाः प्रायश्चित्तक्रियाश्चात्र ।।४।।

सुः भाः — पर्विक्रया पूर्णान्तदर्शान्तिक्रिया दर्शयागादि । सवतं पुंसवनादि । प्रमाणं द्रव्यदानादौ प्रमाणदिनादि । शेषं स्पष्टम् । 'वर्षायनर्त्तुयुगपूर्वकम्' इत्यादि भास्करोक्तमेतदनुरूपमेव ॥३-४॥

वि. मा. —युगानि कृतादीनि तेषां या वर्षसंख्या सौरेण मानेन ग्राह्मा, तथा वर्षिश्रतमिप यत् कार्यं तदिप सौरेण मानेन । विषुवदिप सौरेणैव तत्र यदाः रवेर्मेषादिप्रवेशस्तदोत्तरं विषुवत्, यदा तुलादिप्रवेशस्तदा दक्षिणं विषुवत् । अयनमप्युत्तरं दक्षिणं च सूर्यस्य मकरसंक्रान्तेः सकाशात् सौराः षण्मासा उत्तरायणं भवति, तथेव किंकसंक्रान्त्यादेः सौराः षण्मासा दक्षिणायनं भवति, ऋतवोऽपि सौरेण मासद्वयेन भवन्त्यर्थान्मकरसंक्रान्तेद्वयोद्वयोर्राश्वारेकैक-ऋतुनाथः स्यात् मकरकुभ्भयोः शिशिरः । मीनमेषयोर्वसन्तः । वृष्यिभुनयोग्नीं-ष्मः । कर्कसिहयोर्वर्षाः । कन्यातुलयोः शरत्, वृश्चि प्रवन्वोहेंमन्तः । तथा श्रीपतिना सिद्धान्तशेखरे लिखितम् । मृगादि राशिद्धयभानुभोगात् षट् चर्तं वः स्युः शिशिरो वसन्तः । ग्रीष्मश्च वर्षाश्च शरच्च तद्वद्वेमन्तनामा कथितोऽत्र षष्ठः । दिनरात्र्योरिष वृद्धिहानी सौरादेव ज्ञेये । तिथः, करणं, बवादिः, प्रधिकर्मासाः, ऊनरात्राण्यमदिनानि, पर्विक्रया पूर्णान्त दर्शान्त क्रियादशं यागादि, एतत्सवं चान्द्रमानादेव ज्ञेयम् । सवनं (पुंसवनादि) प्रमाणं (द्रव्यदानादौ प्रमाणिदिनानि) ग्रहाणां वक्रानुवक्राद्या गतयः, उपवासाः सूतकं शावाद्युत्पन्नमाशौचं, चिकित्सारोगप्रतीकाराः द्वादशदिनानि निर्वर्त्यं चरकसुश्रुताद्युक्तं प्रायश्चित्तं (क्रच्छ्र—चान्द्रायणादि) । तथा चोक्तम्—

त्र्यहं नक्तस्त्र्यहं प्रातस्त्र्यहमद्यादयाचितम् । त्र्यहं चोपवसेदेवं प्राजापत्यं चरन् द्विजः ॥

चान्द्रायएां त्रिशद्रात्रनिर्वर्त्यम् । एते सावनमानाज् ज्ञेयाः । सिद्धान्तज्ञेखरे— "युगायनर्त्तुप्रभृतीनि सौरान्मानाद् द्युरात्र्योर्णि वृद्धिहानी । पर्वाधिमासोनदिनानि चान्द्रात् तथा तिथेरधंमपि प्रदिष्टम् । प्रायिवत्तं सूतकाद्यािविकित्ता यत्स्यादन्यत् सावन तच्च कर्म । शास्त्रे चास्मिन् खेचराणां च राशिविज्ञातव्याः सावनाद् भास्करीयात् ।" श्रीपत्युक्तमिदमाचार्योक्तानुरूपमेवास्ति, सिद्धान्तशिरोमणौ— "वर्षायनर्त्तुगुपूर्वकमत्र सौरान्मासास्तथा च तिथयस्तुहिनांशुमानात् । यत् क्रच्छ्रसूतक चिकित्सितवासराद्यं तत्सावनाच्चे" ति भास्करोक्तमप्याचार्योक्तानुरूपमेव । सूर्यसिद्धान्ते—

"सौरेण द्युनिशोर्मानं षड्शीतिमुखानिच । अयनं विषुवच्चैव संक्रान्तेः पुण्यकालता ।"

श्रहोरात्र्योमीनं षड्शीतिमुखानि, श्रयनं दक्षिरामुत्तरं वा, विषुवत् सायनमेषतुलादिमानं, संक्रान्तेः पुण्यकालता चैतत्सवं सौरेरा प्रत्यहं सूर्यगितिभोगे-नोत्पद्यते । रिवकेन्द्रं यस्मिन् समये राश्यादौ याति स संक्रान्तेमंध्यकाल उच्यते । श्रथ यावद्रविविम्बार्धकलातुल्यमन्तरं केन्द्रात् प्रागनन्तरं च स्यात् तावद्विम्बेक देशस्य राश्यादौ संचारात् संक्रान्तेः कालो भवति । तत्कालानयनार्थमनुपातः । यदि रिवगितिकलाभिः षष्टिघटिकास्तदा रिविविम्बमानकलाभिः किं जाताः संक्रान्ति-नाडचः केन्द्राभिप्रायेण संक्रान्तेः प्राक् तथा परे च यास्तत्र स्वानदानादौ पुण्यं भवतीति ।

तिथिः कररणमुद्वाहः क्षौरं सर्वक्रियास्तथा । व्रतोपवासयात्रारणां क्रिया चान्द्रेरण गृह्यते ॥

तिथि: । करणं बवादि । उद्वाहो विवाह: । क्षौरं क्षुरकर्मे, व्रतवन्धादिकाः सर्विक्रिया: । व्रतोपवासयात्राणां मध्ये या क्रिया तत्सर्वे चान्द्रेण मानेव गुह्मते ।

उदयादुदयं भानोः सावनं तत्प्रकीतितम् । सावनानि स्युरेतेन यज्ञकालविधिस्तु तैः ॥ सूतकादि परिच्छेदो दिनमासाब्दपास्तथा । मध्यमा ग्रहभुक्तिस्तु सावनेनैव गृह्यते ॥

सूर्येस्योदयद्वयान्तरकालेनैकं सावनदिनमितिगरणनया पूर्वं मध्यमाधिकारे युगसावनानि कथितानि, । अत्र भानोरुदयेन नाड़ीवृत्तस्थकित्यानोरुदयो ग्राह्मो-ऽन्यथा विलक्षरणसावनदिनमानानि पाठायोग्यान्यहर्गरणाद्दावनुपयुक्तानि च भवन्तीति । तैः सावनदिनैर्यज्ञकार्लिविधः कार्यः । तथा सूतकादीनां जननमरुप सम्बन्धि सूतकानामादिशब्देन चिकित्साचान्द्रायरणादीनां च परिच्छेदः (निर्ण्यः) तथा दिनमासवर्षपतयश्च ग्रहागाां मध्यमा गतिश्च सावनेनैव दिनेन गृह्यते इति सूर्यसिद्धान्तकारेगा कथ्यते ॥३-४॥

#### श्रब विशेष कहते हैं।

हि.भा. - कृतादि (सत्ययुगादि) युगों की वर्ष संख्या सौरमान से प्रहरण करनी चाहिये। तथा वर्षांश्रित कार्यों को भी सौर मान ही से लेना चाहिये। विष्वत् (जब रिव का मेषादि में प्रवेश होता है तब उत्तर विष्वत् तुलादि में प्रवेश होने से दक्षिण विष्वत्) सौर मान ही से समभाना चाहिये। श्रयन भी (उत्तर श्रौर दक्षिए) (सूर्य की मकर संक्रान्ति से सौर छः महीना उत्तरायण होता है, कर्क संक्रान्ति से सौर छः महीना दक्षिणायन होता है) सौर मान ही से ग्रहण करना चाहिये। ऋतू भी दो दो सौर महीनों से होता है अर्थात् मकर संक्रान्ति से दो दो राशियों का एक एक ऋतुनाथ होता है मकर और कूम्भ का शिशिर, मीन भीर मेष का वसन्त, वृष भीर मिथून का ग्रीष्म, कर्क भीर सिंह की वर्षा, कन्या भीर तूला का शरत, वृश्चिक ग्रौर धनू का हेमन्त, सिद्धान्तशेखर में 'मृगादि राशिद्धयभानूभोगात् षट् चर्त्तंवः' इत्यादि से श्रीपति ने कहा है। दिन श्रीर रात्रि की वृद्धि श्रीर ह्रास (बढ़ना घटना) सौर ही से समक्रना चाहिये। तिथि करणा (बवादि), अधिकमास (मलमास), अवमदिन, पर्वक्रिया (पूर्णान्तक्रिया--दर्शान्त क्रिया) ये सब चान्द्रमान से ग्रहण करना चाहिये। यज्ञ, पुंसवनादि, प्रमाण (द्रव्यदानादि में प्रमाण दिनादि), प्रहों की वक्र धनुवक्र धादि गतियां, वत-उपवास, सूतक (जन्म-मरण सम्बन्धी श्रशीच), चिकित्सा (रोग प्रतीकार के लिये श्रीष-घि सेवन), प्रायश्चित्त (कृच्छु-चान्द्रायगादि), ये सब सावनमान से समकता चाहिये। सिद्धान्तशेखर में 'युगायनर्त्त् प्रभृतीनि सौरान्मानाद्युरात्र्योरिप वृद्धिहानी' इत्यादि विज्ञान भाष्य में लिखित श्रीपत्युक्त भ्राचार्योक्त के अनुरूप ही है। सिद्धान्तशिरोमिए। में ''विषयनर्त्तु-युगपूर्वकमत्र सौरात्' इत्यादि भास्करोक्त ग्राचार्योक्त के ग्रनुरूप ही है । सूर्यसिद्धान्त में 'सौरेण चुनिशोर्मानं षड़शीति मुखानि च । श्रयनं विषुवचैव संक्रान्तेः पूण्यकालता' ये सब प्रत्येक दिन सूर्यगतिभोग (सौर) से उत्पन्न होते हैं। रिव केन्द्र जिस समय राश्यादि में जाता है। वह संक्रान्ति का मध्य काल कहलाता है। केन्द्र से पहले और पीछे जब तक रविबिम्ब कलातुल्य अन्तर होता है तबतक बिम्ब के एक प्रदेश के राश्यादि में संचार से संक्रान्ति काल होता है, उस काल के धानयन के लिये धनुपात करते हैं। यदि रवि गतिकला में साठ घटी पाते हैं। तो रिव बिम्बमानकला में क्या इस अनुपात से केन्द्राभिप्रायिकसंक्रांति से पहले भौर पीछे संक्रांतिघटी आती है। इस संक्रान्ति कालमें स्नान दानादि करने से अतिशय पुण्य होता है। 'तिथिः कररणमुद्राहः क्षौरं सर्विक्रियास्तथा । व्रतोपवासयात्राणां क्रिया चान्द्रेण ग्र-ह्मते।" तिथि करण (बव-बालव ग्रादि) उद्वाह (विवाह), क्षौर (क्षुरकर्म), सर्वेक्रिया (व्रत-बन्घादिक), वत उपवास यात्रा सम्बन्धी क्रिया, ये सब चान्द्रमान से ग्रह्ण करनी चाहिये । "उदयादुदयं भानोः सावनं कत्प्रकीत्तितम् । सावनानि स्युरेतेन यज्ञ काल विधिस्तु तैः" इत्यादि विज्ञान भाष्य में लिखित रलोकों का प्रथं यह है कि सावन दिनों से यज्ञकाल विधि करनी चाहिये, तथा जन्म-मरएा सम्बन्धी अशौच, चिकित्सा-चान्द्रायएगादि का निर्एाय, मासपित और वर्षपित का ज्ञान, ग्रहों की मध्यमा गति ये सब सावनमान से ग्रहएा करनी चाहिये, यह सूर्यसिद्धान्तकार कहता है इति ॥३-४॥

इदानीं नक्षत्रसावनप्रशंसासाह।

## नक्षत्रसावनदिनात् सूर्यादीनां स्वसावनदिनानि । यस्मात् तस्मादाक्षं दुरिधगमं मन्दबुद्धीनाम् ॥५॥

सु. भा- यस्मात् सूर्यादीनां स्वस्वसावनदिनानि नक्षत्रसावनदिनादेव सिद्धानि भवन्ति ('भभ्रमास्तु भगगौविर्वाजता यस्य तस्य कुदिनानि तानि वा'-इति भास्करोत्तचा स्फुटम्) । बस्मान्मन्दबुद्धीनां मध्ये ह्यार्क्षं मानं दुरिषणममतीव कठिनिमित्यर्थः । तदेव सूक्ष्मं विवेचनीयमन्यथा ग्रहासावनानि न भवन्तीत्याचार्या- शयः ॥५॥

वि. भा.—यस्मात् कारणात् सूर्यादीनां ग्रहाणां स्वस्वसावनिदनानि नक्षत्रसावनिदनादेव सिध्यन्ति, तस्मात् कारणान्मन्दबुद्धीनां मध्ये हि श्राक्षं (नाक्षत्रं) मानं दुरिधगमम् (श्रिति किठनं) । तदेव सूक्ष्मं विचारणीयमन्यथा ग्रहसावनानि समीचीनानि न भवन्तीति । ग्रहाणां सावनिदनानि नक्षत्रसावन-दिनादेव सिध्यन्ति, सूर्यसिद्धान्ते 'भोदया भगणेः स्वैः स्वैष्टनाः स्वस्वोदया युगे' इत्युक्तेः । सिद्धान्तशेखरे—

"यस्य यस्य भगगौविविजता ज्योतिषां भगगासंहितः स्फुटम्। तस्य तस्य दिवसांस्तु सावनान् विद्धि तामरसजन्मनो दिने।"

इत्यनेन श्रीपितना ग्रहसावनिदनानयनमुक्त् वा पुनरग्रे 'भञ्जमोष्णकरमण्ड-लान्तरं सावनानि कुदिनानि तानि वा' ऽस्य प्रतिपादनं कृतमित्यनेन नक्षत्रसावनेन बहूनि प्रयोजनानि सन्तीति सूच्यते । तेनेव हेतुनाऽऽचार्येणाप्य 'तस्मादार्क्षं दुरिषणमं मन्दबुद्धीनाम्' नेन नक्षत्रसावनसम्बन्धे तस्यातीवोपयोगित्वं प्रतिपादितम् । सिद्धान्तशेखरे 'नाक्षत्रमानाद्घटिकादिकालः' इत्यनेन श्रीपितना नाक्षत्रेण प्रयोजनं कथितमर्थात् - ग्रनेन ग्रहेणास्मिन्नक्षत्रे इयत्यो घटिका भुक्ता इति ज्ञानं नाक्षत्रमाने-नैव सिध्यति । सूर्यं सिद्धान्ते—

"भवक्रभ्रमणं नित्यं नाक्षत्रं दिनमुच्यते ।
नक्षत्रनाम्ना मासास्तु ज्ञेयाः पर्वान्तयोगतः ।
कार्तिक्यादिषु संयोगे कृत्तिकादिद्वयं द्वयम् ।
ग्रन्त्योपान्त्यौ पञ्चमश्च त्रिधा मासत्रयं स्मृत" ॥
मित्युक्तम् । ग्रस्यार्थः —

नित्यं प्रवहवायुना भचक्रस्यैकं भ्रमणं यद् भवति तदेव नाक्षत्रं दिनमुच्यते

प्राचीनैरिति । पर्वान्तः पूरिंगमान्तस्तत्र नक्षत्रयोगेन चान्द्रमासानां संज्ञा यथा कृत्तिका सम्बन्धात् कार्त्तिकः। मृगशीर्षसम्बन्धान्मार्गशीर्षः। सम्बन्धात् पौषः । मघासम्बन्धान्माघः। फाल्गुनी सम्बन्धात् फाल्गुनः। चित्रासम्बन्धाच्चैत्रः । विशालासम्बन्धाद्वैशाखः । जेष्ठासम्बन्धाज्ज्यैष्ठः । श्राषाढासम्बन्धादाषाढः । श्रवरासम्बन्धाच्छावराः । भाद्रपदसम्बन्धाद ग्रश्विनीसम्बन्धादाश्विन इति । नन् पूर्णिमान्ते तत्तन्नक्षत्राभावे कथं तत्संज्ञा मासानामुचितेत्यत श्राह । कार्त्तिक्यादिषु-कार्त्तिकमासादींनां पौर्णमासीषु कृत्तिकादि द्वयं द्वयं नक्षत्रं कथितम् । यथा कृत्तिकारोहिग्गीभ्यां कार्त्तिकः । मृगाद्रभ्यां मार्गशीर्षः । पुनर्वसुपुष्याभ्यां पौषः । स्राश्लेषामघाभ्यां माघः । चित्रास्वातीभ्यां चैत्रः । विशाखानुराधाभ्यां वैशाखः । ज्येष्ठमूलाभ्यां ज्यैष्ठः । पूर्वोत्तराषाढ़ाभ्यामाषाढ़ः । श्रवराधिनष्ठाभ्यां श्रावराः । इति फलितार्थः । भ्रवशिष्टमासार्थं कथ्यते । अन्त्योपान्त्याविति । कान्ति कस्यादित्वेन ग्रहणादन्त्य म्राश्विनः । उपान्त्यो भाद्रपदः । पञ्चमश्च फाल्गुनः । इति मासत्रयं त्रिधा नक्षत्रत्रयवशतः स्मृतम् । रेवत्यिश्वनीभरगीभिराश्विनः । शततारापूर्वोत्तराभाद्र-पदैभाद्रपदः । पूर्वोत्तरांफाल्गुनीहस्तैः फाल्गुन इति । एवं निरयणमानागतनक्षत्रै-मिसानां संज्ञा लिखिता, अथर्ववेदेऽपि तथैव मासानौ संज्ञा । सायनमानवज्ञेन तत्तन्नक्षत्राणां सम्बन्धाभावात् संज्ञास्वनर्थापत्तिरतो निरयणमानेनैव व्यवहारः समुचित इत्येव प्राचीनानां वैदिकानां सम्मतिरिति ॥५॥

#### श्रव नक्षत्र सावन की प्रशंसा को कहते हैं।

हि. भा.—क्यों कि सूर्यादि प्रहों का अपना अपना सावन दिन नक्षत्र सावन दिन ही से सिद्ध होता है। इसिलये मन्दबुद्धियों के लिये नाक्षत्रमान ग्रत्यन्त कि है। उसी को सूक्ष्मरीति से विचार करना चाहिये। नहीं तो ग्रह सावन समी वीन नहीं होते हैं। ग्रहों का सावनदिन नक्षत्र सावन दिन ही से सिद्ध होता है जैसे सूर्य सिद्धान्त में 'भोदया भगएौं: स्वैंः स्वैंख्नाः स्व स्वोदयायुगे' कहा है। सिद्धान्तकोखर में 'यस्य यस्य भगएौविवर्जिता ज्योतिषां भगएसंहितः स्फुटम्' इत्यादि विज्ञान भाष्य में लिखित क्लोक से श्रीपित ने ग्रह सावन दिनानयन कहकर फिर ग्रागे 'भन्नमोष्एाकरमण्डलान्तरं' इत्यादि कहा है, इससे सूचित होता है कि नक्षत्र सावन से बहुत प्रयोजन सिद्ध होते हैं, इसीलिये ग्राचार्य भी 'तस्मादार्धं दुरिधगमं मन्दबुद्धीनाम्' इससे नक्षत्र सावन का ग्रतिकाय उपयोगित्व कहा है। सिद्धान्त केखर में 'नाक्षत्रमानाद् घटिकादिकालः' इससे श्रीपित ने नाक्षत्र के प्रयोजन कहे हैं। ग्रर्थात् अमुक ग्रह ने ग्रमुक नक्षत्र में इतनी घटी भोग की हैं इसका ज्ञान नाक्षत्रमान ही से सिद्ध होता है। सूर्य सिद्धान्त में 'भचक श्रमएां नित्यं नाक्षत्रं दिनमुच्यते' इत्यादि विज्ञान भाष्य में लिखित क्लोकों से नाक्षत्र दिन की परिभाषा ग्रीर नक्षत्रों के सम्बन्ध से कार्त्तकादि मासों की संज्ञा कही है। उन क्लोकों का ग्रर्थं यह है—नित्य प्रवह वायु के द्वारा भचक का एक

भ्रमगा जो होता है उसी को प्राचीन लोग नाक्षत्र दिन कहते हैं भीर पृश्गिमान्त में नक्षत्र योग से चान्द्रमासों की संज्ञा कहते हैं जैसे कृत्तिका के सम्बन्ध से कान्तिक । मृगशीर्ष के सम्बन्ध से मार्गशीर्प (ग्रग्रहरा) । पुष्य के सम्बन्ध से पौप । मघा के सम्बन्ध से माध । फाल्गुनी के सम्बन्ध से फाल्गुन । चित्रा के सम्बन्ध में चैत्र । विशाखा के सम्बन्ध से वैशाख । ज्येष्ठा के सम्बन्ध से ज्येष्ठ । म्रापाढ़ा के सम्बन्ध से म्रापाढ़ । श्रवण के सम्बन्ध से श्रावण । भाद्रपद के सम्बन्ध से भाद्रपद (भादों) । श्रश्विनी के सम्बन्ध से ग्राश्विन । यदि पूर्णिमान्त में उपर्युक्त नक्षत्र न हो तब मासों की संज्ञा कैसे उचित होगी इस के लिये कहते हैं। कार्ति-कादि मासों की पौर्णमासी में कृतिकादि दो दो नक्षत्र लेना चाहिये। जैमे कृत्तिका-रोहिसी के सम्बन्ध से कार्त्तिक । मृगतीर्व और स्राद्री के सम्बन्ध से मार्गशीर्प । पुनर्वमु स्रौर पुष्य के सम्बन्ध से पौष । श्राव्लेपा श्रौर मधा के सम्बन्ध से माघ । वित्रा श्रौर स्वाती के सम्बन्ध से चैत्र । विशाखा और अनुराधा के सम्बन्ध से वैशाख । ज्येष्ठा भ्रौर मूल के सम्बन्ध से ज्येष्ठ पूर्वाषाढ़ भौर उत्तरापाढ़ के सम्बन्ध से भ्रापाढ़ । श्रवण भौर धनिष्ठा के सम्बन्ध से श्रावण । श्रवशिष्ट मासों के लिये कहते हैं, ग्राश्विन-भाद्रपद श्रीर फाल्गुन के तीनों मास तीन नक्षत्र वश से होते हैं जैसे रेवती- ग्रक्ष्विनी-भरगी के सम्बन्ध से ग्राह्विन । शतिभय-पूर्वभाद्र-उत्तर भाद्र के सम्बन्ध से भाद्रपद । पूर्वफल्गुनी-उत्तरफल्गुनी-हस्त नक्षत्रों के सम्बन्ध से फाल्गुन । इस तरह निरयण नक्षत्रमानों से मासों की संज्ञा कही गई है। ग्रयर्व देद में भी ऐसी ही मासों की संज्ञा है। सायनमान वरा से पूर्वेकथित नक्षत्रों के सम्बन्धाभाव से मासों की संज्ञाओं में म्रापत्ति होती है इसलिये निरयए।मान ही से व्यवहार उचित है यही प्राचीन वैदिकों की सम्मति है इति ॥५॥

#### इदानीं नवमानान्याह।

## मानुष्यदिव्यपित्र्यबाह्याण्यष्टावसूर्त्तं कालस्य । उक्तानि ज्ञानार्थं बार्हस्पत्यं नवममन्यत् ॥६॥

सु. भा - अमूत्त कालस्याच्यक्तात्मककालस्य ज्ञानार्थं मानुष्यं मानचतुष्ट-यम् । दिव्यं दैवं पित्र्यं ब्राह्ममन्यच्च बार्हस्पत्यमिति नवमानान्युक्तानीति ॥६॥

वि. भा-—'लोकानामन्तकृत् कालः कालोऽन्यः कलनात्मकः। स द्विष्ठा स्थूलसूक्ष्मत्वान्मूर्त्तरवामूर्त्तं उच्यते' इति सूर्यसिद्धान्तोक्ते रिह ज्यौतिषसिद्धान्ते गरानात्मक काल एवामूर्त्तसंज्ञकः, एतस्यामूर्त्तसंज्ञकस्याव्यक्तात्मककालस्य ज्ञानार्थं मानुष्यं मान (सौरमानम्। चान्द्रमानम्। सावनमानम्। नाक्षत्रमानम्) चतुष्टयम्। दिव्यं मानं देवं (प्राजापत्यं), पित्र्यं, ब्राह्मं, अन्यद्वार्हंस्पत्यमिति नव मानानि कथितानि सन्तोति। सूर्यं सिद्धान्ते—

"त्राह्मं दिव्यं तथा पित्र्यं प्राजापत्यं गुरोस्तथा। सौरं च सावनं चान्द्रमार्क्षं मानानि वै नवेति" नवमानानि तथा सिद्धान्तशेखरे—

'पैतामहं दिव्यमथासुरं च पित्र्यं तथा मानुषमानमन्यत्। सौराक्षंहैमांशवसावनानि जैवं तथैवं नव कीर्त्तितानि' श्रीपत्युक्तानि नव मानानि। सिद्धान्तशिरोमगौ—

'एवं पृथग् मानवदैवजैवपैत्रार्क्षसौरेन्दवसावनानि । ब्राह्मं च काले नवमं प्रमागां ग्रहास्तु साध्या मनुजैः स्बमानात्' भास्करोक्तनवमानानि चाचार्योक्तसदृशान्येवेति विज्ञैर्ज्ञेयानीति ॥६॥

#### भ्रब नव मानों को कहते हैं।

हि. भा.—'लोकानामन्तकृत् कालः' इत्यादि सूर्य सिद्धान्तोक्त मूर्त्तं ग्रौर श्रमूर्त्तं कालों में ज्यौतिष सिद्धान्तीय गए।नात्मक काल ही ग्रमूर्त्तं संज्ञक है। इस श्रमूर्त्तं संज्ञक श्रव्यक्तात्मक काल के ज्ञान के लिये मानुष्य मान (सौरमान, चान्द्रमान, सावनमान, नाक्षत्रमान)। दिव्यमान, दैव (प्राजापत्य) मान, पित्र्य (पितृ सम्बन्धी) मान, ब्राह्म (ब्रह्म सम्बन्धी) मान श्रन्य बाईस्पत्य (वृहस्पति सम्बन्धी) मान ये नव मान कथित हैं। सूर्यं सिद्धान्त में 'ब्राह्में दिव्यं तथा पित्र्यं प्राजापत्यं' इत्यादि मानाघ्यायोक्त नौ मान तथा सिद्धान्तशेखर में 'पैतामहं दिव्यमथासुरं च पित्र्यं तथा मानुषमानमन्यत् 'इत्यादि श्रीपत्युक्त नौ मान तथा सिद्धान्तशिरोमिण में 'एवं पृथग् मानव दैव जैव पैत्रार्क्षं सौरैन्दव सावनानि' इत्यादि भास्करोक्त नौ मान ये सब मान श्राचार्योक्त नौ मानों के सहश ही हैं इति ॥६॥

#### इदानीमृत्नाह।

## हो हो राशी मकराहतवः षट् सूर्यगतिवशाद् भाज्यः। शिशिरवसन्तग्रीष्मा वर्षाशरदः स्रहेमन्ताः॥७॥

सु. भा.— मकराद् द्वौ द्वौ राशी षट्ऋतवः सूर्यगतिवशाद्भाज्या विभाज-नीया इति शेषं स्पष्टार्थम् । 'मृगादिराशिद्वयभानुभोगात् षट् चर्तवः स्युः' इत्यादि श्रीपत्युक्तमेतदनुरूपमेव ॥७॥

वि. भा.—मकराद् द्वौ द्वौ राशी षट् ऋतवः सूर्यगतिवशाद्विभाजनीयाः । ते च ऋतवो हेमन्तसहिताः शिशिरवसन्तग्रीष्मवर्षाशरद् इति नामका भवन्ती-ति । सिद्धान्तशेखरे 'मृगादिराशिद्वय भानुभोगात् षट् चर्त्तवः स्युरिति' श्रीपत्युक्त— माचार्योक्तानुरूपमेवेति ।।७।।

#### भ्रव ऋतुम्रों को कहते हैं।

हि. भा.— मकर संक्रान्ति से दो दो राशि छः ऋतु सूर्यगिति वश से विभाग करने के योग्य है। वे छः ऋतुएँ शिशिर, वसन्त, ग्रीप्म, वर्षा, शरत्, हेमन्त, इन नामों की हैं। सिद्धान्तशेखर में 'मृगादि राशिद्धय भानु भोगात्' इत्यादि श्रीपत्युक्त ग्राचार्योक्त के ग्रनुरूप ही है इति ।।७॥

#### इदानीं भूभादैर्घ्यं भूभामानं चाह।

भूव्यासगुराो भक्तः क्वर्कव्यासान्तरेरा रविकर्णः । भूमघ्याद्भूछाया दीर्घत्वं चन्द्रकर्गोनम् ॥८॥ शेषं भूव्यासगुरां दीर्घत्वहृतं शशाङ्ककक्षायाम् । तमसो व्यासः शशिकर्गहृतस्त्रिज्यागुराो लिप्ताः ॥६॥

सु. भा--स्पष्टार्थम् । उपपत्तिश्च भूभासाघनक्षेत्रानुपातेन स्फुटा ॥६-९॥

वि. भा.—रिवकर्णो भूव्यासेन गुर्णो भूव्यासरिवव्यासयोरन्तरेण भक्त-स्तदा भूकेन्द्रात् भूछायाया दीर्घत्वं भवति । तद्दीर्घत्वं चन्द्रकर्णेन हीनं शेषं यत्तद् भूव्यासेन गुर्णितं दीर्घत्वेन भक्तं तदा चन्द्रकक्षायां तमसो (भूभायाः) व्यासो भवति । स च त्रिज्यया गुर्णश्चन्द्रकर्णभक्तस्तदा भूभामानकला भवन्तीति ।

#### श्रत्रोपपत्तिः ।

रविबिम्बभूबिम्बयोः क्रमस्पर्शरेखार्विषतरिवकर्शेन साकमेकिस्मन्नेव बिन्दो चन्द्रकक्षात उपरि मिलन्ति । स च बिन्दुः = यो, भूकेन्द्रात् स्पर्शरेखायाः समानान्तरा रेखा कार्यो तदा रिवकर्णं एको भुजः भूव्यासार्घोनरिवव्यासार्घं द्वितीयो भुजः । भूकेन्द्रात्समानान्तरेखारिवव्यासार्घयोर्योगिबिन्दुं यावतृतीयो भुजः । इति कर्णभुजकोटिभिरेकं त्रिभुजम् । तथा भूकेद्रात् यो बिन्दुं यावद्भूछाया-दैर्घ्यमेको भुजः । भूव्यासार्घं द्वितीयो भुजः । भूबिम्बस्पर्शबिन्दुतो यो बिन्दुं यावतृतीयो भुजः । इति कर्णभुज कोटिभिर्द्वितीयं त्रिभुजम् । ग्रनयोस्त्रिभुजयोः साजा-

रविकर्ण × भूव्या

त्यादनुपातेन 

रविकर्ण × भूव्या

रविकर्ण × भूव्या

रव्या भूव्या

विधितरिवकर्णचन्द्रकक्षयोर्योगबिन्दुः चन, भू = भूकेन्द्रम् । भूच = चन्द्रकर्णः । भूयो = भूयो

चल=भूभा-व्यासार्धम् । भूबिम्बस्पर्श बिन्दुः=स्प, भूस्प=भूव्यासार्धम् । तदा भूस्पयो, चलयो त्रिभुजयोः साजात्यादनुपातः। भूस्प × चयो = चल <u>भूव्या १× (भूछायादैर्घ्यं — चन्द्रकर्णा)</u> = भूभाव्यासार्धम् । द्विगुग्गीकरगोन भूछायादैर्घ्यं भूव्या (भूछायादैर्घ्य चन्द्रकर्ण) = भूभाव्यासः । परमयं भूभाव्यासश्चन्द्रकक्षायां भछायादैर्घ्यं निह भवति । किन्तु चन्द्रकक्षात उपरि भवतीति भूभासाधनक्षेत्रदर्शनेन स्फुटम् । ततः 'सूर्येन्दुभूभातनुयोजनानी' त्यादिना भूभाव्यास × त्रि = ग्राचार्योक्त भूभा-मानकलाः, एतेनाचार्योक्तमुपपन्नमिति । भूभामानकलासाधने या स्थूलता सा पूर्वमेव तत्साघनोपपत्तौ प्रदर्शितास्ति । सा तत्र व द्रष्टव्येति ।।

#### श्रव भूभादै ध्यं श्रीर भूभामान को कहते हैं।

हि. भा. - रिवकर्णं को भूव्यास से गुगाकर भूव्यासोन रिवव्यास से भाग देने से भूकेन्द्र से भूछाया का दीर्घत्व (लम्बाई) होता है । उस दीर्घत्व में से चन्द्रकर्गा को घटाकर जो शेष रहता है उसको भूव्यास से गुगाकर दीर्घत्व से भाग देने से चन्द्रकक्षा में भूभाव्यास होता है। उसको त्रिज्या से गुएगाकर चन्द्रकर्एा से भाग देने से भूभामान कला होती है इति ॥५-१॥

#### उपपत्ति ।

रविबिम्व और भूबिम्ब की क्रमस्पर्श रेखाएँ विधित रविकर्ण के साथ चन्द्रकक्षा से ऊपर एक ही बिन्दु में मिलती है, वह बिन्दु = यो, है। भूकेन्द्र से स्पर्श रेखा की समाना-न्तर रेखा रिव व्यासार्घ में जहां लगती है वहां से रिविकेन्द्र तक रेखा - रिविव्याई - भूव्याई ग्रव दो त्रिभुज बनते हैं जैसे रविकर्ण कर्ण एकभुजः । भूव्यासार्धोन रविव्यासार्थ भुज द्वितीयभुज, भूकेन्द्र से समानान्तर रेखा और रिवव्यासार्घ के योग बिन्दु पर्यन्त कोटि तृतीय भुज, इन कर्ग-भुज कोटि से उत्पन्न एक त्रिभुज, तथा भूकेन्द्र से बिन्दु पर्यन्त भूछायादैन्यं कर्ण एक मुज, भू व्यासार्घ मुज द्वितीय मुज भू विम्व स्पर्श विन्दु से यो विन्दु पर्यन्त कोटि तृतीयभुज, इन कर्गांभुजकोटि से उत्पन्न द्वितीय त्रिभुज; इन दोनों त्रिभुजों के सजातीयत्व से अनुपात करते हैं यदि भूध्यासाघोंन रिव व्यासार्धभुज में रिवकर्ण-कर्ण पाते हैं तो भूव्यासार्ध भुज में क्या इस अनुपात से भूछाया दीर्घत्व आता है इसका स्वरूप = रिवकर्गा. भूव्याई - भूव्याई

रिवकर्णः भूव्या

चभूछाया दीर्घत्व = भूयो । विधित रिवकर्ण ग्रीर चन्द्रकक्षा का योगविन्दु = च । भू = भूकेन्द्र । भूच = चन्द्रकर्ण भूयो — भूच = चयो = भूछायादीर्घत्व — चन्द्रकर्ण;
च बिन्दु से स्पर्श रेखा के ऊपर लम्ब = चल = भूभाव्यासार्घ भूबिम्ब स्पर्श बिन्दु = स्प, भूस्प

= भूव्यासार्घ, तब भूस्पयो, चलयो दोनों त्रिभुजों के सजातीयत्व से ग्रनुपात करते हैं भूस्प. चयो

भूयो

=चल = भूव्याः (भूछायादीर्घत्व — चन्द्रकर्ण) = भूभाव्यासार्घ, द्विगुिरात करने से भूभाव्यास

= भूव्यास (भूछायादीर्घत्व चन्द्रकर्गा) , लेकिन यह भूभाव्यासा चन्द्र कक्षान्तर्गत नहीं भूछायादीर्घत्व

भूछायादीघत्व

ग्राता है किन्तु चन्द्रकक्षा से ऊपर ग्राता है यह भूभासाधन क्षेत्र देखने से स्फुट है । तब

ग्राता है किन्तु चन्द्रकक्षा से ऊपर ग्राता है यह भूभासाधन क्षेत्र देखने से स्फुट है । तब

ग्राता करते है यदि चन्द्रकर्णा में त्रिज्या पाते हैं तो भूभाविम्ब व्यासार्थ में क्या इस

ग्रानुपात से भूभाबिम्बार्थ कलाज्या ग्राती है इसको द्विगुिणित करने से ग्राचार्योक्त भूभामान

कला होती है उसका स्वरूप = 

| ति. भूभाबिम्बव्या | इससे ग्राचार्योक्त उपपन्त हुग्रा ।

लेकिन भूभामानकला साधन में जो स्थूलता है उसको साधनोपपित्त में देखना चाहिये।

इति ॥ = - ।।

पुनः प्रकारान्तरेग तत्साधनमाह।

रविकर्गंहृता त्रिज्या क्वकंव्यासान्तराहता शोध्या । त्रिज्या भूव्यासवधात् शशिकर्गंहृतात् तमो व्यासः ॥१०॥

सु. भा.—स्पष्टार्थम् ॥

भत्रोपपत्तिः । योजनात्मकभूभाव्यासः = भूव्या = चक (रव्या – भूव्या) रक

इयं त्रिज्यागुराा चन्द्रकर्णहृता जाता भूभाबिम्बकलाः = त्रि.भूव्या चक

— त्रि (रव्या—भूव्या) । म्रत उपपन्नं यथोक्तम् ॥१०॥ रक

वि. मा.—त्रिज्या भूव्यासोन रिवव्यासेन गुणिता रिवकर्णेन भक्ता लिब्धः त्रिज्या भूव्यासघातात् चन्द्रकर्णभक्तात् शोध्या तदा भूभाव्यासो भवतीति ॥१०॥

#### भ्रत्रोपपत्तिः।

भूव्यासहीनं रिविबिम्बिमिन्दुकर्णाहितिमित्यादि भास्करोत्तचा भूव्या

— चंक (रव्या—भूव्या).

रक — भूव्याः त्रि — चंक (रव्या—भूव्या)ः त्रि — भूव्याः त्रि
चंक चंक रक चंक

— (रव्या—भूव्या)ः त्रि , एतेनोपपन्नमाचार्योक्तमिति । भूव्या = भूव्याः । चंक

= चन्द्रकर्णः । रव्या = रिवव्यासः । रक = रिवकर्णः इति ॥१०॥

### श्रव प्रकारान्तर से भूभाविम्बकला साधन को कहते हैं।

हि. भा.—तिज्या को भूव्यासोन रिवव्यास से गुएा। कर रिवकर्ए से भाग देने से जो फल हो उसको त्रिज्या ग्रौर भूव्यास घात में चन्द्रकर्ए से भाग देकर जो लिब्ध हो उसमें से घटाने से भूभाव्यास होता है इति ।।१०॥

#### उपपत्ति ।

भूव्या = भूव्यास । चंक = चन्द्रकर्ण । रक = रिवकर्ण । रव्या = रिवव्यास, तब 'भूव्यासहीनं रिविबिम्बिमिन्दुकर्णाहतं' इत्यादि भास्करोक्त प्रकार से भूव्या — चंक (रव्या — भूव्या). ति = भू भाव्यास, इसको त्रिज्या से गुर्णाकर चन्द्रकर्णं से भाग रक चंक. (रव्या — भूव्या. ति = मूव्या. ति = मूव्या. ति = चंक. रक चंक चंक. रक चंक. रक चंक चंक. रक चंक.

## इदानीं प्रकारान्तरेण भूभामानमाह ।

भूव्यासेन्दुगतिववात् क्वकंब्यासान्तराकंभुक्तिवधम् । प्रोह्ये न्दुमध्यभुत्तघा तिथिगुण्याऽऽप्तं तमो ब्यासः ॥११॥

सु. भा.--स्पष्टार्थम्।

भ्रत्रोपपत्तिः । पूर्वश्लोकेन भूभाबिम्बकलाः = नि.भृज्या चक

- = <u>२ चग.भूव्या —२ रग (रव्या —भूव्या)</u> १५ भूव्या
- = चग. भूव्या—रग (रव्या—भूव्या) १५ भूव्याद

न्द्रमध्यगतिकलासममत उपपन्नं यथोक्तम् ॥११॥

वि. माः — भूव्यासचन्द्रगतिघातात् भूव्यासरिवव्यासयोरन्तरगुणित-रिवगितं विशोध्य पञ्चदशगुणितच-द्रमध्यगत्या भक्तं तदा भूभा व्यासो-भवेदिति ॥११॥

#### ग्रत्रोपपत्तिः।

पूर्वश्लोकेन भूभाविम्बक्ला = 
$$\frac{73.4 \, \mathrm{paul}}{24\pi}$$
  $\frac{73}{24\pi}$   $\frac{73}{24\pi}$ 

चन्द्रमध्यमगतिसमं स्वीकृतं तदा चंग. भूव्या--रग (रव्या--भूव्या) = भूभा-

बिम्बकला, ग्रत ग्राचार्योक्तमुपपन्नमिति ॥११॥

## ग्रब प्रकारान्तर से भूभामान को कहते हैं।

हि. भा.—भूव्यास भीर चन्द्रगति के घात में भूव्यास भीर रिवव्यास के भन्तर से गुिरात रिवर्गति को घटाकर पन्द्रह से गुिरात चन्द्रमध्यम गित से भाग देने से लब्ध भूभा-व्यास होता है इति ॥११॥

#### उपपत्ति ।

पूर्वश्लोक से मूमाविम्बक्ला = 
$$\frac{7}{8}$$
 भूव्या  $\frac{7}{8}$  (रव्या—भूव्या)  $\frac{7}{8}$  (रव्या—भूव्या) =  $\frac{7}{8}$  . भूव्या  $\frac{2}{8}$  × २ —  $\frac{7}{8}$  (रव्या—भूव्या) =  $\frac{7}{8}$  भूव्या (रव्या—भूव्या) .  $\frac{7}{8}$  चंग =  $\frac{7}{8}$  भूव्या (रव्या—भूव्या) =  $\frac{7}{8}$  मंग =  $\frac{7}{8}$  भूव्या (रव्या—भूव्या) =  $\frac{7}{8}$  मंग =  $\frac{7}{8}$  भूव्या (रव्या—भूव्या) =  $\frac{7}{8}$  मंग =  $\frac{7}{8}$  संबंध =  $\frac{7}{8}$  संविपरमलम्बन (रव्या—भूव्या) =  $\frac{7}{8}$  मंग =  $\frac{7}{8}$  संविप्रमं =  $\frac{7}{8}$  संवप्रमं =

#### इदानीमध्यायोपसंहारमाह।

योऽधिकमासावमरात्रसम्भवज्ञः स वेत्ति मानानि । ग्रायद्वावशभिरयं मानाच्यायस्त्रयोविकः ।।१२॥ सु. भा. —यो गराकोऽधिकमासावमरात्रसम्भवज्ञः स एव सौरादिमानानि वेत्ति यतः सौरचान्द्रमानाभ्यां सम्यग्ज्ञाताभ्यामधिमासज्ञानं चान्द्रसावनमानाभ्यां च क्षयाहज्ञानं भवति । शेषं स्पष्टम् ॥१२॥

मधुसूदनसूनुनोदितो यस्तिलकः श्रीपृथुनेह जिष्णुजोक्ते । हृदि तं विनिघाय नूतनोऽयं रचितो मानविधौ सुघाकरेएा ॥

इति श्रीकृपालुदत्तसूनुसुघाकरद्विवेदिविरिचते ब्राह्मस्फुटसिद्धान्तनूतनित-लके मानाध्यायस्त्रयोविशः ॥१२॥

वि. भा.—योऽधिमाससम्भवमवमसम्भवं च जानाति स मानानि (सौर-चान्द्रमानादि) जानाति, यतो ज्ञाताभ्यां सौरचान्द्रमानाभ्यामधिमासज्ञानं भवति तथा चान्द्रसावनमानाभ्यां चावमदिनज्ञानं भवति । अयमार्योद्धादशभिस्त्रयो-विज्ञो मानाध्यायोऽस्तीति ॥१२॥

#### इति ब्राह्मस्फुटसिद्धान्ते मानाध्यायस्त्रयोविशः श्रव श्रध्याय के उपसंहार को कहते हैं।

हि. भा. — जो गएक श्रविमास सम्भव को जानते हैं और अवम सम्भव को जानते हैं वे मान (सौर चान्द्रमानादि) को जानते हैं क्यों कि श्रञ्छी तरह विदित सौरमान भौर चान्द्रमान से श्रविमास ज्ञान होता है, तथा चान्द्रमान शौर सावनमान से क्षयाह ज्ञान होता है इति ॥१२॥

इति बाह्यस्फुट सिद्धान्त में तेईसवां मानाष्याय समाप्त हुमा।

## ब्राह्यस्फुटसिद्धान्तः

संज्ञाध्यायः

## ब्राह्यस्फुटसिद्धान्तः

ग्रथ संज्ञाध्यायः प्रारभ्यते ।

तत्रादौ तदारम्भ प्रयोजनमाह।

यस्मात्संप्रतिपत्तिनं संज्ञया संज्ञितो विना तस्मात् । लोके प्रसिद्धसंज्ञा रूपावीनां शशाङ्काद्याः ॥ १ ॥

सु. भा.—यस्मात् संज्ञया विना यः संज्ञितः पदार्थस्तस्य संप्रतिपत्तिः प्राप्तिः परिचयो वा न भवति, तस्मात् लोके रूपादीनां रूपवतां पदार्थानां शशाङ्काद्याः प्रसिद्धसंज्ञाः सन्ति ये ये रूपवन्तस्ते ते संज्ञांवन्तः । संज्ञा विना परिचयो न भवतो - स्यर्थैः ॥१॥

वि. भा- यस्मात् कारणात् यः संज्ञितः (संज्ञायुक्तो नामयुक्तोवा) पदार्थस्तस्य संप्रतिपत्तिः (परिचयः सम्यक् ज्ञानं वा) संज्ञया विना न भवति तस्मात् कारणात् लोके रूपादीनां (स्वरूपवतां पदार्थानां) शशाङ्काद्याः (चन्द्रादयः) प्रसिद्ध संज्ञाः सन्ति । श्रर्थाद्ये ये रूपवन्तः पदार्थास्तेते संज्ञावन्तः, संज्ञा (नाम) विना तेषां परिचयो न भवतीति ॥ १ ॥

भव संज्ञाच्याय प्रारम्भ किया जाता है। उसमें पहले भ्रारम्भ करने का प्रयोजन कहते हैं।

हि. भा.—क्योंकि जो संज्ञायुक्त (नाम वाले) पदार्थ हैं उनका परिचय वा अच्छी तरह से ज्ञान विना संज्ञा (नाम) के नहीं होता है; इसलिये लोक में रूपवान पदार्थों की शशाब्द्ध (चन्द्र) आदि प्रसिद्ध संज्ञा है। अर्थात् रूपवान जितने पदार्थ है वे सब संज्ञावान है। संज्ञा (नाम) के बिना उनका परिचय नहीं होता है इति ॥ १॥

#### इदानीं सिद्धान्त एक एवेत्याह।

युगपद्युगादिक्वयाद्याम्यायां भास्करस्य वारुण्याम् । राज्यर्घात् सौम्यायामस्तमयाद्दिनदलादैन्द्रचाम् ॥ २॥ ग्रयमेव कृतः सूर्येन्दु पुलिश रोमक वशिष्ठ यवनाद्यैः। यस्मात्तस्मादेकः सिद्धान्तो विरचितो नान्यः॥ ३॥

सु. भा- कस्यचिन्मते भास्करस्य याम्यायां लङ्कायामुदयाद्युगपद्युगादिः। अन्यमते तदेव वारुण्यां रोमकपत्तने रात्र्यर्वाद्युगादिः। अन्यमते तदेव सौम्यायां सिद्धपुरेऽस्तमयाद्युगादिः। अन्यमते च तदेवैन्द्रचां यमकोटचां दिनदलाद्युगादिः। एवं देशिवशेष गोदयास्तादिकालः सूर्यस्य जातो वस्तुत आकाशे सूर्यस्य स्थितिश्च मेषादावेवातो प्रहुगगानायामेव सर्वत्र एक एवायं सिद्धान्तः सूर्यन्दुपुलिशरोमक-विसष्टय वनाद्यैः कृतः। यस्माद् शिवशेषस्य भिन्न-भिन्नकालग्रहगोन ग्रहगगानायां भेदो न भवित तस्मात् सूर्याद्यैर्वस्तुत एक एव सिद्धान्तो विरचितो नान्य इति सिद्धान्तविदां सर्वं स्फुटम् ॥२-३॥

वि. भा--भास्करस्य (सूर्यस्य) याम्यायां (लङ्कायां) उदयादेकदैव युगादेः प्रवृत्तिर्बभूवेति कस्यचिन्मतम् । तदैव (लङ्कार्कोदयकाल एव) वारुण्यां (रोमक-पत्तने) रात्र्यर्घात् (अर्धरात्रिकालात्) युगादिप्रवृत्तिः । तदैव सौम्यायां (सिद्धपुरे) श्रस्तमयकालाद्युगादि प्रवृत्तिरिति कस्यचिन्मतम् । तदैवैन्द्रचाम् (यमकोटि पुर्यां) दिनार्धकालाद्युगादेः प्रवृत्तिरित्यन्यस्य मतम् । सिद्धान्त शिरोमणौ--

"लङ्का कुमध्ये यमकोटिरस्याः प्राक् पश्चिमे रोमकपत्तनं च ।
ग्रम्यस्ततः सिद्धपुरं सुमेरुः सौम्ये च याम्ये वडवानलश्च ।।
कुवृत्त पादाम्तरितानि तानि स्थानानि षङ्गोलविदो वदन्ती"
तिभास्करोक्तपुरनिवेशस्थित्या गोलस्थितिदर्शनेन चाऽग्रे ।
"लङ्कापुरेऽर्कस्य यदोदयः स्यात्तदा दिनार्षं यमकोटिपुर्याम् ।
ग्रम्यस्तदा सिद्धपुरेऽस्तकालः स्याद्रोमके रात्रिदलं तदेव ॥"

इति भास्करोक्तमस्ति, यदा लङ्कायां सूर्योदयस्तदैव यमकोटिनगरे दिनार्धमधःसिद्धपुरेऽस्तकालः। रोमकपत्तने रात्र्यर्धं भवति, तेन लङ्कासूर्योदय-काले-यमकोटिदिनार्धकाले, अधः सिद्धपुरेऽस्तकाले, रोमकपत्तनस्य रात्र्यर्धकाले एकदैव युगादि प्रवृत्तिर्वभूवेति कथने न कोऽपि दोषोऽस्ति। तथापि सिद्धान्तशेखरे-

"मधृसित प्रतिपद्दिवसादितो रिवदिने दिनमासयुगादयः। दश शिरः पुरि सूर्यसमुद्गमात् समममी भवसृष्टिमुखेऽभवन्'

इत्यनेन श्री पितना, सिद्धान्तिशरोमगाौ
"लङ्कानगर्यामुदयाच भानोस्तस्यैव वारे प्रथमं वभूव ।
मधोः सितादेदिनमासवर्षं युगादिकानां युगपत्प्रवृत्तिः ॥"

इत्यनेन भास्कराचार्येग, श्रन्येनाप्यनेकाऽज्वार्येग लङ्कायाः प्रधानत्वाल्लङ्कासूर्योदयकालत एव युगाद्यारम्भः कथ्यते, यमकोटि-सिद्धपुररोमकपत्तननगराण्यप्रसिद्धानि सन्ति, वहुभिस्तेषां नामान्यपि न श्रुनानि,
तस्मादेव कारणान् – बहुभिरेवाचार्येलंङ्कासूर्योदयकालत एव युगादिप्रवृत्तिः
स्वीक्रियते । वस्तुतस्तु — श्राकाशे मेषादावेव सूर्यस्य स्थितिरतो ग्रहगणिते सर्वत्रेक
एवायं सिद्धान्तः सूर्य-चन्द्र-पुलिश-रोमक-वशिष्ट यवनाद्यैः कृतः । यस्मात्कारणात्
देशविशेषाणां भिन्नभिन्नकालग्रहगणिते कोऽपि भेदो न भवत्यतः पूर्वोक्तरेगाचायैरेक एव सिद्धान्तो विरचितोऽन्यो नेति ॥ २-३ ॥

#### भ्रव सिद्धान्त एक ही है कहते हैं।

हि. भा.— लङ्का सूर्योदय काल से एक ही समय में युगादियों की प्रवृत्ति हुई यह किसी का मत है। उसी समय में (लङ्कोदयकाल ही में) रोमक पत्तन में अर्घ रात्रिकाल से युगादारम्भ हुआ यह अन्य आचार्य का मत है। उसी समय में सिद्धपुर में सूर्यास्त काल से युगादियों की प्रवृत्ति हुई यह किसी दूसरे आचार्य का मत है। उसी समय में यमकोटि पुरी में दिनार्थ काल से युगादियों की प्रवृत्ति हुई यह किसी अन्य आचार्य का मत है। सिद्धान्तिशिरोमिण में 'लङ्का कुमध्ये यमकोटिरस्याः प्राक्पिहचमे रोमक पत्तनं च' इत्यादि भास्कराचार्य किथत पुरों के निवेश की स्थित से और गोल स्थिति देखने से आगे 'लङ्कापुरेऽकंस्य यदोदयः स्यात्तदा दिनार्थ यमकोटि पुर्याम्' इत्यादि भास्करोक्त है अर्थात् जब लङ्का में सूर्योदय खां उसी समय यमकोटि पुरी में दिनार्थ होता है, सिद्धपुर में अस्तकाल होता है, और रोमकपत्तन में राज्यर्थ होता है, इसलिये लङ्कासूर्योदय काल में-यम कोटि दिनार्थ काल में सिद्धपुर के अस्तकाल में रोमक पत्तन में अर्घरात्रि काल में एक ही समय में युगादि प्रवृत्ति हुई इस कथन में कोई भी दोष नहीं है।

तथापि सिद्धान्त शेखर में 'मघुसित प्रतिपद् दिवसादितो रविदिने दिनमासयुगादयः' इत्यादि विज्ञान भाष्य में लिखित श्रीपत्युक्ति से सिद्धान्त शिरोमिण में 'लङ्कानगर्यामुदयाच्च भानोस्तस्यैव वारे प्रथमं बभूव' इत्यादि भास्करोक्ति से श्रीर अनेक श्राचार्यों के कथन के श्रनुसार प्रधाननगरी लङ्का के सूर्योदय काल ही से युगाद्यारम्भ माना जाता है। यमकोटि-सिद्धपुर-रोमकपत्तन नगर श्रप्रसिद्ध है, बहुत लोग उनके नाम भी नहीं जानते हैं लंका को श्राबाल वृद्ध सब जाते हैं, इसीलिये बहुत से श्राचार्यों ने लङ्का में सूर्योदय काल ही से युगादि प्रवृत्ति को स्वीकार किया है।

वस्तुतः म्राकाश में मेषादि ही में सूर्य की स्थिति थी इसलिये ग्रहगराना में सर्वत्र एक ही यह सिद्धान्त को सूर्य-चन्द्र-पुलिश-रोमक-वशिष्ठ-यवनादि म्राचार्यों ने स्वीकार किया है। क्योंकि देश विशेषों के भिन्त-भिन्न काल ग्रहरा करने से ग्रहगराना में कोई भी भेद नहीं होता है म्रतः पूर्वोक्त म्राचार्यों ने एक ही सिद्धान्त बनाया, म्रन्य नहीं इति ।। २-३।।

इदानीं कस्मिन्न शे सूर्यसिद्धान्तादयो भिन्ना इति कथ्यते ।

यदि भिन्नाः सिद्धान्ताः भास्कर संक्रान्तयो विभेदसमाः । स स्पष्टः पूर्वस्यां विषुवत्यर्कोदयो यस्य ॥ ४ ॥

सु० भा० —यदि सौरादयः सिद्धान्ताः भिन्नास्तर्हि विभेदसमा भास्कर-सङ्क्रान्तयः सन्ति । रविसंक्रान्तिसमय एक एव तेषां सौरादीनां गण्नया नायाति तेन हेतुना सिद्धान्ता भिन्नाः । तेषां कतमः स्फुट इत्याह स स्पष्ट इति । यस्य गण्नया विषुवति मेषतुलादौ पूर्वस्यां दिश्येव प्राक् स्वस्तिकविन्दावर्कोदयो वेधेनो-पलभ्यते स एव स्पष्टः स्फुटो ज्ञेय इति । यद्युदयकाल एव रविर्मेषतुलादिगस्तदै-वैवं भवत्यन्यथा तारतम्येन रव्युदयेन सिद्धान्तगण्ना परीक्षणीयेति ।।४॥

वि. भा-यदि सूर्यसिद्धान्तादयः सिद्धान्ता भिन्नास्तर्हि रिवसंक्रातिसमय एक एव तेषां (सौरादीनां) गणनया नायात्यतः सिद्धान्ता भिन्ना सन्ति । तेषु सिद्धातेषु कतमः स्फुट इति कथ्यते । यस्य गणनया विषुवति (मेषादौ तुलादौ च) पूर्वस्यां दिश्येव (पूर्वस्वस्तिकविन्दावेव) रव्युदयो वेधेनोपलभ्यते स एव स्फुटः सिद्धान्तो बोद्धव्यः । यदि रिवष्ट्दय काल एव मेषतुलादिगतस्तदैवैवं भिवतुमहंति । अन्यथा रव्युदयेन सिद्धान्तगणनायास्तारतम्येन परीक्षणं कार्यमिति ॥ ४॥

श्रव किस श्रंश में सूर्य सिद्धान्तादि भिन्न हैं सो कहते हैं।

हि. भा. — यदि सौरादि सिद्धान्त भिन्न है तो रिव संक्रान्ति काल उन सबों की गएाना एक ही से नहीं माता है मतः सिद्धान्त भिन्न हैं। उन सिद्धान्तों में कौन सिद्धान्त स्फुट है सो कहते हैं। जिसकी गएाना से मेषादि और तुलादि में पूर्वस्वस्तिक बिन्दु ही में वेघ से रिव का उदय उपलब्ध हो उसी को स्फुट सिद्धान्त सममना चाहिये। यदि उदयकाल ही में रिव मेषादि-तुलादि गत हो तब ही ऐसा हो सकता है मन्यथा तारतम्य से रिव के उदय से सिद्धान्तगएाना की परीक्षा करनी चाहिये इति।। ४।।

इदानीं स्व सिद्धान्तस्योत्तरार्धे क्रमिकाध्यायसंख्यामाह।

तन्त्र परीक्षा गिएतं मध्यमगत्युत्तरादयः पञ्च । कृट्टाकारो छेद्यदछन्दिद्यत्युत्तरं गोलः ॥ ५॥

## यन्त्राणि मानसंज्ञा स्याताध्यायाश्चतुर्दश ब्राह्ये। श्रध्यायचतुर्विशतिराद्यं देशिभर्यु ताध्यायैः ॥ ६ ॥

सुः भाः—उत्तरार्घे तन्त्रपरीक्षाध्यायः । गिणतां गिणिताध्यायः । पञ्च मध्यमगत्युत्तरादयोऽधिकाराः सन्ति । मध्यगत्युत्तराध्यायः । स्पष्टगत्युत्तराध्यायः । त्रिप्रश्नोत्तराध्यायः । छेद्यकाध्यायः । प्रृङ्गोन्नत्युत्तराध्यायः । कुट्टाकाराध्यायः । छन्दिश्चत्युत्तराध्यायः । गोलो गोलाध्यायः । यन्त्राणि,यन्त्राध्यायः । मानसंज्ञाध्यायः । स्थाताध्यायः संज्ञाध्यायोऽयमेव । एवमुत्तरार्धे ब्राह्मे तिद्धान्ते चतुर्दशाध्यायाः सन्ति । एत स्राद्यैदंशभिरध्यायैर्युता स्रध्यायचतुर्विशतिरत्र ग्रन्थे ज्ञेयेति ॥५-६॥

वि. मा.—त्राह्मे सिद्धान्ते (त्राह्मस्फुट सिद्धान्ते) उत्तरार्थे (१) तन्त्र-परीक्षाध्यायः, (२) गिएताध्यायः, मध्यमगत्युत्तरादयः पञ्चाध्यायाः (३) मध्य-गत्युत्तराध्यायः, (४) स्फुटगत्युत्तराध्यायः, (५) त्रिप्रश्नोत्तराध्यायः, (६) ग्रहणो-त्तराध्यायः, (७) श्रुङ्गोन्नत्युत्तराध्यायः, (६) क्रुहाकाराध्यायः, (१) छ्रेद्धकाध्यायः, (१०) छ्रन्दश्चित्युत्तराध्यायः, (११) गोलाध्यायः (१२) यन्त्राध्यायः, (१३) मान-संज्ञाध्यायः, (१४) ख्याताध्यायः (संज्ञाध्यायोऽयमेव) इतिचतुर्दशाध्यायाः सन्ति । एते चतुर्दशाध्याया ग्राद्धैर्दशिपरध्यायैर्युत्तारचतुर्विशति संख्यका ग्रध्याया ग्रत्र ग्रन्थे ज्ञेया इति ॥ ५-६ ॥

भ्रव भ्रपने सिद्धान्त के उत्तरार्ध में क्रमिक भ्रष्थाय संख्या कहते हैं।

हि. भा.—इस ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त के उत्तरार्घ में (१) तन्त्रपरीक्षाघ्याय, (२) गिर्मिताघ्याय, (३) मध्यगत्युत्तराघ्याय, (४) स्फुटगत्युत्तराघ्याय, (५) त्रिप्रश्नोत्तराघ्याय, (६) ग्रह्मोन्नत्याघ्याय, (७) प्रञ्जोन्नत्याघ्याय, (८) क्रुह्मान्नत्याय, (१) गोलाघ्याय, (१२) यन्त्राघ्याय, (१३) मानसंज्ञाघ्याय, (१४) संज्ञाघ्याय, ये चौदह अध्याय है। इनमें पहले (पूर्वार्घ) के दश अध्याय जोड़ने से इस ग्रन्थ में चौबीस अध्याय समक्षने चाहिये इति।। ५-६।।

#### इदानीं ग्रन्थग्रथनकालमाह।

श्री चापवंशतिलके श्रीव्याघ्रमुखे नृपे शकनृपाएगम् । पञ्चाशत्संयुक्तं वर्षशतैः पञ्चभिरतीतैः ॥ ७॥ बाह्यस्फुटसिद्धान्तः सज्जनगिएतगोलवित्प्रीत्ये । त्रिशद्वर्षेण कृतो जिष्णुसुतबह्मगुप्तेन ॥ ६ ॥

सु. मा - श्रीव्याघ्रमुखे नृपे पृथ्वीं शासति । किंविशिष्टे नृपे श्रीचापवंश-

तिलके । शकनृपाणां पञ्चाशत्संयुक्तैः पञ्चभिवंर्षशतैरतीतैरर्थात् पञ्चाशदिधक-पञ्चशतशके शेषं स्पष्टम् ॥७-८॥

वि. भा-श्रीचापवंशस्य तिलके (टीकारूपे) श्रीव्याघ्रमुखे (एतन्नामके) महीपाले पृथ्वी शासति, शकनृपाणां पञ्चाशत्संयुक्तैः पञ्चभिवंषंशतैरर्थात् पञ्चाशदिधकपञ्चशतवर्षेः, ग्रतीतैः (गतैः) ग्रर्थात् पञ्चाशदिधकपञ्चशत-शकाब्दे सज्जनगिणतगोलविदां विनोदाय त्रिशद्वर्षवयस्केन जिष्णोस्तनयेन ब्रह्मगुप्तेन ब्राह्मः स्फुटसिद्धान्तः कृत इति ॥ ७-८ ॥

#### ग्रब ग्रन्थ रचना काल कहते हैं।

हि. भा.—श्रीचापवंश में तिलक (टीका) रूप श्री व्याघ्रमुख नामक राजा के शासन में पांच सो पचास शक (शाके ५५०) में सज्जन (दौष्ट्यादि दोष रहित) गिएत और गोल के पण्डितों के हर्ष के लिये तीस वर्ष अवस्था के जिष्णुपुत्र ब्रह्मगुष्त ने ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त नामक इस ग्रन्थ को रचा अर्थात् ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त को बनाया इति ।। ७-४।।

इदानीमस्मिन् सिद्धान्ते गिर्णतलाघवेन करणग्रन्थवत् फलसाधनं कथं न कृतिमिति कथयित

गिर्मितेन फले सिद्धिर्ज्ञाह्ये ध्यानग्रहे यतोऽध्याये। ध्यानग्रहो द्विसप्ततिरार्यागां न लिखितोऽत्र मया।। ६।।

सु. मा.—यातो बाह्ये ब्रह्मकृते ध्यानग्रहे ध्यानग्रहनाम्न्यध्याये गिएतिन फले मान्दादिफलसाधने लाघवेन सिद्धिः कृताऽतोऽत्रार्याएां द्विसप्ततिध्यानग्रहोऽध्यायः पुनरुक्तिदोषभयान्मया न लिखित इति ॥९॥

नि.माः—यतो बाह्ये (ब्रह्मगुप्तकृते) घ्यानग्रहेऽघ्याये (ध्यानग्रहोपदेशाध्याये) मान्दादि फलसाघने गिर्णतलाघवेन फलसिद्धिः कृता मयाऽतोऽत्रार्याणां द्विसप्तिति ध्यानग्रहोऽघ्यायः पुनरुक्तिदोषभयान्न लिखित इति ॥ ९ ॥

### अब इस सिद्धान्त में गिएतिलाघव से करण ग्रन्थ की तरह फलसाधन क्यों नहीं किया गया कहते हैं।

हि. भा.—क्योंकि ब्रह्मगुप्तकृत घ्यान ग्रह नामक ग्रध्याय में गिएत से मान्दादि फल साधन में लाघव द्वारा सिद्धि की गयी है इसलिये यहां बहत्तर ग्रायिश्रों का घ्यान ग्रह्मध्याय पुनरुक्तिदोष के डर से नहीं लिखा गया इति ।। १ ।।

#### इदानीं ग्रन्थ संस्थां कथयति ।

## भटब्रह्माचार्येस जिब्स्मोस्तनयेन गरिमतगोलविदा । भ्रार्याष्ट्रसहस्रेस सफुटसिद्धान्तः कृतो ब्राह्मः ॥ १०॥

सु. भा. - आर्यागामब्टाधिकैक सहस्रे ए। शेपं स्पष्टार्थम् ॥१०॥

वि भा.—गिएतगोलज्ञेन जिप्सुपुत्रेश भटब्रह्माचार्येश मया, ग्रार्याशामष्टा-धिकैकसहस्रेश ब्राह्मस्फुटसिद्धान्तः कृत इति ॥

श्रव ग्रन्थ संस्था (ग्रन्थ में श्लोक संस्था) कहते हैं।

हि. भा.—गिएत और गोल के पण्डित जिष्णु के पुत्र भटब्रह्माचार्य ने एक हजार आठ आर्याओं के इस ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त ग्रन्थ को बनाया इति ॥ १०॥

इदानीं सूर्यग्रहरो चन्द्रशङ्कुः कथंन कृत एतदर्थमाह ।

भग्रहयुतिवच्छङ्कुुर्वित्रिभलग्नाद्रविग्रहोक्तिसमः। शशिनः कर्मबहुत्वात् न कृतोऽतो भास्करग्रहिए।। ११।।

सु. मा.—भग्रहयुतिवद्रविग्रहोक्तिसमः शशिनो वित्रिभलग्नाच्छंकुः कर्मबहु-त्वात् महताऽऽयामेन भवति । ग्रतो मया भास्करग्रहिष् शशिशङ्कर्ुनं कृतः प्रयोजनाभावात् इयमार्या निष्प्रयोजना ॥११॥

वि. भा.—भग्रहयुतिवत् सूर्यग्रहणोक्तस्थितिरस्ति-ग्रर्थात् भग्रह योगे यथा स्थिति रस्ति तथैव सूर्यग्रहणेऽपि विद्यते । वित्रिभलग्नाच्छङ्कुश्चन्द्रस्य क्रिया गौरवान्महता प्रयासेन भवत्यतो मया सूर्यग्रहणे चन्द्रशङ्कुनं कृत इति ॥११॥

हि. भा.—भग्रह (नक्षत्र और ग्रह) योग की तरह सूर्यग्रहण में कथित स्थिति है अर्थात् भग्रह योग स्थिति के तुल्ब ही सूर्यग्रहणोक्त स्थिति है, वित्रिभलग्न से चन्द्रशङ्कु क्रिया की अधिकता (कर्मबाहुल्य) से वहुत प्रयास द्वारा होता है इसलिये मैंने सूर्यग्रहण में चन्द्रशङ्कु नहीं किया इति ।। ११ ॥

इदानीं प्रश्न विशेषमाह।

भ्राग्नेये नैर्ऋं त्येवेष्ट्रदिने संस्थितस्य योऽर्कस्य । शङ्क्रुच्छाये कथयति वर्षादिप वेत्ति सूर्यं सः ॥ १२ ॥

सु. मा. - इष्टदिने म्राग्नेये वा नैऋंत्ये को एवृत्ते संस्थितस्यार्कस्य वा यो

वर्षादिपि वर्षपर्यन्तकालेनापि शङ्कुच्छाये कथयति स एव सूर्यं वेत्तीति । ग्रस्योत्तरं कोएशङ्क्रोरानयनेन स्फुटम् ।।१२।।

वि. भा.—यो गणक इष्टदिने आग्नेये का नैऋ त्ये कोणवृत्ते संस्थितस्यार्कस्य (रवे:) शङ्क ुच्छाये वर्षपर्यन्तकालेनापि कथयित स सूर्यं वेत्ति (जानाति), इति ॥ १२ ॥

अस्योत्तरार्थमुपपत्तिः सूर्यसिद्धांते ।
"तिज्यावर्गार्धतोऽग्राज्या वर्गोनाद् द्वादशाहतात् ।
पुनर्द्वादश विघ्नाञ्च लभ्यते यत् फलं बुधैः ॥
शङ्क ुवर्गार्धसंयुक्तविषुवद्वर्गभाजितात् ।
तदेव करणी नाम तां पृथक् स्थापयेद् बुधः ॥
श्रकंघ्नी विषुवच्छायाऽग्राज्यया गृणिता तथा ।
भक्ता फलाख्यं तद्वर्गसंयुक्तकरणीपदम् ॥
फलेन हीनसंयुक्तं दक्षिणोत्तर गोलयोः ।
याम्ययोविदिशोः शङ्क ुरेवम्"
इति कोणशङ्कोरानयनमस्ति ।

एतद्व्याख्या—त्रिज्यावर्गार्धात् अग्राज्यावर्गहीनात् । शेषाद् द्वादशगुणात् पुनर्द्वादशगुणात् । द्वादशवर्गार्थसंयुक्त पलभावर्गेण भाजिताद्य त्फलं तदेव करणी नाम भवति । तां करणीं पृथगेकत्र स्थापयेत्, द्वादशगुणा पलभाऽग्रया गुणा तेनैव हरेण (द्वादशवर्गार्धसंयुक्त पलभावर्गेण) भक्ता लब्धं फलसंज्ञकम् । फलाख्यस्य वर्गेण संयुक्ता या करणी तत्पदं (वर्गमूलं) दक्षिणोत्तरगोलयोःक्रमेण फलाख्येन हीन संयुक्तं कार्यम् । दक्षिणगोले फलेन हीनमुक्तरगोले युक्तमित्यर्थः । एवं याम्ययोरिननैऋ त्य-कोणयोः शङ्क्षुः स्यादिति । एतदुपपित्तदर्शनेन प्रश्नोत्तरं स्फूटमस्तीति ॥ १२॥

# मब प्रश्न विशेष को कहते हैं।

हि. भा. — जो गराक इष्टदिन में ग्राग्नेय वा नैऋंत्य कोरावृत्त स्थित रिव के शङ्कु ग्रीर छाया को एक वर्ष पर्यन्त समय में भी कहते हैं वे सूर्य को जानते हैं; इति ॥ १२ ॥

#### इसकी उपपत्ति।

सूर्य सिद्धान्त में 'त्रिज्यावर्गांवेतोऽग्राज्यावर्गीनाद्द्वादशाहतात् । पुनर्द्वादशनिघ्नाच्च सम्यते यत्फलं दुवै:' इत्यादि संस्कृतोपपत्ति में लिलित क्लोकों में 'फुलेन हीन संयुक्तं दक्षिणोत्तर गोलयो: । याम्ययोर्विदिशो: शङ्कु: 'इसमें उपर्युक्त प्रश्न का उत्तर स्पष्ट है। उपर्युक्त सूर्य सिद्धान्तीय श्लोकों की उपपत्ति देखने से स्फुट है इति ॥ १२॥।

#### इदानीमध्यायोपसंहारमाह।

म्रत्र मया यन्नोक्तं गोलादुत्प्रेक्ष्य घीमता बोह्यम् । भ्रायत्रियोदशोऽयं संज्ञाध्यायश्चतुर्विशः ॥ १३ ॥

सुः भाः—ग्रत्र मया यत् किञ्चिन्नोक्तं तत्सर्वं घीमता गर्णकेन गोलादुत्प्रे क्षां कृत्वोह्यम् । गोलबोघे हीदमेव फलं यदनुक्तमपि बुद्धिमता ज्ञायते । शेषं स्पष्टम् ।।१३॥

मधुसूदनसूनुनोदितो यस्तिलकः श्रीपृथुनेह जिष्णुुजोक्ते । हृदि तं विनिधाय नूतनोऽयंरचितो नामविधौ सुधाकरेण ॥

इति श्रीकृपालुदत्तसूनुसुधाकरिद्ववेदिरचिते ब्राह्मफुटसिद्धान्तनूतनितलके संज्ञाध्यायश्चतुर्विशतितमः सम्पूर्णतामगमत् ॥

वि. भा.— भ्रत्र मया यत्कि श्वित् न कथितं तत्सर्वं बुद्धिमता गराकेन गोला-दुत्प्रेक्षां कृत्वा ज्ञेयम्। गोलज्ञानस्येदमेव फलं यदकथितमिप बुद्धिमद्भिर्जायत इति ॥ १३ ॥

इति ब्राह्मस्फुट सिद्धान्ते संज्ञाध्यायश्चतुर्विशतितमः समाप्तिमगमत् ॥ २४ ॥

#### अब अध्याय कें उपसंहार को कहते हैं।

हि. भा.—इसमें हमने जो कुछ नहीं कहा है उन सबों को बुद्धिमान् गराक (ज्योतिषिक) गोल ज्ञान से समर्फें क्योंकि गोलबोध का यही फल है कि जो विषय नहीं कहे हैं उनको समभे इति ।। १३ ।।

> इति ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त में संज्ञाध्याय नाम का चौवीसवां झध्याय समाप्त हुन्ना ॥ २४ ॥

# ब्रह्मगुप्त कृतो

# ध्यानग्रहोपदेशाध्यायः

# ब्रह्मगुप्त कृतो

# ध्यानग्रहोपदेशाध्यायः

तत्रादौ चेत्रादौ मासगगानयनमाह—

पञ्चाशत्संयुक्तं वंषंशतैः पंचभिवना शाकः

त्रिष्टोऽर्केवंसुवेदेनंवचन्द्रं स्ताडितः क्रमशः ॥ १॥

पंचाब्धियुतोऽघः षष्टिभाजितो लब्धियुक् सरसवेदः।

मध्यमराशिविश्वैविभाजितोऽस्यधिकमासाः स्युः ॥ २ ॥

तैरुपरितनो युक्तो मासगगाऽम्यधिकशेषकः शुद्धः । घटिकादिको भचक्नाद्रविरविशेषो भवेद्धादिः ।। ३ ।।

सु. भा-—शाकः खपञ्चपञ्चोनस्त्रिधा स्थाप्यः। एको रिविभिर्गु गाः। द्वितीयो वसुवेदैस्तृतीयो नवचन्द्रै श्च गुगाः। ग्रधोराशिः पञ्चाब्धि ४५ युतः षष्टि-भाजितः फलं मध्यराशौ क्षेप्यम्। तत्रै व रसवेदाश्च ४६ क्षेप्याः। एवं संस्कृतो मध्यो मध्यमराशिः शशाङ्कविश्वे विभाजितोऽधिमासाः स्युः। तेरिधमासैष्परितनो राशिर्यु को मासगग्शचान्द्रो भवति।

# भ्रत्रोपपुत्तिः ।

एकस्मिन् वर्षेऽिवमासः= ४५६३३०००००

$$-\frac{4355 \times 300000}{58800} - \frac{6355 \times 58800}{535} - \frac{6355 \times 58800}{535} - \frac{60}{535} \times \frac{60}{5$$

श्रयमिष्टैः सौरवर्षेर्गुं गोऽधिमासाः स्युः । श्रेषोपपत्तिः स्फुटा । ४५।४६ श्रस्य क्षेपस्योपपत्तिर्गुं न्थान्ते द्रष्टव्या ।

सौरवर्ष चैत्राद्योर्मध्येऽधिमासशेषो मासात्मकरचान्द्रस्तच्चालनं कल्पचान्द्रमासैः 

इदं नवगुणं चतुर्भक्तः लब्धं नक्षत्रात्मकं चालनं षष्टिगुणं जातं घटचात्मकम्।

$$= \frac{१७२८०० \times १ \times अधिशे \times ६०}{१७८१११ \times 8 \times 128} = \frac{१७२८०० \times १३५ \times 8 \times 128}{१७८११ \times 838}$$

$$=\frac{२३३२८००० \times अधिशे}{२३३३२५४१}= म्रिधिशे । स्वल्पांतरात् ।$$

सौरवर्षादौ रविर्भचक्रे ए। नक्षत्रसप्तविंशत्या समोऽतो भचकादिधशेषघटी-समचालनं विशोध्य चैत्रादौ भादी रविर्ज्ञेय इति स्फुटम् ॥१-३॥

हि. भा - जाके में से ५५० घटाकर शेष को तीन जगह रखी, एक को बारह (१२) से, दूसरे को भड़तालीस (४८) से तथा तीसरे को १६ से गूणा करो।

तीसरी राशि में ४५ जोड़कर ६० से भाग दो। लब्बि को दूसरी राशि में जोड दो. श्रीर उसी में रसवेद (४६) जोड़ दो। इस तरह करने पर मध्यमराशि होगी। उसको वाशाङ्कविश्व (१३१) से भाग देने पर अधिमास होता है। अधिमास और उपरितन राशि का योग चान्द्रमास होता है।

#### उपपत्ति ।

से गुराने पर अधिमास होता है, शेष की उपपत्ति स्पष्ट ही है। ४५ और ४६ के क्षेपक की उपपत्ति ग्रन्थ के भ्रन्त में देखें।

चैत्रादि सौर वर्ष में अधिमास शेष मासात्मक चान्द्र होता है उसका चालन लाने की युक्ति यथा---

करूप चान्द्रमास में कल्प सौरमास पाते हैं तो अधिशेष में क्या इस तरह लिब्ध

हैं तो लब्धि न क्षत्रात्मक चालन होगा, उसको ६० से गुगा करने पर घटघात्मक चालन होगा, यथा---

$$\frac{ ? \lor ? = \circ \circ \times \& \times$$
 प्रशे  $\times$  ६०  $=$   $\frac{? \lor ? = \circ \circ \times ? ? \times }{? \lor = ? ? ? \times ? ? ?}$ 

$$\frac{? \lor ? ? ? \times \times ? ? ?}{? \lor = ? ? ? \times ? ?} =$$
 प्रधिशेष । स्वल्पान्तर से सौर वर्षादि में

र्रविका भचक्र २७ नक्षत्र के बरावर होता है इसलिए भचक्र में से ग्रविक क्षेष घटी के तुल्य चालन को घटाने पर चैत्रादि में राश्यादि रिव होता है, यह स्पष्ट है।१-३।

> इदानों त्रैत्रादौ दिनादिकं तिथिध्र वसाधनमाह । रूपेरा रूपरामेः खसायकैस्ताडितो गराो युक्तः। षड्भिवेंदेधे त्या वासरघटिकाविघटिकाः स्यूः ॥ ४ ॥ खखरसलब्धं च गर्गाद् घटिकासु नियोजयेत् तिथिध्र वकाः । रव्यादिकस्तदुदये त्रेत्रादार्वकचन्द्रौ च ॥ ५ ॥

सु. भा.--गणो मासगणो रूपेण १ दिनेन रूपरामै-३१ र्घटोभिः खसायकैर्विघटीभिस्ताडितो दिनादिस्थाने क्रमेगा षड्भि ६ वेंदै -४ घृ त्या १८ युक्तः । गर्गान्मासगर्गात् ख़खरसै ६०० र्यल्लब्धं घटचात्मके फलं तद्घटिकासु नियोजयेत् तदा वासरघटिकाविषटिकाश्चैत्रादौ तिथिध्रुवकाः स्युः। वासरश्च रव्यादिको ज्ञेयस्तदुद्ये च चैत्रादावर्कचन्द्री मध्यमी भवतः। नक्षत्रात्मको रविश्च पूर्वं साधितो दर्शान्ते चैत्रादो तावानेव चन्द्रश्चेति ।

### श्रत्रोपपत्तिः।

एकस्मिन् चान्द्रमासे सावनदिमादि २६। ३१। ५०। ६ सप्ततष्ट जातम् =१।३१।५०।६=१।३१+ हुन्।५०। अनेन मासगराो गुरिएतो ग्रन्थारम्भ-क्षेपयक्तोऽभाष्ट्रे चैत्रादौ तिथिध्रुवो भवेदिति स्पष्टम् । क्षेपोपपत्तिर्गन्यान्ते द्रष्टव्या 118-411

हि. भा.—मास समूह को १ दिन, ३१ घटी, ५० विघटी से गुणा करो। दिन स्थान में क्रम से ६, ४, १८ जोड़दो। मास समूह को ६०० से भाग देकर जो लब्धि होगी उसको घटी में जोड़दो। तब दिन, घटी, विघटी, चैत्रादि में तिथि का घ्रुवा होता है। रिव मादि दिन जानना चाहिये, उसके उदयकाल अर्थात् चैत्रादि में सूर्य तथा चन्द्रमा मध्यम होता है, नक्षत्रात्मक सूर्य को पहले साधन कर बुके हैं, श्रमावस्या के श्रन्त में चैत्रादि में उतना ही चन्द्रमा होता है।

#### उपपत्ति ।

### इदानीं चन्द्रकेन्द्रसाधनमाह

# मासगराो यमगुरिगतः पृथक् कुतत्त्वोद्धृतः फलसमेतः । सार्थाष्ट्रपुतो वसुयमविभक्तशेषो विघोः केन्द्रम् ॥ ६ ॥

सु. भा. — यम-२ गुणितो मासगणः पृथक् स्थाप्यः कुतत्त्व २५१ भक्तः पृथक्स्थः फलेन सहितः कार्यस्ततः सार्घाष्टयुतः। योगो वसुयमे-२८ विभक्तः शेषश्चन्द्रस्य केन्द्रं भवति।

## भ्रत्रोपपत्तिः ।

एकस्मिन् चन्द्रकेंन्द्रभगरो वसुयमा २८ विभागाः कृताः । तद्विभागजातीय-मेव केन्द्रमत्र साध्यते ।

कल्पे चन्द्रभगगाः=५७७५३३००००० चन्द्रोच्चभगगाः=४८८१०५८५८

केन्द्रभगगाः = ५७२६५१६४१४२

एते कल्पचान्द्रमासभक्ता जातमेकस्मिन् चान्द्रमासे भगगात्मकं केन्द्रम् == = ५७२६५१९४१४२ = १ + ३८३१८९४१४२ । ५३४३३३०००० ।

श्रत्र प्रयोजनाभावाद्भगणं त्यक्त्वा भगगाशेषं वसुयमैः संगुण्य हरेग् विभज्यलब्ध-मभीष्टभागात्मकं केन्द्रमेकस्मिन् चान्द्रमासे=२ $+\frac{१०६६०८९१×४}{१३३५८३२५०००×४}$ २+  $\frac{२}{२५१}$ 

स्वल्पान्तरात् । सार्धाष्टसंख्या ग्रन्थारम्भे क्षेपमानं तदुपपत्तिश्च ग्रन्थान्ते द्रष्टव्या ग्रत उपपन्नं केन्द्रानयनम् ॥६॥

हि. भा — दो से पुरिएत मास समूह को दो स्थान में रखो, एक स्थान में २५१ से भाग दो, लिब को दूसरे स्थान में जोड़ दो, फिर उसमें दें जोड़ दो, उस योग में २६ से भाग दो, जो शेष होगा वह चन्द्रमा का केन्द्र होता है।

# उपपित्ति ।

एक चन्द्रभगरा को २८ से विभाग करने से तत् विभागजातीय केन्द्र यहां साधन करते हैं।

# इदानीमिष्टमासादौ रव्यानयनमाह।

# चैत्रादिमासगुरिगते हे नक्षत्रे क्षिपेत् सहस्रांशौ । घटिककादशयुक्ते सार्थेन फलेन सहित चैं।। ७॥

सु. भा — द नक्षत्रे घटिकैकादशयुक्तें सार्धेनैंकेनं प्लेने रेहिते च चैत्रादितो ये गतचान्द्रमासास्तेर्गुं िएते चैत्राद्युद्भवरवी फलं क्षिपेत् तदेष्टमासादौ नक्षत्रादिको रविभवत् ।

अत्रोपप्त्तः कल्परविभगगाः=४३२०००००० । सप्तविशतिगुगाः कल्पचन्द्रिमास-५३४३३२०००० भक्ता जातमेकस्मिन् चान्द्रमासे नक्षत्रात्मकं रिविमानम् = ४३२००००००×२७ १४४००×२७ १४४००×२७ १४४०० १७८१११

 $=\frac{3\pi \pi \pi \circ \circ}{89 \times 88} = \frac{3849 \times 5}{89 \times 88}$  शेषं षष्ट्यागुर्गं हरभक्तमेवं नक्षत्रादिकं रिवमानम्  $=818014 \times 10^{12}$  स्वल्पान्तरात् ।

तद्रूपान्तरम् =  $\frac{\pi}{1}$ ।  $\frac{\pi}{\xi\xi}$  —  $\left(\frac{\xi}{\xi}\right)$  प. । इदिमिष्टमासगुर्गं तज्जो नक्षत्रादिको रिवर्भवेत् । शेषोपपित्तः स्फुटा ॥ ॥

हि भा-—दो नक्षत्रों में ११ घटी जोड़ दें, ग्रौर १ — है पल घटादें, चैत्रादि से जो गत चान्द्रमास हो उससे गुएगा दें, फल को चैत्रादि में उत्पन्न सूर्य में जोड़ दें, वह इष्ट-मासादि में नक्षत्रादिक रिव होता है।

#### भ्रत्रोपपति:

एक कल्प में सूर्य भगरा = ४३२००००००। एक कल्प में चान्द्रमास = ५३४३३३०००००।

यहां कल्प सूर्य भगरा को २७ से गुरााकर कल्प चान्द्रमास से भाग देने पर एक चान्द्रमास में नक्षत्रात्मक रिव का मान

$$= \frac{\sin 2 i \sin 3}{\sin 3} = \frac{\sin 3 i \sin 3}{\sin 3} = \frac{$$

कोष को ६० से गुएगाकर हर से भाग देने पर नक्षत्रादिक रिव का मान=२। १०।  $\frac{1}{2}$  स्वल्पान्तर से। इसका रूपान्तर =  $\frac{\pi}{2}$ ।  $\frac{\pi}{2}$ —  $\left(2+\frac{2}{2}\right)$  प, इसको इष्ट-मास से गुएगाकर फल नक्षत्रादिक रिव होता है। यहां भवशेष की उपपत्ति स्पष्ट ही है।

इदानीं प्रतिमासं शशिकेन्द्रतिथिध्युवस्रेपावाह।

नाडचर्षेन समेतं भद्वितयं प्रक्षिपेच्च शिशिकेन्द्रे । रूपं रूपहुताशाः खशराश्च तिथिश्रु वे क्रमशः ।। द ।।

सुः माः —प्रतिमासं शशिकेन्द्रे नक्षत्रद्वितयं नाडचर्घेन सहितं तिथि ध्रुवे च कमशो दिनादौ रूपं १ रूपहुताशाः ३१ खशराश्च ५० इति प्रक्षिपेत् ।

अत्रोपपत्तिः । ६ क्लोकेनैकस्मिन् चान्द्रमासे शशिकेन्द्रमानम् २ + २५१

२ न + १ घ स्वल्पान्तरात्। ग्रत्रं कस्मिन् भचके ग्रष्टाविशति नक्षत्राणि किल्पतानीति शिशकेन्द्रानयन एव प्रतिपादितम्। तिथिध्नुवक्षेपमानं च सप्ततष्टं चान्द्रमाससावनमानं दिनादि १।३१।५० स्फुटमेव। ग्रत्राधिकं ६ विपलमानं त्यक्तं पलात्मकमानपर्यन्तमेव गणिते ग्राह्मात्वादिति स्फुटम् ।।८।।

हि. भा. —प्रति मास शशि केन्द्र में ग्राधा नाड़ी से युक्त दो नक्षत्र युक्त करो । एवं तिथिध्वा में क्रम से १, ३१, ५० युक्त करो ।

#### उपपत्ति ।

६ इलोक के अनुसार एक चान्द्रमास में चन्द्रमा का केन्द्रमान  $= 2 + \frac{2}{2 \times 2}$ =  $2 + \frac{8}{2}$  घ, स्वल्पान्तर से ग्रहण किया।

यहां एक भचक में २८ नक्षत्र की कल्पना की गई है, और चन्द्रमा का केन्द्रानयन भी कहा गया है, तिथि ध्रुव क्षेप मान को सात से शेषित करने पर चान्द्र मास सावन मान दिन १। ३१। ५० होता है, यह स्पष्ट है गिएत में पलमान का ही ग्रहण होता है इसलिये यहां ग्रियक ६ विपलमान को छोड़ दिया है।

# इदानीं प्रतिदिनचालनमाह।

# चारं दद्यात् प्रतिदिनमब्धिपलोनां परित्यजेत् नाडीम् । केन्द्रे क्षिपे द्रमेकं भद्वितयफलं घटीचतुष्कमिते ॥ ६ ॥

सु० भा० — प्रतिदिनं प्रतिचान्द्रदिनं तिथिध्युवे दिनमेकं दद्याद्योजयेत्। अब्धिपलोनामेकां नाडीं च परित्यजेत्। शशिनः केन्द्रे च प्रतिचान्द्रदिनमेकं मं नक्षत्रं घटीचतुष्कमितं भूतत्त्वफलं घटीचतुष्कं भूतत्त्व २५१ हृतं फलं घटचात्मकं च क्षिपेत्।

भत्रोपपत्तिः । त्रिंशत्तिथ्यात्मके चान्द्रमासे सावनदिनादि २६।३१।५० इदं त्रिंशद्भक्तं जातमेकस्मिन् चान्द्रदिने तिथिध्रुवे क्षेपकमानम्  $=\frac{29.32150}{30}=0.15$ । एवमेकस्मिन् चान्द्रमासे शिक्षकेन्द्रं नक्षत्रात्मकम्  $=30\frac{2}{29}$ ।

(६ सूत्रे भगगात्मक केन्द्रं २ संगुष्य नक्षत्रात्मक यदि क्रियते तदा

३० र् समुत्पद्यते) इदं त्रिशद्धृत्तं जातमेकस्मिन् चान्द्रदिने केन्द्रे क्षेपकमानम्

$$= \frac{\frac{2}{30 + 2 \times 2}}{\frac{2}{30}} = 2 + \frac{2}{30 \times 2 \times 2} = 2 + \frac{2 \times 60}{\frac{2}{30 \times 2 \times 2}} = 2 + \frac{2}{2 \times 2} = 2 + \frac{2}$$

भद्वितयेन भद्वितयमानेन १२० घटिकामितेन हृते घटीचतुष्किमिते यत्फलं घटचात्मकं तदिप क्षिपेदित्येके 'भद्वितयफलं घटीचतुष्किमिते' इति पाठानु-सारेगा व्याख्यां कुर्वन्ति । अनेन '२५१' स्थाने १२० इयं स्थूला सङ्ख्योत्पद्यतेऽत एव मया पाठान्तरमुपनिबद्धम् ।६॥

हि. भा:—हर चान्द्रदिन के तिथि ध्रुवा में एक दिन युक्त करें श्रीर चार पल कम एक नाड़ी घटा दें। चन्द्रकेन्द्र में, प्रति चान्द्र दिन में से एक नक्षत्र श्रीर ४ घटी को २५१ से भाग देने पर जो फल मिले वह युक्त करना चाहिये।

#### उपपत्ति ।

इस तरह एक चान्द्रमास में चन्द्रकन्द्र नक्षत्रात्मक == ३०  $+\frac{2}{248}$ । ६ व्लोक से भगगात्मक केन्द्र को २८ से गुगाकर नक्षत्रात्मक यदि करते हैं तब (३० $+\frac{2}{28}$ ) यह उपपन्न होता है। इसको तीस से भाग देने पर एक चान्द्र दिन में केन्द्र क्षेपक मान

भद्वितयेन अर्थात् १२० घटी के मान से हृत चार घटी का जो फलघटघात्मक हो बह भी जोड़ दें यह किसी का मत है। दो नक्षत्र का फल चार घटी में जोड़ दें यह पाठ के अनुसार व्याख्या करते हैं, इससे २५१ की जगह १२० यह स्थूल संख्या उपपन्न होती है। इसलिये मैंने पाठान्तर कर दिया है।

# इदानीं देशान्त्ररसंस्कारमाह ।

# उज्जियनी याम्योत्तररेखायाः प्राग्धनं क्षयः पश्चात् । योजनषष्ट्रचा नाडी चरदलमिप सौम्यदक्षिगायोः ॥ १० ॥

सु. भा.—योजनषष्टचं का नाडी उज्जयिनी याम्योत्तररेखायाः प्राग्धनं पदचात् क्षयो भवति । एवं सौम्यदक्षिणयोर्गोलयोदचरदलं चरासवोऽपि धनं क्षयदच क्रमेण बोध्या इति ।

अत्रोपपत्तिः । यदि स्पष्टभूपिरिधियोजनैः षिष्टिघिटिकास्तदा देशान्तरयोजनैः कि जाता देशान्तरनाडी  $=\frac{\xi\circ \bar{\mathbf{q}}}{\xi \mathbf{q}}$ । ग्राचार्येण स्थूलस्पष्टभूपिरिधिः = ३६०० योजनानि गृहीतः । ततो जाता देशान्तरनाडिका  $=\frac{\bar{\mathbf{q}}}{\xi\circ}$ । घनर्णवासना चरधनर्णं-वासना च गोलयुक्त्या स्फुटा ॥१०॥

हि. भा. — उज्जयिनी याम्योत्तर रेखा से षष्टि योजन पूर्व में एक नाड़ी घन तथा पश्चिम में एक नाड़ी ऋगा होता है। इसी तरह उत्तर दक्षिण गोल में चरदल तथा चरासु भी कम से धन तथा ऋगा होता है।

#### उपपत्ति ।

स्पष्ट भूपिरिधि योजन में ६० घटी मिलता है तो देशान्तर योजन में क्या इस ध्रनु-पात से देशान्तर नाड़ी =  $\frac{ ६० <math>\times$  देयो }{ स्पभूप } । यहां ध्राचार्य ने स्थूल स्पष्ट भूपिरिधिः ३६०० योजन स्वीकार किया है ।

म्रत:  $\frac{\mathbf{e} \cdot \mathbf{x} \cdot \mathbf{a}}{\mathbf{e} \cdot \mathbf{x}} = \mathbf{e} \cdot \mathbf{e}$ 

= देयो = देशान्तर नाड़ी। इसकी धन और ऋएा की युक्ति गोलाध्याय में स्पष्ट है।

इदानीं चन्द्रसाधनमौदियकरिवसाधनं चाह ।

तिथयो दशभागोना रविग्णा समन्विता शशी भवति मध्यः । तिथ्यंशार्देखाः शोध्यास्तिथिभोगजनाडिकाः केन्द्रात् ॥ ११ ॥ ध

तिथयो दशभागोना रिवणा सिहताः शशी भवति मध्यः ।
 तिथिभोगनाडिकाश्च द्विगुर्गोडुह्ता रवेः शोध्याः ।।

सु. भा.—स्वदशभागोनास्तिथयो नक्षत्रात्मकं रिवचन्द्रयोरन्तरं भवति । ता रिविशा नक्षत्रात्मकसूर्येश सिहता नक्षत्रात्मको मध्यः शशी भवति । तिथिभोगनाडिका द्विगुशा उडु २७ हृताः फलं नक्षत्रघटिका भवन्ति । ता रवेः शोध्यास्तदा नक्षत्रादिको रिवरुदये भवति ।

अत्रोपपत्तिः। तिथौ तिथौ रिवचन्द्रयोद्घित्शभागा ग्रन्तरमतस्तिथयो द्वादशगुणा भागात्मकः रिवचन्द्रयोरन्तरम् = १२ ति । चक्रांशै सप्तिवंशितनिक्षित्र त्राणि तदेष्टान्तरेण १२ित ग्रनेन िकम् । जातं नक्षत्रात्मकमन्तरम् =  $\frac{20 \times 22}{350}$  ति श्रु ति श्रु

ग्रत उपपन्नो मच्छोधितः पाठः ॥११॥

हि. मा. — अपने दसवें भाग से हीन तिथि नक्षत्रात्मक रिवचन्द्रान्तर के बराबर होती है, उसको नक्षत्रात्मक सूर्य में जोड़ने से मध्यमचन्द्र होता है। दिगुिएत तिथिभो- गक नाड़ी को २७ से भाग देने पर लब्बि नक्षत्र की घटी होती है, उस नक्षत्र घटी को रिव में घटाने से उदयकालिक नक्षत्रादिक रिव होता है।

#### चपपत्ति ।

रिव चन्द्रमा के अन्तर को १२ से भाग देने पर एक तिथि का मान होता है— इसलिये १२×ति — अंशात्मक रिवचन्द्रान्तर,

इस तरह तिथि के अन्त में रिव और चन्द्र हुए। तिथ्यन्त सूर्योदय के बीच तिथि भोग नाड़िका से सम्बन्धित नक्षत्रात्मक चालन को सूर्य में से घटाने से उदयकाल में सूर्य होता है। तिथि भोग घटी तो सावन होता है, यह प्रसिद्ध ही है। एक सावन दिन में रिव की गित =  $\frac{3486}{60 \times 600}$ ।

सुधाकरद्विवेदी का संशोधित पाठ उपपन्न हुग्रा ।।११॥

इदानीमौदयिकार्थं चन्द्रस्य तत्केन्द्रस्य च चालनमाह ।

तिथिभोगनाडिकासु द्विगुरा। रसगुराोद्धताः शोध्याः । पंचाशीत्यधिकोनास्तिथिनाडघः शोधयेत् शशिनः ॥ १२॥ ।

सु. मा.-स्पष्टार्थेयमायी।

ग्रत्रोपपत्तिः । रिवचालनवदत्रापि चन्द्रगितः =७१०'।३५" =४७४३५" । नक्षत्रात्मिकागितः =  $\frac{४७४३५}{६० \times ६००}$ ।

अतो रिववन्नक्षत्रघटघात्मकं चालनं  $\frac{80834}{50\times200\times50} = \frac{80834}{50\times200\times50} = \frac{80834}{50\times200} = \frac{80834}{50\times2000} = \frac{80834}{50\times20000} = \frac{80834}{50\times20000} = \frac{80834}{50\times20000} = \frac{80834}{50$ 

पञ्चाशीतिलवोनास्तिथिनाडचस्ताश्च शोधयेच्छशिनः । षष्टचं शाढ्याः शोध्यास्तिथिभोगजनाडिकाः केन्द्रात् ।।१२।।

 $=\frac{7\xi ? 3 \times 9}{\xi \circ \times 300} = \frac{29? \times 9}{\xi \circ \times 200} = \frac{\xi \circ 89}{\xi \circ 00}$ । (यतश्वकेन्द्रसाधने चक्रकलास्वष्टाविंशतिनक्षत्रागाि कित्पतािन)। ततो रिववन्नक्षत्रघटचात्मकं चालनम्  $=\frac{\xi \circ 89}{\xi \circ 00} = \frac{\xi \circ 89}{\xi \circ 00} = \frac{1}{1}$  मोध  $+\frac{89}{\xi \circ 00} = \frac{1}{1}$  मोध  $+\frac{1}{\xi \circ 00} = \frac{1}{1}$  स्वल्पान्तरात्। इहाचार्येगा सुखार्थं ६२ स्थाने ६० ग्रहीता ग्रत उपपद्यते मच्छोधितः पाठः।।१२॥

हि. मा. - इसका ग्रर्थ स्पष्ट ही है।

#### उपपत्ति ।

यहां चन्द्रगति:=७६०'। ३५" म्रत: विकलात्मक चंग=४७४३५" नक्षत्रात्मकगति

 $= \frac{80834}{$50 \times 500} \cdot 1 \text{ यहां रिव की तरह नक्षत्रघट्यात्मक चालन} = \frac{80834 \times \text{मोध} \times 50}{$50 \times 500 \times 50}$   $= \frac{80834 \text{ मोध}}{$50 \times 500} = \frac{8850 \text{ Hiu}}{$50 \times 500} = \frac{8850 \text{ Hiu}}{$50 \times 500} = \frac{8850 \text{ Hiu}}{$50 \times 500} = \frac{89038 \times 500}{$50 \times 500} = \frac{89038 \times 500}{$50 \times 5000} = \frac{89038 \times 5000}{$50 \times 5000} = \frac{8903$ 

इससे उपपन्न होता है म. म. श्रीसुधाकर द्विवेदी जी का संशोधित प्रकार ।।

# इदानीं रविचन्द्रकेन्द्राणां राशिमानमाह।

त्रिगुर्गं सप्तविभक्तं नगाद्रयोऽ'शा रवेरुच्चम्।
विकलाष्ट्रकसंयुक्ता नवबार्गा लिप्तिका ४९।८ रवेर्भुंक्तिः ॥ १३ ॥'
विकलाष्ट्रकसंयुक्ता नवबार्गा लिप्तिका ४९।८ रवेर्भुंक्तिः ।
खनवनगाः शीतांशोः पंचित्रशिद्धिलिप्ताश्च ॥ १४ ॥
स्वोच्चोनं केन्द्रमितो नवभिलिप्ताशतैस्ततो जीवाः ।
विषमे भुक्तस्य समे भोग्यस्य सदैव केन्द्रपदे ॥ १४ ॥'

सु. भा.—नक्षत्रात्मकौ रिवचन्द्रौ वेद ४ गुगाौ नव ९ भक्तौ तदा राज्यादिकौ भवतः। चन्द्रकेन्द्रं च त्रिगुगां सप्तहृतं राज्यादि भवेत्। नविभिनिष्ताज्ञतैराचार्येगा षोड्यार्ययैकैका जीवा पिठता। स्रतः केन्द्रान्नविभिनिष्ताज्ञतैस्ततो जीवाः साध्या इत्युक्तम्। विषमे केन्द्रपदे भुक्तस्य समे च सदैव भोग्यस्य जीवा कार्या। ज्ञेषं स्पष्टार्थम्।

### भ्रत्रोपपत्तिः।

यदि सप्तविश्वतिनक्षत्रैद्वदिश राशयस्तदा नक्षत्रात्मकेन रिविणा वा चन्द्रेण किम्। एवं द्वादशगुणः सप्तविश्वतिर्भागहारः। गुणहरौ त्रिभिरपर्वात्ततौ जातौ गुणः ४। हरश्च ९। केन्द्रराश्यानयने चक्रकलास्वष्टाविश्वति नक्षत्रात्मक विभागस्वात् । यदि वसुयमै २८ नंक्षत्रैद्विश राशयस्तदा नक्षत्रात्मककेन्द्रेण किम्। अत्र गुणभागहारौ चतुभिरपर्वात्ततौ। जातो गुणः ३। हरः ७। श्रत उपपन्नं सर्वम्। शेष वासना चातिसरला ॥१३-१४॥

हि. भा—नक्षत्रात्मक चन्द्ररिव को ४ से गुर्गाकर ६ से भाग देने से राध्यादिक चन्द्र भ्रीर रिव होता है। चन्द्र केन्द्र को ३ से गुर्गाकर ७ से भाग देने पर राध्यादि केन्द्र होता है। ६०० कला पर एक जीवा पठित है इसलिये केन्द्र से ६०० कला पर से जीवा साधन करने के लिये श्राचार्य ने कहा है। विषम केन्द्रपद में भुक्तांश पर से तथा समकेन्द्रपद में भोग्यांश पर से जीवा साधन करना चाहिये। शेष शब्दों का श्रर्थ स्पष्ट ही हैं।

# उपपत्ति ।

२७ नक्षत्र में बारह राशि होती हैं वहां नक्षत्रात्मक सूर्य या चन्द्र में कितनी राशियां होंगी, इस तरह यहां १२ तो गुराक श्रौर २७ भागहार होता है । गु—१२, हर—२७ यहां

१. रिवचन्द्रौ वेदगुराौ नन्दिवभक्तौ गृहादिकौ केन्द्रम् ।त्रिगुरां सप्तिवभक्तं नगाद्रयोऽ'शा खेरुच्चम् ॥१३॥

गुण श्रौर हर को ३ से श्रपवर्त्तन करने पर गु=४ हर=६ । केन्द्रराशि के श्रानयन में चक्रकाल में नक्षत्रात्मक २८ भाग माना गया है । इसिलये श्रनुपात से  $\frac{१२ \ \text{रा} \times \text{न.केन्द्रमें}}{26}$  = तत् सम्बन्धी राशि का, यहां गुणभाग को ४ से श्रपवर्त्तन करने पर गुण=३ । हर =७ । इससे उपपन्त हुश्रा ।।१३-१४।।

इदानीं ज्याखण्डानि केन्द्रज्यासाधनं चाह।

त्रिश्चत्सनवरसेन्द्रुजिनितिथिविषया गृहार्घचापानाम् । ग्रर्घज्याखण्डानि ज्याभुक्तं क्यं सभोग्यफलम् ॥ १६॥ गतभोग्यखण्डकान्तरदलविकलवधाच्छतेर्नवभिराप्तेः । तद्युतिदलं युतोनं भोग्यादूनाधिकं भोग्यम् ॥ १७॥

सुः भा.— त्रिंशत् नविभः षड्भिरिन्दुना सिंहता ३९।३६।३१ जिन २४ तिथि १५ विषया ५३च गृहार्धचापानां पश्चदशभागानां ज्याखण्डानि सिन्त । चापकला-नवशतैविभक्ता फलसंख्यासमाना ज्यार्धानामैक्यमेव ज्याभुक्तैक्यं ज्ञेयम् । शेषकला भोग्यखण्डेन गुणा नवशतैर्भक्ताः फलमेव भोग्यफलं ज्ञेयम् । ज्याभुक्तैक्यं भोग्यफलेन सिंहतमभीष्टज्या भवति । अत्र स्फुटाद्भाग्यखण्डाज्ज्या सूक्ष्माऽन्यया स्थूला भवति । सूक्ष्मं भोग्यखण्डं कथं सिध्यतीत्याह गतभोग्येति । गतभोग्यखण्ड-योरन्तरस्य दलमधं कार्यम् । तस्य विकलस्य शेषस्य च वधात् नविभः शतैर्यानि ग्राप्तानि तैस्तद्युतिदलं गतैष्यखण्डयोगदलं युतं कार्यं यदि तद्युतिदलं भोग्याद्विकं तदा तैराप्तैस्तद्युतिदलमूनं कार्यम् । कमज्याकरणे हीनमुत्क्रमज्या करणे युतं तद्युतिदलं कार्यं, तदैव तद्युतिदलस्य भोग्यादिषकाल्पत्वादिति । 'यातैष्ययोः खण्डकयोविशेषः' इत्यादि भास्करोक्तमेत-दनुरूपमेव । भास्करेण खार्कं १२० मितेहाचार्येण च खितिथ – १५० मिता त्रिज्या गृहीता।

म्रत्रोपपत्तिः ।

यदि ६००=प्र। ज्याप्र==३६। चापम्=इ.प्र+शे। ज्या (इ.प्र)=ज्याग, तत्कोटिज्या च = कोज्याग।
तदा ज्योत्पत्तिविधिना ज्याचा =  $\frac{\overline{\sigma}$ याग.कोज्याशे + ज्याशे.कोज्याग ...१ त्रि
गतखण्डम् = ज्याग—ज्याग (ग—प्र)
एष्यखण्डम् = ज्या (ग+प्र)—ज्याग
तद्युतिदलम् =  $\frac{\overline{\sigma}$ या (ग.प्र)—ज्या (ग—प्र) =  $\frac{\overline{\sigma}$ या.प्र.कोज्याग ।

तदन्तरदलम् = 
$$\frac{2 \text{ ज्याग} - \{\text{ज्या }(\eta + y) + \text{ज्या }(\eta - y)\}}{2}$$
=ज्याग -  $\frac{\text{ज्याग. कोज्याप्र}}{\pi}$  =  $\frac{\text{ज्याग. उज्याप्र}}{\pi}$ 

$$\text{ज्याशे} = \frac{\text{ज्याप्र. शे}}{y}$$
स्वल्पान्तरात् ।
$$\text{कोज्याशे} = \sqrt{\frac{\pi^2 - \text{ज्या }^2 y. \hat{n}^2}{y^2}}$$
= $\pi - \frac{\text{ज्या}^2 y. \hat{n}^2}{2 \pi y^2}$  स्वल्पान्तरात् ।

# (१) समीकररोऽनयोरुत्थापनेन-

ज्याचा = 
$$\frac{\sigma u i i}{\pi}$$
.  $\frac{(\pi - \frac{\sigma u i^3 x \cdot 2i^4}{2 \pi x^3})}{\pi}$  +  $\frac{\pi i \sigma u i i x \cdot \sigma u i x \cdot 2i}{\pi x x}$  =  $\frac{\sigma u i i x \cdot \sigma u^3 x \cdot 2i^4}{2 \pi x^3 x^3}$  +  $\frac{\pi i \sigma u i i x \cdot \sigma u i x \cdot 2i x}{\pi x x}$  =  $\frac{\pi i \sigma u i i x \cdot \sigma u i x \cdot 2i x}{\pi x x}$  =  $\frac{\pi i \sigma u i i x \cdot \sigma u i x}{\pi x}$  =  $\frac{\pi i \sigma u i i x \cdot \sigma u i x}{\pi x}$  =  $\frac{\pi i \sigma u i x}{\pi x}$ 

ग्रत्र कोष्ठान्तर्गतसंख्या यदि भोग्यखण्डं स्फुटं कल्प्येत तर्हि ज्याचा—ज्याग

<u>को.स्फुभोखं</u> । ग्रत इदं सूक्ष्मं भोग्यफलं ज्याभुक्तं क्ये गतज्यामिते योज्यं
प्र
तदा वास्तवासन्ना सूक्ष्मज्या स्यात् । एतेन भास्करोक्तमुपगद्यते । उत्क्रमज्याकरणे
भोग्यखण्डस्योपचयात् क्षयस्थाने धनं भवतीति स्फुटम् । जीवातक्चापानयने भोग्यखण्डस्फुटीकरणं च भास्करिविधना ज्ञेयम् । तत्रैव बापूदेवशास्त्रिकृतं गौरवाननं
च विचिन्त्यमिति ॥१६-१७॥

हि. भा-तीस में क्रम से ६, ६, १ युक्त करने पर ३६, ३६, ३१ हुआ। २४। १४ । १४ यह गृहार्घ चाप का पश्चदशभाग ज्याखण्ड है, चाप कला को ६०० सौ से भाग देने पर लब्धि के बराबर ज्यार्घ खण्ड के योग को ही ज्या का भुक्त क्य जानना चाहिये। ज्याभुक्त क्य श्रौर भोग्यफल का योग == इष्टज्या। यहां स्फुटभोग्यखण्ड से ज्या साधन सूक्ष्म होता है। श्रन्य प्रकार से स्थूल होता है।

# ग्रब सूक्ष्म भोग्यखण्ड की युक्ति को कहते हैं।

व्यतीत दो भोग्यखण्ड के अन्तर को आधा करो । उसके और शेष के गुरानफल में (६००) से भाग देने पर जो फल मिले उस को गतैष्यखण्ड के योगदल में जोड़ दो, यदि युतिदलभोग्य खण्ड से अल्प हो । यदि योगदल भोग्यखण्ड से अधिक हो तो उसे योग दल में से घटा दो । क्रमज्या प्रकार में घटावें, और उत्क्रमज्या प्रकार में जोड़ दें । 'यातैष्ययोः खण्ड-कयोर्विशेष' इत्यादि भास्करोक्त इसके अनुरूप ही है। भास्कराचार्य के मत में १२० = त्रिया। आचार्य के मत में १५० = त्रिया।

#### उपपत्ति ।

यदि १०० = प्र । ज्या.प्र = ३१ । चापम् = इ.प्र + शे । ज्या (इ.प्र) = ज्यागा । इसकी कोटि = कोज्यागा ।

## दोनों का योग दल।

योदयो = 
$$\frac{\neg a_1 (y+y) - \neg a_2 (y-y)}{2} = \frac{\neg a_1 x \times \Rightarrow \neg a_2 x$$

$$= \left( \pi = \frac{\sqrt[3]{3}}{\sqrt[3]{3}}, \frac{\pi}{\sqrt[3]{3}} \right)$$
 स्वल्पान्तर से ।

(१) एक समीकरण में उत्थापन देने से-

ज्याग (त्रि — ज्या
$$^3$$
.प्र.शे $^3$  ज्यचा =  $\frac{7 \, \mathrm{fa.y}^3}{\mathrm{fa}} + \frac{\mathrm{ah}\,\mathrm{ज्याग.}\,\mathrm{ज्या}\,\mathrm{y.}\,\mathrm{श}}{\mathrm{fa.y}}$ 

$$= \frac{\Re}{\pi} \left( g_{\overline{q}} - \frac{\Im q_{\overline{q}} - 2 \Im q_{\overline{q}}}{\pi} \right)$$

$$= \frac{\imath}{x} \left( y_{\mathsf{q}} - \frac{\mathsf{q}_{\mathsf{q}} \cdot \imath}{x} \right)$$

यहां कोष्ठ के घ्रन्तर्गत को यदि भोग्यखण्ड स्फुट मानते हैं तो ज्याचा—ज्याग = श.स्फुभो खं । इस सूक्ष्म भोगफल को गतंज्या में जोड़दें तब वासवासन्त सूक्ष्मज्या प्र होती है। इससे भास्करसूत्र उपपन्न होता है।

# इदानीं रविचन्द्रयोर्मन्दफलानयनमाह ।

स्वाष्ट्रांशोना सवितुद्धिगुणा ज्या शोतगोः फल लिप्ताः । स्वफलमुणं चक्रार्थादुने केन्द्रे ऽधिके मध्ये ॥ १८॥

सु. भा-सिवतुः सूर्यस्य केन्द्रज्या स्वाष्टांशोना । शीतगोश्चन्द्रस्य च केन्द्रज्या द्विगुणा तदा तयोः क्रमेण लिप्तात्मकं मन्दफलं भवति । केन्द्रे चक्रा-र्घात् षड्राशित ऊने मध्ये स्वफलं स्वमन्दफलमृणं कार्यम् । ग्रिधिके तुलादिकेन्द्रे मध्ये धनं कार्यमित्यर्थत एव सिध्यति ।

### ग्रत्रोपपत्तिः ।

रविपरममन्दफलकलाः = १३०६ स्वल्पान्तरात् । चन्द्रस्य च ३०० कलाः । ततोऽनुपातो यदि त्रिज्यातुल्यकेन्द्रज्यया परममन्दफलकलास्तदेष्ट केन्द्रज्यया कि

जाता रिवमन्दफलकलाः = 
$$\frac{१३० \frac{9}{5} \times 5 \times 21 + 8}{240}$$
,  $\frac{(१३० \times 5 + 8) 5 \times 21 + 8}{240 \times 2}$ 

हि. भा.— रिव की केन्द्रज्या में से श्रपना अष्टमांश घटा दो, श्रीर चन्द्रकेन्द्रज्या को दो से गुर्गा करो । दोनों का लिप्तात्मक मन्दफल होता है । केन्द्र ६ राशि में कम हो तो मन्दफल को मध्यम में से घटा दें । जहां केन्द्र दो राशि से श्रधिक हो वहां मन्दफल को मध्यम में जोड़ दो, यह बात मूलोक्त में स्पष्ट ही है ।

#### उपपत्ति ।

रविपरममन्दफलकाला = १३० + है स्वल्पान्तर से चन्द्रमा का मन्दफलका = ३०० कला। तब अनुपात से—

रिवमन्दफलक 
$$=$$
  $\frac{१३० \frac{1}{2} \times \overline{\text{ज्याक}}}{१५०} = \frac{(१३० \times \varsigma + 8) \overline{\text{ज्या क}}}{१५० \times \varsigma}$ 

$$=$$
  $\frac{१ \circ 88 \text{ ज्याके }}{8 \times 8} = \frac{\text{ज्याके } 6}{5}$  स्वल्पान्तर से, एवं चन्द्रमन्द फलकला  $=$   $\frac{3 \circ 9 \text{ ज्याके}}{8 \times 8}$ 

== २ ज्या के । इससे उपपन्न हुमा ।।१८॥

# इदानीं रविचन्द्रयोगंतिफलसाधनमाह।

# नगमूहृद्रविभोग्यं खण्डं चन्द्रं विवसुलवं द्विगुर्णम् । भुक्तिफलं स्वमृर्णं स्यात् कुलीरमकरादिके केन्द्रे ॥ १६ ॥

सु. भा. केन्द्रज्या करणे रवेर्यद्भोग्यखण्डं तन्नवभू १९ हृद्रवेर्भु क्तिफलं स्यात् । चान्द्रं चन्द्रसम्बन्धि यद्भोग्यखण्डं तद्विवसुलवं स्वाष्टांशोनं द्विगुणां च चन्द्रसुक्तिफलं स्यात् । तद्गति फलं कुलीरमकरादौ केन्द्रे क्रमेण स्वमृणां स्यात् ।

#### ग्रत्रोपपत्तिः ।

प्रथमचापेन नवशतमितेन भोग्यखण्डं तदा केन्द्रगत्या किमिति लब्घमद्यत-

नदवस्तनकेन्द्रज्ययोरन्तरं तेन या मन्दफलकलास्तदेव गतिफलम् ।

तद्यथा रवेः केन्द्रगतिः = ५६'। ५"।।

केन्द्रज्यान्तरम्  $=\frac{(48' | 5") भोखं}{800} | १६ सूत्रेगानेनान्तरेगा मन्दफल-$ 

कला एव रवेर्गतिफलम् = 
$$\frac{9 (49' | 2'') भोख}{2 \times 900} = \frac{9 \times 3485 \times 418}{9700 \times 90}$$
=  $\frac{78235000}{833000} = \frac{918}{90}$  स्वल्पान्तरात्।

एवं चन्द्रस्य केन्द्रगतिः=७६०' । ३५"-६' । ४१"=७८३' । ५४"=७८४' स्वल्पान्तरात्।

ततो गतिफलं पूर्वोक्ते न विधिना

$$= \frac{2 \times 9 \times 8 \times 1}{800} \times + \frac{88 \times 8 \times 1}{224 \times 8}$$

$$= 2 + \frac{88 \times 8 \times 1}{224 \times 9} = 2 + \frac{9 \times 1}{2494}$$

$$= 2 + \frac{88 \times 8 \times 1}{2494} = 2 + \frac{9 \times 1}{2494}$$

=२ + ७ भोख स्वल्पान्तरात्।

श्रत उपपन्नम् । घनर्णवासना भास्करविधिता स्फुटा ।। १६ ।।

हि. मा. - केन्द्रज्या करएा में रिव का जो भोग्यखण्ड है उसको १६ से भाग देने पर रिव का गतिफल होता है। चन्द्र सम्बन्धी भोग्य खण्ड का घाठवां भाग भोग्यखण्ड में से पटाकर शेष को दो से गुर्णा करने पर चन्द्र का गतिफल होता है।

### उपपत्ति ।

पहलाचाप == ६००।

यनुपात से---

भोखं × केग = केंग्र । इस पर जो मन्दफल कला होगा वह गतिफल है।

रिव केन्द्र ग= ५६' द"।

१८ सूत्र से मन्दफलकला = रिवगफ =  $\frac{9(\chi \xi' \mid z'')}{5 \times 6000}$ 

$$=\frac{0 \times 3 \times 3 \times 5 \times 10^{10}}{9700 \times 50} = \frac{78 \times 3 \times 100}{837000} = \frac{100}{80} \times 3 \times 1000 \times 10^{10} \times 1000 \times 10^{10} \times 1000 \times 10000 \times 1000 \times 1000 \times 1000 \times$$

धन तथा ऋगा की युक्ति भास्कर प्रकार से स्पष्ट ही है।

इदानीं चन्द्रे भुजफलसंस्कारं तिथौ फलसंस्कारं चाह । भांशोऽर्कफलस्येन्दौ रिववद्दद्याद्विशोधिते तथा स्वोच्चे । रिवफलिमनवच्च तिथौ चान्द्रे व्यस्तं स्फुटाकिप्तम् ॥ २०॥

सु. भा. — इन्दौ मध्यचन्द्रे ऽर्कफलस्य यो भां २७ शः स रिववह्यः । तथा इन्दौ स्वोच्चे विशोधितेऽर्थाचन्द्रमन्दकेन्द्रे च स रिवफलभांशो रिववह्यः । ततः संस्कृतचन्द्रकेन्द्रात् मन्दफलमानेयं चन्द्रस्येत्यर्थः । इनवद्धनमृणं वा यथा रिवमन्द फलमागतं तच्चान्द्रे चन्द्रमन्दफले व्यस्तं संस्कृतमंशात्मकं फलमकिप्तं द्वादशभक्तं फलं तिथौ देयं तदा स्फुटं तिथिमानं भवेदिति ।

### ग्रत्रोपपत्तिः।

स्फुटाकौदयतश्चन्द्रसाधनार्थं रिवभुजफलसंस्कार ग्रानीतः । तदानयनोपप-त्तिश्च 'भाप्तं च द्युमिणिफलं लवे' इत्यस्य ग्रहलाघवस्य वासनायां मत्कृतोपपत्ति-रवलोक्या । रव्यूनचन्द्रतिस्तिथिसाधनं भवित । अतो मध्यमितिथौ रिवफलोनचन्द्रफलं द्वादशिभिविभज्य संस्कार्यम् । ग्रतो रिवफलव्यस्तसंस्कृतचन्द्रफलं द्वादशहृतिमित्यु-पपद्यत्ते ॥२०॥

हि. भा.— मध्यम चन्द्रमा में रिवफल का २७ वां भाग रिव की तरह जोड़ दें या घटा दें। चन्द्रमा को उच्च में घटाकर जो केन्द्र हो उसमें रिविफल का २७ वां भाग रिव की तरह घन या ऋए। करें। तब संस्कृत चन्द्रकेन्द्र पर से चन्द्रमा का मन्द फल लाना चाहिये। सूर्य की तरह घन या ऋए। जो रिविफल आवे उसको चन्द्र मन्दफल में व्यस्त (उलटा) संस्कार करें। संस्कृत अंशात्मक फल को १२ से भाग दें। लब्धि को तिथि में संस्कार करने पर स्पष्ट तिथिमान होता है।

#### उपपत्ति ।

स्पष्टार्कोदय पर से चन्द्र साधन के लिये रिव का भुजफल संस्कार माना गया है। उस ग्रानयन की उपपत्ति। 'भाष्तं च द्युमिंगफलं' इस क्लोक का ग्राशय सुधाकर कृत ग्रह-लाघव की युक्ति से स्पष्ट ही है। रिव में से चन्द्र घटाकर तिथि साधन होता है। इसलिये रिविफलोन चन्द्रफल को बारह से भाग देकर फल को मध्यमितिथि में संस्कार करने से मूलोक्त उपपन्न होता है।

इदानीं केन्द्रत एव तिथिसंस्कारयोग्यं घटिकात्मकं मन्दफलमाह ।

पंचेषुपंचयुगगुग्गयमचन्द्राञ्चन्द्रकेन्द्रजफलानि । द्विकुभुवखरहितं.....तथा सूर्ये : ...।। २१।।

सुः भाः — एकस्मिन् पादेऽष्टाविशतिनक्षत्रात्मक केन्द्रसंख्या ७ तत्र प्रतिनक्षत्रं चन्द्रमन्दफलघटीभवान्यन्तरखण्डानि पञ्चेषु पञ्चेत्यादीनि । एवं सूर्ये स्वोच्चिवि-रहिते तथैव चन्द्रकेन्द्रवत् केन्द्रे क्रियमाणे प्रतिनक्षत्रं रिवमन्दफलघटीभवान्यन्तर-खण्डानि द्विद्विद्वीत्यादीनि ज्ञेयानि ।

### अत्रोपपत्तिः।

एकस्मिन् चक्रे २८ चन्द्रकेन्द्रभानि पूर्वं कल्पितानि । स्रतो वृत्तपादे नवितभागात्मके सप्त भानि । एकैकस्मिन् भे स्वल्पान्तरतस्त्रयोदशभागाः स्रतः—

भानि = १ २ ३ ४ ५ ६ ७ भागाः = १३ २६ ३९ ५२ ६५ ७८ ६० केन्द्रज्याः = ३४ ५४ ६४ ११७ १३५ १४६ १५०

मंदफल-

कलाः = ६८ १३० १८८ २३४ २७० २९२ ३००

द्वादशहृता

घटिकाः =५।४० १०।५० १५।४० १६।३० २२।३० २४।२० २५।०

अन्तराशाि=५१४० ५११० ४१५० ३१५० ३१० ११५० ०१४०

श्राचार्येगौतेषां स्थाने स्वल्पान्तरात् कमेणै ५।५।१।४।३।२।१ ता श्रन्तररूपा निरवयवघटिका गृहीताः । श्रत्र प्रथमस्थाने महती स्थूला तत्र वस्तुतोऽर्घाधिके रूपं

१. द्विद्विद्विद्व कुभूखान्युच विरिहते तथा सूर्ये ॥२१॥

ग्राह्ममिति नियमेन षड् घटचः समुचिताः । एवं तत्केन्द्रज्यावशतः क्रमेरा रिवमन्द-फलकलाः 'स्वाष्टांशोना सवितु' रित्याचार्योक्तितः ।

मंफक ==३० ५७ ८२ १०२ ११८ १२८ १३१ द्वादशहृता

चटचः = २१३० ४१४५ ६१४० ८१३० ९१४० १०१४० १०१४ अन्तराणि = २१३० २११४ २१४ ११४० ११२० ०१४० ०११४

श्राचार्येर्गैतेषां स्थाने स्वल्पान्तरात् क्रमेर्गे २।२।२।२।१।१।० ता श्रन्तरा-त्मका निरवयवघटिकाः पठिताः ॥२१॥

हि. भा.—एक पाद में २८ नक्षत्रात्मक केन्द्र संख्या = ७, वहां प्रतिनक्षत्र चन्द्र मन्दफलघटी से प्राप्त अन्तरखण्ड 'पञ्चेषु पञ्च' इत्यादि पठित है। एवं सूर्य में सूर्योच्च घटाकर तथा चन्द्र के केन्द्र की तरह केन्द्र बनाने पर प्रतिनक्षत्र रिवमन्दफल घटी से प्राप्त अन्तरखण्ड द्विद्विदीत्यादि के बराबर समभना चाहिये।

#### उपपत्ति ।

एक चक्र में २८ चन्द्रकेन्द्र नक्षत्र कल्पित हैं। इसलिये वृत्त के चातुर्थांश पाद ६० अंश के सात नक्षत्र हैं। हर एक नक्षत्र में स्वल्पान्तर के १३ भाग हैं। ग्रतः

भानि	= ?	२	ą	8	¥	Ę	9
भागाः	= १३	२६	३६	४२	६४	৬=	<i>છ</i> ુ
केन्द्रज्या	=38	६४	६४	११७	१३५	१४६	१५०
मन्दफलकला	== ६८	१३०	१८८	२३४	२७०	२ <b>१</b> २	३००
द्वादशहृताघटि	का=-४५०	१०।५०	१५१४०	१६।३०	२२।३०	२४।२०	२५१०
<b>भ</b> न्तराणि	= \$180	४।१०	४११०	३।५०	३१०	१।५०	०१४०

यहां माचार्य ने इन स्थानों में स्वल्पान्तर से मन्तररूप निरवयव घटी को क्रम से १ । १ । १ । २ । १ महणा किया है। पहले स्थान में बड़ी स्थूलता है। वस्तुतः मर्घाधिके रूपं प्राह्मं इस नियम से ६ घटी समुचित हैं।

इस तरह केन्द्रज्या पर क्रम से 'रिवमन्दफल कला । स्वाष्टांशोना' इत्यादि म्राचार्यं की उक्ति से जानना चाहिये।

== 30 मं. फक ५७ 52 १०२ ११८ १२८ १३१ द्वादशभक्त घटी = २।३० ४।४५ ६।५० 5130 0113 80180 १०।५५ भ्रन्तराशि == २१३० २११५ २।५ 8180 १।३० OIXO ०११५

ग्राचार्यं स्वल्पान्तर से इन सबों के स्थान पर (२।२।२।२।१।११०) इतनी ग्रन्तरघटी स्वीकार की है।

# इदानीं तिथिसाधनमाह।

श्चर्कोनचन्द्रलिप्ताः रवयमस्वरभाजिताः फलं तिथयः। गतगम्ये षष्टिगुरो भुक्तघन्तरभाजिते घटिकाः॥ २२॥

सु. भा--स्पष्टार्थम् । स्पष्टाधिकारेण स्फुटोपपत्तिश्च ॥२२॥

हि. भा.— चन्द्रकला में से रिवकला को घटाकर ७२० से भाग देने से फल तिथि होती है। गत श्रौर गम्य तिथि को ६० से गुर्णाकर गत्यन्तर से भाग देने पर क्रम से गत श्रौर गम्य तिथि घटी होती है।

#### उपपत्ति ।

उपपत्ति स्पष्टाधिकार में कही गई है।

# इदानीं भयोगसाधनमाह ।

भान्यश्विन्यादीनि ग्रहलिप्ताः खखवसूद्भृता लब्धम् । भुक्तिहृते गतगम्ये दिवसाः षष्ट्रचाहते घटिकाः ॥ २३ ॥ रविचन्द्रयोगलिप्ताः खखवसुभिभाजिता फलं योगः । गतगम्ये षष्ट्रिगुगो गतयो निभाजिते घटिकाः ॥ २४ ॥

सु. भा.—स्पष्टार्थम् स्पष्टाधिकारस्य ३३ श्लोकसमा प्रथमार्या । द्वितीयार्थं तन्नेव टीका विलोक्या ।।२३-२४।।

हि. भा.—ग्रह कला को खखवसूद्धृता (८००) से भाग देने पर लब्धि अध्विन्यादि नक्षत्र होता है। गत और गम्य नक्षत्र को साठ से गुएगाकर भुक्ति से भाग देने पर लब्धि क्रम से गत और गम्यघटी होती है। २४ वें स्लोक का अर्थ स्पष्ट ही है।

#### उपपत्ति ।

यहां २३-२४ दोनों श्लोकों की युक्ति स्पष्टाधिकारोक्त ६३ श्लोकों की सु० भा० या वि०भा० देखनी चाहिये।

# इदानीं करगानयनमाह।

# व्यर्केन्दुकला भक्ताः खरसगुर्गौलँब्घमूनमेकेन । चरकररगानि ववादीन्यगताच्छेषात् तिथिवदन्यत् ।। २५ ।।

सु. मा.—ग्रगताद्भोग्यात् । शेषाद्गतात् । ग्रन्यद् भुक्तभोग्यघटिकादिकं तिथिवत्साध्यम् । शेषं स्पष्टार्थम् ॥२५॥

हि. भा.—चन्द्रकला में से रिवकला घटाकर साठ से भाग दें, लिब्ब में से एक घटाकर शेष ववादिचरकरण होता है। तिथि की तरह इसकी गत श्रीर गम्य घटी का साधन करना चाहिये। श्रीर सब बातें स्पष्ट रूप से ज्ञात है।

इदानीं रव्यब्दान्ते भौमादिसाधनमाह-तत्रादौ भौमसाधनम्।

ग्रङ्गे रुद्धेः सिद्धेर्गजैर्यमैरर्कवत्सरान् गुणयेत् । शैलैर्विश्वैगुं णितैरष्टवह्निभियोंजयेद्भौमः ॥ २६ ॥

एते राश्याद्या इष्टसौरवर्षेर्गुंगाः क्षेपयुक्ता ग्रभीष्टसौरवर्षे राश्याद्यो भौमः स्यात् ।

भत्राचींक्तिखितसंख्याभिर्विलोमेन कल्पे कुजभगगाः स्वल्पान्तरात् २२६६-२६७७- एते सिध्यन्ति ।

अङ्ग ६ रुद्रै: ११ सिद्ध २४ गंजै: द सुरैरर्कवत्सरान् गुण्येत् ।
 शैलै ७र्वसुभि: द कुगुणै ३१ रिभाग्निभ ३८ योजयेद्भौम: ।।२६॥

$$=\frac{228622472\times8120}{12000}=286822060$$

स्वल्पान्तरात् । ग्रयं कल्यादिकुजेन रा।२६°।३'।५०" ग्रनेन युतोजातः क्षेपः=रा।८°। ३१'।३८"।।२६।।

हि. भा--व्याख्या स्पष्ट ही है, इस (ग्रङ्गै रुद्रै: सिद्धै) से भौम का साधन किया गया है।

#### उपपत्ति ।

$$=\frac{\varsigma_{\circ\circ\circ\circ}}{\varsigma_{\circ\circ\circ\circ}}=\varsigma_{\circ\circ\circ\circ}+\frac{\varsigma_{\circ\circ\circ\circ}}{\varsigma_{\prime}\varsigma_{\prime}}+\frac{\varsigma_{\circ\circ\circ\circ}}{\varsigma_{\prime}\varsigma_{\prime}}$$

 $= 4 \times 6 \times 6^{n} + 3 \times 7^{n} + 4 \times 7^{n}$ 

यहां पाठ पठित भगए। से तथा कलिगताङ्क ३७२६ इससे विकलात्मक भौम =

न्तर से । एवं कल्पादि भौम ११ रा । २६'।३'। ४०" से गुक्त क्षेप == रा ७ । ५° । ३१' । ३५" इति ।

# इदानीं बुधशीघ्रानयनमाह।

शशिना जिनैः रङ्कैः षड्विह्मिर्भहंतादब्दात् । शशिना द्विपैरयंमैश्चतुरिब्धिभरन्वितं भवति बुधशीष्ट्रम् ॥ २७ ॥

सु. भा.—ग्रत्रोपपत्तिः ।

भौमवद्वुघशीघ्रविकलामितिरेकस्मिन् सौरवर्षे = ३ खुशीभ

म्राचार्योक्तलिखितसंख्याभिविलोमेन कल्पे बुधशी घ्रभगरा। १७६३७०३२००० एते सिध्यन्ति ।

श्रत्र भौ मसाधनवत् कलिगताब्देभ्य३७२९ एभ्यो मध्यमाधिकारे पाठपठित-भगरोभ्यश्च विकलात्मकबुधशी घ्रम् ।

हि. मा.— शिवा = १, जिन = २४, श्रङ्क = १, षट्विह्न = ३६, इन श्रङ्कों से अब्द गए। को गुए। दें, श्रौर शिवा = १, द्विप = ८, श्रयंमा = ३३ चतुरिंध = ४४, इन श्रङ्कों को क्रम से युक्त करें तो बुध का शीध्र केन्द्र होता है।

श्राशिना १ जिनैः २४ शराब्दिभिः ४५ रङ्क्ष्रैषड्वह्मिभिर्हताब्दात् ।
 श्राशिना १ द्विपैः सुरै ३३६चतुरिबिभि ४४ रिन्वतं बुधशीध्रम् ॥२७॥

#### उपपत्ति ।

यहां भ्राचार्योक्त संख्या के विलोम से कल्प में बुधशीभगए। १७६३७०३२००० होता है। भ्रब कलिगताब्द ३७२६ इससे भ्रीर मध्यमाधिकार में पाठ पठित भगए। पर से विकला-हमक बुधशी घ्रकेन्द्र—

भीर कल्पादि बुघशीघ्र का योग क्षेप होता है।

इन दोनों का भ्रन्तर == ०।१।१६।४८। इससे उपपन्न हुआ।

# इदानीं गुरोरानयनमाह।

रूपेगा १ खेन० कृयमै-२१ रङ्ग-६ नैवभिश्च करणाब्दाः। । गुणिता युक्ता वेदैः कृयमैस्त्रियमैश्च भवति गुरुः।। २८।।

सु. भा.—ग्रत्रोपपत्तिः ।  $\frac{3}{2}$  पूर्ववग्दुरुविकलामितिरेकस्मिन् सौरवर्षे  $\frac{3}{2}$   $\frac{3}{2}$   $\frac{3}{2}$   $\frac{3}{2}$   $\frac{3}{2}$   $\frac{3}{2}$   $\frac{3}{2}$ 

१. रूपेगा १ खेन० कुयमे २१ रख्वेरङ्गोदच करणाब्दाः।

श्राचार्योक्तसंख्याभिविलोमेन कल्पे गुरुभगरणा ३६४२२०५०० एते सिघ्यन्ति । मध्यमाधिकारे पाठपठितगुरुभगर्णभ्यः कलिगताब्देभ्य ३७२६ एभ्यो भौमसाधनवद्ग्रन्थारम्भे विकलात्मको गुरुः =  $\frac{गुभ \times 3}{80000}$ 

$$=\frac{60000}{368564877\times66629}=800860637_{\frac{60000}{5027}}=61153_{0}155_{1}$$

# १५" अयं कल्पादिगुरु गानेन

युक्तो जातः क्षेपः = ४।२२ ।४६ । ५१ ग्राचार्योक्त क्षेपः = ४।२१ ।२३ ।०० ग्रन्तरम् = १।२६ । ५१

हि. मा.—रूप=१, खेम=०। कुयम=२१। ग्रङ्ग=६, नव=६ इन संख्याग्रों से करणाब्द से गुणा दें। ग्रीर क्रम से वेद=४, कुयम=२१, त्रियम=२३ युक्त कर दें तो गुरु होता है।

### उपपत्ति ।

यहां घाचार्योक्त संख्या के विलोम से कल्प में गुरु भगगाः = ३६४२२०५००।

मध्यमाधिकारोक्त पाठ पठित भगगा से तथा कलिगताब्द ३७२६ इस पर से ग्रन्था-रम्भ काल में विकलात्मक गुरु =  $\frac{गुम \times ३ गव}{१००००}$  =  $\frac{३६४२२६४५५ \times १११६७}{१००००}$  = ४०७४६०१३५"  $+\frac{2054}{20000}$ =४ रा । २३° । २२' । १४" इसको कल्पादि गुरु से युक्त करने पर क्षेप=४ । २२ । ४६ । ५१ ।

श्राचार्योक्त क्षेप = ४।२१।२३।००।

दोनों क्षेप का अन्तर=१।२६।४१। इससे उपपन्न हुन्ना।

इदानीं शुक्रशीघ्रानयनमाह।

शैलैस्तिथिभी रुद्र यंमविषयैः सागरेगुं शिताः। वसुभिरनिलैंजिनैः षड्गुएैश्च युक्तं भृगोः शीव्रम् ॥ २६ ॥

सु.भा.-अत्रोपपत्तिः।

श्राचार्योक्तसंख्याभिर्विलोमेन कल्पे गुक्रशी घ्रभगणा ७०२२३७३४४६ एते सिध्यति ।

मध्यमाधिकारं पाठपठितेभ्यः शुक्रशी घ्रभगगोभ्यः कालिगताब्देभ्य ३७२६
एभ्यो भौमसाधनवद्ग्रन्थारम्भे शुक्रशी घ्रविकलामितिः = शुभ ×३ गव
१००००
७०२२३८६४६२ ×१११८७ = ७८५५९४७१२४" ७००४०
१०००० = रा । ७° । ३२' । ४"
थ्यं कल्पादिशुक्रशी घ्रेणानेन

रा । २८° । ४२' । १४"

युतो जातः क्षेपः = रा । ६° । १४' । १८

भाचार्योक्तक्षेपः = द । ५ । २४ । २६

भन्तरम् ० । ४६ । ४२

हि. भा.—ग्रब्दगरा को शैल=७, तिथि=१५, रुद्र = ११, यमविषय ५२। सागर=४ इन अङ्कों से गुर्गाकर वसु= । ग्रनिल=७, जिन=२४, षट्गुरा=३६ इन अङ्कों को उसमें जोड़ देने पर शुक्र का शीझोच्च होता है।

#### उपपत्ति ।

# इदानीं शन्यानयनमाह ।

शून्येन द्वादशभिद्वदिशभिः खेषुभिस्त्रयोदशभिः।
गुरिएता युता रसैरव्धिभिस्त्रिविषयैर्दशभिराकिः।। ३०।।

ग्राचार्योक्तसंख्याभिर्विलोमेन कल्पे शनिभगगा १४६५६७३८६ एते सिध्यन्ति । ग्रन्थारम्भे कलिगताब्दाः=३१७६+५५०=३७२६ एभ्यः शनिर्वि-

कलात्मकः=
$$-$$
१४६५६७३५९ $\times$ १२ $\times$ ३० $\times$ ६० $\times$ ६० $\times$ ३७२९ $\times$ 

$$= \frac{284469358 \times 3 \times 3978}{20000} = 284469358 \times 284595$$

<u>७४३</u> = २७३२७४८' । ५८" = ४५५४५° । ४८' । ५८" = रा । ५° । ४८' ।

युतो जातो ग्रन्थादौ क्षेपकः =रा।४°।३४′। ३२″

हि. भा.— शून्येन = ०, द्वादश = १२, द्वादश = १२, खेषुभि: = ५०, त्रयोदश = १३ इन अङ्कों से अब्दगरा को गुराकर उसमें क्रम से रस = ६, श्रव्धि = ४, त्रिविषय = ५३, दश = १०, इन सबों को जोड़ने पर शनि होता है ।

#### उपपत्ति ।

एक सौरवर्ष में शनि विकलामान 
$$=$$
  $\frac{3}{2}$  शम  $=$   $\frac{885}{20000}$   $=$   $\frac{835}{20000}$   $=$   $\frac{835}{20000}$   $=$   $835$  $=$ 

यहां ग्राचार्यं कथितं संख्या के विलोम से कल्प में शिनभगराः=१४६५६७३८६। ग्रन्थारम्भ में कलिगतवर्षं = ३१७६ + ५५०==३७२६ इस पर से विकलात्मकशिन १४६५६७३८६ $\times$ १२ $\times$ ३० $\times$ ६० $\times$ ६० $\times$ ३७२६=2 $\times$ १०००० १००००

इससे उपपन्न हुआ।

## इदानीं राहोरानयनमाह।

गगनेन नवचन्द्रैः क्यमे रसाब्धिभिः संवरेग हताः। रुद्रैः खवेदेर्युक्ता राज्ञ्यादिकः पातः ॥ ३१ ॥'

सु. भा. अत्रोपपत्तिः।

$$= \frac{232388855 \times 3}{80000} = \frac{886633408}{80000} = 86683" + 28"'$$

श्रत्रापि भौमसाधनवद् ग्रन्थारम्भे कलिगताब्दतः पातविकलाः = पाभ × ३गव १००००

१. गगनेन नन्दचन्द्रै: कुयमै रसाग्निभिरम्बरेगा हता:। रद्रै विश्वखवेदैर्यु का राश्यादिकः पातः ॥ ३१ ॥

### भ्रयं कल्पादिपातेनानेन -

युतो जातः क्षेपः = रा । १३° । ५४' । ४१"

आचार्योक्तक्षेपः ११।१२।३०।०० अन्तरम् = १४।४१

11 38 11

हि. भा. —गगनेन = ०, नवचन्द्रैः = १६, कुयमै = २१, रसाव्धि = ४६, संवरेग्ग = ०, इन सबों से गताब्द को गुगाकर भौर उसमें रुद्र = ११, खवेद = ४०, जोड़ दें तो राक्यादिक पात होता है।

#### उपपत्ति ।

एक सौरवर्ष में चन्द्रपात विकलामान = 
$$\frac{3 \text{ पाभ}}{20000}$$

$$\frac{237388865 \times 3}{20000} = \frac{666633408}{20000} = 66663" + \frac{3408}{20000}$$

$$= 66663" + 78" = 8868' | 78" | 78" = 860 | 78' | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78" | 78$$

## इदानीं ग्रहानयने विशेषमाह।

# सर्वागाः स्थानानि क्रमतः स्वहरैर्नयेदुपरि । एवं रब्यब्दान्ते ग्रहध्रुवा मध्यमाः स्युस्ते ॥ ३२ ॥

सु. भा-सर्वाणि राश्यादीनि स्थानानि क्रमतः स्वहरैष्परि नयेत् । प्रति-विकलाः षष्टिहृताः फलं विक्रलासु योज्यम् । विकलाः षष्टिहृताः फलं कलासु योज्यम् एवं स्वहरैष्परि नयेदित्यर्थः । शेषं स्पष्टार्थम् ॥ ३२ ॥

### ग्रहानयन में विशेष कहते हैं-

हिं मा - सब राज्यादि स्थान को अपने अपने भाग हार के ऊपर लावें। प्रति-विकला को ६० से भाग देकर विकला में जोड़ दें। विकला को ६० से भाग देकर लिख कला में जोड़ दें। कला को ६० से भाग देकर अंश में जोड़ दें। इस तरह राज्यादि को सावें। शेष का अर्थ स्पष्ट ही है।

इदानीं प्रकारान्तरेण भौमादीनाह तत्रादौ भौमानयनमाह।

पृथगर्को दशगुणितो वसुशरचन्द्र हुँतः फलेन युतः। दलितो भौमध्र वके क्षेप्यः स्यान्मध्यमो भौमः॥ ३३॥

सु. मा.—स्पष्टार्थम् ।

श्रत्रोपपत्तिः ।

कल्पे रविभगगाः=४३२००००००। भौमभगगाः **२२९**६८२८५२२ ।

x+588835

### ग्रस्मादासन्नमानानि

 $^{3}_{4}$ ,  $^{3}_{7}$ ,  $^{3}_{7}$ ,  $^{3}_{8}$ ,  $^{3$ 

अत उपपन्नम् । शेषवासना सुगमा ॥ ३३ ॥

श्रव प्रकारान्तर से भौमादिक ग्रहों का श्रानयन करते हैं।

हि. भा. — सूर्य को दो जगह रखें, एक जगह १० से गुएा दें, और वसुशरचन्द्र (१५८) से भाग दें, लिब्ध को प्रथम स्थान में जोड़ दें, उसका ग्राघार करें। भौम का घ्रुवा उसमें जोड़ दें तो मध्यम भौम होता है।

इससे भ्रासन्न मार्ने =  $\frac{2}{3}$ ,  $\frac{2}{5}$ 

## इदानीं बुधानयनमाह।

# चतुराहतोऽिब्धगुणितः पृथक् च सप्ताहतोऽिब्ध्यविभक्तः। फलसंयुतो विषयो ज्ञचलध्रुवको ज्ञज्ञीघ्रं स्यात्।। ३४।।

सु भा - स्पष्टार्थम् ।

#### ग्रत्रोपपत्तिः ।

कल्पबुधशीं घ्रभगगाः = १७९३६९६८८४

रविभगगाः =४३२०००००

तयोनिष्यत्तिः  $=8+\frac{६५६९६९५8}{8३२००००००$ 

ग्रत ग्रासन्नमानानि है, <sub>उ</sub>ै, दे<sub>ड</sub>े, <sub>डेंड</sub>, 🐉 , 👸 = इदमाचार्येण गृहीतम् । ततो निष्पत्तिमानम् =  $8 + \frac{9 + 8}{8 - 8}$  अनेन रिवर्णु एगे बुधशीघ्रमानम्  $=87+\frac{9\times87}{958}$ 

शेषवासना चातिस्गमा ॥ ३४॥

## ग्रब बुध का ग्रानयन करते है।

हि. भा. - रिव को चार से गुएगा करें, उसमें चार से गुिएत सात को एक सौ चौराशी से भाग देकर फल जो हो उसको जोड़ दो श्रौर बुध का चलध्रुवा जोड़ दें तो बुध का शी घ्रकेन्द्र होता है।

#### उपपत्ति ।

कल्प में बुधशीझ भगगा == १७६३६६६८६४ = 8350000000 1 रविभगगा दोनों का सम्बन्ध = ४ + ६५६९६८८४ भय <u>४३२००००००</u> = १६४२४६७४६ × ४ 8+---8+<del>---</del> १+<del>--</del>

## **ब्राह्मस्फूटसिद्धान्ते**

यहां स्रासम्न मानें = है, है, नेड, इह, छह, .....

उँ = रेंद्र यह ग्राचार्य ने स्वीकार किया है।

इसलिये निष्पत्तिमान =  $\forall + \frac{\forall \times \forall}{\forall x}$ 

इससे रवि को गुगाने पर—

बुधशी घ्रमानम्  $= 8 + \frac{9 \times 8 \times 7}{8 \times 8}$ 

इससे उपपन्न हुम्रा।

इदानों गुरुशनिराह्वानयनमाह।

सप्तहतस्त्रिवसुहृतो गुरुः शनिद्विगुिर्णितो नवेषु हृतः । विग्गुर्णितो रसघृतिहृत् राहोर्लिप्तासुक्रुतलिप्तः ।। ३५ ।।

सु. भा. -- अत्रोपपत्तिः ।

श्रत श्रासन्नमानानि भैंद, दें, देंड ......

इंड इदमाचार्येगा गृहीतम्।

२+ <u>७४७०४८२</u> <u>६६४४८३४८</u>

म्रत म्रासन्नमानानि, है, एहे..... हुई इदमाचार्येगा गृहीतम् ।

एवं । 
$$\frac{ = \frac{1}{5} \cdot \frac{ }{ } \frac{ }{$$

श्रत श्रासन्नमानानि

्रेंट, र्रेंट, उंछ, ह्रेंडु  $\cdots$  ह्रेंडु = र्रेट्ट इदामाचार्येग गृहीतम् । अत उपपद्यते सर्वम् ॥ ३५ ॥

# श्रव गुरु शनि श्रौर राहु का साधन करते हैं।

हि. भा. — रिव को सात से गुएगाकर दह से भाग देने पर गुरु होता है। दो से गुएगाकर ५६ से भाग देने पर शिव होता है। दश से गुएगाकर रसष्ट्रित (१८६) से भाग देने पर राहु (पात) होता है।

इस पर से भ्रासंत्रमान == देव, वर्ड, वर्ड

परन्तु 👸 को ग्राचार्य ने ग्रहण किया है ।

इससे श्रासन्नमान $=\frac{9}{5}$ , पूर्वः ......

यहां पूरे आचार्य ने ग्रहण किया है।

इससे आसन्नमान  $q^{q}_{\pi}$ ,  $q^{q}_{\pi}$ ,  $g^{q}_{\pi}$ , g

इदानीं शुक्रचलानयनमन्येषां चलं चाह । त्रिगुगो दलितः स्वद्वादशांशयुक्तः सितचलं ध्रुवं स्यात् ।

तात्कालिकं चलं स्याद्वविरन्येषां ज्ञशुक्री स्तः ॥ ३६ ॥

सु. भा. — अन्येषां भौमगुरुशनीनां रिवरेव तात्कालिकं चलं शीझोच्चमस्ति। तथा रिवरेव मध्यमौ ज्ञशुक्रौ स्तः। शेषं स्पष्टम्।

## श्रत्रोपपत्तिः।

ग्रत ग्रासन्नमानानि

कै, के, के, के, के, के के का । के 
$$=$$
  $\frac{१३ \times 3}{5 \times 3} =$   $\frac{25}{5}$   $=$   $\frac{25}{5}$   $+$   $\frac{3}{5}$   $=$   $\frac{2}{5}$   $+$   $\frac{3}{5}$   $=$   $\frac{3}{5}$   $\frac{3}{5}$ 

ग्रब शुक्र तथा ग्रन्य ग्रहों का चलध्रुवानय करते हैं।

हि. भा. - रिव को तीन से गुए। दें, उसका भ्राघा करें उसमें त्रिगुए।त रिव का बारहवां भाग जोड़ने से शुक्र का शीघ्रोच्च होता है। ग्रन्य ग्रह (भौम-गुरु-शनि) का रिव ही तात्कालिक चल शी घोच होता है। रिव ही मध्यम शुक्र और भीम होता है।

#### उपपत्ति ।

इससे शासलमान = है, रे, है, डे, है, है, रे,

स्पष्ट ही है।।

$$\frac{{}^{\frac{1}{3}}}{\varsigma} = \frac{{}^{\frac{1}{3}} \times {}^{\frac{3}{3}}}{\varsigma \times {}^{\frac{3}{3}}} = \frac{{}^{\frac{3}{3}} \varepsilon}{{}^{\frac{1}{3}}} = \frac{{}^{\frac{3}{3}} \varepsilon}{{}^{\frac{3}{3}}} + \frac{{}^{\frac{3}{3}}}{\varsigma \times {}^{\frac{3}{3}}} = \frac{{}^{\frac{3}{3}} \varepsilon}{{}^{\frac{3}{3}}} + \frac{{}^{\frac{3}{3}}}{\varsigma} + \frac{{}^{\frac{3}{3}}}{\varsigma \times {}^{\frac{3}{3}}} = \frac{{}^{\frac{3}{3}} \varepsilon}{{}^{\frac{3}{3}}} + \frac{{}^{\frac{3}{3}}}{\varsigma \times {}^{\frac{3}{3}}} = \frac{{}^{\frac{3}{3}} \varepsilon}{{}^{\frac{3}{3}}} + \frac{{}^{\frac{3}{3}}}{\varsigma} + \frac{{}^{$$

# इदानीं भौमादीनां मन्दोच्चांशानाह ।

# मन्दांशा नगरवयो भयमाः खनगेन्दवः खनन्दाश्च । यमतत्त्वानि तदूनान्मध्याज्ज्या सूर्यवत् ग्राह्या ॥ ३७ ॥

सुःभाः — भौमादीनां मन्दांशा मन्दोच्चांशाः क्रमेश १२७°। २२७°। १७०°। ९०°। २५२°। एते सन्ति। तदूनान्मध्याद्ग्रहात् सूर्यवज्ज्या ग्राह्या। मन्दोच्चेन हीनो मध्यो मन्दकेन्द्रम्। सूर्यकेन्द्रवत् तस्य गतगम्यस्य ज्या केन्द्रभुजज्या ग्राह्ये त्यर्थः।

### स्रत्रौपपत्तिः।

मन्दोच्चानामल्पगतित्वात् सुखार्थं बहुकालोपयीगित्वात् स्वसमये स्थिरांशाः पठिताः । शेषवासना चातिसुगमा ॥ ३७ ॥

# श्रव भौमादि ग्रहों के मन्दोच्चांश को कहते हैं।

हिं भा — भौमादि ग्रहों का मन्दोच्चांश क्रम से पठित है यथा भौमका १२७°। बुझ का २२७°। गुरु का १७०°। शुक्र का ६०°। शिन का २२५°। इसको मध्यमग्रह में घटा कर सूर्य की तरह ज्या ग्रहण करें। मन्दोच्च मध्यमग्रह में घटाने से शेष मन्द केन्द्र होता है। सूर्य केन्द्र की तरह उसकी (गतगम्य की) ज्या तथा केन्द्रभुज ज्या को ग्रहण करें।।

#### उपपत्ति ।

मन्दोच्च की गति शल्प है, बहुत समय में जाना जाता है इसलिये सुखार्थ उसका स्थिरांश पठित कर दिया गया है।

इदानीं भौमादीनां मन्दफलानयनमाह

रदगुिराता सप्तहृता कुजस्य सौम्यस्य नागगुराा त्रिहृता । द्विगुराा हि फलं सूरेद्विगुरााग्निविभाजिता स्फुजित: ॥ ३८ ॥

# त्रिगुणा त्रिशाद्भक्ता रविजस्य फलस्य मन्दफललिप्ताः । मन्दफलयुतोनं स्वशीष्ट्रोच्चाच्छोधयेन्मध्यम् ॥ ३६ ॥

सु. भा.— स्पष्टाधिकारोक्तमन्दपरिधिना भौमादीनां स्वल्पान्तरात् परममं-दफल कलाः । भौ=६७०'। बु=३६२'। गु=३१४'। शु=१०५'। श=४७६'।

ततो यदि त्रिज्यया परममन्दफलकलास्तदा केन्द्रज्यया किम्। जाता मन्द

# श्रव भौमादि ग्रहों का मन्दफलानयन करते हैं।

हि. भा.— केन्द्रज्या को रद (३२) से गुगाकर सप्त (७) सात से भाग देने पर भौम की मन्दफलकला होती है। केन्द्रज्या को नग (सात) से गुगाकर तीन से भाग देने पर बुध की मन्दफलकला होती है। द्विगुगात को केन्द्र के गुरु की मन्दफल कला होती है। द्विगुगात को नेन्द्र को मन्दफलकला होती है। केन्द्रज्या को तीन से गुगाकर तींस से भाग देने पर शक्त की मन्दफल कला होती है।

#### उपपत्ति ।

स्पष्टाधिकार में कही गई मन्दपरिधि से भौमादिग्रहों की स्वल्पान्तर से परम मन्द फलकला पठित है। भौम की = ६७०' । बुध की = ३६२'। गुरु की = ३१४'। शुक्र की = १०५'। शिन की = ४७६' इस पर से त्र राशिक श्रनुपात से भोमादिग्रहों की मन्दफल-

कला, भौम = 
$$\frac{300 \times 500}{100} = \frac{100 \times 30}{100} = \frac{100 \times 30}{100}$$

स्वल्पान्तरग्रह्ण से उपपन्न हुमा।।

## ंइदानीं स्फुटग्रहार्थं संस्कारमाह ।

तस्माच्छीघ्रफलवलं स्वमृग्गं वा मन्दसंस्कृते दत्त्वा । प्राग्वन्मन्दफलमतः सकलं मन्दग्रहात् कुर्यात् ॥ ४० ॥ तस्मात् पृथक् सितादिशीघ्रोच्चविर्वाजतात् (स्फुटं केन्द्रम्) । तस्मात् शीघ्रफलेन संस्कृतः स्फुटो जायते स्पष्टः ॥ ४१ ॥

सुः भाः — मन्दफलयुतोनं मध्यं शीघोच्चाच्छोधयेदेवं शीघ्रकेन्द्रं भवति । तस्माच्छाध्रफलं कृत्वा तदधं स्वं वा ऋगां यथागतं मन्दसंस्कृते मन्दफलसंस्कृते मध्यग्रहे दत्त्वा तं मध्यग्रहं प्रकल्प्यातः प्राग्वत्पुनमंदफलं साध्यं तद्यथागतं सकलं सम्पूर्णं मध्यग्रहे देयम् । एवं गगाको मन्दग्रहं मन्दस्पष्टं कुर्यात् । तस्मात् पृथक् स्थापितात् शुक्रादिशीघ्रोच्चविवर्णितात् स्फुटं केन्द्रं द्वितीयं शीघ्रकेन्द्रं कुर्यात् । तस्मात् पुनः शीघ्रफलं साध्यम् तेन संस्कृतमन्दः पृथक् स्थापितो मन्दस्पष्टश्च संस्कृतः एवं स्पष्टो ग्रहो जायते । लाधवेन शीघ्रफलसाध्यग्नर्थंमग्रे खण्डानि वक्ष्यति ।

**अत्रोपपत्तिः । उपलब्धिरेव ॥४०-४१॥** 

श्रब स्पष्टग्रह के लिये संस्कार का नियम कहते हैं।

हि. मा. - मन्दफल से युत या ऋण मध्यप्रह मन्दस्पष्टप्रह होता है । मध्यमग्रह में से

मन्दोच घटाने पर शेष मन्दकेन्द्र होता है। शीघ्रोच घटाने पर शीघ्र केन्द्र होता है शीघ्र केन्द्र से शीघ्रफलसाघन कर उसका आधा धन या ऋगा जो हो उसको मन्दस्पष्ट ग्रह में देकर उसको मध्यमग्रह मानकर उस पर से फिर मन्दफल लाकर सम्पूर्ण फल मध्यमग्रह में घन या ऋगा करदें। इस तरह गग्रक मन्दग्रह को मन्द स्पष्ट करें। पृथक् स्थापित शुक्रादि शी— घ्रोच से वर्जित स्फुट केन्द्र दूसरा शीघ्रकेन्द्र होता है। उस पर से फिर शीघ्रफल को साधन करें। उससे संस्कृत मन्दस्पग्रह स्पष्टग्रह होता है। लघुता से शीघ्रफल साधन के लिये आगे खण्डों को पठित किया गया है।

#### उपपत्ति ।

उपलब्धि ही यहां उपपत्ति है।।

इदानीं लाघवेन शीघ्रफलानयनार्थं पिण्डमाह । भागीकृतचलकेन्द्रे त्रिगुरो खाग्न्युद्धते फलं पिण्डः ।' षड्राव्यधिके चक्राद् विशोध्य शेषेरा पिण्डः स्यात् ॥ ४२ ॥'

सु. भा.—चलकेन्द्रस्य भागाः कर्तव्याः । केन्द्रे षड्राश्यधिके चक्रात् राशि-द्वादशकात् केन्द्रं विशोध्य शेषस्य भागाः कर्तव्याः । भागास्त्रिगुणाः खाब्ध्यु ४० द्वृताः फलं फलसमो गतपिण्डः स्यात् ।

# अत्रोपपत्तिः ।

उच्चनीचयोः शीघ्रकर्णस्य वैलक्षण्यादाचार्येण केन्द्रषड्राशिमध्ये सत्र्यंशव-योदशभागवृद्धचा भौमादीना चलकेन्द्राणि प्रकल्प्य तेभ्यः शीघ्रफलान्यानीय तद्भागा नवगुणाः पिण्डाङ्काः पठिताः। ते षड्राशिमध्ये सार्धत्रयोदश पिण्डाङ्का भवन्ति। त्रयोदश चतुर्दशपिण्डयोर्मध्ये च केन्द्रान्तर कु मस्य दल कु मिदमस्तीति चिन्त्यम्। इष्टकेन्द्रभागेषु कियन्तः पिण्डाङ्का गता एतदर्थमनुपातः। यदि कु केन्द्रभागेरेकः पिण्डस्तदेष्टकेन्द्रांशैः किम्। जातो गतपिण्डः। शेषफलानयनार्थमग्रे वक्ष्यति।।४२॥

### भ्रव लाघव से शीघ्रफल साधन के लिये पिण्ड को कहते हैं।

हि. भा.— शीघ्रकेन्द्र का अंश करें, केन्द्र यदि ६ राशि से अधिक हो तो चक्र (१२) में घटाकर शेष को अंश करलें। अंश को त्रि (३) से गुरणकर खाग्नि (३०) से भाग दें तो लब्धि के वराबर गतिपण्ड होगा।

भागीकृत चलकेन्द्रे त्रिगुरो खाब्ध्युद्धृते फलं पिण्डः ।

### उपपत्ति ।

उच्चनीच स्रौर शीघ्रकर्णं की विलक्षरणता के कारण ६ राशि के मध्य में केन्द्र होने पर तृतीयांशयुक्त १३ भाग की वृद्धि से भौमादि ग्रहों को चल केन्द्र मानकर, उस पर से शीघ्रफल लाकर उसके भाग को ६ से गुरणकर जो हो उसको पिण्डाङ्क पठित किया है। वे ६ राशि के भीतर १३ + ५ पिण्डाङ्क होते हैं। तेरह स्रौर चौदह पिण्ड के मध्य में केन्द्रान्तर = डूँ इसका घाधा डूँ यह होता है इसका विचार करें। इष्टकेन्द्र भाग में कितना पिण्डाङ्क बीतगया इसकी जानकारी के लिये अनुपात करते हैं जैसे - यदि (पूँ ) केन्द्र भाग में १ पिण्ड पाते हैं तो इष्टकेन्द्रभाग में क्या इस अनुपात से इष्ट केन्द्रांश सम्बन्धी गतपिण्ड होगा। शेष सम्बन्धी फलानयन प्रक्रिया की युक्ति स्रागे कहेंगे।

## इदानीं शेषसम्बन्धिपण्डावयवानयनमाह।

# पिण्डान्तरेग गुगिते शेषे खाब्ध्युद्धृते क्रमाद्देयम् । उत्क्रमविधौ विशोध्यं गतपिण्डे शीव्रफलमेतत् ॥ ४३ ॥

सु मा — शेषे पिण्डान्तरेगा गतैष्यपिण्डयोरन्तरेगा गुगिते खाब्ध्यु ४० द्वृते फलं कमादुपचयात् गतपिण्डत एष्यिषण्डेऽधिके गतिपण्डे देयम् । उत्क्रमिवधावर्थाद्-गतिपण्डत एष्यपिण्डेऽल्पे फलं गतिण्डे विशोध्यं तदैतत् संस्कृत शीघ्रफलं शीघ्र—फलसंबिन्धि पिण्डमानं भवेत् ।

#### ग्रत्रो पपत्ति: ।

यदि चत्वारिशत् समेन त्रिगुणशेषेण गतैष्यपिण्डयोरन्तरं लभ्यते तदाऽभीष्ट त्रिगुण शेषेण किमित्यनुपातेन स्फुटा धनर्णोपपत्तिश्चातिसुगमा ॥४३॥

# अब शेष सम्बन्धी पिण्डके अवयव को लाने का नियम कहते हैं।

हि. मा.— शेषको गतैष्यिपिडान्तर से गुए दें, खाब्धि (४०) से भाग दें, फल को ग्रहरा करें। यदि गतिपण्ड से एष्यिपण्ड अधिक हो तो फल को गतिपण्ड में धन करने पर शीझ फल सम्बन्धी पिण्डमान होता है। यदि गतिपण्ड से एष्यिपण्ड ग्रल्प हो तो पूर्वसाधित फल को गतिपण्ड में घटा दें तो शीझ फल सम्बन्धी पिण्डमान होता है।

## उपपत्ति ।

यदि चत्वारिशत् (४०) के वरावर त्रिगुण शेष में गतैष्यिपण्ड का भन्तर प्राप्त होता है तो इष्ट त्रिगुण शेष में क्या इस अनुपात से लाभ हुम्रा तत् सम्बन्धी पिण्डमान, यहां घन भीर ऋण की वासना स्पष्ट ही है।

# इदानीं विशेषमाह।

# पिण्डाभावे विकलं गुरायेदाद्येन पिडकेन ततः । गण्यन्ते तु खवेदैस्तदेव फलमत्र बोद्धव्यम् ॥ ४४ ॥

सु० भा० चलकेन्द्रे त्रिगुगो खाब्ध्युद्धृते यदि फलं शून्यं तदा पिण्डाभावः स्यात् । तस्मिन् पिण्डाभावे विकलं शेषमाद्येन पिण्डेन गुग्गयेत्, ततो गुग्गनफलानि खवेदै ४० गण्यन्ते विभज्यन्ते । स्रत्र यत् फलं तदेव शीघ्रफलसम्बन्धि पिण्डमानं बोद्धव्यं ज्ञातव्यमित्यर्थः ।

#### अत्रतपपत्तिः।

प्राग्वद्यदि खवेदिमतेन त्रिगुग्।शेषेग् प्रथमिपण्डमानं लभ्यते तदेष्टित्रगुग्-शेषेग् किं जातं शेषसंबन्धिफलं गतिपण्डाभावात् तदेव शींघ्रफलसंबन्धि प्रिण्डमानम् । एतदनुक्तमिप बुद्धिमता ज्ञायते । स्राचार्येग् भालावबोधार्थे लिखितम् ॥४४॥

## भ्रब पिण्डानयन में विशेष कहते हैं।

हि. भा.— त्रिगुिंगत चलकेन्द्र को खाव्धिते (४०) से भाग देने पर फल यदि शून्य हो तब वहां पिण्ड का ग्रभाव होगा ग्रथाँत पिण्ड नहीं होगा। ऐसी ग्रवस्था में विकल शेष को ग्राद्य पिण्ड से गुगा दें। गुगानफल को खवेद (४०) से भाग दें यहां जो फल (लब्घ) होगा वहीं पिण्डमान होगा, यह जानना चाहिये।

### उपपत्ति ।

पूर्व युक्ति से खंवेद (४०) के तुल्य त्रिगुरा शेष में पहला पिण्ड मिलता है तो इष्ट त्रिगुराशेष में क्या इस अनुपात से शेष सम्बन्धी फल मिला, यहां गतिपिण्ड का अभाव है। इसलिये वहीं फल शीझफल सम्बन्धी पिण्डमान हुआ। इस तरह अनुक्त को भी विद्वान समर्भे। आचार्य ने तो बालक के ज्ञान के लिये यह लिखा है।

## इदानीं विश्वमिते गतपिण्डे विशेषमाह।

# पिण्डे चतुर्वश विश्वैगु शिते नखोद्धते विकलाः ।' लब्धेन विश्वपिण्डो रहितः शेषं फलं भवति ।। ४५ ॥

सु. भा. — चतुर्दंश संख्यक एष्यपिण्डे सित विकले शेषे विश्वविगुरिएते त्रयोदश-संख्यकपिण्डेन गुरिएते नखो २० द्वृते यल्लब्धं भवेत् तेन लब्धेन विश्वपिण्डस्त्र-

१. पिण्डे चतुर्दशैष्ये/विश्वविगुिंगते नखोद्धृते विकले।

योदशसंख्यकः पिण्डो रहितः शेषं फलं शीघ्रफलसम्बन्धि पिण्डमानं भवेत् ।

## ग्रत्रोपपत्तिः।

त्रयोदशचतुर्दशिपण्डयो रन्तरे रें केन्द्रान्तरमस्ति । इति पूर्वमेव ४२ सूत्रे प्रितिपादितम् । चतुर्दशिपण्डमानं शून्यसमम् । ग्रतोऽनुपातो यदि विशतिमितेन त्रिगुराशेषेरा विश्वचतुर्दशि पिण्डयोरन्तरं विश्वपिन्डसमं लभ्यते तदेष्टशेषेरा कि लब्धेन विश्वपिण्डो रहितश्चतुर्दशिपण्डस्याल्पत्वात् शेषं शीघ्रफलसम्बन्धि पिण्ड-मानं भवेत् ॥४५॥

ग्रब विश्व के बराबर गतपिण्ड में विशेष नियम कहते हैं।

हि. भा.—चतुर्दंश (१४) संख्यक एष्य पिण्ड हो तो विकल शेष को त्रयोदश (१३) के वराबर पिण्ड से गुर्गादें। उसमें नख (२०) से भागदें। फल जो हो, उसको तेरहवें पिण्ड में से घटा देने पर शेष शीझफल सम्बन्धी पिण्डमान होगा।

#### उपपत्ति ।

तेरह श्रौर चौदह पिण्ड का अन्तर कि में केन्द्रान्तर है यह बात पहले ही ४२ सूत्र में कही गई है। चौदहवां पिण्डमान = ०। ग्रब अनुपात करते हैं। बीस के तुल्य तिगुराशेष में तेरह चौदह पिण्ड का अन्तर तेरह पिण्ड के तुल्य मिलता है तो इष्टशेष में क्या लाभ जो हो उसको विद्य (१३) पिण्ड में घटा देने पर शेष शीझफल सम्बन्धी पिण्डमान होगा। यहां चौदहवां पिण्ड छोटा है इसलिये १३वें पिण्ड में फल को घटा दिया गया है।

इदानीं पिण्डतः शीघ्रफलमाह ।

पिण्डफलनवमभागो भागादिफलं ग्रहेषु वा स्वमृराम् । चलकेन्द्रे मेषादौ तुलादिके कारयेत् क्रमशः ॥ ४६ ॥

सु. भा.-पिण्डफलस्य नवमांशो भागादिशी घ्रफलं भवेत् शेषं स्पष्टार्थम् ।

## श्रत्रोपपत्तिः।

नवगुरिगतं भागादि शीघ्रफलमेव पिण्डांकाः पठिताः इति ४२ सूत्रे प्रतिपादितम् । स्रतः पिण्डफलं नवहृतं भागादि शीघ्रफलं भवति धनणंवासना स्पष्टाधिकारतः स्फुटा ॥४६॥

म्रब पिण्ड पर से शी घ्र फल लाते हैं।

हि. मा. - पिण्ड फल का नवम भाग भागादि शीघ्र फल होता है। इस फल को

केन्द्र के वश ग्रह में धन ऋए। करना चाहिये। मेषादि केन्द्र हो तो शीघ्र फल को ग्रह में धन ग्रीर तुलादि केन्द्र में फल को ग्रहए। करना चाहिये।

#### उपपत्ति ।

नव (१) से गुिग्ति भागादि शीघ्रफल ही पिण्डाङ्क पठित है। यह बात २४वें सूत्र में कही गई है। इसलिये पिण्डफल को नव (१) से भाग देने पर फल भागादि शीघ्रफल होता है। धन और ऋगा का नियम स्पष्टाधिकार से जानना चाहिये।

# इदानीं भौमस्य चतुर्दशपिण्डानाह ।

वसुवेदा युगनन्दाः खवेदचन्द्राः समुद्रवसुचन्द्राः । वसुयमयमा रसनभोरामा नन्दाग्निरामाश्च ॥ ४७॥ मोक्षगुणा रसरसरामा विलोचनाब्धिगुणाः । वसुवसुयमा वसुदिशो नभश्च कुजशोद्रापिण्डाः स्युः ॥ ४८॥ ॥

सु. भा. — क्रमेगा चतुर्दशिपण्डाः = ४८।९४।१४०।१८४।२२८।२७०।३०६। ३३९।३५६।३६६।३४२।२६८।१०८।०॥ स्रत्र महत्तमिपण्डो नवभक्तो भोमस्य परमं शीघ्रफलम् =  $\frac{3}{5}$  = ४० $^{\circ}$  । ४० $^{\prime}$  ॥

#### म्रत्रोपपत्तिः ।

केन्द्रांशाः = १३°।२०'।।२६°।४०'।।४०°।०'।।५३°।२०'।६६°।४०'।।८०°।०'।। ९३°।२०'।।१०६°।४०'।।१२०°।०'।।१३३°।२०'।।१४६°।४०'।।१६०°।०'।।१७३°।२०'।।

## खार्कमिते व्यासार्घे

केन्द्रज्या == २७।४०।।५३।४०।।७७।००।।९६।००।।११०।००।।२१८। १६।।

केन्द्रकोटिज्या == ११६।२०॥१०७।००॥**९**२।००॥७१।२०॥४७।२०॥२१।००। ७००॥

भ्रन्त्यफलज्या == ७८१००।।७८१००।७८१००।।७८१००।।७८१००।।७८१ ७८१००।।

- वसुवेदा युगनन्दाः खवेदचन्द्रा समुद्रवसुचन्द्राः ।
   वसुयमयमा वियन्नगयमास्तथा रसनभोरामाः ॥४७॥
- २. गोऽग्निगुर्णा गोऽक्षगुर्णा रसरसरामा विलोचनाब्धिगुर्णाः । वसुरसयमा वसुदिशो नभश्च कुजशीघ्रपिण्डाः स्युः ॥४८॥

स्पंष्टाकोटिः = १६४।२०॥१८४।००॥१७०।००॥१४६।२०॥१२५।२०॥६६। ००॥७१।००॥

शीघ्रकर्णः == ११७७६"।।११४५८।।१११**९**८।।१०६५२।।१०००६।।६२४२।। ६३३२।।

त्रीघ्रफलज्या = १०-५६६॥२१-७३१॥३२-१८१॥४२-१७८॥५१-४४६॥ ५**९**-७५३॥६७-०२८॥

शीघ्रफलम् = x°.०४॥१०°.४॥१४°.६॥२०°.६॥२४°.४॥२९°.८॥
३४°.१३॥

६×शीफ ≔४४.४४।।९३.६।।१४०.४।।१८४.४।।२२६.४।।२६८.२।।

केन्द्रज्या =११४।४०॥१०४।००॥८७।००॥६५।४०॥४१।००॥

केन्द्रकोटिज्या = ३४।२०।।६०।००।।६२।००।।१००।००।।११३।।११८।४०।।

<del>ग्रन्त्यफलज्या</del>==७८००।।७८००।।७८००।।७८००।।७८।००।।

स्पष्टाकोटिः =४३।४०।।१८।००।।४।००।।२२।००।।३५।००।।४०।००।।

शीघ्रकर्गः =७३४३॥६३३३॥४२२६॥४१४४॥३२३४॥२४०२॥

शीझफलज्याः = ७२.८६१।।७६.८५४।।७७.९११।।७३.६६४।।५**९.**३१४।। २६.१८७।।

शीघ्रफलम् =३७°.६॥३६°.६॥४०°.६॥३८°.२॥२**९**°.६॥१२.६॥

९× शीफ == ३३८'४।।३५६'१।।३६५'४।।३४३'८।।२६६'४।।११३'४।।

यथा पिण्डेषु महदन्तरं न भवेत्तथा साधितसूक्ष्मिपण्डसंख्या ग्रवलम्ब्य मया पिण्डान् संशोध्य मूलार्ये संशोधिते—

आचार्यपिण्डाः = ४८।९४।१४०।१८४।२२८।२७०।३०६। मत्साधिताश्च = ४६।९४।१४०।१८४।२३०।२६८।३०७। आचार्यपिण्डाः == ३३९।३५९।३६६।३४२।२६८।१०८।०। मत्साधिताश्च == ३३८।३४९।३६४।३४४।२६६।११३।०।

## म्रब मौम का १४ पिण्डों को कहते हैं।

हि. सा— भौम के क्रम से १४ पिण्ड = ४८ । १४० । १८४ । २२८ । २५० । ३०६ । ३३६ । ३५६ । ३६६ । ३४२ । २६८ । १०८ । ० ।। यहां सबसे बड़े पिण्ड ३६६ को ६ से भाग देने पर  $^2\xi^{\xi}=80^\circ$ ।  $80^\circ$ ।

#### उपपत्ति

= 83° 1 30' 11 3€° 1 80' 11 80° 1 0' 11 83' 1 30' 11 केन्द्रांश ६६° | ४०' | =0° | 0' || €३° | २0' ||१०६° | ४०' || १२०° 1 0' 11833° 150' 11 886° 1 80' 11 860° 1 0' 11 १७३० । २० ।।

खार्क (१२०) व्यासार्घ में —

= २७।४०।।४३।४०।।७७।००।१६१।००।११०।०।। केन्द्रज्या ११८।००।। ११६ । १६ ॥

केन्द्रकोटिज्या = ११६।२०।।१०७।००।६२।००।।७१।२०।।४७।२०।।२१।००।। 910011

घन्त्यफलज्या = ७५।००।७५।००।१७५।००।१७५।००।१७५।००।१७५।

स्पष्टा कोटि = १९४१२०।।१८४।००।१८७०।००।१४४६।२०१११२४।२०।। 11001901100133

= ११७७६"।।११४५८।।१११८८।।१०६५२।।१०००६।।६२४२।। शीघकर्ण ८३३२॥

= \$0.861156.651135.621135.031176.88611 शो घ्रफलज्या 11250.0311EX6.3X

शीन्नफलम् == x°.0 x118 0°. x118 x°. 5115 0°. 5117 x°. x117 £°. 5113 x°. 8311

६×शीफ = 8x.8x1163.2116x0.2116xx.211556.x11562.511302.511

== इ.रा.५०।।६०।००।।८२।००।।१००।००।।११३।००।।११८।४०।।

केन्द्रज्या == ई ६ द्राद्रवा १ ६ वर्षा ववा । दर्शा द्रवा ४ वा १ दर्शा ४ वा १ दर्शा ४ वा १ व केन्द्र कोटिज्या

ं भ्रन्त्यफलज्या **= ७५।००।।७५।००।।७५।००।।७५।००।।७५।००।।** 

स्पष्टा कोटिः = र्रहार्वार्वार्वावार्वाववारियाववार्वावार्वाववार्वाववार्वाववार्वाववार्वाववार्वाववार्वाववार्वाववार्वावार्वाववार्वाववार्वाववार्वाववार्वाववार्वाववार्वाववार्वाववार्वावार्वाववार्वावार्वावार्वावार्वावार्वावार्वावार्वावार्वावार्वावार्वाया

8010011

= ७३४३"।।६३३३।।४२२६।।४१।४४।१३२३४।।२४०२।। शीघ्रकर्ण

शीघ्रफलज्या = 05.2461106.2781100.6661163.6681176.3681

२६:१५७॥

== ३७° द्वा ३६° द्वा ४०° द्वा ३८° द्वा १२ द्वा হাীদ

६×शीघ्रक =३३५'४।।३४६'१।।३६४'४।।३४३'५।।२६६'४।।१**१३**'४॥

जिस लिये पिण्ड में अधिक अन्तर न हो इसलिये साधित सूक्ष्म पिण्डसंख्या को स्वीकार कर पिण्डों को शोधनकर मूल में पठित आर्या का मैंने संशोधन किया है।

ब्राचार्योक्त पिण्ड =४८।१४।१४०।१८४।२२८।२७०।३०६।

श्री सुधाकरोक्त पिण्ड = ४६।६४।१४०।१८५।२३०।२६८।३०७

**ग्राचार्योक्त पिण्डः = ३३९।३५९।३६६।३४२।२६८।१०८।०** 

श्री सुघाकरोक्त पिण्ड = ३३८।३५६।३६५।३४४।२६६।११३।०

# इदानीं बुधपिण्डानाह।

गुरारामाः षट्करसा वसुनन्दागजविलोचनशशाङ्काः । सागरविषयशशाङ्का नगनगचन्द्राः कृताङ्कभुवः ॥ ४६ ॥ वेदनखा जलघिनखा वसुवसुचन्द्रास्तुरङ्गविषयभुवः । तुरगदिशो रसरामा नभश्च पिण्डाश्च शशिसूनोः॥ ५० ॥

सुः माः —बुधस्य क्रमेगा चतुर्दशिपण्डाः —३३।६६।६८।१२८।१५४।१७७। १९४।२०४।१८८।१५७।१०७।३६।०।।

अत्र महत्तमिपण्डो २०४ नवभक्तो बुघस्य परमं शीघ्रफलम् =  ${}^2$ हु $^4$  = २२ $^0$ । ४०'। अस्य ज्याऽन्त्यफलज्या = ४६।४। खार्कमिते व्यासार्घे ।

#### श्रत्रोपपत्तिः ।

भौमपिण्डसाधनवदत्रापि---

केन्द्रज्या=२७।४०॥५३।४०॥७७।००॥६६।००।११०॥००॥११८।००॥ ११६।२०॥

केन्द्रकोटिज्या = ११६।२०॥१०७।००॥६२।००॥७१।२०॥४७।२०॥२१।००॥ ७।००॥

अन्त्यफलज्या =४६।४।।४६।४।।४६।४।।४६।४।।४६।४।।४६।४।।

स्पको = १६२।२४।।१४३।४।।१३८।४।।११७।२४।।६३।२४।।६७।४।। **३९**।४।।

शीक =९८८४॥९७३२॥९४८५॥९०९९॥८६५४॥८१४४॥७५३५॥ शीघ्रफलज्या=७७३॥१५:३३॥२२:४४॥२९:१६॥३५:१३॥४०:०५॥४३:७८॥

बीफ = ३°.७॥७°.३॥१०°.७॥१४°.०८॥१७°.०६॥१**९**°.५२॥

28°.411

९× शीफ = ३२:३॥६४:७॥९६:३॥१२६ ७२॥१४३:४४॥१७४:६८॥

केन्द्रज्या = ११४।४०॥१०४।००॥८७।००॥६५।४०॥४१।००॥१४।०॥

केन्द्रकोटिज्या = ३४।२०॥६०।००॥८३।००॥१०० ००॥११३।००॥११८।४०॥

श्रन्त्यफलज्या = ४६।४॥४६।४॥४६।४॥४६।४॥४६।४॥

स्पको =११।४४॥१३॥५६॥३४।५६॥५३॥५६॥६६।५६॥७२।३६॥

शीक = ६८६६"॥६२६६॥५६४८॥५०६८॥४७०६॥४६३३॥

चीन्नफलज्या =४४.६४॥४४·६४॥४२·४७॥३४·६०॥२४·०७॥=:३४॥

चीफ =२२°.६॥२२°.४॥२०°.८॥१७°.३॥११°.४॥३°.६८॥

६×शीफ =२०३.४।।२०२.४।।१८७.२।।१४४.७।।१०३.४।।३४.८२।।

म्राचार्यंपिण्डाः ==३३।६६।६८।१२८।१५४।२७७।१**९४।** 

मत्साघिताः = ३३।६६।६६।१२७।१५४।१७६।१६४। ग्रचार्यपिण्डाः = २०४।२०४।१८८।१५७।१०७।३६।०।

मत्साधिताः = २०३।२०३।१८७।१५६।१०४।३६।०।

# भव बुघ पिण्डों को कहते हैं।

हि. भा.—बुघ के क्रम से चतुर्दश (१४) पिण्ड = ३३।६६।६८।१२८।१५४।१७७। १६४।२०४।२०४।१८८।१५७।१०७।।। यहां सबसे बड़ा पिण्ड = २०४ को नौ (६) से भाग देने पर परमशीघ्रफ =  $\frac{2}{6}$  = २२ $^{\circ}$ ।४०', इसकी अन्त्यफलज्या = ४६। ४। खार्कमित (१२०) व्यासार्घ में।

#### . उपपत्ति ।

भौमपिण्ड सावन की तरह-

केन्द्रज्या == २७।४०।।४३।४०।।७७।००।।६६१००।।११०।००।।

११६।२०॥

केन्द्र कोटिज्या = ११६।२०॥१०७।००॥६२।००॥७१।२०॥४७।२०॥२१।००॥

910011

ब्रन्त्य फलज्या ==४६।४॥४६।४॥४६।४॥४६।४॥४६।४॥४६।४॥४६।४॥

स्पष्ट कोटि = १६२१२४॥१४३।४॥१३८।४॥११७।२४॥६३।२४॥६७।४॥

इहार्या

शीघकर्ग == 6== x|| E@\$ 5|| Ex=X|| E@E||= EXX||= & x||@X \$ x|| = 6.631187.931185.881138.881188.831189.81183.0211 शीघ्रफज्या = 3°.6116°.3118°.61188°.51186°.51186°431178°.411 शीव्रफल ६×शीफ == 33.3116x.01166,3118.46.118x3.48,1180x.4211 112.538 = ६६८।८०।।६०८।००।।=१।००।।६४।४०।।४६।००।।१८।००।। केन्द्रज्या == इर्राउगादगावगादरावगार्वजावगार्वहरू केन्द्रकोटिज्या == ४६।४।।४६।४।।४६।४।।४६।४।।४६।४।। ग्रन्त्यफलज्या स्पष्टकोटि - ११।४४।।१३।५६।।३४।५६।।५३।४६।।६६।४६।।७२।३६। शीक == ६८६६ "।।६२६६।।४६।४८।।४०६८।।४७०६।।४६३।। शीघ्रफलज्या = 220.41150.41150.41150.611 शीफ ६×शीफ = २०३.४॥२०.४२॥१८७.५॥१४४.७॥१०३.४॥३४.८८॥ म्राचार्यपिण्ड == ₹₹1₹₹1&51१२51१५४1२७७1१&४1 मेरे से साधितिपण्ड = ३३।६६।१६।१२७।१५४।१७६।१९४। **म्राचार्यं** का पिण्ड==२०४।२०४।१८८।१५७।१०७।३६।०। मेरा पिण्ड == २०३।२०३।१८७।१५६।१०४।३६।०।

# इदानीं गुरोः पिण्डानाह ।

धृतिरसगुरााक्च खक्षाराः षट्करसा गजनगा रसाष्ट्रो च। खाङ्काक्च भुजगवसवः सागरवसवः समुद्रनगाः ।। ५१ ।। भुजगक्षरा रसरामा रसेन्दवः पिण्डकाः सूरेः । चक्राद्विशुद्धकेषः स्फुटो भवेत् सिंहिकासूनुः ।। ५२ ।।

सु. मा.—गुरोः क्रमेण चतुर्दशिपण्डाः = १८।३६।४०।६६।७८।८६।०८८। ८४।७४।४८।३६।१६।०। स्रत्र महत्तमिपण्डो ६० नवभक्तः परमं शीघ्रफलम् = १०° स्रस्य ज्यान्त्यफलज्या = २१ खार्कमिते व्यासार्घे । गगनेन नवचन्द्रै रित्यादि ३१ रलोकविधिना यः पातः स चक्राद्विशुद्धः शेषः सिहिकासूनू राहुः स्फुटो भवे-दिति ।

## ग्रस्योपपत्तिः।

भौमपिण्डसाधन वदत्रापि-

केन्द्रज्या =२७।४०॥५३।४०॥७७।००॥६६।००॥११०।००॥११८।००॥ ११९।२०॥

केन्द्रकोटिज्या = ११६।२०।।१०७।००।।६२।००।।७१।२०।।४७।२०।।२१।००।।
७।००।।

अन्त्यफलज्या = २११००॥२११००॥२११००॥२११००॥ २११००॥

स्पको = १३७।२०॥१२८।००॥११३।००॥६२।२०॥६८।२०॥४२।००१४।००॥

शीक == ५४०६"।।५३२८।।५२०४।।७६६२।।७७७०।।७५१५।।७२१०।।

शीफज्या =४'१४॥५'१२॥११'५२॥१५'१३॥१७ ५३॥१६'७५॥२०'५३॥

शीक = १.६७॥३.५७॥५.६२॥७.२०॥५.४८॥६.४२॥६.६२॥

 $e \times$ शीफ = १७ ७३॥३४ द३॥५० ५८॥६४ द०॥७६ ३२॥द४ ७८॥द $e \times e$ ॥

केन्द्रज्या = ११४।४०।।१०४।००।।६५।४०।।४१।००।।१४।००।।

केन्द्रकोटिज्या==३४।२०।।६०।००।।६२।००।।१००।००।।११३।००।।११८।४०।।

श्रन्त्यफलज्या = २११००।।२११००।।२११००।।२११००।।

स्पको = १३।२०।।३६।००।।६१।००।।७६।००।।६२।००।।६७।४०।।

शीक == ६६०७"।।६६६४।।६३७४।।६१६४।।६०४४।।५६२०।।

शीफज्या = २० दंशा१६ ६७॥१७ १८॥१३ ४२॥८ १३॥१ ६८॥

शीफ ६.६२॥६.३७॥८.४८॥६.३५॥४.०७॥१.४८॥

ह×शीफ == ६६.२८॥८४.३३॥७३.६२॥४७.१४॥३६.६३॥१२.७८॥

आचार्यंपिण्डाः = १८।३६।५०।६६।७८।८६।।

मत्साधिताः = १८।३४।४१।६४।७६।८५।८६।।

**ग्राचार्यपिण्डाः = ८५।८४।७४।५८।३६।१६।०।।** 

मत्साधिताः == ८६। ५४। ७४। ५७। ३७। १३। ०।।

## भ्रब गुरु के पिण्ड को कहते हैं।

हि. भा. — गुरु के क्रम से चतुर्देश (१४) पिण्ड = १८।३६।४०।६६।७८।८६। दहादंश (१४) पिण्ड = १८।३६।४०।६६।७८।८०। पहां सबसे बड़ा पिण्ड = १० दिल = १०० = शीझफलपरम

इसकी ज्या अन्त्यफलज्या (१२०) व्यासार्ध में = २१ । 'गगनेत नवचन्द्रैं:' इत्यादि क्लोक से जो पात (राहु) कहा गया है, उसको १२ में घटाने से स्पष्ट राहु होता हैं।

#### उपपत्ति ।

भौमपिण्ड साधन की तरह यहां भी-

केन्द्रज्या = २७।४०॥५३।४०॥७७।०॥१६।००॥११०।००॥

११६।२०॥

केन्द्रकोटिज्या = ११६।२०॥१०७।००॥६२।००॥७१।२०॥४७।२०॥२१।००॥

910011

अन्त्यफलज्या = २१।००।।२१।००।।२१।००।।२१।००।।२१।००।।

२११००॥

स्पको == १३७।२०।११२८।००।।११३।००।।६२।२०।।६८।२०।।४२।००।।

१४।००॥

शीक = ८४०६"।।८३२८।।८२०४।।७६६२।।७७७।।७४१४।।७२१०।।

शीफज्या = ४.६४॥८.६५॥६६ ८५॥६४.६३॥६७.८३॥६६.७८॥५०.८३॥

चीक = १.६७॥३.८७॥४.६२॥७.५०॥८.४८॥६.४२॥६.६२॥

**६ × शी**फ = १७'७३॥३४'द३॥५०'५द'॥६४'द०॥७६'३२॥द४'७८॥

**८६.**२८॥

केन्द्रज्या = ११४।४९॥१०४।००॥८७।००॥६५।४०।४१।००॥

केन्द्रकोटिज्या =३४।२०।।६०।००।।६२।००।।१००।००।।११३।००।।११८।४०।।

मन्त्यफलच्या ==२११००।।२११००।।२११००।।२११००।।२११००।।

स्पकोटि = १३।२०॥३६।००॥६१।००॥७६।००॥६२।००॥६७।४०॥

शीक ==६६०७"।।६६६४।।६३७४।।६१६४।।६०४४।।४६२०।।

कीफज्या = २० १ द्रशा१६ १ दृशा१७ १ द्रा।१३ ४ २ ॥ द १ ६ द

शीफ = १.६२॥६.३७॥८.१८॥६.३४॥४.७॥१.४२॥

६× शीफ ==६:२्नान४:३३॥७३:६२॥५७:१४॥३६:६३॥१२:७न॥

म्राचार्यं का पिण्ड = १८।३६।४०।६६।७८।८६।।

**अ**नुवादककापिण्डः १८।३५।५१।६५।७६।८५।८।।

श्राचार्यं का पिण्ड== ८ । ५४। १८। १८। १६। १६। १।

**अनु**वादककापिण्ड == ८६।८४।७४।५७।३७।१३।०॥

# इदानीं शुक्रपिंडानाह।

खशराः शतं खतिथ्यः सागरनन्देन्दवो ऽङ्काजिनाः ।

गुरागुरारामाः कुनगगुरााः शून्यखाम्बुघयः ॥ ५३ ॥

कुञ्जरचन्द्रसमुद्रा गजाभ्रवेदा नभोऽम्बुधिज्वलनाः।

गगनशिलीमुख चन्द्रावियच्च पिण्डाः सुरारिगुरोः ॥ ५४ ॥

सु. m. — शुक्रस्य क्रमेगा चतुर्दशिपण्डाः ५०।१००।१५०।१६६।२४६।२६०। ३३३।३७१।४००।४१८।४०८।३४०।१५०।०। स्रत्र महत्तमिपण्डो ४१८ नवभक्तः परमफलम्  $= \frac{8}{8}$  = ४६°।२६'।४०"। स्रस्य ज्या स्रत्यफलज्या = ६६।४१। खार्कमि नव्यासार्घे।

### ग्रत्रोपपत्तिः।

भीमपिण्डसाधनवदत्रापि।

केन्द्रज्या = २७।४०।।५३।४०।।७७।००।।६६।००।।११०।००।। ११६।२०।।

केन्द्रकोटिज्या = ११६।२०॥१०७।००॥६२।००॥७१।२०॥४७।२०॥२१।००॥ ७।००॥

भ्रन्त्यफलज्या ==६।४१।।८६।४१।।८६।४१।।८६।४१।।=६।४१।।

१०७।४१।।१९३।४१।।१७८।४१।।१५८।१।१३४।११ == २०३।।१।।१९३।४१।।१७८।४१।।१५८।।१५८।

्शीक = १२२६४॥।१२०६०॥११६७४॥११०६४॥१०४०२॥६४८४॥

शिफज्या = १०'७०॥२३'१३॥३४'३०॥४४'००॥४५'००॥६४'०२॥

शीफ =- ५°.१७॥११°.७७॥१६°.६६॥२२°. .०॥२७°.३७॥ ३२°.३७॥३७°.१०॥

ह×शीफ = ४०१३॥६६.६३॥१४६.८४॥१६८:६॥२४६.३३॥२६१.३३॥

- खशराः शतं खितथ्यस्तथाङ्कनन्देन्दवोऽङ्गिजनाः।
   खाङ्कयमाः सुररामाःकुनगगुणाः श्न्यखाम्बुघयः ॥५३॥
- २. कुञ्जरचन्द्रसमुद्रा गजाभ्रवेदा नभो प्रम्बुधिज्वलनाः । गगनशिलीमुखचन्द्रा वियच्चपिण्डाः सुरारिगुरोः ।।१४।।

केन्द्रज्या = ११४।४०॥१०४।००॥८७।००॥६५।४०॥४१।००॥१४।००॥ केन्द्रकोटिज्या == ३४।२०।६०।००॥८२।००॥१००।००॥११३।००॥

११८।४०॥

म्रन्त्यफलज्या = ८६।४१।।८६।४१।।८६।४१।।८६।४१।।८६।४१।।

स्पक्तो = ५२।२१।।२६।४१।।४१।।१३।१६।।२६।१६।।३१।५६।।

शीक = ७५४४।।६४४२।।५२२७।।४०५१।।२६२३।।२०६५।।

शीफज्या = ७५.८२॥८३.६५॥५६.६४॥५४.५४॥७२.६४॥३४.७४॥

शीफ =४१°.२२॥४४°.६२॥४६°.४३॥४४°.८३॥३७°.६२॥

६१°.5७॥

६×शोफ =३७०:९८।।४०१.५८।।४१७:८७।।४०३:४७।।३३८:५८।।

१५१:८३॥

आचार्यपिण्डाः==५०।१००।१५०।१९६।२४६।२६०।३३३॥

मत्साधिताः =५०।१००।१५०।१६६।२४६।२६१।३३४॥ आचार्यपिण्डाः=३७१।४००।४१८।४०८।३४०।१५०।०॥ मत्साधिताः =३७१।४०२।४१८।४०४।३३६।१६२।०॥

यथा महदन्तर न भवेत्तयाऽऽदर्शार्ये मया शोधिते षष्ठिपण्डत्रुटिश्च पूर्गीकृतेति ॥५३-५४॥

### ग्रब शुक्रपिण्ड को कहते हैं।

हि. मा. --- यहां मूलोक्त शुक्त के क्रम से चतुर्देश (१४) पिण्ड इस प्रकार है। ४०।१००।१४०।१६६।२४६।२६०।३३३।३७१।४००।४१८।४०८।३४०।१४०।।।

यहां सबसे बड़ा पिण्ड=४१८।

#### उपपत्ति ।

भौमपिण्ड साधन की तरह यहां---

केन्द्रज्या = २७।४०॥५३।४०॥७७।००॥६६।००॥११०।००॥११८।००॥

११६।२०॥

केन्द्रकोटिज्या =१६६।२०॥१०७।००॥६२।००॥७१।२०॥४७।२०॥

110010

च्हाप्रहे॥ - च्हाप्रहेशाद्दाप्रहेशाच्हाप्रहेशाच्हाप्रहेशाव्हाप्रहेशा	
लहाप्रद्रा। == ४०३।६१।१६३।४६।।६७८।४६।।६४८।१११६३४।६।१०७।४६॥	
== १२२६४।।१२०६०।।११६७४।।११०६४।।१०४०२।।६५८५।। == १२२६४।।१२०६०।।११६७४।।११०६४।।१०४०२।।६५८५।।	
हर.त्।। == १०.७०॥५३.१३॥३४.१०॥४४.१००॥४४.००॥६४.८॥	
== ५°.४७॥११°.७॥१६°•६४॥११°.१०॥२७°.३६॥३२°.७॥ ३७°.१०॥	
### ##################################	
== ६६४।४०।।६०४।००।।=७।००।।६४।४०।।४६।००।।	
== इर्राट्वाह्वाव्वाद्वाव्वाह्वाव्याह्वाव्याहरू	
== दर्शाप्रशाद्धाप्रशाद्धाप्रशाद्धाप्रशाद्धाप्रशाद्धाप्रशा	
= त्रराप्रशाप्रदाप्रशाप्राप्रशाह हा। इस हा। इस हा।	
== <i>७४</i> द्रह्मा १६४८ ता १४ ८४ । १४ ६४ १४ १४ ६४ १४ १४ ८४ १४ १४ ४ ४ ४ ४ ४ ४ ४ ४ ४ ४ ४ ४	
७८-८२॥८३.६४॥८६-६४॥८४.२४॥७२.६४॥३४ ७४॥	
=४१°.२२॥४४°.६२॥४६°.४४॥४३.°८३॥३७°.६२॥१६°.८७॥	
== ई७०.६८।।४०६.४८।।४६७.८७।।४०३.४७।।३३८.४८।।	
१५१-=३॥	
भाचार्य का पिण्ड=५०।१००।१५०।११६।२४६।२६०।३३३।।	
संशोधक का पिण्ड == ५०।१००।१५०।१९६।२४६।२६१।३३४।।	

जिस तरह अधिक अन्तर न हो उस तरह मैंने मूलोक्त आर्या का संशोधन कर छुठेपिण्ड को पूरा किया है। इदानी शनिपिण्डानाह।

स्राचार्यं का पिण्ड == ३७१।४००।४१८।४०८।३४०।१५०।०।। संशोधक का पिण्ड == ३७१।४०२।४१८।४०४।३३६।१५२।०

> रुद्रा द्वियमाः कुगुराा वसुरामाः सागराम्बुनिधयश्च । वसुवेदा गजवेदाः षडब्धयो लोचनाम्बुधयः ॥ १५ ॥

पंचगुराा सप्तयमा रसचन्द्राः षड् नभश्च रिवसूनोः ॥ ५५३ ॥

सु. मा.—शनैः क्रमेण चतुर्दशिपण्डाः—११।२२।३१।३८।४४।४८।४६।४२। ३५।२७।१६।६।०।ग्रत्र महत्तमिपण्डो ४८ नवभक्तः परमं शीघ्रफलम्  $=\frac{v_{g}}{v_{g}}$  -- ५०। ग्रस्य ज्यान्त्यफलज्या—११।१२ खार्कमिते व्यासार्घे।

#### ग्रत्रोपपत्तिः।

# भौमपिण्डसाधनवदत्रापि—

केन्द्रज्या =२७।४०॥५३।४०॥७७।००॥६६।००॥११०।००॥११८।००॥ ११९।२०॥

केन्द्रकोटिज्या≕११६।२०।।१०७।००।।६२।००।।७१।२०।।४७।२०।।२१।००।। ७।००।।

अन्त्यफलज्या = ११।१२॥११।१२॥११।१२॥११।१२॥११।१२॥ ११।१२॥

स्पको = १२७।३२॥११८।१२॥१०३।१२॥६२।३२॥५८।३२॥३२।१२॥ ४।१२॥

शीक =७८३०।।७७८६।।७७२४।।७४६६।।७४७६।।७३३६।।७१६४।।

शीफज्या ==२'७३॥४'६०॥६'७०॥८'४८॥१'८८॥१०'८०॥११'२०॥

शीफ = १°.१३॥२°.१८॥३°.१८॥४°.०३॥४°.७०॥४°.१२॥ ४°.३३॥

६×त्रीफ =१०.१७॥१६.६२॥२८.६२॥३६.५७॥४२.३०॥४६.०८॥

केंन्द्रज्या = ११४।४०॥१०४।००॥६७।००॥६५।४०॥४१।००॥१४।००॥

केन्द्रकोटिज्या == ३४।२०॥६०।००॥=२।००॥१००।००॥११३।००॥ ११८।४०॥

म्रन्त्यफलज्या = ११।१२।।११।१२।।११।१२।।११।१२।।११।१२।।

स्पको =२३।न।।४न।४न।७०।४न।।नन।४८।।१०१।४न।।१०७।२न।

शीक = ६९६६॥६८६३॥६७३१॥६६२७॥६५८४॥६५०३॥ शीफज्या = १०.६७॥१०.१३॥८.६८॥६.६५॥४.२०॥१.४३॥

शीफ = ४°.२२॥४°.६३॥४°.१३॥३°.१७॥२°.००॥०°.६८॥

९×शीफ =४६.६८॥४३.४७॥३७.१७॥२८.४३॥१८.००॥६.६२॥

आचार्यपिण्डाः= ११।२२।३१।२८।४४।४८।४८।।

# घ्यानग्रहोपदेशा<u>घ</u>्यायः

मत्साधिताः = १०।२०।२६।३६।४२।४६।४८।। ग्राचार्यपिण्डाः = ४६।४२।३५।२७।१६।६।००।। जत्साधिताः = ४७।४३।३७।२६।१८।६।००।।

पिण्डमानमिति साधितं मत्रा शीघ्रकर्णवशतः पराख्यया । जीवया लघुफलस्य विद्वरैश्चिन्तनीयमिखलं च चिद्वरैः ।।५५३।।

### ग्रव शनिपिण्डों को कहते हैं।

हि. भा. — शनि के क्रम से चतुर्देश (१४) पिण्ड = ११।२२।३१।३८।४८।४८।४८। ४६।४२।३४।२७।१६।६।०॥

यहाँ सबसे बड़ा पिण्ड =  $\forall c | 1 \forall \frac{c}{c} =$  शीझफल =  $\forall c | 1 < c' |$  इसकी ज्या अन्त्यफलज्या = ११। यह ११ अन्त्यफलज्या १२० व्यासार्घ में होता है ।

#### उपपत्ति ॥

भोमपिण्ड साधन की तरह यहां भी --

केन्द्रज्या == २७।४०॥५३।४०॥७७।००॥६६।००॥११०।००॥११८।००॥ ११६।२०॥

केन्द्रकोटिज्या = ११६।२०॥१०७।००॥६२।००॥७६।२०॥४७।२०॥२१।००॥
७।००॥

झन्त्यज्याफलज्या ==१११२॥११।१२॥११।१२॥११।१२॥११।१२॥ १११२॥

स्पको = १२७।३२॥११८॥१०३।१२॥५२।३२॥५८।३२॥१२॥ ४।१२॥

चीक = १° १३॥२° १८॥३° १८॥४° ३॥४° ७०॥४० १२॥४० १२॥। चीफ = २.३०॥४.६०॥६.७०॥८.४८॥६.८८॥१०.८०॥११.५०॥ चीफ

ह× शफ = १०'१७।१ ह-६२।।२८.६२।।३६-२७।।४२-३०।।४६०८।।४७-६७।।

केन्द्रक्या = ११४।४०॥१०४।००॥६२।००॥११०।।११२।००॥ केन्द्रकोज्या = ११४।४०॥१०४।००॥६२।००॥११४।००॥

केन्द्रकोज्या = ३४।२०॥६०।००॥६२।००॥१००।००॥११३।००॥११६।४ मन्त्रमत्त्वज्या = ११।१२॥११।१२॥११।१२॥११।१२॥११।१२॥ स्पको = २३। नाष्ठनाष्ठनाष्ठनाष्ठनाष्ट्रनाष्ट्रवाष्ट

चीक == ६९६९॥६८९३॥६७३१॥६६२७॥६४८४॥६४०३॥

शीफज्या = १०.६७॥१०.१३॥८.६८॥६.६४॥४.५०॥१.४३॥

शीफ = ५°.२२॥४°.५३॥४°.१३॥३°.१७॥२°.००॥००°.६८॥

म्राचार्यं का पिण्ड = ११ । २२ । ३१ । ३८ । ४४ । ४८ । ४८ संशोधक का पिण्ड = १० । २० । २६ । ३६ । ४२ । ४६ । ४८ माचार्यं का पिण्ड = ४६ । ४२ । ३५ । २७ । १६ । ६ । ०० । संशोधक का पिण्ड = ४७ । ४३ । ३७ । २६ । १८ । ६ । ०० ।।

इदानीं भौमादीनां मध्यगतीम् दुगतिफलानि चाह ।

रूपगुरा। ३१ वाराजिनाः २४५ ज्ञर ५

षण्गव ६५ यम २ गुरगाः ३ क्रमशः ।। ५६ ।।

मध्यमभुक्तिकलाः स्युः षड् द्वि २६

रदाः ३२ खंवसु ८ शका ११ विकलाः।

मन्दगुणिता भुक्तिः खखनवविहृता भुक्तिः स्यात् ॥ ५७ ॥ प्र प्रहवत् तन्मन्दफलं मृदुकेन्द्रवशात् स्वमृग्गं तदूनां च ॥ ५७५ ॥

सु. भा.—भौमादीनां मध्यमागितकलाः क्रमेण भौ ३१। बुशी २४५।गु५। शुशी ६६। श २। रा ३। कलानामध एता विकलाश्च भौ २६। वुशी ३२। गु०। शुशी ६६। श २। रा ३। कलानामध एता विकलाश्च भौ २६। वुशी ३२। गु०। शुशी द ।श०। रा ११।। भुक्तिभौमादीनां मृदुकेन्द्रगितमंन्दोच्चानामत्यल्पगितित्वाद्ग्रह-मध्यगितरेव मन्दिवगुणिता मन्दभोग्यखण्डेन विगुणिता खलनवो ६०० द्धृता फलमद्यतनश्वस्तन मन्दकेन्द्रज्ययोरन्तरं स्यात्। इदमन्तरमेव केन्द्रज्यां प्रकल्प्य ग्रहवत् ३८-३६ सूत्रतस्तन्मन्दफलं साध्यं तच्च भुक्तेः फलं मृदुगितफलं भवति। तच्च स्वमृदुकेन्द्रवशात् कुलीरादौ केन्द्रधनं मकरादावृणं कार्यं मध्यमगतौ। एवं मन्दस्पष्टा गितः स्यात्। तदूनां शीघ्रगितं शीघ्रोच्चगितिमित्यग्रे सम्बन्धः।।

### श्रत्रोपपत्तिः ।

खमन्दगतिफलसाधनवत् स्फुटा ।।<u>१६-५७</u>३।।

१. मन्दविगुणिता भुक्तिः खखनविह्ता स्वभुक्तेःस्यात् ।।५७।।

श्रव भौमादि ग्रहों की मध्यगित श्रीर मन्दगितफलों को कहते हैं।

हिः भाः — भौमादि ग्रहों की क्रम से मध्यम गति कला == ३१ भौ । बुशी २४५ । गु ५ । शुशी ६६ । श २ । रा. ३

भौमादि ग्रहों की क्रम से मध्यमगति विकला-

भौ = २६ । बुशी = ३२ । गु = ० ।। शुशी = ८ । श = ०। रा = ११।।

भौमादि ग्रहों की मृदुकेन्द्र गित बहुत ही ग्रन्प होती हैं। इसलिये मध्यमगित को ही मन्दभोग्य खण्ड से गुणाकर ६०० से भाग देने पर फल ग्रद्यतन श्वस्तन मन्द केन्द्रज्या का ग्रंतर होता है। इस ग्रन्तर को ही केन्द्रज्या मानकर ग्रह की तरह (३८-३६) सूत्र से मन्द-फल लाना चाहिये। वह मृदुगित फल होता है। केन्द्र के वश से धनऋण करना उचित है। जैसे—कर्कादि केन्द्र में धन ग्रौर तुलादि केन्द्र में ऋण करना चाहिये। इस तरह मन्दस्पष्टागित होती है। (तदूनां च) इसका ग्रगले श्लोक से सम्बन्ध है।

#### उपपत्ति ।

इसकी उपपत्ति रविमन्दगतिफल साधन की उपपत्ति से स्पष्ट ही है।

इदानीं शीघ्रगतिफलमाह।

शीव्रगति सङ्गुग्गयेदेवं शीव्रस्य खण्डेन ॥ ५८ ॥
पिण्डान्तरेगा खार्केः १२० लिप्ताद्यं स्यात् फलं गतेः शीव्रम् ।
स्वमृग्गं क्रमोत्क्रमविधौ चतुर्दश विधिश्च पिण्डको गुग्गकः ॥ ५६ ॥
हरस्वगतिरेवं वह्वगात्याज्ये भुक्तं पदिलते
द्वे द्वे मुकाले कारयेत् स्फुटा भुक्तिः ॥ ६० ॥

मु. भा.—मन्दस्फुटगत्यूनां शी घ्रगति शी घ्रोच्चगति शी घ्रकेन्द्रगतितां शी घ्रस्य खण्डेनार्थात् पिण्डान्तरेण पिण्डयोगंतैष्यपिण्डयोरन्तरेण सङ्गुण्येत् खार्के १२० विभजेद्यिल्लप्ताद्यं फलं तद्गते शी घ्रं फलं स्यात्। तच्च क्रमोत्क्रमिवधौ स्वमृणं स्यात्। गतिपण्डत एष्यपिण्डेऽधिके धनमल्पे ऋण्मित्यर्थः। अथ यदि चतुर्दशस्व-तुर्दशपिण्ड एष्यो भवेत् तदा शी घ्रकेन्द्रगतेर्गुं णको विश्विपण्डो हरस्च षष्टिभंवेत्। शी घ्रकेन्द्रगति त्रयोदशिपण्डप्रमाणेन सङ्गुण्यषष्टधा विभजेत् फलं तदा गतेः शी घ्रफलं स्यादित्यर्थः। मन्दस्फुटा गतिः शी घ्रगतिफलसंस्कृता स्फुटा गतिः

खरसहरो गितरेवं बहुऋगामानं स्वमन्दभुक्ते श्चेत् ।
 भुक्त्यपरहिते वक्रां तत्काले कारयेद् भुक्तिम् ॥६०॥

स्यात् । एवं यदि मन्दरपष्टगतेः शीघ्रगतिफलमृगां बहु स्यात् तदा ऋग्।माने भुक्त्यपरिहते मन्दरपष्टगतिरिहते सित शेषं तत्काले वक्रां भुक्ति कारयेद्गगा क इति शेषः ॥

#### श्रत्रोपपत्तिः।

त्रयोदशचतुर्दशिपण्डयोरन्तरे केन्द्रांशाः  $= \frac{20}{3}$  इति पूर्वं ४२ सूत्रे प्रतिपादि-तम् । तत्र गतैष्यिपण्डान्तरं चतुर्दशिपण्डाभावात् त्रयोदशिपण्ड सममतः शीघ्रफल गति साधने तत्र केन्द्रगतेस्त्रयोदशिपण्डो गुगाः षष्टिर्हरो भवेत् भनर्गावासना चाति-सुगमा ।।५६–६०।।

# भव ग्रह के शी झगति फल को कहते हैं।

हि. भा.— मन्दस्फुटगित से ऊन शी झोच्चगित शी झकेन्द्रगित होती है। शी झकेन्द्रगित को शी झखण्ड (अर्थात् गत-एष्य पिण्ड का अन्तर) से गुणा दें और खार्क (१२०) से भाग दें लिब्ब कलादि होगी, वहीं शी झफल होगा। उस शी झफल को क्रम और उत्क्रम विधि में घन और ऋण करें। जैसे जहां पर गतिपण्ड से एष्यपिण्ड अधिक हो वहां फल को धन करें। जहां पर गतिपण्ड से एष्यपिण्ड अधिक हो वहां फल को धन करें। जहां पर गतिपण्ड से एष्यपिण्ड अल्प हो वहां ऋण करदें।

जहां चतुर्दंश (१४) पिण्डएष्य हो वहां शीझकेन्द्रगति का गुगाक विश्व (१३) पिण्ड होता है और भाग हर षष्टि (६०) होता है। शीझकेन्द्रगति को त्रयोदश (१३) पिण्ड से गुगाकर साठ से भाग दें फल शीझगतिफल होगा, मन्दस्फुटगति ± शीगफ = स्फुटगति। यदि मन्दस्पष्टगति से ऋग्शीझगतिफल अधिक हो तो शेष को वक्रगति करना चाहिये।

### उपपत्ति ।

तिगुराशिष भागात्मक चत्वारिशत् (४०) में गत एष्यपिण्ड का श्रंतर मिलता है तो तिगुरागित केन्द्रगति समशेष में क्या इस ध्रनुपात से भागात्मक श्रद्धतन श्वस्तन शीघ्रफल का ध्रन्तर =  $\frac{\left( \text{गपि} \sim \text{एप} \right) \, \Im \, \hat{\text{शिकंग}}}{\text{४०} \times \text{१ × ६०}}$  । इसको साठ से गुराने पर कलात्मक शीघ्रगतिफल =  $\frac{\left( \text{गपि} \sim \text{एप} \right) \, ? \, \Im \, \hat{\text{शिकंग}}}{\text{१२०}}$  ।

तेरह-चौदह पिण्डों के अन्तर में केन्द्रांश = र्डुं। पहले ४२ सूत्र में कहा गया है।

वहां चौदहवें पिण्ड के स्रभाव में तेरहवां पिण्ड ही गत एष्य पिण्ड का स्रन्तर होता है। इसिलये शीझगति फल साधन में केन्द्र गित को तेरहवां पिण्ड गुराक श्रौर षष्टि (६०) भाग हर होता है। धन ऋरा की युक्ति स्पष्ट ही है।

खण्डखाद्यस्य श्लोका एते ।

नवतिथयो १५६ ऽष्टि १६ विभक्ताः । पंचरसा ६५ वसु = हृता दश १० त्रिहृताः । विषुवच्छायागुग्तिताः स्वदेशजाश्चरदलविनाडचः ॥ ६१ ॥

सु. भा.— नवितथयो १५६ विषुवतीगुिएताः षोडशिवभक्ताः फलं फला-त्मकं स्वदेशे प्रथमं चरखण्डम् । पञ्चरसा ६५ विषुवतीगुगा वसु द्र हृताः फलं द्वितीयं चरखण्डम् । एवं दश १० पलभा हतास्त्रि ३ हृतास्तृतीयं चरखण्डं भवतीति ।

#### ग्रत्रोपपत्तिः।

एकाङ्गुलपलभादेशे चाचार्यमंतेन क्रमेगा पलात्मकानि चरखण्डानि प्रख $=\frac{84}{8}$ । द्विखं $=\frac{84}{5}$ । तृख $=\frac{80}{3}$  एतानि पलभागुगानि स्वदेशे भवन्तीति स्फुटा वासना । भास्कराचार्येगा  $=\frac{84}{5}$ ।  $=\frac{84}{5}$  ग्रनयोः स्थाने क्रमेगा १०,  $=\frac{1}{5}$  ग्रहीते । श्रत उक्तः 'दिङ्नागसत्र्यंशगुणैर्विनिघ्नी पलप्रभे' त्यादि ।।६१।।

# भ्रब चरखण्ड को कहते हैं।

हि. भा.—नवित्ययः (१५६) को विषुवती (पलभा) से गुणाकर षोड्श (१६) से भाग देने पर फल ग्रपने देश का पलात्मक पहला चरखण्ड होता है ।। पखरसा (६५) को विषुवती (पलभा) से गुणाकर वसु (८) से भाग देने पर फल दूसरा चरखण्ड होता है ।

इस तरह दश (१०) को पलभा से गुगाकर तीन से भाग देने पर फल तीसरा चरखण्ड होता है।

#### उपपत्ति ।

जिस देश की पलभा १ झंगुल की है। उस देश का पलात्मक चरखण्ड — प्रखं

१. नवतिपयोधिविभक्ता इत्यादि म्रायिषट् कं खण्डखाद्याच्चिन्त्यम् ।

२. नवतिथयोऽष्टिविभक्ता इति पाठः साधुः

=  $\frac{9}{9}$  । द्विलं=  $\frac{9}{2}$  । त्रुखं  $\frac{9}{9}$  । श्राचार्यं ने स्वीकार किया है ।

भारकराचार्य ने  ${}^{9}_{7}$  ${}^{6}_{8}$ ,  ${}^{6}_{8}$  इन दोनों के क्रम से १०, प्र को ग्रहण किया है। इसिलये "दिग् नाग सत्र्यंशगुर्गीविनिघ्नीपलप्रभे" इत्यादि में कहा गया है।

उपरोक्त चरखण्ड को भ्रपने-भ्रपने देश की पलभा से गुराने पर श्रपने-भ्रपने देश का चरखण्ड होता है। इसकी उपपत्ति स्पष्ट ही है।

> ज्याः केन्द्रं स्फुटभानुं कृत्वा ये राशयश्चरार्धानि । भुक्तानि भोग्यगुणिता ज्छेषात् खखवृतिहृतात् तु फलम् ॥ ६२ ॥

सु. भा.—स्फुटभानुं केन्द्रं कृत्वा तस्य तस्य भुजः साध्यस्तत्र चरार्धानि ज्या ज्या खण्डानि प्रकल्प्य केन्द्रभुजे ये राशयस्तन्मितानि भुक्तानि ज्याखण्डानि भवन्ति । शेषात् केन्द्रभुजशेषकलामानाद्भोग्यचरखण्डगुर्गात् खखधृति १८०० हृतात् फलं च गतचरखण्डयोगे क्षेप्यमेवमभीष्टंपलात्मकं चरमानं भवेत् । अत्रो-पपत्तिस्त्रं राशिकेन स्फुटा ॥६२॥

# पलात्मक चरमान को कहते हैं।

हि. मा. — स्पष्टसूर्य का केन्द्र को भुज बना लें, वहां चरखण्डज्या को ज्या खण्ड कल्पना करें। केन्द्र भुज में जितनी राशियां हों उनके तुल्य व्यतीत ज्याखण्ड होते हैं। भुज शेषकला के मान से भोग्य चरखण्ड से गुगा करें, उसमें खख घृति (१८००) से भाग दें, फल को गत चरखण्ड योग में जोड़ दें तो ग्रभीष्ट पलात्मक चरमान होता है।

#### उपपत्ति ।

यहां चरानयन की उपपत्ति त्रैराशिक गिएत द्वारा स्पष्ट ही है।

# गतिपादं पादोनां गति विशोध्यास्तकाल उदये च। संसाधितस्य तस्य ग्रहस्य चरकर्म चान्यस्य ॥ ६३ ॥

सु. मा.—निशीथकालिकग्रहे गतिचतुर्थांशं चतुर्थांशोनां गति च विशोध्य क्रमें एगस्तकाले उदये च ग्रहो भवति । एवं तस्य रवेर्वाऽन्यस्य ग्रहस्य संसाधितस्य मध्ये चरकमं कार्यम् ग्रस्ते उदये वा ग्रहें चरकमं देयं न दिनार्धे निशीथे चेति स्फुटं सिद्धान्तविदामिति ।।६३॥

हि. भा.— निकीय कालिक ग्रह में गति का चौथे भाग ग्रीर चौथा भाग से हीन गति को घटाने पर क्रम से ग्रस्तकाल तथा उदयकाल में ग्रह होता है। जैसे—निशीय

कालिक ग्रह में गित का चतुर्थांश घटाने से ग्रस्तकालिक एवं चतुर्थांश भाग से हीनगित को निशीयकालिक ग्रह में घटाने से शेष उदयकालिक ग्रह होता है।

इस तरह साधित ग्रहों के मध्य में चरकर्म करना चाहिये। उदयकाल या श्रस्तकाल में ग्रह में घरकर्म करना चाहिये। दिनार्घ श्रौर रात्र्यर्घ में चरकर्म नहीं करना चाहिये, यह बांत सिद्धान्त वेत्ता स्पष्ट रूप से जानते ही हैं।

# चरदलविनाडिकागतिकलावधात् खखरसाग्नि ३६०० लब्धकलाः । ऋरणमुदयेऽस्तमये धनमुत्तरगोले ऽन्यथा याम्ये ॥ ६४ ॥

सु० भा०—स्पष्टार्थम् । उपपत्तिश्च 'चरघ्नभुक्तिद्युं निशासु भक्ते 'त्यादिना भास्करोक्ते न स्फुटा ॥६४॥

हि. भा.. — चरदल घटी और गतिकला के गुएगनफल में खखरसाग्नि (३६००) से भाग दें। फल कलात्मक होगा। उत्तर गोल में सूर्य हो तो उस फल कला को उदयकाल में ऋएग और अस्तकाल में घन करना चाहिये। याम्य गोल में सूर्य हो तो फलकला को उदयकाल में घन और अस्तकाल में ऋएग करना चाहिये।

# पंचदश हीनयुक्ताश्चरार्धनाडीभिष्तरे गोले । याम्ये युक्तविहीना द्विसङ्गुणा रात्रिदिननाडचः ६४

सु. भा.—स्पष्टार्थम् । उपपत्तिश्च 'चरघटीसहिता रहिता क्रमात् तिथि मिता घटिका खलु गोलयोरि' त्यादिना भास्करविधिना स्फुटा ॥६५॥

हि. भा. —पञ्चदश (१५) से युत चरघटी उत्तर गोल में दिनाई होता है। पञ्चदश (१५) से होन चरघटी राज्यई होता है।

दक्षिए। गोल में पञ्चदश (१५) से युत चरघटी राज्यमं तथा (१५) से हीन चरघटी दिनामं होता है। दिनामं ग्रौर राज्यमं को दूना करने से दिनमान ग्रौर राजिमान होता है।

#### उपपत्ति ।

चरघटी सहिता रहिता क्रमात् तिथिमिता घटिका खलु गोलयोरित्यादि भास्करोक्त क्लोक की उपपत्ति से स्पष्ट ही है।

# मिश्रे ष्टान्तरगुणिता भुक्तिर्दिवसे निशादले प्रथमे । षष्ट्रचा विभज्य लब्बं विशोध्य तात्कालिको भवति ।। ६६ ।।

सु. भा.—दिवसे दिनेष्टकाले वा प्रथमे निशादले निशीथतोऽर्वाक् चेष्ट

काले मिश्रस्य राष्ट्र्यर्धकालस्य स्वेष्टकालस्य च यदन्तरं तेन भुक्तिर्प्रं हगितर्गुं एग फलं षष्टचा विभज्य लब्धं निशीथकालिकग्रहाद्विशोध्य शेषं तात्कालिको ग्रहो भवति । एवं निशीथानन्तरेष्टकाले लब्धं निशीथकालिकग्रहे संयोज्य तात्कालिक-ग्रहः कार्यं इत्यनुक्तमपि बुद्धिमता ज्ञायत इति ।

श्रत्रोपपत्तिस्त्रैराशिकेन स्फुटा ॥६६॥

हि. भा.— दिन में या राज्यर्घ से पूर्व इष्टकाल हो तो मिश्रकाल, इष्टकाल के अंतर को ग्रहगित से गुगा करें, गुगानफल में साठ (६०) से भाग देने पर फल जो हो उसको निशीय (राज्यर्घ) कालिक ग्रह में घटा देने से शेष तात्कालिक (इष्टकालिक) ग्रह होता है। इस तरह राज्यर्घ के बाद इष्टकाल हो तो मिश्रकाल ग्रौर इष्टकाल के ग्रन्तर को ग्रहगित से गुगाकर ६० से भाग दें, लब्ध फल को राज्यर्घकालिक ग्रह में जोड़ देने से इष्टकालिक ग्रह होता है।

#### उपपत्ति ।

यहां इसकी उपपत्ति त्रैराशिक गिएत से स्पष्ट ही है। विज्ञजन के लिये इससे अधिक स्पष्ट क्या हो सकता है।

क्रान्त्ययुतिविधोगादक्षपदेः शोधिते दिनदले भा । भाश्रुतिकृत्योः कृतमनुयुतोनयाकृत्वकर्षः स्यात् ॥ ६७ ॥ ध

सु. भा.—कान्त्यक्षयोर्युं तिवियोगात् त्रिप्रश्नोक्त्या मध्यनतांशाः साध्याः । नतांशमाने चक्रपदान्नवतेः शोषिते शङ्कुचापमाने विदिते सित त्रिप्रश्नाधिकार विधिना शङ्कुना मध्यनताशज्या तदा द्वादशांगुल शंकुना किमित्यनुपातेन दिनदले मध्याह्ने भा छाया साध्या । छायाकणं कृत्योः कृतमनुयुतोनयोः सत्योयारकषंस्या-परस्य कृतिः क्रमेण भवति । छायाकृतिः कृतमनु १४४ युता छायाकर्णंकृतिस्तथा छायाकर्णंकृतिः कृतमनु १४४ भिक्ना छायाकृतिभवतीत्यर्थः ।

### श्रत्रोपपत्तिः।

# त्रिप्रश्नाधिकारविधिना स्फुटा ।।६७।।

हि. भा-—क्रान्ति ग्रीर ग्रक्षांश का योग या ग्रन्तर मध्य नतांश होता है। नतांश मान को चक्रपद (१०) में घटाने से १०—नतांश—उन्नतांश होता है। इस पर से शंकुमान जानकर त्रिप्रश्नाधिकारोक्त प्रकार से ग्रनुपात द्वारा दिनार्घ में छाया साधन करना चाहिये

१ क्रान्त्यक्षयुतिवियोगाच्चक्रपदात् शोधिते दिनदले भा। भाश्रुतिकृत्योः कृतमनुयुन्नोनयोः कृतिरकर्षस्य ॥६७॥

यथा मनज्या × द्वारांकु मछाया । छाया + १४४ = छाक तथा छाक - १४४ = छा। दोनों का मूल लेने से छायाकर्णं तथा छाया होती है ।

#### उपपत्ति ।

यहां त्रिप्रश्नाधिकरोक्त विधि से उपपत्ति स्पष्ट है।

### इदानीमिष्टकाले स्थूलं छायाकर्गामाह।

षड्गुिंगता गतशेषा नाडचो दिवसविभाजिताज्या तत्। दिनदलकर्मगुगाः स्वानया त्रिभज्याभक्तं फलं कर्णः ॥ ६८ ॥ १८ ।। १८ ।

सु. भा. — गतशेषा नाड्य उन्नतकालः । षड्गुणिता दिनार्धभाजिता यत् फलं स्यात् तत्संख्यया ज्या साघ्या । यल्लब्धं तत्संख्यकानां १५ सूत्रे लिखितानां ज्याखण्डानां योगः कार्यः सा ज्या भवतीत्यर्थः । एविमयं ज्या स्थूलेष्टान्त्या ज्ञात-व्येति । त्रिभज्या दिनार्धकर्णेन गुणाऽनया पूर्वसाधितया स्थूलेष्टान्त्याऽऽप्ता फलं स्थूल इष्टकाले छायाकर्णो भवतीति ।

#### भ्रत्रोपपत्तिः ।

यदि दिनदलोन्नतकालेन नवितभागास्तदेष्टोन्नतकालेन कि लब्धा भागाः षिट्गुगाः कलास्ताः खखनवो ६०० द्धृता लब्धाः  $=\frac{१० \ \mbox{जका } \times \ \mbox{६० }}{\mbox{दिद } \times \mbox{१०० }} = \frac{१ \ \mbox{जका } \times \mbox{१०० }}{\mbox{दिद }} = \frac{१ \ \mbox{जका }}{\mbox{दिद } \times \mbox{१०० }} = \frac{1 \ \mbox{प्राच्या }}{\mbox{दिद }} = \frac{1 \ \mbox{प्राच्या }}{\mbox{1000 }} = \frac{1 \ \mbox{VIII}}{\mbox{1000 }} = \frac{1 \ \mbox{VI$ 

### ग्रब इष्टकाल में स्थूल छायाकर्ण को कहते हैं।

हि. मा. — गतशेषनाड़ी (उन्नतकाल) को षट् (६) से गुणाकर दिनार्घ से भाग दें जो फल मिले उससे ज्या साधन करना चाहिये। फल के बराबर (१५) सूत्र के अनुसार ज्या खण्डों का योग करें, वहीं ज्या होगी। यह ज्या को स्थूल इष्टान्त्या समभनी चाहिये। त्रिभज्या को दिनार्घ कर्ण से गुणाकर पूर्वसाधित स्थूल इष्टन्त्या से भाग देने पर फल जो हो वह इष्टकाल में स्थूल छायाकर्ण होता है।

१ षड्गुिराता गतशेषा नाड्यो दिवसार्घभाजिता तज्ज्या । दिनदलकर्गांगुरााऽऽप्तानया त्रिभज्या फलं कर्गाः ॥६८॥

#### उपपत्ति ।

यदि दिनार्धंतुल्य उन्नतकाल में नवित (६०') भाग मिलता है तो उन्नतकाल में क्या इस ग्रनुपात से जो फल भाग हो उसको षिट (६०) से गुगाकर कला होती हैं। उसको खखनव (६००) से भाग देने से उसका स्वरूप =  $\frac{६० उका <math>\times$ ६० =  $\frac{६ उका}{666}$ ।

### इदानीमिष्टकर्णंत उन्नतकालमाह।

दिनदलकर्गे त्रिभज्यागुर्गे श्रवरागेद्धृते फलस्य धनुः। द्युदलगुरां तिथिभक्तं दिनगतशेषासवः क्रमशः॥ ६९॥

सु. भा.—धर्नुदिनार्धगुणं पञ्चदशभक्तं फल क्रमशः पूर्वापरकपालयोदिनग तशेषासवो भवन्ति । शेषं स्पष्टार्थम् ।

### म्रत्रोपपत्तिः।

पूर्व प्रकारव परीत्येन घनुः  $=\frac{80 \times 80 \times 300}{66}$  अतो घटघात्मक उन्नतकाल  $=\frac{67 \times 8}{80 \times 80}$ । ग्रयं ३६० गुणो जातोऽस्वात्मक उन्नत कालः  $=\frac{67 \times 80}{80 \times 80}$  ग्रत उपपन्नम् ॥६१॥

#### श्रव इष्टकर्णं पर से उन्नतकाल को लाते हैं।

हि. मा.—दिनार्घ कर्ण को त्रिज्या से गुणा दें, कर्ण से भाग दें, फल जो हो उसका चाप कर लें, उसको दिनार्घ से गुणाकर तिथि (१५) से भाग दें फल क्रम से दिन-गत शेषासव होता है।

#### उपपत्ति ।

(६८) सूत्र के विपरीत क्रम से यहां धनु 
$$= \frac{ e^{\circ} \times e^{\circ} \times e^{\circ}}{ \text{दिद}}$$
। इससे घटघात्मक उन्नतकाल  $= \frac{ \text{दिद} \times e^{\circ}}{ e^{\circ} \times e^{\circ}}$ ।

इसको (३६०) से गुएगने पर, उन्नतकाल = रिदर अव ।
इस युक्ति से (६६) वां क्लोक उपपन्न हुआ।
इदानीं ज्यातक्चापानयनमाह।

ज्याखण्डोने शेषे गुग्गिते नवभिः शतैरशुद्धहृते । क्षेप्याग्गि शुद्धखण्डम् गितानि शतानि नव चापम् ॥ ७० ॥

सु. भा.—ज्यामाने ज्याखण्डैः १५ सूत्रे पठितैरूने शेषे नवसतेर्गुं गितेऽशुद्ध-खण्डहृते लब्धौ शुद्धखण्डैः शुद्धखण्डसंख्याभिर्गुं गितानि नवसतानि क्षेप्यागि तदा चापं भवति ।

#### अत्रोपपत्तिः।

ज्यासाधनव परीत्येन सुगमा ॥७०॥

श्रब ज्या से चाप साधन को कहते हैं।

हि. भा.—यहां (१५) सूत्र में कथित ज्या खण्ड को ज्या मान में से घटाकर—नव-शत (६००) से गुएगा दें, प्रशुद्ध खण्ड से भाग दें, लब्ध शुद्धखण्ड संख्या से गुएगा हुम्रा नव-शत (६००) उसमें जोड़ दें तो चाप मान होता है।

#### उपपत्ति ।

यहां ज्या साधनोपपित के विपरीत (उलटा) उपपित द्वारा (७०) वां श्लोक उपपन्न होता है — व्यर्थ बार-बार लिखने के प्रयास से क्या लाभ।

> इदानींमुपसंहारमाह । इति तिथिनक्षत्रदिनमाद्यादिकसिद्धौ ब्रह्मगुप्तेन । द्वासप्तत्यार्याणां संक्षिप्तोऽतिस्फुटश्चैषः ॥ ७१ ॥

सु. मा.-स्पष्टार्थम् ॥७१॥

हि. भा- इसका म्रर्थ तो स्पष्ट ही है। इस ग्रन्थ में म्राचार्य ब्रह्मगुप्त ने तिथि, नक्षत्र, दिन म्रादि समस्त निषयों का उल्लेख इन बहत्तर भ्रायिमों के द्वारा संक्षिप्त रूप से कर दिया है।। ७१।।

इदानीमयं कस्मै न दातव्य इत्याह । दुर्जनकृतघ्नशत्रुप्रतिकंचुककारियो न दातव्यः । ध्यानग्रहाधिकारो जिष्णु सुतब्रह्मगुप्तकृतः ॥ ७२ ॥ इति श्री ब्रह्मगुप्तकृतो ध्यानग्रहोपदेशाध्यायः समाप्तः ।।
सु. मा.—प्रतिकञ्चुककारी पिशुनः । शेषं स्पष्टम् ।।७२।।
मधुसूदनस्नुनोदितो यस्तिलकः श्रीपृथुनेह जिष्णुजोक्ते ।
हृदि तं विनिधाय नूतनोऽयं रचितो ध्यानखगे सुधाकरेण ।।१।।
अपकृष्य दशावतारलीलां प्रकृतिर्वामकलामलङ्करोति ।
परिहाय सुपात्रमत्र लोकाः सकला सङ्कलयन्ति कौ कुपात्रम् ।।२।।
या ब्रह्मगुप्तकृतिरत्र सहस्रसूत्रैनीना प्रकारकरणेन च भास्करेण ।
मन्दीकृता पृथुवृथातिलकेन सेयं विद्योतिता निजकरेण सुधाकरेण ।।३।।
ये भास्करादिकृतिपारगता नवीने चापप्रपञ्चजिष्ठो कुशलाः सुशीलाः ।
श्रीमत्सुधाकरकृतं तिलकं निधाय सज्ज्यौतिषेऽत्र विहरन्तु त एव धीराः ।।४।।
कृपालुसूनुना सुधाकरिविदिना सुतं परात्परं निधाय मानसे सुकोशलापतेः ।
गजेषुनन्दभूमिहायने मधौ सितेगुरौ,सुरामजन्मसत्तिथावकारि सोपपत्तिका ।५।
सन् १६०१ मार्चमासस्याष्टाविशतिदिने श्रीजानकीरमणचरण सरोजरजः प्रसादेनायं तिलकः सम्पूर्णतामगात् ।।

इति श्रीकृपालुदत्तसूनु सुधारकद्विवेदिविरिचतो ब्रह्मगुप्तकृतध्यानग्रहोपदे-शाध्यायतिलकः समाप्तः ।

यह किसको न देना चाहिये सो कहते हैं।

हि. भा—जिब्सु सुत ब्रह्मगुप्त से निर्मित इस "ध्यानग्रहोपदेशाध्याय" को दुर्जन, कृतघ्न, स्रत्रु, प्रतिकञ्चुक (खुगलखोर) इन सबों को न देना चाहिये, यह ग्रन्थ बनाने वाले का उपदेश है।।७२।।

यहां ब्रह्मगुप्तकृत ध्यानग्रहोपदेशाध्याय समाप्त हुआ।

# श्रय ध्यानग्रहोपदेशाध्याये क्षेदसाधनम् ।

२ श्लोके पञ्चचत्वारिशत् षिटभक्ता फलम्  $= \frac{2}{8} = \frac{3}{8}$  इदं स्थूलत्वेन व्यर्थमेव मध्यराशावाचार्येग् प्रक्षिप्तम् ।

'श्रथ सरसवेदयुक्त' एतदर्थम् —

'गोद्रीन्द्वद्विकृताङ्कदसूनगगोचन्द्राः—१९७२९४७१७६ शकाब्दान्विताः' इति भास्करोक्तचा खपञ्चपञ्च ५५० मिते शके कल्पगताब्दाः=१९७२९४७७२६। वर्षादाविधशेषज्ञानायाऽनुपातः, कल्पसौरवर्षः कल्पाधिमासा लभ्यन्ते तदेष्टसौर वर्षेरीभः क इति जाता इष्टाऽविमासाः= १९७२९४७७२९×१५९३३००००० ४३२००००००

 $=\frac{88800}{88800}$ 

(१) कल्पगताब्देषु हरतष्टेषु शेषम् = ३६२६।\*\*

$$(5) \frac{58800}{3056} = \frac{58800}{5680805} = 5308 \frac{58800}{5056}$$

(३) यद्येतावित १४४०० हरे ४७१६ क्षेपकोऽयं तदैतावित १३१ क इति संचारितः क्षेपकः =  $\frac{४७१६ \times १३१}{१४४००} = \frac{६१८९८}{१४४००} = ४२<math>\frac{१३३८}{१४४००} = ४३$  स्व० ।

श्रतोऽत्र 'सगुरावेदः' इति पाठः सम्यगिति सिध्यति ।

(१) १४४००) १९७२६४७७२६ (१३७०१० -- लब्धिः

\*\*००३७२**९ = कलिगताब्दाः** ।

```
५३११
   3998
  3978
 १११८७
 १८६४५
 १९८०४७१६ (१३७५ = कलिमुखाद् गताधिमासाः।
   ४४०
  १०८४
   ७३७
    3908
     १३१
(३)
    3908
     १४१५७
      3908
      ६१८१८६(४२=क्षेपकः
        ४२१
        १३३८६=शेषम्
   लब्धः=१३७०१०। गुराः=५३११। ग्रनयोर्घातः-
          १३७०१०
          १३७०१
          ४११०३
          ६७५०५
          ७२७६६०११० = कल्पारम्भे गता ग्रधिमासाः।
                १३७५ — कल्पारम्भाद् ग्रन्थारम्भशकाव
                               धिगता ग्रधिमासाः
          ७२७६६१४८५ = कल्पादितो ग्रन्थारम्भशकाव-
```

धि गता ग्रधिमासाः।

### ४ क्लोकक्षेपसाधनम्-

पूर्वंसाधिताः कल्पगताब्दाः १६७२६४७७२६ मासीकृताः २३६७५३७२७४८ पूर्वंसाधितैः ७२७६६१४८५ अधिमासैर्युं ता जाताश्चान्द्रमासाः = २४४०३०३४२३३। कल्पचान्द्रमासैः कल्पकुदिनानि लभ्यन्ते तदैभिः किमिति जातो वर्षारम्भसमीपस्थ-

```
कुदिनगर्गः==\frac{78803038733 \times १५७७६१६<math>840000
मध्यमदर्शान्त कालिकः
<u> २४४०३०३४२३३ × १०५१६४४३</u> सप्तगुणितहरेगा २४६३५५४ नेन गुण्यगुगाः
            ३५६२२२
कयोस्तक्षरााय न्यासः—
      २४६३४५४)२४४०३०३४२३३(६७८६
               २२४४१६८६
                 १६६१०४८२
                                २४८३४४४) १०४१६४४३(४
                 १७४५४८७८
                                          ६६७४२१६
                 २१५५६०४३
                                          ४४४२२७= गुराकशेषम्
                 75888338
                  १६०७६११३
                  १४६६१३२४
             १६६४८४३२
               १६०७६११३
               १४६६१३२४
                १११४७८६ = गुण्यशेषम् ।
५४५२२७ — गुराकशेषम् ।
               6525020
               २२२६५७
             २२२६५७८
            XX350XX
           ४४४६१५६
         xxo3exx
३५६२२२)६०७८१३०६२१०३(१७०६२७६ सप्ततव्टे शेषं वारा:= ५
        ३५६२२२
        २५१५६१०
        386388
          २२३५६६२
          २१३७३३२
                                        ७६९८६६(घटचौ २।
           १०६६७३
                                          ७१२४४४
           ७१२४४४
            २७०५४७०
                                         ४७४१६
             3883888
              २१५०१६३
                                         ३४४४६६० (पलानि ६३ स्व०।
             २१३७३३२
                                        333X0FF
                १२८३१
                                         २३८६६२
                    Ę٥
```

अत्र वर्त्तमानवारार्थं ५ स्थाने ६ संख्या गृहीताऽऽचार्येण तथा २ स्थाने ४, ६ स्थाने च १८ संख्या गृहीता। एवमत्र घटीद्वयं पलनवकं चाविकं गृहीतमाचार्थे-ऐति ज्योतिर्विद्भिश्चिन्त्यम्।

### ६ श्लोक क्षेपसाधनम्।

पूर्वसाधिताः कल्पगताब्दाः=१६७२६४७७२६। एते द्वादशगुणिता जाताः सौरमासाः = २३६७५३७२७४८। इष्टशका—५५० रम्भे गताधिमासाः=१३७०१० ×५३११+१३७५=७२७६६१४८५\*

इष्टचान्द्रमासाः = २३६७५३७२७४८+७२७६६१४८५ =२४४०३०३४२३३ कल्पचान्द्रमासैः कल्पचन्द्रमन्दकेन्द्रभगराः कल्पचान्द्रमासोना लभ्यन्ते तदैभिः क

8	२४४०३०३४२३३	१	प्रइ४३३३
२	४८८०६०६८४६६	२	१०६८६६६
₹	<i>७३</i> ३०११०२६९	3	१६०२६६६
४	६७६१२१३६६३२	ሂ	२६७१६६४
5	१९५२२४२७३८६४	દ્દ	₹₹048€5
3	२१६६२७३०८०७	9	३७४०३३१
		5	४२७४६६४
		3	8505860

७३२०६१०२६६६

१९५२२४२७३८६४

<sup>\*</sup> इलोक क्षेपसाधनं द्रष्टव्यम् ।

```
<u> १३६३२०००००)६३५०६८४३६२४४५८१६३०८</u>६(१७५००२६३६२
             ५३४३३३
             ४००७६५४
             ३७४०३३१
              २६७३२३३
             २६७१६६५
                 १५६८६२४
                 १०६८६६६
                  ४००२४८४
                  82028
                   १६३५८७५
                   3333078
                    ३३२८७६८
                   ३२०५६६८
                    १२२७७०१
                    १०६८६६६
                    १५६०३५६३०८६ = भगराशेषम्
                   १२७२२८५०४६८८
                   ३१८०७१२६१७२
                  <u>xx45660'££x0=(243x333££x0e</u>
                  १७८३३३६६४०८
```

धत्राऽऽचार्येंगा सुखार्थं छन्दोऽनुरोधाद वा ५३ स्थाने ५६ गृहीतेति करूपते।

#### ध्रव घ्यानग्रहोपदेशाध्याय में क्षेप साधन करते हैं।

हि. भा- ध्यान ग्रहोपदेशाध्याय का दूसरे श्लोक में पश्चनत्वारिशत् (४५) को षिट (६०) से भाग देकर फल  $= \frac{7}{6} = \frac{3}{6}$  इसको व्यर्थ ही मध्यमराशि में ग्राचार्य ने जोड़ दिया है। इसके बाद "सरसवेदयुक्त" इसके लिये गौद्रीन्द्रद्रिकृताङ्क दस्त्रनगगोचन्द्राः

= १६७२६४७१७६, इसको शाकाब्द में जोड़ दें, यह भास्करोक्ति से खपश्चपश्च के तुल्य शाका में कल्प गताब्द = १६७२६४७७२६। वर्ष के आदि में ग्रिधशेष के ज्ञान के लिये अनुपात करते हैं।

(१) कल्पगताब्द में हर से भाग देने पर शेष == ३६२६।

$$(5) \quad \frac{\xi R R \circ \circ}{\frac{1}{2} \xi S \xi \times K \neq \xi \xi} = \frac{\xi R R \circ \circ}{\xi \xi \varepsilon \circ R \circ \xi \xi} = \xi \beta \circ K + \frac{\xi R R \circ \circ}{R \circ \xi \xi}$$

(३) यदि १४४०० इस हर में ४७१९ यह क्षेप मिलता है तो १३१ में क्या इससे

मिला संचारितक्षेपक = 
$$\frac{868 \times 88}{8800}$$
 =  $\frac{885}{8800}$  =  $88 + \frac{885}{8800}$  =  $88 + \frac{885}{800}$  =  $88 + \frac{885}{800}$ 

इसलिये यहां 'सगुरावेद:' यह पाठ उचित सिद्ध होता है।

३७२६ = कलिगताब्द ।

=किल के ग्रादि से बीता हुआ श्रिधमास।

(३) 
$$\frac{8986}{8848}$$
  
 $\frac{88986}{8848}$   
 $\frac{88986}{8848}$   
 $\frac{88986}{8848}$   
 $\frac{88986}{8848}$ 

लिंध = १३७०१० । गुरा = ५३११

७२७६०११० = कल्प के भ्रादि में गताधिमास ७२७६६०११० + १३७५ = कल्पारम्भ से ग्रन्थारम्भशक पर्यन्त गताधिमास = ७२७६६१४८५।

#### चौथे (४) श्लोक की क्षेप साधनोपपत्ति ।

पूर्वं साधित कल्पगतवर्षं = १६७२६४७७२६।

इसको १२ से गुएगाकर कल्पगतमास = २३६७५३७२७४८।

पूर्वं साधित अधिमास = ७२७६६१४८५।

श्रिधमास को कल्पगतमास में जोड़ने से चान्द्रमास = २४४०३०३४२३३

#### भव भनुपात करते हैं।

कल्प चान्द्रमास में कल्पकुदिन पाते हैं तो उपरोक्त चान्द्रमास में क्या इस ब्रनुपात से वर्षारम्भ समीपस्थ मध्यमदर्शान्तकालिक कुदिन समूह =

श्रव सात से गुणा हुआ हार (२४६३४४४) इससे गुण्य श्रीर गुणक को तक्षण के लिये न्यास करते हैं।

# **ब्राह्मस्फुटसिद्धान्ते**

```
२४६३५५४) २४४०३०३४,२३३(६७८६
                    २२४४१६८६
                    १६६१०४८२
                    १७४५४८७८
                   × २१५५६०४३
                     $ £ 8 = 8 3 3 $
                     ०१६०७६११३
                       १४६६१३२४
                        १११४७८६ = गुण्यशेषम्।
           २४६३५५४) १०५१६४४३(४
                    ६६७४२१६
                    ०५४५२२७ = गुराकशेषम्।
गुण्यशे × गुर्गकशे == १११४७८६ × ५४५२२७ = ६०७८१३०६२१०३।
       ३५६२२२)६०७८१३०६२१०३(१७०६२७६ = ल प्र।
              ३४६२२२
              २५१५६१०
              8xxxx
               ००२२३५६६२
                 २१३७३३२
                     १०६६३३
                     ७१२४४४
                     २७०५५७०
                    २४६३४४४
                        २१५०१६३
                       २१३७३३२
                       × × १२८३१ = शेष
यहां शेष को ६० से गुगाकर (३५६२२२) इससे भाग देने से
                          १२८३१×६०=७६६८६० ।
            ३५६२२२)७६६८६०(२ घटी
                   ७१२४४४
                   × ५७४१६ <del>== शेष</del>
```

फिर शेष को ६० से पुगाकर भागहर (३५६२२२) से भाग देने पर-

 $70886 \times 60 = 3888660.1$ 

३४६२२२) ३४४४६६० (६ $+\frac{3}{3}$  पल स्वल्पान्तर से  $\frac{3704885}{23585}$ 

यहां प्रथम लिव्ध (१७०६२७६) इसको ७ से भाग देने पर शेष = ५ = वार।

क्रम से वार १। घटी २। पल ६  $+\frac{2}{3}$ । स्वल्पान्तर से यहां वर्त्तमान दिन के लिये १ की जगह ६ संख्या को श्राचार्य ने ग्रहगा किया श्रौर २ की जगह ४, एवं ६ की जगह १८ संख्या को श्राचार्य ने स्वीकार किया है।

इस तरह यहां २ घटी, ६ पल को आचार्य ने श्रधिक ग्रहरण किया है, इस बात को क्योतिषी लोग विचार करें।

### (६) छठे रलोक के क्षेप साधन की युक्ति —

पूर्वसाधित कल्प से व्यतीत वर्ष = १९७२९४७७२६।

१९७२६४७७२६ $\times$ १२ =२३६७५३७२७४८=सौरमास।

= ४४०। ४४० शाकारम्भ समय में--

इष्टशाका

= ?36050 × x355 + 536x = 626£65824\*

गताधिमास इष्टचान्द्रमास

= 73464367685+676468854=

= २४४०३०३४२३३

### श्रव श्रनुपात करते हैं---

कल्पमास में कल्पचान्द्रमास घटा हुआ कल्पचन्द्र मन्दकेन्द्रभगगा मिलता है तो इष्ट-चान्द्रमास में क्या इस अनुपात से भगगात्मक चन्द्रकेन्द्र ==

	_	१४२ <b>३३</b>	× ३ <b>८३१</b> ८ <b>६</b> ४१४२	ì
	<u> </u>	00000	1	
१	२४४०३०३४२३३	१	<b>x3</b>	
२	४८८०६•६८४६६	२	१०६८६६	
₹.	७२२०६१०२६६६	ą	१६०२९६६	
8	६७६१२१३६६३२	ሂ	२६७१६६५	
5	१६४२२४२७३८६४	Ę	<b>३२०</b> ४ <u>६</u> ६८	
3	२१६६२७३०८०७	૭	१६६०४७६	
		5	४२७४६६४	
		3	8232028	

<sup>\*</sup> २ श्लोक का क्षेप साधन देखें।

८७ १९४२२४२७३८६४. 

 $8845660, 46802 (2+\frac{13833260000}{60233366800} = 2+\frac{3}{6}$ स्वल्पान्तर से।

यहां भ्राचार्य ने छन्द के भ्रनुरोध से सुखार्थ ( $\varsigma+\frac{9}{3}$ ) की जगह ( $\varsigma+\frac{9}{2}$ ) की ग्रहरा किया, यह कल्पना की जाती है।

यहां घ्यानग्रहोपदेशाध्याय का क्षेप साधन समाप्त हुन्ना ।

# ब्राह्यस्फुटसिद्धान्तः

पृृथूदक स्वामिकृतवासनाभाष्य समेतः गोलाध्यायः

# अथ गोलाध्यायः

ग्रहनक्षत्रश्रमणं न समं सर्वत्र भवति भूस्थानाम् । तद्विज्ञानं गोलाद्यतस्ततो गोलमभिषास्ये ॥१॥

वासना० — ग्रसंभवे नक्षत्रािग ग्रहाइचैकस्मिन्कपाले तद्वशेन चोपर्यंधइच स्थितानां मकरकर्क्यादौ.....वौदिन निशा प्रवृत्तिर्देवानाम् । तथा रवींद्वोराव-रणं राहुकृतं तथा दर्पणोदरायां पृथिव्यां । समुद्राद्वीपार्वास्थिता परतः परतो द्विगुराः श्रन्येषां महाप्रमाराचतुरश्रमेरुपक्षे । सूर्येद्वयं चन्द्रद्वयं नक्षत्राराि चतु-ष्पंचाजिनशास्त्र इत्येवमादिसर्वं निरुपपत्तिकं कपोलव्यायानपरायगानामसत्प्रज्ञा-विलासितमाशक्यं गोलप्रयोजनकथनपरत्वेन प्रतिज्ञासूत्रमियमार्या सकलगोला-ध्याये स्यादादौ प्रयुक्तेति । तद्यथा ग्रहं नक्षत्रस्रमणं न समं प्रतियोजनमपीयं प्रतिज्ञा तिष्ठतु तावत्सर्वत्र लंकास्थानामुपरि यो ग्रहः समेरुपस्थानां दक्षिएाक्षिति-जासकृत् । पश्चिमेरुपरिमलंकायामुत्तरक्षितिजासकः । एवं सपवलंको परिग्रहो यमकोद्यां पश्चिमक्षितिजासक्त.....रोमकवासिनां पूर्वक्षितिजासकृत् इत्याद्यदाह-रगानि गोलादेव ज्ञायंते, नान्यत इति । प्रतिज्ञाकु.....या । यस्माद्भूगोल-काकाराभपंजरोऽपि गोलकाकारो यतो भूगोलं परिवेष्टचरिथ.....ज्ञाने समं सर्वत्र भूस्थानां न समं न तुल्यम्, सर्वत्र सर्वदेशेषु भूस्थानां भुवि स्थितानां द्रष्टृ शामित्यर्थः । तद्विज्ञानं गोलात्तदवगतिगोला, यतौ यस्मात्ततो गोलमभि-धास्ये, तस्माद्गोलं वक्ष्ये इति सूत्रार्थः। ननु च ग्रहनक्षत्रभ्रमणं यदि न तुल्यं 'तुल्यं' वा तत्स्वदेशस्थैः द्रष्ट्भिः, तत्र यथा दृष्टमूपलभ्यत एवमूच्यते। तद्वि-ज्ञानं गोलादिति । ग्रथासमं भ्रमग् समीक्रियते । गोलज्ञाने नैतदिप न शक्यते वक्तुम् । यतो नियता ग्रहगतिः अन्यथा संख्याया ग्रनुपलब्धिरेव स्यात् । तस्मात् गोलारंभप्रयोजनकथनपरिमदमायीसूत्रमसंबद्धिमव शक्यते । भिप्रायो भट्टब्रह्मगुप्तस्य यथा दूरविप्रतिपन्ना भुवनकोश्चविदोऽन्यथा सर्वमेव व्या-वर्णयंति । भू.....मंहाप्रमाण्यत्वं दर्प्यादेशाकारतां च कथयन्ति मेरोश्च महा-प्रमारात्वं शवाकारतां च । तत्पृ.....सक्तो ध्रुवश्च ग्रहनक्षत्रािं चावलंब-मेरोरधोभागेऽस्माभिरुपरिस्थितानीवोप.......तद्वशेन वार्कादीनां प्रतिदेवासिकावुदयास्तमयौ सर्वेषां यत्र तत्र स्थितानां द्रष्ट्रणां । तुल्ये......मक-रादिदिव्यदिवसस्य सौम्यमपमण्डलार्धमेषां द्यमित्यादिना निकारणमित्येव-मादिवक्ष्यमाण्यस्थपर्यालोचनयाचार्येणोक्तम्, तद्विज्ञानं गोलादित्यतः

उच्यमानं शोभनं प्रपंचेन । तत्र तत्रायां सूत्रे व्यावर्णयिष्यामोऽत्रालं भवित्विति विस्तरेण प्रकृतमभिधीयत इति । इदानीं गोलस्वरूपपत्तिपादनायार्यामाह—

> श्रशिबुधकुजार्कसितगुरुशनिकक्ष्यावेष्टितो भकक्ष्यांतः। भूगोलः सत्त्वानां श्रुताश्रुतैः कर्मभिरुपात्तः॥२॥

वास०---शशीबुधश्चेत्यादिद्वन्द्व:-तेषां कक्ष्याः शशिबुधसितार्ककुजगुरुशनिकक्षाः, कक्ष्यशब्देनात्र मध्यप्रहभ्रमणप्रदेशवृत्तमुच्यते ताभिवेष्टतः, तासां मध्ये भूगोल इत्यर्थः । अयमर्थः भूगोलमध्यं मध्ये कृत्वा स्वयोजनकर्णेन यद्वृत्तमुत्पाद्यते तत्कक्षामंडलं तच्च भूगोलाद्बहिः शशिनः ततो बुधस्य । ततोऽपि युकरविभौम-गुरुरानीनां क्रमेरा केक्याः सप्त ताभिर्वेष्टितोऽयं भूगोलो भकक्ष्यांतः, ज्योतींषि । तेषां कक्षागोलनक्षत्रविशेषः सर्वगिंगितगम्यः क्षेत्रत्वात् । यथा वैयाकरएाः प्रकृतिप्रत्ययागम लोपवर्एाविकारागमादिभिः साधुत्वं शब्दस्य प्रति-पद्यन्ते । याज्ञिकाश्चतुद्योदिभिर्यज्ञादीन् । विप्रवराश्चेत्युत्पलानालादिभिः सिरा-दिवेधातप्रतिपद्यते । एविमिहापि सांवत्सरा ज्याधनुः रारभुजकोटिकर्णावलंबक-शलाकावृत्तादिभिः क्षेत्रगिएतिविशेषैश्च, सत्यपूर्वकैः सत्यं ग्रहभ्रमगुघरित्री-संस्थानादिकं गोलातत्त्वं प्रतिपद्यते । गोलकलक्ष्यैः लक्षणैः क्षपितपरमतैः वृत्ता-त्वदेववृत्तत्वं च । गोलभगोलयोरुत्तरार्यायां निराधारत्वं च । मेरोर्महत्त्वं निरा-कारणं व स्वल्पत्वाद्भूमेवासक्तिः, कक्षोन्नात्य निर्घार्यंते ग्रहनक्षत्रावलम्बनं भपं-जरं भ्रमविशेषैभिन्नदेशजनितैश्च मेरुवशेनोदयास्तमयनिवृत्तिः भिन्नाकोदय-प्रतिपादनेन महर्दिदोरावरणिमत्यादि न राहुनिवृत्ति भूगोलस्य समुद्रपरिघेरन्यो महान् परिधिनास्तीति शेषसमुद्राणां महत्त्वनिराकरणं मण्डलमुदयमण्डलमुन्मंडल-मित्यादि विज्ञेयं लब्धार्थः । ततोऽपमंडलप्रमाग्गमेवान्यद्वृत्तम् । षष्टिशंतत्रयां-कितं मेषादेरारभ्य यावति प्रदेशं चन्द्रपातो वर्तते। तत्र बच्वा ततोऽर्धचकांतर-प्रदेशे द्वितीये वंधः कार्यः। यथा च प्रथममर्धमपमंडलादुत्तरेगावितष्ठते, द्वितीय-मर्धं दक्षिग्णेन तथा च तिर्यंग्निदध्यात्। यथा तदपमंडलयोरंतरे विक्षेपभागा भवन्ति । नवतितमे भागे बंघाभ्यामुभयतोऽपि तिद्धमण्डलमेव । एविमयं चन्द्र-कक्ष्या बुघादीनामपि स्वयोजनकर्णप्रमागानुपातेन स्वकक्ष्यापंजरः कार्यः । ते पंजराद्वहिंबु वस्य ततोऽपि तस्येत्यादि तावद्यावदष्टमो भपंजरः। सर्वेषां पंजरागाां दक्षिग्गोत्तरंत्तकयो वोधौक्रत्वा ततो या शालाकां सुदीर्घां समस्तपंजर स्वस्ति-कार्धत्तेंदिनीमुभयपार्श्व विनिर्गताग्रां दक्षिगोत्तरा यतौ पंजरभार सह प्रवेशयेत्। भ्रपमंडलानि सर्वेषां पूर्ववत् । भ्रपमंडलाच्च विमंडलानि चन्द्रवत्, इयांस्तु विशेष: स्वपठितविक्ष पभागा यथा नवतितमे भागे बंबाभ्याममंडलयोरंतरं भवति तथा निदघात् शेषं सामान्यम् । रविकक्षायां मण्डलं नास्ति यतः तद्गत्यवधित्वेन सर्वेषामेवग्रहाणां गतयो दक्षिणोत्तराः कल्पिताः तद्गतिश्चापमंडलमेव भकक्षायां

प्रति नक्षत्रं भिन्नो विक्षेपः । पाताभावात्तत्रापि न प्रदशाम् । स्वाहोरात्रवृत्तानि क्रान्त्यग्रेषु मेषादीनां ग्रहाणां च प्रदर्शयितव्यानि ततः सर्वकक्ष्यामध्येयाः । शाला-कायां भूगोलाकारामृदान्येन वा प्रदर्शयितव्या । एवमयं भूगोलः कक्षापिरविष्टितो भक्षांतस्ततः पूर्वस्वस्तिके सूत्रस्यैकमग्रं वद्ध्वा द्वितीयमग्रं भुवं भित्त्वा परस्वस्तिके बध्नीयात् । तत उपर्यधः स्वस्तिकयोभू भेदिसूत्रं बध्नीयात् । ततो भूगोलस्योपिर यत्र सूत्रेण कृतो भेदस्तत्र भूप्रदेशे लंका । यत्राधः तत्र सिद्धपुरम् । यत्र पूर्वेण भेदस्तत्रयमः कोटी यत्रापरतः सूत्रभेदस्तत्ररोमकं पत्रोत्तरेण यः शलाकाभेदो भूगोले तत्र मेर्ध्यत्र । दक्षिणेन तत्र वडवामुखम् । विनिगतशलाकाग्रयोश्च ध्रुवौ प्रदर्श्यौ लंका यमकोटी सिद्धपुरी रामकानामवगाहीयः परिणाहो भुवः ससर्वो निरक्षो देशश्च । सर्वत्र चिह्नानि कारयेत्, एवमयं लंकायां गोलः समरावाविष्ठते । अथायमेवैकोभपंजरः प्रदर्श्यते सर्वग्रहिवशेषस्तत्रैव । यतो भिन्त-कक्ष्यागता अपि नक्षत्रगता एव भकक्ष्या गता इवोपलभ्यन्ते । तस्मादेक एव कार्यः ग्रस्माभिश्च वस्तुदर्शनं कृतम्, तत्र लंकास्थस्य द्रष्ट्विषुवन्मंडलमेव सममण्डलं प्राच्यपरं येन द्वितीयं तद्यादेवाः भूगोलमेरुवडवामुखस्थानां ध्रुवयोश्चोर्ध्वं स्थानप्रदर्शनार्थमार्यामाह—

## रवे भूगोलस्तदुपरि मेरौ देवाः स्थितास्तले दैत्याः। रवे भगगाक्षाग्रस्थावुपर्यघरच तौ ध्रुवौ तेषाम्।।३।।

वास॰ — खे वियति भूगोलस्तदुपरि मेरौ देवाः स्थिताः तस्मिन् भूगोले उपरि मेरः तत्र देवाः स्थिताः तले दैत्याः तस्यैव भूगोलस्याधो दैत्याः वडवामुखवासिनः खे भगराक्षाग्रस्थौ खे आकाशे भगरास्याक्षौ भगराक्षौ तयोरग्रे स्थितौ भगराा-ग्रस्थौ उपर्यंधरुच ध्रुवौ । एकमुपरि द्वितीयोधस्तेषां देवदैत्यानां यो देवानामुपरि दैत्यानामधो दैत्यानामुपरि यः स देवानामधः स्थित इत्यर्थः। नित्विदमत्याश्चर्य-मुच्यते खे भूगोल इति । यावदल्पस्थायि मूर्तिमत्पदार्थं स्याकाशे न स्थितिर्दः -इयते । किंमुत महाप्रमाशिकया भुवो नगनगरसमुद्रद्वीपगजतुरगरथाद्यनेका-अर्याकुलाया नैतच्चोद्यम् । स्वरूपत्वात् यथाग्निदंहनात्मको वायुश्च प्रेरणात्मकः उदकं वक्रेदनात्मकं न तेषां कश्चित्स्वविषये प्रयोजकः एविमयमपि भूधारगात्मि-कानघार्यमाणा तस्मात् खे स्थिरेयं सर्वं घारयति । स्रथ पतंत्येव तिष्ठतु कानः क्षतिरिति चेत्। तदापि न यतो लोष्ठादयः शिशुभिरुपरिक्षिप्ता भुवमाससाद-यन्तो दृश्यन्ते । मन्दक्षितिः पततीव । ग्रसाध्यमेवैतदतिगुरुत्वाद्भूमेः ग्रथवावश्यं पतित, तथापि क्व पततु अध इति चेत्। किमिदमधोनामप्रतियोगि सापेक्षश्चाधः शब्द: यथा सत्व विशेषगानामस्मदादीनामधो भूरुपरिवियदेवमस्याः भूताया भुवः किमधः स्वमिति चेत्। तर्हि सर्वतो युगपत्पतनप्रसंगः, तत्रोपरि पांर्वंपतने न नस्तोदृष्ट विरोधात्। ग्रधश्च निरस्तसम्बाधः पतनादाधारविशेषः

परिकल्पते इत्यभिप्रायेगा तदिप न शक्यते वक्तुम् । तस्यापि मूर्तत्वादन्यस्तस्यान्य इत्यनवस्थाप्रसङ्गः, ग्रथोच्यते स्वशक्त्यासौ बिष्ठतीति तत्प्राथम्यादेव सा शक्तिः कथं भुवो न परिकल्पते । भूमेश्चावश्यं शक्तिः परिकल्पयितुं बुध्यते । ग्रन्यथा सर्वतोऽपि परस्परमधो तावेन सत्त्वानां भवस्थितेरेव न स्यात्। समुद्रादीनामपि च तस्मान्मूर्तिमदाधाररहितो विशिष्टशक्तियुतो भूगोलः खेऽवितष्ठते इत्युपपन्नम् । श्रथ मूर्तं परिकल्पते । कश्चिदाधारस्तित्सिद्धसाध्यताचार्येणैवोक्तत्वात्प्रागार्याया-मस्माभिरपि धर्माधर्मनिबन्धनी स्थितिर्वाद्यादीनामत्युपगम्यते । प्रमाणभागेव प्रावी एम । यतो वैयाकरणाना कर्मघारय समासोदाहरणीभूता वयं चतुर्वेदत्वात् केवलं शास्त्रहष्टचा परीक्षध्वम् । युक्तिमदयुक्तिमद्वाद्याख्यात-मार्यासूत्रम् । स्रत्र वलायचार्य क्षितिगोलः समवृत्तः खेँ किल तिष्ठति समंतत-स्त्वपदे सामान्यैः सत्वानां ग्रुभाशुभैः कर्मभिरुपात्तः । तथा वसिष्ठसिद्धान्ते-जगदण्डखमघ्यस्था महाभूतमयो क्षितिः भवाय सर्वसत्वानां वृत्तगोल इव स्थितेति गोलवासनयाधुना प्रदर्शते । तद्यथा स्वदेशाक्षाग्रादुत्तरतोयः शलाकाग्रहमपकृष्य स्वगोलोकोपरि स्वस्तिकवेधे प्रवेशयेत् । तद्दक्षिराग्रादधखगोलो स्वस्तिकवेधे द्वितीयमग्रं न्यसेत्। एवं स्थिते गोले स्वयमेवार्यार्थावगतिर्भवति । भूगोलस्योपरि यत्रायं शलाकाभेदस्तत्रमेरुर्देवनिवासः यत्राधस्तत्र दैत्यनिवासो वडवामुखमेको ध्रुवो मेरोरुपरि शलाकाग्रे द्वितीये वडवामुखस्योपरि शलाकाग्रे श्रमुरसुराश्च परस्थमधो मन्यन्ते । अत्र चार्यभटः सुमेरुः स्थलमध्ये तदधो वडवामुखं जलमध्ये । श्रसुरसुरा मन्यन्ते परस्परमघः स्थि<mark>ता</mark>नियतम् । श्रन्यथा पञ्चसिद्धान्तिकायाम्-तरुनगनगर न रामसरित्समुद्रादिभिः चितः सर्वः विबुधनिलयः सुमेरुस्तन्मध्येऽधः स्थिता दैत्याः सलिलतटासन्नानां वाडवमुखी दृश्यते यथा छाया तद्वद्गतिरसुरागां मन्यन्ते तेऽप्यधो बिबुधान् । तथा लङ्कासिद्धपुरयोर्यमकोटी रोमकयोश्च परस्पर-मध्ये भावः, एवं प्रतिपदमप्यघो भागकल्पना । न च परमार्थतया भूमेरुपर्यंघो भागकल्पना शक्यते वक्तुम् । यतः सर्वतोऽपि सत्वानां स्थितिः, यतो भूगोलो त्रिचतुष्पदकोटजलधरनगनगरतरु जलधारादिभिः कदंबपुष्पग्रन्थिरिव केसरैः प्रचितः । अत्र त्वार्यभटः-यद्दत्कदंबपुष्पग्रन्थिः प्रचितः समन्ततः, कुशमैः तद्वद्धिसर्व सत्त्वेर्जलजैः स्थलजैश्च भूगोलः । तथा चार्यालाटदेवः । पर्वतनदीसमुद्रौः पुरराष्ट्र-द्रुमचतुष्पदाश्वाद्यैः प्रचितः कदंबपुष्पग्रन्थिरिव समन्ततः कुसुमैः यच्चाचार्येगा तदुपरीत्यादि, तदिप धर्माधर्मप्रदेशापेक्षया सर्वतः सर्वेषामधौभूरुपर्याकाशमेत-त्प्रदर्शितं च भवति मूर्तिमदाधारनिरासायवा । यैश्चोक्तं मध्ये मेरुः तैः समुद्रा-वस्थितिर्न ज्ञाता जलात्स्थलभागापेक्षया यच्च निरक्षदेशोपरि विषुवन्मण्डलं षष्टि-घटिकांकितं प्रदर्शितमासीत्तन्मेरुस्थितानां क्षितिजम् । यच्चोन्मण्डलं तत्सममण्डलं पूर्वापरयोः क्षितिजे ग्राक्षयोश्च तस्य लग्नत्त्वाद्वडवामुखवासिनामपि एवमेव मुद्रोपि परिकरवदुभयेषां मेषाद्यपमण्डलार्घं क्षितिजादुपरिस्थिति हश्यं स देवानां तुला-

द्यार्घं तद्वद्दैत्यानां मेषतुलाद्योरादित्वं विषुबदुपलक्षगार्थं लंकासमोत्तरे.....रवा-वासिनां दक्षिणतो लंकोत्तरतो मेरुः यमकोटोसमुत्तरस्थानां दक्षिणतो यमकोद्यु-त्तरतो मेरुः सिद्धपुरसमोत्तररेखास्थानां दक्षिएतः सिद्धपुरमृत्तरतो मेरुः रोमक-समोत्तरस्थामासुत्तरतो मेरुदक्षिरणतो रोमकम् । मेरुस्थानां पुनः सर्वतोऽपि । सर्वा एव दिशो यतो दिक्परिकल्पना सवितृवशा यत्र विवस्वानुदेति सा प्राची। यत्रास्तमेति सा प्रतीची न तत्राथोच्यते यत्र दिनादौ प्रथमं दृश्यते सा प्राची, यत्र दिनार्धं सा दक्षिगा, यस्यामदृश्यो याति सापरा यस्यां रात्रार्धं सोत्तरा विषुवति मेरुस्थानां पुनः सकृदुदित एव । सर्वास्यपि दिक्षूपरि भ्राम्यन्ननेकशो हर्यते । ग्रतो दिग्विभागकल्पना । न तत्राथोच्यते यत्र दिनादौ प्रथमं हश्यते सा प्राची तदपि न यतः स्फुटं सौरसावनयोर्यु गपद्दिनादिनं भवति । कदाचिद्भवतीति चेत् तथापि न नियते प्रदेशे, एवं मेरुवडवामुखरेखास्थानां गोलन्यासः प्रदर्शितः । तदन्तरस्थानां देशान्तरकर्मगा पूर्वापरत्वं भिद्यते । तत्प्रदर्शनायाध्वतुल्येऽतरे भूगोलं भ्रमयेत् । यदि पूर्वेगा स्वदेशस्तदा पश्चिमतः । ग्रथ यतो परदेशस्तदा पूर्वेगा भ्रमयते । शलाकाग्रनिवेशेवतुल्याधेंऽर्धममीष्टदेशे गोलविन्यासः इत्येवं दिशात्र मे तत्प्रदर्शितं स्वबुद्धचा कालसमसूल्यमिति । एवं मेरुवडवामुखस्थानां ध्रुवयोः संस्था-नमभिधायेदानीं भचक भ्रमणादि प्रतिपादनायाह -

### ध्रुवयोर्बद्धं सव्यगममराणां क्षितिजसंस्थमुदवक्रम् । श्रपसव्यगमसुराणां भ्रमति प्रवाहानिलाक्षिप्तम् ॥४॥

वास०— ध्रुवयोर्बं ध्रुवतारयोर्नियमितं, सव्यं गच्छतीति सव्यगमः, प्रदक्षिण्गमित्यर्थः, स्रमराणां मेरस्थानां क्षितिजसंस्थं क्षितिजवेशेषाज्जातं यन्मण्डलं तिक्षितिजम् । यत्राकाशं भूम्या सहैकवद्भूतं लक्ष्यते । परितोऽपि तत्र स्थितं तदा सकुमुद्रु वक्षं नक्षत्रचक्षं विषुवन्मण्डलमित्यर्थः । स्रपसव्यगमसुराणां तदेवोदचकं स्रप्तदक्षिणां देत्यानां क्षितिजासक्तमेव भ्रमित क्षणमिप स्थिरं न भवति । प्रवाहानिलाक्षिप्तं नित्यं प्रवहणेन पर्चाद्गतिना मारुतेन प्रेरितमिति यावत् तदेत्यः चक्रं तद्देवानां भूलोकोपरिस्थितानां क्षितिजासक्तं यतो विषुवन्मण्डलमेव भचकं तच्च मेरस्थानं क्षितिजमेव व्याख्यातम् । तत्रस्था भ्राम्यते प्रवाहानिलेनतदेवैः प्रदक्षिणां सहस्यते । दैत्यैश्च प्रदक्षिणां यतस्तेषां परस्परमधोभावः यथा कश्चित्तमिप दक्षिणे हस्ते कृत्वा यदासन्नो भवति, तदा तत्प्रति रूपकारस्य वामे हस्ते तत्र लक्ष्यते, इत्येवं सव्यापसव्यसिद्धः, एतच्च खगोलोपर्यधः स्वस्तिकयो शलानकाग्रे प्रवेश्य सर्वं प्रदर्शयेत् । गोलो ध्रुवयो बद्धमिति व्याप्तिप्रदर्शनार्थम् । ध्रुवाभ्यां यावद्भचकस्य द्वादशराश्यात्मकस्य व्याप्तिमुरुजबंधानामिव मध्यावभूगोलमध्यं यावत् । स्रयमभिप्रायो द्वादशराशा व्यतिरिक्तो भपंजरे सकक्षे सभूमिके कश्चित्रदेशे नास्तीत्यर्थः । सन्ये तु पुनरन्यथा व्याचक्षते । भूगोल एव प्राङ्मुखो भ्रमित

भपंजरः, सोडुचक्रं स्थिर एवमपि सव्यापसव्यसिद्धः तुल्यैव, न चैवं, यदि भूगोलो भ्रमित तद्वायसादयो न स्वं निलयं खात्पुनरासादयेयुर्वारिमुचोऽपि नैकत्र बहु-वारिमुचः स्युः तस्य तस्य प्रदेशस्याग्रतो गतत्त्वात् । ध्रुवादयो नित्यं प्रत्यगतयः स्युः, भूगोलवेगजनितप्रभंजना क्षिप्ताः तरु शिखार्यादयोऽपि विदीर्येरन् । भ्रत्र वाराहिमिहिरः यद्येवं शयनाद्या नखात्पुनः स्वनिलयमुपेयुरित्यादि तस्मात् भूभ्रमित भचक्रमे च भ्रमित प्रवाहानिलाक्षिप्तम् । तथा चाचार्यवराहिमिहिरः मेरोः समो-पिर विवत्यक्षोव्योग्निन स्थितो ध्रुवोऽघोऽन्यः तत्र निबद्धा मारुता प्रवहेन भ्राम्यते भगगः । तथाचार्यभटः, उदयास्तमय निमित्तं नित्यं प्रवहेन वायुना क्षिप्त लंका-समपिश्चमगो भपंजरः सग्रहोभ्रमित मेरु वडवा मुखस्थानां क्षितिजासकं एवार्य-सूत्रार्थः । तथावयौ लिषे सिद्धान्ते । तस्योपिर ध्रुवः खं तद्बद्धं पवनरिक्मिभश्च-काम । पवनाक्षिप्तं भानामुदयास्तिमिषं भ्रमित । तथा च वसिष्ठे सिद्धान्ते । तत्राग्रे ग्रहनक्षत्रतारागण् समावृतः । ग्रजस्रं भ्रमित व्योग्निज्योतिर्गणः प्रदक्षि-एम् एतेषु सर्वनाम्ना मेरुपरामर्शं इति एवं मेरू परामर्शं इति एवं मेरु वडवा-मुखवासिनां ध्रुवं न वक्रं संस्थानभ्रमण्मिष्धायाधुना परिशेष देशार्थमाह—

# . म्रन्यत्र सर्व तो दिशमुन्नमित भपंजरो ध्रुवोनमित । लंकायामुडुचक्र पूर्वापरगं ध्रुवौ क्षितिजे ॥५॥

वास०—ग्रन्यत्रान्यस्मिन् देशे मेरु वडवामुखर्वाजते, सर्वतोदिशं सर्वास्विपि दिक्षु उन्नमित भपंजरः क्षितिजाद्विप्रकृष्टो भवित । भानां पंजरो भपंजरः नक्षत्र चक्रः विषुवन्मण्डलमित्यर्थः ध्रुवो नमिति, ध्रुवः खमध्यात्तिर्यग्भवत्युत्तरेण स्थल-भागे मेरोरन्यत्र वडवामुखादेव जलभागे लङ्कायामुडुचक्रः पूर्वापरगं लंका ग्रहणं निरक्षदेशोपलक्षराण्यः तत्रोडुचक्रः पूर्वा परगमुपर्यधोगमित्यर्थः । ध्रुवे क्षितिज तत्रेव निरक्षदेशे स्थितस्य द्रष्टुकत्तरदक्षिरणयोध्रुवो क्षितिजासक्तौलक्षेते इत्यर्थः । ग्रयमिप्रायो भूगोल काकाराभपंजरमध्यस्थिता च तदवबोधाय ध्रुवतारायां बध्नीयात्, एवं पूर्वस्वस्तिकाद्यमकोटी भूरोमकाधंभेद्यपरस्वस्तिके बध्नीयादेवं दिक्षरास्वस्तिकालका भूसिद्धपुराधंभेद्युत्तरस्वस्तिके बध्नीयात् । ततो भूगोलयोः तुल्ययोविभागकल्पनया तुल्यत्वमुपपद्यते । लघवोऽल्पे वृत्ते महित महातो राशिभागादयः कल्पाः किल्पताश्च भभूगोलयोः सतुल्या भवन्ति । तेन यावित रामध्रवादिषु वृत्तावित मेरोनिरक्षदेशे, एवं शेषेष्वपि योज्यम् । सर्वाण्येव केन्द्राणि परस्परं भभूगोलयोश्चतुर्भागे भवन्ति, चतुर्भागाश्च नवितर्भागाः भचक्रांशानाम् । द्रष्टुश्च यत्रताविस्थतस्यातिभूगोलोपरि । स च द्रष्टा भूगोलाधं परयित, द्वितीयमर्थं भूव्यवहितं न पश्यित तेन मेरोर्याविद्धः भूगोलाधं कश्चिद्दक्षितो भवित, ताविद्धस्तस्य भूगोलान्दैः ध्रुवो नमत्युत्तरेण । एवं वडवामुखादिप ताविद्धिरेवां-शैनिरक्षदेशोपरि विषुवत्स्वस्तिक्तौ भवतः एतच्च स्वदेशाक्षाग्रे सोन्मण्डलं सध्रुवं

गोलं विन्यस्य प्रदर्शयेत् । याविन्तरक्षदेशं तत्रोडुचक्रं पूर्वापरगं ध्रुवौ क्षितिजे भवतः । निरक्षदेशं दक्षिण्स्थं भूगोलाधं देवा न पश्यंति, भूम्यधंवत्तद्वदुत्तरस्थं दैत्या ग्रिप एवं निरक्षादुत्तरस्था दक्षिण् ध्रुवं न पश्यंति, दक्षिण्स्थाश्चोत्तरिमिति । यदि पुनः समा भूः स्यात्तन्मेषाद्यपमंडलाधं सदाह्रयं स्यात्, समुद्रादुत्तरस्थानां ध्रुवश्च भूम्यासक्तो न स्यादेतच्च प्रत्यक्षविरोधान्नभपंजरस्य तुच्छग्राकारतायां कल्पमानायां द्वादशस्विपराशिषु, स्थितोऽर्कः सदाह्रयः स्यादस्माकं । यतो मेरोच्यंवधायकत्वं निराकृतं । पूर्वमेवास्माभिरथ गोलकाकारायामेव भ्रुवि तच्छत्राकारम्, तन्मेश्स्थानां सदाह्रयं नित्यमह्रयं च वडवामुखवासिनां भूव्यवधानाद्यतः सकलमेवापमंडलं तच्छत्रं तथा लग्नादीनामवलंबकाक्षादीनां चानुपलब्धेः पापीयानपपक्षः तस्माद्भूगोलकाकारा भपंजरश्चात एव विषुवति निरक्षदेशेषु व्यासार्धम्यलंबको मेश्वडवामुखयोर्लंबकाभावः, अक्षश्च निरक्षे नास्ति लंबश्च नवतिर्भागाः, यतो ध्रुवोन्नितरेवाक्षः एवमन्तरेऽपि योज्यमिति । ग्रत्र लाटाचार्यः तस्मात्क्षेत्रोहे - शाद्यथा सर्वतो दिशम्, तथा उन्नमिति भगण्चक ध्रुवः खमध्यं परित्यजित । भित्वा क्षितितलमुत्तिष्ठतीव मेशः प्रकृष्टस्थः । सेवान्येषां तिष्ठत्युपरि ज्योतिर्गेगोऽप्येवम् । एवं तावहेशभेदाद्भचक्रदर्शनभ्रमणे भेदान्प्रतिपाद्येदानीं भगवतो भास्करस्य तानेव प्रतिपादयन्नाह—

देवाः सव्यगमसुराः पश्यंत्यपसव्यगं रवि क्षितिजे । विषुवति समपश्चिमगं निरक्षदेशे स्थिताः पुरुषाः ॥६॥

वास०—पश्यंतीति सर्वत्र योज्यम् । देवा मेश्वासिनः सव्यगं प्रदक्षिण्गं प्रमुरा वडवामुखवासिनोऽपसव्यगमप्रदक्षिण्म्, किमत्याह रिवं क्व ? क्षितिजे मंडले । भूम्यासक्तिमिति यावत्, कदाविषुवित विषुवद्वृत्तस्यं विषुविदवसे इत्यर्थः समं पिश्चमगं निरक्षदेशे स्थिताः पुरुषा तत्रैव विषुवित समोपर्यधोभागगं लंकादि निरक्षदेशस्या द्रष्टारः पश्यन्ति रिविमिति सूत्रार्थः । एतच्च खगोलोपर्यधः स्वस्तिकविधयो खः शलाकाग्रे प्रवेश्य गोले प्रदर्शयेत् । विषुवत्स्वस्तिके चार्कोपलक्षितं चिह्नं कृत्वा भगोलं भ्रमयेत् । देवासुरप्रतिपादने निरक्षदेशप्रतिपादने च खगोल-दिक्षणोत्तरस्वस्तिकयोरथः । शलाकाग्रे कृत्वा शेषं सामान्यमिति । भ्रत्र च लाटदेवः—हग्वरिजे स्वे विषुवित पश्यत्यमराः प्रदक्षिणगमक्म् । भ्रपसव्यगितिद्तियाः समरेखस्यं बुधाश्रमिणः निरक्षदेश वासिनो बुधाश्रमिणस्तस्य, तथा च वराहिमिहिरः प्रोद्यन्तविरमराणां भ्रमत्यजादौ कृतृत्तगः सव्यम् । उपरिष्टाल्लंकायां प्रतिलोमश्चामरारीणाम्, इदानीमपमण्डलाधं दर्शनात्—द्वारेण देवासुरादि वासयोः प्रतिपादनार्थमाह—

सौम्यमपमण्डलार्धं मेषाद्यं सव्यगं सदा देवाः । पश्यन्ति तुलाद्यर्घं दक्षिण्मपसव्यगं देत्याः ॥७।

वास०-सौम्यमुत्तरमपमंडलार्वं चक्रार्धं मेषाद्यामजाद्यं सव्यगं प्रदक्षिरागं देवा नित्यं मेरुवासिनः पश्यन्त्यवलोकयन्ति, तुला ऊर्ध्वं दक्षिरामप्रदक्षिरागं दैत्या वडवावासिनः सदा पश्यन्तीति वाक्यशेषः, ग्रेत्रार्यभटः देवाः पश्यन्ति भगोलार्ध-मुदङ् मेरुसंस्थिताः सन्यम् । अपसन्यगं तथार्धं दक्षिगावडवाम्खे प्रेताः अत्र मेषतुलाद्योग्र हुगां विषुवदुपलक्षगार्थं तेन खगोलोपर्यधः स्वस्तिकयोः शलाकाग्रे निधाय सर्वं प्रदर्शयेत्, तत्रापमंडलविषुवन्मंडलयोर्यंत्र संपातो मेषादौ तत्र विषुवित रिवर्भवति, तत्रस्थरचार्धस्त्रत्रबिंबो मेरुस्थैदिनमेकं वडवामुखवासिभिश्च परितो भाम्यन्मेथीवलीवर्दवद्हश्यते, ततोपमंडलगत्योदगुत्तमं हश्यते प्रतिदिनं तहिन-क्रान्तितुल्येनान्तरेगा यावन्मिथुना तं तत्रस्थश्चतुर्विशत्या भागैर्विप्रकृष्टः क्षितिजो मेरुवासिभिर्दं श्यते परितो भ्राम्यन् ततश्चापमंडलागत्या प्रतिदिनं नमन् लक्ष्यते । यावत्तुलादावपमंडलविषुवत्स्वस्तिकसंपातम् । तत्र पुनः खछत्रविबो देवासुरैः पूर्वस्वस्तिकावस्थित इव लक्ष्यते, परितो भाम्यन् तद्घो देवैर्न दृश्यते । यतस्तेषां विषुवन्मंडलमेव क्षितिजं । ततश्चापमंडलगत्या दक्षिगादुन्नमन्दैत्यैर्द्धश्यते यावृद्धनुषोंऽते तत्र चतुर्िशत्या भागैः। हन्नमनं कृत्वा पुनर्नतिक्रमेगा मेषादि-स्वस्तिकं या दृश्यते परतोऽस्तं याति क्षितिजवशादतो मेषादौ देवानामर्कोदयः। तुलादौ ग्रस्तमयो दैत्यानां विपरीतं चन्द्रादीनामव्यवक्षिप्तानां दर्शनमेवं योज्यम्। विक्षोपवशान्नतोन्नतकल्पना स्विधया योज्या एवं मोषादिराशिषट् गः । सदोदितं देवानां तत्रस्थोऽर्कश्च सदोदित एव त्र्यशोत्यधिकं शतं परिवर्तानां ददाति किचि-न्न्यूनं भचक्रवश्यात्तद्वत्तुलादिराशिषट्कं सदोदितदैत्यानां तत्रस्थश्चार्कः, सदोदित एवं अपरं साशीतिशतं ग्रिधिकं किचिन्न्यूनं परिवर्तानां ददाति, भचक्रवशादेव अतो मेषादिराशिषट्कस्थेऽर्के दिव्यो दिवसः तुलादौ राशिषट्कस्थेऽर्केऽदिव्यो दिवसः। तुलादौ राशिषट्कस्थेऽकें रात्रिः, भ्रन्ययाँ दैत्यानां ये पुनर्मकरादिस्थो दिव्यदिनं कर्कादौ रात्रिमिच्छंति, तेषां प्रायेण मेरौ देवाना स्थिता इति यदि मेरौ स्थितास्त-त्कथंमकरादिराशित्रयं पश्यंति, कथंच कर्कादिराशित्रयं न पश्यंति । अर्कस्य चापमंडलादन्यत्रावस्थितिभ्रंमगां वा न शक्यते वक्तुं भवद्भिरतिपंडितैरपि। ग्रत्र वराहमिहिरः मेषवृषमिशुनसंस्थे दिवसोऽर्के कर्कटादिके रात्रिः यैरुक्ता विबु-धानां मेरुस्थानां नमस्तेभ्यः येप्यवोचन्मेषाद्यादिस्थानेषु सनिवृत्तोऽपि एव कथं हरयः, पुनर्न हरयरच तत्रस्थः एतत्सर्वं गोले प्रदर्शयेत्, इदानीममुमेवार्थं स्पष्ट-यन्नाह—

# पश्यन्ति देवदेत्या रविवर्षार्धमुदितं सकृत्सूर्यम्।

वास०—रवेर्वर्षं रिवमंडलमोग इत्यर्थः, तदर्घदेवाः पश्यंति । दैत्याश्च सक्चदुदितमेव सूर्यं मेषादिराशिषट्के चरंतो देवाः पश्यंति सौरेेेेेग् मासान् षड् यावत् । तुलादिराशिषट्के चापरान् षण्मासान्दैत्याः पश्यन्तीत्यर्थः । स्रत्रोपपत्तिः प्रागार्यायां व्याख्याता । तथैवं स्थिते गोले सर्वं प्रदर्शयेत् । अत्र च वराहमिहिरः सकृदुदितः षण्मासान् दृश्याकों मेरुपृष्ठसंस्थानाम् । मेषादिषु षट्सु वरन् परतो दृश्यः । सदैत्यानाम् अत्रलाटश्च संवत्सरार्धममरैः सकृदुद्गत एव दृश्यते सूर्य इति तथार्यभटः रिववर्षार्धदेवाः पश्यंत्युदितं रिवं तथा प्रताः इति । दिव्यानि दिनानि रिवभगण् इति, यदुक्तं मध्यगतावाचार्येण् तिद्हार्यया सार्धया प्रतिपादितं दिव्यमानं, इदानीं द्वितीयेनार्यार्धेन शिशमासाः पितृदिवसा इत्यस्य पितृदिवस्सस्य च प्रतिपादनमाह—

### श्राशिगाः शशिमासार्वं पितरो भूस्था नराः स्वदिनम् ॥५॥

वास० - शशिनं गच्छन्तीति शशिगाः कर्मिगाः पितृसंज्ञिता इत्यर्थः। शशिमासः त्रिशत्तिथयः, तदर्थ पंचदशतिथयः कृष्णाष्टम्यर्धा शुल्काष्टम्यर्धा यावत्पितरः पश्यंति सक्नुदुदितं सूर्यमित्यनुवर्तते पितृदिवसः स च भूस्थाः नरा ग्रस्मदादयः स्वदिनमिति स्वदिनम् । स्वदिनं दिनशब्देनैव सिद्धात्। स्वग्रहरां प्रतिदेशं दिक्सभेदप्रतिपादनपरं स्वोदयात्स्वास्तमयं यावन्नराः सक्रदुदितं सूर्यं पश्यन्तीत्यर्थः । न त्वहोरात्रम्, दृष्टविरोधात्तुल्यत्वाच्च । सर्वत्रैवं दिव्यपितृ-मानयोरपि तदत्र पितृदिवसोपपत्तिः ग्रविक्षिप्ते चन्द्रे सितप्रतिपदादौ भूमध्याद्यत् सूत्रं रिवगोलमध्यं यावन्नीयते तच्चन्द्रगोलमध्यार्घभेदोऽपि भवति तुरुयत्वात्तयोः यंत्र चन्द्रगोलोपरि सूर्यभेदः तत्र पितरस्तेषां तथा मध्याह्नकालतोऽपि चन्द्र-गोलस्योपरितनमधं पश्यंति, वयमधस्तनमधंचन्द्रगोलाधं सूर्यभेदकेन्द्रकल्पनया पद्यामोऽन्योन्यवच्छादनेन तेन । तेन तदा वयं न मनागपि चन्द्रगोलमुपाल-भामहे । यतोऽकंरिक्मपातवशाच्चन्द्रस्य शौक्ल्यम् उक्तं च सुषुम्लः सूर्यरिक्म-रिति वेदे भूगोलवत् चन्द्रगोलेऽपि षष्टिशतत्रय भागकल्पना कार्यो, तर्तास्त्रशद्भावे न द्वादश भागाः भवन्ति । तावांश्च तिथिभोगश्चन्द्रोपरि केन्द्रात्तिथौ द्वादश भागा रिवकेन्द्रं पञ्चादवलंबते । तेनैव क्रमेगास्मद्दृश्येऽर्घे रिवरिश्मपातः, तावच्चा-स्माभिः, सितमुपलभ्यते चन्द्रमसि एवं तावद्यावन्नवत्या भागैः पितृगामस्तमेति । अस्माकं पुनरर्धंसितो भवत्येतच्च शुल्काष्टम्यधोंऽतः परं पितृरात्रिरस्माकं सित-वृद्धिः पितृग्गां पौर्णमास्यंते अर्धरात्रः परासितवृद्धिश्चास्माकं चक्रार्थांतरं ततो पररात्रक्रमेंगा कृष्णाष्टम्यर्घे । तेषामर्कोदयः तेनैवासितापचयेनास्माकं पुनरर्घ-सिततो रात्रिनवके ततस्तेषां पूर्वाह्नकमेणामावास्यांतं दिनमध्यं सितादर्शन-मस्माकं च अत एव स्रमावस्यांतादुभयतोऽपि द्वादशकालांशा यावच्चन्द्रमा नोप-लभ्यते, पौर्णमास्यां तच्च संपूर्णोऽर्कसंनिकर्षविप्रकर्षात्। ये तु प्रतिपदादि पितृदिवसादिमिच्छंति। तेषाम् सर्वमेवं न घटते, तस्मान् मासग्रहणं त्रिशतिथ्युप-पललक्ष गार्थम् । यथा किश्चदाह - मासेन ग्रामादहमागत इति, न च तत्र प्रति-पदादिमासगराना तद्वदिहापि चन्द्रोपरि केन्द्रे पितरः तेषां वासना प्रदर्शितयम्, ये तु कदंबपुष्पग्रन्थौ केसरसंस्थाना इव सर्वतोऽपि चन्द्रगोले पितरः तेषां नतोन्न-त्यादिकभूगोलस्थानामिव योज्यम् । ते च न्यूनाधिकमप्यर्धमासांते मनुजाहोरात्रा-र्धवदेतत्सर्वं यथास्थितं गोले प्रदर्शयेत् । अनयैव वासनया शशिष्टं गोत्रतिद्धिरति पितृदिवसोपपत्तिश्च एकदिनं च क्वापि त्रिंशद्धटिकायामन्यत्र षष्टिघटिकामन्यत्र दिनाभाव एव। ततोस्त्यन्मासैः दिनमेकं षण्मासं यावदन्यत्रौतत्सर्वमुन्मण्डल-विन्यासे दिनरात्रौ क्षयवृद्धिप्रतिपादने व्यावर्णियष्यामः । अत्रार्यभटः—शिमा-सार्धं पितरः शिंगाः कुदिनार्धामह मनुजा ये तु दक्षशारायाक्षयवृद्धी रवेश्चोपरि चन्द्र इत्यादि कथयंति । तेषां नित्यमधःस्थस्येदोरित्यादिकया गोलवासनया वराहमिहिरोक्तयातिप्रकटया निरास इति रविशशिकक्षाद्वयेन गोलवासनयात्र प्रदर्शिता। इदानीं कस्मिन् भू प्रदेशे लंका ध्रुवोज्जयिनी तत्प्रदर्शयन्नाह अवन्ती भूपरिधेः पंचदशभागे । भूमस्तक शब्देनात्रमेरुरुच्यते । क्षितितलशब्देन च वडवा-मुखम् । लंकाग्रहणं निरक्षदेशोपलक्षगार्थं, तेनायमर्थः मेरोर्वडवामुखाच्य भू चतुर्भागे निरक्षदेशः परितोऽपि तदन्तः पातिनो लङ्कायमकोटी सिद्धपुररोमकाद-यस्तत्र व तच्चास्माभिः पूर्वमेव व्याख्यातम्, लंकायास्तु पुनः समोत्तरेगावन्ती। भ्रवन्तीशब्देन उज्जियनीत्युच्यते । किल तत्र चतुर्विशतिरक्षांशाः पष्टिशतत्रयस्य चतुर्विशतिभागः पंचदश भवन्त्येतच्छोभनमक्तम्

# भूपरिधितुर्यभागे लङ्का भूमस्तकात् क्षितितलाच्च । लङ्कोत्तरतोऽवन्ती भूपरिधेः पंचदशभागे ॥ ह।।

वास०—भूपरिधिश्च खखखशराः ५००० ग्रस्य चतुर्भागाः १२५०, एताव-दिभर्योजनैर्मेरोदंक्षिणेन लंका पुनः भूपरिधिः ५०००। ग्रस्य पंचदशभागाः गुणाग्निवह्नयः सित्रभागाः ३३३ त्रि १३ एतावद्भिर्योजनैर्लंकात उज्जियनी समोत्तरतः एतानि भूपरिधिचतुर्भागयोजनेम्यः खशराकं संख्याम्यः १२५० शंसो-ध्याशेषं रसेदुनंदाः त्रिभागद्वययुताः ६१६ त्रि २।३। उज्जियनी त एतावद्भिर्योजनै-रुत्तरेण परिधिगत्या मेरुः सर्वं गोले प्रदर्शयेत् । परमोत्तरक्रान्त्यग्रे रिवस्तत्रोपरि मध्याह्नं करोत्यन्योथ विक्षिप्तश्चन्द्रादिकः उज्जियनी ग्रहण्मिप चतुर्विशति भागाक्षदेशोपलक्षणार्थम् । तेन निरक्षदेशात्सर्वतोऽपि भूपरिधिपंचदशे भागे । स देशो यत्र चतुर्विशतिरक्षांशा । एवं निरक्षदेशा दक्षिरोनापि योज्यम् । द्वितीय-ध्रुवतारापेक्षया वडवामुखाद्यपेक्षया च योजनादिकं योज्यम् इति एवमुज्जियनीनि रक्षदेशयोरंतरपरिज्ञानमभिध्यायेदानीमभीष्टदेशिनरक्षदेशयोरंतरपरिज्ञानमाह—

# श्रक्षांशकुपरिधिवधान्मण्डलभागाप्रयोजनैविषुवत् ।

वास० - ग्रक्षांशैः कुपरिधिवधः ग्रक्षांशकुपरिधिवधः स्वदेशाक्षभागा कुपरि-गाहम् । परस्परगुरणने त्यर्थं, तस्माद्वधान् मण्डलभागैः ग्राप्तं लब्धं षष्टिशतत्रया- प्तमिति यावत् । यदाप्तं तानि योजनानि तै विषुवत्तनो देशात्तावद्वह्नियोंजनैयों देशस्तस्योपिर विषुवन्मण्डलं तावद्भियोंजनैनिरक्षदेश इत्यर्थः, तद्यथा कान्यकुब्जे-क्षभागाः २६।३५, एतै भू पिरिधिरयम्, ५००० गुणितो जातः रसेन्दु नवयमगुण-चन्द्राः सिद्धभागाः १३२९१६ (क्वे) ग्रतः षष्टिशतत्रयेण भागे हृते लब्धानि कान्य-कुब्जिनरक्षदेशांतरयोजनानि । नवगडग्नयो द्विनवभागाधिकाः ३६६ (क्वे) लब्धयोजनानि भूपरिधिचतुर्भागयोजनेभ्यो विशोध्य शेषं खाष्टव सवः सप्त-नवभागा ६८०। परिधिगत्या एवावन्ति योजनानि, कान्यकुब्जमेरुरेवमन्यत्रापि यथास्थिते गोले त्रेराशिकवासने (क्वे) यं प्रदर्श । इदानीमममेवार्थं प्रचोदन्नाह—

### नतभागयोजनैरेवमुपरि सूर्योऽन्यदनुपातात् ।।१०।।

वास०-दिनमध्याह्नक्रान्त्यक्षभागयोगांतरं समान्यदिशामिति येऽभीष्ट-दिनार्धनतांशा भवन्ति, तेऽत्र गृह्यंते । तैर्नतभागैरेवं यथा प्रागार्यार्धेऽभिहित-मेतदुक्तं भवति । इष्टदेशादिनार्धनतांशे भूपरिधि संगुराय्य षष्टिसूत्रचयेन विभजेत्फलं योजनानि तैश्च योजनैरुपरि सूर्यस्तस्माद्देशात्तावद्भियोंजनैयों देशः समदक्षिराोत्तरस्थदेशस्योपरि तद्दिनमध्याह्ने सूर्यो भवतीत्यर्थः, एवं स्वनतभागै-भ्रन्द्रादीनामपि योज्यम् । यद्युत्तरनतांशास्तदुत्तरेणाथदक्षिणस्तदा दक्षिणेन सदेशश्चतुर्विशत्यक्षकादेशादुत्तरेरा कदाचिदप्युत्तरा नतांशा न भवन्ति रवेरन्य-दनुपातादिति । अन्यदप्यान्तरमेव त्रैराशिकात् । स्रभीष्टयोरपि समदक्षिगोत्तर-स्थयोरन्तराद्योजनान्येवमित्यर्थः । तद्यथा कान्यकुब्ज दक्षिग्।नतादौ नतभागाः ।२।३।५, एतै भू परिधिगुरिएतो आंशैहेंतश्च जनः ३६, एतावद्भियोंजनैः कान्य-कुब्जदक्षिरातो यो देशस्तत्र नष्टाछायस्तदा मध्याह्नकालः । श्रभीष्टदेशयोरपि तद्यथास्था एव ईश्वरेक्षभागाः ३।१२। उज्जयिन्यां ।२४। एषामन्तरं ।६।१२। श्रनेन भूपरिधिर्गु िंगतो भांशैहृतश्च ८६, है एतावन्ति योजनानि तयोरन्तरमेवमन्य-त्रोपि । ग्रत्र यथाक्षांशैर्नतभागैश्च योजनानयनम् । एवं विपरीतकर्मणाक्षभागा-नयनं सिद्धम्, त्रैराशिकवासना पूर्ववत्प्रदर्श्या । निरक्षदेशदक्षिणतोऽप्येवमेव योज्यम् । वडवामुखं यावत् । अधुनाकाशकक्षानयनमाह—

# भ्रंबरयोजन्परिविः शशिभगरााः शून्यखख जिनाग्निगुरााः ।

वास० — योजनात्मकः परिधिः योजनपरिधिः श्रंबरस्य योजना परिधिरंबर-योजनपरिधिः कथमित्याह-शशिभगणाः पंचांबराणा, गुणराम पंचसप्तस्वरेषव इति किंभूताः शून्यखखजिनाग्निगुणाः लक्षत्रयेण चतुर्विशत्या ज सहस्रं-गुँणिताः शशिभगणाः श्राकाशकक्षयोजनानि भवन्तीत्यर्थः। तद्यथा शशिभागाः ५७७५३३००००० शून्यखखजिनाग्निभरमीभिः ३२४००० गुणितजाताः शून्याष्ट-कयमनंदरसखादिवरूपनगाष्टचन्द्राः १८७१२०६९२००००००० एतावंति खकक्ष्या-

परिधियोजनानि, वल्पे च ग्रहाएां गतियोजनानि । एतावंति वक्ष्यत्येकैकस्य नत्वनतस्य कालगस्य कथमूच्यते नियतपरिधिः, ग्रत्र केचिद्दिनकरकरनिकरविधु-स्ततमसो व्योम्नं परिधिरयं परतो निबिडमंधकारं यदस्माभिनीलिमिवोलभ्यते । म्रपरे त्वंडस्य यस्य मध्ये सकक्षे भूगोलात्मवतिस्थतस्तथायं परिधिस्तत्कोशं च नीलमिवास्माकं प्रतिभाति, उभयथापि न किस्त्चप्रिक्रियाविरोधः यतो भक-क्याया ऊर्ध्वगतिनिरोध एव अत्रार्थे ग्रहणकमस्मदीयम् । द्विछिद्रषट्कांबर तेऽत्र चन्द्रज्ञैलाष्टरूपारिए गूर्णानि कोटघाः व्योम्नः सधाम्नः परिधि र्दशध्रकल्पे ग्रहार्णाः सच योजनाध्वः यदुक्तंवासिष्ठ सिद्धान्ते ॥ जगदण्डलमध्यस्था महाभूतमयी क्षितिरित्यादिः, तदण्डाभ्यूपगमे घटत एव ग्रार्यभट्टः शिष्यैश्च व्याख्यातं खपरिधि-दशनद्वारेणार्कंरिक्मप्राप्तस्य नभसः प्रमाणं प्रदिश्वितम् । भवत्याचार्येण ननु चेष्ट-षपरिधिरित्येतावतेव सिद्धेः शशिभगगा इत्यादि ग्रह स्वकक्ष्याभगगावधः ग्रंथगौ रवकरणमसं बद्धमिव नः प्रतिभाति । यतः शून्य खखाजिनाग्नयश्चन्द्र कक्षा प्रमाणं नैष दोषो यतः खपरिघे रेव ग्रहकक्ष्या ग्रानयिष्यति तदपरिज्ञाना-त्तद्भगगावघः कथं शक्यते कर्तुम्, तत्तिहि तुल्यं शशिकक्ष्या परिज्ञानेऽपि न तुल्यम् । स्रत्रोच्यते रविचन्द्रयोरन्येनैव प्रकारेगा कक्ष्यानयनासिद्धेः कोसौ प्रकार इति तदुच्यताम्, तद्यथा चन्द्रभूयोगाच्चन्द्रविंबं मध्यमं लिप्तागतं साधयेत्। तच्चोदयतोऽस्तमयतो वा विबंस्य कियत्यो विनाडचः प्राणाश्च भवन्तीति चन्द्रभगण्-भोगं यावत्साधयेत् दिनं प्रतिदिनं स्विधया स्विदनोदयस्यैकत्र कृतस्य तदिह्नश्च स्वैदिनैविभक्तस्यार्कदिनोदयबिवकालो मध्यमो भवति । सच प्राग्गी कृतः शशि-मानमध्यमलिप्तो भवति, ताश्चाब्दा विंशतिशतम्। रवेरप्येवमेव समप्रदेशस्थस्य द्रष्टव्यम्, मानप्रसाधनं चन्द्रमसोर्योजनमानं च वक्ष्यति शून्यवसूवेदा इति ४८०, ततो लिप्तामानेन योजनमानस्य भागे हते लब्धपंचदश ।१५। एतावंति योजनान्ये-कैकस्याः कलायाः प्रमाराम् । चन्द्रकक्ष्या प्रदेशे कक्ष्या च सर्वस्य खखषटुकन संख्याः लिप्ताः, यतो लब्धवोऽल्पराश्याम् इति वक्ष्यति । तेन पंचदशगुर्णिताः खखषट्कन संख्याजातं प्रमाणं योजनात्मकं । चन्द्रकक्ष्यायां शून्यखखजिनाग्नयः । ३२४००० एवं रवेरिप यत उक्तम्। मानोदयाद्रवीद्वो र्घटिकार्घमधेन (भोक्ष्य) इति छायाध्याये त एवार्येण चन्द्रकक्ष्या मूलत्वेन सर्वकक्ष्याणामानयनमभिघातुं शोभ-नमारब्धम् । तत्रानि शेषत्वा द्गिणतकर्मणः शेषग्रहाणां योजनमानानि न पठिता-नि अत एवात्र खपरिथिद्वारेण सर्वमेव वक्तुमुद्यत ग्राचार्यः भवतु नामेहक् तया सिद्धया शशियोजनमानं सिद्धमेव अभ्युपगतमस्माभिश्च तत्कक्ष्याभ्युपगमत्त्य-त्वात् न किश्चिद्विशेषः । सत्येवं यदप्युक्तमस्माभिः शिशभूयोगादस्तमयोदयकाले चन्द्रमानसाधनं तदिप मानुषमात्रेगा ग्रहीतुं न शक्यते विघटिककादिकोऽपि कालः किमुत प्रमागावयवादिकः अस्माभिः प्रसंगेन वसुदर्शनं कृतं भुवश्च निम्नोन्नत-त्वान्महाद्रिवनांतरितत्वाच्च । श्रशक्यं सर्वं किंत्वागम एवं प्रमारामस्माकं

भगगापरिधिः कक्ष्यामानयोजन कर्गादिषु मेरूलंकावडवामुखादिषु तेषामगम्यत्वात्। यत एवाभितपोबलेन विमलमनसविसष्टगर्गादयो ऽभियुक्ताश्च तत्प्रगीतेभ्यो ग्रन्थेभ्यो लेशज्ञा विदामो वयं सदिदमसच्चेदं परगृहभोजनेषु छात्रा इव एवं स्व-कक्षाप्रमागामुक्ते दानीयं तत एव सर्वग्रहकक्ष्यानयनमाह—

## यस्य भगगौविभक्तास्तत्कक्ष्यार्को भषष्ठ्यंशः ॥११॥

वास० — खपरिधिरित्यनुवर्तते यस्य ग्रहस्य भगणैः खपरिधिविभज्यते तस्यैव कक्षा योजनमानात्मका लभ्यते । तद्यथा खपरिधिरयं द्विखिद्रषट्कम्मवर-नेत्र चन्द्रशैलाष्टरूपारिए शून्याष्टकैकहतानि १८७१२०६६२०००००००० ग्रस्य कल्परिवभगणैरमोभिः ४३२०००००० भागे हते रवि कक्ष्याप्रमार्गे सप्तनवक्रत-रूपाग्निगुरावेदाः सार्घाः । घ ३३१४९७३ तथा शशिभगरगैः शशिकक्ष्यायोजनानि शून्य । खखजिनाग्निसंख्यानि ३२४००० एवं सर्वेषां कक्षानयनमस्माभिरुदा-हरएीयं सिद्धा एव लिखन्ति । स्वैः श्लोकैः सार्धानन्दकृतरूपगुर्णाग्निवेदाः कक्ष्या प्रमारामिह भानुमतः प्रदिष्टम्, चन्द्रस्य ज्ञून्यखखवेदयमाग्निसंख्यकौजं रसेन्दु नवषण्एावोष्टकान्तं रुद्राश्विलोककृतपंक्तिकृतं बोघं कक्षाप्रमार्णमिह देवगुरोरतश्च द्यद्वाष्टलोकैवेंदनगलोकशशांकबाएगास्त्रिशद्रसाष्टकृतिषट्ककरा तु शौक्रम् । सप्ताष्टशैलवसुषट्करसागसूर्याः ख्यातं शते विविकलाः कथितास्तु सर्वाः खेष्विदु-पूर्णशिशिशीतकरैर्विहीनाकोद्योरसाश्च विमिताः कथिता भकक्ष्याः ग्रकी भषव्यंश इति । भानि नक्षत्रािं तेषां यः षष्ठयंशः तत्रार्कः, एतदुक्तं भवति भूमध्या-द्यावित प्रदेशे रिवः तावित षष्टिगुर्णे प्रदेशे नक्षत्राणि भूमध्यादेव ननु वास्मिन् कक्ष्या प्रतिपादनपरसूत्रे । किमनेन प्रयोजनिमिति चेत् प्रस्ति प्रयोजनं नाम नक्षत्रकक्षापरिज्ञानं । यदेवोक्तमकत्षिष्टिगुर्गे नक्षत्राग्गि तदेवार्ककक्ष्या षष्टिगुर्गे नक्षत्रकक्षेत्युक्तम् । एतच्चार्ककक्ष्यामण्डलपरिमण्डलसंपातापेक्षया भ्रन्यथा परि-मण्डलेऽर्के कथं षष्ठांशे भानां वक्तुं शक्यते प्रतिमण्डलमध्यं यतो भूमध्ये न भवति एतच्चस्फुटगत्युपपत्तौ ज्ञास्यथेति तद्यथा रविकक्षा सार्घागनंदकृतरूप गुगाग्निवेदा ४३३१४९७ ई इयं षष्टिगुगा नक्षत्रकक्षा जाता सा चः शून्या ख सुनववसुनन्देषु यमाः २५९८८९८५० पूर्वमेवास्माभिरियं पठिता । शीघ्रं मद-पाताश्च । स्वग्रहाकक्षाप्रमार्गेपमण्डले भ्रमन्त्यतस्तेषां ते पृथक् एतच्चोत्तरत्र प्रति-पादियष्यामः स्फुटगित वासनायामिति । इदानीं प्रहागां योजनरूपायागतेः तुल्यत्वमाह—

> भपरिधिसमानि षष्टचा ख परिधितुल्यानि कल्परिववर्षेः । गच्छन्ति योजनानि ग्रहाः स्वकक्षासु तुल्यानि ॥१२॥

वास०—स्वकीयाः कक्षाः स्वकक्षाः तासु तुल्यानि योजनात्मकोध्वा सर्व-ग्रहागाां तुल्य इत्यर्थः। तद्यथा स्वकक्ष्यायोजनानि, खेष्विदं पूर्णशशिशीतकरै- विहीनाकोद्योरसाभ्र विमिता प्रथिता भकक्ष्याः २५८८६ ५० रिववर्षागां षष्ट-योजनान्येतावन्ति । स्वकक्ष्यास्थो ग्रहः प्राङ्मुखं याति.....देवरिवतुल्यानि...... (रिववर्षागां ) याति ग्रहः खपरिधियोजनानि १८७१२०६९२०००००००० कल्पे नैतावन्ति योजनान्येकैको ग्रहो याति स्वकक्षास्थः ग्रत्रार्कसावन कल्प दिनैरनुपातादिव सभुक्तिः यदि कल्पसावन दिनैः खपरिधि योजनानि तदेकेन सावनदिनेन कियन्तीति लब्धा दिनभुक्तियोजनात्मिकाष्टशखसुरुद्राः ११८५ ६ योजनांशास्त्र ११३५६३३५६०००० अनया दिन योजनानिभुक्त्या त्रैराशिक १५७७६१६४५०००

द्वयं भुक्त्या ग्रहानयनं तदचथा यदि कक्ष्या योजनैरेक भगगो लभ्यते तिह्नगगितयोजनैः किमित्येकदिनभुक्तिफलं प्रथमत्रैराशिके एकैको गुगा-कारः द्वितीये भागहारः तुल्यत्वात् नष्टयोरहर्गगास्य दिनभुक्तियोजनात्मिकाः गुगाकारः खकक्ष्यायोजनाभागहारः फलिमष्टग्रहः। तथा चार्यभट्टः षष्टचा सूर्या-ब्दानां प्रपूरयन्ति ग्रहाभपरिगाहम्। दिव्येन नभः परिधिसमं भ्रमन्तः स्वकक्ष्यासु ननु योजनगत्या सर्व एव ग्रहाः समगतयः तिकिमिति भिन्नगतयोऽस्माभिष्पलभ्यते इत्येतदाशंक्योपपत्यर्थमार्गद्वयमाह्—

भगरास्यायः शनिगुरुभूमिजरिवशुक्रसौम्यचन्द्राराम् । कक्षाक्रमेरा शीघ्राः शनैश्वराद्याः कलाभुक्त्या ॥१३॥ लधवोऽल्पे राश्यंशा महति महांतोल्पवृत्तमल्पेन । पूरयतींदुर्महता कालेन महच्छनैश्वारी ॥१४॥

वास०—भानां गणो भगणाः नक्षत्रपंजर इत्यर्थः तस्याधः शिनगुरुभूमिजरिव-सौम्यचन्द्राणाम् । कक्षा क्रमेणायमर्थोऽस्माभिः भूगोलस्वरूपप्रतिपादने प्रपञ्चेन व्याविण्तः शिद्धाः शनैश्चराद्या इति कक्ष्याक्रमेण शनेगुं रः शिद्धः गुरोभौंमः एवं शशी यावत् । यदि प्रागातपः स्वगताग्रहाः श्रथवा शीद्धाः शनैश्चराद्याः श्रतिशोद्धा शिनः ततो मन्दो गुरुः गुरोभौंम इत्यादिना क्रमेणाति चन्द्रमाः यदि सर्वदा पश्चाद्गतयो ग्रहाः स्युः, इयं च शीद्धां मन्दकल्पना कलाभुक्त्या लिप्ता रूपया भुक्तेत्यर्थः, श्रन्यथा योजनभुक्त्या तुल्या गिणता एव गितश्चादि न भोगः तस्याश्चोभयथा सम्भवः । प्रथमपक्षे नक्षत्रा भुक्तिल्ता तुल्येनाध्वेनापूर्वेण् ग्रहो गतः । द्वितीय पक्षे, तावानेव ग्रहो नक्षत्रात्पश्चादवलम्बितः सोप्यवलम्बमानः पूर्वेण्-वावतिष्ठते । इत्येवमुपरिस्थितो ग्रहोऽधःस्थितग्रहेण सहयोजनः यस्मादुपरिस्थितस्य महती कक्षाधः स्थितस्य स्वल्पा महत्यः कक्ष्याः या राशयो राश्यवयवाश्च महान्तः । यत एवोक्तं लघवोऽल्पे राश्यांशाः लघवः सूक्ष्मा श्रत्पे वृत्ते राश्यव यवाः महति वृत्ते महान्ति यस्मादेवं तस्मादल्पं वृत्तं स्तोकेनेव कालेन पूरितं चन्द्रः शिनरस्तु पुनः महवृत्तं महता कालेन पूर्यित यत्वचन्द्रशनीतुल्या गती कक्ष्यभेन

दाद् भुक्तिभेदः, चन्द्रः कक्ष्यायां पंचदशो योजनानि लिप्ता प्रमाणं सति कक्ष्यायां पुनः षड्भियोंजनसहस्रैः सप्तन्यूनैलिप्ता भवति अयं द्वितीयाया मथ उभयो-रपि गतिपक्षयोः तुल्य एव । प्रागार्योक्तोर्थश्च विचार्यं ते शीघ्राः शनैश्चराद्याः कलाभुक्ते ति स्रत्रैकपक्षः भूस्थिरा भपंजरस्तु सग्रहः प्रभंजाक्षिप्तप्रतिक्षणं पश्चाभि-मुखं भ्रमति । तद्वशेन प्रतिदिवसिकावुदयास्तमयौ सर्वग्रहनत्राणां तत्र भवति स्वग-गो भोगेन । श्रत एव प्राग्गतयो ऽस्याभिरूपलभ्यते । देशान्तरप्राप्तेः द्वितीयः पक्षः भूः स्थिरैव नक्षत्रग्रहाः सर्व एव पश्चाद्गतयो प्रत्यक्षतो ऽस्माभिरूपलभ्यन्ते । तस्मादत्रातिशी घ्रोक्तिनक्षत्राणि ग्रहेभ्यो यतो भूगोलकादति दूरस्थितानि, तेषा-मिधका प्रेरणानित्यं प्रवाहानिलजनिता तेभ्योऽघः शनिः स एव तदपेक्षया पश्चा-द्गतित्वे मंदः तस्य न्यूनवायुप्रे रएाया भूमेरासन्नो यतः स एवं ततोऽपि मंदक्रमे-गाधोऽघोतिमंदता चन्द्रस्य। ततोऽपि रयेनादयो मंदस्तेभ्योऽपि मन्दा वयं साक्षा-द्भूमिस्पर्शिगाः एवं च स्थिते शिंन हित्वा नक्षत्रं पश्चाद्यात्यतो भूस्थैरुच्यते प्रगतिः र्शनैश्चरो नक्षत्रांतरं प्राप्तः एवं सर्वंग्रहारााां योज्यम् । अन्यथा नक्षेत्रग्रहाः सर्व एव खस्थाः पदार्थाः तत्र ग्रहाएाां युगपद्गतिद्वया संभवस्यात् । यतो गतिर्नाम वपु व्यापारः पूर्वापरयोश्च विरुद्धौ वायू एकस्यैव पदार्थस्या काशस्थितस्य तुल्यकालं प्रोरणाद्वयं कुरुत इत्येतदिप न शक्यते वक्तुम्। य एव बलवान् स एव स्वस्थायां दिशि नयति । मूर्तिमदाधारवीजितत्वाप्तदार्थस्य ग्रहादेः ग्रस्ति मूर्तिमदाधारो यत्रासौ स्थितो यातीति चेत्तदिप न । यदि स्यात्तदस्यावयवे व्यवधायकः स्यात् । दृश्यन्ते च ज्योतिष्मंतः। पदार्थाः तस्मात्प्रथमपक्षे यदुक्तं कुलालचक्रा स्थिताः कीटा इव महानदीप्रवाह पतिताः पुरुषा इवेति तदुक्तमाधाराभावादयंह पूर्वेंग च देशान्तरप्राप्तिरस्मात्पक्षे च युज्यत एव नैवं भवत्पक्षेपि दोषा विद्यंते तत्रैको वक्रासम्भवात् । यतो नक्षत्रेभ्योर्वाग्यो ग्रहः स्थितः स तावत्प्राग्गतिः स च नक्षत्रा-दवलंबितः पश्चाद्गतिः सवक्री कथं भवत्युभयताम् । ग्रथैवं भगासि यदा नक्षत्रेभ्य उपरिग्रहो भवति । तदा तेन नक्षत्राणि जीयंते जितानि चावलंबंते पूर्वेण स च पश्चाद्रपलभ्यते इति। तदपि न शक्यते वक्तुम्। यतो नक्षत्रेभ्य उच्चतरो ग्रहः कदाचिदपि न भवति । नियतत्वाद् ग्रहभ्रमगाप्रदेशस्य ग्रन्यच वक्रीग्रहो भूमेर-त्यासन्नो भवति । योजनकर्णेऽपि तस्यातिलघुर्भवति, मानमपि बिबस्य महद्भवति श्रतः परमवक्रे स्थितो ग्रहः, श्रन्यकालाद्भूमेर त्यासन्नो भवति, न वैवमस्मिन्सदा पक्चात्गतिक्षे प्रतिपादयितुं शक्यते । स्रतोऽयमि सदोषः पक्षः अपरो ऽपि दोषः, त्वया तावदस्योपर्यंधो भावेन ग्रहाणां स्थितिरभ्युपगता । तत्कथं तुल्यावलंबनम् । योजनगतं प्रदेशभेदाद्वायुभेद स्वोक्त एव । स च नेह यस्त्वबलंबनभेदः स लिप्ता-गतो यतो वृत्तगत्याग्रहाः परिवर्ता कुर्वते । तच्च वृत्तं दूरस्थस्य महद्भवति निकट-स्थस्याल्पं तस्माद्द्वितीयोऽपि दोषः परिहार्यः । श्रन्येऽपि दोषा श्रनया दिशायोज्याः इत्यनयोः पक्षयोः प्रथमः पक्षः शोभनोऽप्यतो लघुकाराग्रहणगतिरूपलभ्यते।

तस्माभिरूपर्यंघः पूर्वापरदक्षिणोत्तरेषु गतिः षट्पक्षाः उत्पद्यंते तेषां षण्णां गति पक्षाणां पूर्वगमन एव ग्रहाहलंबनयुक्तिः, नान्येषु उपलभ्यन्ते च सर्वा एव गतयः ताइच गमनिक्रयामंतरेण न सम्भवति । तस्मात्स्वव्यापारकृता ग्रहाणां गतिः प्राची । ग्रपरा च प्रवाहानिलजनिता भूम्यावर्तजनिता वा भपंजरस्य तुल्यरूप-त्वान्नबोध्यम् । यथा च परमाथिकाग्रहस्य गतिः तया स्फुटगतिवासनायां नीचो चमंद शीध्रवृत्तद्वारेणाचार्यं एव वक्ष्यति । कक्ष्यामण्डलमध्यं भूमध्य इत्यादिना ग्रन्थेन वयमि तत्रैव विस्तरेण प्रतिपादियष्याम इति । इदानीमयं भगणकला-परिणाहस्य व्यासार्धानयनमाह—

### यन्मूलं तद्वचसो मण्डलिलाप्तकृते देशहृताया । तस्यार्धं व्यासार्धं मण्डलकर्गं प्रमागार्थम् ॥१५॥

वास०—मण्डलिल्ता भगग्लिल्ताः खखषध्वना इत्यर्थः । तासां कृतिवर्गः तस्याः कृतेः किं भूतायाः दशहृतायाः यन्मूलं तद्ध् नुः तस्य व्यासस्यार्धः भगग् परिग्णाहेति । स्वयोजनकर्ग्णप्रमाग्गार्थः तेन स्फुटयोजनकर्गानयने त्रौराशिक विधिरित्यर्थः । तद्यथा मंडलिल्ता २१६०० ग्रासां कृति दर्शंभक्ता ४६६५६००० तस्याः पदं ६८३० एष व्यासस्यार्धं स ३४१५ योजनाकर्णं स्फुटी करगार्थं न

· ७१०० ३५५० १३६६० १३६६०

नुच भगगाकालानां (र्घ ख) एतदेव व्यासमुनिरदा इति युक्तमित्युक्तभिति । श्राक्षकां परिहरति—

### भगग्गकला व्यासार्थं भवति कलाभियंतो न सकलाभिः। ज्यार्थानि न स्फुटानि च ततः कृतं व्यासदलमन्यत् ॥१६॥

वास०—भगणकलाभ्यो यद्व्यासार्धं तत्सविकलं ततश्च ज्यार्धानि कल्प-मानानि वा न स्फुटानि कल्पयितुं यांत्यतः फलनाशभयादन्यंद्वचासार्धं मया-कल्पितम् । फलं चापगतं तुल्यमेव योजनकर्णाश्च स्वकक्षा भगणकल्पनया कल्पिताः ते च भगणव्यासार्धेन सह सम्बध्यंते । शेषं गणितकर्मं चाभीष्ट व्या-सार्धेनापि न नाशं याति । गताज्या ग्रपि तदनुसारेणेत्यर्थः । सामान्य गोल-प्रकरणम् ।

श्रघुना स्फुटगतिवासना प्रदर्श्यते । तत्र तावन् ज्या प्रदर्शनार्थमायांद्वय-याह---

> राश्यव्टांशेष्णंकान् पदसंधिम्यः क्रमोत्क्रमान् कृत्वा । बम्नीयात्सुत्रािए द्वयोद्वं योज्यास्तदर्थानि ॥१७॥

# ज्यार्घांनि ज्यार्घानां ज्याखंडान्यन्तराग्गि तान्येव। व्यस्तान्यन्त्या दथवेषुरुत्क्रमज्या घनुस्ताभ्याम् ॥१८॥

वास०-राशोनामष्टांशा राश्यष्टांशाः भचक्रस्य षण्गवतितमा इत्यर्थः । तेषां कान्कृत्वा क्रमोत्क्रमान् दशर्सिधभ्यः पदानां संघयः पदसंघयः तेभ्यो राशित्रयाद्राशित्रयादित्यर्थः ततो बन्धीयात्सूत्राणि द्वयोर्द्वयो रेवं कृते ज्या भवन्ति, एतदुक्तं भवति । समायामवनौ खमुनि रदांगुलसंख्येन कर्कटकेगा वृत्तमालिखेत् तत्र पूर्वापरादक्षिगात्तरा च द्वे ग्रपिंरेखे समे कुर्याद्यथा तच्चतुर्धा भवन्ति तानि चत्वारि तत एकैकस्मिन्पदे राशित्रयं परिकल्प्यचिह्नानि कुर्यात् तदेकैकस्मिन् राशौ राशावष्टावष्टौ चिह्नानि कुर्यात्। एवं षण्एावति चिह्नानि सकले वृत्ते भवति। ततः पूर्वस्मिन् भागे पूर्वपरायाम्योत्तररेखाया उभयपार्वस्थयोश्चिह्नयोः सूत्रं प्रसार्यं रेखां कुर्यात्, सा प्रथमा ज्या भवति । मनुयमला द्विगुरा भवंतीत्यर्थः, एवं तदनन्त-रोभय पार्क्विह्नयोः सूत्रं प्रसार्य रेखां कुर्यायावच्चतुर्वितिरुचतुर्विशे सूत्रे खमुनिरदा द्विगुराा भवति । तत उक्तोत्क्रमेर्णानंतरं चिह्नयोरूभयपार्वंस्थयोस्तावत्सूत्रारिण प्रसार्यं रेखाः कुर्याद्यावदपरा दिक्। एवमष्टचत्वारिशंज्जीवा भवंति। तदर्घानि ज्यार्धानीति तासां ज्यानामर्धाति भवनि । सप्तचत्वार्धिरता रेखाभिः मध्यमायाः साधाररात्वादर्धज्यामनुयमला मुनियमवेदा इत्यादीनि एवं षण्रावतिज्यीर्घानि सकले वृत्ते भवंति, ज्यार्घानां ज्याखण्डान्यंतरागाि तेषां ज्यार्घानां प्रत्येकमेकैक स्यानंतरज्यार्घे सहांतरे कृते यद्भवति । तज्याखंडकं भवति एवं सर्वज्यार्घानानां चतुर्व्विपप्रदेशेषु षण्एावतिज्यिखंडकानि भवंति । क्रमोत्क्रमेएा यथा प्रथमं ज्यार्ध-मनुययलाः २१४ द्वितीयं च मुनियमवेदाः ४२७ स्रनयोरंतरं २१३ एतज्ज्याखंडक-मेवं यावत्सर्वत्रां ज्याखण्डकं सप्त व्यस्तानां तावदथवेषुरूत्क्रमज्या तान्येव ज्या-खंड़ानि व्यस्तानि यिपरीतानि । जीवातः प्रभृति यच्चतुर्विशत्या ज्यायाः सम्बंधि-ज्याखंडं तदुक्तमज्याकरणे प्रथमं भवत्येवं त्रयोविश द्वितीयमित्यादि तावद्या-वत्प्रथममंयं भवति । अथवा क्रमेगा प्रथमज्यामापः शरस एवं प्रथमज्यार्धमुक्तम-ज्याकरऐो द्वितीया द्वितीयं तृतीयास्तृतीययित्यादि तावद्वचा सार्धं धनुस्ताभ्यां तस्या क्रमज्याया उक्तमज्यायादेच चाप तुल्यमेव । यत एवमुत्तर दिग्भागा दक्षिएा-दिग्भागं यावदष्टाचत्वारिक्षज्याः' तदर्घानि ज्यार्घानितेषां मंतराणि ज्याखंडकानि क्रमणैव योज्यम् । एवं भूमौ हग्गोलें च श्रपमण्डलेः तु मेषतुलादौ क्रमेण ज्या कर्कंटमकरादावुत्क्रमेणा। एव ज्यास्वरूपं प्रदर्शाधुना ग्रष्टादशषोडश ज्यार्धाना-मुत्पत्ति प्रदर्शयन्नाह -

> एकद्वित्रिगुरागाया व्यासार्धकृतेः पृथक् चतुर्थेन्यः । मूलान्यष्टद्वादशः षोडशखंडान्यतोऽन्यानि ॥१९॥

वास० — एकगुणाया व्यासार्धकृतेश्चतुर्भागान्मूलं अष्टक्रमज्याखंडं भवति, द्विगुराायाः व्यासार्धेकृतेश्च ·····मूलं 'दादशज्याखंडकं भवति । त्रिगुराायाङ्च भ्रनेनैव विधिना षोडशं ज्यार्धं भवति । भ्रत्रेयं वासना भ्रष्टमी जीवराशिद्वयस्य भवति सा च व्यासार्धतुल्या, यतो वृत्तक्षेत्रमध्ये यावत्षट्समत्राश्च क्षेत्राण्याख्यंते, ताव-द्राशिद्धये व्यासार्धतुल्या ज्या भवति सर्वमेतद्यथा लिखिते वृत्तक्षेत्रे प्रदर्श्य वक्ष्यति च ज्यार्धानि वृत्तपरिधेः षष्टचतुर्थत्रिभागानामिति । उक्तं च परिधेः षट्भागज्या-विष्कंभार्धेन सा तुल्येति । तदत्र यैव व्यासार्धकृतिः, सैवाडभ्या जीवायाः कृतिः ज्यार्धीनयने च कृतेश्चतुर्भागमूलं गृह्यत इत्युपपन्नम्। यतः समचतुरश्रो वर्गः, उक्तं च वर्गः समचतुरश्रः फलं च सदृशदृयस्य संवर्गं इति स्रथवाष्ट्रमे समुत्पन्ने षोडशं ज्यार्घकोटिः, यतस्तदवलंबाकर्णस्थित व्यासार्घं तुल्ये भुजे भूमेश्च स्वावाधा-वर्गीनाद्भुजवर्गान्मूलमवलंब इत्यनेन तत्प्रमागा ज्ञान व्यासार्धकर्णः कृतेः कोटिकृति विशोध्य मूलं भुजः अष्टमं ज्यार्धः यः स तत्र क्षेत्रमयनचतुरश्रं भवति द्वादशी च जीवा राशित्रयस्य भवति । सा च परिधि चतुर्भागज्यातया समचतुरश्रं क्षेत्रमुत्प-द्यते । तत्र च व्यासतुल्यः कर्णाद्वादशी जीवा तुल्ये कोटिभुजे तयोइच वर्गयोगः व्यासवर्ग समः कर्णयोगः, उक्तञ्च । यक्चैव भुजावर्गयुतः कोटिवर्गदच कर्णावर्गः स इति कर्णवर्गात्कोटिवर्गमपास्य व्यासवर्गस्य व्यासवर्गस्यार्धमवशिष्यते । व्यासार्ध-कृतिश्च द्विगुणा तावतैव भुजवर्गेऽपि तावानेव द्वादशी जीवावर्गश्च ज्यार्धानयने ज्यावर्गचतुर्भागान्मूलं गृह्यत इत्युपपन्नम् । षोडश्या ग्रपि जीवाया भुजरूपाया व्यासः कर्णाः अष्टमी जीवा कोटिरेवमेतदायतचतुरश्र' क्षेत्रमष्टमी जीवा कोटिव्या-सार्घे तुल्यातस्य एव वर्गव्यासवर्गादपास्य त्रिगुणव्यासार्धकृतेरविशष्यते । पादोनः कर्णवर्गः षोडशी जीवनवर्गश्च म एवेत्यतश्चतुर्भाग मूलं षोडशं ज्यार्धं भवत्येवं पूर्वेलिखितः वृत्तक्षेत्रे ज्यार्घं रेखाभिः सार्घं प्रदर्शयेत् । ग्रतोऽन्यानि ग्रत उक्तातप्रा-कारादन्यानि शेषाणि ज्याखंडानि भुजकोटिकर्णकल्पनया प्रदर्शयतव्यानि । कथ-मिनि चेत्प्रतिपादनायार्यात्रयमाह-

> तुल्यक्रमोत्क्रमसमज्याखंडकवर्गयुतेश्चतुर्भागम् । प्रोह्यानष्टं व्यासार्घवर्गतस्तत्पदे प्रथमम् ॥२०॥ तद्दलखंडानि तदूनजिनसमानि द्वितीयमुत्पत्तौ । कृतयमलैक दिगीशेषु सप्तरसगुरणनवादीनाम् ॥२१॥ एवं जीवाखंडान्याल्पानि बहूनि वाद्यखंडानि । ज्यार्घानि वृत्तपरिषेः षष्ठचतुर्थं विभागानाम ॥२२॥

वास - तुल्यस्य धनुषः क्रमोत्क्रमाभ्यां ये समज्याखंडके द्वितीयचतुर्थादिके । तयोः खंडकयो वर्गात्तुल्यक्रमोत्क्रमज्याखंडकवर्गी तयोर्वर्गयोयुँ तिः तस्यायुते इच-

तुर्भागः, तं प्रोह्यानष्टं कुत इत्याह सार्धं वर्गतः तत्पदे ताभ्यां पदे तत्पदे । प्रथम-में कं पदमनष्टाद्राशेः श्रनष्टोनाद् व्यासार्धवर्गद्वितीयं पदं प्रथमं तद्दलखंडानि श्रनष्ट पदं यत्तद्यावत्संख्यायाः ज्यायाः क्रमोत्क्रमज्ञातं तदर्धं संख्यं ज्यार्धं भवतीत्यर्थः। यदि द्वादशेन क्रमज्याखंडेन कर्मकृततत्प्रथमं भवत्येवं सर्वत्र समखंड्ककर्म-नियोज्यम् । अत एव तत्र खंडानीति बहुवचननिर्देशः कृतः । द्वितीयं यत्पदं तदून-जिनसमानि प्रथमपदाद्यत्खंडकमुत्पन्नं तत्संख्या चतुर्विशतेरपास्या शेषसंख्या समखंडकस्योत्पत्ति भंवतीत्यर्थः । एवं प्रथमेनोत्पन्नेन द्वितीयोत्पत्तिः सर्वत्र ज्ञेया बहुवचनात्तदूनजिनसमानीति द्वितीयं पदं योज्यम्। उत्पत्तौ कृतयमलैकदिगी-शेषु सप्तस्य गुरावादीनाम् । भ्रयमर्थः स्पष्टतरो विवृते तद्यथाक्रमेगाष्टमज्याखंड-कोटिः रसक्च स एवाष्टम्याजीवायास्ततो भुजकोटिवर्गयोगेन कर्णार्धं भवति । तदेव पंचदशानां भागानां ज्याखंडको भवति । चतुर्थंज्यार्धीम-त्यर्थः पुनरिप तद्भुजकोटि वर्गं योग चतुर्भागं व्यासार्घकृतेः संशोध्य शेष पदं तदून-जिनसमें विशतितमं ज्याखंडकं भवति । यतश्चतुर्थंज्याखंडकं भुजाविशतितमं कोटिः व्यासार्घकर्णस्तस्मादुपपन्नम् । एवं यथाष्टमे ज्ञाते चतुर्थं साघितं विशं च । एवं चतुर्धा द्वितीयं द्वाविशं च द्वितीयं प्रथमं त्रयोविशं च। एवं विशाइशमं चतुर्दशमं च एकादशं त्रयोदशं ढाविंशत्। दशमात्पंचमं च एकोनविंशतितमं च चतुर्दशात्सप्तमं सप्तदशं च एवं चतुर्दशष्याखंडकान्यष्टमात् । तथा द्वादशोत् एवम-ष्टादशं च भ्रष्टादशान्नवमं पंचदशं च षष्टातृतीय मेवं विशं च। एतानि षट्ज्या-खंडानि द्वादशात्। एवं विशतिपूर्वािशा ग्रष्टिम द्वादश षोडशानि व्यासार्धं चेत्येवं चतुर्विशतिज्या खंडकानि प्रदर्शितानि ततः उक्तम्, कृतयमलैक दिगीशेषु सदा गुरारस नवादीनाम् । कृताघः यमलौ एकः १ दिक् १० ईशाः ११ इषवः ५ सप्त ७ गुरााः ३ रसाः ६ नब १ तथा चतुर्थे उत्पन्ने द्वितीयं द्वितीये च प्रथमं चतुर्थे विंशतितम् । ततश्च दशमं द्वितीये द्वाविशं ततश्चैकादशमित्यादि प्रदर्शितमा-चार्येगास्माभिरपि विस्तरतो व्याख्यातम् । एवं जीवखंडानि भ्रनेन प्रकारेगा ज्याखंडान्युत्पाद्यानि स्वल्पानि च बहूनि वा। ग्रथवाऽ नया वृत्तक्षेत्र वासनया चतुर्विशति खंडान्युपपाद्यानि स्वल्पानि बहूनि वा । श्रथ यानि च खण्डानि यतः अष्टम द्वादशानि यान्युक्तानि, तानि ज्यार्घानि वृत्ते : परिघेः षड्भागस्य ज्यार्ध-मष्टमखण्डकम् । चतुर्भागस्य द्वादशं ज्यार्धं त्रिभागस्य षोडशं ज्यार्धं एतच्चास्मा-भि: पूर्वमेव प्रदर्शितम् । उदा० व्यासार्षकृतिः खशून्यनवयमनवरसांवरशशिनः १०६९२६०० एक द्वित्रिगुगाः १०६९२९००।२१३८५८००।३२०७८७०० पृथक् क्रमेगा मूलानि ।१६।३५।२३१६।२८३२। एतान्यष्टद्वादशषोडशखण्डानि । शेषाणां तद्यथाष्टमम्। ज्याखण्डकमेण उत्क्रमेण। ४३८। भ्रनयोर्वर्गयोग चतुभिगोनष्टसंज्ञः ७१६२६७ ग्रस्मान् ः मूलं ८४६। इदं चतुर्थे ज्याखण्डमनष्टं च्यासार्धवर्गादपास्य शेषं ९९५६६३३ ग्रस्य मूलं ३१५९ इदं विशं ज्याखण्डमेवं

सर्वत्र । इदानी मष्टाद्वादश षोडखण्डैः सिद्धैः शेषागामानयनं प्रकारां तरेगा प्रवर्शन्नार्यामाह—

#### उत्क्रमसम खंडगुराादूव्यासादथवा चतुर्थभागाद्यत् । कृत्वोक्तखण्डकानि ज्यार्घानयनं लघ्वस्मात् ॥२३॥

वास० - उत्क्रमेरा समसंर्स्य खंडं तदुत्क्रमसमखंडम् ॥ तेन व्यापं खवेदश-ररस संख्यं सगुराज्या ततस्तस्माच्चतुर्भागो ग्राह्यः । स च तुल्य क्रमोत्क्रम समज्या खंडकवर्गयुतिचतुर्भागेन तुल्यो भवतीत्यर्थः। एतदुक्तं भवति। अष्टमस्य क्रमज्याखण्डस्यभूताग्निरसराशांक तुल्यस्योत्क्रमेरा समसंख्यमण्टममेव खंड वसुगुरावेदसख्यम् । ४३८ भ्रनेनायं व्यासः ६५४० गुगाितो यातः २८६४५२० अस्य चतुर्भागा ७१६१३० एतदनष्टं व्यासार्धवर्गादपास्य शेषं खमुनिनगरसागनवनंदा ६६७६७७० प्रथमान्मूलं चतुर्थज्याखंडं ८४६ द्वितीयात्पदं विंशं ज्याखंडं ३१५६ एतच्च कृत्वाष्ट द्वादशेषोडशा खंडानि कर्मकर्तव्यं यतश्चतुर्भागाद्यं यतकर्म तत्प्रा-गुक्तीन सम कार्ययित्युक्तम् अथवानेन प्रकारेगा ज्यार्थानयनम्। एवं द्वादश षोडशयोरिप ज्ञेयं ज्यार्घानयनं न लघ्वस्मादिति बहुभिरप्वाार्ये ज्यार्घानयनानि बहुप्रकाराण्युक्तानि कित्वतोऽन्यल्लघुतरं नास्तीत्यर्थेः । म्रत्रेयं वासना उत्क्रम खंडेन यदा व्यास ऊनीकृतः तेनैव निहन्यते । तदोत्क्रमखंडसमस्या क्रमज्या-वोत्क्रम खंडसमस्य क्रमज्या खंडस्य च वर्गो भवति खंडस्य तत्रच वर्गो भवति । …तत्र चो…मखंडं वर्गा योज्यचतु…ग्रहीतुंयु…ग्रतस्रो…ग् सकलः व्यासः सं । िरातः उत्क्रम । खंडने । वर्ग युति स्तयो भवति क्रमोत्क्रमखंडयोः यस्माद्येनैवोनस्तेनैव यदा व्यास संगुण्यते तदा गुराकारो न । व्यासार्धगत्या हीनो व्यासार्धवर्गो भवति, गुर्गेकारकृतिश्चात्रोत्क्रमखण्डककृतिः पुनरिप योज्या भविष्यतीति कृत्वा क्रमज्यार्घकृतेः सकल एव व्यास । संगुणित उत्क्रमखण्डेन ततश्चतुर्भागेन पूर्ववत्सर्वमुपपन्नम् । उत्क्रमखण्डेन गुराो व्यासश्च क्रमज्याखण्डस्य वर्गः कथं भवतीति चेत्तत्रायं परिहारः राशेरिष्टयुतोनाद्वध इति वर्ग प्रकारः । सर्वमेतद्वृत्ते यथा लिखिते प्रदर्शयेदिति । ज्याप्रकर्राम् ।।

इदानीं सर्वंग्रहाणां मन्दशीघ्रफलसंस्कारेण यत्स्पष्टीकरणं स्फुटगतौ प्रदर्शितम् । तत्रकारणमार्याः प्रदर्शन्नाह—

कक्षामंडलमध्यं भूमध्ये मध्यमः स्वकक्षायाम् । श्रनुलोमं मंदोच्चात्प्रतिलोमं भ्रमतिशी छोच्चात् ॥२८॥ नीचोच्चवृत्तमध्यं मध्ये तद्भ्रमति मध्यमः स्वोच्चात् । तत्परिधौ प्रतिलोमं मदोच्चाद्भ्रमति शी छोच्चात् ॥२५॥ श्रनुलोमं मध्यसमं भूस्थः पश्यति यतो न कक्षायाम् । स्पष्टं तन्मध्यान्तरमृणं धनं वा ततो मध्ये ॥२६॥

वास०--कक्षाया मंडलं कक्षामंडलमथवा कक्षैव मंडलं कक्षामंडलं तस्य मध्यः मन्त्र । तद्भूमध्ये स्वकक्षया यदंतरोक्त कक्षामंडलं तत्र मध्यमो भवति । श्रनुलोमं मंदोच्चार मंदोच्चभागावधेरनुलोमे न भ्रमति मंदोच्चं जित्वाग्रतौ याती-त्यर्थः, प्रतिलोमं भ्रमति शीघ्रोच्चात् । शीघ्रोच्चभागावधेः तु पुनः प्रतिलोमेन भ्रमति । शीघ्रात्पश्चादवलंबते इत्यर्थः । नीचोच्चवृत्तमध्यं मध्ये तद्भ्रमति नीचोच्चं च नीचोच्चेति यत्र वृत्ते गृहस्योत्पद्येते । तन्नीचोच्चवृत्तं कक्षामं डलं प्रति मंडलयोरन्तरतुल्येन व्यासार्धेन यद्दृत्तमुः पद्यते तदित्यर्थः। तच्चैकं मंदनीचोच्च-वृत्तं द्वितीयं शीघ्रनीचोच्चवृत्तं तयोम ध्यं नीचोच्चवृत्तमध्यं तद्भ्रमित मध्ये यदुक्तं कक्षामं डलोमं मध्यम इति । प्रागार्यायां नीचोच्चवृत्तमध्यं मध्ये स्थितं तद्भ्रमिति न तु पुनः ग्रह इत्यर्थः । ग्रहस्तु पुनः स्वोच्चतत्परिधौ प्रतिलोमं मंदोच्चात्स्वो-च्चावधेस्तस्यैव परिधौ मंदवृत्तस्य प्रतिलोमं विपरीतं भ्रमति स्वप्रतिमंडले च प्रदेशान्म दोच्च नीचवृत्तं यावद्ग्रहाभिमुखं नीयते । कक्षामंडले यावन्मध्यं कृत्वा तावन्मं दनीचोच्चवृत्तपरिधिस्थितोऽवलंबायमानः प्रतिलोमं दृश्यते स्रमित शी-घ्रोच्चात्तु पुनरनुलोमं यदुक्तं कक्षामंडले प्रतिलोमं शीघ्रोच्चतच्छीघ्रनीचोच्च-वृत्तमध्यं न ग्रहो ग्रहस्तत्परिघौ भ्रमत्यनुलोमं । स्वप्रतिमंडलोच्चप्रदेशा कक्षा मंडले मध्यं कृत्वा शीझोच्चनीचवृत्तं ग्रहाभिमुखं प्रतिलोमं यावदानीयते ताबत्तत्तत्परि-घिस्थितो ग्रहोऽनुलोमो दृश्यते । यत एवं मध्यमे संग्रहं भूस्थो द्रष्टा स्वकक्षायां स्पष्टं न पश्यति, ततो मध्ये ग्रहे धनमृणं वा क्रियते । यस्मात्परमार्थिको ग्रहः कक्षा मंडले न भ्रमतीति । ग्रयमथौतिप्रपंचेन मया व्याख्यायते । तत्रं तावत्समायामवनौ व्यासार्धं कल्पितेन कर्कंटकेन वृत्तमालिखेत्ततः कक्षामंडलं तत्केन्द्रं च भूगोल-मध्यं तस्यं म डलस्यार्धावगाहिन्यौ पूर्वापर दक्षिगोत्तररेखे कुर्यादेवं च कृते पदानि भवन्ति। तत एकैकस्मिन्। पदे राशित्रयं (राशित्रयं) प्रकल्पिच ह्यानि कुर्यादेकैकस्मिन्। राशौ त्रिशद् भागकल्पना सर्वत्र चिह्नानि कारयेत् । एवं पदराशिभागकल्पते कक्षामं डले पूर्वतः केन्द्रान्मे षा-दयो राज्ञयस्ततो मेषादेरारभ्य यत्र यत्र राज्ञौ भागे लिप्तायां च स्वमंदोच्चं वर्तते । तत्र चिह्नं कृत्वा तस्मात् चिह्नाद्भूमध्यप्रापिसूत्रं नीत्वा रेखां कुर्यात् । यतो भूमध्यात्तस्यामे व रेखायां प्रतीपं स्वमंद परमफलज्यया कक्षाव्यासार्धपरिगा-तया मितं सूत्रं निदध्यात्। यतस्तावत्स्वमंदोच्चनीचवृत्तव्यासार्धं यत्र सूत्रं समात्पं तत्र केन्द्रं विरचय्य कक्षामंडल तुल्यव्यासार्घेन वृत्तमालिखेत्। तन्मंद-प्रतिमंडलं यत आचार्येगौवोक्तम् । स्फुटगत्युत्तरे कक्षामंडलतुल्यं प्रतिमंडल-मध्यमवनिमध्यात्ले तत्स्वोच्चनीचवृत्तव्यासार्घेऽभिमुखमुच्चस्य। ग्रभिमुखमुच्च-स्येत्यस्यार्थः । अत एव मंद प्रतिमंडल केन्द्रात्पूर्ववदुत्तर रेखानुसारेएा व्यासार्घ-तुल्यं सूत्रं नीत्वा प्रतिमंडलपरिधि प्रापयेत्तत्र प्रदेशे प्रतिमंडलस्य परमोच्चता तत्रोच्चव्यपदेशः ग्रनया रेखया कक्षामं डले यः प्रदेशः स्पष्टः पूर्वमे व मंदोच्च- चिह्नतस्तत्र प्रदेशे मंदनीचोच्च चिह्नवृत्तमध्यं तत्प्रतिमंडल चिह्नांतर व्यासार्थेन-वंशशलाकया तद्वृत्तं निर्माप्य तथा निदध्याद्यथा कक्षामंडले तद्वृत्तमध्यं भवित तत्सुदीर्घया प्रित्तमंडलोच्चभूमध्यप्रापिण्या वंशशलाकया युक्तं कल्पयेत्। एवं मन्द प्रतिमंडलनीचोच्चवृत्तयोः संस्थानं ततो मेषादेरारम्य कक्षामंडले यत्र देशे स्वशीघ्रं वर्तते राशिभागादिके तत्र चिह्नं कृत्वा तस्माच्चिह्नाद्भूमध्यप्रापि सूत्रं प्रसार्य रेखां कृत्वा ततो भूमध्यात्तर्थेव रेखया पुनः। स्वशीघ्र परमफलज्यातुल्यं तद्वृत्तपरिगातं सूत्रं प्रतीपं निःसार्याग्रं चिह्नं कुर्यात्। तच्छीघ्र प्रतिमंडलमध्यं तन्मध्यं कृत्वा कक्षामंडलव्यासार्धेन वृत्तमालिखेत् तच्छीतप्रतिमंडलं, ततः शीघ्रप्रतिमंडलमध्यात्पूर्वं वदत्र रेखानुसारेगा व्यासार्धं तुल्यं सूत्रं प्रतिमंडलपरिधि-प्रापयेत्। तत्र शीघ्रप्रतिमंडलस्य परमोच्चता तत्कक्षामंडलांतरं शीघ्र परम फलज्या तत्तुत्येन व्यासार्धे वंशशलाकया शोघ्रनीचोच्चवृत्तं निर्मापयेत् सुदीर्घज्यावंशं-शलाकया भूमध्यप्रतिमंडलोच्चप्रापिण्या युक्तं कल्पयेत्। ततः कक्षामंडले पूर्वमेव यत्र शीघ्रोच्चविह्नं कृतमासीतत्र तस्य मध्यं वृत्तपंचकमपि षष्टिशतत्रयांकितं च कुर्यात्। कक्षामंडलमध्यं प्रतिमंडलशीघ्रप्रतिमंडलानि वंशशलाकाभिः छेदकेन वा कल्पानि नीचोच्चवृत्ते तु पुनः नरवशं वंशशलाकामये दीर्घं शलाकया युक्तं च कार्ये यतस्तयोश्चलनात्फलब्यिक्तरेवं स्थिते फलोंपपित्तदर्शनार्थमार्याद्वयमाह—

कोटिफलं व्यासार्धात्पवयोराद्यंतयोर्भवत्यु परि । द्वितृयोयोर्यतोऽधस्तद्युक्तोनं ततः कोटिः ॥२७ । कर्णस्तद्भुज फलकृतिसंयोगपदं तदुद्धृता त्रिज्या । भुजफलगुर्णिताप्तधनुर्गुणितेनैगं फलं शीझे ॥२८॥

वास० - कोटि फलशब्देन नीचोच्चवृत्तकोटिरुच्यते। त्रै राशिकसिद्धा तद्गुणिते ज्ये भांगैहंतेत्युक्तां यत्कोटिफलं व्यासार्धात् कक्षामण्डलत्पदयोराद्यं तयो भंवत्युपरिवतः प्रथमचतुर्थपदे कक्षामण्डल परिस्थिते द्वितृतीये च पदे कक्षामंड-लांतः प्रविष्टतो व्यासार्धादिधिकाकोटिराद्यं तयोनींचो वृत्तकोट्या द्वितृतीययो व्यासार्धान्यूना कोटिः तयैव सा प्रतिमण्डलकर्णस्य कोटिः भंवतीत्यर्थः। तद्युक्तोनं ततो व्यासाद्धः कोटिः मन्दशी प्रकर्मणोरिप भवतीति यावत्प्रतिमण्डलकर्णस्तु पुनस्तद्भुजफलं कृतिसंयोगपदंतदिति। स्फुटकोटेः परामर्षः तस्याः कृति भुजफल-शब्देन नीचोच्चवृत्तभुजज्योच्यते। तस्याश्च कृतिः तयोः संयोगपदं कर्णं भूमध्यपार-मार्थिक ग्रह्योरंतर तित्यर्थः तदुद्भृता त्रिज्या भुजफल गुणितेति। ग्रत्र त्रे राशिक वासना यदि स्फुटकर्णस्यैक इति भुजो व्यासार्धंस्य तावत्कक्षा मण्डलप्रदेशे ग्रह-फलज्या भवतीत्यर्थः। आप्तस्य धनुर्लब्धस्य चापं कार्यं तच्छी प्रफलं भवति, गिणितेनैवं फलं शीघ्रं, फलं केवलं वासनगभिधीयते यावद्गिणितेनैवोक्तमेवं मये त्यर्थः। नतु यैव शीघ्रं कर्मणि वासना, सैव मन्दकर्मिणि तिहक्षमुच्यते। गिणितेनैवं

फलं शीघ्ने इति मन्दकर्माण्यपि स्फुटकर्गोन फलानयनं युक्तं चात्राचार्येगोक्तमेतदा-शंक्य परिहारार्थमार्यामाह—

त्रिज्याभक्तः कर्गः परिधिगुणो बाहुकोटि गुणकारः । श्रमकृन्मादे तत्फलमाद्यसमं नात्र कर्गोऽस्मात् ॥२६॥

वास० - त्रिज्याभक्तः कोऽसौ कर्ण इति कि भूत इत्याह-परिधिगुण: कि बाहुकोटि गुराकार- मन्दप्रतिमण्डलप्रदेशे स्फुटपरिधिर्भवतीत्यर्थः। असकुन्मांदे मन्दकर्मणि तत्फलमाद्यसमं मध्यपरिधिकृतफलतुल्यमत्र त्रेराशि-कद्वये यदि व्यासार्धमं डलस्यार्धं मन्दपरिधिः स्फुटकर्गाः मण्डलस्य कइति ततो लघुं स्फुटपरिधिः तेन फलमानीय। ततो द्वितीयं यदि स्फुटकर्णप्रदेशे एतावत्फलं कक्षामण्डलप्रदेशे कियदित्यत्र प्रथमत्रै राशिके व्यासार्घं भागहारो द्वितीये गुर्णकारः स्फुटकर्गोऽपि प्रथमे गुर्णकारो द्वितीये भागहारः एवं सर्वेष्वेव नष्टेषु मध्यमपरिधिरेव गुंगाकारो भुजकोटिज्ययोः स्थित इत्यस्मात्कारगान्मंदकर्मिण कर्गो मया न कृत इति । तद्यथोक्तवत्कक्षामंडलमंदप्रतिमण्डलशीध्रप्रतिमण्डलानां विनाशं कृत्वा ततो नीचोच्चवृत्ते स्वे स्वे स्थाने कक्षामण्डले च विन्यस्य ग्रह्-स्फुटीकरगावासना प्रदश्यं मेषादेरारभ्य यत्र राशौ भागे लिप्तायां ग्रहो वर्तते तत्र चिह्नं कार्यम्। ततो मंदोच्चप्रदेशान्मंदनीचोच्चवृत्तग्रहाभिमुखं नयेत्। तथा च नयेद्यथा तद्वृत्तमध्यं कक्षामण्डलपरिधिम्मुं च गत्वा ग्रहचिह्नित् प्रदेशिति । तत्र स्थितस्य नीचोच्चवृत्तस्त तदुपरि केन्द्ररेखातस्यत्परिधिश्च पूर्व-गोच्चाद्यत्र संपातस्तत्र मन्दफलस्फुटोग्रहस्तत्र च तुल्या एव राशिभगगादयो भवंति । नीचोच्चवृत परिधिप्रतिमण्डलयोः प्रतिलोमानुलमोकृतो विशेषः तावदेव ग्रहोच्चांतरं प्रतिमण्डले केन्द्रं भवति । तत ग्राद्ये पर्दे भुक्तस्य भुजज्याभोग्यस्य कोटिज्या यतः प्रतिमण्डलोच्चापेक्षया सर्वदैव दक्षिग्गोत्तरा भुजज्या । प्राच्यपरा-कोटिज्या भवति- छेद्यको द्वितीय च पदे च विपरीतं प्रथमवत्तृतीये द्वितीय चतुर्थे यतोर्धचक्राच्चक्राच्च शेषभागानां भुजज्या भवति द्वितीयचतुर्थयोरेवं प्रति मण्डल-भुजाकोटिज्ये निष्पन्ने त्रैराशिकेन नीचोच्चवृत्तेन कियत्याविति पृथग्भुजकोटि फले भवतः इष्टवृत्त इत्यर्थः। एवं स्थिते कोटिफलयुता त्रिज्या पदयोरित्यादिना स्फुटकर्गाः प्राप्तः । तेन च शीघ्यकर्मवत्फलानयने प्राप्ते भुजफलमेवाचार्येग ग्रहफलमभिहितं तद्दोष परिहारा ये मयाचार्येण प्रणीता यतः प्रतिमण्डलानु-सारेण परिधिः तेन प्रतिमण्डलभुजज्यागुणायितं युज्यते स च परिधिरसक्त त्स्फुटकर्णं त्रैराशिकेन परिणमित । तत्कृतं फलं च पुनस्त्रैराशिकेन व्यासार्धेन परिणमत्यतः कक्षामण्डल परिधिनेव यद्भुजफलचापं तदेव ग्रहमन्दफलं भवति । मन्दस्फुटार्घ एव चन्द्राको पारमाथिको हक्समौ भवतः, भौमादीनां पुनर्मंदस्फुट-ग्रह्शब्देन नीचोच्चवृत्तमध्यमुच्यते । अन्यथा स्थानद्वये ग्रहसम्भव एव तुल्य-

कालं स्यात्। एवं मन्दकर्मािए। सर्वग्रहाणां ततः स्वस्थानाच्छीघानीचोच्चवृत्तं प्रतिलोमकक्षामण्डलपरिधिममु चतुमध्यं यथा गच्छिति तथानीय कक्षामण्डले मन्दफलसिद्धे प्रदेशे तन्मध्यं निदध्यात्। एवं स्थिते शीघानीचोच्चवृत्तं प्रदर्शयेत्। तथा स्थितस्य शीघानीचोच्चवृत्तस्य यत्र परिमण्डलेन सह संतापः स्वोच्च प्रदेशादपरतो नीचोच्चवृत्ताच्च पूर्वतः तत्र ग्रहः पारमार्थिकः यतः प्रतिमण्डले परिधौ मध्यम भुक्तस्फुट ग्रहो भ्रमतीति ततः प्रतिमण्डलभुजकोटि ज्ये कृत्वा ग्रहो भ्रमति, स्फुटगत्युत्तरे म्राचार्येगौक्तं प्रतिमण्डलस्य त्रौराशिकेन नीचोचन-वृत्ते परिरामय्य । ततः कोटिफलयुता त्रिज्येति वासनया स्फुटकर्णमानीयो-क्तवद्ग्रहफलं कार्यम् । कक्षामण्डले एवं कृते हक्तमो ग्रहो भवति । क्षयधनोप-खेर्म दोच्चनीचोच्चवृत्तशलाकया कक्षामण्डले यः प्रदेश स्पष्टस्तत्र मध्यमो ग्रहः तद्वृत्तेन च प्रतिमण्डलपरिधिः यत्र स्पष्टः तत्र पारमार्थिको रिवः । यतो मन्दप्रतिमण्डलोच्चरेखया यत्र प्रदेशे कक्षामण्डलं स्पष्टं तस्मादारभ्य नीचोच्चवृत्त शलाका स्पष्टदेशं यावद्यावंतो भागादयस्तावंत एव प्रतिमण्डलोच-प्रदेशात्तत्परिघि नीचोच्चोवृत्तपरिघि संपातं यावत् । अतः स्फुटग्रहाद्यत् सूत्रं भूमध्यान् प्रति प्रसार्यं ते । तन्मध्यग्रहात्प्रथमे पदे पश्चिमेन याति, तत्रस्थं रवीन्द्रोः भूस्थो द्रष्टा पश्यत्यतः प्रथमे प्रतिमण्डले केन्द्रपदं तदंतरं विशोध्य । यतस्तत्रो-परि प्रतिमण्डल कक्षामण्डलातृतीये तु विपरीतं कक्षामण्डल स्योपरि स्थितत्वात् । द्वितीये च वासना । प्रथमवदर्षंचक्रात् विशोध्य यतो भुजकोटिज्ये चतुर्थं पदे तृतीयवच्चक्रार्घं शिषस्य यतो भुजकोटिज्ये चतुर्थं पदे तृतीयवच्चक्रार्घं शिषस्य यतो भुजकोटिज्ये, एवं चन्द्रस्यापि यथोपदृष्टेवृ तैः सर्वे प्रदर्शयेत्। भौमादीनां पुनंर्मदकर्मणा यः प्रदेशः सिद्धो भवति । कक्षामण्डले तत्रशीघा नीचीच्चवृत्तमध्यं कृत्वा शेषं प्रदर्शयेत्। तत्र प्रथमे प्रतिमण्डल पदे धनं भवति, प्रतिमण्डलोच्चत्वं यतः पुरतस्तिष्ठति, अतः शेष पदेष्वपि वैपरीत्यं योज्यम् । मन्दवासना तु मन्दकर्माणि युक्ता केवलमुच्यते । एवं तत्त्वतो गणिते तु कक्षामण्डलाश्रयमेव केन्द्रः, तत्र च राशित्रये परमफलमागच्छति, युक्ता च नोपपद्यते, शीघ्रफलतुल्यवासनत्वात्। स्वल्पांतरत्वांत्तु तथा न कृतमित्युक्तं शी घ्रफले तु कक्षामण्डल पदं व्यवस्थापित ऋगाधन रूपं प्रतिमण्डल पदं प्राप्तं यावत्स्वतः एव वर्षते ताभ्यांतरत्वात् । प्रतिमण्डलभुजकोटिज्ये दर्शिते यथा न्यस्तवृत्तेषु सर्वं दर्शमान स्वयमेवावगम्यते । मन्दकर्मािएा प्रतिलोम मन्दनीची-च्चवृत्तपरिधिकेन्द्र भगराभोगेन ग्रहः पूरयति शीघ्र कर्मारा चानुलोमे न शीघ्रनीचोच्चवृत्तपरिधिः केन्द्रभगगाभोगेन ग्रहः पूरियति । शीघ्रकर्मांगि वानु-लोमेन शीघचोच्चवृत्तपरिधिकेन्द्रभगणा भोगेन ग्रहः पूरयत्यतः सर्वं एवोदया-स्तमयचकात्तु चकादयः प्रदश्याः। यदा रिवसमसूत्रस्थो ग्रहः स्थितः तदापर-स्वकालांशैयोंज्यौ। ग्रर्धंचक्रांतरितश्च परमे वक्रे मास्तमयप्रदेशात्प्रवेशनिर्गमौ ग्रहो यतः शीध्रनीचोच्चवृत्तपरिधिवाधोवती भवत्यानुलोम्येन । तत्र प्राग्गति-

रिव लक्ष्यते । प्राग्गतिवासनापि तत्र घटत एव यत स्वगतितुल्येनाध्वना ग्रहः प्राग्गच्छन्नुपलभ्यते, ततोऽपि स्वगतेर्यद्येकदैवसिकमृगाफल प्रतिमण्डलग्रहभूमध्य-प्राप्ति सूत्रवशात्कक्षा मण्डले महदुपलभ्यते ततः स्वभुक्तः प्रतिमण्डलकक्षा मण्डलादभेदस्य यदांतरं सा तु वक्रभुक्ति शीघ्य- नीचोच्चवृत्तेः प्रदश्यम् । सर्वमन्द-नीचोच्चवृत्तेः पुनः प्रतिलोमो ग्रहो भ्रमति । तत्राधोवंत्यपि प्राग्गतिरुपलभ्यते ततो रिवचन्द्रयोवंक्राभाव इत्येवं स्विधया नीचोच्चवृत्तयोर्घनगादिका वासना योज्या ।

तत्रस्थग्रहभूमध्यप्राप्तिसूत्रवश्यात्तत्र च यदुक्तं। त्रिज्याभक्तः कर्गं इत्यादि प्रतिमण्डल कक्षामण्डलयोर्भुं जफलस्य स्वल्पांतर प्रतिपादनपरं मन्द कर्मा-िए। ग्रन्थया पुनः पुनः शीध्य कर्माण्येतदेव स्यात्। न चैवं तत्र क्रियते, यदि क्रियते तद्बहुभागीतरं भवत्यतः स्वल्पांतर तत्कर्णो मन्द कर्माण न कार्यं इति। न तु चैक एव ग्रहः क एते मन्दोच्चशीधोच्च पाताः। यदि परमाधिका तत्कथं ग्रहवननोपभ्यते, ग्रसत्यञ्चेत्काभुक्तिकल्पना तेषामित्यत्र परिहारमाह—

#### प्रतिपादनार्थमुच्चं प्रकल्पितं ग्रहगतेस्तथा पातः। भुक्ते रूनाधिकता मानस्यं भवति कर्णवशात्॥३०॥

वास०-प्रतिपादनार्थमुच्चं प्रकल्पितं ग्रहगतेः शिष्याणां पारमार्थिग्रहगत्य-वगतये । नीचोच्चादिका कल्पना यतस्तद्वशात्पूर्वापरगतिद्व ष्टुं सिद्धा भवति । तथा पात इति प्रतिपादनार्थंमेव पातः प्रकल्पतो यद्वशाइक्षिग्गोत्तरा गतिः सिद्धा भवत्यतः परमार्थतया ग्रहरा एव केवल इत्यर्थः । कथं चेत्कल्पत इत्याह —भुक्ते-च भवति कर्ण्वशात्। भ्रयमभिप्रायोभीष्टिदिनेऽभीष्टकाले रूनाधिकतामानस्य यद्यादियंत्रे ए। ग्रहं विद्यात्, द्वितीयदिने तावत्येव काले विद्यात् । तत्रांतरमाक-लय्य तत्परिधिना स्फुटभुक्ति कल्पयेत्। मध्यभुक्तिश्च स्वभगराभोगार्कसावन-दिनैभंपरिधि खखषद्क न संख्यं विभज्य भवति ततो यदि स्वमध्यगते ऋ ए। त-दैव सिकी भुक्तिः तदा कक्षामंडलादुपरिग्रहः अधिका चेत्तदधोरिवचंद्रयोः कर्णश्च ग्रहभूमध्यांतरं यतस्तद्वशादवगम्यते । एवं परमाल्पतां भृक्तेः परमधिवतां व लक्षयेत्। भगगाभोगं यावद्गगाभोगगत्यैव भवत्यतोवगम्यते। यद्यपि भुक्ति-भेदात्कक्षामंडले न ग्रहः तथापि तत्तुल्ये मंडले ग्रहो भवति । भगएाभोगयोः तुल्यत्वात् । म द कर्णंश्चात्यल्पभुक्ताविति महान् । स्रतिवृहद्भुक्तावत्यल्पः परम द-कर्णं व्यासाधितरं परम फलतश्च मंदनीचोच्चवृत्त व्यासार्धं तद्वशादधातरे फल-भेदस्तत उच्चकल्पना युज्यते रिवचन्द्रयोः कुजादीनां पुनः स्फुटमध्यभुक्तोरंतरं म दशी झक्र ग्रांवशादिभद्यते तत्र म दकर्गोन रिववदंतरकल्पना सावाध्या शी घ-कर्णवशान्महत्यंतरकल्पना सा च वैपरीत्येन योज्या ग्रतस्तत्र शीघ्रोच्च मंद-स्फुटग्रहयोरंतेरं साध्यं कक्षामंडले । तच्च महति कर्गो स्वल्पं भवति । ग्रल्पे च महदतो मध्यभुक्ते रथाधिकं तंत्रांतरं भवति । यस्माद्वकादय उपलभ्यंते, इत्यादि स्विधया योज्यम् तत्कलोत्पत्तिवशाच्चकेंद्र भुक्तिरुपलभ्यते । तां ग्रहभुक्तौ संयोज्य शो घ्रोच्चभुक्तिर्भवति । मंदकेंद्र भुक्तिग्रहभुक्तघोरंतरं मंदोच्चभुक्तिनं च शीघ्र-म दोच्चनीचे वस्तुभूत इत्यर्थः। एवं परमिविक्षेपाद्यंते दक्षिगात्तरयोविम डल-सिद्धिः । ततः परम विक्षेपस्यान्यात्रान्यदृष्टत्वीत्यातगते कल्पना यथा कर्णवशा-द्भुक्ति कल्पना, एव मानवशादपि, तुल्यैवमत्राप्युच्चादि कल्पना युक्तावसाना तुल्यत्वात् । म दशी घ्रकर्णयोरिप न केवल मुच्चादयः कल्पिता यावद्भपंजरभ्रमगां किल्पतमेव नः प्रतिभाति, ग्रहस्य युगपद्गतिद्वयासंभवात् । यदा तु पुनर्भुव स्रावर्तनं कल्पते । तदा भपंजरे स्थिरेपि प्रतिदैवसिकाबुदयास्तमयौ संभवेतां ग्रहाश्चापमंडलविमंडलगतयः प्रगागतय एवं विमंडलवशाद्क्षिगोत्तरापि गतिः सिद्धा भवति, भूयश्चावर्त्तावर्त्यहोरात्रेण क्षितिजे रविणा सह युज्यते । ग्रहश्चाग्रतोऽग्रतो याति वक्रादिवासना तुल्यैव, ग्राचार्यार्थभट्टेनापि भू भ्रमगा-मभ्युपगतम् । यतो दशगीतिकासूक्तम् । प्रार्णेन कलां भूरिति, तथार्याष्ट्रशते, अनु-लोमगतिर्नेस्थः पश्यत्यचलं विलोमगं यद्वत् । अचलानि भानि तद्वत्समपश्चिमगानि लंकायामिति । लोकभयाद्भास्करादिभिरन्यथा मत्वा इयमार्या व्याख्याता । न चात्र तत्त्वमबगन्तुं शक्चतेऽस्मदादिभिः किंतु स्वाभिप्रायो लिंगनाकृतेत्येवं स्फुटगतिबसने द्विशतः प्रदिशता तत्रैव प्रत्यायीसूत्रं प्रदर्शयिष्याम इति स्फुट-गतिवासना ।

इदानीं रिवचन्द्रग्रहणयोर्वासना प्रदर्श्यते। तत्र मानयने योजनकर्णा-भ्यां प्रयोजनं तत्प्रसंगेन सर्वग्रहाणां योजनकर्णायनमाह—

# कक्षाव्यासार्धगुराा मंडला लिप्ता विभाजिता कर्गः।

वास०—कक्षेति जात्यपेक्षयैकवचनं व्यासार्धं ग्रहणेन भगण्यकला व्यासार्धं गृह्यते नखमुनिरदायत उक्तं योजनकर्णंप्रमाणार्थं भगण्यकलाकर्णः तेनेष्टग्रह-कक्षाव्यासार्थेन गुण्मण्डललिप्ता गण्यकलाः ताभिविभाजिता कि भवति कर्णः भूमध्यं तत्कक्षामण्डलांतरे योजनात्मकं व्यासार्धं भवतोत्यर्थः। भ्रत्र त्रेराशिकं यदि भगण्यकला तुल्ये परिणाहे रसचन्द्रकृततुल्यं व्यासार्धं तदिष्टग्रह कक्षातुल्ये कि भविष्यतीति फलं योजनकर्णम्। सर्वेषां कक्षाकर्णानयनम्। मया सिद्धा एव योजनकर्णालखांते कर्णाद्वयेन तद्यथा म्रकेषु खेषु वसुषट्क मितोऽकैः कर्णः चन्द्र-खवेदयमचन्द्रशरेश्च कोजः। शून्यद्विवेदवसुवस्विनतुल्यसंख्योबोधस्तुनेत्रवसुरंध-कृताष्टिर्संघ्या।

रामाग्निमगलकृतार्कवसुप्रसंस्यै जैवः सितस्य रसखान्धिशशिद्विवेदाः।

श्रश्व्यष्टबाराखनवेंदुखनेत्रसंख्यः सौरोखे विनिहितः स्वरसैस्तु भानाम्। एते योजनकर्गा मध्यमा ग्रहनक्षत्रासामिति ।

इदानीं योजनक्णानांस्फुटीकरणार्थं द्वितीयमार्यार्धमाह—

स्वकलाकर्गेन गुरगः कर्गास्त्रिज्याहृतः स्पष्टः ॥३१॥

वास०—स्वश्च सौकलाकर्णः स्वकलाकर्णः तेन गुणः को सो कर्णेनांतर-प्रकांतौ मध्यमयोजनवर्णं इत्यर्थः । त्रिज्याहतः स्पष्टः व्यासार्धभक्तः स्फुटयोजन-कर्णः । प्रतिमण्डलस्थ ग्रहभूमध्यप्रापी भवतीत्यर्थः । एवं सर्वेषां कर्णपुटीकरणम् । वासना चात्र त्रैराशिकोक्ता इदानीं भूरिवशिशना योजनक्किंबप्रमाणदर्शनार्थं खरूपप्रतिपादनाय चार्यामाह—

## मृद्द्दनजलमयानां विष्कंभो योजनैः विवनेंदूनाम्। शशिवसुतिथिभियंमपक्षश्चरसैः शून्यवसुवेदैः॥३२॥

वास० — मृद्दहनजलमयानां यथासंख्यं विवनेंदूनाम्, कुः पृथिवी इनो रिवः इंदुश्चन्द्रः, कुश्चेनश्चेंदुश्चेति द्वंद्वः । तेषां विष्कंभो योजनैः मृन्मयी भूः प्रत्यक्षत एवास्माभिरुपलभ्यते । ग्रग्निमयः सूर्यः सोऽप्यस्माभिः ताहगेवोपलभ्यते । यतोऽर्कं-दीधिति प्रतिबिबत्चेन चन्द्रदीधितयो यथान्यत्रापि जले पितता ग्रकंरश्मयः तदपि जलं रिश्मवत्कुर्वते तद्वदिहापि तेषां विवनेंदूनां योजनैरेतावत्संख्यैर्विष्कंभः भूगोल-व्यासः शशिवसुतिथिभिः शतैरेकाशीत्यधिकैः १५८१ । रिवगोलस्य व्यासोपमपक्ष-शररसैः षिक्षभः सहस्रौः पञ्चभिः शतैरदीविवत्यिधिकैरित्यर्थः ॥ ४८०॥ स्य व्यासः शून्यवेदैश्चतुर्भः शतैरशीत्यधिकैरित्यर्थः ॥ ४८०॥

इदानीं चन्द्रप्रदेशे भूछाया विष्कुं भस्य योजनात्मकस्यानयनार्थमार्यामाह —

## कर्कव्यासांतरगुणिमदुस्फुट कर्णमर्ककर्णहतम् । प्रोह्म भुवो भूछाया विष्कंभश्चन्द्रकक्षायाम् ॥३३॥

वास० — कुश्चाकँश्च कर्नी तयोर्व्यासी कर्कव्यासी व्यासयोरंतरं न्यासेत्। रिवभूयोजन त्यासयोविशेष इत्यर्थः। तेन गुण इंदोः स्फुटकणेचन्द्रमसः स्फुट-योजनकर्णे इत्यर्थः। ग्रकंकर्णेन हतोर्कंकणंहतः रिवस्फुटयोजनकर्णेन विभक्त इत्यर्थः। ग्रतः कर्कंव्यासांतरगुण मिंदु स्फुटकर्णमर्कं कर्णहतम्। स तं प्रोह्य कुत इत्याह भुवो भूव्या सहभूष्टाया द्रिष्कंभश्चन्द्रकक्षायां चन्द्रकक्षाग्रह्णेन चंवस्थान-प्रदेशंदर्शयति। तेन चन्द्रपतिमण्डलप्रदेशे योजनात्मकी भूखाया व्यासो भवति इत्यर्थः। यतस्ततोधो महानुपरि च सूक्ष्म भूछाया व्यासो भवतीत्यर्थः। तद्यथा

भूव्यासा शिवसुतिथयः १५८१ रिवव्यासो यमपक्षशररसा ६५२२ अनयोरंतरं रूपकृतनववेदाः ४६४१ अनेनाभीष्ट दैवसिकं चन्द्रफुटयोजनकर्णं संगुण्य्य रिवयोजनकर्णेन विभज्यावाप्तं भूयासादस्माच्चन्द्राष्ट शरेंदुसंख्यात् ।१५८१। विशोध्य भूछायाविष्कंभो भवित । चन्द्रकक्षाप्रदेशे तत्प्रतिमण्डल इत्यर्थः । अत्र दीपछाया गिण्तिवासना रिवव्यासार्धेन प्रदर्शा तद्यथा । यदि रिवयोजनकर्णं-तुल्यछायया रिवत्यासार्धभूव्यासार्धांतर तुल्या छाया कोटिर्लभ्यते । तत्स्फुट-शियोजनकर्णंतुल्यया कियतीतिलघ्वं भूव्यासार्धस्य चन्द्रप्रदेशजभू छाया विष्कंभार्धस्य चांतरं तद्भूव्यासार्धाद्यास्य द्विगुणं कृत्वा चन्द्रकक्षाप्रदेशे भूछाया विष्कंभो भवतीत्यर्थः । आचार्येण भूव्यासार्धोनं रिवव्यासार्धं द्विगुणं कृत्वा निबद्धं ततश्च यत्फलं तदिष सकलमेव भूव्यासार्घोनं रिवव्यासार्धं द्विगुणं कृत्वा निबद्धं ततश्च यत्फलं तदिष सकलमेव भूव्यासाच्छोध्यते इति च निबद्धम् । अतः सूत्रार्थो वासनायां घटक इति अत्रार्यायां चन्द्रमन्दप्रतिमण्डलोपलक्ष्यार्थं-यतः स्फुटयोजन कर्णे कर्म प्रदिशतम् । इदानीं भूछाया विष्कंस्य योजनात्मकस्य लिप्तीकरण्माह—

#### तद्गुिं ति व्यासार्धं शशिकर्णहतं तमः प्रमाणकलाः।

स्वास०—तदित्यनंतरोक्तभूछायाविष्कंभस्य परामर्शः। तेन गुणितं तद्गुणितं व्यासार्धतसचन्द्रकृतगुणसंख्यभगणकला व्यासार्धमित्यर्थः। शशिकणंहतं चन्द्रमध्ये योजनकर्णेन हतं तमः प्रमाणकला भवंति। अत्र त्रैराशिक
द्वयं यदि चन्द्रमध्ययोजन कर्णस्य व्यासार्धतुल्याः लिप्ता भवन्ति। तच्चन्द्रस्फुटयोजनकर्णस्य कियत इति फलं स्फुटकला, कर्णः ततो यदि चन्द्रस्य स्फुटयोजनकर्णस्य
चन्द्रस्फुटकला कर्णतुल्या लिप्ता भवन्ति। तदस्य स्फुटभूछाया विष्कंभस्य
कियत्य इति। स्फुटयोजनकर्णप्रथमे गुणकारः द्वितीये भागहारस्तुल्यत्वान्नष्ट
यो भूछाया विष्कंभस्य त्रिज्या गुणकारो मध्येन न कर्णभागहारः फलं लिप्ता
रूपं तमः प्रमाणं चन्द्रमन्दप्रतिमण्डलप्रदेशे। प्रधुना रवि चन्द्रयोजनमानयोलिप्तानयनमाह—

#### एवं त्रिज्यारविशशि विष्कम्भगुराग स्वकर्णहता ।।३४॥

वास०—त्रिज्यारिवशशिविष्कम्भगुणा रिवयोजनमानेन मध्यमेनैकत्रगुणितानयत्र चन्द्रयोजनमानेन स्वकर्णाभ्यां हता स्वस्फुटयोजनकर्णयो पृथक् पृथिवभजनीयेत्यर्थः। एवं रिवशिशनोर्माने लिप्ता रूपे निरूपते इत्यर्थः। ग्रत्र त्रैराशिकद्वयं
यदि मध्ययोजन कर्णतुल्यैर्योजनैः व्यासार्धतुल्या लिप्ता लभ्यन्ते तन्मध्यममानयोजनैः
कियत्य इति लिप्तारूपं मध्यमानं लभ्यते। ततो द्वितीयं यदि मध्ययोजनकर्णो एता
स्फुटयो योजनकर्णे कियन्मानं द्वितीयं व्यस्तत्र राशिकं महित स्फुटकर्णे यदल्पं
मानमल्पे च महत्तदात्र प्रथमे मध्यमयोजनकर्णो भागहारो द्वितीये गुणकारस्तु-

ल्यान्नष्टयोर्मध्यमयोजनविष्कंभस्य त्रिज्यागुर्णकारः स्फुटयोजनकर्गो भागाहारः फलं स्फुटमानलिप्ता रवे चन्द्रस्य चैवं मानान्यभिघायेदानीं रविचन्द्रग्रहरणयोः स्वरूप प्रतिपादनार्थमार्यामाह—

> भूछायेन्दुं चन्द्रः सूर्यं छादयति मानयोगार्घात् । विक्षेपो यद्यूनः शुक्लेतरपंचदश्यन्ते ॥३५॥

वास॰ —छादयतीति उभयोरपि सम्बध्यते । तेन नायमर्थः । भूछायेन्द्रं छाद-यति । चन्द्रश्च सूर्यं छादयति । यथा संख्या शुक्लेतरपञ्चदश्यन्ते । कि सर्वदैव नेत्याह मानार्घयोगार्घाद्विक्षेपो ग्राह्मग्राहकयोलिप्तामानयोगार्घात् । तात्कालिको विक्षेपोय द्यनः । तदाग्राससम्भवः ग्रत्रेयं वासना । रवेभिधिन्तरिता सर्वदा भूछाया भ्रमति पौर्णमास्यन्ते चन्द्रोऽपि भांतरित एव तत्रस्थारचासौ यद्यतिविक्षिप्तोपमण्ड-लान्न भवति । तदा भूछायां प्रविशति यतश्चन्द्रकर्एांछायादैर्घ्यमधिकं भूछाया चापमण्डले भ्रमति चन्द्रस्तूपातासन्नो विमण्डलस्थोऽपि भूछायां प्रविश्य महत्त्वा-भूछायाः सूर्यंरक्तचन्द्रमसर्देखाद्यते । उपरिरविरधश्चन्द्रः स च शीघ्रगतिः सन्छाद्य प्रोगच्छति मेघखण्डवत् । ग्रमावस्यायाः ग्रन्ये च एकसूत्रगतौ द्वावपि भवतः तव स्फुटविक्षेपवशाद्यद्यति विक्षिप्तश्चन्द्रो न भवति । तदा रविग्रहणं यतो बिम्बयोः केन्द्रान्तरालं स्फुटविक्षेपः स च यदि मानार्घादधिको भवति । तदा बिम्बयोर्यु ति-रेव न भवति । ग्रथोनस्तदा परस्परमनुप्रवेशो भवति, इत्येवं सर्वं गोले प्रदर्शयेत् ननु च राहुकृतग्रह्ण रविचन्द्रयोः तत्किमुच्यते । भूछायेन्दु चन्द्रः सूर्यं छादयत्ये-राहुकृतं ग्रह्णं निराचिकीषु रादौ तावद्गाहकद्वयप्रतिपादनार्थं तदाशङ्क्य माह—

> महदिदोरावर्णं कुण्ठविषार्गो यतोऽर्घसंछन्नः। भ्रषंच्छन्नो भानुस्तीक्ष्णविषार्गस्ततोऽस्याल्पम् ॥३६॥

वास० — स्पष्टाथयमार्या। ग्रन्येन रिवः छाद्यते ग्रन्ये न च शशी यतो छन्नस्येन्दोः कुण्ठविषाग्एत्वादवगम्यते महान् किष्चद्ग्राहक इत्यस्य। रवेश्चाव-छन्नस्य विषागायोः तैक्ष्ण्यादवगम्यते, ग्रन्पोस्य ग्राहक इति तौ च भूछायाचन्द्र-मसौ युक्तौ नान्यैनियुक्तिकौ कल्पयितुं शक्येते इति राहुकृतग्रहग्गस्यान्यदूषग्ग-द्वयमाह—

यदि राहुः प्राग्भागादिन्दुं छादयति कि तथा नार्कम् । स्थित्यर्घं महदिन्दोर्यथा तथा कि न सूर्यस्य ॥३७॥ वास०—इयमिप स्पष्टार्था। मण्डलप्राग्भागे यथा चन्द्रमा छाद्यमानो-हश्यते। श्रकंश्च मण्डलापरभागे छाद्यते तद्राहो रेकत्वात्किमेतत्। भूछायां तु पुनः चन्द्रः प्रागाछन्निव पूर्वभागेनैव प्रदेशं करोतीत्येतस्य प्राच्यां दिशि प्रग्रहण-मुपपद्यते। रवेस्तु शीघ्रगश्चन्द्रः स च पूर्वाभिमुखो गच्छन्निव बिंबं पश्चाद्भागे प्रग्रहणामुपपादयति। श्रतो न राहुकृतं ग्रहणमित्यर्थः। अन्यच्च स्थित्यर्थं मह-द्यथा चन्द्रग्रहणे कि तथा नार्कग्रहणे ग्राहकसामान्यात्। भूछाया च महती ततः स्थित्यर्थं धमहदुपपद्यते एव ग्रतो न राहुकृतं ग्रहणमिति। राहुकृतग्रहणस्य दूषणांतरमाह —

## कि प्रतिविषयं सूर्यो राहुक्चान्यो यतो रविग्रहरो । ग्रासान्यत्वं न ततो राहुकृतं ग्रहरामर्केन्द्रोः ॥३८॥

वास० — सुगमार्थेयमार्या — सूर्यस्तावदेक एव सर्वत्र राहुश्च तत्किमिति क्वापि खण्डग्रहणं—ग्रन्यत्रग्रहणाभाव एव रविग्रहणे चन्द्रग्रहणे च सामान्यः सर्वत्र ग्रासः । तत्किमेतदेकत्वात्स्वर्भानोः चन्द्रस्तु यदा रवेः छादकः तदा तस्याल्पत्वादव-नितिविक्षेपाक्षदेशांतरादिति ग्रासभेदः उपपृद्यते । एवं यथाम्बुदखंडछन्नोर्कः क्वापि .न हृश्यते, ग्रन्यत्र दृश्यते । अन्यत्राव छन्नो दृश्यते । एविमहापि । चन्द्रस्य भूछा-याछादिका सा चैकरूपया सर्वत्र धूमवर्ताकारी, तत्र प्रविशति चंद्रः सर्वतोऽपि छन्न एवेत्यतश्चंद्रग्रहरां सर्वसामान्यमेवोपपद्यते। तस्मादुपसंहरति, न ततो राहुकृतं ग्रहणमर्केद्वोरिति । यथास्थिते गोलवासना प्रदश्यी ग्रनंतरोक्तार्याणां भूछाया वासना यत्रापि मण्डले रवेः स्थितः तत्समभूभागादुभयतो नवतितमे-भूभागे सूत्रद्वयं बद्धा तदग्रे एकत्र कृत्वा रिवक्रान्तापमण्डलभागादर्भ चक्रांतरिते-पमण्डल भाग एव बन्धीयात्। एवं स्थिते सूत्रांतरसंस्था भूछाया भवति ग्रह्णा-ध्याययोश्च प्रतिसूत्रप्रपंचेन वासनां प्रतिपादियष्याम इति । स्रत्र चाचार्यवराह-मिहिरः-सूर्यात्सप्तमराशौ यदि चोदग्दक्षिणाभिगतः चन्द्रः, पूर्वाभिमुखछायामौर्वी तदा विशतिः चन्द्रोऽघः स्थः, स्थगयति रिवम बुदवत्समागतः पश्चात् प्रतिदेश-मतिक्वत्रं दृष्टवसाद्भास्करग्रह्णम् । यदुक्तं भूछाया चन्द्रं छादयति । रविभिदु-रिति वराहमिराद्यैः तेषां धर्मफलाशास्त्रायो ग्राह्यत्वप्रतिपादनायार्याद्वयमाह —

> एवं वराहमिहिरः श्रीषेणार्यभट्टविष्णुचन्द्राद्यैः । लोक विरुद्धमभिहितं वेदस्मृति संहिताबाह्यम् ॥३९॥

ग्रहराफलं गर्गाद्यैः संहितासु यदभिहितम् । तदभावो होमजपस्नानादिफलस्य चाभवः ॥४०॥ वास०—गतार्थम् । राहुकृतं ग्रहणमेवेत्याह—

राहुकृतं ग्रह्णद्वयमागोपालांगनादिसिद्धमिदम् । बहुफलिमदमिप सिद्धं जपहोमस्नानफलमत्र ॥४१॥

बास०--हृष्टार्थेयमार्या । श्रमुमेवार्थं स्मृतिवाक्यैरनुमोदयृति ।

स्मृतिष्कः न स्नानं राहोरन्यत्र दर्शनाद्वात्रौ । राहुग्रस्ते सूर्ये सर्वं गंगासमं तोयम् ॥४२॥

वास०--गतार्था । अत्रार्थे वेदवाक्यं प्रदर्शयति-

## स्वर्भानुरासुरिरिनं तमसा विग्याध गेदवाक्यमिदम्।

वास० —स्पष्टार्थमार्यार्धम् । ननु भूछायां चन्द्रः प्रविशति । स्वग्रहणे रिव-मिष छादयित चन्द्रोऽकंग्रहण इत्युक्तं प्राग्युक्तिमत्पिरित्यज्य लोकप्रसिद्धराहुकृतं ग्रहणं किमित्यङ्गीक्रियते यतः प्रसिद्धिरन्यथा दृश्यते यथाशुक्लपक्षान्तरे मासो बहुष्विप देशेषु प्रसिद्धः रचेष्पिर चन्द्रः तस्य क्षयवृद्धी दक्षशापादित्यादिना चैत-द्विचार्यमाणं न सम्भवित । यदापि स्मृतिवाक्यं तद्रात्रिस्नानस्य निषेधपरम् । यच्च वैदिकं वाक्यं तत्सौमारोद्रीयवरोर्ष्यचेतायाः श्वेतवत्सायाः पयसः श्रयणं परमर्थवादत्या तत्र पठचते । ऐतिहासिकान्यि वाक्यानि ग्रहणफलप्रतिपादन-पराणि । य एव रिवचन्द्रयो खण्डतां करोति स एव तेषां राहुः गर्गादोनामिष संहिता वाक्यानि दिग्वर्णचलनादिलक्षरणः शुभाशुभप्रतिपादकानि, तेषामिप यो ग्रसते स एव राहुः पुनर्यावत्पारमाणिको ग्राहः को न ज्ञायते तावत्कालग्रासप्रमाणं स्थितिचलनादयो दृक्समाः कथं ज्ञातुं शक्यन्ते । तस्मात्सवासनिकं यत्प्रागुक्तं तच्छोभनम् । लोकविषद्धोऽपि नवकृत्य इत्यतोऽर्थमार्यार्थमार्यार्थमाह्

श्रुतिसंहितास्मृतीनां भवति यथैक्यं तदुक्तिरतः ॥४३॥

वास० - गतार्थमिदमायधिम् । इदानी तदैक्यमायद्वियेन प्रदर्शयति-

राहुश्छादयति प्रविशति यच्छुक्लपंचदश्यंते । मूछाया तमसींदोर्गरप्रदानात्कमलजस्य ॥४४॥ चन्द्रोम्बुमयोषः यदग्निमय भास्करस्य मासांते । छादयति शमिततापो राहुश्छादयति तस्सवितुः ॥४५॥

दास० - गतार्थम् । भ्रागमप्रामाण्यात्सोऽपि तत्राघः स्थो भवस्वित्यर्थे भवति नामराहोरघोवस्थितिस्तथापि तस्यैकस्वास्कथं रविशशिषहणयोर्मान-

प्रमागां भिन्नं भवतीत्यत्राप्येकवाक्चतां योजयति —

भूछायाव्याससमः स्थितः शशिग्रहरो। राहुश्छादयतींदुं सूर्यग्रहरोऽ कंमिन्दुसमः ॥४६॥

वास०—गतार्थेयमार्या । भ्रथेवं किवद्भगाति महाप्रमाणो राहुभूछाया चन्द्रप्रमागाभ्यां यदिधकं तत्किमिति नोपलभ्यते, इति संप्रत्याह —

> यत्तदधिकं तमोमयराहुब्यासस्य सूर्यहष्टत्वम् । न पञ्चित मूछायेंदौ ब्याससमोऽस्माद्भवित राहुः ॥४७॥

. वास०—निष्प्रयोजनेयं गतार्था च इदानीमेकवाक्यतापक्षमुपसंहरति—

भूछायेन्द्रमतो हि ग्रहगो छादयति नार्कीमदुर्वा । तत्स्थस्तद्रचाससमो राहुश्छादयति शशिसूमौ ॥४८॥

वास० -- स्पष्टार्थेयमार्या । ग्रह स्वरूप वासना ।

इदानीं गोलबन्धं प्रदर्शयति तत्रादौ सममण्डलयाम्योत्तर क्षितिजमण्डलानां विन्यासार्थमार्यामाह—

प्राच्यपरं सममण्डलमन्यद्याम्योत्तरं क्षितिजमन्यत् । परिकरवत्तन्मघ्ये भूगोलस्तत्स्थित द्रष्टुः ॥४९॥

वास०—प्राच्यपरमुन्मण्डलं तत्सममण्डलमन्यद्यामोत्तरं द्वितीयं दक्षि-गोत्तरं तदित्यर्थः, क्षितिजमन्य परिकरवद्यतृतीयं समपाद्यंस्थं मण्डलं तिक्षिति-जमुच्यते । मन्मध्ये भूगोलकाकारा सर्वतः स्थितस्य द्रष्टुरेतानि त्रीगि खगोल-वृत्तान्येव कल्प्यानीत्यर्थः ।

तित्स्थतं द्रष्टुतित्युत्तरत्र समस्तमण्डलविन्यासे सम्बन्धो भविष्यतीति तत्र गोले स्वदेशस्थितस्य द्रष्टुः कीदृगुन्मण्डलं तत्र प्रतिपादनायार्यामाह—

पूर्वापरयोर्लंग्नं याम्योत्तरयोर्नतोन्नतं क्षितिजात् । स्वाक्षांश्रेरुन्मण्डलमहर्निशोवृद्धिहानिकरम् ॥५०॥

वास०—पूर्वा चापरा च पूर्वपरेतयोर्लंग्नं पूर्वापरयोः स्वस्ति कयो रासक्त मित्यथंः, याम्या चोत्तरावद्याम्योत्तरे नतोन्नतं कुत इत्याह । क्षितिजादिति क्षितिजमण्डला दक्षिग्णखगोल स्वस्तिकान्नसूत्तरात् चोन्नतमित्यथंः कियद्भिरक्षांशै रित्याह । स्वाक्षांशैरिति स्वदेशाक्षभागैरिति यावत् । किं तदुन्मण्डलमुदयमण्डल मुन्मन्डल स्वदेश समदक्षिरानिरक्षदेशे क्षितिजमित्यर्थः । ग्रहीनशोवृद्धि हानि करणम् । निरक्षदेशज दिनरात्रोः स्वदेशे क्षयवृद्धिजनकं तद्वशात्प्रति देशं दिनरात्रि-प्रमारो भिन्ने भवत इत्यर्थः, यतो निरक्षस्यैव स्वाहोरात्रार्धवृत्तसार्धं क्षितिजादु-परिस्थितं द्वितीयमर्धमतस्तत्र सर्वदा दिनरात्रि प्रमारो तुल्यो क्षितिजोन्मण्डलयो रेकत्वा दन्यत्रोत्तरेगान्यक्षितिजमन्यदुन्मंडलमक्षवशादत उन्मण्डलास्व:रात्रार्धमण्ड-लस्यार्धमुपरि द्वितीयमधः तच्चोमण्डलस्वदेशक्षितिजादुत्तरेगोन्नतं दक्षिगोनाव-नतं समम् मण्डलार्घेधः स्वक्षितिजे द्रष्टा रव्युदयास्तमयौ पश्यति । स्वहोरात्रार्धः मण्डलार्धन्युनाधिकमपि पश्यति । तस्मादुपपद्येते क्षयवृद्धी दिननिशोर्यावच्चोत्तरेगा द्रष्टा भवति । तावस्योत्तरगोलके सूर्यो महान्दिवसो भवत्यल्पा रात्रिः दक्षिगागोल-स्थे रवौ विपरीतमेवं षटषष्टिरक्षांशास्तत्र षष्टिघाटिको दिवसो रात्रेरभावः। दक्षिगायनादौ यतस्तत्र दिने ऽर्कोदयक्रालेपमण्डलमेव क्षितिजं दिवसस्यायभावः । उत्तरायगादौ पष्टिघटिका रात्रिः यतः क्षितिजा तत्र मिथुनाता होरात्रतुल्या परमक्रान्ति ज्या तुल्योवलंबकः। चरदलं च पंचदश घटिकास्ततोप्युत्तरेगास्मा द्दिनानि बहूनि यावत्सदुकृद्गत एव दृश्यते सूर्यः। परतः परतो यावन्मेहस्तत्र षड्भिमोसैदिवस उत्तरगोलके रवौ याविद्दनप्रमाणं तत्र तावद्रात्रिप्रमाणं तत्रैव दक्षिरा गोलस्थे इत्यादि योज्यमिति । इदानीं स्वदेशस्थस्य द्रष्टुः विषुवनमंडल-प्रतिपादनायाह—

#### विषुवन्मण्ड लमूर्ध्वं सममण्डलतः स्थितं स्वकक्षांशैः। याम्येनोत्तरतोऽर्धः क्षितिजे प्राच्य परयोर्लग्नम् ॥५१॥

वास०—विषुवन्मण्डलं विषुवद्वृत्तं तत्कथं स्थितमूर्ध्वं सममण्लत उपरि । सममण्डलमध्यस्थितं । स्वकक्षांशेः याम्येन स्वदेशाक्षभागतुल्येभिगिदंक्षिणेन तिमत्यर्थः, उत्तरतोऽघः उत्तरेण चाधः गोलकभागे ताविद्भरेव भागैः। स्थितं क्षितिजे प्राच्यपरयोर्लग्नं पूर्वापरयोद्दच दिशोः क्षितिजासन्नमित्यर्थः यतो निरक्ष-देशो परिविषुवन्मण्डलं तच्च स्वदेशाक्षभागे ..........ले यथोक्तमेव दृश्यते। इदानीमपक्रम मण्डलप्रदर्शनार्थमिदमाह—

## विषुवन्मंडललग्नं मेषतुलादावुदक् कुलीरादौ । जिनभागेर्याम्येन मृगादावपमंडलमिहार्कः ॥५२॥

वास०—विषुवन्मण्डल लग्नं स्वाह । मेषतुलादौ विषुवत्खस्विस्ति-कयोरित्यर्थः । उदककुलीरादौ जिनविभागैरुत्तरत कर्कटादौ स्वाहित्या-लग्नं याम्येन मृगादौ दक्षिग्गेन भागचतुर्विश्वत्या मकरादौ लग्नमित्यर्थं एवम-पक्रममण्डलं सममण्डलं । मया च समण्डलादीनां विन्यासे पूर्वभेव । प्रदर्शितिमहार्क इत्यस्मिन्नपमण्डलेकों भ्रमति। यतोकंगतिरेवापंमडलं। के तत्रापमण्डले भ्रमंतीति तदर्थमार्यार्धमाह—

## पातश्चन्द्रादीनां भ्रमति भाऽर्घे रगेश्च भूछाया।

षास० — न केवलिमहापमण्डलेऽको भ्रमित । यावत्पाताश्चन्द्रादीनां संबंधिनो भ्रमित भार्घे चक्रार्घे । रवेश्च भूछाया तत्र व भ्रमन्तीति वासना पूर्वमेव प्रद-शिता । इदानीं विमण्डलानां विन्यासप्रदर्शनायाह —

## पातादपमण्डलवद्विमण्डलानि स्वविक्षे पैः ॥५३॥ सौम्यं विमण्डलार्धं प्रथमं याम्यं द्वितीयमेतेषु ।

वास०—पातात्पातभोगवर्षेऽपमण्डलवदपमण्डलसंस्थाने च विमण्डलानि बच्नीयादिति अर्थः । स्रयं विशेषः स्वविक्षे पैर्यथापिठतस्वविक्षे पैस्तयोरपमण्डल-विमण्डलयोरंतरं भवति । मध्ये याम्योत्तरयोरपमण्डलयोस्तथा बघ्नीयादित्यर्थः । तत्र चापमण्डले सौम्यं प्रथमं यथा विमण्डलार्धं भवति द्वितीयमर्धं च यथा दक्षिग्णं भवति तथा बघ्नीयादित्यर्थः एतच्च पूर्वमेवास्माभिः प्रदिश्तिमेतेष्वित्युत्तरायर्यार्धे सम्बध्यते । एतेषु विमण्डेषु तदर्धं द्वितीयमार्यार्धमाह—

## चन्द्रकुजजीवमन्दाः भ्रमंति बुधशुक्रौ च भ्रमतः ॥५४॥

वास०—िक तु तो शीघ्रे एगयमर्थः । कुजगुरुशशिचन्द्राः स्वे स्वे विमंडले मंदस्फुटगत्या भ्रमति । बुधशुक्रो तु पुनिवमंडले शीघ्रगत्या भ्रमत इत्यर्थः । एतदुक्तं भवति । शीघ्रनीचोच्चवृत्तमध्यं स्वे विमंडले भ्रमति । कुजगुरुसौराएगं तद्वशाच्च तत्परिधिस्थितो ग्रहोपि तावत्येवांतरेऽपमंडलाद्विप्रकृष्टो भवति । तेन मंदस्फुटाग्रहाद्विक्षेपादानयनं समागमाध्याये वक्ष्यति । बुधशीघ्रयोस्तु न केवलं शीघ्रनीचोच्चवृत्तमध्यवशेन विप्रकृष्टो यावत्स्वशीघ्रयोश्च प्रतिमंडलवशेन च यतोतः स्वशीघ्राद्विक्षेपानयनं तयोर्वक्ष्यति भ्रने लिब्धः विकारएगं शक्यते वक्तुं परिध्यादिष्विवेति । इदानी हङ्मंडल प्रतिपादनायाह—

## दृङ्मंडलार्धं मूर्ध्यं यत्तत्परिधिस्थितं ग्रहं दृष्टा । पश्यति यतः क्षितिस्थस्तद्भमति ततो ग्रहाभिमुखम् ॥५५॥

वास०—हिष्टमंडलं हङ्मंडलं यिष्टि क्षिप्त्वा ग्रहो हश्यते । तद्हङ्मंडलं तस्यार्धभूष्वं तस्य हङ्मंडस्य यदर्धं क्षितिजादुपरिस्थितः परिधिस्थितपश्यित द्रष्टा-ग्रहं । यतस्तावद्भ्रमित ग्रहाभिमुखम् । तत् हङ्मंडलस्यार्धमुपरितः ग्रहाभिमुखमत एव भ्रमित ग्रहं न त्यजतीत्यर्थः । खगोलवृत्तानां प्रभागोन ग्रन्यद्वृत्तं निर्मायत हङ्मंडलं न्यसेत्। उद्यकाले क्षितिजग्रहोदयप्रदेशे यथा परिधिनासक्तो भवति। समंडलस्योपर्यधः स्वस्तिकयोश्च सर्वथा परिधि यथासक्तो भवति तथा तद्वृत्तं निद्ध्यात्। मध्याह्ने च याम्योत्तरमंडलवद्भवति। श्रस्यमयक्षितिजप्रदेशासक्त-श्चास्तमये तत्परिधिर्यथा भवति, तथा निद्ध्यादित्येवम्। यथाग्रहो भ्रमित तथा तथा तद्वृत्तं भ्रामयेदेवं, तत्परिधौ सर्वदेव ग्रहो भवति। तत्र मंडले शंकुरुनतज्या हग्ज्या नतज्या तदर्धं सर्वदा क्षितिजादुपरि भवति। द्वितीयमर्धमधो यथास्थिते गोले विन्यस्य शंकुछायादिवासना प्रदर्श्या। इदानों हक्क्षेपमंडलप्रदर्शनार्थमाह— क्षितिजापमण्डलप्रदर्शनार्थमाह—

## क्षितिजापमण्डलयुतौ लग्नं लग्नाग्रया दिशावलग्नम् । हक्क्षेपमंडलं दक्षिगोत्तरं वित्रिभविलग्ने ॥५६॥

वास०—क्षितिजापमण्डलयोर्यु तिर्यंत्रापमण्डलस्योदयः क्षितिजेन सहैकत्वं लक्ष्यते, तत्र प्रदेशे क्षितिजापमण्डला युतिलंग्नन्यपदेशः। तस्य प्रदेशस्य लग्नाग्रया दिशावलग्नम्। लग्नस्याग्रा लग्नाग्रा क्षितिजे सममण्डलापमण्डलांतरांशानां ज्येत्यर्थः। सा लग्नाग्रा तस्या ग्रग्रायायदिक्तयादिशावलग्नम् सापमण्डलपूर्वा। तद्क्षिगोत्तरं हक्क्षेपमण्डलं वित्रिभविलग्ने। एतदुक्तं भवति यदि लग्नाग्रा सममण्डलरेखा उत्तरेग्रा भवति। तदा वित्रिभलग्नमपि याम्योत्तरमण्डलात्पूर्वेग्रा भवति। मध्यज्यावृत्ते यतस्तत्र परमोच्चतापमण्डलार्थस्य क्षितिजादुपरिस्थितस्य विषुद्रवापमण्डललग्नं सममण्डलरेखातो दक्षिग्रेन भवतीत्यर्थः। यत एव स्वतो हक्क्षेपमण्डलं वि विलग्नः विलग्नः प्रदर्श्यम्। यस्मान्मध्यज्या-संभवे विषुद्रवितं वर्जयित्वा यामयोत्तरः एहक्क्षेपमण्डलं न भवति हिष्टः क्षिप्यते मण्डलदक्षिगोत्तरेग् यत्र तद्हक्क्षेपमण्डलभवनः न भवति हिष्टः क्षिप्यते मण्डलदक्षिगोत्तरेग् यत्र तद्हक्क्षेपमण्डलभवनः यथावत्। यथा सममण्डलोपर्यंघः स्वस्तिकयोर्यतो वित्रिभलग्नावगाहि भवति तदा हक्क्षेपः गोले निघाय रिववासनां प्रदर्शयेत्। यतो मण्डलगत्या पूर्वापरं लकाः हक्क्षेप-मण्डलं स्वातितरात्रात्तरात्रात्तरिति। स्वाहोरात्र प्रदर्शनार्थमार्यामिमामाह—

विषुवदुदग्बन्नीयात् कान्त्यंशसमान्तरेष्वजादीनाम् । वृत्तत्रितयं व्यस्तं कर्क्यादीनां तुलादीनाम् ॥५७॥ विषुवद्दक्षिरातोऽन्यन्मकरादीनां तदेव विपरीतम् । स्वाहोरात्राण्येषां व्यासाः पृथगेव मिष्टमपि ॥५८॥

वास० — विषुवदुदग्बध्नीयात् किं तत् वृत्तत्रितयं केषामजादीनां कियत्स्वं-तरेषु क्रान्त्यं शेष्वजादीनां क्रान्तेरंशाः क्रान्त्यंशाः विषुवत् उत्तरेण यावद्भिः यावद्भिः स्वक्रान्त्यंशेः मेषवृषमिश्रुनाः स्थितास्तैत्त्त्यर्थः। विपरीतं कर्कटादीनां तुलादीनां विषुवदुदक् एवं तुलादीनां विषुवद्क्षिणेन वृत्तत्रितयं मकरादीनां तदेव विपरीतं यद्धनुषस्तन्मकरस्य यद्वृश्चिकस्य तत्कुम्भस्य यत्तुलायास्तन्मीनस्येत्यर्थः । स्वाहोरान्नान्येषां वृत्तानां व्यासाः पृथगेव शिष्टमिष । यथा मेषादीनां स्वाहोरात्र-व्यासतुल्यानि वृत्तानि स्वक्रान्त्यग्रेषु प्रदिशतानि । एवं स्वाहोरात्र प्रमाणेना-भीष्टस्य ग्रहादेः स्वक्रांत्यग्रात्स्वाहोरात्रवृत्तं बध्नीयादित्यर्थः । स्वाहोरात्रवृत्तानि कक्षागोले बध्नीयादित्यर्थः, न खगोले एतच्चास्माभिः पूर्वमेव व्याख्यातम् । स्वाहोरात्रवृत्ते दिनगतशेषादयः प्रदर्श्या गोले । इदानीं त्रिप्रश्नाध्यायवासना प्रदर्श्यते । तद्यथा निरक्षदेशे भपंजरः सम एवावतिष्ठते । तत्रराश्युदयात्किमिति भिन्ना । तद्युपपत्त्यर्थमार्याद्वयमाह—

लङ्कासमपश्चिमगं प्राग्गेन कलां भमण्डलं भ्रमति । स्रपमण्डलस्य राशिद्वादशभागः क्षितिजलग्नात् ॥५६॥

यान्त्युदयं मेषाद्या यतस्तदुदया न कालसमाः। क्रान्तिवशाल्लंकायां तदूनताधिक्यमक्षवशात् ॥६०॥

वास० — लकाग्रहणं निरक्षदेशोपलक्षणार्थं लंकायाः समपश्चिमगं निरक्षदेश उपर्यंधोगिमित्यर्थः । किं तत् भमण्डलः स्थाः । विषुवन्मण्डलमित्यर्थः । प्राणेन कलां भमण्डलं भ्रमित । प्राणातुल्येन कालेन यस्य मण्डलं स्थानि । उन्मण्डलं तत् । न तदपमण्डलम् । रिवस्तु पुनरपमण्डलस्य द्वादशभागः राशयः । स्थितिजलग्ना उदयं यांति । यतो यस्मात्ततस्तस्मात्ते षामुदयास्तदुद्याः न कालसमाः । स्वतं यांति । यतो यस्मात्ततस्तस्मात्ते षामुदयास्तदुद्याः न कालसमाः । स्थानि तस्माद्धे तोः क्रांतिवशाद्यतो विषुमंडलापमंडलयोरंत । । स्थानि तस्माद्धे तोः क्रांतिवशाद्यतो विषुमंडलापमंडलयोरंत । स्यान्यविका राश्युदया भ्रपि भवेयुः । निरक्षे वा साक्षे देशे वायावच्चापमण्डले राशयः स्युस्तत्पंचघिका राश्युदया भ्रपि भवेयुः । निरक्षे वा साक्षे देशे वायावच्चापमण्डले राशयः तच्चापमण्डलं लंकायामिप तिर्यंक् स्थितं क्रांतिवशादस्तत्रापि तदूदनता- धिक्यं तेषां मेषादीनां न्यूनाधिकता सम्भवित । स्वदेशे तु पुरक्षवशात्तद्वनताधिक्यं भवत्येवं किमत्रोच्यते । निरक्षदेशे साक्षे चगोले सर्वं प्रदर्शयत् । श्रक्षवशादित्येतदु-त्तरार्यार्घं सम्बन्धं भविष्यतीति । चरप्रदर्शनार्थंमार्यार्यमाह—

#### क्षितिजोन्मण्डलयोर्यत्स्वाहोरात्रांतरं चरदलं तत्।

वास० —क्षितिजं चोन्मण्डलं च क्षितिजोन्मण्डले तयोरंतरं यत्स्वाहोरात्र-वृत्ते तत्स्वदेशाक्षोन्नतिवशाच्चरदलं यतो निरक्षदेशिक्षितिजोन्मण्डलयोरंतरं नास्त्ये-कत्वात्तत्र चरदलमपि नास्ति, सर्वदा तेन तुल्ये दिन रात्रिप्रमागो ऽन्यत्राक्षवशा-दुन्मण्डलमुन्नतं नतं भवति । स्वाहोरात्रस्याक्षादिशकमूनं वा दृश्यते । स्रतः तत्रा-क्षवशादुषपद्येते क्षयािषके । सर्वं गोले प्रदर्शयत् । इदानीमग्राप्रदर्शनार्थमाह—

क्षितिजेग्रा प्राच्यपरा स्वाहोरात्रांतरज्या ॥६१॥

वास०—क्षितिजमण्डले ग्रग्ना प्राच्यपरा सममण्डलं स्वाहोरात्रं स्वाहो-रात्रार्घवृत्तांतयोरंतरं ये तु त्रयोंशाः तेषामंशानां या ज्या साग्नेत्युच्यते । यतस्तदग्ने ग्रहोदयास्तमयौ भवत इत्यर्थः । सममंडलादुत्तरतो दक्षिणतो वा क्षितिजे यत्र ग्रहहोदयस्तत्र सूत्रस्यैकमग्रं बद्ध्वा द्वितीयमग्रं सममण्डलादन्यस्यां दिशि तावत्येवांतरे वध्नीयाद्दक्षिणोत्तरायतं क्षितिज एव तदर्घमग्रा सा च निरक्षे क्रान्तितुल्या साक्षादेशे क्रमेणोपचीयते । तावद्यावद्यत्र षट्षिटरक्षां-शस्तत्र त्रिज्या तुल्या भवतीत्येतत्गोले प्रदर्शयेत् । शंकुछाया कालानां प्रदर्शनार्थमाह—

#### स्वाहोरात्रे क्षितिजाद्दिनगतशेषोच्चता रवेः शंकुः। तस्माद्दिनगतशेषं शङ्कुकुमध्यान्तरं दृग्ज्या ॥६२॥

वास० — स्वाहोरात्रे स्वाहोरात्राधंवृत्ते क्षितिजा ......थं: । दिनगतस्य शेष-स्य वा यावत्युच्चता वा सा दिनगितशेषोच्चता रवेः रिवग्रह्णम् .....च्यास्यापि ग्रह्स्य स्वाहोरात्राधंवृत्तेषु दिनगतशेष योज्ययोश्च योज्यम् । यावदुच्च .....तस्मा-द्दिनगतशेषं तस्माच्छंकोः दिनगतः शेषं यथा दिनगत शेषालपस्याह्न इत्यादि ... ....चीनः तत्रश्लंकुरानीतः । तत्रश्लाया एवं छायाकर्णाविभक्ता विषुवत्कर्णेन संगुगाः त्रिज्येत्यादिना का .....चीयते इत्यर्थः । यत उभयोरप्येकैव वासना ग्रतः पृथक् नोक्ता हग्ज्या तु पुनः शंकुकुमध्यांतरं । शंकुमूलस्य भूमध्यस्य यदंतरं सा हग्ज्या तस्य शंकोः सा छाया एतद्गोले प्रदर्शयेत् । तद्यथा स्वाहोरात्रार्धवृत्ते घटिकाचिह्निते यावत्यो दिनघटिकाविघटिकाश्च गतास्तावित प्रदेशे रव्युपलक्षते चिह्नं कार्यम् । तत्र सूत्रं वद्ध्वालंबयेत् गुरुगाग्रहबद्धे न केनचिल्लोष्टादिना ततो भूमध्यादन्यदवलंवकसूत्रस्पृक् सूत्रं नीत्वा क्षितिजे बध्नीयात्। एवं स्थिते ग्रह्चिह्नित प्रदेशे क्षितिजयोरंतरसूत्रप्रमागाच्छंकुः शंकुमूलाच्च भूगोलमध्यं यावन्तावत्प्रमागा हग्ज्या भूमध्यग्रहचिह्नितप्रदेशांतरं कर्णव्यासार्धतुल्यः एवं सर्वत्र योज्यम् । वयं च तत्रंव प्रयात्यार्यासूत्रे वासनां प्रतिपादयिष्याम इति हङ्मण्ले शंकुदृग्जययोः प्रतिपादनसूत्रमाह—

## हङ्मण्डले नतांशज्या हण्या शंकुरुनतांशज्या ।

वास० — हङ्मण्डले पूर्वप्रदिशितया नतभागानां ज्या सा हज्या या तु पुनरुत्रतभागानां ज्या सा शंकुः भवति । एतच्च गोले प्रदर्शयेत् । यतो ग्रहोपलिक्षत-प्रदेशे स्वाहोरात्रहङ्मण्डयोः सर्वदेव संपातो भवत्यास्मात्प्रदेश क्षितिजं यावदुन्नत-भागा हङ्मण्डल स्योपिर सममण्डलमध्यं यावन्नता तस्मादुपपन्नं मध्याह्ने ऽपि हङ्मण्डलोत्र तज्या शंकुः न तज्या हण्ज्या अत एवोन्मण्मडल नतज्या क्रमेग्रा क्रियत इति । शंकुतलप्रदर्शनार्थमाह्—

## श्रकींदयास्तसूत्राद्दिनशङ्कोर्दक्षिरणेन तलम् ॥६३॥

## हत्त्याहत्रयं हन्गोलार्धं भूव्यासदलविहीनयुतम् । द्रष्टा भूगोलोपरि यतस्ततो लम्बनावनती ॥६४॥

वास० हग्गोलस्यार्ध हग्गोलार्ध तद्भूव्यासदल विहीनयुतं । तद्यथासंख्यं हर्यमहर्यं च भवति । यदि भूमिः समा स्यात्त्वृत्तगोलार्धं सर्वदैव सकलं हर्यं द्वितीयमहर्यं स्यात् । यावद्भूगोलाकाराः अत एव भूव्यासार्धो न हग्गोलार्धं द्रष्टा प्रयति तद्युक्तं स्यात् । यावद्भूगोलाकाराः अत एव भूव्यासार्धो न हग्गोलार्धं द्रष्टु- एव्यति तद्युक्तं च । द्वितीयं हग्गोलार्धं न पश्यति क्षितिव्यासार्धो छतत्वाद् द्रष्टु- एव्येव वासनया लम्बनावती सम्भवत इत्याह । द्रष्टा भूगोलोपिरयतस्ततो लम्बन् नावती या विग्रह्गोऽकोंदयकाले तिथ्यंतः । तदा भूमध्यविनिर्गतक्षितिजमण्डल प्रापितसूत्रगतौ द्रष्टा च भूगोलोपिर । स च यदा रिवचन्द्रौ पश्यति तदा भिन्नवर्गागतिभ्यां पश्यति । रिवहक्कर्णसूत्रा च ग्रघः स्थितो भवति । यस्माद्रवेर्महृती कक्षा चन्द्रस्य चाल्पा अतस्तिथ्यन्तात्पूर्वमेव ग्रह्गामध्यमुपपद्यते । पूर्वेण वित्रिभलग्नाद-परतस्त्वन्यथा । एवं लम्बनसम्भवो वनेतर्रिदक्षिणोत्तरक्षितिजापेक्षया । यतस्तद्वशाद्विक्षेपस्योनाधिकत्वं तत्रश्च ग्रासस्याधिकोनता सम्भवतीति । तस्मादवनते-रिप सम्भव उपपद्यते । इत्येतद्गोले प्रदर्शयेत् कियत्ययो ते लंबनावनती सम्भवत इति तत्प्रतिपादनार्थमार्यामाह—

क्षितिजे भूदललिप्ताः कक्षायां हग्गतिन्नभोमध्यात् ॥ श्रवनितिलिप्ता याम्योत्तरा रविग्रहवदन्यत्र ॥६४॥

वास॰ —क्षितिजे भूदललिप्ता वासार्घोत्थालिप्ता भूव्यासार्धवशाद्या लिप्ता उत्पद्यन्ते ता इत्यर्थः । कक्षार्थं तावत्य एव लम्बनलिप्ता भवन्तीत्यर्थः, एतदुक्तं भवति भूगोलमध्यक्षितिजस्थं रवि .....कर्णप्रमाराभूव्यासार्धं कोटिः द्रष्टृभूमध्यां-तरं द्रष्टुः सूत्रं रविप्रापितितर्यंक्कर्णं एवं स्थि .... भूव्यासदलोत्पन्नाः सर्वा एव हग्गतिर्लिप्ताः स्यः तावच्च रविभुजायां "चन्द्रमाः स्थितः म्रतस्त्रैराशिकेन भूदललिप्ता उत्पाद्याः तद्यथा रिवः भूजायाभूव्यासार्थयोजनतुल्या कोटिः तच्चन्द्रयोजनकर्णेन रिवयोजनकर्णतुल्याय ....च चन्द्रकक्षाप्रदेशे कोटिरूपा हग्ग-तिर्भवति । योजनात्मिका सा च पंचदशा विभक्ता लिप्ता ..... ग्रथवा व्यासार्घहता चन्द्रमध्ययोजनकर्णहता गव हग्गतिलिप्ता कक्षायामुत्पद्यते । तावतीभिर्लिप्ताभि-इचन्द्रोनतो भवति द्रष्टू रिवसूत्रादित्यर्थः। सा चावनितनंभोमध्यात्सममंडलम-ध्याद्यदा वित्रिभलग्नसमम् डलमध्यं भवति । तदा सा दृग्गतिः—परिपूर्णा भवति । न ते तु रिव सममं डलवशान्न्यूना सा भवति इत्यर्थः । श्रवनितिलिप्ता या-म्योत्तरा यथा हग्गतिलिप्ता तद्वदवनितिलिप्ता उत्पद्यंते। .....याम्योत्तरास्ते यथा पूर्वापरयोः क्षितिजे हग्गतिः वासना एवं दक्षिगोत्तर सममंडले क्षितिजे व वासना एवं दक्षिएोत्तरसममं डलक्षितिजेव वासना योज्या सापि नभोमध्या हक्क्षेप मंडले पूर्वे न्यस्ते हश्यमानाश्चावनति लिप्ता .....यत्र देशे तत्र भूदलोत्य लिप्ता तुल्याः उत्पद्यंते । मिथुनतार्कोद्वयेन, ततो दक्षिणतो रवेः चन्द्रस्य च विक्ष पवजादक्षिणतोऽपि यथेह रविग्रहणे लंबनावनती। एवमन्यत्रापि ग्रह्योः परस्परच्छादेने नक्षत्रग्रहयोरिप लंबनलिप्तानामवनतिलिप्तानां वेयमेव युक्तिरिति ल बनलिप्ताश्चषिटहताभुक्तांतर भाजिता घटिका भवंति चक्रिगोरचिक्रगोर प्यंतरयाश्च कस्मिन् चिकिंगा भुक्तियोगेन भाग इत्येवं दिङ्मात्रं प्रदर्शितम्। तत्रं वं विस्तरतः प्रतिपादयिष्याम इति । ग्रथवा हक्कर्मद्वयोपपत्त्यार्थमायीमाह—

## सत्रिग्रहक्रान्ति रुदग्दक्षिगायोस्त्रिज्यया हृतंवलनम् । विक्षेपगुगामृगाधनं ग्रहेऽन्यदृहक्कमं चरदलवत् ।।६६।।

वास० — सित्रभिगृ हैवंतंते इति स त्रिगृहः, त्रिराश्यिषकोग्रह इत्यर्थः । तस्य कान्तिः सित्रगृहक्रान्तिः उदग्दक्षिग्यो कार्तिः त्रियं त्रिज्ययाहतं वलनं विक्षं पगुण्सित्रगृहस्योत्क्रमजीवया या क्रांतिः हिता सतीववलनं भवतीत्यर्थः । प्रयमभिप्रायः मकरराशौ स्थितस्य ग्रहस्य कक्षा लिन्दिक्षितिजोन्मं डलवत् भेषतुलादौ च पर क्रान्तिज्यातुल्येन वलनेन लिन्दे त्रेराशिके यदि व्यासार्धे एतावती कोटिः तिद्वक्षं पतुल्यव्यासार्धं दृत्तेयाकोटि सा चापमं डलीकृता ग्रहफलं भवति । उत्तरायणा विक्षिप्तेग्रहे यत्र ग्रहस्तस्य प्रदेशस्य यावन्नोदयो भवति । तावद्ग्रहो हश्यते लिन्दे ति विक्षंपवशाद्विपरीतं योज्यम् । स्रतो दिक्षणोत्तरायण प्रदेश उदिति योज्यम् । स्रतो दिक्षणोत्तरायण

वशाद्युज्यते दक्कमंप्रथम " निरक्षदेशेऽपि तत्संभवतीति । द्वितीयं तु दक्कमंचर-दलवत् । म्रक्षवशात्तिर्यंग् " मपमं डलविमं डलयोर्ति तत्र पूर्वा नीता कोटिः म्रप-चीयते वाक्षे छायवशात् । तद्यथा यदि लंबज्याकोटेरक्षज्या तुल्या भुजा तद्विक्षे प-कोहेः कियती भुजा भवति सा च क्षितिजा भवतीत्येतत्पूर्वं गोले प्रदर्शयेत् । इदानीं स्वदेशे गोलविन्यासे पंचवृत्तानिस्थिराणि तानि प्रदर्शयति —

## कक्षामण्डलतुल्यं प्राच्यपरं दक्षिगोत्तरं क्षितिजम् । उन्मण्डल विषुवन्मंडले स्थिरागि ग्रहार्क्षागाम् ।।६७।।

वास० — कक्षामं डलतुल्यं प्राच्यपरं दक्षिणोत्तरं तुल्यमेव तृतीयं क्षितिजं तत्तुल्यमेव यत्रोत्मंडलविषुवत्मं डले, तत्तुल्ये एव एतानि पंचवृत्तानि स्वदेशे सर्व-देव स्थिराणि ग्रहाणां नक्षत्राणां चास्माभिरिप तथैव प्रदर्शितानि । इदानीं चलवृत्तानि प्रदर्शेयत्येकपंचाशत् —

मंदोच्चानि सप्तोच्चनीचवृत्तानि पंचशीष्ट्रागाम् । प्रतिमंडलानि चैगं प्रत्येकं भास्करादीनाम् ॥६८॥ हङ्मंडल हक्क्षेपामंडलानि क्षपापकरादीनाम् । षट्कं विमंडलानां चलवृत्तान्येकपंचाशत् ॥६९॥

वास० — मन्दनीचोच्चवृत्तानि सप्तानां ग्रहाणां सप्तभौमादीनां पंचशी-घोच्चनीचवृत्तानि । एवं द्वादश प्रतिममंडलानि चैवं द्वादशानां द्वादशेव · · · · चतु-विशतिः तथा भास्करादीना प्रत्येकं हङ्मण्डले हङ्क्षेप मण्डलमपमण्डलम् ॥

सप्तानामे ......वितः पूर्वेः सह पंचचत्वारि शत्। तथा क्षपाकरादीन षण्णां षट्क विमंडलानामेव वृत्तानि स्थिराणि पंचैव षट्पंचाशत्। एतेर्विना कि मिप न ज्ञायते। ततः ..... मण्डलसंख्यैव न शक्यते वक्तुं स्वाहोरात्रार्धावयव-क्रान्ति विक्षेपादिमण्डलानां तथा ध्यायस्य च स्रार्थासंख्या प्रदर्शयति।

## यत्स्पष्टीकररणाद्यं गोलादुत्प्रेक्ष्य तत्कृतं सर्वम् । गोलाध्यायः सप्तत्यार्याणामेकविज्ञोऽयम् ।।७०।।

वास॰ —गोलाध्याये विदह मया स्वसिद्धान्ते स्फुट गत्यादिकं कृतमुपिनबद्धं ततः सर्वं गोलादः एवं मया गोलाध्याय एकविशतितम ग्रार्याणां सप्तत्या निवद्ध-मिति गोलविदाः मध्याद्यमिह यदुक्तं तत्प्रत्यक्ष मिव दशंयित यस्मात्। तस्मा-दार्यत्वं गोलविदाः स्पष्टार्थेयमार्या। मध्याद्या मिह यदुक्तं तत्प्रत्यक्षमिव दशं-यति यस्मात् तस्मादाचार्यत्वं गोल विदो भवति नान्यस्य। स्पस्टार्थेयमार्या। स्व-कृतस्य गोलस्य प्रशंसार्थमाह ग्राचार्येनं ज्ञातः श्रीषेगार्यभट्ट विष्णुचन्द्राद्यैः गोलो

यस्मात्तस्माद् ब्रह्मे गोलः कृतः स्पष्टः, गतार्थेयमार्या। गोलज्ञो गिएतिज्ञो ग्रहगितं विजानाति। यो गिएतिगोलबाह्मो जानाति ग्रहगितं स कथं गिएतिक्षेत्रविशेषे-गोलो ज्ञातुं शक्यते। तस्माद् गोलोज्ञेय इत्यर्थः इति श्रीभट्टमधुसूदनसुतचतुर्वेद-पृथुस्वा मिकृते ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त वासनाभाष्ये गोलाध्ययः समाप्तः॥ शुभम्॥

ग्रध्यर्धेन सहस्रेण मया गोलो वर्णितः, ग्रत ऊर्ध्वं समस्नेहं सिद्धान्ते भाष्यमारभे। एवं गोलाध्यायं व्याख्यायाधुना सकलसिद्धान्तो व्याख्यायते।

समाप्तं वासनाभाष्यम्

# श्रकारादिक्रमेण इलोकानुक्रमणिका

<b>ग्रं</b> शकशेषत्रियुतम्	१२२५	श्रनयोर्न कदाचिदपि	७१८
श्रंशकशेषात् त्र्यूनाः	११८५	श्रनुलोमं मध्यसमं	१३६०
भ्रंशकशेषेएा युतात्	१२२४	<b>अनुलोममैन्दवम्</b>	883
भ्रंशसममंश शेषं	१२२७	अन्तरमाद्यो भूयो	५६१
ग्रकृतार्यभटः शीघ्रम्	१३४	म्रन्तरयोगौ तुल्यान्य	488
श्रक्षचरार्ढं ज्ञोकंम्	१०४६	ग्रन्त्यफलज्यग्रात्	९८७
म्रक्षज्याया वित्रिभलग्नात्	४१७	अन्त्यानतोत्क्रमज्या	३१ <b>६</b>
श्रक्षज्या शंकुवधात्	३५ <b>९</b>	ग्रन्यत्र सर्वतोदिशम्	१३२७
<b>ग्रक्षां</b> शकुपरिधि	१३३६	ग्रन्या विक्षेपकलाः	७२०
ध्रग्न्यष्टभिरिषु	<del>२</del> २१	ग्रन्येष्टनाडिकाभिः कृत्वा	६३८
श्चग्रांत मुपांत्येन	११६१	अन्यैरप्युक्तमिदं	६४२
अग्राशंकुतलैक्यं	६२४	<b>ग्रपस्</b> तिरन्यशलाका	१४५७
<b>ग्रं</b> कचितिविजयनंदि	७२५	भ्रम्बरयोजनपरिधिः	१३३७
म्रङ्कितमंशनवत्या	१४३३	ग्रयमेंवकृतः सूर्येंदु	१५१६
ग्रङ्गुलमात्रे विरते	४५२	श्रकंफलभुक्ति घाताद्	<i>e3</i> 9
भ्रंगै: रुद्रै: सिद्धैर्गजैः	१५५०	<b>म्रकाग्रयाक्षकलंबक</b>	१०६८
ग्रच्छेदस्य छेदं रूपम्	6१०	अर्काग्रावर्गीनं त्रिज्या	३३८
श्रत्र मया यन्नोक्तम्	१५२३	म्रकाज्ञाने ज्ञाने विषु	१०७०
श्रथवा कपालके	१४७६	अकें <b>द्वतरघटिका</b>	909
<b>प्र</b> घिकदिनोदित	६३५	श्रर्कोदयास्तमयय <u>ो</u>	१८०
<b>ध्र</b> घिकः स्मृत्युक्तमनोः	ሂട	<b>श्रकों</b> नचन्द्रलिप्ताः	२४८
<b>भ्र</b> घिकाग्रभागहाराद्	११५०	<b>ग्र</b> कोनचन्द्रलिप्ताः	१५४६
श्रधिकैः शतैश्चतुर्भिः	६७१	<b>भ्रर्कोनलग्नहोरा</b>	333
श्रिधमासकैः सविकलैः	६२१	श्चर्षज्यामनुयमला	१४०
श्रघिमासशेषपादात्	१२१५ं	ग्रल्पाः प्रश्नासूनां	३ <b>०९</b>
<b>ग्र</b> धिमासशेषवर्गम्	१२६५	भ्रवनतिरतोन्यथा	४०२
अधिमासावमशेषे 🐪	680	भ्रवमविकलं नु	· <b>9</b> 88
श्रिवमासाः शशिमासाः	. 88	भ्रवमानि यः सविकलैः	१२३
भ्रध्यर्घादि क्षेत्रागि	४०३४	<b>श्रवमावशेषमवमैः</b>	<b>१</b> २२६
म्रध्यर्घानि भवति	१०२६	<b>श्रवमावशेषल</b> ब्ध्या	<b>9</b> 80
ग्रध्यर्घार्घ समक्षेत्रागाम्	१०३१	<b>ग्रवमावशेषवर्गम्</b>	१२६८
अध्यायः पञ्चदशः	१०९६	श्रवमावशेषवर्गी व्येको	११८७

म्रवलंबनं शलाकाज्यार्धम्	१४३३	इति तिथिनक्षत्र	१५६७
<b>ग्र</b> विषमचतुरस्र	८२८	इति परिलेखाध्यायः	११६४
म्रविषम पार्श्वभुजगुरा	८३३	इति बहुधा विवदंते	७२७
ग्रव्यक्तवर्गधनवर्ग े	१२०४	इति बाहुकोटिकर्गा	४ <b>९</b> ७
ग्रव्यक्ताँतरभक्तम्	१२०७	इन्दुविलिप्ताशेषम्	१२६६
<b>ग्रष्टनखैमें</b> षे गवि	५७१	इन्दुविलिप्ताशेषात्	१२७३
<b>ग्र</b> ष्टयमाःशून्यगुरााः	१०६६	इंदोर्विषया द्वियमा	११२४
ग्रष्टयमेः कृतचन्द्रैः	२३१	इषुशरकृताष्टदिग्भिः	१२७८
ग्रसकृद् ग्रासकालोन	३८२	इष्टकरण्यूनाया	१२०२
ग्रस्तांतर्घटिकाभियों	१२९५	इष्टगुराका रगुराितम्	ह५६
श्रह्मोगताऽवशेषाः	३२२	इष्टगुरगाकारगुरिगतो	<b>८</b> ४४
म्राकृतिफल <b>मौ</b> च्याहत	550	इष्टगृहीच्च्यज्ञो यः	१२६७
ग्राग्नेये नैऋ त्ये वेष्टदिने	१५२१	इष्ट्रग्रहभगरागुरााद्	६५
म्राचायैर्न ज्ञातः श्री	१४१९	इष्ट्रग्रहेष्टशेषाद्	१२७४
ग्राद्यग्रह परिवर्ता	<b>९</b> ६६	इष्ट्रग्रासविमर्द	४५२
आद्यन्तयोः सघूम्रः	३६५	इष्ट्रग्रासोकेंद्वो:	११३१
<b>ग्रा</b> चंतरातसंघिषु	<b>२</b> १	इष्टघटिकागुर्णानाम्	१०२५
आद्यन्ते च पृषत्के	११३१	इष्टचरार्धस्यज्या	१०७०
<b>ब्राद्यादनन्तरोधः</b>	१३२०	इष्टच्छायावृत्ते	३५०
भ्राद्याद्वर्णादन्यान् वर्णान्	१२१७	इष्टज्या संगुरिएताः	१००४
श्राद्यान्यवर्गयार्यु तिमूलम्	४८७	इष्टदिनाद्धं नतांश	२७६
श्रानयति दिवसवारम्	७६	इष्टदिवसार्ढ घटिका	३३८१
ग्रानयति यस्तम्	१२६६	इष्टद्वयेन भक्तो	584
म्रायतकर्णी बाह्	5४६	इष्टभगगादिशेषंम्	१२६४
भ्रार्यभटः क्षेत्रांशैः	४७५	इष्टभगगादिशेषात	११६३
आर्यभट दूषगानां	७१४	इष्टभगगादिशेषात्	११७६
ग्रार्थभटस्याज्ञानात्	२०३	इष्टभगरोनभूदि	949
श्रार्यभटेनास्मिन् सति	६९१	इष्टशरद्वय भक्ते	८६७
श्रार्यभटो जानाति	६६४	इष्टस्य भुजस्य कृतिः	2.80
श्रार्यभटो युगपादाँस्त्रीन्	६५७	इष्टाछायावृत्ते तदग्रयो	33
म्रायरिएां पञ्चाशत्		इष्टात्कालात् भानो	६०७
श्रायानवकोक्तानाम्		इष्टान्मध्यादन्यांस्तिथिम्	१७१
भ्रायिष्टशते पाता		इष्टापक्रमवर्गम्	२३७
इति कथिततन्त्रगराकान्	७२६	इष्टार्कचराद्ध ज्या	१०६८
		•	

		१६५५
६१४	उषिताय दीर्घकालम्	११००
९८१		५६१
६४८	<b>ऊनदिवसोदिताभ्यः</b>	६३५
११८४	<b>ऊनमधिकाद्विशोध्यम्</b>	9389
2388	ऊनाधिकशंकुगुराा	६२६
१००६	ऊने मानैक्याद्धीत्	६३४
<b>९</b> ३१	ऊनोल्पभुक्तिचदित:	६०४
२५५	ऊघ्वाँशा रछेदगुर्गाः	<b>૭</b> ૪
५१०	ऋग्वर्गः पर्यायः	१३१६
१५३५	ऋगामूनं घनमधिकं	५४६
१०५५	ऋरायो धनयोघीतः	११६२
३२६	ऋग्योर्वाधनयोर्वा	५४६
१३५६	ऋतुनवरवगुरााः	१४१
६5 <b>९</b>	एकदिनवमशेषम्	१२७७
१०८०		१३२०
१०८३		१३५१
<i>૭</i> ૭૭		१०२
१०७७		<i>3</i> १६१
१०७७		₹ <b>€</b> ₹
६०४		39F <b>\$</b>
५१६		500
		५२१
•		३७१ १
४७३		१४८५
		१३८५
१४४३		६०७
६२०		<b>१</b> १६६
		१३५५
१०४७		860
		१०२३
		६१६
	एवं नक्षत्रांतात् तिथि	१०१०
	एवं भमुनिध्रुवयोः	४८७
३२८	एवं मानेक्याद्वीदिधिके	४४२
	2	९६१ ऊनिदनोदितगुणितात् १४८ ऊनिदनोदितगुणितात् ११६८ ऊनिदनोदिताभ्यः ११६८ ऊनिदनोदिताभ्यः ११६८ ऊनिवनोदिताभ्यः ११६८ ऊनिवनोदिताभ्यः १००६ ऊने मानैक्याद्वीत् १३१ ऊनोल्पभुक्तिरितः १४१ ऊर्घांशा रुखेदगुणाः ११० ऋग्वगः पर्यायः ११३५ ऋग्यो घनयोघितः ३२६ ऋग्योविघनयोवी १३५६ ऋग्योविघनयोवी १३५६ ऋग्योविघनयोवी १३५६ ऋग्योविघनयोवी १३५६ ऋग्योविघनयोवी १३५६ एकदिनवमशेषम् १०८० एकद्वितयोः परतो १०८३ एकद्वितयोः परतो १०८७ एकद्वितयोः परतो १०७७ एकादियुतिवहीनौ १०७७ एकान्यिदशोयुं तिः ६०४ एकैकेन द्वचाः द्वचाः १०५१ एको वक्रीभुक्त्यो ४७२ एवं राश्यंश कला ४७३ एवं वस्त्वरं नाडिकांगुलैः १४६६ एवं वराहिमिहिर १४५३ एवं विचार्यमाणं ६२० एवं समेषु विषमेष्वृणं

म्रवलंबनं शलाकाज्यार्धम्	१४३३	इति तिथिनक्षत्र	१५६७
ग्रविषमचतुरस्र	८२८	इति परिलेखाध्यायः	११६४
ग्रविषम पार्श्वभुजगुगा	८३३	इति बहुघा विवदंते	७२७
म्रव्यक्तवर्गधनवर्ग .	१२०४	इति बाहुकोटिकर्ए	४ <b>९</b> ७
ग्रव्यक्ताँतरभक्तम्	१२०७	इन्दुविलिप्ताशेषम्	१२६६
ग्रष्टनखैर्मेषे गवि	५७१	इन्दुविलिप्ताशेषात्	१२७३
म्रष्टयमा:शून्यगुगाः	१०६६	इंदोविषया द्वियमा	११२४
ग्रष्टयमेः कृतचन्द्रैः	२३१	इषुशरकृताष्टदिग्भिः	१२७८
श्रसकृद् ग्रासकालोन	३८२	इष्टकरण्यूनाया	१२०२
ग्रस्ताँतर्घटिकाभियो <u>ि</u>	१२९५	इष्टगुराका रगुरिगतम्	ह५६
<b>म्रह्नोगताऽवशेषाः</b>	३२२	इष्ट्रगुंगाकारगुगितो	<b>5</b> 48
म्राकृतिफल <b>मो</b> च्याहत	550	इष्टगृहौच्च्यज्ञो यः	१२६७
म्राग्नेये नैऋंत्ये वेष्टदिने	१५२१	इष्ट्रप्रहभगरागुरााद्	६५
श्राचायैर्न ज्ञातः श्री	१४१ <b>९</b>	इष्ट्रग्रहेष्ट <b>शेषाद्</b>	१२७४
<b>ग्राद्यग्र</b> ह परिवर्ता	<b>९</b> ६६	इष्ट्रग्रासविमर्द	४४२
आद्यन्तयोः सधूम्रः	३६५	इष्ट्रग्रासोर्केंद्वोः	<b>१</b> १३ <b>१</b>
म्राद्यंतरातसंधिषु	7१	इष्टघटिकागुराानाम्	१०२५
आद्यन्ते च पृषत्के	११३१	इष्टचरार्धस्यज्या	१०७०
<b>श्राद्यादनन्तरोधः</b>	१३२०	इष्टच्छायावृत्ते	३५०
म्राद्याद्वर्णादन्यान् वर्णान्	१२१७	इष्टज्या संगुरिगताः	१००४
म्राद्यान्यवर्गयायुं तिमूलम्	४८७	इष्टदिनाद्धं नतांश	२७६
म्रानयति दिवसवारम्	७६	इष्टदिवसार्द्ध घटिका	१२६६
म्रानयति यस्तम्	१२६६	इष्टद्वयेन भक्तो	८४५
म्रायतकर्गी बाहू	586	इष्टभगगादिशेषंम्	१२६४
म्रार्यभटः क्षेत्रांशैः	४७५	इष्टभगगादिशेषात्	११६३
आर्यभट दूषगानां	७१४	इष्टभगगादिशेषात्	११७६
म्रार्यभटस्याज्ञानात्	२०३	इष्टभगगोनभूदि	९५९
म्रायंभटेनास्मिन् सति	६९१	इष्टशरद्वय भक्ते	८६७
म्रार्यभटो जानाति	६६५	इष्टस्य भुजस्य कृतिः	6,80
ग्रार्यभटो युगपादाँस्त्रीन्	६५७	इष्टाछायावृत्ते तदग्रयो	33
ग्रायीगां पञ्चाशत्		इष्टात्कालात् भानो	६०७
म्रार्यानवकोक्तानाम्	१०४८	इष्टान्मध्यादन्यांस्तिथिम्	१७१
म्रायाष्ट्रशते पाता		इष्टापक्रमवर्गम्	२३७
इति कथिततन्त्रगराकान्	७२६	इष्टार्कचराद्ध ज्या	१०६८
•			

			१६५५
इष्टाल्पराशिवर्गो	६१४	उषिताय दीर्घकालम्	११००
इष्टारिवन्यौदयिकान्	९८१	<b>ऊनदिनोदितगु</b> रिगतात्	५६१
इष्टाहतभक्तानाम्	६४८	ऊनदिवसोदिताभ्यः	६३५
इष्टेषु मानदिवसेषु	११८४	ऊनमधिकाद्विशोध्यम्	9389
इष्टोद्धृतकरगी	2388	<b>ऊनाधिकशंकुगु</b> गा	६२६
इष्टौदयिकभुजांतर	१००६	ऊने मानैक्याद्धीत्	६३४
इष्टौदयिकानश्विन्यौदयिकान्	<b>9</b> 38	ऊनोल्पभुक्तिरुदितः	६०४
इह नोक्तानि बहुत्वात्	२४४	ऊर्घांशा रछेदगुगाः	<i>હપ્ર</i>
इह नोद्दिष्टं यत्तद्ग्लवि	५१०	ऋग्वर्गः पर्यायः	१३१६
उज्जयिनी याम्योत्तर	१५३५	ऋगामूनं घनमघिकं	४४६
उत्क्रमजीवा चापं	१०८५	ऋगयो धनयोर्घातः	११६२
उत् <b>क्र</b> मजीवाभ्यघिक	३२६	ऋग्योर्वाधनयोर्वा	४४६
उत्क्रमसमखण्डगुर्गाद्	१३५६	ऋतुनवरवगुगाः	१४१
उत्तरगोले <b>ऽ</b> ग्रायां	६ <b>८९</b>	एकदिनवमशेषम्	१२७७
उत्तरगोलेऽग्रोनम्	१०८०	एकद्वितयोः परतो	१३२०
उत्तरगोले याम्ये	१०५३	एकद्वित्रिगुणाया	१३५१
<b>उत्तरहीनद्विगु</b> र्णादि	<i>૭</i> ૭૭	एकादशलिप्ताशा	१०२
उदयज्यया विभक्ता	१०७७	एकादियुतविहीनौ	<i>३</i> १ <i>६</i>
उदयजेष्ठापक्रमजीवा	१०७७	एकान्यदिशोर्यु तिः	<b>३</b> ६२
उदयः प्रागस्तमयो	६०४	एकेकेन द्वचाः द्वचाः	<b>3</b> 8 <b>5</b>
उदयविलग्नादिधके	५१६	एकोत्तरमेकाद्यं	500
उदयसम <b>मं</b> डलान्तरं	१०५१	एको वक्रीभुक्त्यो	५२१
<b>उदयास्तमयाविदोः</b>	४७२	एवं राश्यंश कला	3088
उदयास्तविधौ रविवद्	४७३	एवं वधूवरं नाडिकांगुलै:	१४८४
<b>उदयास्तविलग्नान्तर</b>	५४६	एवं वराहमिहिर	१३८५
उदयास्तसूत्रशंक्वंतरं	१४४३	एवं विचार्यमारां	<b>६०</b> ०
<b>उदयास्तसूर्ययो</b> रन्तरे	६२०	एवं समेषु विषमेष्वृएां	११६९
उदये ग्रहभूमुनीनामस्तमये	५६३	एवं जीवा खंडान्यल्पानि	१३४५
उदयेऽस्तमये वाऽग्राम्	१०४७	एवं तावाद्यावत्पादयोः	860
उदितघटिका यदि	६३६	एवं द्वितीयराशि	१०२३
<b>उदितानुदितास्त्</b> मिता	७१३		६१६
उद्दिष्टे कल्पकृती		एवं नक्षत्रांतात् तिथि	१०१०
उन्नतजीवाकोटिः	२७२		४८७
उन्नतजीवाभक्तं 💮 💮	३२८	एवं मानैक्यार्द्धादिधके	४४२

भ्रोङ्कारो दिनवारो	६६७	कालान्तरेगा दोषा	७१६
<b>ग्रौत्रग</b> णिताद्विशोध्य	<b>८७५</b>	किंप्रतिविषयं सूर्यो	१३८४
<b>ग्रौदयिकाद्दिनभुक्त</b> ेः	६७२	कीलस्योपरिगामिनि	१४८६
ग्रौदयिको यः परिधिः	इं७ह	कीलोपरिगामिन्याम्	१४८२
कक्षामंडलतुल्यं	६८६	कुं जरचन्द्र समुद्रा	१५८३
कक्षामंडलतुल्यम्	१४१५	कुट्टकर्ण धनाव्यक्त	३४४६
कक्षामंडलभूमध्ये	१३५६	कुदिनहृतमवशेषम्	६५३
कक्षाव्यासार्घगुरा।	१३७२	कृतवसुनवाष्टनव	४०
कदिनादौ स्मृतियुक्तं	७२४	कृतियुति रसदृशराश्योः	588
कन्यायां पञ्चनखे	प्र७१	कृतिसंयोगाद्दि गुगा	१२८७
करगाीलम्बस्तत्कृतिः	११९६	कृत्वाघोघः कल्प्यानि	१३२०
करगौज्या क्षिप्रचलनमेवम्	१४६१	कृत्वापि दृष्टिकर्म	ሂሪሄ
कर्णंकृतिस्त्रिसमभुजाः	540	कृत्वा वशाहष्याद्वितयं	४६५
कर्णागतस्थेनेंदो	<b>५</b> २६	कृत्वेवं दिनघटिकाः	५४५
कर्णगुरााद् व्यासाद्धीद्	४१५	कृष्णचतुर्दश्यन्ते	२४२
कर्णमतिस्थे नैशे	११४०	केन्द्रभुजकोटिजीवा	६५०
कर्णयुतावूद्ध् वीधरखण्डे	८३१	केन्द्रे पृथक् फले	६४४
कर्णस्तद्भुजफलकृति	१३६६	केशादित्यविशाखा	०६०१
कर्णहृते व्यासाद्ध म्	933	कोटिज्यया द्विगुराया	६५४
कर्णाग्रे चन्द्रमसं	११४०	कोटिफलं व्यासार्घात्	१३६६
कर्णावलम्वकयुतौ	<b>८</b> ४३	कोटिभुजकर्एशंक्तन	६३८
कर्णाश्रितभुजघातैक्य	८३६	कोटि श्रवगाज्ञानात्	300
कलिगतशुद्धिः प्राग्वत्	<b>१</b> २१	कोटचग्राभ्यां बाहुकर्गी	६३८
कल्पगताब्ददिनयुतः	१३	कोटचन्त्यफलज्यैकम्	६८८
कल्पगताब्द द्वादश	31	कोराछायाकर्गोन	१०६१
कल्पगताब्दा गुिंगता	द६	कोगाछाया कृतिदल	१०६०
कल्पदिनसप्तकवधात्	६६२	कोद्यांत्यफलाद्यै <b>क्</b> यं	१५५
कल्पपरार्धे मनवः	xx	क्रांतिज्ञः सममंडल	१०४२
कल्पेऽर्कबुधसितानाम्	४०	क्रांतिज्या तत्क्रान्ति	ሂጜሂ
कल्पेषु पृथक्गुरूलुघु	१३२०	क्रान्तिज्या विषुवच्छायया	२३७
कालगुरिगत प्रमारा	३७७	क्रान्तिर्व्यासाद्ध"गुरगा	३५३
कालज्ञानं प्रायः	इ६३	क्रांत्ययुतिवियोगाद्	१५६४
कालप्रमाराघातः	<b>ও</b> দ <b>ৃ</b>	क्रान्त्या विषुवच्छाया	१०६८
<b>कालर्क्षदेशोगाद्</b>		क्रान्त्योर्युं तिरन्यदिशोः	१०२३

			१६५७
<del>व</del> ्वर्कव्यासान्तरगुगाम्	१३७५	गुराकयुतिरष्टगुरािता	१२४८
क्षयघनधनक्षयाः	१६२	गुराक छेदः छेदो	११७१
क्षयघनहानिघनानि	338	गुराकारखण्डतुल्य	६०३
क्षयवृद्धिज्याहीनं	३२२	गुरामधिमासकशेषम्	४६३
क्षितिजायमण्डलयुति	3388	गुरारामाः षट्करसाः	१५७८
क्षितिजेऽग्रा प्राच्यपरा	३५७	गुरिए इं वा द्वादशिः	३०४
क्षितिजे भूदललिप्ताः	१४१०	गुर्गितं व्यासाद्धेन	388
क्षितिजोन्मण्डलयोः	१४०६	गुिंगताद्युगाधिमासैः	६४०
क्षेत्रफलं वेधगुरा	<b>८६</b> ६	गुिंगतानि चान्द्रदिवसैः	<b>£</b> \$3
खखखार्क हिताब्देभ्यो	१३०	गुर्गिता व्यासाद्धे न	६२३
खखरसलब्धं <b>च</b>	१५२६	गुगाताः स्वभुक्तिलिप्ता	६३५
खचतुष्टय यमशर	१२१	गुण्यगुराकारयोः	303
खचतुष्टयरदवेदाः	१६	गुण्यरुछेद फलवधो	१०५
<b>खत्रययमनव</b> पंच	१२१	गुण्यो राशिर्गुं एाकार	४०५
<b>खत्रिघनगु</b> गा	३६७	गुरुणा न धूलिकर्म	६४७
लनंदा द्वियमाः लाब्धयो	~११२४	गुरुषष्टचे कानि घटी	१३२०
खशराः शतंखतिथ्यः	१८३	गृहपुरुषांतरसलिले	१२६७
खशरैजिनै <b>ज्ञ</b> िसतयोः	२३१	गृहपुरुषांतरसलिले	१३१०
खाष्टाब्धयो वसुशर	४०	गोगेंदुखेश गुणिताद्	१२८२
खे भूगोलस्तदुपरि	१३२५	गोलज्ञो जानात्येषाम्	७२=
खोद्धृतमृगांघनं वा	<b>£3</b> \$\$	गोलस्य परिच्छेदः	१४२०
गगनेन नव चन्द्रैः	१४५८	<b>ग्र</b> हकक्षयेवतुल्याः	१०२८
गच्छधनमिष्टगुरिगतैः	६७३	ग्रह <b>राग्रहसंयोगग्र</b> हः	१०९६
गरिएतज्ञो गोलज्ञो	१४२०	ग्रहणं ग्रहयोगं वा	४९४
गिएतिन फले सिद्धम्	१५०	ग्रहरो यथा रवींद्वीः	११२४
गतघटिकाः शेषा वा	४०४	ग्रहगोत्तरं न देयं	११३५
गतदिवसा पृथगिघ	८३७	ग्रहनक्षत्रभ्रम्णम्	१३२३
गतभगरायुताद् द्युगराात्	१२१८	ग्रहनक्षत्रोत्पत्तिः	ধূত
गतभगगोनाद् द्युगगात्	१२२१	ग्रहभास्करान्तरैः	४४८
गतभोग्यखंडकांत	-	ग्रहभुक्ते रूनाया मंदोच्चं	६६२
गतमासदिनावमञ्जेष	દશ્વ	-	२१०
गतशेषनता घटिका		ग्रहमेलके यदुक्तं तत्स्थलं	६४८
गतशेषाल्पास्याह्नः		ग्रहयोगेंदुछाया	६१४४
गतिपादं पादोनां	१५८२	ग्रहयोगोभ ग्रहयुति	६४३

ग्रहयोः स्वोदयलग्ने	ሂሄሂ	छाया कर्गाविभक्ता	398
ग्रहवत्तन्मन्द फलं	११५८	छायाग्रभ्रमरेखा	२६४
ग्रहसूर्यान्त रघटिका	६१०	छायाग्रान्तरगुरिगता	332
ग्रास प्रमाग योग	११०४	छायाद्वितीयाभाग्रांतर	१२६७
ग्रासात्कालः शशि	४३८	छायान <i>र</i> सैकहृतं	<b>८</b> ३
ग्राह्यं परिलख्यैक्यम्	११०२	छाया हम्ज्या हिंद	१४७१
घटिकाकलशाद्धा	१४७२	छायापुरुषच्छिन्नम्	१३१४
घटिकांगुलांतर	१४८२	छायावृत्ताग्रोना सौम्येन	३४ <b>९</b>
घटिकाद्वयेन चन्द्रो	६०८	छायावृत्तेऽकीग्रा	२६७
घटिकाभिराद्यवशतः	६३४	छायावृत्तेऽकीग्रा	१०८२
घटिका स्वशंकुभागैः	१४२७	छिद्रेषु जिनाः कृत	१४१
घातोवार्कगुर्णास्त्रिज्या	३०७	छिद्रे स्विधया क्षिप्ता	१४८८
चक्रांशकैस्तदूनैः	२२१	छेदचतुर्थे र्बाहुयोः	९९५
चक्रात्प्रोह्य चतुर्थे	833	छेदवघस्य द्वियुगम्	११५५
चक्रात्प्रोह्य मृगादौ	३५३	छेदहता चुदलान्त्या	३१३
चकाद्धें ऽर्कशशियुतौ	१०१२	छेदेनेष्ट युतोनेना	६०६
चक्रे वैधृतमेकायनस्थयोः	१०१३	छेदोघनाद् द्वितीयात्	७४६
चतुरधिकेऽन्त्यपदकृतिः	१२४१	छेदोन्यथा तदैक्यं	१०२३
चतुराहतोब्धिगुरिगत	१५६२	जगति तमोभूतेऽस्मिन्	. <i>(9(9</i>
चतुरुनेंत्यपद कृती	१२४१	जनसंसदि दैवविदां	१२६०
चत्वार्यत्रपावर्त्तग्रह्णानि	११२६	जयति प्रगतसुरासुर	१
चन्द्ररविग्रहरोन्दु	७२८	जलपूर्णंकृतघटीभिः	१४८४
चन्द्रोऽम्बुमयोऽघः	१३८८	जात्यद्वयकोटिभुजाः	८५२
चरदलघटिका गुगािता	२४३	जानाति यो युगगतम्	११८२
चरदलजीवोना	३२५	जानात्येकमपि यतो	७१४
चरदलविनाडिका	१५६३	जिनभागज्या गुणिता	२३७
चित्रास्वातिवदुदये	ሂሄሄ	जिनरस गोब्धिरद्गुएा।	१२८०
चैत्रसितादेरुदयात्	४	जीवविलिप्ताशेषा	१२७३
चैत्रसिताद्यास्तिथयः	38	जीवां स्वाहोरात्रे	१४३०
चैत्रसिताद्योब्द पति	१२८	जीवाशशांकभास्कर	४४७
चैत्रादिमासगुणिते	१५३१	ज्ञदिने यदंशशेषम्	११७५
छादयति योगतारां	४८०	ज्ञदिनेऽकं कलाशेषम्	१२७१
छाद्यच्छादकमान <u>ै</u> क्यार्घम्	३७३	ज्ञदिनेऽर्कंकलाशेषम्	१२६९
छाद्येन युतोनस्य	३७४		१३०२
•		••	

१	६।	بر	3
---	----	----	---

ज्ञातभग <b>णादि</b> भुक्तं	१४६	तात्कालिकविक्षेप:	३८०
ज्ञातः सभार्द्धं उदयैः	१३०१	तात्कालिकसंस्थानं	१११ <b>९</b>
<b>ज्ञातैकभग</b> ग्भुक्तिः	383	तात्कालिक ग्रं है:	१०२५
ज्ञातैर <b>छायापुरुषैः</b>	3358	तात्कालिकोपकरएााद्	६००
ज्ञात्वा शंकुछायाम्	१३०८	ताभ्यां सूर्यशशांकी	१४४७
ज्ञानज्ञेयग्रहयोः <sup>े</sup>	१३०१	तावत्सूर्ये राशीन्	२९३
ज्याखंडोने शेषे	१५६७	तिथयो दशभागोना	१४३४
ज्याः केन्द्रंस्फुटभानुम्	१५९२	तिथिगतगम्ये भुक्ति	३६४
ज्याना चेज्ज्याद्वितयात्	११०५	तिथिभोगनाडिकासु	१५३७
ज्यापरिधिस्पष्टी	२५६	तिथिमान दिनेष्विष्टा	<i>११७६</i>
ज्यां प्रोह्मशेषगुणिताः	१५१	तिर्यंक्कीलोमध्ये	१४८७
ज्यार्धं हष्टे हे 'ज्याम्	१४३२	तुल्यक्रमोत्क्रमज्या	१३ <b>५३</b>
ज्यार्द्धानि ज्यार्द्धानां	३४६१	तैरुपरितनो युक्तो	१४२७
ज्यावर्गात्क्रान्तिज्या	२८६	तन्त्रपरीक्षागरिएतं	१५१८
ज्याव्यासक <u>ृ</u> तिविशेषात्	८६४	तंत्रभ्रंशं प्रतिदिनमेवं	७२७
तच्चापं मन्दफलं	१६२	तस्मात् शीघ्रफलदलं	१५७०
तच्चापांशा सदृशैः	६३१	तस्मात्पृथक्सितादि	१५७०
तच्छाया गुरिगते वा	४२२	<sup>न्</sup> त्रशत्सनव रसेंदुः	१५४०
तज्ज्येंदु शंकुराद्यः	४१६	त्रिंशद्गु <b>रास्तिथियुतः</b>	3.K
तज्ये परमफलज्या	333	त्रिगुणं सप्तविभक्तम्	१ <b>५३</b> ६
तत्प्रागौर्विक्षेपे सौम्ये	५१३	त्रिगुरामवमावशेषं	१००
तत्स्पष्टतिथिछेदांतरे	४३०	त्रिगुराः यशनिरिन्दुनो	<b>९</b> २८
तत्स्फुटपरिधिः खनगाः	२०४	त्रिगुराो दलितः स्व	१५६६
तत्स्वक्रान्तिज्याभ्याम्	१९३	त्रिचतुरनन्तरषष्ठाः	<b>९</b> ७१
तत्स्वलनांशयोगांतर	१११६	त्रिच्छायाग्रजमत्स्य	२६४
तदघिककलोदयवर्ध	२ <b>९</b> ३		१०४०
तद्गुरिगतं व्यासार्धम्	१३८०	_	७०६
तद्गुरिगते ज्ये भांशैः	१५६	त्रिज्याकृते श्चतुर्गुएा	४१०
तद्लखण्डानि तदून	१३५३	त्रिज्याक्षयवृद्धिज्या	१०८५
तद्दिग्गुगाब्दयोगा		त्रिज्यादिनाद्ध सम	१०५४
तद्युदलपरिध्यंतर	१८४	त्रिज्यांत्यफलकृतियुतेः	<b>ह</b> न्द५
तद्भगणैदिनभोगो	१०३१	त्रिज्याप्तांसुभिरुद्यैः	४८८
तद्भुजफल कृतियोगात्	१६२	त्रिज्याभक्तः परिधिः	१३५६
तद्वर्गीतरमाद्यं तदंतरं	ं १२८५	त्रिज्यावर्गावूनौ	४२१

त्रिज्या विक्षेपगुरा।	१११६	<b>हक्कर्माविज्ञाना</b> त्	७०८
त्रिज्याहृता भुजज्या	१५८	हक् <b>क्षे</b> पज्यातो <b>ऽ</b> सत्	७०१
त्रिज्याहृता युतोना	280	हग्क्षेपज्या बाहुक:	६८७
त्रिनवगृहेन्दु क्रान्तिः	१०१६	हक्क्षेपज्या भुक्त्यंतरा हता	६९१
त्रिप्रश्नोत्तचा शंकोः	४६५	हरगिरिगतप्रग्रहयोः	११२२
त्रिभमन्त्यफलघनुः	. 890	हग्गिरातैक्यं न भवति	४०१
त्रिभुजस्य वधोभुजयोः	८३४	हरज्या द्वादशगुरिएता	३०२
त्रिभुजे भुजौ तु	८४१	<b>दृग्मण्डलविक्षेपापम</b>	१४१५
त्रिविषयवेदशशांकाः	१४१	<b>दृग्मण्डलार्धमू</b> र्घ्वम्	१३६८
त्रैराशिके प्रमाराम्	७६३	हग्मण्डले नतांशज्या	१४०७
त्र्यूनाधिमास शेषात्	११८६	हग्लग्न हष्टिभाग	४७६
दक्षिग्तोभयमलाः	५७६	दृश्यादृश्यं दृग्गोलार्धम्	३०४१
दिग्लम्बाक्षस्वोदय	३६०	हश्याहश्यौर्यु तिवत्	४६८
दिग्वर्गावलनवेलायां	३६३	<b>ह</b> ष्टिह ग्लंबगुर्गा	१४६५
दिङ्मध्य स्थितदृष्ट्या	६३८	हष्टचा गुर्गितापसृतिः	१४५६
दिङ्मध्ये छायाग्रं	२७१	हष्टचौच्च्यं समपोठम्	१४७ <b>९</b>
दिङ्मात्र <b>मे</b> तदन्यज	<b>९</b> १७	हष्ट्वा दिनाद्ध घटिका	१५९५
दिनगतशेषप्रागाः	३२०	हष्ट्वा विषुवछायां	१०४१
दिनगतशेषप्राएौ:	१०४४	देयमसुताय नेदं	२२०
दिनघटिकांकितयष्टे:	१४३१	देवगुरोरष्टरसाः	२ं०४
दिनजभगगादिशेषम्	११५९	देवाः सव्यगमसुराः	१३२८
दिनदलकर्णगुरा।	३२४	देशांतरं यथागत हक्	११०३
दिनदलकर्गों त्रिभज्या	१५९६	देशान्तराद्यमेवं	१८७
दिनदलपरिधिस्फुट	१९४	देशान्तरे खमध्ये	१७५
दिनदलविभक्त	११०४	द्युगरायुगाधिमासैः	६५४
दिनमध्यार्क क्रान्त्यक्ष	३२८	द्युगग्रांविनाधिमासावमैः	<b>९</b> २७
दिनमानरात्रिघटिकाः	२४५	द्युगंगामवमावशेषाद्	१२७७
दिनवारादिः पश्चाद्	હદ	द्युगराात् त्रिशद्	६६७
दिवसाद्धींत्क्रमजीवा	१०६८	द्युगराासप्तत्यंशम्	६६
दीपतलशंकुतलयोः		द्युगराात्स्फुटं ग्रहम्	६५०
दीपशंकुतलयोः		द्युगगोन्दुदिवसघातात्	९३४
दुर्जनकृतघ्नशत्रु		द्युगणेषु वधौलिप्ता	१०५
दुर्जनकृतघ्नशत्रु		द्युगर्गोन कुदिनशेषैः	६६०
दूरभ्रष्टे ग्रहसो	११२७	द्युगगाो नन्दशशाङ्कैः	११७

			१६६१
धुदलनतिक्षांशानाम्	१०७५	नवते <del>र्ल</del> म्बांक्षाशान्	२७२
द्युदलान्त्या ज्या छेदो	, ३२ <i>५</i>	नवतेरूनैर्दं श्यो	६१३
द्युदलान्नतोत्क्रमज्या	<b>३१४</b>	नवनगशशिमुनिकृत	५४
द्युदले जिनलिप्तोनं	१८१	नवमशूकिषु दशमः	হ্বও
घुदले शंकु नीतज्ये	१०८०	नष्टेंऽत्यात्स्वाधस्थोन	१३२०
<b>द्वादशगु</b> रिगताक्षज्या	१०५८	न समायुगमनुकल्पाः	६६६
द्वादशभिर्गु ि एताया	४०=	न स्फुटमार्यभटादिषु	४४६
द्वादशभिः शीतांशुः	४६७	नाचार्यो ज्ञातैरि	इष्ठ१
द्वादशविषुवच्छाय <u>ा</u>	३३६	नाड़ोचतुष्कविधिन <b>ा</b>	<b>६०</b> €
द्विकस्थित फलक द्वियुतिः	१४७७	नाडचर्द्धेन समेतं	१५३२
द्विगुएाः कलाः दिनगराः	११४	नास्तमयस्तत्र तुला	१०८८
द्विगुरापदसैकगुरिगतम्	50४	निगिरति गिरति	१४५८
द्विगुणा त्रिशदभक्ता	१५६६	निश्छेदभागहाराद्	इ १७७
द्विचतुः सत्र्यंशगुराो	580	निश्छेदभागहारो	१२३१
द्वित्रिगुरायोरवीन्द्रोः	<b>३</b> २३	निक्छेदभागहारौ ग्रहयोः	१२७४
द्वौद्वौ राशीमकराहतवः	१५०४	निक्छेदभागहारौ विपरीतौ	४२७४
द्वचूनमधिमासशेषम्	१२१२	नीचोच्चवृत्तमध्यं मध्ये	१३६०
घनभक्तः घनमृराहतं	११६३	नीचोच्चवृत्तमध्यस्य	७१९
घनयोर्घनमृ <b>ण्योः</b>	११८६	नृषियोजनभूपरिधिम्	६७३
घनुषः पृष्ठे द्रष्ट्रा	१४३२	पंचगुराा सप्तयमा	• १५८५
घार्यं समं तथा वाज्या	१४२६	पंचज्यया यतोर्कप्रहरां	७०२
घायं घनुस्तथान्या	१४२३	पंचदशकला हीनैः	५७६
घृतिरसगुँगाश्च खशराः	१५८०	पंचदशहीनयुक्ताः	१४८३
ध्रवकादूनः पश्चादिधकः	ৼ७४	पंचदशात्रानुक्तान्येको	१०३०
घ्रुवताराप्रतिबद्धज्योतिः	३	पंचाब्धियुतोऽधः	<b>१</b> ५२७
घ्रुवयोर्वद्धं सव्यगम	१३२६	पंचांबरागि गुरार्व	४७
नक्षत्रसावनदिनात्	१५००	पंचाशत्संयुक्ते	१५२७
नगभूहृद्रविभोग्यं	१५४४	पंचेषु पंचयुग	१५४७
नतभागज्या द्वादश	३२८		ও <b>ন</b> ং
न हष्टाः स्पष्टाः	२२०		303
नलको मूले विद्धः	१४८०	परमापक्रमजीवा	१०६०
नवतिकृतेः प्रोह्यपदं	१००४	परमाल्पा मिथुनांते	७२१
नवतिथयोऽष्टि	१५९१	परिकर्मविशति	७३३
<b>नवते रधिकांशानाम्</b>	४६१	परिकल्पार्कं बिन्दुम्	<b>३</b> १४०

परिधौ भगगांशाकम्	१४३५	प्रतिदिवसविसंवादात्	७२४
परिलिखतीष्टग्रासम्	११०२	प्रतिपादनार्थं मुच्चं प्रकल्पितं	१३७१
परिलिख्य वृत्तमवनौ	3888	प्रतिमंडलपदमाद्यम्	323
परिलेखग्राह्यस्य	१११४	प्रतिमंडलस्य परिधौ	८ ६८६
परिलेखवलनज्या	११३६	प्रतिसूत्रममी प्रश्नाः	१२६१
परिवर्त्य भारहारच्छेदांशु	११२१ अह्	प्रथमं शुक्लं रात्रौ	४६१
पर्वेदोः पक्षांते प्राग्	११२४	प्रथमद्वितीयनृजलान्तर	१३११
पश्चातप्रग्रहरो		प्रथमे वलनज्याभिः	११११ ११११
पश्यंति देवदैत्याः	१११३		
पातर्कयुतिभद्धित	१३३०	प्रश्नसममण्डलासु	१०५१
	११२४	प्रश्नाध्यायान् प्रवक्षामि	६२१
पातालशंकुमुदयेस्ते पाताश्चन्द्रादीनां भ्रमंति	१०४३	प्राक्चन्द्रलग्नयोर	५०१
	१३६५	प्राक्पश्चाद्वा याभिः	१६२
पातेंदुयोगलब्धी	६५१	प्राक् पश्चान्नतिवषुवत्	३८६
पादार्द्धं विपाददिनैः	१२०	प्राक् प्रागुदिताभ्यधिकैः	. 5१२
पिंडफलनवभागः	१५७४	प्रागस्तमयो लग्नादूनं	४६५
पिण्डमानमिति साधितम्	१५८७	प्रागुदयलग्नमुद्यैः	६०४
पिण्डान्तरेगा खार्कः	१५८६	प्रागुदयलग्नमूर्न	४९७
पिंडांतरेण गुणिते	१५७२	प्रागुदये प्रश्नासुभिः	२६५
पिण्डाभावे विफलम्	१५७३	प्रागूनभुक्तिरूनो	४५५
पिण्डे चतुर्दशे विश्वैः	१५७३	प्रागूनमाद्यमधिकं	४६६
पूर्वेवदन्यत्स्पष्टं	४५०	प्रागूनोऽधिकभुक्तिः	६०४
पूर्वापरयोर्बिन्दू	३५६	प्राग् मूल्यव्यत्यासो	<i>६७७</i>
पूर्वापरयोलंग्नम्	४३६४	प्राग्वत्प्रसार्यं विक्षेप	१११६
पूर्वाभिमुखः कर्कट	११४०	प्राग्वल्लम्बनमसकृत्	४२६
<del>ष</del> ृथगन्तरं संयोगौ	४५७	प्राच्यपरं सममण्डलम्	१३६३
षृथगर्को दशगुरिगत	१५६०	प्राच्यपरादिगभिमुखं .	११३९
<b>पौ</b> लिश रोमकवाशिष्ट	१०२६	प्राच्यपरा शंकुतला	१४५४
प्रक्षिप्य राश्यभुक्तं	२६०	प्राच्यपरा शंकुतलान्तर	३४७
प्रक्षेपयोगहृतया	ভন্ত	प्राच्यपरिविपरीते	११२१
प्रग्रहराकालिकै:	५०१	प्राच्यपरे विपरीते	११४४
प्रग्रहरा स्थित्यद्धीत्	३८२	प्राजेशयोगतारा	५७६
प्रग्रह्णांतरघटिका	११२२	प्रागोनैतिकला भूर्यदि	६७७
प्रतिघटिकमघिकशंकोः	६२७	प्रारोविनाडिकाक्षी	१४
प्रतिदिनमुदयास्त	४७१	प्रायेगा यतः प्रश्नाः	११४९
•	•		11.2

			१६६३
फलं संक्रमणमुभयतो	७६३	भानुमते बाह्वग्राद्	<b>१</b> ११३
फलचापकला गुँगािते	¥33	भानौराश्यंशवधाद्	१२३५
फलविकला वा सूर्ये	१६४	भान्यश्विन्यादीनि	२४६५
बाहुक्रांतिः कोटिः	१०८४	भान्यश्विन्यादीनि	१५४६
बाहुज्येंदुदलगुगा	११४३	भार्गवशीघ्रस्यांबर	१२१
बाहू संयोगान्तरमग्रा	६३८	भावितकरूपगुराना	१२३३
बिन्दुद्वयान्तरं स्थिति	११३१	भावितके यदघातो	१२३६
विदुपरिलेखरेखा	११२६	भुक्ते रपि प्रदलिते	३३४
बुघमंदपरिधिभागा	२०४	मुक्ते रूनाधिकनामा	२८५
बुघशीघ्रस्य खरवांबर	<b>१</b> २१	भुक्तै क्यलब्धदिवसैः	१९२
बुधसितपातेऽव्यस्तं	प्रय	भुक्तचन्तरमिष्टोन	३८०
ब्रह्मोक्तं ग्रहगिएतम्	२	भुक्तचंतरेगा भक्तं	प्र२१
ब्रह्मस्फुटसिद्धांत <u>ः</u>	१५१९	<b>भुजकृत्यंतरभू</b> हु <sup>°</sup> त	दर्ष
ब्रह्मोक्तमध्य <b>रविश</b> शि	२०२	भुजकोटिकर्गांशशि	११३६
ब्रह्मोक्ताक्तोर्केन्दु तदुच	११२=	भुजकोट <b>चं</b> शोनगुरा।	333
भगएाकलाव्यासार्द्ध म्	१३४८	भुजगशरारस रामा ·	१५८०
भगग्।स्याधः शनि	१३४०	भुजफलचापं केन्द्रे	१८४
भगगादिकल्पवर्षे	१२१	भुजभागैः कोटिज्यां	303
भगगादिशेषमग्रम्	११५६	भुजैक्चलब्घदिवसैः	१०१४
भगगादिशेषवर्गम्	१२६३	भूगजलिप्ता भक्ताः	४१६
भगगादिशेषवर्गम्	१२६१	भूछाया व्याससमः	9359
भगगाद्यमिष्टशेषम्	११७४	भूच्छायेन्दुं चन्द्रः सूर्यं	१३८२
भग्रहयुतिवच्छं कु	१५२१	भूच्छायेन्दुमतो हि	. १३६ <b>२</b>
भटब्रह्माचार्येग	१५२१	भूदिनगताधिमासकघातः	x F3
भदिनानि ग्रहभगणैः	<i>છપ્ર</i> ૩	भूदिनगता ववमवधः	४६३
भपरिधिसमानि	<b>१३३</b> ६	भूपरिधिः खखखशरारेखा	दर
भपरिवर्त्ताः खचतुष्टय	४२	भूपरिधिचतुर्भागै	१३३४
भफ्लं प्रोक्तमभिजितो	१०३४	भूमीन्द्रियेषवो रस	१४१
भमुनिग्रह विक्षेप	६४९	भूव्यासगुणो भक्तः	१५०४
भमुनिमृगव्याघानां	४५४	भूव्यासस्याज्ञानाद व्यथम्	६७४
भांशोर्कफलस्येंदौ	१५४६	भूव्यासेन्दुगतिवधात्	१५०८
भागकलाविकलैक्यम्	१२८४	भेदाश्चतुर्देश तयोः	३६३
भागीकृतचलकेन्द्रे	१५७१	मकरेष्टनखेः क्रुम्भे	५७१
भानि चतुष्पंचाशत्	६५५	मंडलराश्यंशकला	२३५

•

मंडललिप्ताः शेषो	१०३१	मानार्ढं गुराा व्यासार्ढ	3888
मंडलशेषात् स्वोच्चं	१९३३	मानाद्धीत् षष्टिगुणाद्	१००८
मंडलशेषाद्वय नान्मूलं	१२१४	मानाल्पत्वात् पश्चाद्	४७४
मध्यगतिज्ञ वीक्ष्य	. १३५	मानुष्यदिव्यपित्र्य	१५०३
मध्यगति स्पष्टगति	६४३	मासंगराो यमगुरातः	१५३०
मध्यगतिस्पष्टगतित्रिप्रइनान्	१०६५	मासा द्वादशवर्ष	१५
मध्यग्रहे स्फुटे वा	52	मित्वा ग्रहैकदेशे	१४६६
मध्यग्रासकला हृतमृगाम्	११३३	मि <b>थु</b> नाहोरात्राद्ध <sup>°</sup>	२८३
मध्यच्छायाग्रमुदक्	१०७४	मिश्रे ष्टान्तरगुरािता	१५६३
मध्यछायातो ऽक्षविद्	१०४६	मुखतुलयुति: दलगुगितं	508
मध्यछाया रविवत्	६०१	मुनयोष्टयमागुरा	१४१
मध्यदिवसोन्नतांशैः	१४२८	मूल द्विधेष्टवर्गाद्	१२३८
मध्यधृताया यष्टे	१४५०	मूलेद्वचं गुलविपुलः	१४७०
मध्यमभुक्तिकलोः	१५८८	मृंगकक्याँद्यादूनाविका	२१०
<b>म</b> ध्यमस्फुटांतरकला	<b></b> ₹33	मृदृहनजलमयानां	१३७३
मध्यस्य द्येनाँत्येन	११३१	मेषतुलादाविन्दोः	१०६८
मध्याद्यमिह यदुक्तम्	१४१६	मेषवृषिमथुनजीवा	२८१
मध्यादिनोन्नतांश	३००	मेषादितः प्रवृत्ता	२२०
मध्याद्यमिह यदुक्तं	१४१६	मेषादिषु कक्यादिषु	१०६१
<b>म</b> ध्याद्यस्वनतांशैः	१४७४	मोक्षगुर्णारसरसरामा	१५७५
मध्याद्विशोध्य मंदं	१५५	यत् तदिधिक तमो	१३६१
मध्योत्तरमेको नार्याः	६७४	यत्स्पष्टीकरगाद्यः	१४१६
मनुरेकसप्ततियुगः	38	यदि भिन्नाः सिद्धान्त	१५१८
मनुसंधियूगमिच्छर्य	२१	यदि राहुः प्राग्भागाद्	१३५५
मन्दफलं मध्येऽर्धं	२०४	यद्यधिकं स्थित्यद्धं ,	४२६
मंदफलस्फुट शशिनो	५२७	यद्यधिकमुदयलग्नादूनं	४०२
मंदाशा नगरवयो	१५६८	यद्यधिकमूनमेव	५४६
मंदोच्चनीचवृत्तस्य	२०३	यद्यन्यभगगालब्धम्	<b>ह</b> ५६
मंदोच्चाना सप्तोच्च	१४१५	यद्याद्यान्यान्तरयोः	६३५
महदिन्दोरावणं	१३८४	यद्युगवधिमहायुक्तमुक्तम्	७२३
माध्यैः कृतैश्च दलितैः	3988	यद्येवं ग्रहगाफलं	१३८६
माध्यस्तथार्घहोनैः	3888	यंत्राणि मानसंज्ञाः	१५१६
मानविमर्दस्थिति	३८६	यन्मूलं तद्व्यासो	१३४५
मानानि सौरचन्द्राक्षं	१४८७	यष्टि व्यासाद्धीत्भुवि	१४४६
		. •	

		,	
			१६६५
यष्टि व्यासाद्धे ऽग्रा	3008	येन गुणः शेषयुतः	११८१
यिष्टिव्यासाद्धे	१४३६	यैरूनो यश्च युतो	१२५३
यष्टिव्यासार्द्धे वाघटिका	१४४६	योगोन्तरयुतहीनः	११९५
यष्टिस्तिर्यंक् धार्या	१४३८	यो जानाति युगादिम्	११७२
यष्टि स्वाहोरात्राद्ध	१४४२	योऽधिकमासावम	१५१०
यष्टचा हृताच्छलाका	१४६=	यो राश्यादीन् हष्ट्वा	<i>୧</i> . ଓଡ
यश्चरखंडकलंकोदयान्	१०४१	यो वेति राहुमार्गं	११०३
यश्चरदलं विना स्वे	१०४७	योन्हःपूर्वापरयोः	3508
यरुछायाग्रं हष्ट्वा	१०४०	रदगुरिगता सप्तहृता	१४६८
यः सममंडलशंकु	१०४५	रदरसयमला	<i>१४</i> १
यस्मात्संप्रतिपत्तिनं	१५१५	रविकर्णहृतात्रिज्या	१५०७
यस्मान्न मध्यतुल्यः	१४०	रविचन्द्रपातलग्नैः	४८२
याताननुलोमगतीन्	१इ३	रविचन्द्रयोगलिप्ताः	२५०
यान्त्युदयं मेषाद्या	१४०२	रविचन्द्रयोगलिप्ताः	१५४६
याभ्यां कृतिरिधकोनः	१२५५	रविदृष्टं सितमर्द्धं	४८०
यावत्पादाव्येकागच्छद्	३१६१	रविबिबमेकमार्गाच्छशि	१०२७
युक्तचार्यभटोक्तानि ं	७१७	रविभगगाप्तं लिप्तादि	६५८
युगगतशशिमासवधाद	७६३	रविभगगा रव्यदा	<b>ጸ</b> ጸ
युगदशभागो गुगितः	१६	रविभक्तिहीन राशेः	२६०
युगपद्युगारूदय <u>ा</u> त्	१५१६	रविराश्यभुक्तलिप्ताः	२६३
युगपातंवर्षभगगान्	ও१ন	रविलग्नांतरघटिका	१०४५
युगपादानार्यभटः	१८	रविशशितमस्त्रिचरितं	६४१
युगभगगामानयाता	१३५	रविशशिपातगतिकला	४१६
युगमन्वन्तरकल्पाः	२३	रविशशिभुक्ती	<i>३७०</i>
युगमाहुः पञ्चाब्दं	६५३	राशिकलाशेषकृतिम्	१२५८
युगयातवर्षभगगान्	१४६	राशिषु चतुर्षु वक्रं	२२६
युगरविदिवसैर्गु  िएता	६३३	राशेरूनं द्विगुएां	६१२
युगरविभगगाः रव्युधृति	६५६		<b>.</b> २४१
युगवर्षं विषुवद्		राश्यंशकला विकला	११८०
युगवर्षादीन्वदताचैत्र	६६०		१३४९
युग्मांतेऽष्टशरयमाः	२०४	_	१२२२
युतहिष्टगृहौच्च्यहृता		राहुकृतं ग्रह्णद्वयम्	१३८७
युतान्यथेष्टघटिकाः		राहुस्तच्छादयति	१३८८
ये ऽज्ञानपटलरुद्ध	६५३	रुद्राद्वियमा कुगगाः	१५८५

## 

रूपप्रक्षेपपदे	१२४०	वलनादिशशिवदन्यत्	४४५
रूपारिंग छेदगुरगानि	७३७	वसुवेदा युगनन्दाः	१५७५
रूपाधिकपादार्घे	3959	वारं दद्यात्प्रतिदिनम्	१४३३
रूपेरा खेनकुयमै:	१४५३	विकलाष्टकसंक्ता सहितम्	3828
रूपेरा रूपरामैः	१५२६	विक्षिप्तोदक्षिगतस्तत्	६१३
लग्नकलायद्यूना	१०६१	विक्षेपगुणाक्षज्या	४०७
लग्नसममुदयलग्नं	५०३	विक्षेपगुँगात्रिज्या	१११६
लग्नात् त्रिराशिहीनात्	४४७	विक्षेपमानसमकल	५६५
लघवोल्पो राश्यंशा	१३४४	विक्षेपशस्यपक्रम	४८३
लघुदारुमयं चक्रं	१४८६	विक्षेपसित्रराशि	४६०
लघुसंख्यापदलिता	१३२०	विक्षेपाश द्वितीयादधिको	४५२
लंका समपश्चिमगं	१४०२	विक्षेपाग्रेषु त्रीन्बिन्दून्	११२ <b>९</b>
लङ्कासमयाम्योत्तररेखायां	৩5	विक्षेपांत्ये सौम्ये तृतीय	५५३
लङ्कोदयचरदलवत्	१०६१	विक्षेपो मध्यान्तर	४४२
लब्धधनुरिनोजादौ	१०५१	वित्रिभलग्नस <b>मे</b> ऽर्के	४०२
लब्धमघोऽघः स्थाप्यम्	११६१	वित्रिभलग्नादुत्तर	४१८
लब्धोनाशीघ्रगति	२१०	वित्रिभलग्नार्कोतरजीवा	४४७
लब्धोनोट्टक्लम्बो	१४६३	वित्रिभलग्ने हक्क्षेप	900
लम्बनघटिकालब्धम्	४१०	विदिशोः सौम्येतरयोः	३३८
लंबनघटिका लिप्ता	३३३	विपरीतछेदगुगाः	७३५
लम्बनमर्कग्रहरावद्	५५२	विपरींतमर्घरात्रात्	१९२
लंबनमृ <b>गाधनमुक्त</b> ं	६६५	विपरीतमृराधनम्	६११
लंबनिपातांतरकं	१४६५	वियुतसहिते रवीन्द्रोः	४८७
लम्बाक्षज्यावर्गं प्रोह्य	२७२	विषमचतुरस्रसुमध्ये	<b>५</b> ३६
लाटात्सूर्यशशांकौ	७१७	विषमभुजांतस्त्रिभुजे	580
लिप्तास्तात्त्वयमहृता	389	विषमसदयोर्यदि	६८७
वज्रवधैक्यं प्रथमम्	१२३८	विषमोन्यान्येयुग्मे	६८४
वक्रांशकैस्तदूनैरनुवक्रं	४०	विषुवच्छाया कृत्या	३३८
वज्ञावाधेक्यं प्रथमं	२५५	विषुवच्छाया गुरिगता	१०४८
वर्गं चतुर्गुणितानाम्	१२०८	विषुवछाया गुरिगतात्	४६३
वर्गाहतरूपाणाम्		विषुवछाया भक्ता	१०७३
वर्गगुराकः क्षपः	१२४५	विषुवत्कर्गांविभक्तः	३०१
वर्गोन्यकृतियुतो	१२५२	विषुवत्कर्णहृते वा	२७२
वर्णप्रमाणभावित	३६५१	विषुवत्कर्णोन गुरााः	३३२

			१६६७
विषुवदपमंडलदिशोः	११०१	शंकुप्राच्यपरांतरं	१४५५
विषुषदुदग्बध्नीयात्	१४००	ञ् शंकुप्राच्यपरांतर	६२ <u>६</u>
विषुवदक्षिण्तो	१४००	शंकुः प्राच्यपरायाः	२६८
. विषुवन्मण्डलमूर्ध्वम्	१३९४	_	रेंबर
विषुवन्मण्डलग्नम्	१३९५		१३०५
विस्तारायांमांगुलघातः	522	श्वशिदिनगुर्गं सविकलं	640
वीक्ष्यगृहाग्रं सलिले	१२६=	शशिना जिनैः रङ्कैः	१५५२
वृत्ते शरोनगुणितात्	न्दर	शशिबुधसितार्क	१३२४
वेदनखा जलिंघनखा	१५७८	शशिमानवगपादौ	४६५
व्यतिपातवैघृतान्यर्क	६६३	शशिवत् जीवे द्विहतम्	१३०
व्यतिपातवैधृति	५३२	शशिमृगोन्यत्यर्धेरात्रेः	७१
व्यतिपातोपक्रमयोः	१०१७	शशियमशरा गुगरसाः	४१
व्यर्केन्दुकलाभक्ताः	२५४	शशिलिप्ताशेषकृति	२५७
व्यर्केन्दुकला भक्ताः	१५५०	शशिवद्वाहुः स्फुट	४३८
व्यर्केन्दुदलभुजांशाः	४ <b>९</b> १	शशिवसुर्तिथिभिः	२८६
व्यस्तत्रैराशिकफल	७६३	शशिविक्षेपाग्रेभ्य	११११
व्यस्ता रचा जादीनाम्	१०६६	शशिवेदामन्दानाम्	४१
व्यासदलमितरजीवा	<b>९</b> 5२	शशिशंकोः प्राच्यपरा	300
व्यासवलनापवर्त्तनम्	१११०	शशिशृङ्गोन्नत्यर्थम्	३५६
व्यासव्यासार्द्ध कृती	540	शाकादिषु शाल्मल्यां	दद३
व्यासाद्ध कृतिगुं िएता	७०६	शीघ्रफलं भोग्यज्या	२१०
व्यासार्द्ध कृते मूँ लम्	१०७०	शीघ्रात्स्फुटाग्रहोनाछेषे	२२६
ब्यासार्द्धं वर्गभक्ता	१०५५	शुद्धीशबधे शुद्धे	१२४
व्यासार्द्ध संयुक्तंत्रि	५१७	शून्यचतुष्टय पक्षेंदुं	· १ <b>९</b>
यासार्घहृतो बाहुः	६८६	<b>शू</b> न्यविहीनमृगामृगाम्	११६०
व्यासाद्धे भविनक्ता	६६१	शून्येन द्वादशभिः	१५५६
व्येकमवमावशेष <b>म्</b>	१२१३	शून्येशा यमतिथयः	प्रथ्
शंकुछाया कृत्यो	२७२	शेषं तथेष्टगुरिगतम्	११५०
शंकुतल प्राच्यपरांतरं	६२५	शेषपदगुगाभुक्ति	दर
शंकुतलप्राच्यपरांतर	१०४३	शेषं भूव्यासगुणम्	१५०४
शंकुतलशंकुिएति		शेषवधाद्धि कृति	१२२८
शंकूतलाग्रांतर	१४५२	शेषात्त्रिशत् गुण्ता	२९०
शंकुंघनुषोऽधिकस्य		शैलेस्तिथिभी रुद्र	१५५५
शंकुप्राच्यपरांतर	३५१	श्रीचापवंशतिलके	१५१६

श्रीषेगाविष्गुचन्द्र	७१६	सलिलेन समं साध्यम्	१४२२
श्रीषेगा गृहित्वा चन्द्र	७१८	सर्वागितांशवर्ग	७४२
श्रुतिसंहितास्मृतीनाम्	२६०	सहिता विक्षेपांशाः	६३१
षटुदिधमनवो	१४१	सावनमासाब्दाधिप	<b>९</b> ३२
षड्गुरिगतागतशेषा	१५६५	सावनमुदयादुदयम्	४७
षड्भयुतमूनमुदयैः	६१३	साऽहोरात्रार्धगुराा	३०६
षड्विशेमिथुनांशे	६२२	सितमुन्नतं यतोऽर्कः	४८१
षष्टिशतत्रयभक्तात्	<b>९</b> ६७	सितवृद्धि हानिर्वा यदि	<i>३७</i> ४
षष्टचा विभजेत् लब्धम्	६०२	सितशी घ्रस्य यमलगो	४०
षष्ट्या विभाजिता	<i>७७</i> ६	सूत्रार्द्ध गुगा त्रिज्या	१४४ <b>९</b>
षष्टचाह्नता शलाका	३०८	सूनोन्त्यो द्विपदाग्रम्	<b>१</b> ३१ <b>९</b>
षोडशगवि योजन परिधम्	६७३	सूर्यज्या जिनभागज्यया	३३४
संयोगान्तरमवनति	४२५	सूर्यविलिप्ताशेषम्	१२६०
संक्रांतिपुण्यकालः	3008	सूर्यस्य मनुद्धितयं	१८१
संक्रांतिस्यो यावत्करोति	१०११	सूर्यादयश्चतुर्था	६६९
संक्रान्तेराद्यंती ग्रहस्य	६५१	सूर्यास्तमयादिष्टा	६४८
सत्रिग्रह क्रातिरूदग्	१४१२	स्पृष्टाद्युराभिदलयो	४२
स हशछेदांशयुति	७४८	सेष्टर्ग छेदगुरगो	२४६
सहराद्विवधो वर्गः	१२०५	सैकक्रमतुलाद्यः	3959
सप्तदशकालयंत्राणि	१४२१	सैकादंशकशेषाद्	१२११
सप्तभिरंशैर्गुणिता	२०४	सौम्यं विमण्डलार्घ	<i>७३६</i> ९
सप्तहर्तस्त्रवसुहृतः त	१५५६	सौम्यविमण्डलार्द्ध म्	<b>१३</b> २६
समदलसमविषमाणां	१३३ <b>९</b>	सौम्यादशार्कविषया	५७६
सममंडलगः प्रार्गः	१०४४	सौम्याद्वचिव्धका षष्टि	५७६
सममंडलशंकु	१०५७	सौरेगाब्दा मासा	१४६४
सममंडलाद्विषुवतो	३८८	स्तोद्धांत्यतोग्रातो	२३४
समलिप्त स्फटमध्यात्	ध्रुद	स्थानांतरेषु लब्धं	४१३
समलिप्तिकालिकीत् कृत्वा	६३५	स्थाप्योन्त्यघनोऽन्त्य	७४३
समसंख्यायां सोपान	१३१९	स्थित्यद्धं महदिन्दो	२८८
समायक संयुक्तः	३२३	स्थित्यद्धीद्विपरीतं तमः	१३०२
संपर्कमण्डले यः	११०१	स्थूलफलं त्रिचतुर्भुं ज	न्ध
सर्वपदानामते तिथ्यंते	११२७	स्पर्शान्निमीलनं	308
सर्वािग स्थानानि		स्पष्टं तन्मध्यांतरमृण्म्	२८४
सिलल भ्रमोवलंबः	१४२१	स्पष्टं पश्यति यस्मात्	३८६
•		,	• •

			१६६९
स्पष्टाद्युरात्रि दलयोः	२३६	स्वाक्षांशैरुन्मंडलमहः	२६२
स्पष्टापक्रमभागैः	408	स्बाष्टांशोना सवितुः	१४४३
स्फुटतिथ्यंतज्ञानं	११२८	स्वाहोरात्रसमा यत्र	१०५८
स्फुटतिथ्यंताल्लम्बनम्	४३०	स्वाहोरात्राद्धं मुदग्	<b>३</b> ११
स्फुटतिथ्यंते मध्यं	३८४	स्दाहो रात्राद्धेन	<b>३२</b> २
स्फुटमानकलाभूमि	५ १७	स्वाहारात्राद्धेन	२३७
स्मृतिषुक्तं न स्नानम्	१३५७	स्वाहोरात्राद्धेन छाया	६३
स्वक्रान्तिज्ये त्रिज्या	४५५	स्वाहोरात्रे क्षितिजाद्	१४०६
स्वचरप्रागौदिनगतशेषैः	१०४६	स्वाहोरात्र्यर्द्ध गुणा व्यासार्द्ध	६०
स्वचराद्धें ज्या भक्ता	१०७४	स्वेष्टर्णच्छेदगुर्गौ	१२०१
स्वचरासुभिरूनयुता	५५	स्वोच्चाद् विशोध्य कृत्वा	१००७
स्वछेदेनफलयुता	83	स्वोच्चग्रहयुगभगगाः	३७१
स्वदिनघटिका विभक्तः	५६४	स्वोच्चोनंकेन्द्रमितः	१५३९
स्वदिनाद्ध परिधि	२०२	स्वोर्ध्वोऽन्त्ययुतो <b>ऽ</b> ग्रान्तो	११५०
स्वफलमृगां प्राक् पश्चाद्	प्र२३		१५८९
स्वमणं क्रमोत्क्रमविघौ	३३४	हृतमिदुदिनैर्लब्ध	६इ३
स्वयमेव नाम यत्	७१४	हृतया ब्यासाद्ध नार्क	१११६
स्वर्भानुरासुरिनम्	१३८८	हृतयोः परस्परम्	११६१
स्वविकलषष्टच शगुराः	883	^	१२९०